

द्रोणपर्व

महाभारत

सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

2-3





महाभारत

द्रोणपर्व

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर



पारडी [जि. बलसाड]

प्रकाशक :

वसंत श्रीपाद सातवलेकर,

स्वाध्याय-मण्डल,

पारडी [जि. वलसाड]

सवत् २०३२, शक १८९७, सन् १९७५

प्रथम आवृत्ति

मुद्रक :

वसन्त श्रीपाद सातवलेकर,

भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय-मण्डल,

पारडी [जि. वलसाड]

द्रोण पर्व



महाभारत

द्रोणपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिये नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिये ।

: १ :

जनमेजय उवाच

तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यपराक्रमम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अप्रतिम, अत्यन्त तेजस्वी और बडे प्रतापी, देवताओंके व्रतमें स्थित, जेठे पुरखा भीष्म पाञ्चाल शिखण्डीके हाथसे मारे गये, यह सुनकर ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रस्तदा राजा शोकव्याकुलचेतनः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥ २ ॥

शोकसे व्याकुल चित्त पराक्रमी राजा धृतराष्ट्रने अपने पिताके मारे जानेपर किस प्रकारकी चेष्टा की ? ॥ २ ॥

तस्य पुत्रो हि भगवन्भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान्पाण्डवान्राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! उनके पुत्रने भीष्म, द्रोण आदि महारथी वीरोंके द्वारा महाधनुर्धारी पाण्डवोंको पराजित करके उनके राज्य लेनेकी इच्छा की थी ॥ ३ ॥

तस्मिन्हते तु भगवन्केतौ सर्वधनुष्मताम् ।
यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! द्विजोत्तम ! सब धनुषधारियोंके पताकारूपी पितामह भीष्मके मारे जानेपर कौरव राजा दुर्योधनने भी कैसा उद्योग किया ? वह तुम मुझसे कहो ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजा जनमेजय ! जेठे पिता भीष्मका मारा जाना सुनके, कौरवराज राजा धृतराष्ट्र बहुत ही चिन्ता और शोकसे व्याकुल हो गये; उन्हें शान्ति और धीरज नहीं मिल रहा था ॥ ५ ॥

तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् ।
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ ६ ॥

वे हर घडी दुःख और चिन्ताहीमें मग्न थे; ऐसे अवसरपर गवल्गणपुत्र सञ्जय फिर उनके पास आये ॥ ६ ॥

शिबिरात्संजयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् ।
आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥ ७ ॥

महाराज ! अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्रने रात्रिके समय सञ्जयको शिबिरसे हस्तिनापुरमें आया हुआ देखकर उनसे पूछा ॥ ७ ॥

श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।
पुत्राणां जयमाकाङ्क्षन्विललापातुरो यथा ॥ ८ ॥

पुत्रके विजयकी अभिलाषा करनेवाले राजा धृतराष्ट्र भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनकर अत्यन्त अप्रसन्न और व्याकुल हो, आतुरकी भांति विलाप कर रहे थे ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संसाध्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे तात ! कालप्रेरित कौरव लोगोंने अत्यन्त पराक्रमयुक्त महात्मा भीष्मके मारे जानेपर शोक और चिन्तासे दुःखित हो आगे क्या किया ? ॥ ९ ॥

तस्मिन्विनिहते शूरे दुराधर्षे महौजसि ।
किं नु स्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥ १० ॥

उन महा तेजस्वी, महा प्रतापी बीर महात्मा भीष्मके मारे जानेपर कौरवोंने शोकसमुद्रमें डूबकर किन कार्योंका उद्योग किया ? ॥ १० ॥

तदुदीर्णं महत्सैन्यं त्रैलोक्यस्यापि संजय ।
भयमुत्पादयेत्तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥

हे सञ्जय ! महात्मा पाण्डवोंकी गगनको भेद करनेवाली बडी सेना उस समय तीनों लोकोंके हृदयमें दारुण भय उत्पन्न करनेके लिये समर्थ है ॥ ११ ॥

देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।
यदकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १२ ॥

हे सञ्जय ! कौरवश्रेष्ठ देवव्रत भीष्मके मारे जानेपर कौरव राजाओंने जो कुछ किया, उस वृत्तान्तका तुम मुझसे वर्णन करो ॥ १२ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।
यत्ते पुत्रास्तदाकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १३ ॥

सञ्जय बोले— हे राजा धृतराष्ट्र ! युद्धमें देवव्रत भीष्मके मारे जानेपर उस समय तुम्हारे पुत्रोंने जो कुछ किया, वह मैं तुमसे कहता हूं; तुम एकाग्रचित्त होकर मेरी बातोंको सुनो ॥ १३ ॥

निहते तु तदा भीष्मे राजन्सत्यपराक्रमे ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक्पृथक् ॥ १४ ॥

राजन् ! सत्य-पराक्रमी भीष्मके मारे जानेपर तुम्हारे सब पुत्र और पाण्डव अलग अलग चिन्ता करने लगे ॥ १४ ॥

विस्मिताश्च प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशाम्य ते ।
स्वधर्मं निन्दमानाश्च प्रणिपत्य महात्मने ॥ १५ ॥

हे प्रजानाथ ! दोनों दल क्षत्रिय धर्मका विचार करके आश्चर्यचकित और आनन्दित हुए, तथा क्षत्रिय धर्मकी निन्दा भी करने लगे; और महात्मा भीष्मको प्रणाम किया ॥ १५ ॥

शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायामिततेजसे ।
सोपधानं नरव्याघ्र शरैः संनतपर्वभिः ॥ १६ ॥
नरव्याघ्र ! उन अमित तेजस्वी भीष्मके लिये तिरछे बाणोंके उपधानके सहित शय्या बनाकर दी ॥ १६ ॥

विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् ।
अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥
उसपर परस्पर विचार करके भीष्मके रक्षाकी तैयारी कर दी और उन गंगापुत्रकी अनुमति लेकर उन्हें प्रदक्षिण भी किया ॥ १७ ॥

क्रोधसंरक्तनयनाः समवेक्ष्य परस्परम् ।
पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १८ ॥
फिर क्रोधसे लाल नेत्र कर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए काल–प्रेरित क्षत्रिय युद्ध करनेके निमित्त पुनः निकले ॥ १८ ॥

ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ।
तावकानामनीकानि परेषां चापि निर्ययुः ॥ १९ ॥
अनन्तर तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाएं बाजोंका शब्द और भेरियोंकी महान् आवाजके साथ युद्धके लिये बाहर निकलीं ॥ १९ ॥

व्यावृत्तेऽहनि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते ।
अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥ २० ॥
हे राजेन्द्र ! भरतश्रेष्ठ गङ्गापुत्र भीष्मके गिरनेके समय प्रकाश समाप्त हो रहा था और भीष्मने युद्ध बंद करनेको कहा था, तो भी क्रोधके वशमें कालप्रेरित और हतबुद्धि होके ॥ २० ॥

अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः ।
निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सर्वशः ॥ २१ ॥
महात्मा भीष्मके हितकारी बचनोंको न मानकर वे भरतश्रेष्ठ क्षत्रिय शस्त्रोंको धारण करके शीघ्र ही सब ओरसे शिविरोंसे बाहर निकल पडे ॥ २१ ॥

मोहात्तव सपुत्रस्य वधाच्छांतनवस्य च ।
कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः ॥ २२ ॥
पुत्रों सहित तुम्हारे दुर्बुद्धिसे और शांतनुपुत्र भीष्मका वध होनेपर सब राजाओंके सहित कौरव लोग मृत्युके अधीन हो गये हैं ॥ २२ ॥

अजाश्च इवागोपा वने श्वापदसंकुले ।
भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २३ ॥

देवव्रत भीष्मके विना उद्विग्न चित्त होकर तुम्हारे पुत्र और सैनिक ऐसे दीखने लगे, जैसे हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें विना रक्षा करनेवालेके भेड और बकरियां भयसे व्याकुल रहती हैं ॥ २३ ॥

पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी ।
द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ भीष्मके शरशय्यापर शयन करनेके अनन्तर कौरवी सेना ऐसी दीख पडने लगी, जैसे नक्षत्रोंके विना आकाश, वायुके विना अन्तरिक्ष ॥ २४ ॥

विपन्नसस्येव मही वाक्चैवासंस्कृता यथा ।
आसुरीव यथा सेना निगृहीते पुरा बलौ ॥ २५ ॥

नष्ट धन्यवाली पृथ्वी, संस्कार विना वाणी, बलि राजके बांध लिये जानेपर स्वामी विहीन असुरोंकी सेना ॥ २५ ॥

विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥ २६ ॥

पतिहीन सुंदर स्त्री, जलके सुख जानेपर जलहीन नदी, वनमें भेडियोंसे घिरी हुई और अपना साथी यूथप मारी गई चितकबरी हरिनी ॥ २६ ॥

स्वाधर्षा हतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।
भारती भरतश्रेष्ठ पतिते जाह्नवीसुते ॥ २७ ॥

और स्वाभिमानसे मारे गये सिंहके विना पर्वतकी सूनी कन्दराके समान, हे भरतश्रेष्ठ ! वह भारतियोंकी सेना गंगापुत्र भीष्मके गिरनेपर भयभीत और तेजोहीन दीखने लगी ॥ २७ ॥

विष्वग्वातहता रुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे ।
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता ॥ २८ ॥

बलवान्, वीर, अपने लक्ष्यको मारनेवाले पाण्डवोंसे अत्यन्त पीडित हुई तुम्हारी कौरवी सेना इस प्रकारसे अत्यन्त व्याकुल हो गई, जैसे तूफानके जोरसे महासमुद्रमें टूटी हुई नौका ॥ २८ ॥

सा तदासीद्भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
विषण्णभूयिष्ठनरा कृपणा द्रष्टुमाबभौ ॥ २९ ॥

उस तुम्हारी कौरवोंकी सेनाके घोडे, रथ, हाथी आदि सब व्याकुल हो गये थे और बहुतसे मनुष्य दीन और हतबुद्धि दीखने लगे ॥ २९ ॥

तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः ।
पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते
कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ॥ ३० ॥

विना देवव्रत भीष्मके उस सेनाके अनेक सैनिक और सम्पूर्ण राजा लोग भयभीत और पातालमें निमग्न होनेकी भांति कातर हो गये । उसी समय कौरवोंने कर्णका स्मरण किया; क्योंकि वही भीष्मके समान पराक्रमी माना जाता था ॥ ३० ॥

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवातिथिम् ।
बन्धुमापन्नस्येव तमेवोपागमन्मनः ॥ ३१ ॥

जैसे गृहस्थ मनुष्य विद्या और तपस्यासे प्रज्वलित अतिथिकी प्रार्थना करते हैं और विपद्में पडे हुए मनुष्यका मन अपने बन्धुओंकी ओर दौडता है, उसी प्रकारसे उन सब कौरवोंका मन सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णकी ओर झुक गया ॥ ३१ ॥

चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ।
राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ३२ ॥

भारत ! वहां सब राजा लोग "हे कर्ण ! हे कर्ण !" कहके पुकारने लगे और कहने लगे, कि हमारे लिये अपने प्राणोंको देनेको तैय्यार राधापुत्र कर्ण ही हम लोगोंके हितकारी हैं ॥ ३२॥

स हि नायुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ।
सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमाह्वयत माचिरम् ॥ ३३ ॥

उन महायशस्वी कर्णने अपने बन्धु–मन्त्रियोंके सहित दस दिनोंतक युद्ध नहीं किया है, उन्हें शीघ्र बुलाओ, देर न करो ॥ ३३ ॥

भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥ ३४ ॥

जब बल और पराक्रमयुक्त रथियोंकी गिनती की जा रही थी, तब पुरुषोंमें मुख्य महाबाहु कर्णको सर्व क्षत्रियोंके देखते भीष्मने अर्धरथीमें गिना था, यद्यपि वह दो रथियोंके समान हैं ॥ ३४ ॥

रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसंमतः ।
पितृवित्ताम्बुदेवेशानपि यो योद्धुमुत्सहेत् ॥ ३५ ॥

रथी और अतिरथियोंकी संख्यामें वह सबसे प्रथम गिने जानेके योग्य और शूरवीरके सम्मानका पात्र हैं । वह यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रके सङ्ग भी संग्राम करनेका उत्साह रखते हैं ॥ ३५ ॥

स तु तेनैव कोपेन राजन्गाङ्गेयमुक्तवान् ।
त्वयि जीवति कौरव्य नाहं योत्स्ये कथंचन ॥ ३६ ॥

राजन् ! उसी क्रोधसे वे गङ्गापुत्र भीष्मसे बोले थे, कि " हे कौरव्य ! जबतक तुम जीवित रहोगे, तबतक मैं कदापि युद्ध नहीं करूंगा ॥ ३६ ॥

त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ॥ ३७ ॥

कौरव ! तुम यदि पाण्डवोंको इस महायुद्धमें मार डालेंगे, तो मैं दुर्योधनकी अनुमतिसे बनको चला जाऊंगा ॥ ३७ ॥

पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि ।
हन्तास्म्येकरथेनैव कृत्स्नान्यान्मन्यसे रथान् ॥ ३८ ॥

और यदि पाण्डवोंके हाथसे मारे जाकर तुम स्वर्गगमन करोगे, तो मैं एकमात्र रथकी सहायतासे जिन्हें तुम महारथी मानते हो, उन सबको मार डालूंगा ॥ ३८ ॥

एवमुक्त्वा महाराज दशाहानि महायशाः ।
नायुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव संमते ॥ ३९ ॥

महाराज ! यही वचन कहकर महायशस्वी कर्णने दस दिनोंतक आपके पुत्र दुर्योधनकी अनुमतिसे युद्ध नहीं किया था ॥ ३९ ॥

भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य पार्थिव ।
जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४० ॥

हे राजन् ! युद्धमें विक्रम करनेवाले महापराक्रमी भीष्मने समरमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके अनेक योद्धाओंको मार डाला ॥ ४० ॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्यसंधे महौजसि ।
त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥ ४१ ॥

उन शूर, सत्यव्रतधारी, महा तेजस्वी भीष्मके मारे जानेपर, उस कर्णका आपके पुत्रोंने इस प्रकारसे स्मरण किया, जैसे बटोही मनुष्य नदीके पार जानेके निमित्त नौकाकी तलाश करते हैं ॥ ४१ ॥

तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः ।
हा कर्ण इति चाक्रन्दन्कालोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ४२ ॥

आपके सब पुत्र और सेनाके सम्पूर्ण मनुष्य सब राजाओंके सहित " हा कर्ण ! हा कर्ण ! " कहते हुए व्याकुल हो गये और कहने लगे,– " हे कर्ण ! यही अब तुम्हारे युद्धका समय आ पहुंचा है ॥ ४२ ॥

जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।
अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४३ ॥

जिस प्रकारसे विपत्तिके समयमें मित्र और भाइयोंपर मनुष्यका चित्त जाता है, उसी भांतिसे जमदग्निपुत्र परशुरामके अस्त्रवेत्ता शिष्य, महापराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी कर्णकी ओर हमलोगोंका मन दौडने लगा ॥ ४३ ॥

स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान्महाभयात् ।
त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥ ४४ ॥

राजन् ! जिस प्रकारसे गोविन्द–विष्णु महाभयसे देवताओंकी सदा रक्षा करते हैं, उसी प्रकारसे कर्ण इस महाविपद्–सागरसे हम लोगोंको पार करनेमें समर्थ है ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा कर्णं युधि वरं कीर्तयन्तं पुनः पुनः ।
आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ४५ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजा जनमेजय ! सञ्जय इस प्रकारसे बार बार योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्णके विषयकी बात कह रहे थे, उसी समय राजा धृतराष्ट्रने विषधर सर्पके समान लम्बी सांस लेकर सञ्जयसे इस प्रकार पूछा ॥ ४५ ॥

यत्तद्वैकर्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा ।
अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४६ ॥

हे तात ! तुम लोगोंका मन जो वैकर्तन कर्णकी ओर गया, तो उस समय शरीरके त्यागनेमें उत्साही सूतपुत्र कर्णको तुमने देखा था ? ॥ ४६ ॥

अपि तन्न मृषाकार्षीद्युधि सत्यपराक्रमः ।
संभ्रान्तानां तदार्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ॥ ४७ ॥

क्या उस सत्य पराक्रमी कर्णने युद्धमें आर्त्त और भयभीत तथा त्राणकी इच्छावाले लोगोंकी आशाको मिथ्या नहीं की ? ॥ ४७ ॥

अपि तत्पूरयांचक्रे धनुर्धरवरो युधि ।
यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपावृतम् ॥ ४८ ॥

क्या उस धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भीष्मके मारे जानेपर युद्धमें जो कौरवपक्षमें त्रुटि हो गयी थी, उसे पूरा कर दिया ? ॥ ४८ ॥

तत्खण्डं पूरयामास परेषामादधद्भयम् ।
कृतवान्मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ४९ ॥

क्या कर्णने खंडित अंशको पूर्ण करके शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न किया ? क्या हमारे पुत्रोंके विजयकी आशाको सफल किया ? ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ४९ ॥

: २ :

संजय उवाच

हतं भीष्ममाधिरथिर्विदित्वा भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम् ।
सोदर्यवद्व्यसनात्सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! भीष्मके मारे जानेपर अथाह समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान कौरवोंकी सेना संकटग्रस्त है यह जानकर, अधिरथपुत्र कर्ण आपके पुत्रकी सब सेनाको व्यसनसे मुक्त करनेके निमित्त सहोदर भाईकी भांति आ पहुंचे ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शांतनवं महारथम् ।
अथोपायात्तूर्णममित्रकर्शनो धनुर्धराणां प्रवरस्तदा वृषः ॥ २ ॥

धनुर्धारियोंके अग्रणी, शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले कर्ण, पुरुषेन्द्र अक्षय वीर महारथी शान्तनुनन्दन भीष्मको मारा हुआ सुनकर, शीघ्र ही दुर्योधनके पास आकर उपस्थित हुए ॥ २ ॥

हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवार्णवे कुरून् ।
पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततः संतारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ ३ ॥

रथिसत्तम भीष्मके शत्रुओंके हाथसे मारे जानेपर, जिस प्रकारसे पिता अपने पुत्रोंकी संकटसे रक्षा करनेके लिये जाता है, उसी प्रकारसे कर्ण शीघ्रतासे डूबती हुई नौकाके समान तुम्हारे पुत्रकी सेनाको संकटसे पार करनेके निमित्त दुर्योधनके पास आ पहुंचा ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच

यस्मिन्धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजो दमः सत्यं वीरगुणाश्च सर्वे ।
अस्त्राणि दिव्यान्यथ सन्नतिर्ह्रीः प्रिया च वागनपायीनि भीष्मे ॥ ४ ॥
ब्रह्मद्विषघ्ने सततं कृतज्ञे सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म ।
स चेत्प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव हि सर्वयोधान् ॥ ५ ॥

कर्ण बोला— जैसे चन्द्रमामें शशचिन्ह सदैव शोभित होता है, वैसे ही जिन भीष्ममें धृति, बुद्धि, पराक्रम, ओज, दम, सत्य—ये सब वीरोचित गुण, सब दिव्य अस्त्र, विनय, लज्जा, प्यारा वचन और निन्दारहित स्वभाव सदा सर्वदा शोभा पाते थे, उन ही द्विजशत्रुनाशक, सदैव कृतज्ञ, शत्रुवीरोंके नाश करनेवाले भीष्मके मरनेसे, मैं सब योद्धाओंको ही मारा गया समझता हूं ॥ ४–५ ॥

नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते अस्मिल्लँलोके कर्मणोऽनित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताद्य महाव्रते हते ॥ ६ ॥

इस संसारमें कर्मोंके अनित्य संस्कारोंसे कोई वस्तु भी नित्य नहीं स्थित रहती। जब महाव्रत भीष्म मारे गये हैं, तब कौन मनुष्य आज सूर्य उदय होनेतक विना शङ्काके जीवित रह सकता है ? ॥ ६ ॥

वसुप्रभावे वसुवीर्यसंभवे गते वसूनेव वसुंधराधिपे ।
वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा कुरूंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम् ॥ ७ ॥

वसुके समान प्रतापी, वसुके समान शान्तनुके वीर्यसे उत्पन्न, वसुन्धराधिपति भीष्म जब वसु लोकको चले गए, तब तुम लोगोंको धन, पुत्र, पृथ्वी, कुरुगण और इस सम्पूर्ण सेनाके निमित्त शोक करना पडेगा ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच

महाप्रभावे वरदे निपातिते लोकश्रेष्ठे शांतनवे महौजसि ।
पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्तयन् ॥ ८ ॥

सञ्जय बोले— हे राजा धृतराष्ट्र ! महा प्रभावशाली, वर देनेवाले, जगत् श्रेष्ठ, महा तेजस्वी भीष्म पितामहके मारे जाने और कौरवी सेनाके पराजित होनेपर, कर्ण बहुत ही दुःखित चित्त होकर आखोंमें आंसू बहाता हुआ दीर्घ श्वास लेने लगा ॥ ८ ॥

इदं च राधेयवचो निशम्य ते सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह ।
परस्परं चुक्रुशुरार्तिजं भृशं तदाश्रु नेत्रैर्मुमुचुर्हि शब्दवत् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! राधापुत्र कर्णका ऐसा वचन सुनकर आपके पुत्रलोग और सेनाके सब मनुष्य परस्पर देखकर, दुःख तथा शोकसे युक्त होकर, ऊंचे स्वरसे रोने लगे और शोकसे आंसुओंको गिराने लगे ॥ ९ ॥

प्रवर्तमाने तु पुनर्महाहवे विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः ।
अथाब्रवीद्धर्षकरं वचस्तदा रथर्षभान्सर्वमहारथर्षभः ॥ १० ॥
अनन्तर जब पाण्डवसेनाके राजाओंसे कौरव सैनिकोंका नाश होने लगा और महायुद्ध शुरू हुआ, तब सब महारथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण रथिश्रेष्ठ पुरुषोंका फिर हर्ष बढानेवाली बातोंको कहने लगे ॥ १० ॥

कर्ण उवाच

जगत्यनित्ये सततं प्रधावति प्रचिन्तयन्नास्थिरमद्य लक्षये ।
भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो रणे गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११ ॥
कर्ण बोले– इस अनित्य और सदा आवागमनशील संसारमें बहुत विचार करनेपर भी आज मुझे कोई वस्तु स्थिर नहीं दिखायी देती; कारण कि तुम सब लोगोंके युद्धमें उपस्थित रहनेपर पर्वतके समान प्रकाशमान् कुरुश्रेष्ठ भीष्म किस प्रकारसे मारे गये ? ॥ ११ ॥

निपातिते शान्तनवे महारथे दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा ।
न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं गिरिप्रवोढारमिवानिलं द्रुमाः ॥ १२ ॥
महारथी शान्तनुपुत्र भीष्मका गिराया जाना, सूर्यके आकाशसे पृथ्वीमें गिरनेके समान है; जिस प्रकारसे पर्वतको उखाडनेवाले वायुके वेगको वृक्ष आदि नहीं सह सकते, उसी भांतिसे राजालोग अर्जुनके पराक्रमको सहनेमें असमर्थ हैं ॥ १२ ॥

हतप्रधानं त्विदमार्तरूपं परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै ।
मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३ ॥
जैसे उन महात्मा भीष्मने युद्धमें कौरवी सेनाकी रक्षा की थी, उसी भांतिसे मुझे आज प्रधान सेनापतिके मारे जानेसे अनाथ, आर्त, शत्रुओंसे उत्साह रहित की हुई इस कुरुसेनाकी युद्धभूमिमें रक्षा करनी होगी ॥ १३ ॥

समाहितं चात्मनि भारमीदृशं जगत्तथानित्यमिदं च लक्षये ।
निपातितं चाहवशौण्डमाहवे कथं नु कुर्यामहमाहवे भयम् ॥ १४ ॥
मैंने अपने मनसे इस भारको अपने ऊपर ले लिया; संसारकी अनित्यता और युद्धमें युद्ध-कुशल भीष्मका वध देखकर, मैं समरमें किस लिये डरूंगा ? ॥ १४ ॥

अहं तु तान्कुरुवृषभानजिह्मगैः प्रवेरयन्यमसदनं रणे चरन् ।
यशः परं जगति विभाव्य वर्तिता परैर्हतो युधि शयिताथ वा पुनः ॥१५॥
मैं रणभूमिमें घूमता हुआ, अपने सीधे जानेवाले बाणोंसे, उन कुरु-वृषभ पाण्डवोंको यम-पुरीमें भेज कर, जगत्में परम यश और कीर्तिको पाऊंगा, अथवा उन शत्रु लोगोंके हाथसे मारा जाकर युद्धमें शयन करूंगा ॥ १५ ॥

+

युधिष्ठिरो धृतिमतिधर्मतत्त्ववान्वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः ।
तथार्जुनस्त्रिदशवरात्मजो यतो न तद्बलं सुजयममथामरैरपि ॥ १६ ॥
युधिष्ठिर धैर्यशील, बुद्धिमान् , धार्मिक और तत्त्ववेत्ता हैं; भीम सैकडों हाथियोंके समान बलवान् और पराक्रमी हैं; अर्जुन देवश्रेष्ठ इन्द्रके पुत्र और संयमी हैं; इससे उन लोगोंका बल देवताओंसे भी शीघ्र न जीतनेके योग्य है ॥ १६ ॥

यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले ससात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः ।
न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान्निवर्तते मृत्युमुखादिवासकृत् ॥ १७ ॥
जिस युद्धमें यमराजके समान पराक्रमी नकुल और सहदेव हैं; सात्यकि और देवकीनन्दन श्रीकृष्ण हैं, उस युद्धमें भीरु मनुष्य जाकर बच नहीं सकता, जैसे प्राणधारी लोग मृत्युके मुखसे जीवित नहीं निकल सकते ॥ १७ ॥

तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव गम्यते बलं बलेनापि तथा मनस्विभिः ।
मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाचलवद्व्यवस्थितम् ॥ १८ ॥
प्रतापी और तेजस्वी पुरुष बढी हुई तपस्याको तपस्यासे और बलको बलसे बद्ध कर सकते हैं; इससे मेरा मन निश्चय ही बलसे शत्रुओंको निवारण करने और अपनी रक्षा करनेके लिये पर्वतके समान अविचल भावसे स्थित है ॥ १८ ॥

एवं चैषां बुध्यमानः प्रभावं गत्वैवाहं ताञ्जयाम्यद्य सूत ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने सैन्ये यः सहायः स मित्रम् ॥ १९ ॥
हे सारथी ! मैं आज युद्धमें जाकर ही शत्रुओंके प्रभावको नष्ट करके, उनको जीत लूंगा; इस प्रकारका मित्रद्रोह मुझे सहना उचित नहीं है । जो मनुष्य सेनाके भाग जानेपर उसका सहाय होता है, वही मित्र है ॥ १९ ॥

कर्तास्म्येतत्सत्पुरुषार्यकर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् ।
सर्वान्संख्ये शत्रुसंघान्हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं गमिष्ये ॥ २० ॥
मैं सत्पुरुषोंके उचित यही श्रेष्ठ कर्म करूंगा, अथवा मैं प्राणत्याग करके भीष्मका अनुगमन करूंगा । या तो मैं युद्धमें शत्रुओंके सब संघोंका नाश कर दूंगा, नहीं तो उनके हाथसे मारा जाकर वीर-लोकमें पहुंचूंगा ॥ २० ॥

सम्प्राक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि सूत तस्माच्छत्रून्धार्तराष्ट्रस्य जेष्ये ॥ २१ ॥
हे सूत ! दुर्योधनका बल पौरुष सब हट गया है, और इससे स्त्रियां और कुमार आक्रोश कर रहे हैं, तब ऐसे अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये, यह मैं जानता हूं; इसलिये आज मैं राजा दुर्योधनके शत्रुओंको जीतूंगा ॥ २१ ॥

कुरूनरक्षन्पाण्डुपुत्राञ्जिघांसंस्त्यक्त्वा प्राणान्घोररूपे रणेऽस्मिन् ।
सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्निहत्य दास्याम्यहं धार्तराष्ट्राय राज्यम् ॥ २२ ॥
इस महा घोर युद्धमें प्राण त्याग करके ही कौरवोंकी रक्षा और पाण्डवों तथा दूसरे शत्रुओंके वधकी इच्छा करके सब शत्रुओंको मार डालूंगा और दुर्योधनको राज्य दान करूंगा ॥ २२ ॥

निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
शिरस्त्राणं चार्कसमानभासं धनुः शरांश्चापि विषाहिकल्पान् ॥ २३ ॥
मणि और रत्नोंसे प्रकाशित सोनेसे युक्त सफेद विचित्र कवच; सूर्यके समान तेजस्वी शिरस्त्राण; विष और सर्पके समान धनुष और बाणोंसे मुझे सज्जित करो ॥ २३ ॥

उपासङ्गान्षोडश योजयन्तु धनूंषि दिव्यानि तथाहरन्तु ।
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः शङ्खं च जाम्बूनदचित्रभासम् ॥ २४ ॥
सोलह प्रकारसे भरपूर्ण तूणीरों, दिव्य धनुषों और तलवार, शक्ति, बडी गदाएं तथा सोनेसे चित्रित विचित्र दीखनेवाले शङ्ख ले आओ; ॥ २४ ॥

एतां रौक्मीं नागकक्ष्यां च जैत्रीं जैत्रं च मे ध्वजमिन्दीवराभम् ।
श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्यानयस्व चित्रां मालां चात्र बद्ध्वा सजालाम् ॥ २५ ॥
सोनेसे बनी हुई हाथीकी सांकलको और कमलके चिन्हसे युक्त दिव्य और विचित्र ध्वजको सुंदर वस्त्रोंसे साफ करके ले आओ; युद्धके योग्य गुथी हुई विचित्र माला और खील आदि यहां ले आओ ॥ २५ ॥

अश्वानग्र्यान्पाण्डुराभ्रप्रकाशान्पुष्टान्स्नातान्मन्त्रपूताभिरद्भिः ।
तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेताञ्शीघ्राञ्शीघ्रं सूतपुत्रानयस्व ॥ २६ ॥
सूतपुत्र ! शुभ्र मेघके समान दीप्तिमान्, पुष्ट, मन्त्रसे शुद्ध हुए जलसे प्रक्षालित किये हुए, तप्त सुवर्णके अलंकारसे युक्त, शीघ्रगामी श्रेष्ठ घोडोंको जलदीसे लाओ ॥ २६ ॥

रथं चाग्र्यं हेमजालावनद्धं रत्नैश्चित्रं चन्द्रसूर्यप्रकाशैः ।
द्रव्यैर्युक्तं संप्रहारोपपन्नैर्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्तयस्व ॥ २७ ॥
सोनेकी जालियोंसे विभूषित, चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित, विचित्र रत्नोंसे युक्त, सब युद्धके उपयोगी वस्तुओंके साथ, वेगगामी घोडोंसे युक्त उत्तम रथको सजाकर शीघ्र ले आओ ॥ २७ ॥

चित्राणि चापानि च वेगवन्ति ज्याश्चोत्तमाः संहननोपपन्नाः ।
तूणांश्च पूर्णान्महतः शराणामासज्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥
विचित्र वेगवान् धनुष, संहननसंयुक्त उत्तम रोदे, बाणोंसे भरे हुए महा तूणीर और शरीरमें पहिरने योग्य युद्धके उपयोगी सब वस्त्र सज्जित करो ॥ २८ ॥

प्रायात्रिकं चानयताशु सर्वं कन्याः पूर्णं वीरकांस्यं च हैमम् ।
आनीय मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः ॥ २९ ॥

हे वीर ! रणयात्राके समयकी सब कन्याएं, सामग्री, दहीसे भरे हुए कांस्य और सुवर्णके पात्र शीघ्र ले आओ, तथा गलेमें माला पहिनकर जय सूचक भेरी और नगाडे आदि बाजोंको तुरंत बजावो ॥ २९ ॥

प्रयाहि सूताशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय वैष्यामि हतो द्विषद्भिः ॥ ३० ॥

हे सूत ! जिस स्थानपर किरीटधारी अर्जुन, भीम, धर्मपुत्र युधिष्ठिर और नकुल, सहदेव हैं, वहां ही मेरे रथको शीघ्र ले चलो । वहां युद्धमें मैं उन लोगोंसे भिडकर उनको मारूंगा, अथवा स्वयं ही शत्रुओंके हाथसे मारा जाकर भीष्मकी गतिको पाऊंगा ॥ ३० ॥

यस्मिन्राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१ ॥

जिस सेनामें सत्यवादी राजा युधिष्ठिर खडे हैं, भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि और सृञ्जयगण हैं, मैं जानता हूं, कि वहांकी सेना राजाओंसे अजेय (न जीतने योग्य) हैं ॥ ३१ ॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाप्रमत्तः समरे किरीटिनम् ।
तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय ॥ ३२ ॥

यदि सबका नाश करनेवाला साक्षात् मृत्यु भी किरीटधारी अर्जुनकी रक्षा करेगा, तो भी मैं युद्धमें सावधान रहकर उनका सामना करके अवश्य उनको मारूंगा, अथवा भीष्मके मार्गसे मैं भी यमलोकमें गमन करूंगा ॥ ३२ ॥

न त्वेवाहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्तथाहं ब्रवीमि ।
मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥ ३३ ॥

उन वीरोंके बीचमें मैं न जाऊं, ऐसा नहीं हो सकता; परन्तु उसके निमित्त मैं यही बचन कहता हूं, कि जो मित्रद्रोही, पापी और अल्प भक्तिवाले पुरुष हैं, मैं उनकी सहायता नहीं चाहता ॥ ३३ ॥

सञ्जय उवाच

स सिद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं सकूबरं हेमपरिष्कृतं शुभम् ।
पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥ ३४ ॥

सञ्जय बोले— अनन्तर कर्ण सब साधनोंसे युक्त, कूबर और पताकासे युक्त, सुवर्णालंकृत, शुभ, वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोडोंसे युक्त दृढ और उत्तम रथपर चढके जय करनेके निमित्त चले ॥ ३४ ॥

संपूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभः पाण्डुरवाजियाना ।
ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा यत्रावसानं भरतर्षभस्य ॥ ३५ ॥

वह रथियोंमें श्रेष्ठ, उग्र धनुर्धारी, महात्मा कर्ण कौरवोंसे पूजित हो, सफेद घोडोंसे युक्त रथसे रणभूमिमें गया, जहां भरतश्रेष्ठ भीष्मका अवसान हुआ था ॥ ३५ ॥

वरूथिना महता सध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिवज्रशालिना ।
सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्वनेनार्क इवामितौजाः ॥ ३६ ॥

सुवर्ण, मोती, मणि और हीरकोंसे शोभित सुन्दर ध्वजासे युक्त, उत्तम घोडोंसे जुते हुए और मेघके समान शब्द करनेवाले रथसे सूर्यके समान अमित तेजस्वी कर्ण बडी सेनाके साथ रणभूमिकी ओर गया ॥ ३६ ॥

हुताशनाभः स हुताशनप्रभे शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
स्थितो रराजाधिरथिर्महारथः स्वयं विमाने सुरराडिव स्थितः ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ८६ ॥

अग्निके समान प्रकाशित अपने शुभ रथपर बैठा हुआ अग्निके समान तेजस्वी, सुंदर और धनुर्धर महारथी अधिरथ पुत्र कर्ण विमानमें विराजमान सुरराज इन्द्रके समान शोभित हुआ ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ८६ ॥

: ३ :

सञ्जय उवाच

शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम् ।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— राजन् ! महा तेजस्वी, महात्मा, भीष्मपितामह बाणशय्यापर सो रहे थे, महा प्रचण्ड वायुसे सूखे हुए समुद्रके समान वे दीखते थे ॥ १ ॥

दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ।
जयाशां तव पुत्राणां संभग्नां शर्म वर्म च ॥ २ ॥

महाधनुर्धर भीष्मको सव्यसाची अर्जुनने दिव्य अस्त्रोंसे मार गिराया था । उन्हें देखकर तुम्हारे पुत्रोंकी विजय और सुखोंकी आशा भंग हो गयी, उनके कवच भी नष्ट हो गये ॥ २ ॥

अपाराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम् ।
स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिप्लुतम् ॥ ३ ॥

पार न पानेवाले और अगाध समुद्रमें थाह इच्छिनेवाले कौरवोंके लिये भीष्म द्वीपके समान आश्रय थे, वे यमुना जलके स्रोतोंके समान शरोंसे परिपूरित हो गये थे ॥ ३ ॥

महान्तमिव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम् ।
नभश्च्युतमिवादित्यं पतितं धरणीतले ॥ ४ ॥

मानो, इन्द्रके वज्रसे पृथ्वीपर गिरे हुए असह्य महान् मैनाक पर्वतके समान, तथा आकाशसे च्युत होकर पृथ्वीपर गिरे हुए सूर्यके समान दीखते थे ॥ ४ ॥

शतक्रतोरिवाचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जयम् ।
मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम् ॥ ५ ॥

अथवा पूर्वकालमें वृत्रासुरसे पराजित इन्द्रकी भांति निस्तेज दीखते थे । युद्धमें भीष्मको गिराया जाना सम्पूर्ण सेनाको मोहित करनेवाला था ॥ ५ ॥

ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ।
धनञ्जयशरव्याप्तं पितरं ते महाव्रतम् ॥ ६ ॥

सब धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य और सब सेनामें श्रेष्ठ आपके पिता महाव्रती भीष्म अर्जुनके बाणोंसे पूरित होकर ॥ ६ ॥

तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम् ।
भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानाममध्यमम् ॥ ७ ॥

वीर शय्यापर सोये थे । उन भरतवंशी असाधारण पुरुषश्रेष्ठ वीर भीष्मको उस अवस्थामें अधिरथपुत्र कर्ण देखकर ॥ ७ ॥

अवतीर्य रथादार्त्तो बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ।
अभिवाद्याञ्जलिं बद्ध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ॥ ८ ॥

आर्त होकर रथसे उतर पडा और आंसू भरे हुए नेत्रसे वहां जाकर दोनों हाथ जोडके उनको प्रणाम करके बोला ॥ ८ ॥

कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते अद्य मा वद भारत ।
पुण्यया क्षेमया वाचा चक्षुषा चावलोकय ॥ ९ ॥

हे भारत ! आपका कल्याण हो, मैं कर्ण हूं ; आप मेरे निमित्त अपनी पुण्यप्रद और मंगल वाणीसे कुछ वचन कहिये, और अपनी कल्याणमयी आंखोंसे मुझे देखिये ॥ ९ ॥

न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ।
यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ॥ १० ॥

इस लोकमें कोई अपने सुकृतका फल पूरी तरहसे यहां नहीं भोग सकता है, क्योंकि आप धर्ममें तत्पर और वृद्ध होकर भी पृथ्वीमें सोये हुए हैं ॥ १० ॥

कोशसंजनने मन्त्रे व्यूहप्रहरणेषु च ।
नाथमन्यं न पश्यामि कुरूणां कुरुसत्तम ॥ ११ ॥

हे कुरुसत्तम ! इस समय कोष सञ्चय, मन्त्रणा, व्यूह रचना और शस्त्रोंके प्रहारके विषयमें आपके समान कौरवोंमें दूसरा कोई स्वामी मैं नहीं देखता ॥ ११ ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद्भयात् ।
योधांस्त्वमप्लवे हित्वा पितृलोकं गमिष्यसि ॥ १२ ॥

जो विशुद्ध बुद्धिसे युक्त होकर कौरवोंको भयसे मुक्त कर सकेगा, आप युद्धमें अनेक वीरोंको मारकर इस समयपर लोकमें जानेके निमित्त उद्यत हुए हैं ॥ १२ ॥

अद्य प्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयम् ।
पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ॥ १३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जिस प्रकारसे क्रुद्ध व्याघ्र मृगोंका बहुत नाश कर देते हैं, उसी भांतिसे पाण्डव लोग आजसे कौरवोंका नाश करना आरंभ करेंगे ॥ १३ ॥

अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः ।
कुरवः सन्त्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवासुराः ॥ १४ ॥

जिस प्रकारसे असुर लोग वज्रधारी इन्द्रसे भयभीत होते हैं, उसी तरहसे गाण्डीव धनुषकी टंकार करनेवाले सव्यसाची अर्जुनके पराक्रमको जाननेवाले कौरव उनसे डरेंगे ॥ १४ ॥

अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।
त्रासयिष्यति संग्रामे कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ॥ १५ ॥

आज संग्राममें गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंका वज्रके समान शब्द सब कौरव और दूसरे राजाओंको भयसे दुःखित करेगा ॥ १५ ॥

समिद्धोऽग्निर्यथा वीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ।
धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यन्ति तथा बाणाः किरीटिनः ॥ १६ ॥

हे वीर ! जिस प्रकारसे बडी ज्वालायुक्त प्रचण्ड अग्नि जङ्गलके वृक्षोंको जला देती है, उसी भांतिसे आज अर्जुनके बाण धार्त्तराष्ट्रगणको जला देंगे ॥ १६ ॥

येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ वने ।
तेन तेन प्रदहतो भगवन्तौ यदिच्छतः ॥ १७ ॥

जङ्गलमें अग्नि और वायु एकत्र होकर जिस ओरको चलते हैं, उसी ओर उन दोनों देवताओंकी इच्छानुसार बहुतसे तृण, गुल्म, वृक्ष आदि भस्म हो जाते हैं ॥ १७ ॥

यादृशोऽग्निः समिद्धो हि तादृक्पार्थो न संशयः ।
यथा वायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ॥ १८ ॥

हे नरसिंह ! अर्जुन प्रज्वलित अग्निके समान हैं और श्रीकृष्ण वायुके तुल्य हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥

नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाण्डिवस्य च ।
श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत ॥ १९ ॥

हे भारत ! बजता हुआ पाञ्चजन्य शङ्ख और टंकारते हुए गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर समस्त कुरुसेना भयभीत होगी ॥ १९ ॥

कपिध्वजस्य चोत्पाते रथस्यामित्रकर्शिनः ।
शब्दं सोढुं न शक्ष्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः ॥ २० ॥

हे वीर ! आपके विना अन्य क्षत्रिय राजा लोग शत्रुओंको मारनेवाले, कपिध्वजासे युक्त, अर्जुनके जोरसे दौडते हुए रथके शब्दोंको नहीं सह सकेंगे ॥ २० ॥

को ह्यर्जुनं रणे योद्धुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ।
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २१ ॥

बुद्धिमान् लोग जिन अर्जुनके दिव्य कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं, आपके अतिरिक्त दूसरा कौन राजा उन अर्जुनसे समरमें युद्ध करनेमें समर्थ है ? ॥ २१ ॥

अमानुषश्च संग्रामस्त्र्यम्बकेन च धीमतः ।
तस्माच्चैव वरः प्राप्तो दुष्प्रापश्चाकृतात्मभिः ॥ २२ ॥

जिन्होंने राक्षसोंके संग तथा बुद्धिमान् शिवजीके संङ्ग संग्राम किया था और महादेवसे साधारण पुरुषोंको न मिलने योग्य दुर्लभ वर पाया है ॥ २२ ॥

तमद्याहं पाण्डवं युद्धशौण्डममृष्यमाणो भवतानुशिष्टः ।
आशीविषं दृष्टिहरं सुघोरमियां पुरस्कृत्य वधं जयं वा ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥१०९॥

आज यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं अमर्षमें भरकर उन युद्धदुर्मद दृष्टि हर लेनेवाले विषैले सर्पके समान भयंकर अर्जुनके साथ वध वा जय ध्यानमें रखकर युद्ध करूंगा ॥ २३॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ १०९ ॥

: ४ :

संजय उवाच

तस्य लालप्यतः श्रुत्वा वृद्धः कुरुपितामहः।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्प्रीतमानसः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– वृद्ध कुरु पितामह भीष्म इस प्रकारसे बहुत कुछ बोलते हुए कर्णके वचनोंको सुन कर, प्रीति पूर्वक देश और कालके अनुसार यह वचन बोले ॥ १ ॥

समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः।
सत्यस्य च यथा सन्तो बीजानामिव चोर्वरा ॥ २ ॥

हे कर्ण ! जैसे समुद्र जलोंका, सूर्य ज्योतिका, सज्जन सत्यका और उर्वरा भूमि बीजका ॥ २ ॥

पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव।
बान्धवास्त्वानुजीवन्तु सहस्राक्षमिवामराः ॥ ३ ॥

तथा वर्षा सब स्थावर जङ्गमका आश्रय है, उसी प्रकारसे तुम अपने मित्रोंके आसरा रूपी हो जाओ। जिस प्रकारसे देवता लोग सहस्रनेत्र इन्द्रके अनुजीवी होते हैं, उसी भांतिसे तुम्हारे बन्धुवर्ग तुम्हारे अनुजीवी बनें ॥ ३ ॥

स्वबाहुबलवीर्येण धार्तराष्ट्रप्रियैषिणा।
कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजा निर्हितास्त्वया ॥ ४ ॥

हे कर्ण ! तुमने दुर्योधनके लिये विजयकी इच्छा रखकर अपने बाहुबल और शौर्यसे राजपुरमें जाकर काम्बोजोंपर विजय पायी है ॥ ४ ॥

गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥ ५ ॥

गिरिव्रज देशके निवासी नग्नजित् प्रभृति राजाओंको और अम्बष्ठ विदेह तथा गान्धार देशीय योद्धाओंको तुमने जीत लिया था ॥ ५ ॥

हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः।
दुर्योधनस्य वशगाः कृताः कर्ण त्वया पुरा ॥ ६ ॥

हे कर्ण ! तुमने पहिले हिमालयके दुर्गमें रहनेवाले रणकर्कश किरातोंको जीतकर दुर्योधनके वशवर्ती किया था ॥ ६ ॥

तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा।
बहवश्च जिता वीरास्त्वया कर्ण महौजसा ॥ ७ ॥

हे कर्ण ! दुर्योधनके हितैषी तुम महापराक्रमी वीरने सब जगह युद्धमें बहुतेरे राजाओंको जीत लिया था ॥ ७ ॥

×

यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलबान्धवः ।
तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥ ८ ॥

हे तात ! जैसे ज्ञाति, कुल और बान्धवों सहित दुर्योधन सब कौरवोंकी गति है, उसी प्रकारसे तुम भी कौरवोंके आश्रयदाता हो जाओ ॥ ८ ॥

शिवेनाभिवदामि त्वां गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।
अनुशाधि कुरून्संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ९ ॥

मैं कल्याणकारी और हितकर वचनोंसे तुम्हें कहता हूं, कि जाओ, शत्रुओंसे सङ्ग युद्ध करो; युद्ध करनेके निमित्त कौरवोंको आदेश करो; दुर्योधनको जय प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

भवान्पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा ।
तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥ १० ॥

दुर्योधन जिस प्रकारसे मेरे पौत्र हैं, वैसे ही तुम भी हमारे पौत्रके समान हो; इससे धर्मानुसार जैसे मैं उसका हितचिंतक हूं उसी प्रकार तुम्हारा भी हूं ॥ १० ॥

यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सताम् ।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ११ ॥

नरश्रेष्ठ ! जगत्में यौन संबंधसे भी साधु पुरुषोंके साथ रखा हुआ मैत्रीका संबंध अधिक श्रेष्ठ है, ऐसा मनीषी कहते हैं ॥ ११ ॥

स सत्यसङ्गरो भूत्वा ममेदमिति निश्चितम् ।
कुरूणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥ १२ ॥

इससे तुम सत्यसे युक्त होकर, यह सब कुरुकुल मेरा ही है, ऐसा निश्चय करके, दुर्योधनके समान सब कौरवसेनाकी रक्षा करो ॥ १२ ॥

इति श्रुत्वा वचः सोऽथ चरणावभिवाद्य च ।
ययौ वैकर्तनः कर्णस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ १३ ॥

भीष्मकी ऐसी बातोंको सुन कर विकर्तन पुत्र कर्ण, उनके चरणोंमें प्रणाम करके, शीघ्र ही समर भूमिकी ओर चला गया ॥ १३ ॥

सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानप्रतिमं महत् ।
व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत्समबृंहयत् ॥ १४ ॥

कर्णने वहां आकर सब योद्धाओंका अप्रतिम और बडा स्थान देखा । सब सैनिक व्यूहसे युक्त और वक्षस्थलके समीप अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित थे, फिर कर्णने सब सेनाको उत्साहित किया ॥ १४ ॥

कर्णं दृष्ट्वा महेष्वासं युद्धाय समुपस्थितम् ।
क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि ।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ १२४ ॥

महाधनुर्धर कर्णको युद्धके निमित्त आया हुआ देखकर, कौरवसैनिकोंने शङ्ख, नगाडे, सिंहनाद और धनुषोंकी टंकार आदि नाना भांतिके शब्दोंसे उसकी अच्छे प्रकारसे पूजा और सम्मान किया ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ १२४ ॥

: ५ :

संजय उवाच

रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! दुर्योधन रथमें बैठ कर आये हुए पुरुषश्रेष्ठ कर्णको युद्धके निमित्त तैयार देखके हर्षके सहित पुलकित चित्तसे कहने लगे ॥ १ ॥

सनाथमिदमत्यर्थं भवता पालितं बलम् ।
मन्ये किं तु समर्थं यद्धितं तत्संप्रधार्यताम् ॥ २ ॥

मेरी यह सब सेना तुम्हारे भुज-बलसे रक्षित होकर सनाथ हुई है, मैं ऐसा ही अपने अन्तः-करणसे समझता हूं । इस समय जो उचित और हितकर बात हो उसका निश्चय करो ॥ २ ॥

कर्ण उवाच

ब्रूहि तत्पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप ।
यथा चार्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥

कर्ण बोले– हे पुरुषसिंह महाराज ! आप ही इस विषयको कहिये, क्योंकि आप बुद्धिमान् और सबके राजा हैं; अर्थपति जिस प्रकारसे नियत कार्योंका विचार कर सकते हैं, वैसा दूसरे कदापि नहीं निश्चय कर सकते ॥ ३ ॥

ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर ।
नान्याय्यं हि भवान्वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! हम सब लोग आपके अभिप्रायको सुननेकी अभिलाषा करते हैं; मैं जानता हूं, कि आप अन्याय वचन नहीं कहेंगे ॥ ४ ॥

दुर्योधन उवाच

भीष्मः सेनाप्रणेतासीद्वयसा विक्रमेण च ।
श्रुतेन च सुसंपन्नः सर्वैर्योधगुणैस्तथा ॥ ५ ॥

दुर्योधन बोले– हे कर्ण ! आयु, वीरता और ज्ञानमें सर्व श्रेष्ठ तथा सब योद्धाओंके मतसे भीष्म सम्पूर्ण कौरवी सेनाके सेनापति हुए थे ॥ ५ ॥

तेनातियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान्मम ।
सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्मो महात्मना ॥ ६ ॥

उन महा यशस्वी महात्मा पितामह भीष्मने सब वीरोंके साथ दस दिनोंतक भली भांतिसे युद्ध करके मेरे शत्रुओंका नाश करते हुए हमारी रक्षा की ॥ ६ ॥

तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् ।
कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७ ॥

वे अत्यन्त कठिन कर्म करके स्वर्गलोकको जानेके लिये तैयार हैं, उनके स्थान पर तुम किसको सेनापति बनानेके योग्य मानते हो ? ॥ ७ ॥

न ऋते नायकं सेना मुहूर्तमपि तिष्ठति ।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥ ८ ॥

हे वीरप्रधान कर्ण ! जिस प्रकारसे अगाध जलमें विना खेनेवालेके नौका स्थिर नहीं रह सकती है , उसी प्रकार विना सेनापतिके सेना भी मुहूर्त्त मात्र समरमें नहीं ठहर सकती है ॥ ८ ॥

यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चासारथिर्यथा ।
द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९ ॥

जैसे विना खेनेवाले (मल्लाह) के नौका सब ओर जलमें बह जाती है और विना सारथिके रथ शीघ्र ही चाहे जहां दौडता रहता है, उसी तरहसे विना सेनापतिके सेना भी जहां चाहे भाग सकती है ॥ ९ ॥

स भवान्वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥ १० ॥

इसलिये तुम मेरी सब सेनाके महात्मा योद्धाओंपर दृष्टि डालकर देखो कि अब भीष्मके अनन्तर कौन योग्य सेनापति हो सकेगा ? ॥ १० ॥

यं हि सेनाप्रणेतारं भवान्वक्ष्यति संयुगे ।
तं वयं सहिताः सर्वे प्रकरिष्याम मारिष ॥ ११ ॥

मारिष ! समरमें तुम जिसको सेनापतिके कार्यके योग्य कहोगे, हम सब मिलकर उसहीको सेनापति बनावेंगे ॥ ११ ॥

कर्ण उवाच

सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
सेनापतित्वमर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १२ ॥

कर्ण बोले– ये वर्तमान पुरुषश्रेष्ठ महात्मा समस्त राजालोग निःसन्देह सेनापति होनेके योग्य हैं; इसमें दूसरा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२ ॥

कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।
युक्ताः कृतज्ञा ह्रीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥ १३ ॥

क्योंकि ये सब ही कुल, शरीर, ज्ञान, पराक्रम, बुद्धिसे भरे, कृतज्ञ और मर्यादाशील हैं, तथा पीछे न हटनेवाले और अग्रगामी हैं ॥ १३ ॥

युगपन्न तु ते शक्याः कर्तुं सर्वे पुरःसराः ।
एक एवात्र कर्तव्यो यस्मिन्वैशेषिका गुणाः ॥ १४ ॥

परन्तु एक ही समय सबको सेनापति नहीं बनाया जा सकता, इस निमित्त इनमेंसे विशेष गुणोंसे युक्त किसी पुरुषको यहां सेनापति करना उचित है ॥ १४ ॥

अन्योन्यस्पर्धिनां तेषां यद्येकं सत्करिष्यसि ।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ते हि भारत ॥ १५ ॥

भारत ! परन्तु ये राजा लोग एक दूसरेकी ईर्षा करनेवाले हैं, इनमेंसे किसी एक पुरुषको सेनापति बनावोगे, तो बाकी सब मनमें अप्रसन्न होंगे और आपके हितैषी होकर युद्ध नहीं करेंगे ॥ १५ ॥

अयं तु सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ १६ ॥

इससे इन सब योद्धाओंके आचार्य तथा शस्त्रधारी लोगोंमें श्रेष्ठ वृद्ध गुरु द्रोणको ही सेनापति बनाना उचित है ॥ १६ ॥

को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे ब्रह्मविदुत्तमे ।
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥ १७ ॥

बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी तथा दुर्धर्ष द्रोणाचार्यके रहते हुए दूसरा कौन सेनापति हो सकता है ? ॥ १७ ॥

न च स ह्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत ।
यो द्रोणं समरे यान्तं नानुयास्यति संयुगे ॥ १८ ॥

हे भारत ! द्रोणाचार्यके सेनापति होनेसे सब राजाओंमें तुम्हारा कोई भी ऐसा योद्धा नहीं है, जो समरमें आगे जानेवाले द्रोणाचार्यका युद्धमें अनुगमन न करें ॥ १८ ॥

एष सेनाप्रणेतॄणामेष शस्त्रभृतामपि ।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन्गुरुश्च ते ॥ १९ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे ये गुरु सेनापतियोंमें प्रधान, शस्त्रधारियोंमें मुख्य और बुद्धिमानोंमें भी श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

एवं दुर्योधनाचार्यमाशु सेनापतिं कुरु ।
जिगीषन्तोऽसुरान्संख्ये कार्त्तिकेयमिवामराः ॥ २० ॥

हे दुर्योधन ! जिस प्रकारसे दैत्योंको जीतनेकी इच्छासे देवताओंने युद्धमें स्वामि कार्त्तिकको अपना सेनापति बनाया था, वैसे ही तुम भी आचार्य द्रोणको शीघ्र सेनापति बनाओ ॥२०॥

संजय उवाच

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

सञ्जय बोले– राजा दुर्योधन इस प्रकारसे कर्णके वचनोंको सुनकर सेनाके मध्य भागमें स्थित द्रोणाचार्यसे कहने लगे ॥ २१ ॥

वर्णश्रैष्ठ्यात्कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया ।
वीर्याद्दाक्ष्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २२ ॥

हे आचार्य ! आप श्रेष्ठ वर्ण, उत्तम कुलमें जन्म, विद्या, अवस्था, बुद्धि, वीर्य, अधृष्यत्व, अर्थज्ञान, युद्धनिपुणता, नीति, जय, ॥ २२ ॥

तपसा च कृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्वगुणैरपि ।
युक्तो भवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥ २३ ॥

तपस्या, कृतज्ञता, आदि सब गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; आपके समान योग्य संरक्षण कर्ता और कोई भी दूसरा राजाओंमें नहीं है ॥ २३ ॥

स भवान्पातु नः सर्वान्विबुधानिव वासवः ।
भवन्नेत्राः पराञ्जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ २४ ॥

हे द्विजसत्तम ! जैसे इन्द्र सब देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी भांतिसे आप भी हम लोगोंकी रक्षा कीजिए । मैं आपके नेतृत्वमें रहकर शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करता हूं ॥ २४ ॥

रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ २५ ॥

जैसे शंकर रुद्रोंमें, अग्नि वसुओंमें, कुबेर यक्षोंमें, इन्द्र देवताओंमें ॥ २५ ॥

वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
पितॄणामिव धर्मोऽथ आदित्यानामिवाम्बुराट् ॥ २६ ॥

वसिष्ठ ब्राह्मणोंमें, सूर्य ज्योतिवाले पदार्थोंमें, धर्मराज पितरोंमें, वरुण आदित्योंमें ॥ २६ ॥

नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः ।
श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥ २७ ॥

नक्षत्रोंमें चन्द्रमा और दैत्योंमें शुक्राचार्यके समान आप हम लोगोंके सब सेनापतियोंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये आप कौरवी सेनाके सेनापति होइये ॥ २७ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु तेऽनघ ।
ताभिः शत्रून्प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥ २८ ॥

हे पापरहित ! यह मेरी ग्यारह अक्षौहिणीसेना आपके वशमें होगी; आप इस सब सेनाका प्रति व्यूह बना कर शत्रुओंका इस प्रकारसे नाश कीजिए, जैसे इन्द्रने दानवोंका नाश किया था ॥ २८ ॥

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।
अनुयास्यामहे त्वाजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥ २९ ॥

जैसे स्वामि कार्तिकेय देवताओंके आगे चलते हैं, उसी भांतिसे आप भी हमलोगोंके अगाडी चलिये । जैसे बछडे बैलके पीछे चलते हैं, उसी तरहसे हमलोग युद्धमें आपके अनुगामी होंगे ॥ २९ ॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन्धनुः ।
अग्रे भवन्तं दृष्ट्वा नो नार्जुनः प्रसहिष्यते ॥ ३० ॥

उग्रधन्वा महाधनुर्धारी अर्जुन आपको आगे सेनापतिके रूपमें देखकर, दिव्य धनुषको चढा कर भी हमारी सेनापर प्रहार नहीं कर सकेंगे ॥ ३० ॥

ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम् ।
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान्सेनापतिर्यदि ॥ ३१ ॥

हे पुरुषसिंह ! आपके सेनापति होनेसे मैं युद्धमें अनुचरोंके सहित, भाइयों समेत युधिष्ठिरको निश्चत जीत लूंगा ॥ ३१ ॥

एवमुक्ते ततो द्रोणे जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवात्मजम् ॥ ३२ ॥

दुर्योधनने, जब द्रोणाचार्यको इस प्रकारसे कहा, तब समस्त राजा लोग बहुत जोरसे सिंह-नाद करके आपके पुत्रको आनन्दित और द्रोणाचार्यकी जय जयकार करने लगे ॥३२॥

सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ३३ ॥

सेनाके दूसरे सब सैनिकोंने भी प्रसन्न होकर दुर्योधनको आगे करके महान् यशकी इच्छा करके द्विजोत्तम द्रोणाजार्यका सम्मान बढाते हुए जय जयकार शब्दका उच्चारण किया ॥ ३३ ॥

द्रोण उवाच

वेदं षडङ्गं वेदाहमर्थविद्यां च मानवीम् ।
त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रमस्त्राणि विविधानि च ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य बोले— मैं छहों अंगोंके सहित वेद, मनुष्योंकी अर्थविद्या, शंकरकी दी हुई बाण-विद्या और दूसरे भी सब अस्त्रशस्त्रोंको जानता हूं ॥ ३४ ॥

ये चाप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकाङ्क्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सत्यान्योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥ ३५ ॥

तुम लोगोंने जयकी इच्छासे जो मेरे गुण कहे हैं, मैं उन सब गुणोंको सार्थक करनेकी अभिलाषासे पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करूंगा ॥ ३५ ॥

संजय उवाच

स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः ।
द्रोणं तव सुतो राजन्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३६ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने इसी प्रकारसे द्रोणाचार्यकी अनुमति मिलने पर उन्हें शास्त्रसंमत विधिके अनुसार अपनी सेनाका सेनापति बनाया ॥ ३६ ॥

अथाभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः ।
सेनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ ३७ ॥

अनन्तर जैसे पहिले समयमें इन्द्र आदि देवताओंने स्वामि कार्तिकको अपनी सेनाके सेना-पतिके पदपर अभिषिक्त था, उसी भांति दुर्योधन आदि सब राजाओंने द्रोणाचार्यका अभिषेक किया ॥ ३७ ॥

ततो वादित्रघोषेण सह पुंसां महास्वनैः ।
प्रादुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ३८ ॥

तब नाना प्रकारके वाद्योंका घोष, शंखोंका महाशब्द और लोगोंका महानादके साथ द्रोणा-चार्यके सेनापति पदपर अभिषिक्त किये जानेपर सब लोग प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥

ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च ।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधबन्दिनाम् ॥ ३९ ॥

अनन्तर पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, सूत, मागध और बन्दियोंकी स्तुति ॥ ३९ ॥

जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्तितैस्तथा ।
सत्कृत्य विधिवद्द्रोणं जितान्मन्यन्त पाण्डवान् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ १६४ ॥

गीत, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके जय शब्द और नाचनेवाली स्त्रियोंके नृत्यसे द्रोणाचार्यका विधिपूर्वक सत्कार करके कौरवोंने यह मान लिया कि अब पाण्डव पराजित हो गये ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पांचवां अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ १६४ ॥

: ६ :

सञ्जय उवाच

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— भरद्वाज-नन्दन महारथी द्रोणने सेनापतिका पद पाकर सेनाका विधिपूर्वक व्यूह बनाकर आपके पुत्रोंके सहित युद्धके निमित्त उत्सुक होकर यात्रा की ॥ १ ॥

सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवात्मजः ।
दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥ २ ॥

उनके दाहिनी पार्श्वकी ओर सिन्धुराज, कलिङ्ग राज और तुम्हारे पुत्र विकर्ण अस्त्र शस्त्र और कवच धारण करके खडे हुए ॥ २ ॥

प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ ३ ॥

उनके पीछे शकुनिने गान्धार देशके प्रमुख घुडसवारोंके साथ जो अच्छी भांतिसे विमल प्रास चलानेवाले थे, यात्रा की ॥ ३ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पार्श्वमपालयन् ॥ ४ ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति और दुःशासन आदि वीर सावधान होकर द्रोणाचार्यकी बाईं ओरके रक्षक होकर चले ॥ ४ ॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ ५ ॥

उनके पीछे यवन और शकलोग, काम्बोज-राज महाबाहु सुदक्षिणको आगे करके महावेगवान् घोडोंपर चढकर आगे बढे ॥ ५ ॥

मद्रास्त्रिगर्ताः साम्बष्ठाः प्रतीच्योदीच्यवासिनः ।
शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥ ६ ॥

मद्र, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, प्रतीच्य, औदीच्यवासी, शिबिगण, शूरसेन, शूद्र, मलद, ॥ ६ ॥

सौवीराः कितवाः प्राच्या दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तवात्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ ७ ॥

सौवीर, कितव, प्राच्य और दक्षिणके वीर लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको आगे करके सूतपुत्र कर्णके भागमें रहकर ॥ ७ ॥

हर्षयन्सर्वसैन्यानि बलेषु बलमादधत् ।
ययौ वैकर्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ८ ॥
स्वसेनाओंको हर्षित करते हुए और सब सेनाके वीरोंको बढाते हुए चलने लगे, सूर्य-पुत्र कर्ण सब धनुर्धारियोंके आगे आगे चलने लगा ॥ ८ ॥

तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ।
हस्तिकक्ष्यामहाकेतुर्बभौ सूर्यसमद्युतिः ॥ ९ ॥
उसका कान्तिमान् विशाल, बहुत ऊंचा हस्तिकक्ष चिन्हवाला महाकेतु आपकी सेनाको आनन्दित और हर्ष युक्त करता हुआ, सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ९ ॥

न भीष्मव्यसनं कश्चिद्दृष्ट्वा कर्णममन्यत ।
विशोकाश्चाभवन्सर्वे राजानः कुरुभिः सह ॥ १० ॥
तब कर्णको देखकर किसीने भी भीष्मके मारे जानेका शोक और दुःख न किया, सब राजा और कौरव लोग शोक रहित हो गये ॥ १० ॥

हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राजल्पन्त संगताः ।
न हि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः ॥ ११ ॥
हर्षमें भरे हुए अनेक वीर योद्धा इकट्ठे होकर कहने लगे, कि पाण्डव लोग कर्णको समरमें देखकर युद्धमें नहीं ठहर सकेंगे ॥ ११ ॥

कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान्सवासवान् ।
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ॥ १२ ॥
कर्ण युद्धमें इन्द्रसहित देवताओंको भी जीतनेमें समर्थ है; इससे जो थोडे बल और अल्प पराक्रमी पाण्डवोंको युद्धमें जीतेंगे, यह बात ही क्या है ? ॥ १२ ॥

भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना ।
तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ १३ ॥
बाहुशाली भीष्मने रणभूमिमें पाण्डवोंका पालन किया है, परन्तु कर्ण युद्धमें अपने चोखे बाणोंसे उनका नाश करेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं हृष्टरूपा विशां पते ।
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ॥ १४ ॥
हे नरनाथ ! वे सब इसी प्रकारसे आनन्दित होकर परस्पर बात करते राधापुत्र कर्णकी पूजा और प्रशंसा करते हुए चले ॥ १४ ॥

अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् ।
परेषां क्रौञ्च एवासीद्व्यूहो राजन्महात्मनाम् ।
प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ १५ ॥

हे राजन् ! भारत ! द्रोणाचार्यने हमारी सेनामें शकट व्यूह रचा था । महात्मा शत्रुओंकी सेनाका, धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं ही प्रसन्न होकर क्रौञ्च व्यूह बनाया ॥ १५ ॥

व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ ।
वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ १६ ॥

उनके व्यूहके आगे पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन कपिध्वजाको बहुत ऊंचेतक फहराते हुए खडे हुए ॥ १६ ॥

ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्यपथगः केतुः पार्थस्यामिततेजसः ॥ १७ ॥

अमित तेजस्वी कुन्तीनन्दन अर्जुनका वह ध्वज सूर्यके मार्गतक फैला हुआ था; वह सब सेनाके लिये श्रेष्ठ और सब धनुर्धारियोंके शौर्यका प्रतीक था ॥ १७ ॥

दीपयामास तत्सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुन्धराम् ॥ १८ ॥

जैसे प्रलय कालीन प्रज्वलित सूर्य वसुधाको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही वह ध्वज महात्मा युधिष्ठिरकी सेनाको प्रकाशित करता था ॥ १८ ॥

अस्यतामर्जुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम् ।
वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ॥ १९ ॥

वीरोंमें अर्जुन श्रेष्ठ है, धनुषोंमें गाण्डीव धनुष श्रेष्ठ है, सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं और चक्रोंमें श्रेष्ठ सुदर्शन है ॥ १९ ॥

चत्वार्येतानि तेजांसि वहञ्श्वेतहयो रथः ।
परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ २० ॥

इन चार तेजोंको वहन करता हुआ, वह अर्जुनका सफेद घोडोंसे युक्त रथ शत्रुओंके संमुख कालचक्रकी भांति आकर खडा हुआ ॥ २० ॥

एवमेतौ महात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ।
तावकानां मुखं कर्णः परेषां च धनञ्जयः ॥ २१ ॥

इस प्रकार ये दोनों महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन सेनाके अग्रभागमें शोभित हुए । तुम्हारी सेनाके अग्रभागमें कर्ण और शत्रुओंकी सेनाके अग्रभागमें अर्जुन खडे थे ॥ २१ ॥

ततो जाताभिसंरम्भौ परस्परवधैषिणौ ।
अवेक्षेतां तदान्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ ॥ २२ ॥

अनन्तर वह कर्ण और अर्जुन युद्धके सब कर्मोंको जाननेवाले यत्नवान् होकर क्रोधमें भरकर एक दूसरेके बधकी इच्छा करके समरमें परस्पर देखने लगे ॥ २२ ॥

ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ।
अन्तर्नादेन घोरेण वसुधा समकम्पत ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर अकस्मात् महारथी द्रोणाचार्य आगे बढे, तब पृथ्वी घोर अन्तर्नादसे परिपूर्ण होकर कांपने लगी ॥ २३ ॥

ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ।
वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ॥ २४ ॥

फिर प्रबल वायुके वेगसे तीव्र धूल उडी, वह रेशमी वस्त्रोंके समुदायसी दीखती थी । उस भयंकर धूलने सूर्यसहित सब आकाशको आच्छादित किया ॥ २४ ॥

अनभ्रे प्रववर्ष द्यौर्मांसास्थिरुधिराण्युत ।
गृध्राः श्येना बडाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः ।
उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन्नृप ॥ २५ ॥

बादलसे रहित आकाशमें मांस, हड्डी और रक्तकी वर्षा होने लगी । हे राजन् ! हजारों गिद्ध, बाज, बगले, कंक और कौवे आदि आपकी सेनाके ऊपर उडने लगे ॥ २५ ॥

गोमायवश्च प्राक्रोशन्भयदान्दारुणान्रवान् ।
अकार्षुरपसव्यं च बहुशः पृतनां तव ।
चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ॥ २६ ॥

सियार जोरसे भयप्रद और दारुण आवाज करने लगे और मांस खाने और लहू पीनेकी इच्छासे बार बार आपकी सेनाकी दाहनी ओरसे चलने लगे ॥ २६ ॥

अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ।
उल्का ज्वलन्ती संग्रामे पुच्छेनावृत्य सर्वशः ॥ २७ ॥

उस संग्रामभूमिमें प्रज्वलित और दीप्तिमान उल्का अपने पीछले भागसे सबको घेरकर गर्जना और कम्पनके सहित भूमिपर गिर पडी ॥ २७ ॥

परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।
भास्करस्याभवद्राजन्प्रयाते वाहिनीपतौ ॥ २८ ॥

हे राजन् ! सेनापति द्रोणाचार्यके युद्धके लिये यात्रा करनेपर सूर्यके चारों ओर बडा घेरा पड गया और बिजलीसे युक्त मेघ गर्जना होने लगी ॥ २८ ॥

एते चान्ये च बहवः प्रादुरासन्सुदारुणाः ।
उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारकाः ॥ २९ ॥

ये तथा और भी अनेक उत्पात दिखाई देने लगे, जो वीरोंके जीवनके नाश करनेवाले अपशकुन थे ॥ २९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ।
कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनानादयज्जगत् ॥ ३० ॥

अनन्तर परस्पर एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले कौरव और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ, तब कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके शब्दसे सब जगत् पूर्ण हो गया ॥ ३० ॥

ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
प्रत्यघ्नन्निशितैर्बाणैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः ॥ ३१ ॥

जयकी इच्छा करनेवाले और क्रोधमें भरे हुए सब युद्ध विशारद पाण्डव और कौरव योद्धा एक दूसरेको तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगे ॥ ३१ ॥

स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाद्युतिः ।
वेगेनाभ्यद्रवत्सेनां किरञ्शरशतैः शितैः ॥ ३२ ॥

अनन्तर महाधनुर्धर महातेजस्वी द्रोणाचार्य सैकडों तीक्ष्ण बाणोंको छोडते हुए अत्यन्त शीघ्रतासे पाण्डवोंकी सेनाकी ओर आक्रमणके लिये दौडे ॥ ३२ ॥

द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ।
प्रत्यगृह्णंस्तदा राजञ्शरवर्षैः पृथक्पृथक् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! पाण्डव लोग द्रोणाचार्यको युद्धके लिये आया हुआ देख, सृञ्जयोंके सङ्ग मिलकर उनके ऊपर अलग अलग बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥

संक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ।
व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ॥ ३४ ॥

जैसे वायुसे बादलोंके टुकडे टुकडे हो जाते हैं, उसी प्रकारसे वह पाञ्चालों सहित पाण्डवोंकी बडी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे जर्जरित होकर कई हिस्सोंमें बंट गई ॥ ३४ ॥

बहूनीव विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ।
अपीडयत्क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥

द्रोणाचार्यने क्षण भरके बीचमें अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्रकी वर्षा करके पाण्डव और सृञ्जयों-को पीडित तथा दुःखित कर दिया ॥ ३५ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ।
पाञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३६ ॥

जिस प्रकारसे दानव लोग इन्द्रसे पीडित होकर दुःखित होते हैं, वैसे ही धृष्टद्युम्नके सहित पांचाल योद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे व्याकुल होकर कम्पित होने लगे ॥ ३६ ॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ।
अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ॥ ३७ ॥

अनन्तर महारथी दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले याज्ञसेनि शूर धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यकी सेनाको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ३७ ॥

द्रोणस्य शरवर्षैस्तु शरवर्षाणि भागशः ।
सन्निवार्य ततः सेनां कुरूनप्यवधीद्बली ॥ ३८ ॥

बलवान् धृष्टद्युम्न अपने बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यके बाण वर्षाको रोककर सब कुरु-सेनाका नाश करने लगे ॥ ३८ ॥

संहृत्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाहवे ।
स्वमनीकं महाबाहुः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ ३९ ॥

अनन्तर महाबाहु द्रोणाचार्य युद्धमें पूरी तरहसे प्रवृत्त होकर अपनी सेनाको यत्नपूर्वक विशेष रूपसे ठहराकर धृष्टद्युम्नकी ओर चढ आये ॥ ३९ ॥

स बाणवर्षं सुमहदसृजत्पार्षतं प्रति ।
मघवान्समभिक्रुद्धः सहसा दानवेष्विव ॥ ४० ॥

जैसे इन्द्र परम क्रोध करके दानवोंपर बाणोंकी वर्षा करते हैं, उसी भांतिसे द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके ऊपर बाणोंकी भारी वर्षा करने लगे ॥ ४० ॥

ते कम्प्यमाना द्रोणेन बाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ।
पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ॥ ४१ ॥

जैसे सिंह दूसरे हरिणोंको तितर बितर करके भगा देता है, वैसे ही पाण्डव और सृञ्जयगण द्रोणाचार्यके बाणोंसे कम्पित होकर बार बार युद्ध छोडकर इधर उधर भागने लगे ॥ ४१॥

अथ पर्यपतद्द्रोणः पाण्डवानां बलं बली ।
अलातचक्रवद्राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! बलवान् द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनापर अलातचक्रके समान चारों ओर फिर आक्रमण करने लगे, वह अद्भुत प्रकारकी बात हुई ॥ ४२ ॥

खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या चलदनिलपताकं ह्लादिनं वल्गिताश्वम् ।
स्फटिकविमलकेतुं तापनं शात्रवाणां रथवरमधिरूढः सञ्जहारारिसेनाम् ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ २०७ ॥

वह आचार्य द्रोणका श्रेष्ठ रथ आकाशगामी नगरके समान शास्त्रकी विधिसे निर्मित, वायुके वेगसे लहराती हुई पताका सहित, रथोंको आल्हाद देनेवाला और गतिविशेषसे चलनेवाले घोडोंसे युक्त था; स्फटिक मणिके समान सुन्दर पताका युक्त और शत्रुओंको डरानेवाला वह रथ था । उस श्रेष्ठ रथपर आरूढ होकर द्रोणाचार्य शत्रुसेनाका संहार करने लगे ॥४३॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ २०७ ॥

: ७ :

सञ्जय उवाच

तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, पाण्डव लोग इस प्रकारसे द्रोणाचार्यको अपनी सेनाके हाथी, घोडे, सारथि, रथ और योद्धाओंको मारते हुए देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, किसी भांतिसे उन्हें न रोक सके ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनंजयौ ।
अब्रवीत्सर्वतो यत्तैः कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥ २ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न और अर्जुनसे बोले, कि हमलोगोंको सब ओरसे प्रयत्न करके द्रोणाचार्यको रोकना चाहिये ॥ २ ॥

तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः ।
पर्यगृह्णंस्ततः सर्वे समायान्तं महारथाः ॥ ३ ॥

यह सुनकर अर्जुन और अपने अनुचरोंके समेत धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको रोका, फिर सब महारथी लोगोंने उन पर धावा किया ॥ ३ ॥

केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ।
युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्यात्मजास्तथा ॥ ४ ॥

कैकययोद्धा, भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, मत्स्यदेशीय वीर, द्रुपदके पुत्र, ॥ ४ ॥

द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुःससात्यकिः ।
चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥
हर्षित हुए द्रौपदीके पांचों पुत्र, धृष्टकेतु, सात्यकि, क्रुद्ध चेकितान, महारथी युयुत्सु ॥५॥

ये चान्ये पार्थिवा राजन्पाण्डवस्यानुयायिनः ।
कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६ ॥
ये तथा और दूसरे पाण्डवोंके अनुयायी सब राजालोग क्रुद्ध और प्रसन्न होकर अपने अपने कुल और पराक्रमके अनुसार अनेक भांतिसे युद्धके कर्म करने लगे ॥ ६ ॥

संगृह्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे ।
व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद्भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥ ७ ॥
भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उस सेनाको युद्धमें पाण्डवोंसे इस प्रकारसे रक्षित देख क्रोधसे अपनी दोनों आंखोंको फेर कर इधर उधर देखने लगे ॥ ७ ॥

स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्मदः ।
व्यधमत्पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥
अनन्तर जिस प्रकारसे वायु बादलोंको छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकारसे युद्ध-दुर्मद द्रोणाचार्य अत्यंत क्रोधपूर्वक रथमें बैठकर पाण्डवोंकी सेनाको अपने बाणोंसे नष्ट करने लगे ॥ ८ ॥

रथानश्वान्नरान्नागानभिधावंस्ततस्ततः ।
चचारोन्मत्तवद्द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ९ ॥
वह बूढे होकर भी तरुण पुरुषोंसे बढके कर्म करने लगे । उन्मत्तकी भांति होकर रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंकी ओर धावा करते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ ९ ॥

तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः ।
आजानेया हया राजन्नविभ्रान्ताः श्रियं दधुः ॥ १० ॥
हे राजन् ! उनके वायुके समान चलनेवाले उत्तम लाल रङ्गके अच्छे बंशके घोडे रक्त लिपटे हुए शरीरसे अत्यन्त शीघ्रता सहित घूमते हुए शोभित होने लगे ॥ १० ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम् ।
दृष्ट्वा संप्राद्रवन्योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः ॥ ११ ॥
पाण्डवोंकी ओरके वीर योद्धा लोग साक्षात् कालके समान क्रुद्ध जितेन्द्रिय द्रोणाचार्यको आगे बढे आते देखकर इधर उधर होकर भागने लगे ॥ ११ ॥

तेषां प्रद्रवतां भीमः पुनरावर्ततामपि ।
वीक्षतां तिष्ठतां चासीच्छब्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥

उस समय उस सेनाके भागने और फिर लौटने तथा ठहरने और देखनेसे वहां अत्यन्त भयङ्कर दारुण शब्द होने लगा ॥ १२ ॥

शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥

वह शब्द शूरवीरोंको आनन्द देनेवाला और कायरोंको भय देनेवाला होकर, संपूर्ण पृथ्वी और आकाशके बीचमें सब ओर परिपूरित हो गया ॥ १३ ॥

ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन्युधि ।
अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्शरशतैः परान् ॥ १४ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य रणभूमिमें अपना नाम सुनाकर शत्रुओंपर सैकडों बाणोंको एक ही बार फेंकते हुए अपने स्वरूपको भयङ्कर बनाकर युद्ध करते हुए आगे बढे ॥ १४ ॥

स तथा तान्यनीकानि पाण्डवेयस्य धीमतः ।
कालवन्न्यवधीद्द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥

वह बलवान् अचल द्रोणाचार्य वृद्ध होकर भी तरुणके समान होकर धीमान् पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी सेनाओंका कालरूप होकर चारों ओरसे वध करने लगे ॥ १५ ॥

उत्कृत्य च शिरांस्युग्रो बाहूनपि सभूषणान् ।
कृत्वा शून्यान्रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथाः ॥ १६ ॥

वे उग्र आचार्य वीरोंके शिर और भूषणोंके सहित योद्धाओंकी भुजाओंको काटते और शत्रुओंके रथोंको मनुष्य--रहित करते थे । उस सेनाके महारथियोंकी ओर देखकर गर्जते थे ॥ १६ ॥

तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन चाभिभो ।
प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥ १७ ॥

उनके उत्साहभरे हर्षको बढानेवाले सिंहनाद और बाणोंके चलानेकी शीघ्रताको देखकर, शत्रुओंकी सेना युद्धमें इस प्रकारसे कांपने लगी, जैसे सर्दीसे दुःखित होकर गौवें कांपती हैं ॥ १७ ॥

द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषणेन च ।
धनुःशब्देन चाकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥ १८ ॥

द्रोणाचार्यके रथकी घरघराहट, ज्या खींचनेके शब्द और धनुषकी टंकारसे आकाशमें महान् शब्द होने लगा ॥ १८ ॥

+

अथास्य बहुशो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्गजाश्वरथपत्तिषु ॥ १९ ॥

उनके धनुषसे छूटे हुए अनेक सहस्र बाण चारों दिशाओंको पूरित करके रथ, हाथी, घोडे और पैदल वीरोंपर बरसने लगे ॥ १९ ॥

तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् ।
द्रोणमासादयांचक्रुः पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ २० ॥

पांचाल और पाण्डवलोग सेनाके सहित द्रोणाचार्यके पास पहुंचकर, वेगवान् धनुषधारी और अस्त्र शस्त्रोंसे जलते हुए अग्निके समान द्रोणाचार्यका निवारण करने लगे ॥ २० ॥

तान्वै सरथहस्त्यश्वान्प्राहिणोद्यमसादनम् ।
द्रोणोऽचिरेणाकरोच्च महीं शोणितकर्दमाम् ॥ २१ ॥

परन्तु द्रोणाचार्य रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंसहित शत्रुओंकी सब सेनाको यमपुरीमें भेजने लगे । उन्होंने थोडे ही समयमें पृथ्वीको लहूसे परिपूरित कर दिया ॥ २१ ॥

तन्वता परमास्त्राणि शरान्सततमस्यता ।
द्रोणेन विहितं दिक्षु बाणजालमदृश्यत ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्य अपने परम अस्त्रोंको चलाकर और सतत बाणोंकी वर्षा करके सब दिशाओंमें शर-जालसा बनाने लगे, उन समय उनका बनाया शरजाल ही सब ओर दीखने लगा ॥ २२ ॥

पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः ।
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चरन्केतुरदृश्यत ॥ २३ ॥

जिस प्रकारसे बादलोंसे बिजली घूमा करती है, उसी भांतिसे उनके रथका ध्वज पैदल, रथ, हाथी और घुडसवारोंमें सब ओर घूमता हुआ दीखने लगा ॥ २३ ॥

स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च पाञ्चालराजं च शरैः प्रमृद्य ।
युधिष्ठिरानीकमदीनयोधी द्रोणोऽभ्ययात्कार्मुकबाणपाणिः ॥ २४ ॥

केकयराजके श्रेष्ठ पांचों भाई और पाञ्चालराजको बाणोंसे जर्जरित करके प्रसन्नचित्त योद्धा द्रोणाचार्य पराक्रम और वीरता-युक्त कडे चित्तसे धनुष और बाणोंको हाथमें लेकर युधिष्ठिरकी सेनाकी ओर चढ धाये ॥ २४ ॥

तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च ।
शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च हृष्टा नदन्तो व्यकिरञ्शरौघैः ॥ २५ ॥

भीमसेन, अर्जुन, शिनिपौत्र सात्यकि, राजा द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न, शैब्य-नन्दन, काशिराज और शिबिराजने हर्षित होकर सिंहनाद करके बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यको छा लिया ॥ २५ ॥

तेषामथो द्रोणधनुर्विमुक्ताः पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः ।
भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयूनां जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥ २६ ॥
द्रोणाचार्यके धनुपसे छूटे हुए सुवर्ण दण्डसे युक्त विचित्र पंखोंवाले तीक्ष्ण बाण उन लोगोंके हाथी, घोडे और युवकोंके शरीरोंको भेदकर रुधिर लिपटे हुए-पंखवाले होकर पृथ्वीमें घुस गये ॥ २६ ॥

सा योधसंघैश्च रथैश्च भूमिः शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव समन्ततो द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७ ॥
वह रणभूमि बाणोंसे छिन्नभिन्न होकर गिरे हुए शूरवीर योद्धाओंके समूह, रथ, हाथी और घोडोंसे इस प्रकार सब ओरसे छिप गई, जैसे वर्षाकालमें बादलोंसे आकाश आच्छादित हो जाता है ॥ २७ ॥

शैनेयभीमार्जुनवाहिनीपाञ्चाल्याभिमन्यू सह काशिराज्ञा ।
अन्यांश्च वीरान्समरे प्रमृद्नाद्द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥
तुम्हारे पुत्रोंकी समृद्धि इच्छिनेवाले द्रोणाचार्य, सात्यकि, भीमसेन और अर्जुन, जिसमें सेनापति थे और जिसमें शिबिराजा, अभिमन्यु, काशिराज जैसे योद्धा थे, उस सेनाको और दूसरे अनेक शूरवीरोंको भी समरमें पीडित करने लगे ॥ २८ ॥

एतानि चान्यानि च कौरवेन्द्र कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा ।
प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन् ॥ २९ ॥
हे राजन् ! कौरवेन्द्र ! वह महात्मा द्रोणाचार्य युद्धमें ये तथा और भी बहुतसे पराक्रम पूर्वक कर्म करके जैसे प्रलय कालके सूर्य सम्पूर्ण लोकोको तपाके भस्म करता है, वैसे ही उन्होंने पाण्डवोंकी बहुतसी सेनाको अपने बाणोंसे भस्म करके, इस लोकसे स्वर्ग लोकमें गमन किया ॥ २९ ॥

एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः ।
पाण्डवानां रणे योधान्पार्षतेन निपातितः ॥ ३० ॥
इसप्रकार वह सुवर्ण भूषित रथवाले शूर महापराक्रमी द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके सैकडों सहस्रों योद्धाओंका युद्धमें वध करके अन्तमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये ॥ ३० ॥

अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
निहत्य पश्चाद्धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥ ३१ ॥
उन धैर्यवान् द्रोणाचार्यने युद्धमें पीछे न हटनेवाली शूरोंकी अक्षौहिणीसे भी अधिक शत्रु सेनाका वध करके, परम गति प्राप्त की ॥ ३१ ॥

पाण्डवैः सह पाञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः ।
हतो रुक्मरथो राजन्कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! सुवर्णभूषित रथमें स्थित अत्यन्त कठिन कार्योंको करके अन्तमें पाण्डवोंके सहित अशुभ तथा क्रूर कर्मोंवाले पाञ्चाल योद्धाओंके अनुष्ठानसे मारे गये ॥ ३२ ॥

ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत ।
सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! युद्धमें द्रोणाचार्यके मारे जानेपर सम्पूर्ण प्राणी और सेनाके हाहाकार और चिल्लाहटसे आकाश गूंज उठा ॥ ३३ ॥

द्यां धरां खं दिशो वारि प्रदिशश्चानुनादयन् ।
अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवन्महान् ॥ ३४ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंने " अहो ! धिक्कार है " ऐसा ही कहके द्युलोक, पृथ्वी, आकाश, दिशा-प्रदिशा और जलोंको भी अनुनादित करके महा घोर शब्द किया ॥ ३४ ॥

देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चास्य बान्धवाः ।
ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५ ॥

देवता, पितर और उनके पूर्व पुरुषों तथा बन्धुबान्धवोंने भरद्वाजपुत्र महारथी द्रोणाचार्यको उस रणभूमिमें मारा हुआ देखा ॥ ३५ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
तेन नादेन महता समकम्पत मेदिनी ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ २४३ ॥

पाण्डवलोग युद्धमें विजय पाकर सिंहनाद करने लगे । उन शूरवीरोंके महान् सिंहनादसे पृथ्वी कांपने लगी ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ २४३ ॥

: ८ :

धृतराष्ट्र उवाच

किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवसृञ्जयाः ।
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और अस्त्रविद्यामें निपुण द्रोणाचार्यने ऐसा कौनसा कर्म किया था, कि जिससे पाण्डव और सृञ्जय उनका वध करनेमें समर्थ हुए ॥ १ ॥

रथभङ्गो बभूवास्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः ।
प्रमत्तो वाभवद्द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् ॥ २ ॥

क्या युद्धके समय उनका रथ टूट गया था ? अथवा बाण चलानेके समय उनका धनुष कट गया था ? क्या वह युद्धमें असावधानताके कारणसे मारे गये ? ॥ २ ॥

कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम् ।
किरन्तमिषुसङ्घातान्रुक्मपुङ्खाननेकशः ॥ ३ ॥

हे तात ! द्रोणाचार्य शत्रुओंके लिये अत्यंत दुर्जय सुवर्णमय पंखवाले बाण समुदायोंकी बार बार वर्षा करते थे ॥ ३ ॥

क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धे च पारगम् ॥ ४ ॥

वे शीघ्र हस्त चलानेवाले, ब्राह्मणश्रेष्ठ, कृतास्त्र, विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले, दूर तक लक्ष्यको बेधनेवाले, संयमी और सम्पूर्ण अस्त्रयुद्धके जाननेवाले थे ॥ ४ ॥

पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद्दिष्ट्या स वरमच्युतम् ।
कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम् ॥ ५ ॥

वे युद्धमें दारुण कर्म करनेवाले, प्रयत्नशील और महारथी वीर थे । उन श्रेष्ठ और स्थिर बुद्धिवाले द्रोणाचार्यका पाञ्चाल राजके पुत्र धृष्टद्युम्नने दैववश होकर किस प्रकारसे बध किया ? ॥ ५ ॥

व्यक्तं दिष्टं हि बलवत्पौरुषादिति मे मतिः ।
यद्द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ६ ॥

जब महात्मा धृष्टद्युम्नके हाथसे शूरवीर द्रोणाचार्य मारे गये, तब मुझे यह निश्चय बोध हो रहा है, कि पुरुषार्थसे प्रारब्धही बलवान् है ॥ ६ ॥

अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् ।
तमिष्वस्त्रवराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥ ७ ॥

जिन वीर पुरुषमें—शस्त्र योजना, सन्धान, मोक्ष और संहार—यह चारों प्रकारकी अस्त्र विद्या विद्यमान थी, और जो धनुष बाणधारी तथा दूसरे भी बहुतसे अस्त्रधारी योद्धाओंके आचार्य थे, उनको तुम मेरे निकट युद्धमें मारा हुआ कहके वर्णन करते हो ॥ ७ ॥

श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
जातरूपपरिष्कारं नाद्य शोकमपानुदे ॥ ८ ॥

आज उन व्याघ्रचर्मसे युक्त सुवर्णभूषित रथमें स्थित सुवर्णमय कवच और वस्त्रोंसे शोभित द्रोणाचार्यको मारा हुआ सुनकर मैं अपने शोकका वेग नहीं रोक सकता हूं ॥ ८ ॥

न नूनं परदुःखेन कश्चिन्म्रियति सञ्जय ।
यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि न म्रिये ॥ ९ ॥

हे सञ्जय ! दूसरेके दुःखसे कोई भी नहीं मरता यह निश्चित है, क्योंकि मैं द्रोणाचार्यको मारा हुआ सुनकर भी जीवित हूं, मरता नहीं ॥ ९ ॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते ॥ १० ॥

मेरा सुदृढ हृदय निश्चय ही लोहेका बना हुआ है, नहीं तो द्रोणाचार्यका मारा जाना सुनकर मेरा हृदय सौ टुकडे होकर क्यों नहीं फट जाता है ? ॥ १० ॥

ब्राह्मे वेदे तथेष्वस्त्रे यमुपासन्गुणार्थिनः ।
ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हतः ॥ ११ ॥

गुणोंके चाहनेवाले विद्यार्थी, ब्राह्मण और राजपुत्रलोग ब्राह्म, वेद और अस्त्रोंके निमित्त जिनकी सदा उपासना किया करते थे, वे किस प्रकारसे मृत्युके मुखमें पतित हुए ? ॥ ११ ॥

शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ।
पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम् ॥ १२ ॥

समुद्रका सूखना, सुमेरु पर्वतका चलना, और आकाशसे सूर्यके गिरनेके समान द्रोणाचार्यका वध मुझसे नहीं सहा जाता है ॥ १२ ॥

दृप्तानां प्रतिषेद्धासीद्धार्मिकानां च रक्षिता ।
योऽत्याक्षीत्कृपणस्यार्थे प्राणानपि परंतपः ॥ १३ ॥

जो शत्रु नाशन द्रोणाचार्य उन्मत्त लोगोंके नाश करनेवाले और धर्मात्माओंके रक्षक थे; उन्होंने मुझ क्षुद्रके लिये अपने प्राणोंका भी त्याग किया ॥ १३ ॥

मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ।
बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ॥ १४ ॥

जिनके पराक्रमके आसरेसे मेरे नीचबुद्धि पुत्रोंने युद्धमें विजयकी आशा की थी, जो बुद्धिमें बृहस्पति और नीतिमें शुक्राचार्यके समान थे, वे द्रोणाचार्य युद्धमें किस प्रकारसे मारे गये ? ॥ १४ ॥

ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाः सैन्धवा हेममालिनः ।
रथे वातजवा युक्ताः सर्वशब्दातिगा रणे ॥ १५ ॥

उनके रथमें जुते हुए सुवर्णभूषित, वायुके समान गमन करनेवाले, सिन्धुदेशीय लाल रङ्गके उत्तम और बडे घोडे समरमें सब प्रकारके शब्दोंको पार करके बचा ले जाते थे ॥ १५ ॥

बलिनो घोषिणो दान्ताः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।
दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्न विह्वलाः ॥ १६ ॥

जो बलवान्, जोरसे हिनहिनानेवाले, अच्छी तरह वहन करनेवाले थे; संग्राममें दृढतासे डटे रहते और कभी भी आकुल नहीं होते थे ॥ १६ ॥

करिणां बृंहतां युद्धे शङ्खदुन्दुभिनिस्वनम् ।
ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणां च सहिष्णवः ॥ १७ ॥

युद्धमें वे हाथियोंकी चिङ्घाड, शंख नगाडोंके शब्द और धनुषोंकी टङ्कारके साथ होनेवाली बाणोंकी वर्षा और दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंको भी सह सकते थे; ॥ १७ ॥

आशंसन्तः पराञ्जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ।
हयाः प्रजविताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः ॥ १८ ॥

जो शत्रुओंको जीतनेकी आशा करनेवाले, श्वास और क्लेश जीते हुए, द्रोणाचार्यके रथको अत्यंत शीघ्र गतिसे चलानेवाले वे घोडे थे ॥ १८ ॥

ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहिताः ।
कथं नाभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १९ ॥

तात ! नरवीर द्रोणाचार्यके सुवर्णभूषित रथमें जुते हुए और उन्हींकी सवारीमें काम आनेवाले वे घोडे पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनासे किस कारणसे पार न हो सके ? ॥ १९ ॥

जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ।
भारद्वाजः किमकरोच्छूरः संक्रन्दनो युधि ॥ २० ॥

जो युद्धमें शत्रु सेनाके शूरवीरोंको रुलाते थे, ऐसे शूर द्रोणाचार्यने सुवर्णयुक्त शोभायमान उत्तम रथपर चढके कौनसा कार्य किया था ? ॥ २० ॥

विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्भृतः ।
स सत्यसन्धो बलवान्द्रोणः किमकरोद्युधि ॥ २१ ॥

जिनकी विद्याको ग्रहण करके सब जगत्के धनुर्धर अपना जीवन चलाते हैं, उन सत्य पराक्रमी बलवान् द्रोणाचार्यने युद्धमें कौनसा कार्य किया था ? ॥ २१ ॥

दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् ।
के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ॥ २२ ॥

स्वर्गमें जैसे इन्द्र श्रेष्ठ हैं, वैसे ही इस लोकमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें महान्, महा भयङ्कर कर्मोंको करनेवाले द्रोणाचार्यका सामना युद्धमें कौनसे रथियोंने किया ? ॥ २२ ॥

ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्रद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं सेनां क्षिण्वन्तमव्ययम् ॥ २३ ॥

उस महाभयङ्कर युद्धमें सुवर्णभूषित रथमें बैठे, दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनेवाले और सेनाओंका नित्य संहार करनेवाले द्रोणाचार्यको देखकर पाण्डव लोग भागते थे ॥ २३ ॥

उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ।
पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ॥ २४ ॥

फिर भाईयोंके सहित धर्मराज युधिष्ठिरने अपनी सब सेना साथ लेकर धृष्टद्युम्न रूपी दोरीसे द्रोणाचार्यको सब ओरसे घेर लिया क्या ? ॥ २४ ॥

नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः ।
ततो द्रोणं समारोहत्पार्षतः पापकर्मकृत् ॥ २५ ॥

मुझे निश्चयही बोध होता है कि पहिले अर्जुनने अन्य रथी योद्धाओंको अपने सीधे जानेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके मार्गमें ही रोक रक्खा, तब पीछेसे पापकर्मा धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया होगा ! ॥ २५ ॥

न ह्यन्यं परिपश्यामि वधे कञ्चन शुष्मिणः ।
धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्पाल्यमानात्किरीटिना ॥ २६ ॥

किरीटधारी अर्जुनसे रक्षित भयंकर धृष्टद्युम्नके अतिरिक्त ऐसा कोई भी दूसरा योद्धा मैं नहीं देखता हूं, कि जो तेजस्वी द्रोणाचार्यका वध कर सके ॥ २६ ॥

तैर्वृतः सर्वतः शूरैः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ।
केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः ॥ २७ ॥

केकय, चेदि, कारूष, मत्स्य देशीय शूर सैनिक और अन्य देशीय बहुतसे राजाओंसे सब ओरसे घिरकर पाञ्चाल योद्धाओंमें अधम धृष्टद्युम्नने ॥ २७ ॥

व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ।
कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम ॥ २८ ॥

जिस प्रकारसे चींटियां सर्पको व्याकुल कर देती हैं, वैसे ही आचार्यको व्याकुल कर दिया होगा, और कठिन कर्मोंमें लगे हुए द्रोणाचार्यका वध किया होगा, ऐसी ही मेरी धारणा है ॥ २८ ॥

योऽधीत्य चतुरो वेदान्सर्वानाख्यानपञ्चमान् ।
ब्राह्मणानां प्रतिष्ठासीत्स्रोतसामिव सागरः ।
स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान् ॥ २९ ॥

जिन्होंने छः अङ्गों तथा पञ्चम वेद स्थानीय इतिहास–पुराणों सहित चारों बेदोंको पढा था, जो नदियोंके आश्रय स्थान समुद्रकी भांति ब्राह्मणोंके आश्रय स्थान थे, वे बूढे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य किस प्रकार शस्त्रोंसे मारे गये ? ॥ २९ ॥

अमर्षणो मर्षितवान्क्लिश्यमानः सदा मया ।
अनर्हमाणः कौन्तेयः कर्मणस्तस्य तत्फलम् ॥ ३० ॥

अमर्षशील कष्ट भोगनेके अयोग्य कुन्तीकुमारको मैंने सदैव क्लेशही दिया है, परन्तु मेरे इस कर्मको द्रोणाचार्यने सहन किया था । उनके उसी कर्मका यह फल दीख पडता है ! ॥ ३० ॥

यस्य कर्मानुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ।
स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् ॥ ३१ ॥

पृथ्वीके सम्पूर्ण धनुर्धारी योद्धा जिन द्रोणाचार्यसे शस्त्रविद्याका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करते हैं, उन सत्यवादी और सुकृती द्रोणाचार्यका पाण्डवोंने राज्यकी अभिलाषासे किस प्रकारसे वध किया ? ॥ ३१ ॥

दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ।
स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः ॥ ३२ ॥

जैसे स्वर्गलोकमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, वैसे इस लोकमें वे सबसे श्रेष्ठ थे, उन महासत्त्ववान्, महा-बलवान् द्रोणाचार्यको कुन्ती पुत्रोंने, जैसे छोटी मछलियां मिलकर तिमि नामक बडे मत्स्यको मार डालतीं हैं, वैसे ही मार डाला, यह कैसे शक्य हुआ ? ॥ ३२ ॥

क्षिप्रहस्तश्च बलवान्दृढधन्वारिमर्दनः ।
न यस्य जिविताकाङ्क्षी विषयं प्राप्य जीवति ॥ ३३ ॥

वे शीघ्रतासे शस्त्रोंको चलानेवाले, बलवान्, दृढ धनुर्धारी और शत्रुओंका नाश करनेवाले थे, जो कोई पुरुष विजयकी इच्छासे द्रोणाचार्यके निकटमें उपस्थित होता था, वह उनके बाणोंका लक्ष्य बन जानेपर जीता हुआ फिर अपने स्थानपर नहीं जा सकता था ॥ ३३ ॥

यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ।
ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुर्भृताम् ॥ ३४ ॥

इसके अतिरिक्त वेद पढनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंके वेद-स्वर और धनुर्वेद जाननेवाले राजा-ओंके धनुष्टङ्कारका शब्द, इन दोनों शब्दोंने जीते-जी द्रोणाचार्यका कभी भी सङ्ग नहीं छोडा था; ॥ ३४ ॥

नाहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।
कथं संजय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३५ ॥

उस महावीर अत्यन्त पराक्रमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ लज्जाशील अपराजित सिंह और हाथीके समान पराक्रमी द्रोणाचार्यका वध मुझसे नहीं सहा जाता है ॥ ३५ ॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः।
पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे ॥ ३६ ॥

हे संजय! जिन दुर्धर्ष वीर द्रोणाचार्यके बल और यशकी कोई कभी निन्दा नहीं कर सकता था, उन महात्माके रथके दाहिने और बायें चक्रकी कौन कौनसे वीर रक्षा करते थे? कौन समरमें युद्ध करनेवाले महावीर द्रोणाचार्यके आगे चले थे? ॥ ३६ ॥

के च तत्र तनुं त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन्।
द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम् ॥ ३७ ॥

उस समयमें किन वीर योद्धाओंने शत्रुओंका सामना करते हुए शरीर त्याग कर मृत्युका स्वीकार किया? किन वीरोंने युद्धमें द्रोणाचार्यको अत्यन्त आनन्द और धैर्य दिया? ॥ ३७ ॥

एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय।
पराक्रमेद्यथाशक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ ३८ ॥

हे सञ्जय! श्रेष्ठ पुरुष महाघोर विपदमें पड कर भी शक्तिके अनुसार पराक्रम करते हैं, यह शास्त्रोंकी विधि है; यह भी द्रोणाचार्यमें सुप्रतिष्ठित थी ॥ ३८ ॥

मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवर्त्यताम्।
भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वा परिप्रक्ष्यामि सञ्जय ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ २८२ ॥

हे तात! अब मेरा मन मुग्ध हो रहा है, इस समय सब कथा यहां तक ही रहने दो। संजय! मैं फिर सावधान होकर तुमसे पूर्ण रीतिसे प्रश्न करूंगा ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ २८२ ॥

: ९ :

वैशम्पायन उवाच

एवं पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनार्दितो भृशम्।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत्क्षितौ ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजा जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र सूतपुत्र सञ्जयसे ऐसा कहके, अपने मनके दुःखसे अत्यन्त ही कातर और पुत्रोंकी बिजयकी आशासे निराश होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १ ॥

तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारकाः ।
जलेनात्यर्थशीतेन वीजन्तः पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥

उनको मूर्च्छित होके पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर परिचारिकाएं उनके शरीरपर उत्तम सुगन्धयुक्त और शीतल जल छिडकके पंखोंसे वायु करने लगीं ॥ २ ॥

पतितं चैनमाज्ञाय समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३ ॥

भरतकुलकी स्त्रियां राजा धृतराष्ट्रको गिरा देखकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गईं और अपने कोमल करोंसे उनके शरीरको स्पर्श करने लगीं ॥ ३ ॥

उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठयो वराङ्गनाः ॥ ४ ॥

उन उत्तम अङ्गनाओंने धीरे धीरे राजा धृतराष्ट्रको धरतीसे उठाकर आसनपर बैठा दिया । उस समय उनकी आंखोंसें आंसू वह रहे थे और कण्ठ शोकसे रुद्ध हो गये थे ॥ ४ ॥

आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाभिपरिप्लुतः ।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥

आसनपर स्थित होनेपर भी राजा धृतराष्ट्र मूर्च्छित और चेष्टारहित रहे थे, तब सम्पूर्ण स्त्रियां उनके समीपमें सब ओरसे व्यजनोंसे वायु करने लगीं ॥ ५ ॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ६ ॥

अनन्तर राजा धृतराष्ट्र धीरे धीरे सावधान होकर कांपते हुए शरीरसे फिर सञ्जयसे यथावत् वृत्तान्त पूछने लगे ॥ ६ ॥

यत्तदुद्यन्निवादित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः ।
आयादजातशत्रुर्वै कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७ ॥

जैसे उदित होते हुए सूर्य अपने तेजसे अन्धकार दूर कर देते हैं, उनके समान अजात शत्रु राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ७ ॥

प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
आसक्तमनसं दीप्तं प्रतिद्विरदघातिनम् ।
वाशितासंगमे यद्वदजय्यं प्रतियूथपैः ॥ ८ ॥

जो मदचूते हुए, क्रुद्ध, बलवान् और आसक्त चित्त हो ऋतुमती हथिनीके साथ सङ्गमके समय आये हुए दूसरे हाथीपर आक्रमण करनेवाले और हाथियोंके झुण्डोंके नायकके लिये अजेय मतवाले हाथीके समान वेगवान् और प्रोत्साहित हैं ॥ ८ ॥

अति चान्यान्रणे योधान्वीरः पुरुषसत्तमः।
यो ह्येको हि महाबाहुर्निर्दहेद्घोरचक्षुषा।
कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान्सत्यसङ्गरः ॥ ९ ॥

जिन पुरुषश्रेष्ठ वीरने युद्धमें अनेक योद्धाओंका वध किया है, जो महाबाहु, धैर्यशाली और सत्यवादी हैं, जो अपनी महा भयानक दृष्टिसे देखकर अकेले ही दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेना भस्म कर सकते हैं; ॥ ९ ॥

चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासवररक्षितम्।
दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ॥ १० ॥

जो युधिष्ठिर अपने दृष्टिपातसे ही शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हैं; जो विजयकी इच्छा करनेवाले, धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठसे रक्षित, जितेन्द्रिय और लोकमें आदरणीय हैं, उन युधिष्ठिरको किन किन शूर योद्धाओंने युद्धसे निवारण किया था ॥ १० ॥

के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासवरमच्युतम्।
समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥ ११ ॥

मेरी सेनाके किन किन योद्धाओंने उन सत्य पराक्रमी अच्युत पुरुषसिंह धनुर्धारी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरपर रणभूमिमें धावा किया था ? ॥ ११ ॥

तरसैवाभिपत्याथ यो वै द्रोणमुपाद्रवत्।
तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ १२ ॥

जिन्होंने अत्यन्त वेगके सहित रणभूमिमें आकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, उन भीमको आते देखकर किन शूरवीरोंने उनको रोका था ? ॥ १२ ॥

यदायाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान्।
पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनिं सृजन् ॥ १३ ॥

जो बादलके समान वर्णवाले, अत्यन्त पराक्रमी रथी अर्जुन बिजलीकी उत्पत्ति करते हुए बादलोंके समान भयंकर वज्रास्त्रको छोडते हैं ॥ १३ ॥

ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणि मघवानिव।
इषुसंबाधमाकाशं कुर्वन्कपिवरध्वजः।
अवस्फूर्जन्दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥ १४ ॥

जो जलधारा वर्षानेवाले इन्द्रके समान बाणोंकी वृष्टि करते हैं और जो कपिश्रेष्ठ चिन्हांकित ध्वजावाले अर्जुन अपने बाणोंसे संपूर्ण आकाशको आच्छादित कर देते हैं, जो धनुषकी टंकार और रथके घरघराहटसे सब दिशाओंको पूरित कर देते हैं, वे मेघके समान दीखते हैं ॥ १४ ॥

चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
रथनेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥ १५ ॥

जो धनुषरूपी बिजलीके प्रकाशसे युक्त हैं, रथियोंकी सेना बादलोंके समूहोंके समान दीखती है, रथके चक्रोंकी आवाज मेघ गर्जनाके समान लगती है। उनके बाणोंकी आवाज वर्षाके शब्दके समान मनोहर होती है ॥ १५ ॥

रोषनिर्जितजीमूतो मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ।
मर्मातिगो बाणधारस्तुमुलः शोणितोदकः ॥ १६ ॥

रोषरूपी मेघ उन्हें आगे बढाता है तथा मनके अभिप्रायके तुल्य शीघ्रगामी, मर्मभेदी, बाणोंके ग्रहण करनेवाले, महा भयानक मूर्तिवाले तथा रुधिररूपी जल बहानेवाले अर्जुनने ॥ १६ ॥

संप्लावयन्महीं सर्वां मानवैरास्तरंस्तदा ।
गदानिष्टनितो रौद्रो दुर्योधनकृतोद्यमः ॥ १७ ॥

उस समय मरे हुए वीर पुरुषोंके शरीरसे संग्रामभूमिको परिपूर्ण किया, महा भयंकर रौद्र-मूर्तिसे दुर्योधनके वधके लिये उद्युक्त हो रणभूमिमें आगमन किया था; ॥ १७ ॥

युद्धेऽभ्यषिञ्चद्विजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
गाण्डीवं धारयन्धीमान्कीदृशं वो मनस्तदा ॥ १८ ॥

और बुद्धिमान् अर्जुनने जिस समय निज धनुषको ग्रहण करके गिद्ध पङ्खसे युक्त, शिलापर घिसे हुए चोखे बाणोंसे दुर्योधनके अनुयायी राजाओंको पीडित किया था; उस समयमें तुम लोगोंका चित्त कैसा हुआ था ? ॥ १८ ॥

कच्चिद्गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यत वै बलम् ।
यद्वः स भैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमभ्यगात् ॥ १९ ॥

अर्जुन जब महा भयंकर शब्द करते हुए तुम लोगोंके निकट आये थे, तब गाण्डीव धनुषके अत्यन्त घोर शब्दसे ही तुम्हारी सेनाका विनाश तो नहीं हुआ ? ॥ १९ ॥

कच्चिन्नापानुदद्द्रोणादिषुभिर्वो धनञ्जयः ।
वातो मेघानिवाविध्यन्प्रवान्शरवनानिलः ।
को हि गाण्डीवधन्वानं नरः सोढुं रणेऽर्हति ॥ २० ॥

जैसे वायु अपने प्रबल वेगसे बादलोंको तितर-बितर कर देती है, वैसे ही अर्जुनने भी तो अपने वेगपूर्वक चलाये हुए बाणरूपी वायुसे द्रोणाचार्यके और तुम लोगोंके प्राण तो नष्ट नहीं किये ? गाण्डीव धनुष ग्रहण करनेवाले अर्जुनका वेग कौन पुरुष युद्धमें सह सकता है ? ॥ २० ॥

यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद्भयम् ।
के तत्र नाजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ॥ २१ ॥

जब मेरी सेनाएं कम्पित हो गई और वीरोंके मनमें भय उत्पन्न हुआ, ऐसे अवसरमें किन किन वीरोंने द्रोणाचार्यका सङ्ग नहीं छोडा था ? और कौन कौनसे क्षुद्र पुरुष उस समय भयभीत होकर उन्हें छोडके रणभूमिसे भागे थे ? ॥ २१ ॥

के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ।
अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनंजयम् ॥ २२ ॥

कौन कौन शूरवीर योद्धा उस समयमें संग्राममें देवताओं और राक्षसोंको जीतनेवाले अर्जुनके सङ्ग युद्ध करके वहां अपने शरीरोंका त्याग करके मृत्यु मुखमें पतित हुए थे ? ॥ २२ ॥

न च वेगं सिताश्वस्य विशक्ष्यन्तीह मामकाः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिस्वनम् ॥ २३ ॥

मेरी सेनाके वीर उन श्वेतवाहन अर्जुनके वेग और वर्षाकालके मेघगर्जनके समान गाण्डीव-धनुषके शब्दको नहीं सह सकते हैं ॥ २३ ॥

विष्वक्सेनो यस्य यन्ता योद्धा चैव धनंजयः ।
अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण जिसके सारथि और अर्जुन जहांपर योद्धा हैं; मैं मानता हूं, कि वह रथ देवता और असुरोंसे भी अजेय है ॥ २४ ॥

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
मेधावी निपुणो धीमान्युधि सत्यपराक्रमः ॥ २५ ॥

जिस समयमें सुकुमार, तरुण, शूर, देखनेयोग्य (सुंदर), तेजस्वी, शस्त्रविद्यामें निपुण, बुद्धिमान् और सत्यपराक्रमी पाण्डुपुत्र ॥ २५ ॥

आरावं विपुलं कुर्वन्व्यथयन्सर्वकौरवान् ।
यदायान्नकुलो धीमान्के शूराः पर्यवारयन् ॥ २६ ॥

नकुलने रणभूमिमें महा घोर शब्द करके सब कौरव सैनिकोंको पीडित करते हुए, द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया था, उस समय किन किन शूरवीरोंने उसे युद्धसे निवारण किया था ? ॥ २६ ॥

आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाभ्ययात् ।
शत्रूणां कदनं कुर्वञ्जेतासौ दुर्जयो युधि ॥ २७ ॥
आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ २८ ॥

जब विषधर सर्पके समान क्रुद्ध दुर्जय विजयी सहदेव शत्रुओंका संहार करता हुआ रणभूमिमें आक्रमणके लिये उपस्थित हुआ था, तब उस श्रेष्ठ पुरुषोंके व्रतमें स्थित, अमोघ बाणधारी, लज्जाशील और अपराजित सहदेवको द्रोणाचार्यके सामने जाते देख किन वीरोंने रोका था ? ॥ २७ २८ ॥

यः स सौवीरराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
आदत्त महिषीं भोज्यां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ २९ ॥

जिन्होंने सौवीर राजाकी महासेनाको मथ करके उनकी सर्वाङ्गसुंदरी कमनीय भोजकन्याको रानी बनानेके लिये ग्रहण किया था ॥ २९ ॥

सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे ॥ ३० ॥

उन पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिमें सत्य, धैर्य, शौर्य और शुद्ध ब्रह्मचर्य आदि गुण नित्य स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥

बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥ ३१ ॥

जो बलवान्, सत्य कर्मोंको करनेवाले, उदार, अपराजित और युद्धमें श्रीकृष्णके समान पराक्रमी और अवस्थामें छोटे हैं ॥ ३१ ॥

युक्तं धनंजयप्रेष्ये शूरमाचार्यकर्मणि ।
पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३२ ॥

जो अर्जुनके शिष्य और आचार्यके कर्मोंमें शूर हैं; अस्त्रशिक्षामें अर्जुनके समान हैं; उन सात्यकिको द्रोणाचार्यकी ओर युद्धके निमित्त आते देखकर किसने निवारण किया था ? ॥ ३२ ॥

वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥ ३३ ॥

वे वृष्णिवंशीय श्रेष्ठ शूर वीर सात्यकि सब धनुर्धारियोंमें बढकर हैं; वे अस्त्रविद्या, यश और पराक्रममें परशुरामके समान हैं ॥ ३३ ॥

सत्यं धृतिर्दमः शौर्यं ब्रह्मचर्यमनुत्तमम् ।
सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३४ ॥

जैसे श्रीकृष्णमें तीनों लोक स्थित हैं, उनके समान सात्वतवंशी सात्यकिमें सत्य, धृति, दम, वीरता और उत्तम ब्रह्मचर्य स्थित हैं ॥ ३४ ॥

तमेवंगुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ।
समासाद्य महेष्वासं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ३५ ॥

इन सब गुणोंसे पूर्ण उन देवताओंसे भी दुर्निवार्य महाधनुर्धारी सात्यकिका उनका सामना करके किन शूर वीरोंने युद्धसे निवारण किया था ? ॥ ३५ ॥

पाञ्चालेषूत्तमं शूरमुत्तमाभिजनप्रियम् ।
नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥ ३६ ॥

पाञ्चाल वीरोंमें श्रेष्ठ, जिसको महाकुलोत्पन्न पुरुष प्रिय हैं, नित्य उत्तम कर्म करनेवाले, युद्धमें उत्तम तेज प्रकट करनेवाले, ॥ ३६ ॥

युक्तं धनंजयहिते ममानर्थाय चोत्तमम् ।
यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ३७ ॥

अर्जुनके हितमें तत्पर और मेरे अनर्थमें उद्यत, यम, कुबेर, आदित्य, महेन्द्र और वरुणकी उपमाके योग्य ॥ ३७ ॥

महारथसमाख्यातं द्रोणायोद्यन्तमाहवे ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३८ ॥

तुमुल युद्धमें प्राण त्यागनेमें भी तैयार होकर प्रख्यात महारथी धृष्टद्युम्न जब द्रोणाचार्यकी ओर उनसे सामना करनेके लिये दौडे, तब किन शूर लोगोंने उन्हें रोका ? ॥ ३८ ॥

एकोऽपसृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
धृष्टकेतुं तमायान्तं द्रोणात्कः समवारयत् ॥ ३९ ॥

जिसने अपने सब बन्धु बान्धवोंको त्यागके अकेले ही चेदिदेशसे आकर पाण्डवोंका आसरा ग्रहण किया है, उस धृष्टकेतुको द्रोणाचार्यकी ओर दौडते देख किसने उसको युद्धभूमिमें रोका था ? ॥ ३९ ॥

योऽवधीत्केतुमाञ्शूरो राजपुत्रं सुदर्शनम् ।
अपरान्तगिरिद्वारे कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ४० ॥

जिस शूरवीरने अपरान्त पर्वतके समीप सुंदर राजपुत्रका भी वध किया था, उस केतुमान्‌को द्रोणाचार्यकी ओर आते देख किसने उसको द्रोणाचार्यसे निवृत्त किया ? ॥ ४० ॥

स्त्रीपूर्वो यो नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान्।
शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥ ४१ ॥

जो नरश्रेष्ठ शिखण्डी पहले स्त्री होनेके कारण स्त्रीपुरुषोंके गुणावगुणोंको जानते हैं, जिसके चित्तमें युद्धके समय कभी म्लानता नहीं आती ॥ ४१ ॥

देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ४२ ॥

जो समरमें महात्मा देवव्रत भीष्मके मृत्युका कारण हुआ है, ऐसे याज्ञसेनि शिखण्डीको द्रोणके सम्मुख आनेसे किन वीरोंने रोका था ? ॥ ४२ ॥

यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात्।
यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च नित्यदा ॥ ४३ ॥

जिस वीरमें अर्जुनसे भी अधिक सब गुण हैं, और जिसमें सम्पूर्ण अस्त्रविद्या, सत्यव्रत और ब्रह्मचर्य नित्य स्थिर रहते हैं ॥ ४३ ॥

वासुदेवसमं वीर्ये धनञ्जयसमं बले।
तेजसादित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मतौ ॥ ४४ ॥

जो पराक्रममें वासुदेव, बलमें अर्जुन, तेजमें सूर्य और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हैं ॥ ४४ ॥

अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवान्तकम्।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ४५ ॥

उस महात्मा अभिमन्युको मुंह पसरे मृत्युके समान द्रोणाचार्यकी ओर दौडते देख, किन शूरवीरोंने युद्धभूमिमें उसे रोका था ? ॥ ४५ ॥

तरुणस्तरुणप्रख्यः सौभद्रः परवीरहा।
यदाभ्याद्रवत द्रोणं तदासीद्वो मनः कथम् ॥ ४६ ॥

युवा अवस्था तथा सूर्यके समान विख्यात शत्रु वीरनाशन सुभद्राकुमार अभिमन्युने जिस समय द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, उस समयमें तुम लोगोंका मन कैसा हो रहा था ? ॥ ४६ ॥

द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः।
यद्द्रोणमाद्रवन्संख्ये के वीरास्तानवारयन् ॥ ४७ ॥

जैसे बडी बडी नदियां समुद्रकी ओर प्रबल वेगसे चलती हैं, वैसे ही जब पुरुषव्याघ्र द्रौपदीके पांचों पुत्र द्रोणाचार्यकी ओर बढे थे, उस समयमें किन किन शूरवीरोंने उन्हें रणभूमिमें रोका था ? ॥ ४७ ॥

ये ते द्वादशवर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः ।
अस्त्रार्थमवसन्भीष्मे बिभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

जिन बालकोंने बालक्रीडा छोडके बारह वर्षतक उत्तम ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए भीष्मके निकट रहकर अस्त्रशिक्षा ग्रहण की थी ॥ ४८ ॥

क्षत्रंजयः क्षत्रदेवः क्षत्रधर्मा च मानिनः ।
धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान्द्रोणादवारयन् ॥ ४९ ॥

क्षत्रञ्जय, क्षत्रदेव और मानी क्षत्रधर्मा, इन धृष्टद्युम्नके तीनों शूरवीर पुत्रोंको द्रोणाचार्यके सम्मुख आते देख किन शूरवीरोंने निवारण किया था ? ॥ ४९ ॥

शताद्विशिष्टं यं युद्धे समपश्यन्त वृष्णयः ।
चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५० ॥

वृष्णिवंशी लोग जिसको सौ योद्धाओंसे भी अधिक बलवान् समझते हैं, उस महाधनुर्धारी चेकितानको द्रोणाचार्यके सम्मुख आनेसे किसने निवारण किया था ? ॥ ५० ॥

वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद्युधि ।
अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५१ ॥

जिसने युद्धमें कलिङ्ग राजकी कन्याका हरण किया था, उस वृद्धक्षेमपुत्र बलवान् अनाधृष्टिने जब द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, तब उसको किसने युद्धसे रोका था ? ॥ ५१ ॥

भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः ।
इन्द्रगोपकवर्णाश्च रक्तवर्मायुधध्वजाः ॥ ५२ ॥

केकयदेशके धर्मात्मा, सत्य पराक्रमी, पांच वीर भाई रक्तवर्णके कवच, अस्त्रशस्त्र और लाल रङ्गकी ध्वजाओंसे युक्त हैं, और उनके वर्ण भी इन्द्रगोपके समान लाल रंगके ही है ॥५२॥

मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः ।
तान्द्रोणं हन्तुमायातान्के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५३ ॥

वे पाण्डवोंकी मातृ–स्वसाके पुत्र पाण्डवोंकी बिजयके लिये जब द्रोणाचार्यको मारनेके लिये उनकी ओर दौडे थे, तब उन्हें उस समयमें किन वीरोंने रोका था ? ॥ ५३ ॥

यं योधयन्तो राजानो नाजयन्वारणावते ।
षण्मासानभिसंरब्धा जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥ ५४ ॥

वारणावत नगरमें सब राजालोग मार डालनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर छः महीनोंतक युद्ध करके भी जिस योद्धाओंमें श्रेष्ठको पराजित नहीं कर सके ॥ ५४ ॥

धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसंधं महाबलम् ।
द्रोणात्कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं प्रत्यवारयत् ॥ ५५ ॥

उन धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, शूर, सत्यवादी, महाबलवान् पुरुषव्याघ्र युयुत्सुको द्रोणाचार्यके संमुख आते देखकर, किस योद्धाने उनका निवारण किया था ? ॥ ५५ ॥

यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् ।
समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनापहरद्रथात् ॥ ५६ ॥

जिन्होंने वाराणसीमें काशिराजके महारथी पुत्रको जो स्त्रियोंके प्रति आसक्त था, समरमें भल्लसे रथपरसे निपातित किया था ॥ ५६ ॥

धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥ ५७ ॥

जो महारथी धृष्टद्युम्न कुन्तीकुमारोंकी मन्त्रणाको सुरक्षित करनेवाला और दुर्योधनका अनर्थ करनेके कार्यमें जुडा हुआ है, तथा द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त जिसकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५७ ॥

निर्दहन्तं रणे योधान्दारयन्तं च सर्वशः ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५८ ॥

वह जब युद्धभूमिमें योद्धाओंको बाणोंसे जलाता और सब ओरसे कुरुसेनाको तितर बितर कर देता हुआ, द्रोणाचार्यके संमुख आता देख, किन शूरवीरोंने उसे रोका था? ॥ ५८ ॥

उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्यास्त्रवित्तमम् ।
शैखण्डिनं क्षत्रदेवं के तं द्रोणादवारयन् ॥ ५९ ॥

किन योद्धाओंने द्रुपदकी गोदमें बढे हुए, अस्त्रविद्यामें प्रवीण, शिखण्डीके पुत्र क्षत्रदेवको द्रोणाचार्यके संमुख आते देखके निवारण किया? ॥ ५९ ॥

य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत्समवेष्टयत् ।
महता रथवंशेन मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६० ॥

जिन्होंने अपने रथके बडे वंशसे इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमडेके समान लपेट दिया था, जो शत्रुओंके मुख्य वीरोंका नाश करनेवाले और महारथी थे ॥ ६० ॥

दशाश्वमेधानाजह्रे स्वन्नपानाप्तदक्षिणान् ।
निरर्गलान्सर्वमेधान्पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥ ६१ ॥

जिन्होंने प्रजाओंको अपने पुत्रके समान पालन करते हुए अच्छे अन्न, पान और पूर्ण दक्षिणा-से युक्त दस अश्वमेधोंको निर्विघ्नतासे समाप्त किया था और सर्वमेध यज्ञ किये थे ॥ ६१ ॥

पिबन्त्यो दक्षिणां यस्य गङ्गास्रोतः समापिबन् ।
तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥ ६२ ॥

जिन वीर उशीनर पुत्रने गङ्गाके स्रोतके समान दक्षिणाके रूपमें असंख्य गौओंका यज्ञमें दान किया था ॥ ६२ ॥

न पूर्वे नापरे चक्रुरिदं केचन मानवाः।
इति संचुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६३ ॥

जिनके कठिन यज्ञ कर्मका अनुष्ठान समाप्त होनेपर देवताओंने पुकारकर कहा था, कि ' पहिले मनुष्योंने ऐसा यज्ञकर्म नहीं किया था और न बादमें भी ॥ ६३ ॥

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्नुचारिषु।
जातं चापि जनिष्यं वा द्वितीयं वापि संप्रति ॥ ६४ ॥
अन्यमौशीनराच्छैब्यादुधुरो वोढारमित्युत।
गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥ ६५ ॥

स्थावर–जंगम तीनों लोकके बीच इस उशीनरके पुत्र शिवि राजाके समान यज्ञ कर्मको पूर्ण करनेवाला दूसरा कोई भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ और न आगे उत्पन्न होगा, ' ऐसा हम देखते हैं, जो इस भारको वहन करनेवाला हो। इस मर्त्यलोकके निवासी मनुष्य जिनके समान श्रेष्ठ गति नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ६४–६५ ॥

तस्य नप्तारमायान्तं शैब्यं कः समवारयत्।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६६ ॥

उन्हीं उशीनरका पौत्र शैब्य सावधान हो, मुंह फैलाये हुए कालके समान द्रोणाचार्यकी ओर आ रहा था, तब किसने उसका निवारण किया था? ॥ ६६ ॥

विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्यामित्रघातिनः।
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ६७ ॥

जब शत्रुओंका वध करनेवाली मत्स्यराज विराटकी रथसेना– जो द्रोणाचार्यको मार डालनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडी थी, तब किन वीरोंने उस सेनाको युद्धसे निवारण किया था? ॥ ६७ ॥

सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः।
मायावी राक्षसो घोरो यस्मान्मम महद्भयम् ॥ ६८ ॥

हे वीर! जो भीमसेनसे तत्काल उत्पन्न हुआ और जिससे मुझे बहुत भय लगता है, वह भीमसेनका पुत्र महाबली, पराक्रमी और मायावी राक्षस वीर ॥ ६८ ॥

पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम्।
घटोत्कचं महाबाहुं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ६९ ॥

पाण्डवोंका विजय चाहनेवाला और मेरे पुत्रोंको कण्टकरूपी खटकनेवाला बडे शरीरवाला घटोत्कचको द्रोणाचार्यके संमुख आता देख, किस योद्धाने निवारण किया? ॥ ६९ ॥

एते चान्ये च बहवो येषामर्थाय संजय।
त्यक्तारः संयुगे प्राणान्किं तेषामजितं युधि ॥ ७० ॥

हे सञ्जय! ये सब और इनसे अतिरिक्त और भी अनेक वीर योद्धा जिनके निमित्त युद्धमें प्राण पर्यन्त त्यागनेमें उद्यत हो रहे हैं, उनसे न जीतने योग्य ऐसा क्या हुआ है? ॥ ७० ॥

येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७१ ॥

पुरुषसिंह शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले, श्रीकृष्ण रणभूमिमें जिन पाण्डवोंके आश्रय रहे हैं और जिनके हितकी श्रीकृष्ण अभिलाषा करते हैं, उन कुन्तीपुत्रोंकी पराजय कैसी होगी? ॥ ७१ ॥

लोकानां गुरुरत्यन्तं लोकनाथः सनातनः।
नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मवान्प्रभुः ॥ ७२ ॥

श्रीकृष्ण सब जगत्के परम गुरु हैं, सब लोकोंके स्वामी, सनातन पुरुष हैं; समरमें सबकी रक्षा करनेवाले, दिव्यभावसे युक्त, सामर्थ्यशाली नारायण हैं ॥ ७२ ॥

यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ३५५ ॥

जिनके सम्पूर्ण दिव्य-कर्मोंको मनीषी पुरुष गाया करते हैं; इस समयमें मैं अपनी आत्म स्थिरताके निमित्त उनके उन्हीं सब कर्मोंका भक्तिपूर्वक गान करूंगा ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वमें नववां अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ ३५५ ॥

: १० :

धृतराष्ट्र उवाच

शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य संजय।
कृतवान्यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान्क्वचित् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय! श्रीकृष्णने जिन कर्मोंको किया है, वे सब कर्म दूसरे पुरुष-से कभी भी नहीं किये जा सकते; मैं उनके किये हुए दिव्य कर्मोंका वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाके सुनो ॥ १ ॥

संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना।
विख्यापितं बलं बाहोस्त्रिषु लोकेषु संजय ॥ २ ॥

हे सञ्जय ! गोपकुलमें जिस समय बाल्यावस्थामें वे बढ रहे थे उसी समयमें महात्मा श्रीकृष्ण ने अपना बाहुबल तीनों लोकमें विख्यात कर दिया था ॥ २ ॥

उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे।
जघान हयराजं यो यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥

उस समयमें श्रीकृष्णने यमुनाके तटपर बनमें रहनेवाले उच्चैःश्रवा घोडेके समान बलवान् और वायुके समान वेगवान् अश्वराजको मार डाला ॥ ३ ॥

दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम्।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ॥ ४ ॥

घोर कर्म करनेवाले और बैलका रूप धारण करके रहनेवाले, जो गौओंके लिये मृत्युस्वरूप था उस दानवको श्रीकृष्णने बालपनमें अपने बाहुबलसे मारा ॥ ४ ॥

प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम्।
मुरुं चाचलसङ्काशमवधीत्पुष्करेक्षणः ॥ ५ ॥

कमलनयन श्रीकृष्णने प्रलम्ब, नकरासुर, जम्भासुर, पीठ नामक महान् असुर और पर्वतके समान मुरका भी संहार किया था ॥ ५ ॥

तथा कंसो महातेजा जरासंधेन पालितः।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः शातितो रणे ॥ ६ ॥

इसी प्रकार जरासन्धसे रक्षित महा तेजस्वी कंसको अनुयायियोंके सहित युद्धमें मारके यमलोकमें भेज दिया ॥ ६ ॥

सुनामा नाम विक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७ ॥
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनामित्रघातिना।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥

शत्रुओंके नाश करनेवाले श्रीकृष्णने बलदेवके साथ भोजराज कंसके मझले भाई वेगवान्, बलवान्, युद्धमें पराक्रमी, संपूर्ण अक्षौहिणी सेनाओंके पति शूरसेनदेशके राजा सुनामाको सम्पूर्ण सेनाके सहित दग्ध कर डाला था ॥ ७-८ ॥

दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः।
आराधितः सदारेण स चास्मै प्रददौ वरान् ॥ ९ ॥

महा क्रोधी दुर्वासा ब्रह्मर्षिने पत्नीसहित श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त ही पूजित होकर, उन्हें नाना भांतिके वर प्रदान किये ॥ ९ ॥

तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे
निर्जित्य पृथिवीपालानवहत्पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥

कमलनेत्रवाले महावीर श्रीकृष्णने स्वयंवरके बीच सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके गान्धार-राजकी कन्याके सङ्ग विवाह किया था ॥ १० ॥

अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव ।
रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥ ११ ॥

उस समयमें जातिवान् घोडेके समान श्रीकृष्णके वैवाहिक रथमें जुते हुए वे असहिष्णु राजालोग प्रतोदकी ताडनासे क्षत विक्षत शरीर अत्यन्त ही पीडित हुए थे ॥ ११ ॥

जरासंधं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
परेण घातयामास पृथगक्षौहिणीपतिम् ॥ १२ ॥

जनार्दन श्रीकृष्णने पृथक् अक्षौहिणीपति महाबाहु राजा जरासन्धको उपाय रचके दूसरेके हाथसे मरवा डाला ॥ १२ ॥

चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
अर्घे विवदमानं च जघान पशुवत्तदा ॥ १३ ॥

राजाओंकी सेनाके अधिपति पराक्रमी चेदिराज शिशुपालको अग्र पूजाके समय विवाद करनेके कारण पशु की भांति मार डाला ॥ १३ ॥

सौभं दैत्यपुरं स्वस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् ।
समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥ १४ ॥

यदुकुल शिरोमणि श्रीकृष्णने समुद्रके बीच पराक्रम करके शाल्वसे रक्षित सौभ नामक दुर्धर्ष दैत्य पुरीको नष्ट करके पृथ्वीपर गिरा दिया था ॥ १४ ॥

अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च मागधान्काशिकोसलान् ।
वत्सगर्गकरूषांश्च पुण्ड्रांश्चाप्यजयद्रणे ॥ १५ ॥

कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मागध, काशी, कोसल, वत्स, गर्ग, करूष और पौण्ड्र आदि देशोंपर विजय पायी थी ॥ १५ ॥

आवन्त्यान्दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयान्दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसकान्पिशाचांश्च समन्दरान् ॥ १६ ॥

अवन्ती, दक्षिणदेश, पार्वतीयदेश दशेरक, काश्मीर, औरसिक, पिशाच, समन्दर ॥ १६ ॥

काम्बोजान्वाटधानांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च संजय ।
त्रिगर्तान्मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥ १७ ॥

काम्बोज, वाटधान, चोल, पाण्डय, त्रिगर्त, मालव और महादुर्जय दरद आदि देशीय वीरोंको ॥ १७ ॥

नानादिग्भ्यश्च संम्प्राप्तान्व्रातानश्वशकान्प्रति ।
जितवान्पुण्डरीकाक्षो यवनांश्च सहानुगान् ॥ १८ ॥

और बहुतसे दिशाओंसे आये हुए वीर योद्धा तथा व्रात और अश्व, शकदेशीय राजाओं और सेनाके सहित यवनोंको पराजित किया था ॥ १८ ॥

प्रविश्य मकरावासं यादोभिरभिसंवृतम् ।
जिगाय वरुणं युद्धे सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥

पहले श्रीकृष्णने मकर आदि जलजन्तुओंसे युक्त अपार समुद्रमें प्रवेश करके जलके अन्दर निवास करनेवाले वरुणको युद्धमें जीता था ॥ १९ ॥

युधि पञ्चजनं हत्वा पातालतलवासिनम् ।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् ॥ २० ॥

श्रीकृष्णने युद्धमें पाताल तलपर वास करनेवाले पञ्चजन नामक असुरका वध करके दिव्य पाञ्चजन्य शंखको प्राप्त किया था ॥ २० ॥

खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम् ।
आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥

महाबली श्रीकृष्णने अर्जुनके संग खाण्डव वनमें जब अग्निको संतुष्ट किया था, उस ही समयमें अत्यन्त तेजस्वी आग्नेय अस्त्र चक्रको पाया था ॥ २१ ॥

वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वामरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२ ॥

पराक्रमी श्रीकृष्ण गरुडपर आरूढ होकर अमरावतीपुरीमें जाकर वहांके लोगोंको भयभीत करके महेन्द्रभवनसे कल्पवृक्ष पारिजात हर लाए थे ॥ २२ ॥

तच्च मर्षितवाञ्शक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
राज्ञां चाप्यजितं कंचित्कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णके पराक्रमको इन्द्र जानते थे, इसलिये उनको वह कल्पवृक्षका हरण सहना पडा। श्रीकृष्णसे कोई राजा जो अजेय हैं, ऐसा मैंने नहीं सुना है ॥ २३ ॥

यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम संजय ।
कृतवान्पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति ॥ २४ ॥

हे संजय ! मेरे संमुख ही सभामें पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णने जो महान् आश्चर्यमय कर्म किया था, उसे यहां उनके सिवा दूसरा कौन पुरुष वैसा कर्म कर सकता है ? ॥ २४ ॥

यच्च भक्त्या प्रपन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम् ।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमत् ॥ २५ ॥

मैंने भक्तिपूर्वक उनका शरणापन्न तथा प्रसन्न होकर ईश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया था, वह सब मुझे आज याद है । मैंने उनको प्रत्यक्षमा जान लिया ॥ २५ ॥

नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः ।
कर्मणः शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य संजय ॥ २६ ॥

हे सञ्जय ! महा बुद्धिमान् और पराक्रमी हृषीकेश श्रीकृष्णके कर्मोंका अन्त नहीं मालूम हो सकता ॥ २६ ॥

तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
आगावहोऽनिरुद्धश्च चारुदेष्णश्च सारणः ॥ २७ ॥

गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, आगावह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, ॥ २७ ॥

उल्मुको निशठश्चैव झल्ली बभ्रुश्च वीर्यवान् ।
पृथुश्च विपृथुश्चैव समीकोऽथारिमेजयः ॥ २८ ॥

उल्मुक, निशठ, पराक्रमी झल्ली, वीर बभ्रु, पृथु, विपृथु, समीक, अरिमेजय इत्यादि ॥ २८ ॥

एते वै बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
कथञ्चित्पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥ २९ ॥
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना ।
ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥ ३० ॥

बलवान् तथा प्रहार करनेमें निपुण यदुवंशीय शूरवीर योद्धा लोग, यदि महात्मा वृष्णिवीर श्रीकृष्णकी आज्ञासे पाण्डवोंकी सेनामें आ जांय और समरमें खडे हो जांय, तो मेरे विचारमें सम्पूर्ण कौरवोंका सब कार्य संशयमें पड जायगा ॥ २९–३० ॥

नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥

जिस ओर जनार्दन श्रीकृष्ण हैं, उसी ओर अयुत हाथियोंके समान बलवान्, बनमाली, हलधारी कैलास शिखरके समान, वीर बलदेवको भी समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

यस्माहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः।
अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय सञ्जय ॥ ३२ ॥

हे संजय! द्विज लोग उस ही श्रीकृष्णको सम्पूर्ण जगत्का पिता कहके वर्णन करते हैं। वे पाण्डवोंके लिये स्वयं युद्ध करेंगे? ॥ ३२ ॥

स यदा तात संनह्येत्पाण्डवार्थाय केशवः।
न तदा प्रत्यनीकेषु भविता तस्य कश्चन ॥ ३३ ॥

हे तात! यदि श्रीकृष्ण पाण्डवोंके निमित्त स्वयं वर्म धारण करके युद्धके लिये तैयार हो जांय, तो रणभूमिमें कोई भी उनके समान दूसरा वीर योद्धा मेरी सेनामें नहीं दीखता है ॥ ३३ ॥

यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुः सर्वपाण्डवान्।
वार्ष्णेयोऽर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

यदि सम्पूर्ण कौरव मिलके किसी भांतिसे सब पाण्डवोंको जीत लेंगे; तो ऐसा होनेपर यदुकुल शिरोमणि श्रीकृष्ण उनके हितके लिये उत्तम शस्त्र ग्रहण कर लेंगे ॥ ३४ ॥

ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन्रणे।
कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात्स मेदिनीम् ॥ ३५ ॥

और पुरुषसिंह महाबाहु श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अनुयायी राजाओंके सहित कौरवोंका युद्धमें वध करके कुन्तीको पृथ्वी प्रदान कर देंगे ॥ ३५ ॥

यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ॥ ३६ ॥

जिसके श्रीकृष्ण सारथि और अर्जुन योद्धा हैं, समरमें उस रथका सामना करनेवाला दूसरा कौन रथ हो सकता है? ॥ ३६ ॥

न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः।
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्तत ॥ ३७ ॥

अस्तु, मैं किसी उपायसे भी कौरवोंकी जयकी संभावना नहीं समझता हूं; जो हो, अब जिस प्रकारसे वह युद्ध हुआ था, वह सब वृत्तान्त तुम मुझसे कहो ॥ ३७ ॥

अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ॥ ३८ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णके आत्मा हैं और श्रीकृष्ण किरीटधारी अर्जुनके आत्मा हैं; अर्जुनमें सदा ही विजय है और श्रीकृष्णमें सनातन कीर्ति विद्यमान है ॥ ३८ ॥

प्राधान्येन हि भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ।
मोहाद्दुर्योधनः कृष्णं यन्न वेत्तीह माधवम् ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णमें असंख्य गुण हैं, यहां केवल मुख्य गुणहि कहे हैं। दुर्योधन मोहवश होकर श्रीकृष्णको नहीं जानता है ॥ ३९ ॥

मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ।
न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् ॥ ४० ॥

दुर्योधन अभाग्यसे ही दैवके वशमें होकर मृत्युके पाशमें बंधा हुआ है, इसीसे वह दशार्ह कुलभूषण श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनको नहीं पहिचान सकता है ॥ ४० ॥

पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ।
एकात्मानौ द्विधाभूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि ॥ ४१ ॥

ये दोनों ही प्राचीन देवता महात्मा नर और नारायण हैं। यदि ये दोनों एक ही आत्मा हैं, तथापि इस भूतलके मनुष्य लोगोंको दो रूपसे दिखाई देते हैं ॥ ४१ ॥

मनसापि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ।
नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वात्तु नेच्छतः ॥ ४२ ॥

वे दोनों मनसे भी दुर्धर्ष हैं; यही दोनों यशस्वी पुरुष इच्छा मात्रसे ही इस सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकते हैं, परंतु मानव भावके कारण ही ये ऐसी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ४२ ॥

युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ।
भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ४३ ॥

तात ! भीष्म और महात्मा द्रोणाचार्यका वध युग बदलनेकी भांति है और सब लोकोंको यह बात मोहित कर रही है ॥ ४३ ॥

न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ।
न क्रियाभिर्न शस्त्रेण मृत्योः कश्चिद्विमुच्यते ॥ ४४ ॥

इससे कोई भी पुरुष ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, नित्य-क्रिया वा शस्त्रविद्यासे मृत्युसे नहीं निस्तार पा सकता है ॥ ४४ ॥

लोकसंभावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि संजय ॥ ४५ ॥

हे सञ्जय ! लोकपूजित, वीर, सब अस्त्रोंसे शिक्षित, युद्धमें महापराक्रमी महावीर भीष्म और द्रोणाचार्यका वध सुनकर भी मैं किस लिये जीवित रहूं ? ॥ ४५ ॥

यां तां श्रियमसूयामः पुरा यातां युधिष्ठिरे ।
अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन च ॥ ४६ ॥

पहिले युधिष्ठिरकी राजश्रीको देखकर जो हम लोगोंने उनका द्वेष किया था, तथा उनकी राज्यश्रीका हरण किया था, आज इस समय भीष्म और द्रोणाचार्यके वधसे हम उसका अनुभव कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

तथा च मत्कृते प्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ।
पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्यपि ॥ ४७ ॥

यह कौरवोंका विनाश मेरे ही कारण प्राप्त हो रहा है । हे सूत ! कालके प्रभावसे पके हुए जीवोंके वधके निमित्त तृण भी वज्रके समान हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

अनन्यमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ।
यस्य कोपान्महेष्वासौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ४८ ॥

आज जिसके कोपमें पडके महाधनुर्धर भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, उस राजा युधिष्ठिरने इस जगतमें अद्वितीय ऐश्वर्यको प्राप्त किया है ॥ ४८ ॥

प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो नाधर्मो मानवान्प्रति ।
क्रूरः सर्वविनाशाय कालः समतिवर्तते ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिरको धर्मका स्वाभाविक फल मिला है, अधर्मी मानवोंको धर्मका फल नहीं मिलता । इससे यह महा क्रूर काल मेरे सर्वनाशके निमित्त उपस्थित हुआ है ॥ ४९ ॥

अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ।
अन्यथैव हि गच्छन्ति दैवादिति मतिर्मम ॥ ५० ॥

हे सूत ! मनस्वी बुद्धिमान् पुरुष किसी विषयोंको और भांतिसे विचारते हैं, परन्तु वे दैवकी इच्छासे दूसरी भांतिके होजाते हैं, ऐसा मेरा मत है ॥ ५० ॥

तस्मादपरिहार्येऽर्थे संप्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ४०६ ॥

इससे यह न रुकनेवाला, पुरुषार्थसे निवारण न होने योग्य, महाघोर बिपदका मूल जो युद्ध व्यापार उपस्थित हुआ है, उस विषयमें जितनी घटनाएं हुई हैं, वे तुम मेरे समीपमें बर्णन करो ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें दशवां अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ४०६ ॥

: ११ :

संजय उवाच

हन्त ते वर्णयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
यथा स न्यपतद्द्रोणः सादितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! द्रोणाचार्य जिस प्रकारसे पाण्डव और सृञ्जयोंके बीचमें पराक्रम प्रकाशित करके मारे गये, वह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है; उस सम्पूर्ण समाचारको मैं तुम्हारे समीपमें वर्णन करता हूं, तुम सुनो ॥ १ ॥

सेनापतित्वं संप्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

भरद्वाज पुत्र महारथी द्रोणाचार्यने सेनापतिका पद ग्रहण करके सब सेनाके बीचमें तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

यत्कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् ।
सेनापत्येन मां राजन्नद्य सत्कृतवानसि ॥ ३ ॥

हे कुरुराज दुर्योधन ! कौरवश्रेष्ठ आपगेय भीष्मके बाद तुमने जो आज मुझे सेनापति बना कर मेरा सम्मान किया है ॥ ३ ॥

सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि पार्थिव ।
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥

राजन् ! इस कार्यके समान फल तुम मुझसे प्राप्त करो, मैं तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूर्ण करूं ? जो तुम्हारी इच्छा हो, वह तुम मुझसे मांगो ॥ ४ ॥

ततो दुर्योधनश्चिन्त्य कर्णदुःशासनादिभिः ।
तमथोवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥

अनन्तर कर्ण, दुःशासन आदि वीरोंके साथ मन्त्रणा करके राजा दुर्योधन उन बिजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्यसे ऐसे बोले ॥ ५ ॥

ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् ।
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहानय ॥ ६ ॥

यदि आप मुझे वर देना चाहते हो, तो आप रथियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको जीते जी पकडके मेरे निकटमें लाकर उपस्थित कीजिये ॥ ६ ॥

ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः ।
सेनां प्रहर्षयन्सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

अनन्तर कौरवोंके गुरु द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी बात सुनकर सम्पूर्ण सेनाके पुरुषों को हर्षित करते हुए यह बचन बोले ॥ ७ ॥

धन्यः कुन्तीसुतो राजा यस्य ग्रहणमिच्छसि ।
न वधार्थं सुदुर्धर्ष वरमद्य प्रयाचसि ॥ ८ ॥

हे दुर्जय राजन् ! कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर धन्य हैं, क्योंकि तुम उनके जीते ही ग्रहण करनेकी अभिलाषा करते हो। उनके वधके लिये आज तुम मुझसे प्रार्थना नहीं करते हो ॥ ८ ॥

किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य काङ्क्षसि ।
नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥ ९ ॥

हे पुरुषसिंह दुर्योधन ! तुम किस हेतुसे उनके वधकी इच्छा नहीं करते हो ? तुम मुझसे निश्चयसे उनका वध करना क्यों नहीं चाहते हो ? ॥ ९ ॥

आहो स्विद्धर्मपुत्रस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते ।
यदिच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चात्मनि ॥ १० ॥

उन धर्मराज युधिष्ठिरसे द्वेष करनेवाला इस जगत्में कोई भी नहीं है यह तो इसका कारण नहीं है ? इसलिये तुम उनको जीवित रखना और स्वयंकी तथा अपने कुलकी रक्षा करना चाहते हो ? ॥ १० ॥

अथ वा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान् ।
राज्यांशं प्रतिदत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि ॥ ११ ॥

हे भारत ! अथवा तुम इस समय युद्धमें पाण्डवोंको जीतकर अन्तमें उनको राज्यका भाग वापस देकर उनके सङ्ग सौभ्रातृ–भावके विधानकी इच्छा करते हो ? ॥ ११ ॥

धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजाता चास्य धीमतः ।
अजातशत्रुता सत्या तस्य यत्स्निह्यते भवान् ॥ १२ ॥

इससे बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र राजा युद्धिष्ठिर धन्य हैं, और शुभ मुहूर्तोंमें उनका जन्म हुआ है। जब तुम भी उनके ऊपर प्रीति करते हो, तो वे यथार्थमें अजातशत्रु ही हैं। ॥ १२ ॥

द्रोणेन त्वेवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत ।
सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं प्रवर्तते ॥ १३ ॥

हे भारत ! जब द्रोणाचार्यने ऐसा वचन कहा, तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके हृदयके भाव जो सदा उसके मनमें रहते थे, अकस्मात् प्रकाशित हो गये ॥ १३ ॥

नाकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि ।
तस्मात्तव सुतो राजन्प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

बृहस्पतिके समान पुरुष भी अपना अभिप्राय गोपन नहीं कर सकते। राजन् ! इसलिये तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे ॥ १४ ॥

वधे कुन्तीसुतस्याजौ नाचार्य विजयो मम।
हते युधिष्ठिरे पार्थो हन्यात्सर्वानिह नो ध्रुवम् ॥ १५ ॥
हे आचार्य! युद्धमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरका वध होनेसे मेरी विजय न होगी! क्योंकि युधिष्ठिरके मारे जानेपर अर्जुन अवश्य ही हम सब लोगोंका नाश कर देगा; ॥ १५ ॥

न च शक्यो रणे सर्वैर्निहन्तुममरैरपि।
य एव चैषां शेषः स्यात्स एवास्मान्न शेषयेत् ॥ १६ ॥
सब देवता भी सब पाण्डवोंको युद्धमें नहीं मार सकते, इससे उन लोगोंमेंसे जो कोई जीवित रहेगा, वही हम सब लोगोंका नाश कर देगा ॥ १६ ॥

सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते।
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय कौन्तेयास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥
परन्तु जब सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले राजा युधिष्ठिरको इस प्रकारसे जीवित ग्रहण करके तुम मेरे समीप ले आओगे, तब मैं फिर वन गमनकी बाजी (पण) रखके जूएके खेलमें उन्हें पराजित करूंगा; ऐसा होनेसे ही पाण्डवलोग उसके अनुगामी होकर फिर वनमें गमन करेंगे ॥१७॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति।
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८ ॥
ऐसा करनेहीसे बहुत दिनोंतक मेरी विजय रहेगी, इसलिये मैं कभी भी धर्मराज युधिष्ठिरके वधकी इच्छा नहीं करता हूं ॥ १८ ॥

तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित्।
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ संचिन्त्य बुद्धिमान् ॥ १९ ॥
विषयोंके मर्मको जाननेवाले बुद्धिमान द्रोणाचार्यने दुर्योधनके इस कुटिल अभिप्रायको जान कर, विचार करके अन्तर पूर्वक उनको यह वर प्रदान किया ॥ १९ ॥

द्रोण उवाच

न चेद्युधिष्ठिरं वीर पालयेदर्जुनो युधि।
मन्यस्व पाण्डवं ज्येष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥
द्रोण बोले-यदि पराक्रमी अर्जुन युद्धमें युधिष्ठिरकी रक्षा न करते हों, तो तुम निश्चय जान रक्खो, कि मैं ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरको अपने वशमें कर चुका ॥ २० ॥

न हि पार्थो रणे शक्यः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि।
प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१ ॥
तात! इन्द्र सहित सब देवता और असुर लोग भी युद्धमें अर्जुनके संमुख होकर आगे नहीं बढ सकते; अतः मैं भी रणभूमिमें अर्जुनको जीत नहीं सकता हूं ॥ २१ ॥

असंशयं स शिष्यो मे मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि ।
तरुणः कीर्तियुक्तश्च एकायनगतश्च सः ॥ २२ ॥

वह निःसंशय मेरा शिष्य है, और उसने पहले मुझसेही अस्त्रविद्या ग्रहण कर ली है, परन्तु वह युवा अवस्थावाला, कीर्तिसे युक्त और विजय या मृत्यु एक ही मार्गका निश्चय किया हुआ है ॥ २२ ॥

अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयांसि समवाप्तवान् ।
अमर्षितश्च ते राजंस्तेन नामर्षयाम्यहम् ॥ २३ ॥

हे राजन् ! उसने इन्द्र और रुद्रके समीपमें जाकर नाना भांतिके अस्त्रोंको प्राप्त किया है, तुम्हारे प्रति वह अत्यंत क्रोधित है, इसलिये मैं अर्जुनको युद्धमें पराजित नहीं कर सकता हूं ॥ २३ ॥

स चापक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते ।
अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥

तुम उस अर्जुनको जिस प्रकारसे शक्य हो, युद्धभूमिसे पृथक् करो; कुन्तीपुत्र अर्जुनके युद्धसे दूर हट जानेपर तुम धर्मराज युधिष्ठिरको जीत सकोगे ॥ २४ ॥

ग्रहणं चेज्जयं तस्य मन्यसे पुरुषर्षभ ।
एतेन चाभ्युपायेन ध्रुवं ग्रहणमेष्यति ॥ २५ ॥

हे पुरुषर्षभ ! उनको पकड लेनेहीसे तुम्हारी विजय होगी, ऐसा तुम मानते हो तो ऊपर कहे हुए उपायका अवलम्बन करने ही से अवश्य वह जीते जी पकडे जावेंगे ॥ २५ ॥

अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् ।
आनयिष्यामि ते राजन्वशमद्य न संशयः ॥ २६ ॥
यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनंजये ॥ २७ ॥

हे राजन् ! पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र अर्जुनके रणभूमिसे पृथक् होनेपर, यदि राजा युधिष्ठिर मेरे संमुखमें मुहूर्त्त मात्रभी युद्धमें ठहरेंगे, तो मैं आज उस सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करके तुम्हारे समीपमें लाकर उपस्थित करूंगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥२६–२७॥

फल्गुनस्य समक्षं तु न हि पार्थो युधिष्ठिरः ।
ग्रहीतुं समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २८ ॥

हे राजन् ! अर्जुनके संमुख इन्द्र आदि देवता और असुर लोग भी रणभूमिमें युधिष्ठिरको पकड नहीं सकते हैं ॥ २८ ॥

संजय उवाच

सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे।
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥ २९ ॥

सञ्जय बोले— जब द्रोणाचार्यने इस भांति अंतरपूर्वक राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा की, तब उस समयमें तुम्हारे मूर्ख पुत्रलोग राजा युधिष्ठिरको पकडे हुए ही समझने लगे ॥ २९ ॥

पाण्डवेषु हि सापेक्षं द्रोणं जानाति ते सुतः।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः ॥ ३० ॥

तुम्हारा पुत्र दुर्योधन द्रोणाचार्य पाण्डवोंके प्रति पक्षपात रखते हैं, यह जानता था, इसी कारणसे उनकी प्रतिज्ञाकी दृढताके लिये इस गुप्त विचारको सम्पूर्ण सैनिक पुरुषोंमें उसने प्रकाशित कर दिया ॥ ३० ॥

ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत्।
सैन्यस्थानेषु सर्वेषु व्याघोषितमरिन्दम ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ४३७ ॥

हे अरिन्दम ! दुर्योधनने युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी मन्त्रणाको सेनाके संपूर्ण स्थानोंपर शीघ्रताके सहित प्रकट किया ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ४३७ ॥

: १२ :

संजय उवाच

ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम्।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाणशङ्खरवैः सह ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— राजा युधिष्ठिरके पकडे जानेका विचार सुनकर सम्पूर्ण कुरुसेनाके शूरवीर शङ्ख बजाकर धनुषटङ्कार करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ १ ॥

तत्तु सर्वं यथा वृत्तं धर्मराजेन भारत।
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् ॥ २ ॥

हे भारत ! इसके अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने भी शीघ्र ही अपने विश्वासी दूतोंके मुखसे द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञाको यथार्थ रूपसे जान लिया ॥ २ ॥

ततः सर्वान्समानाय्य भ्रातॄन्सैन्यांश्च सर्वशः।
अब्रवीद्धर्मराजस्तु धनंजयमिदं वचः। ॥ ३ ॥

अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सब भाइयों और सम्पूर्ण सेनाओंको सब ओरसे निकट बुलाकर अर्जुनसे यह वचन कहा ॥ ३ ॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितम्।
यथा तन्न भवेत्सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४ ॥

हे पुरुषसिंह! तुमने आज द्रोणाचार्यकी इच्छित प्रतिज्ञा सुनी होगी, इस समय जिसमें उन की प्रतिज्ञा सत्य न हो सके, तुम वैसे ही उपायका विधान करो ॥ ४ ॥

सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनामित्रकर्शन।
तच्चान्तरममोघेषौ त्वयि तेन समाहितम् ॥ ५ ॥

हे शत्रुनाशन! द्रोणाचार्यने जो प्रतिज्ञा की है, उसमें कुछ अन्तर रखा है; उन्होंने वह अन्तर प्रभावशाली ऐसे तुम्हारे ही ऊपर रक्खा है ॥ ५ ॥

स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम्।
यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

इससे महाबाहो! तुम आज मेरे समीप स्थित होके शत्रुसेनासे युद्ध करो; जिससे द्रोणाचार्यके द्वारा दुर्योधनका यह मनोरथ पूर्ण न हो सके ॥ ६ ॥

अर्जुन उवाच

यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कथंचन।
तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः ॥ ७ ॥

अर्जुन बोले– हे राजन्! जिस प्रकार किसी भांतिसे मुझे आचार्यका वध नहीं करना कर्तव्य है, वैसे ही आपका परित्याग करना भी मुझे योग्य नहीं है ॥ ७ ॥

अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि।
प्रतीयां नाहमाचार्यं त्वां न जह्यां कथञ्चन ॥ ८ ॥

हे पाण्डव! ऐसा करते हुए मैं युद्धमें अपने प्राणोंका त्याग भी कर दूंगा, परन्तु मैं कभी द्रोणाचार्यकी विरुद्धता न करूंगा और किसी प्रकार भी आपका परित्याग नहीं करूंगा ॥८॥

त्वां निगृह्याहवे राजन्धार्तराष्ट्रो यमिच्छति।
न स तं जीवलोकेऽस्मिन्कामं प्राप्तः कथञ्चन ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जो तुम्हें युद्धमें कैद करके राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा कर रहा है, वह मनोरथ इस मनुष्य लोकमें किसी प्रकारसे भी उसको प्राप्त नहीं हो सकेगा ॥ ९ ॥

प्रपतेद्द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ।
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ॥ १० ॥

यदि नक्षत्रमण्डलके सहित आकाश गिर पडे और पृथ्वीके टुकडे टुकडे हो जावे; तो भी मेरे जीवित रहते हुए द्रोणाचार्य तुम्हें कभी पकड नहीं सकेंगे, यह शाश्वत सत्य है ॥ १० ॥

यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ।
देवैर्वा सहितो दैत्यैर्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे ॥ ११ ॥

यदि बज्रधारी इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं और दैत्योंके सहित स्वयं युद्धभूमिमें उपस्थित होके दुर्योधनकी सहायता करे; तो भी युद्धभूमिमें वह तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकेगा ॥ ११ ॥

मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ।
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात्सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र ! मेरे जीवित रहते ही सब अस्त्र–शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे भय करना तुमको उचित नहीं है ॥ १२ ॥

न स्मराम्यनृतां वाचं न स्मरामि पराजयम् ।
न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किंचिदप्यनपाकृतम् ॥ १३ ॥

मैंने कभी मिथ्या वचन कहा है, मैं कभी युद्धमें पराजित हुआ हूं, और मैंने कहे हुए वचनोंका पालन नहीं किया है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं होता है ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह ।
प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १४ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! अनन्तर पाण्डवोंके शिविरोंमें शंख, भेरी, मृदङ्ग, नगाडे आदि बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥

सिंहनादश्च संजज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक्सुभैरवः ॥ १५ ॥

महात्मा पाण्डवोंके सिंहनाद और धनुषटङ्कारका गगनको स्पर्श करनेवाला, महा भयङ्कर शब्द सुनाई देने लगा ॥ १५ ॥

तं श्रुत्वा शङ्खनिर्घोषं पाण्डवस्य महात्मनः ।
त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥ १६ ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी सेनामें शंख आदि बाजोंके शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनामें भी युद्धके बाजे बजने लगे ॥ १६ ॥

ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत ।
शनैरुपेयुरन्योन्यं योत्स्यमानानि संयुगे ॥ १७ ॥
हे भारत ! अनन्तर तुम्हारी और उनकी दोनों ओरकी सेनाएं व्यूहबद्ध होकर धीरेसे युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिमें एक–दूसरीके पास आने लगीं ॥ १७ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि ॥ १८ ॥
तब पाण्डव तथा कौरवोंमें और द्रोणाचार्य तथा धृष्टद्युम्नमें रोएंको खडा करनेवाला भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ १८ ॥

यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।
न शेकुः सृञ्जया राजंस्तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ १९ ॥
राजन् ! सृञ्जय लोग बहुत यत्न करके भी द्रोणाचार्यसे रक्षित कुरुसेनाका नाश न कर सके ॥ १९ ॥

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
न शेकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥ २० ॥
उसी प्रकार तुम्हारे पुत्रके सब पराक्रमी योद्धा भी जो प्रहारकरनेमें कुशल थे, अर्जुनसे रक्षित पाण्डवोंकी सेनाको युद्धसे विचलित न कर सके ॥ २० ॥

आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्ष्यमाणे परस्परम् ।
संप्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते ॥ २१ ॥
इसी प्रकारसे द्रोणाचार्य और अर्जुनसे रक्षित दोनों ओरकी सेनाएं मानो रात्रिके समय फूले हुए दो प्रसुप्त वनोंके समान परस्पर निश्चल स्थित रहीं ॥ २१ ॥

ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता ।
वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत्पृतनान्तरे ॥ २२ ॥
हे राजन् ! अनन्तर सुवर्णभूषित रथवाले द्रोणाचार्य सूर्यके समान प्रकाशित रथसे सेनाके बीचमें घूमने लगे ॥ २२ ॥

तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः ॥ २३ ॥
अकेले ही द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें अपने रथपर चढे हुए हस्तलाघवके सहित बाणोंको चलाते समय, इस प्रकारसे चारों ओर दिखाई देने लगे, कि पाण्डव और सृञ्जय लोग उनको अनेक रूपधारी समझके भयभीत होने लगे ॥ २३ ॥

तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम् ।
त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए भयंकर बाण चारों ओर धर्मराजकी सेनाको त्रस्त करते हुए चलते दिखाई देने लगे ॥ २४ ॥

मध्यंदिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः ।
यथादृश्यत घर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥ २५ ॥

दो पहरके समयमें महाप्रचण्ड सहस्र किरणधारी तेजस्वी सूर्यका रूप जिस प्रकारसे सबको बिकल करता है, द्रोणाचार्य वैसे ही शत्रुसेनाके बीच दिखाई देने लगे ॥ २५ ॥

न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति मारिष ।
वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥ २६ ॥

हे मारिष ! जैसे दानव लोग युद्धमें क्रुद्ध हुए इन्द्रकी ओर नहीं देख सकते, वैसे ही पाण्डवोंकी सेनामें कोई भी वीर युद्ध करते हुए प्रतापी द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुआ ॥ २६ ॥

मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥ २७ ॥

अनन्तर महा प्रतापी द्रोणाचार्य सम्पूर्ण सेनाको मोहित करते हुए शीघ्रताके सहित तीक्ष्ण बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी सेनाका संहार करने लगे ॥ २७ ॥

स दिशः सर्वतो रुद्ध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः ।
पार्षतो यत्र तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ४६५ ॥

और अपने सीधेजानेवाले बाणोंसे सब दिशाओंको रुद्ध और आकाश मण्डलको पूरित कर, जहांपर धृष्टद्युम्न थे उस स्थानपर पहूंच कर पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बारहवां अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ४६५ ॥

: १३ :

सञ्जय उवाच

ततः स पाण्डवानीके जनयंस्तुमुलं महत् ।
व्यचरत्पाण्डवान्द्रोणो दहन्कक्षमिवानलः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– जैसे अग्नि तृण आदिको भस्म कर देती है, वैसे ही द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनामें महा घोर युद्ध करके, पाण्डव–शूरवीरोंको जलाते हुए संग्रामभूमिमें चारों ओर घूमने लगे ॥ १ ॥

निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २ ॥
सम्पूर्ण सृञ्जय वीर योद्धा सुवर्णभूषित रथवाले द्रोणाचार्यको इस भांतिसे साक्षात् अग्निदेवके समान क्रोधमें भरकर सेनाओंको दग्ध करते हुए देखकर कांपने लगे ॥ २ ॥

प्रततं चास्यमानस्य धनुषोऽस्याशुकारिणः ।
ज्याघोषः श्रूयतेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ ३ ॥
युद्धभूमिमें वह ऐसी शीघ्रतासे अपने बडे धनुषको आकर्षण करने लगे, कि उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाका टङ्कारका शब्द वज्रके शब्दकी भांति जोरसे सुनाई देने लगा ॥ ३ ॥

रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान्पदातिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥ ४ ॥
उनके हस्तलाघवसे छूटे हुए भयंकर बाण रथी, घुडसवार, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले वीरोंका नाश करने लगे ॥ ४ ॥

नानद्यमानः पर्जन्यः सानिलः शुचिसंक्षये ।
अश्मवर्षमिवावर्षत्परेषामावहद्भयम् ॥ ५ ॥
वर्षाकालके वायुसहित मेघ जैसे बार बार गर्जकर पत्थर बरसाने लगता है, वैसे ही द्रोणाचार्य अपने बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंके वीरोंको भयभीत करने लगे ॥ ५ ॥

व्यचरत्स तदा राजन्सेनां विक्षोभयन्प्रभुः ।
वर्धयामास संत्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥ ६ ॥
हे राजन् ! सेनापति द्रोणाचार्य इसी भांतिसे रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करके शत्रुओंको क्षुब्ध करके उनके मनमें अमानुष भय उत्पन्न करने लगे ॥ ६ ॥

तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
भ्रमद्रथाम्बुदे तस्मिन्दृश्यते स्म पुनः पुनः ॥ ७ ॥
उनका सुवर्णभूषित धनुष चारों ओर घूमनेवाले रथ रूपी बादलके बीच बिजलीके समान बार बार प्रकाशित होता हुआ दिखाई देने लगा ॥ ७ ॥

स वीरः सत्यवान्प्राज्ञो धर्मनित्यः सुदारुणः ।
युगान्तकाले यन्तेव रौद्रां प्रास्कन्दयन्नदीम् ॥ ८ ॥
उन सत्यवादी बुद्धिमान् धर्मात्मा भयंकर वीर द्रोणाचार्यने प्रलयकालके समान रणभूमिमें भयंकर रुधिरकी नदी बहा दी ॥ ८ ॥

अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
बलौघैः सर्वतः पूर्णां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥ ९ ॥

वह नदी क्रोधरूपी वेगसे उत्पन्न हुई, उसके चारों ओर मांस भक्षण करनेवाले जन्तु घूमने लगे ! वह नदी सेनारूपी प्रवाहसे सब ओरसे पूर्ण थी और वीर योद्धा रूपी वृक्षोंको अपने प्रवाहके झोंकमें बहाने लगी ॥ ९ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ।
कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥ १० ॥

उस नदीमें रुधिर ही जल हुआ, रथ भंवर, हाथी और घोडे तट, कवच आदि नाव और मांस उसमें पङ्क रूप था ॥ १० ॥

मेदोमज्जास्थिसिकतामुष्णीषवरफेनिलाम् ।
संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥

तथा मेद, मज्जा और हड्डियां ही उसके बालू हुए । उस नदीमें वीरोंकी उत्तम पगडियां फेनरूपी दीख पडती थी । संग्रामरूपी बादल रक्तकी वर्षासे उसको भरता था, प्रास आदि अस्त्र-शस्त्ररूपी मछलियोंसे वह भरी हुई थी ॥ ११ ॥

नरनागाश्वसंभूतां शरवेगौघवाहिनीम् ।
शरीरदारुशृङ्गाटां भुजनागसमाकुलाम् ॥ १२ ॥

वह हाथी, घोडे और पैदल मनुष्योंसे भरी हुई थी; बाणोंका वेग ही इस नदीका प्रवाह हुआ; बहते हुए वीरोंके शरीररूपी काष्ठोंसे मानो उसका घाट बनाया हुआ था । हाथरूपी सर्पोंसे युक्त वह नदी थी ॥ १२ ॥

उत्तमाङ्गोपलतलां निस्त्रिंशझषसेविताम् ।
रथनागहृदोपेतां नानाभरणनीरजाम् ॥ १३ ॥

वीरोंके कटे हुए सिर ही इस नदीका पत्थरसे निर्माण किया हुआ तटरूप हुआ, तलवार आदि मीन-मछलियोंसे भरी हुई वह थी, रथ तथा हाथियोंसे घिरकर वह गहरे कुण्डसे युक्त थी । वह नदी नाना आभूषणोंसे भूषित थी ॥ १३ ॥

महारथशतावर्तां भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ १४ ॥

बडे बडे सैकडों रथ इस नदीमें भंवरके समान दीख पडते थे । और पृथ्वीकी धूल और तरङ्गकी मालाओंसे व्याप्त वह दिखाई देने लगी । वह रुधिरकी नदी युद्धभूमिमें महा पराक्रमी वीर लोगोंके लिये सुगमतासे पार करने योग्य और कायर लोगोंके लिये दुस्तर थी ॥ १४ ॥

शूरव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाणिजसेविताम् ।
छिन्नच्छत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसंकुलाम् ॥ १५ ॥

उस नदीमें शूरवीरोंके शरीर सर्पोंके समान व्याप्त थे, विभिन्न प्राणी वैश्योंके समान निवास करते थे, भग्न छत्र उसमें बडे हंसोंके समान शोभित दीखते थे, मुकुट जल पक्षियोंके समान दिखायी देते थे ॥ १५ ॥

चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् ।
बडगृध्रसृगालानां घोरसंघैर्निषेविताम् ॥ १६ ॥

रथोंके चक्र कछुएं, गदाएं मगरमच्छ, और बाण छोटी मछलियोंके समान विराजमान हुए। बगुले, गिद्ध और सियारोंके भयंकर समूह उसके तटपर निवास करते थे ॥ १६ ॥

निहतान्प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना शरैः ।
वहन्तीं पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥ १७ ॥

हे राजेन्द्र ! बलवान् द्रोणाचार्यके बाणोंसे युद्धमें मारे गये सैंकडों प्राणियोंको वह नदी पितृलोकमें पहुंचा रही थी ॥ १७ ॥

शरीरशतसंबाधां केशशैवलशाद्वलाम् ।
नदीं प्रावर्तयद्राजन्भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ १८ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यने सैकडों मरे हुए पुरुषोंके शरीर और केशरूपी सेवार और घासोंसे युक्त, कायरोंके भयको बढानेवाली रुधिरकी नदी उत्पन्न करके बहायी थी ॥ १८ ॥

तं जयन्तमनीकानि तानि तान्येव भारत ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ १९ ॥

भारत ! युधिष्ठिरके अनुयायी सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा इस भांतिसे द्रोणाचार्यको पाण्डवोंकी सेनाका नाश करते देखकर चारों ओरसे उनकी ओर दौडे ॥ १९ ॥

तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढकार्मुकाः ।
सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तदभूल्लोमहर्षणम् ॥ २० ॥

तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण सुदृढ धनुषधारी वीर लोगोंने भी उन लोगोंको द्रोणाचार्यकी ओर आक्रमण करते हुए देखकर वेगपूर्वक उन सब वीरोंको रोक दिया। अनन्तर दोनों सेनाओंका महा घोर रोमांचकारी संग्राम होने लगा ॥ २० ॥

शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥ २१ ॥

सैकडों प्रकारकी माया-विद्यामें निपुण शकुनिने सहदेव पर आक्रमण करके उनके सारथि, ध्वज और रथके सहित उन्हें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २१ ॥

तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि ।
नातिक्रुद्धः शरैश्छित्त्वा षष्ट्या विव्याध मातुलम् ॥ २२ ॥

माद्रीपुत्र सहदेवने अधिक क्रोधित न होकर शकुनिके ध्वज, धनुष, सारथि और घोडोंको अपने बाणोंसे छिन्नभिन्न करके फिर साठ बाणोंसे अपने मामाको भी विद्ध किया ॥ २२ ॥

सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
स तस्य गदया राजन्रथात्सूतमपातयत् ॥ २३ ॥

राजन् ! तब सुबलपुत्र शकुनिने उस उत्तम रथसे गदा हाथमें लेकर कूदके सहदेवके रथसे उनके सारथिको गदासे मार गिराया ॥ २३ ॥

ततस्तौ विरथौ राजन्गदाहस्तौ महाबलौ ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सशृङ्गाविव पर्वतौ ॥ २४ ॥

हे राजन् ! वे दोनों महाबली पराक्रमी योद्धा रथ रहित होके गदा ग्रहण कर, शृङ्गके सहित दो पर्वतोंके समान रणभूमिमें क्रीडा करने लगे ॥ २४ ॥

द्रोणः पाञ्चालराजानं विद्ध्वा दशभिराशुगैः ।
बहुभिस्तेन चाभ्यस्तस्तं विव्याध शताधिकैः ॥ २५ ॥

द्रोणाचार्यने पाञ्चालराज द्रुपदको दस बाणोंसे विद्ध किया, तब द्रुपदने भी उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध किया । द्रोणाचार्यने फिर दूसरी बार सौ से भी अधिक बाणोंको चलाकर राजा द्रुपदको विद्ध किया ॥ २५ ॥

विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः ।
विद्ध्वा नाकम्पयद्वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २६ ॥

वीर भीमसेन विविंशतिको वीस तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके भी उसे कंपित नहीं कर सके, यह एक अद्भुतसा कर्म हुआ ॥ २६ ॥

विविंशतिस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् ॥ २७ ॥

हे महाराज ! विविंशतिने भी सहसा भीमसेनके घोडे, ध्वज और धनुष काट डाले, तब सम्पूर्ण सेनाओंने विविंशतिकी प्रशंसा की ॥ २७ ॥

स तन्न ममृषे वीरः शत्रोर्विजयमाहवे ।
ततोऽस्य गदया दान्तान्हयान्सर्वानपातयत् ॥ २८ ॥

वीर भीमसेन उस युद्धभूमिमें शत्रुके विजको न सह सके, उन्होंने गदासे उनके अत्यन्त शिक्षित सब घोडोंको मार डाला ॥ २८ ॥

शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः ।
विव्याध प्रहसन्बाणैर्लाडयन्कोपयन्निव ॥ २९ ॥
पराक्रमी शल्य अपने प्यारे भानजे नकुलको हंसते हंसते मानो प्रीति और क्रोधसे युक्त करते हुएसे बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

तस्याश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ३० ॥
अनन्तर प्रतापी नकुलने युद्धभूमिमें उनके घोडे, छत्र, ध्वज, सारथि और धनुषको अपने बाणोंसे काटके शंख बजाकर सिंहनाद किया ॥ ३० ॥

धृष्टकेतुः कृपेनास्तांश्छित्त्वा बहुविधाञ्शरान् ।
कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चास्याहरत्त्रिभिः ॥ ३१ ॥
धृष्टकेतुने कृपाचार्यके चलाये हुए अनेक बाणोंको निवारण करके, सत्तर बाणोंसे उन्हें विद्ध किया और तीन बाणोंसे उनके चिन्हरूप ध्वजको काट गिरा दिया ॥ ३१ ॥

तं कृपः शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
निवार्य च रणे विप्रो धृष्टकेतुमयोधयत् ॥ ३२ ॥
तब ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्यने बाणोंकी भारी वर्षा करके धृष्टद्युम्नको रोका और घोर संग्राम करने लगे ॥ ३२ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥ ३३ ॥
सात्यकिने अपने एक नाराच बाणसे कृतवर्माके वक्षस्थलमें प्रहार करके, फिर हंसते हंसते दूसरे सत्तर बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ३३ ॥

सप्तसप्ततिभिर्भोजस्तं विद्ध्वा निशितैः शरैः ।
नाकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाचलम् ॥ ३४ ॥
जैसे वायु महा वेगसे चलकर भी पर्वतको नहीं हिला सकती, वैसे ही भोजराज कृतवर्मा सतहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे शीघ्रही प्रहार करके भी यदुवंशीय सात्यकिको युद्धसे विचलित नहीं कर सके ॥ ३४ ॥

सेनापतिः सुशर्माणं शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशे अताडयत् ॥ ३५ ॥
सेनापति धृष्टद्युम्नने सुशर्माके मर्म स्थानोंमें अपने बाणोंसे शीघ्रतासे प्रहार किया, सुशर्माने भी तोमर चलाकर सेनापतिके हृदयके नीचे प्रहार किया ॥ ३५ ॥

वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत् ।
सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३६ ॥

राजा विराटने महापराक्रमी मत्स्य देशीय योद्धाओंसे युक्त हो रणभूमिमें सूर्यपुत्र कर्णको निवारण किया, यह कर्म अद्भुत हुआ ॥ ३६ ॥

तत्पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् ।
यत्सैन्यं वारयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३७ ॥

तब सूतपुत्र कर्णने दारुण पुरुषार्थ प्रकट करके तीक्ष्ण बाणोंसे संपूर्ण मत्स्य सेनाका निवारण किया ॥ ३७ ॥

द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन संगतः ।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ।
भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ॥ ३८ ॥

हे भारत ! राजा द्रुपद स्वयं भगदत्तके संमुख आके युद्धके लिये उपस्थित हुए, अनन्तर उन दोनोंका अद्भुत युद्ध होने लगा । अस्त्रविद्याके जाननेवाले ये दोनों प्राणियोंको त्रास देनेवाला महाघोर संग्राम करने लगे ॥ ३८ ॥

भूरिश्रवा रणे राजन्याज्ञसेनिं महारथम् ।
महता सायकौघेन छादयामास वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! पराक्रमी भूरिश्रवाने रणभूमिमें अपने प्रबल बाणोंके समूहसे महारथी याज्ञसेनि शिखण्डीको छिपा दिया ॥ ३९ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशां पते ।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ॥ ४० ॥

हे प्रजानाथ ! भारत ! अनन्तर शिखण्डीने क्रुद्ध होकर नब्बे बाणोंसे भूरिश्रवाके ऊपर प्रहार करके उन्हें कंपित कर दिया ॥ ४० ॥

राक्षसौ भीमकर्माणौ हैडिम्बालम्बुसावुभौ ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परवधैषिणौ ॥ ४१ ॥

भयङ्कर कर्मोंके करनेवाले घटोत्कच और अलम्बुस राक्षस आपसमें एक दूसरेको जीतनेकी अभिलाषा करके महा भयङ्कर अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम् ।
अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४२ ॥

वे दोनों अभिमान पूर्वक सैकडों माया उत्पन्न करके, मायासे ही परस्पर परस्त करना चाहते थे । वे अन्तर्द्धान होके रणभूमिमें भ्रमण करते हुए सब लोगोंको विस्मित करके युद्ध करने लगे ॥ ४२ ॥

चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे त्वतिभैरवम् ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४३ ॥

देवासुरयुद्धमें जैसे महाबलवान् बलासुर और इन्द्रका युद्ध हुआ था, वैसे ही चेकितान अनुविन्दके सङ्ग भयंकर युद्ध करने लगे ॥ ४३ ॥

लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद्भृशम् ।
यथा विष्णुः पुरा राजन्हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! पहिले समयमें जैसे बिष्णुने हिरण्याक्ष दैत्यके सङ्गमें युद्ध किया था, वैसे ही रणभूमिमें लक्ष्मण क्षत्रदेवके सङ्ग महाघोर संग्राम करने लगा ॥ ४४ ॥

ततः प्रजविताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
रथेनाभ्यपतद्राजन्सौभद्रं पौरवो नदन् ॥ ४५ ॥

हे भारत ! अनन्तर पौरव सिंहनाद करते हुए विधिपूर्वक उत्तम भांतिसे सज्जित वेगवान् घोडोंसे युक्त रथ पर चढके सुभद्रा पुत्र अभिमन्युकी ओर आक्रमणके लिये दौडे ॥ ४५ ॥

ततोऽभियाय त्वरितो युद्धाकाङ्क्षी महाबलः ।
तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युररिंदमः ॥ ४६ ॥

तब महाबलवान् शत्रुनाशन अभिमन्यु भी युद्धकी इच्छा करके, वेगपूर्वक उनके संमुख आकर उपस्थित होकर महान् युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् ।
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥ ४७ ॥

पौरवने अपने बाण समूहोंकी वर्षासे सुभद्रानन्दन अभिमन्युको छिपा दिया । तब अर्जुन पुत्र अभिमन्युने उनके ध्वज, छत्र और धनुषको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४७ ॥

सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥ ४८ ॥

फिर दूसरे सात तीक्ष्ण-बाणोंसे पौरवको विद्ध करके, अभिमन्युने पांच बाणोंसे उनके सारथि और रथके घोडोंको विद्ध किया ॥ ४८ ॥

ततः संहर्षयन्सेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
समादत्तार्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ॥ ४९ ॥

अनन्तर अपनी सेनाका आनन्द बढाते, बार बार सिंहके समान गर्जना करके पौरवका नाश करनेके निमित्त समर्थ, ऐसा एक भयङ्कर बाण अर्जुनपुत्र अभिमन्युने शीघ्रही हाथमें ग्रहण किया ॥ ४९ ॥

द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चकर्त सशरं धनुः ।
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बवर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५० ॥

हृदिकनन्दन कृतवर्माने अपने दो बाणोंसे उस बाणके सहित अभिमन्युके धनुषको काट डाला। तब शत्रुनाशन अभिमन्युने कटे हुए धनुषको फेंककर चमकती हुई तलवार और ढाल ग्रहण की ॥ ५० ॥

स तेनानेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
भ्रान्तासिरचरन्मार्गान्दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ५१ ॥

और अनेक नक्षत्रोंसे भूषित उत्तम ढाल और तलवार लेकर सुशिक्षित हाथोंवाले पुरुषके समान अपने हस्तलाघवके सहित घुमाते हुए, पराक्रम दिखाते हुए और अनेक गति विशेषसे युद्धभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ ५१ ॥

भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुच्छ्रितम् ।
चर्मनिस्त्रिंशयो राजन्निर्विशेषमदृश्यत ॥ ५२ ॥

हे राजन् ! वह ढाल तलवार घुमाते, फिराते, गिराते, चलाते और फिर उठाकर इस प्रकारसे शीघ्रतापूर्वक रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे, कि उस समय ढाल और तलवारमें कोई अन्तर ही नहीं दीख पडता था ॥ ५२ ॥

स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन् ।
पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥ ५३ ॥

अभिमन्यु सहसा गर्जते हुए कूदके पौरवके रथके ईषादण्डपर जाचढे और उन्होंने उनके केश पकड लिये ॥ ५३ ॥

जघानास्य पदा सूतमसिनापातयद्ध्वजम् ।
विक्षोभ्याम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तं नागमिव चाक्षिपत् ॥ ५४ ॥

उन्होंने अपने चरणके प्रहारसे पौरवके सारथिको मार डाला और तलवारसे रथकी ध्वजा काट गिरायी। अनन्तर जैसे गरुड समुद्रको क्षोभित करके नागको पकडकर मारते हैं, वैसे ही पौरवको रथसे नीचे फेंक दिया ॥ ५४ ॥

तमाकलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतनम् ॥ ५५ ॥

सम्पूर्ण राजाओंने देखा कि पौरवको अभिमन्युने गिराया है, वे अचेत पडे हैं और उनके सिरके बाल उखड गये हैं, मानो सिंहने किसी वृषभपर आक्रमण किया है ॥ ५५ ॥

तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
पौरवं पतितं दृष्ट्वा नामृष्यत जयद्रथः ॥ ५६ ॥

परन्तु जयद्रथ पौरवको इस प्रकारसे अभिमन्युके वशमें अनाथके समान खींचे जाते हैं और पडे हैं, यह देखकर सहन नहीं कर सका ॥ ५६ ॥

स बर्हिणमहावाजं किङ्किणीशतजालवत् ।
चर्म चादाय खड्गं च नदन्पर्यपतद्रथात् ॥ ५७ ॥

वह मयूर पिच्छ और सैकडों किंकिणीसे युक्त ढाल और तलवार ग्रहण कर गर्जन करता हुआ अपने रथसे कूद पडा ॥ ५७ ॥

ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥ ५८ ॥

अनन्तर अभिमन्यु जयद्रथको अपनी ओर आते देखकर पौरवको छोडके शीघ्र ही पौरवके रथसे कूद पडे और उन्होंने बाजपक्षीकी भांति जयद्रथपर आक्रमण किया ॥ ५८ ॥

प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्शत्रुभिः संप्रवेरितान् ।
विच्छेदाथासिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च ॥ ५९ ॥

फिर वे सब दिशाओंसे शत्रुओंके चलाये हुए प्रास, पट्टिश और दूसरे सब अस्त्र-शस्त्रोंको अपने ढालसे रोकते और तलवारसे काटकर पृथ्वीमें गिरा देते थे ॥ ५९ ॥

स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाथ पुनर्बली ॥ ६० ॥

बलवान् अभिमन्यु सम्पूर्ण सैनिकोंको अपना बाहुबल दिखाते हुए, फिर महान् खड्ग और ढाल हाथमें लेकर ॥ ६० ॥

वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ससाराभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६१ ॥

जैसे हाथीपर बाघ आक्रमण करता है, वैसे अपने पिताके अत्यन्त वैरी वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथकी ओर दौडे ॥ ६१ ॥

तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
हृष्टवत्सम्प्रजहाते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६२ ॥

वे दोनों उस रणभूमिमें सिंह और व्याघ्रकी भांति परस्पर भिडकर हर्षपूर्वक तलवार, दांत नख आदिका आयुधोंके रूपमें उपयोग करके एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ६२ ॥

संपातेष्वभिपातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
न तयोरन्तरं कश्चिद्ददर्श नरसिंहयोः ॥ ६३ ॥

उन पुरुषसिंहोंमें तलवार ढालके चलाने, रोकने और प्रहार करनेकी कलामें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता था ॥ ६३ ॥

अवक्षेपोऽसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥ ६४ ॥

तलवार चलाना, खड्गसंचालनके शब्द, अन्य शस्त्रोंका प्रयोग तथा बाहर और भीतर तलवारका प्रहार समान रूपसे उन दोनोंका दिखाई देता था ॥ ६४ ॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥ ६५ ॥

वे दोनों महात्मा वीर पक्षधारी पर्वतके समान रणभूमिमें गति विशेषसे बाहर और भीतरके मार्गोंमें युद्ध करते हुए दिखाई देने लगे ॥ ६५ ॥

ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ६६ ॥

अनन्तर यशस्वी अभिमन्यु तलवार चला रहे थे, उसी समयमें जयद्रथने अपने तलवारसे अभिमन्युकी ढालपर प्रहार किया ॥ ६६ ॥

रुक्मपक्षान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे ।
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः ॥ ६७ ॥

उस सुवर्णभूषित प्रकाशमान् ढालपर जब सिन्धुराज जयद्रथने खड्गका बलपूर्वक प्रहार किया, तब वह बडा खड्ग टूट गया ॥ ६७ ॥

भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
सोऽदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ६८ ॥

तलवारको टूटी हुई जानकर जयद्रथ शीघ्रतासे दौडकर छः पग चलके क्षणभरमें पुनः अपने रथपर बैठा हुआ दिखाई दिया ॥ ६८ ॥

तं कार्ष्णिं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६९ ॥

और अभिमन्यु भी युद्धसे मुक्त होकर अपने उत्तम रथपर जा चढे। इतनेमें सम्पूर्ण राजाओंने मिलकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६९ ॥

ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
ननादार्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥ ७० ॥

अनन्तर महा बलवान् अर्जुनपुत्र अभिमन्युने तलवार और ढालको ऊपर उठाकर जयद्रथकी ओर देखकर जोरसे सिंहनाद किया ॥ ७० ॥

सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
तापयामास तत्सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥ ७१ ॥

जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत्को तपाते हैं, वैसे ही शत्रुनाशन वीर अभिमन्यु जयद्रथको छोडकर उसकी सम्पूर्ण सेनाको त्रस्त करने लगे ॥ ७१ ॥

तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् ।
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ७२ ॥

तब शल्यने समरमें अभिमन्युकी ओर जलती हुई अग्नि शिखाके समान सुवर्णभूषित एक लोहमयी घोर शक्ति चलाई ॥ ७२ ॥

तामवप्लुत्य जग्राह सकोशं चाकरोदसिम् ।
वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७३ ॥

जैसे गरुड उडते हुए उत्तम सर्पोंको ग्रहण करते हैं, वैसे ही अर्जुनपुत्र अभिमन्युने कूदके उस भयङ्कर शक्तिको हाथसे ग्रहण किया और तलवार म्यानमें रख दी ॥ ७३ ॥

तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चामिततेजसः ।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथानदन् ॥ ७४ ॥

अत्यन्त तेजस्वी अभिमन्युका वह पराक्रम–शक्ति और फुर्ती देखकर, सब राजा एक साथ सिंहनाद करने लगे ॥ ७४ ॥

ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
मुमोच भुजवीर्येण वैडूर्यविकृताजिराम् ॥ ७५ ॥

शत्रुनाशन अभिमन्युने वैडूर्यमणिकी बनी हुई उसी शक्तिको अपनी भुजाओंके बलसे शल्यकी ओर चलाया ॥ ७५ ॥

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ७६ ॥

केंचुलसे छूटकर निकले हुए सर्पके समान दीखनेवाली उस शक्तिने शल्यके रथपर आके उनके सारथिको मारकर, उसे रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ७६ ॥

ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ॥ ७७ ॥

अनन्तर विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकि, केकय, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव और द्रौपदीके पांचों पुत्र अभिमन्युको धन्य धन्य कहके प्रशंसा करने लगे ॥ ७७ ॥

बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादाश्च पुष्कलाः ।
प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
तन्नामृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ७८ ॥

उस समय युद्धमें पीछे न हटनेवाले अभिमन्युको हर्षित करनेके निमित्त युधिष्ठिरकी सेनामें अनेक प्रकारके धनुष बाणके शब्दके सहित बीरोंका महान् सिंहनाद होने लगा । तुम्हारे पुत्र लोग शत्रुओंके विजयके लक्षणरूपी उस हर्षभरे कोलाहलको न सह सके ॥ ७८ ॥

अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ७९ ॥

हे राजन् ! अनन्तर जैसे बादल पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे सब लोग मिलकर चारों ओरसे सहसा अभिमन्युपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७९ ॥

तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवात् ।
आर्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ५४५ ॥

शत्रुनाशन शल्यने अपने सारथिको रथसे गिरते देख, कौरवोंका प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर अभिमन्युपर फिर आक्रमण किया ॥ ८० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ५४५ ॥

: १४ :

धृतराष्ट्र उवाच

बहूनि सुविचित्राणि द्वंद्वयुद्धानि सञ्जय ।
त्वयोक्तानि निशम्याहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! तुमने नाना प्रकारके अत्यन्त विचित्र द्वन्द्व युद्धोंका वर्णन किया है, वह सब वृत्तान्त सुनकर मैं नेत्रवाले लोगोंके सौभाग्यकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥

इस जगत्के सब मनुष्य देवासुर युद्धके समान इस कुरु-पाण्डवोंके युद्धको सदा आश्चर्य-कारक बात कहेंगे ॥ २ ॥

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम् ।
तस्मादार्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३ ॥

इस उत्तम युद्धके वृत्तान्तको सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है, इससे तुम मेरे निकट शल्य और अभिमन्युके युद्धका वृत्तान्त फिर वर्णन करो ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
समुत्क्षिप्य नदन्क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले- अपने सारथिको मारा गया देख शल्य क्रुद्ध होकर, पूर्ण लोहमयी गदा उठाकर गर्जते हुए अपने उत्तम रथसे कूद पडे ॥ ४ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५ ॥

भीमसेन शल्यको प्रज्वलित कालाग्नि और दण्डधारी यमराजके समान अभिमन्युकी ओर आते देखकर अपनी बडी गदा ग्रहण करके अत्यन्त वेगसे शल्यकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ॥ ६ ॥

अभिमन्युने भी वज्र तुल्य महान् गदा ग्रहण की और वह शल्यको युद्धभूमिमें 'आइये आइये' ऐसा कहके पाचारण करने लगे। उस समय भीमसेनने उन्हें बहुत प्रयत्नसे निवारण किया ॥ ६ ॥

वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् ।
शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ७ ॥

प्रतापी भीमसेन अभिमन्युको रोककर, उस संग्रामभूमिमें शल्यके संमुख जाकर अचलरूपसे पर्वतके समान खडे हुए ॥ ७ ॥

तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम् ।
ससाराभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ८ ॥

जैसे सिंह किसी हाथीपर आक्रमण करता है, वैसे ही मद्रराज शल्य भी महा बलवान् भीमसेनको देखकर शीघ्रही उन्हींकी ओर बढे ॥ ८ ॥

ततस्तूर्यनिनादाश्च शङ्खानां च सहस्रशः ।
सिंहनादाश्च संजज्ञुर्भेरीणां च महास्वनाः ॥ ९ ॥

अनन्तर सहस्रों रणवाद्य, शङ्ख, भेरी आदि बाजोंके सहित वीरोंके सिंहनादका महान् शब्द होने लगा ॥ ९ ॥

पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योन्यसमचेतसाम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च साधु साध्विति निस्वनः ॥ १० ॥

तब एक दूसरेके समान उत्साहित मनवाले सैंकडों दर्शकों, कौरवों और पाण्डवोंके साधुवादका महान् शब्द वहां होने लगा ॥ १० ॥

न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ११ ॥

भारत! सब राजाओंमें मद्रराज शल्यके सिवा और कोई दूसरा पुरुष संग्रामभूमिमें भीमसेनके वेगको सहनेका साहस नहीं कर सकता था ॥ ११ ॥

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते लोके कोऽन्यो युधि वृकोदरात् ॥ १२ ॥

और भीमसेनके बिना इस जगत्में दूसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो युद्धमें महात्मा मद्रराज शल्यकी गदाके वेगको सहनेका उत्साह कर सके ? ॥ १२ ॥

पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षिणी ।
प्रजज्वाल तथाविद्धा भीमेन महती गदा ॥ १३ ॥

अनन्तर भीमसेन सुवर्णभूषित महाघोर गदाको जब घुमाने लगे, तब वह प्रज्वलित होकर वहांपर सब लोगोंके चित्तको प्रफुल्लित करने लगी ॥ १३ ॥

तथैव चरतो मार्गान्मण्डलानि च भागशः ।
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा ॥ १४ ॥

इधर शल्य भी महान् बिजलीके समान प्रकाशमान अपनी गदा लेकर जिस समय चारों ओर घूमते हुए मण्डलाकार फिरने लगे, उस समयमें उनकी वह गदा अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ १४ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्जितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥ १५ ॥

शल्य और भीमसेन दोनों वीर पुरुष गदारूपी सींगोंको खडे करके गर्जनेवाले सांडोंके समान मण्डलाकार गतिसे चारों ओर घूमने लगे ॥ १५ ॥

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ १६ ॥

मण्डलाकार गति और गदाके प्रहारके विषयमें उन दोनों महाबली पुरुषोंमें कोई भी किसीसे अधिक नहीं हुआ ॥ १६ ॥

ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा ।
साग्निज्वाला महारौद्रा गदाचूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥

शल्यकी बडी और महा भयंकर गदा भीमसेनकी गदासे टकराकर अग्निकी ज्वालाओंसे युक्त होकर छिन्नभिन्न हो गयी ॥ १७ ॥

तथैव भीमसेनस्य द्विषताभिहता गदा ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाबभौ ॥ १८ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदा भी शत्रुके आघात करनेपर वर्षाकालकी संध्याके समय जुगनुओंसे युक्त वृक्षके समान शोभित हुई ॥ १८ ॥

गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत ।
व्योम संदीपयाना सा ससृजे पावकं बहु ॥ १९ ॥

हे राजन् ! मद्रराज शल्यकी रणभूमिमें चलाई हुई दूसरी गदा मानो अग्निकी बहुत वर्षा करती हुई आकाशको प्रकाशित करने लगी ॥ १९ ॥

तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा ।
तापयामास तत्सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥ २० ॥

उसी प्रकार भीमसेनने शत्रुको लक्ष्य करके चलायी गदा आकाशसे गिरती हुई बडी उल्काके समान कौरवसेनाको पीडित करने लगी ॥ २० ॥

ते चैवोभे गदे श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् ।
श्वसन्त्यौ नागकन्येव ससृजाते विभावसुम् ॥ २१ ॥

गदायुद्ध करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ उन दोनों पुरुषसिंहोंकी भयंकरी गदाएं आपसमें टकराकर, मानो लम्बी श्वास छोडनेवाली दो नागिनियोंकी भांति रगड खाके अग्निकी सृष्टि उत्पन्न करने लगीं ॥ २१ ॥

नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ ।
तौ विचेरतुरासाद्य गदाभ्यां च परस्परम् ॥ २२ ॥

जैसे दो बडे व्याघ्र नखोंसे और दो मतवारे हाथी अपने दांतोंसे आपसमें युद्ध करते हैं, वैसे ही वे दोनों गदाओंसे एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करते थे ॥ २२ ॥

ततो गदाग्राभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २३ ॥

अनन्तर क्षणभरमें वे दोनों महात्मा बीर गदाके अग्रभागसे घायल होकर, रुधिरसे पूरित हो, फूले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान रणभूमिमें दिखाई देने लगे ॥ २३ ॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥ २४ ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंकी गदाओंके खटखटाहटका शब्द इन्द्रके वज्रकी गडगडाहटके समान सब दिशाओंमें सुनाई देने लगा ॥ २४ ॥

गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
नाकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाचलः ॥ २५ ॥

जैसे पर्वत वज्रका आघात होनेपर भी कम्पित नहीं होता, वैसे ही मद्रराज शल्यकी गदासे बांयें और दाहिने पार्श्वसे घायल होके भी भीम विचलित नहीं हुए ॥ २५ ॥

तथा भीमगदावेगैस्ताडयमानो महाबलः ।
धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाहतः ॥ २६ ॥

वैसेही महाबलवान् मद्रराज शल्य भीमसेनकी गदाके वेगसे अत्यन्त पीडित होकर भी धीरज धारण करके मानो वज्रसे भेदित हुए पर्वतके समान अचल रूपसे युद्धभूमिमें खडे रहे ॥२६॥

आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितमहागदौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥

अनन्तर वे दोनों महावेगशाली योद्धा गदा उठाये परस्पर टूट पडे । फिर अन्तर्मार्गमें स्थित हो मण्डलाकार गतिसे घूमने लगे ॥ २७ ॥

अथाप्लुत्य पदान्यष्टौ संनिपत्य गजाविव ।
सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २८ ॥

अनन्तर सहसा आठ पगतक शीघ्र कूद करके दोनों दो हाथियोंके समान एक दूसरेके ऊपर आक्रमण करने लगे और एकाएक लोहेके दण्डोंसे परस्पर मारने लगे ॥ २८ ॥

तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ ।
युगपत्पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥

वे दोनों वीर एक–दूसरेके वेगसे और गदाओंकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर एक ही समयमें इन्द्रध्वजोंके समान पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥

ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३० ॥

तब महारथी कृतवर्मा विह्वल होकर लम्बी श्वासें छोडनेवाले शल्यके समीपमें शीघ्र ही उस ही समय उपस्थित हुए ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाभिनिपीडितम् ।
विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्छयाभिपरिप्लुतम् ॥ ३१ ॥

हे महाराज ! आकर कृतवर्माने मद्रराज शल्यको गदाकी चोटसे पीडित और मूर्च्छासे अचेत हो, ताडित हुए नागके समान तडफडते हुए, देखा ॥ ३१ ॥

ततः सगदमारोप्य मद्राणामधिपं रथम् ।
अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥

तब यह देख, महारथी कृतवर्मा पीडित मद्रराज शल्यको रथपर बिठाकर शीघ्र ही रणभूमिसे बाहर हटा ले गये ॥ ३२ ॥

क्षीबवद्विह्वलो वीरो निमेषात्पुनरुत्थितः ।
भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥ ३३ ॥

महाबाहु वीर भीमसेन भी रणभूमिमें क्षणभर उन्मत्तके समान विह्वल वा मूर्च्छित रहकर उठकर खडे हो गये और हाथमें गदा धारण किये दिखाई देने लगे ॥ ३३ ॥

ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम् ।
सनागरथपत्त्यश्वाः समकम्पन्त मारिष ॥ ३४ ॥

मारिष ! मद्रराज शल्यको रणभूमिसे विमुख हुआ देखकर, हाथी, रथ, पैदल सैनिक, घोडे और तुम्हारे पुत्र भयसे कांपने लगे ॥ ३४ ॥

ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः ।
भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥ ३५ ॥

विजयसे शोभित होनेवाले पाण्डवोंसे पीडित और भयभीत होकर तुम्हारी सेना मानो वायुके झोकसे बादलोंके तितर बितर होनेके समान इधर उधर चारों ओर दौडने लगी ॥ ३५ ॥

निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः ।
व्यरोचन्त रणे राजन्दीप्यमाना यशस्विनः ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! महारथी पाण्डव लोग इस प्रकारसे तुम्हारे पुत्रोंको पराजित करके यशस्वी होकर रणभूमिमें प्रकाशित होने लगे ॥ ३६ ॥

सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च हर्षिताः ।
भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चानकैः सह ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ५८२ ॥

और वे हर्षित होके बार बार सिंहनाद करके, शंख, भेरी, मृदङ्ग, आनक आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंको बजाने लगे ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ५८२ ॥

: १५ :

सञ्जय उवाच

तद्बलं सुमहद्दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान् ।
दधारैको रणे पाण्डून्वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! पराक्रमी वृषसेनने तुम्हारी बडी सेनाको इधर उधर छिन्न भिन्न होती देखकर, अकेले ही अपने अस्त्रोंकी मायासे उन सब लोगोंको फिर युद्धभूमिमें स्थित किया ॥ १ ॥

शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन मारिष ।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् ॥ २ ॥

मारिष ! वे वृषसेनके छोडे हुए बाण शत्रुसेनाके मनुष्य, घोडे, रथ और हाथियोंको भेदकर रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥ २ ॥

तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः ।
भानोरिव महाबाहो ग्रीष्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥

महाबाहो ! जैसे ग्रीष्मऋतुमें सूर्यसे निकलकर हजारों किरणें सब ओर फैलती हैं, वैसे ही वृषसेनके धनुषसे सहस्रों महा तेजस्वी बाण निकलने लगे ॥ ३ ॥

तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा ।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! रथी, घुडसवार और अन्य योद्धा उसके बाणोंसे पीडित होके, मानो प्रचण्डवायुके वेगसे टूटे हुए वृक्षके समान सहसा पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ४ ॥

हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च समन्ततः ।
अपातयद्रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥

राजन् ! महारथी वृषसेनने संग्रामभूमिमें सैकडों सहस्रों घोडों, रथों और हाथियोंके समूहोंको चारों ओरसे मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तमेवं समरे विचरन्तमभीतवत् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥

युद्धभूमिमें वृषसेनको अकेले ही इस तरहसे निर्भयतासे भ्रमण करते हुए देखके सम्पूर्ण राजाओंने एकत्रित होके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६ ॥

नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात् ।
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ७ ॥

नकुलपुत्र शतानीकने वृषसेनपर धावा करके, मर्मभेदी दस नाराच बाणोंसे उनको विद्ध किया ॥ ७ ॥

तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्त्वा केतुमपातयत् ।
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥ ८ ॥

तब कर्णपुत्र वृषसेनने भी शतानीकके धनुषको काटके फिर रथकी ध्वजाको भी गिरा दिया। यह देख द्रौपदीके दूसरे पुत्र अपने भाईकी सहायता करनेके निमित्त वहां उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

कर्णात्मजं शरव्रातैश्चक्रुश्चादृश्यमञ्जसा ।
तान्नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥

उन्होंने शीघ्र ही अपने बाण समूहोंकी वर्षासे कर्णपुत्र वृषसेनको छिपाकर अदृश्य कर दिया। तब अश्वत्थामा प्रभृति महारथी योद्धा लोग सिंहनाद करते हुए उनपर टूट पडे ॥ ९ ॥

छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान्महारथान् ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वताञ्जलदा इव ॥ १० ॥

महाराज ! जैसे बादल पर्वतोंपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे द्रौपदीके पुत्रोंको अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षासे शीघ्र ही आच्छादित करने लगे ॥ १० ॥

तान्पाण्डवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः ।
पाञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः ॥ ११ ॥

तब पुत्रोंकी प्राणरक्षा इच्छिनेवाले पाण्डवोंने तुरंत आकर उनको रोका; उनके साथ पांचाल, केकय, मत्स्य और सृञ्जय देशीय योद्धा शस्त्र ग्रहण करके आये ॥ ११ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥ १२ ॥

जैसे दानवोंके सङ्गमें देवताओंका संग्राम हुआ था, वैसे ही तुम्हारी सेनाके महारथी योद्धाओंके सङ्ग पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंका महाघोर रोएंको खडा करनेवाला संग्राम होने लगा ॥ १२ ॥

एवमुत्तमसंरम्भा युयुधुः कुरुपाण्डवाः ।
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥ १३ ॥
इसी रीतिसे एक-दूसरेके अपराध करनेवाले कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके वीर विजयकी इच्छा करके क्रोधपूर्वक एक दूसरेकी ओर देखके आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

तेषां ददृशिरे कोपाद्वपूंष्यमिततेजसाम् ।
युयुत्सूनामिवाकाशे पतत्रिवरभोगिनाम् ॥ १४ ॥
क्रोधके वशमें होकर युद्ध करनेवाले महातेजस्वी शूरवीरोंके शरीर आकाशमें युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए पक्षिराज गरुड और सर्पोंके समान दिखाई देने लगे ॥ १४ ॥

भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः ।
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्यैरिवोदितैः ॥ १५ ॥
वह रणभूमि भीमसेन, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न और सात्यकि आदि महावीरोंके तेजसे ऐसे शोभित हुई, जैसे प्रलयकालके सूर्योंका उदय हुआ हो ॥ १५ ॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ।
महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥ १६ ॥
आपसमें एक दूसरेके ऊपर अस्त्रोंको चलानेवाले उन महावीर योद्धाओंका ऐसा संग्राम होने लगा, जैसे महाबलवान् दानवोंके संग बलवान् देवताओंका युद्ध हुआ था ॥ १६ ॥

ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धूतार्णवनिस्वनम् ।
त्वदीयमवधीत्सैन्यं संप्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥
अनन्तर समुद्रके मंथनके समान गर्जनके शब्दके सहित युधिष्ठिरकी सेना तुम्हारी सेनाका संहार करने लगी; उससे तुम्हारी सेनाके महारथी योद्धा भी भाग गये ॥ १७ ॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥ १८ ॥
द्रोणाचार्य अपनी सेनाको शत्रुओंसे बहुत रौंदी जाकर भागती हुई देखकर बोले—' हे शूरवीर पुरुषो ! आप लोगोंको युद्धसे भागना उचित नहीं है ' ॥ १८ ॥

ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः ।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ १९ ॥
ऐसा वचन कहकर लाल घोडेवाले द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होके चार दांतवाले गजराजके समान वेगपूर्वक पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ १९ ॥

×

तमविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥
युधिष्ठिरने कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया । द्रोणाचार्य उनके धनुषको अपने बाणोंसे काटके वेगसे उनकी ओर दौडे ॥ २० ॥

चक्ररक्षः कुमारस्तु पाञ्चालानां यशस्करः ।
दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥ २१ ॥
जैसे तटकी भूमि समुद्रको सीमासे आगे नहीं बढने देती, वैसे ही युधिष्ठिरके चक्ररक्षक पाञ्चालोंके यशको बढानेवाले कुमारने आते हुए द्रोणाचार्यको रोक दिया ॥ २१ ॥

द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् ।
सिंहनादरवो ह्यासीत्साधु साध्विति भाषताम् ॥ २२ ॥
ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको कुमारसे निवारित देखकर पाण्डवोंकी सेनाके सब शूरवीर योद्धा सिंहनाद कर ' धन्य धन्य ' कहके उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ २२ ॥

कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्चानदन्मुहुः ॥ २३ ॥
कुमारने महायुद्धमें क्रुद्ध होकर बार बार सिंहनाद करते हुए एक बाणसे द्रोणाचार्यको वक्षस्थलमें विद्ध किया ॥ २३ ॥

संवार्य तु रणे द्रोणः कुमारं वै महाबलः ।
शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितक्लमः ॥ २४ ॥
महाबलवान् द्रोणने युद्धमें कुमारको कई हजार बाणोंसे रोक दिया, कारण कि वे सिद्ध हस्त थे और उन्होंने परिश्रमको जीत लिया था ॥ २४ ॥

तं शूरमार्यव्रतिनमस्त्रार्थकृतनिश्रमम् ।
चक्ररक्षमपामृद्नात्कुमारं द्विजसत्तमः ॥ २५ ॥
ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने उस शूरवीर, श्रेष्ठ पुरुषोंके व्रतमें स्थित, महा अस्त्रोंके जाननेवाले और श्रमको जीतनेवाले चक्ररक्षक कुमारको पराजित किया ॥ २५ ॥

स मध्यं प्राप्य सेनायाः सर्वाः परिचरन्दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्तासीद्भारद्वाजो रथर्षभः ॥ २६ ॥
अनन्तर भरद्वाजनन्दन रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य जो तुम्हारी सेनाके रक्षक थे, वे सम्पूर्ण सेनाके बीचमें प्रवेश करके सब दिशाओंमें घूमने लगे ॥ २६ ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
नकुलं पञ्चभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २७ ॥

उन्होंने बारह बाणोंसे शिखण्डी, बीस बाणोंसे उत्तमौजा, पांच बाणोंसे नकुल और सात बाणोंसे सहदेवको विद्ध किया ॥ २७ ॥

युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
सात्यकिं पञ्चभिर्विद्ध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥

बारह बाणोंसे राजा युधिष्ठिर, तीन तीन बाणोंसे द्रौपदीके पुत्रों, पांच बाणोंसे सात्यकि और दस बाणोंसे राजा बिराटको विद्ध किया ॥ २८ ॥

व्यक्षोभयद्रणे योधान्यथामुख्यानभिद्रवन् ।
अभ्यवर्तत संप्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ २९ ॥

फिर युद्धमें मुख्य मुख्य वीरोंपर धावा करके उनको भयभीत किया और अन्तमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे ॥ २९ ॥

युगंधरस्ततो राजन्भारद्वाजं महारथम् ।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धूतमिवार्णवम् ॥ ३० ॥

हे राजन् ! अनन्तर युगन्धरने वायुके झोंकेसे विक्षुब्ध हुए समुद्रके समान क्रुद्ध हुए महारथी द्रोणाचार्यको युधिष्ठिरके संमुख आते देखकर रोक दिया ॥ ३० ॥

युधिष्ठिरं स विद्ध्वा तु शरैः संनतपर्वभिः ।
युगंधरं च भल्लेन रथनीडादपाहरत् ॥ ३१ ॥

तब द्रोणाचार्यने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको विद्ध करके, एक भल्लबाणसे युगन्धरका वध करके उनको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ३१ ॥

ततो बिराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिबिः ।
व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

अनन्तर बिराट, द्रुपद, केकयराज, सात्यकि, शिबि, पाञ्चाल योद्धा व्याघ्रदत्त और पराक्रमी सिंहसेन ॥ ३२ ॥

एते चान्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
आववुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान्बहून् ॥ ३३ ॥

ये तथा और दूसरे बहुतेरे योद्धाओंने राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके निमित्त आगे बढकर अनेक बाणोंको चलाकर द्रोणाचार्यके मार्गको रुद्ध करके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३३ ॥

व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।
पञ्चाशद्भिः शितै राजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! पाञ्चाल योद्धा व्याघ्रदत्तने पचास तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया; उसे देखके पाण्डवोंकी ओरके योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ ३४ ॥

त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विद्ध्वा महारथम् ।
प्राहसत्सहसा हृष्टस्त्रासयन्वै यतव्रतम् ॥ ३५ ॥

हर्षित सिंहसेन भी शीघ्रताके सहित महारथी यतव्रती द्रोणाचार्यको विद्ध कर, उनको व्याकुल करके सहसा जोरसे हंसने लगे ॥ ३५ ॥

ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥

तब द्रोणाचार्य सिंहसेनकी ओर क्रोधपूर्वक आंखे फाड फाडकर देख, धनुषकी डोरी साफ कर महान् टङ्कारके शब्दसे युद्धभूमिको पूरित करते हुए सिंहसेनकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥

ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
व्याघ्रदत्तस्य चाक्रम्य भल्लाभ्यामहरद्बली ॥ ३७ ॥

अनन्तर बलवान् द्रोणने आक्रमणके साथ ही दो भल्लबाणोंसे सिंहसेन और व्याघ्रदत्तके शरीरसे उनके कुण्डलोंके सहित सिरोंको काटके पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ३७ ॥

तान्प्रमृद्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् ।
युधिष्ठिरसमभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवान्तकः ॥ ३८ ॥

अनन्तर अपने बाणसमूहोंसे पाण्डवोंके उन अन्य महारथी वीरोंको विकल करके, विनाशक यमराजके समान धर्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥

ततोऽभवन्महाशब्दो राजन्यौधिष्ठिरे बले ।
हृतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥

राजन् ! यतव्रती द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके बहुत नजीक आनेपर, युधिष्ठिरकी सेनामें 'राजा युधिष्ठिर मारे गये' ऐसा महा घोर कोलाहल होने लगा ॥ ३९ ॥

अब्रुवन्सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् ।
अद्य राजा धार्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ।
आगमिष्यति नो नूनं धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४० ॥

वहां तुम्हारी सेनाके सैनिक द्रोणाचार्यका पराक्रम देखकर कहने लगे, आज धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनका मनोरथ पूर्ण हो जायगा; अब निश्चय ही युद्धमें द्रोणाचार्य हमारे राजा दुर्योधनके समीप उपस्थित होंगे ॥ ४० ॥

एवं संजल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥ ४१ ॥
जब तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग इसी भांति कह रहे थे, उसही समय कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन अपने रथके शब्दसे पृथ्वीको अनुनादित करते हुए बडे वेगसे वहां आ पहुंचे ॥४१॥

शोणितोदां रथावर्तां कृत्वा विशसने नदीम् ।
शूरास्थिचयसंकीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥ ४२ ॥
वे रुधिररूपी जल, रथरूपी भंवर, शूरवीरोंकी हड्डियांरूपी शिलाखण्डोंसे परिपूर्ण, भूत प्रेतोंसे सेवित तटसे युक्त और उनको बहानेवाली, सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेवाली भयङ्करी नदी उत्पन्न करके वहांपर आके उपस्थित हुए ॥ ४२ ॥

तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ।
नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून्विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४३ ॥
उस नदीमें बाणोंके समुदाय महाफेन, प्रास आदि शस्त्र मत्स्य थे; उस नदीको वेगपूर्वक पार करके कौरव सैनिकोंको भगाकर पाण्डुपुत्र अर्जुन आये ॥ ४३ ॥

ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४४ ॥
अनन्तर किरीटधारी अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनापर सहसा आक्रमण किया; वे बाणोंके महान् समूहोंसे मोहित करते हुए आच्छादित करने लगे ॥ ४४ ॥

शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्संदधानस्य चानिशम् ।
नान्तरं ददृशे कश्चित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४५ ॥
यशस्वी कुन्तीपुत्र अर्जुन इतनी शीघ्रतासे बाणोंको अखंड सन्धान करने तथा चलाने लगे, कि किसीको इसमें तनिक भी अन्तर नहीं दिखाई दिया ॥ ४५ ॥

न दिशो नान्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी ।
अदृश्यत महाराज बाणभूतमिवाभवत् ॥ ४६ ॥
महाराज ! उस समय अर्जुनके बाणोंसे दिशा, अन्तरिक्ष, आकाश और पृथ्वी आदि कुछ भी नहीं दीख पडती थी, सम्पूर्ण स्थान बाणमय हो गया ॥ ४६ ॥

नादृश्यत तदा राजंस्तत्र किंचन संयुगे ।
बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥ ४७ ॥
राजन् ! गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने लगातार अपने बाणोंको चलाकर सम्पूर्ण युद्धभूमिमें महान् अन्धकार फैला दिया । उसमें कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ४७ ॥

सूर्यें चास्तमनुप्राप्ते रजसा चाभिसंवृते ।
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च किंचन ॥ ४८ ॥

उस समय सूर्य अस्ताचलको चले गये । सब भूमि धूलिसे परिपूर्ण हो गयी; तब उस दशामें शत्रु, मित्र कोई भी नहीं पहचाना जाता था ॥ ४८ ॥

ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।
तान्विदित्वा भृशं त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥ ४९ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि कौरव लोगोंने अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त किया। शत्रुओंको बहुत भयभीत और वे युद्धसे परावृत्त मनके हो गये यह जानकर ॥ ४९ ॥

स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।
ततोऽभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पाण्डुसृञ्जयाः ।
पाञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ॥ ५० ॥

अर्जुनने भी धीरे धीरे अपनी सेनाको भी युद्धसे निवृत्त किया । जैसे ऋषिलोग सूर्यदेवकी स्तुति करते हैं, वैसे ही पाण्डव, सृञ्जय और पाञ्चाल योद्धा लोग प्रसन्न चित्तसे अर्जुनकी मधुर बचनोंसे प्रशंसा करने लगे ॥ ५० ॥

एवं स्वशिबिरं प्रायाज्जित्वा शत्रून्धनंजयः ।
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै सकेशवः ॥ ५१ ॥

इसी प्रकारसे शत्रुओंको जीतकर श्रीकृष्णके सहित अर्जुनने अपनी सम्पूर्ण सेनाके पीछे प्रसन्नतासे अपने शिविरोंकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥

मसारगल्वर्कसुवर्णरूप्यैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।
चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ समाप्तं द्रोणाभिषेकपर्व ॥ ६३४ ॥

जैसे नक्षत्रोंसे चित्रित आकाशमें चन्द्रमा विराजमान होता है, वैसे ही पाण्डुपुत्र अर्जुन अत्यन्त सुन्दर चन्द्रकान्त, मरकत, सूर्यकान्त, सुवर्ण, रौप्य, हीरा, प्रबाल और स्फटिक आदि श्रेष्ठ मणियोंसे विभूषित रथपर शोभित होने लगे ॥ ५२ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ द्रोणाभिषेकपर्व समाप्त ॥ ६३४ ॥

: १६ :

संजय उवाच

ते सेने शिबिरं गत्वा न्यविशेतां विशां पते ।
यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मं च सर्वशः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे प्रजानाथ ! युद्धसे निवृत्त होनेपर वे दोनों सेनाएं विधिपूर्वक अपने शिबिरोंपर उपस्थित हुईं । अपने नियुक्त विभाग और दलमें यथायोग्य रीतिसे ठहर गईं ॥ १ ॥

कृत्वावहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

तब सैनिकोंको युद्धसे निवृत्त करके अत्यंत दुःखित मनसे द्रोणाचार्य दुर्योधनको देखके अत्यन्त लज्जित होकर यह वचन बोले ॥ २ ॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनंजये ।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

मैंने पहिले ही कहा था, कि युद्धभूमिमें अर्जुनके रहते हुए देवता लोग भी युधिष्ठिरको नहीं ग्रहण कर सकेंगे ॥ ३ ॥

इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।
मातिशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥

आप लोगोंके अत्यन्त यत्नवान् होनेपर भी, संमुखहीमें अर्जुनने युद्धमें मेरे कहनेको सत्य कर दिखाया है । इससे ' श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धमें मेरे लिये अजेय हैं, ' मेरे इस वचनमें कुछ भी शंका न करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने ।
तत एष्यति ते राजन्वशमद्य युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! यदि किसी उपायसे श्वेतवाहन अर्जुनको युधिष्ठिरके समीपसे हटा दिया जांय, तो राजा युधिष्ठिर आज मेरे वशमें हो सकेंगे ॥ ५ ॥

कश्चिदाह्वयतां संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु ।
तमजित्वा तु कौन्तेयो न निवर्तेत्कथञ्चन ॥ ६ ॥

कोई पुरुष युद्धके निमित्त अर्जुनको आवाहन करके दूसरे स्थानमें ले जावे, तो कुन्तीपुत्र अर्जुन विना उसे युद्धमें पराजित किये कदापि संग्रामसे निवृत्त न हो सकेंगे ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप।
ग्रहीष्यामि चमूं भित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥

राजन् ! इस ही एकान्त समयमें मैं पाण्डवोंकी सेनाको भेद करके, धृष्टद्युम्नके देखते ही धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण कर लूंगा ॥ ७ ॥

अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम्।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतमिति विद्धि तम् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर यदि मुझे युद्धमें उनके पास आता हुआ देखकर, अर्जुनके निकट न रहनेके कारण, रणभूमि छोडके मेरे सम्मुखसे भाग न जावेंगे, तो तुम उनको पकडा हुआ निश्चय ही समझ रक्खो ॥ ८ ॥

एवं ते सहसा राजन्धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९ ॥
यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्तमपि पाण्डवः।
अथापयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते ॥ १० ॥

हे महाराज ! यदि वे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर युद्धभूमिमें मुहूर्तभर ही अर्जुनके बिना खडे रहेंगे, तो मैं तुम्हारे लिये धर्मपुत्र युधिष्ठिरको आज सहसा उनके अनुयायियोंके सहित तुम्हारे वशमें कर दूंगा, इसमें संशय नहीं है; और यदि वे रणभूमिसे भाग जायंगे, तो भी यह हमारी विजयसे भी अधिक है ॥ ९-१० ॥

द्रोणस्य तु वचः श्रुत्वा त्रिगर्ताधिपतिस्ततः।
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

हे राजन् ! अनन्तर द्रोणाचार्यके वचनको सुनकर त्रिगर्त्तराज अपने भाइयोंके सहित यह वचन बोले ॥ ११ ॥

वयं विनिकृता राजन्सदा गाण्डीवधन्वना।
अनागःस्वपि चागुस्कृदस्मासु भरतर्षभ ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! गाण्डीवधारी अर्जुनने बार बार हमलोगोंका अपमान किया है, हमलोग निरपराधी थे, तो भी उन्होंने हमारे प्रति अपराध किया है ॥ १२ ॥

ते वयं स्मरमाणास्तान्विनिकारान्पृथग्विधान्।
क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशाः ॥ १३ ॥

उनके उन सब पृथक् पृथक् किये गये अत्याचारोंको स्मरण करके हमलोग क्रोधरूपी अग्निमें जले जाते हैं; रात्रिके समय हम लोगोंको अच्छी प्रकारसे निद्रा भी नहीं लगती है ॥ १३ ॥

स नो दिव्यास्त्रसंपन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
कर्तारः स्म वयं सर्वं यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥ १४ ॥

अब अर्जुन रणभूमिमें दिव्य अस्त्रशस्त्रधारी होकर हमारी आंखोंके संमुख आ गये हैं; इसलिये हम लोगोंको जिस कार्यके करनेकी बहुत दिनसे अभिलाषा थी, उसे आज पूर्ण करेंगे ॥१४॥

भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकं च यशस्करम् ।
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यायोधनाद्बहिः ॥ १५ ॥

हम लोग उन अर्जुनको संग्रामभूमिसे बाहर बुलाकर युद्ध करके उसका वध करेंगे; ऐसा होनेहीसे तुम्हारा प्रिय कार्य और हम लोगोंका यश विख्यात होगा ॥ १५ ॥

अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्ताथ वा पुनः ।
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ १६ ॥

आज पृथ्वी अर्जुनसे रहित होगी, वा त्रिगर्त्तराजाओंसे शून्य हो जावेगी। हमलोगोंने तुम्हारे समीपमें यह सत्य प्रतिज्ञा की है, यह कदापि मिथ्या न होवेगी ॥ १६ ॥

एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यधर्मा च भारत ।
सत्यवर्मा च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥

भारत ! सुशर्माके ऐसा कहनेपर सत्यरथ, सत्यधर्मा, सत्यवर्मा, सत्येषु और सत्यकर्मा इन उसके ॥ १७ ॥

सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च ।
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८ ॥

पांचों भाईयोंने उसको साथ दिया। उनके साथ दस हजार रथियोंकी सेना थी, महाराज ! ये सब प्रतिज्ञा करके युद्ध करनेके निमित्त लौटे थे ॥ १८ ॥

मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १९ ॥

तीस हजार रथियोंके सहित त्रिगर्त्त देशीय प्रस्थलाधिपति, ऐसी प्रतिज्ञा करके पुरुषसिंह सुशर्मा मालव तुण्डिकेर ॥ १९ ॥

माचेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि ।
रथानामयुतेनैव सोऽशपद्भ्रातृभिः सह ॥ २० ॥

माचेल्लक, ललित्थ, मद्र देशीय सब तथा दस हजार रथियोंसे युक्त अपने भाइयोंके सहित युद्धके निमित्त गमन करने लगे ॥ २० ॥

नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
समुत्थितं विशिष्टानां संशप्तार्थमुपागतम् ॥ २१ ॥

अनन्तर अनेक देशोंसे आये हुए दस हजार श्रेष्ठ महारथी भी शपथ करनेके लिये उठकर इकठे हुए ॥ २१ ॥

ततो ज्वलनमादाय हुत्वा सर्वे पृथक्पृथक् ।
जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥ २२ ॥

अनन्तर उन लोगोंने अग्निको लाकर पृथक् रूपसे हवन कर, कुश, वस्त्र और विचित्र कवचोंको ग्रहण किया ॥ २२ ॥

ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥ २३ ॥

वे सब वीर कवचधारी, घृतसे डूबे हुए कुश और चीर धारण करनेवाले और मौर्वी नामक तृणकी मेखलाधारी थे; वे पहले यज्ञ करके सैकडों सहस्रों प्रकारकी दक्षिणा देनेवाले थे ॥ २३ ॥

यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
योक्ष्यमाणास्तदात्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥

वे सब वीर पदसे पुकारे जानेके योग्य यज्ञ करनेवाले, पुत्रवान्, लोकोंमें विख्यात और कृतकृत्य थे । वे युद्धमें शरीरका त्याग करके, अपने आपको यश और विजय युक्त करना चाहते थे ॥ २४ ॥

ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।
प्राप्य लोकान्सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥

ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और उत्तम दक्षिणावाले यज्ञोंसे जो सब पुण्य लोक प्राप्त होते हैं, उन लोकोंको वे उत्तम धर्म युद्धसे जानेकी इच्छा करते थे ॥ २५ ॥

ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान्दत्त्वा पृथक्पृथक् ।
गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्परम् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करके उन्हें पृथक् पृथक् स्वर्णमुद्रा, वस्त्र, गौओं आदि दान देके उन्होंने संतुष्ट किया । फिर आपसमें विचार करके ॥ २६ ॥

प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणे व्रतम् ।
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥

अग्नि जलाके, अग्निके समीप खडे हो युद्धका व्रत ले अग्निके सामनेही दृढ निश्चयके सहित प्रतिज्ञा की ॥ २७ ॥

शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचः स्म मेनिरे ।
धृत्वा धनंजयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ २८ ॥

उन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनते हुए ऊंचे स्वरसे अर्जुनका वध करनेके लिये निश्चयपूर्वक प्रतिज्ञा की और उच्च स्वरसे बोले— ॥ २८ ॥

ये वै लोकाश्चानृतानां ये चैव ब्रह्मघातिनाम् ।
पानपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥ २९ ॥

जो लोग मिथ्या वादी, ब्रह्महत्यारे, मद्य पीनेवाले, गुरुपत्नीगामी ॥ २९ ॥

ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।
शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ॥ ३० ॥

ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाले, राजाके दिये हुए अन्नको छीन लेनेवाले, शरणागत पुरुषोंको त्यागनेवाले, याचना करनेवालोंको मारनेवाले, ॥ ३० ॥

अगारदाहिनां ये च ये च गां निघ्नतामपि ।
अपचारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥ ३१ ॥

घरमें आग लगानेवाले, गो हत्या करनेवाले, अनैतिक वर्णन करनेवाले, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले, ॥ ३१ ॥

जायां च ऋतुकाले वै ये मोहादभिगच्छताम् ।
श्राद्धसंगतिकानां च ये चाप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥

मोहके वशमें होकर ऋतुकालमें अपनी भार्याके साथ समागम करनेवाले, श्राद्धके दिन मैथुन करनेवाले, अपनी जाती गुप्त रखनेवाले, ॥ ३२ ॥

न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
कोपेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥

दूसरेके धनको हरण करनेवाले, अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करनेवाले, क्रोधयुक्त होकर युद्ध करनेवाले, नीच लोगोंका अनुसरण करनेवाले, ॥ ३३ ॥

नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निहोरापितृत्यजाम् ।
तानाप्नुयामहे लोकान्ये च पापकृतामपि ॥ ३४ ॥

नास्तिक, अग्नि, होरा और पितृत्यागी तथा जो लोग और भी दूसरे अनेक प्रकारके पापाचरण करते हैं; इनको जो लोक मिलते हैं, वे ही पापमय लोक हमें प्राप्त हों ॥ ३४ ॥

यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्तेम धनंजयम् ।
तेन चाभ्यर्दितास्त्रासाद्भवेम हि पराङ्मुखाः ॥ ३५ ॥

हम लोग यदि युद्धमें बिना अर्जुनको मारे ही निवृत्त होवें, अथवा उनके अस्त्रोंसे पीडित होके यदि भयके युद्धभूमिसे पराङ्मुख होवें; तो ऐसा होनेपर वे पापमय लोक हमें प्राप्त हों ॥ ३५ ॥

यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
इष्टान्पुण्यकृतां लोकान्प्राप्नुयाम न संशयः ॥ ३६ ॥

यदि हमलोग युद्धमें अलौकिक पराक्रम प्रकाशित करके अर्जुनको मारकर लोकमें कठिन कर्म कर सकें, तब तो हम लोगोंके अभिलषित पुण्य लोकोंको अवश्य ही प्राप्त होवेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥ ३७ ॥

हे राजन् ! वे लोग इसी प्रकारसे प्रतिज्ञा कर पितृसेवित दक्षिण दिशाकी ओर अर्जुनको आवाहन करके युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ३७ ॥

आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरंजयः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

शत्रुनगरीको जीतनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन उन पुरुषसिंहोंके बुलानेपर उसी समय धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले, ॥ ३८ ॥

आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति पुनः पुनः ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! मेरा यही व्रत है, कि यदि कोई युद्धके निमित्त मुझे आवाहन करेगा, तो मैं कदापि युद्धसे निवृत्त न होउंगा । ये संशप्तक बार बार मुझे बुला रहे हैं ॥ ३९ ॥

एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माह्वयते रणे ।
वधाय सगणस्यास्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥

यह सुशर्मा अपने भाइयोंके संग मिलकर मुझे युद्धके लिये आवाहन कर रहा है; इसलिये अनुयायियोंके सहित इस सुशर्माके वधके निमित्त आप मुझे युद्ध करनेके लिये आज्ञा दीजिए ॥ ४० ॥

नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतान्विद्धि परान्युधि ॥ ४१ ॥

हे पुरुषर्षभ ! मैं युद्धमें किसीके आवाहनको नहीं सह सकता । मैं तुम्हारे निकटमें यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि युद्धमें शत्रुलोग अवश्य मारे जावेंगे; इसको आप निश्चय ही सत्य समझिये ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतमेतत्त्वया तात यद्द्रोणस्य चिकीर्षितम् ।
यथा तदनृतं तस्य भवेत्तद्वत्समाचर ॥ ४२ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले– हे तात ! तुमने द्रोणाचार्य क्या करना चाहते हैं, यह सुना ही है, इससे जिसमें उनका वह मनोरथ सिद्ध न हो सके उस ही उपायका विधान करो ॥ ४२ ॥

द्रोणो हि बलवाञ्छूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः ।
प्रतिज्ञातं च तेनैतद्ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३ ॥

हे महारथ अर्जुन ! द्रोणाचार्य बलवान्, शूर और सब अस्त्र–शस्त्रोंके जाननेवाले तथा युद्धमें अत्यन्त ही निपुण हैं, उन्होंने मेरे ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४३ ॥

अर्जुन उवाच

अयं वै सत्यजिद्राजन्नद्य ते रक्षिता युधि ।
ध्रियमाणे हि पाञ्चाल्ये नाचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४ ॥

अर्जुन बोले– हे राजन् ! ये योद्धाओंमें श्रेष्ठ पाञ्चाल सत्यजित् आज तुम्हारी युद्धमें रक्षा करेंगे; इनके जीवित रहते आचार्यका मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा ॥ ४४ ॥

हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो ।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथंचन ॥ ४५ ॥

हे राजेन्द्र ! यदि यह पुरुषसिंह सत्यजित युद्धमें मारे जाएं, तो उस समय यदि सम्पूर्ण सेनाके योद्धा मिलकर भी रणभूमिमें तुम्हारी रक्षा करें, तो भी तुम कदापि युद्धभूमिमें न ठहरना ॥ ४५ ॥

संजय उवाच

अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फल्गुनः ।
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा आशिषा च प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

सञ्जय बोले– तब राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको प्रीतिपूर्वक देखके आलिङ्गन किया, फिर उनको युद्धके निमित्त आज्ञा देकर अनेक प्रकारका आशीर्वाद प्रदान किया ॥ ४६ ॥

विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्तान्प्रत्ययाद्बली ।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥ ४७ ॥

अनन्तर बलवान् अर्जुन युधिष्ठिरसे ऐसाही कहकर उनकी आज्ञा लेकर उन्हें वहीं छोडकर त्रिगर्त्तोंकी ओर इस प्रकारसे दौडे, जैसे भूखा सिंह अपनी क्षुधाकी शान्तिके निमित्त मृगोंके समूहकी ओर दौडता है ॥ ४७ ॥

ततो दौर्योधनं सैन्यं मुदा परमया युतम् ।
गतेऽर्जुने भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥ ४८ ॥

अनन्तर अर्जुनके जानेके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुनसे रहित हुए, तब दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेना अत्यन्त हर्षित होकर उनको ग्रहण करनेके निमित्त क्रुद्ध होकर प्रयत्न करने लगी ॥ ४८ ॥

ततोऽन्योन्येन ते सेने समाजग्मतुरोजसा ।
गङ्गासरय्वोर्वेगेन प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ६८३ ॥

इसके अनन्तर जैसे वर्षाकालमें गङ्गा और सरयू नदीके प्रबल प्रवाहका वेग आपसमें मिलता है, वैसे ही कौरव और पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाएं दोनों ओरसे बलपूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुईं ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ६८३ ॥

: १७ :

सञ्जय उवाच

ततः संशप्तका राजन्समे देशे व्यवस्थिताः ।
व्यूह्यानीकं रथैरेव चन्द्राधोख्यं मुदान्विताः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अनन्तर संशप्तक वीर लोग रथोंसे ही समान भूमिमें अर्द्धचंद्र व्यूह बनाकर परम हर्षके सहित युद्ध करनेके निमित्त स्थित हुये ॥ १ ॥

ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष ।
उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥ २ ॥

मारिष ! वे सब पुरुषसिंह किरीटधारी अर्जुनको आते हुए देखकर प्रसन्नतापूर्वक जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ २ ॥

स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत् ।
आवृतत्वाच्च लोकस्य नासीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥

उस सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशा, प्रदिशा और आकाश व्याप्त हो गया; इस प्रकार सम्पूर्ण लोक ही उस शब्दसे पूरित हो जानेसे वहां दूसरी प्रतिध्वनि सुनाई नहीं पडी ॥ ३ ॥

अतीव संप्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनंजयः ।
किंचिदभ्युत्स्मयन्कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अर्जुन उन लोगोंको अत्यन्त हर्षित देखकर हंसते हुए श्रीकृष्णसे बोले ॥ ४ ॥

पश्यैतान्देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे ।
भ्रातॄंस्त्रैगर्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥ ५ ॥

हे देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ! यह देखो, त्रिगर्त राज आज भाइयोंके सहित युद्धभूमिमें मरनेकी इच्छा करके, रोनेके विषयमें हर्षित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

अथ वा हर्षकालोऽयं त्रैगर्तानामसंशयम् ।
कुनरैर्दुरवापान्हि लोकान्प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥

अथवा इन त्रिगर्त लोगोंका यथार्थ ही यह हर्षका समय है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि अधम पुरुषोंके प्राप्त न होने योग्य उत्तम लोकोंमें ये सब लोग गमन करेंगे ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
आससाद रणे व्यूढां त्रैगर्तानामनीकिनीम् ॥ ७ ॥

महाबाहु अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रसे ऐसा वचन कहके युद्धभूमिमें व्यूहबद्ध त्रिगर्त सेनापर धावा किया ॥ ७ ॥

स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम् ।
दध्मौ वेगेन महता फल्गुनः पूरयन्दिशः ॥ ८ ॥

अनन्तर अर्जुनने अपने देवदत्त नामक सुवर्णभूषित शंखको ग्रहण करके बडे वेगसे बजाया, उसके महा घोर शब्दसे सम्पूर्ण दिशाएं परिपूर्ण हो गई ॥ ८ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
निश्चेष्टावस्थिता संख्ये अश्मसारमयी यथा ॥ ९ ॥

उस महा भयङ्कर शब्दसे भयभीत होकर संशप्तक वीरोंकी सम्पूर्ण सेना लोहेकी प्रतिमाके समान चेतनारहित होके युद्धभूमिमें खडी रही ॥ ९ ॥

वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः ।
विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुस्रुवुः ॥ १० ॥

उनके घोडे भयसे विकल होके आंख फाडकर देखने लगे, उनके कान और गर्दन स्तब्ध हो गये, चारों पैर सिकोड गये और वे मूत्र और रुधिर त्यागने लगे ॥ १० ॥

उपलभ्य च ते संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
युगपत्पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥ ११ ॥

अनन्तर वे योद्धा सावधान होकर अपनी सेनाको नियमपूर्वक स्थिर करके, एक ही साथ अर्जुनके ऊपर कङ्कपत्र युक्त बाणोंको चलाने लगे ॥ ११ ॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि दश पञ्चैव चाशुगैः ।
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाशुपराक्रमः ॥ १२ ॥

द्रुत पराक्रमी अर्जुनने उन सहस्रों बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही दस और पांच बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ १२ ॥

ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्रत्यविध्यंस्ततः पार्थस्तानविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १३ ॥

अनन्तर उन वीरोंने अर्जुनको दस दस तीक्ष्ण बाणोंसे फिर विद्ध किया; तब अर्जुनने भी तीन तीन बाणोंसे उन लोगोंको विद्ध किया ॥ १३ ॥

एकैकस्तु ततः पार्थं राजन्विव्याध पञ्चभिः ।
स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥ १४ ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर उनमेंसे एक-एकने पांच पांच बाणोंसे अर्जुनको फिर विद्ध किया, तब पराक्रमी अर्जुनने दो दो बाणोंसे उन लोगोंको विद्ध किया ॥ १४ ॥

भूय एव तु संरब्धास्तेऽर्जुनं सहकेशवम् ।
आपूरयञ्शरैस्तीक्ष्णैस्तटाकमिव वृष्टिभिः ॥ १५ ॥

जैसे मेघ जलकी वर्षा करके तालावको परिपूर्ण कर देते हैं, वैसे ही उन वीरोंने क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके श्रीकृष्ण सहित अर्जुनको परिपूरित कर दिया ॥ १५ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति ।
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लद्रुमगणे वने ॥ १६ ॥

जैसे वनमें भंवरोंके झुण्ड फूले हुए वृक्षोंके ऊपर एकवारही गिरते हैं, वैसे ही सहस्रों बाण अर्जुनके ऊपर गिरने लगे ॥ १६ ॥

ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैर्दृढैः ।
अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥

अनन्तर सुबाहुने अर्जुनके किरीटमें लोहेके बने हुए तीस बाणोंसे गाढा प्रहार किया ॥१७॥

तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १८ ॥

सुवर्णपंखमय सीधे जानेवाले वे बाण उनके किरीटमें लगे हुए थे, उन बाणोंसे किरीटधारी अर्जुनकी शोभा, स्वर्णमय मुकुटसे युक्त समुच्छ्रित यूपके समान दीखती थी ॥ १८ ॥

हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः ।
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥

अर्जुनने उसही समय भल्लसे सुबाहुके अंगुलित्राणको काट दिया और फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया ॥ १९ ॥

ततः सुशर्मा दशभिः सुरथश्च किरीटिनम् ।
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समर्पयन् ॥ २० ॥

अनन्तर सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहुने दस दस बाणोंसे फिर अर्जुनको विद्ध किया ॥ १९ ॥

तांस्तु सर्वान्पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः ।
प्रत्यविध्यद्ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद काञ्चनान् ॥ २१ ॥

कपिध्वजावाले अर्जुनने पृथक् रूपसे उन पाचों वीरोंको अपने बाणोंसे विद्ध करके, उनके रथकी सुवर्णभुषित ध्वजाओंको काटके गिरा दिया ॥ २१ ॥

सुधन्वनो धनुश्छित्वा हयान्वै न्यवधीच्छरैः ।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ २२ ॥

अनन्तर सुधन्वाके धनुषको काटके, उसके रथके घोंडोंको भी बाणोंसे मार डाला; फिर मुकुट सहित उसका सिर धडसे काटके गिरा दिया ॥ २२ ॥

तस्मिंस्तु पतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
व्यद्रवन्त भयाद्भीता येन दौर्योधनं बलम् ॥ २३ ॥

उस वीर सुधन्वाके मरनेपर उसके अनुयायी योद्धा लोग भयभीत होके, दुर्योधनकी सेनाकी ओर भाग गये ॥ २३ ॥

ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम् ।
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ २४ ॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश कर देता है, वैसे ही इन्द्रपुत्र अर्जुन क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी अविच्छिन्न वर्षा करके उस महासेनाका संहार करने लगे ॥ २४ ॥

ततो भग्ने बले तस्मिन्विप्रयाते समन्ततः ।
सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्तान्भयमाविशत् ॥ २५ ॥

अनन्तर संशप्तोंकी सम्पूर्ण सेना तितर बितर होके चारों ओर भाग गयी । और सव्यसाची अर्जुनको क्रुद्ध हुए देखकर, त्रिगर्तराजके अनुयायी शूरवीर योद्धा लोग भयभीत हो गये ॥ २५ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः संनतपर्वभिः ।
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव ॥ २६ ॥

वे सब अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विकल होके वहां डरे हुए मृगसमूहकी भांति मुग्ध हो गये ॥ २६ ॥

ततस्त्रिगर्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ ॥ २७ ॥

अनन्तर त्रिगर्तराज क्रुद्ध होकर अपने उन महारथी वीरोंसे बोले, हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग क्यों युद्धसे भागे जाते हो ? तुम लोग कुछ भी भय मत करो ॥ २७ ॥

शप्त्वा तु शपथान्घोरान्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यगाः ॥ २८ ॥

तुम सब लोगोंने सम्पूर्ण सेनाके संमुखमें वैसी कठिन प्रतिज्ञा तथा शपथ करी हैं, इस समय तुम सब श्रेष्ठ लोग दुर्योधनकी सेनामें जाकर क्या कहोगे ? ॥ २८ ॥

नावहास्याः कथं लोके कर्मणानेन संयुगे ।
भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम् ॥ २९ ॥

युद्धमें ऐसा कर्म करनेसे जगत्में अवश्य ही हम लोगोंकी निन्दा और हंसी होगी । हमें उपहासका पात्र नहीं होना चाहिये । हमें मिलकर यथाशक्ति युद्ध करना है, इसलिये तुम सब लौट जाओ ॥ २९ ॥

एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः ।
शङ्खांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥ ३० ॥

हे राजन् ! उन पराक्रमी वीरोंने त्रिगर्तराजका ऐसा बचन सुनकर आपसमें एक दूसरेको हर्षित करनेके निमित्त बार बार सिंहनाद करके अपने शङ्खोंको बजाया ॥ ३० ॥

ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः ।
नारायणाश्च गोपालाः कृत्वा मृत्युं निवर्तनम् ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ७१४ ॥

अनन्तर नारायणी और गोपाली सेनासे युक्त संशप्तक योद्धा लोग मृत्युहीको युद्धसे निवृत्त होनेका उपाय समझकर फिर लौटकर युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ७१४ ॥

: १८ :

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु संनिवृत्तांस्तान्संशप्तकगणान्पुनः ।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– उन संशप्तक वीरोंको फिर युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित देखकर अर्जुन महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले– ॥ १ ॥

चोदयाश्वान्हृषीकेश संशप्तकगणान्प्रति ।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥ २ ॥

हे हृषीकेश ! संशप्तक वीरोंकी ओर मेरे घोडोंको ले चलो; मैं बोध करता हूं, कि ये लोग जीते जी संग्रामसे कदापि निवृत्त न होवेंगे ॥ २ ॥

पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च ।
अद्यैतान्पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ३ ॥

आज तुम मेरी भुजा, धनुष और अस्त्र शस्त्रोंके बलको देखो ! जैसे प्रलय समयमें क्रोधित महाकाल रुद्र सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं, वैसे ही मैं इन सम्पूर्ण वीरोंका नाश करूंगा ॥ ३ ॥

ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा परिणन्द्य शिवेन तम् ।
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥ ४ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णने स्मित हास्य करके, कल्याणदायक वचनोंसे उन्हें आनन्दित करते हुए, जहां जहां दुर्धर्ष अर्जुनने जानेकी इच्छा की, वहां वहांपर रथको उपस्थित किया ॥ ४ ॥

बभ्राजे स रथोऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा ।
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥

वह पाण्डुरवर्ण अश्वोंसे चलाया जाता हुआ रथ समरमें ऐसा शोभित होने लगा, जैसे आकाश मण्डलमें उडनेवाला विमान शोभायमान लगता है ॥ ५ ॥

मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च ।
यथा शक्ररथो राजन्युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥

राजन् ! पूर्वकालमें देव और असुरोंके युद्धमें इन्द्ररथके समान वह अर्जुनका रथ उस युद्धमें नाना भांतिकी मण्डल, जाना आना इत्यादि गतियोंसे घूमने लगा ॥ ६ ॥

अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ७ ॥

अनन्तर नारायणी सेनाके सैनिकोंने क्रुद्ध होकर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके अर्जुनको अपने बाण समूहोंसे छिपाते हुए चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ ।
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८ ॥

हे भरतर्षभ ! उन्होंने मुहूर्त भरके बीचमें श्रीकृष्ण सहित कुन्तीपुत्र अर्जुनको युद्धमें अदृश्य कर दिया ॥ ८ ॥

क्रुद्धस्तु फल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः ।
गाण्डीवमुपसंमृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥ ९ ॥

अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होके उस रणभूमिमें अपने द्विगुण पराक्रमको प्रकाशित करते हुए गाण्डीव धनुष्यको स्वच्छ करके शीघ्रही उसे ग्रहण किया ॥ ९ ॥

बद्ध्वा च भृकुटीं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम् ।
देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥

फिर अर्जुन भौंहें टेढी करके क्रोध सूचित करनेवाला अपना देवदत्त महाशंख बजाने लगे ॥ १० ॥

अथास्त्रमरिसङ्घघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः ।
ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन्पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥

अनन्तर अर्जुनने शत्रुओंका नाश करनेवाले त्वष्टा प्रजापतिके दिये हुये अस्त्रको शत्रु सेनाके उपर चलाया । उस अस्त्रके प्रभावसे सहस्रों स्वरूप पृथक् पृथक् उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥

आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः ।
अन्योन्यमर्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जघ्निरे ॥ १२ ॥

वे वीर लोग, अपने ही समान रूपोंवाले उन अनेक प्रकारके रूपोंसे मोहित होकर, परस्पर अर्जुन मानकर अपने ही सैनिकोंका वध करने लगे ॥ १२ ॥

अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ यादवपाण्डवौ ।
इति ब्रुवाणाः संमूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥

वे सब वीर योद्धा लोग उस अस्त्रके प्रभावसे मुग्ध होकर 'यही श्रीकृष्ण ! यही अर्जुन, यही श्रीकृष्णअर्जुन दोनों हैं, ' ऐसा ही कहते हुए युद्धमें आपसमें एक दूसरेको मारने लगे ॥ १३ ॥

मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् ।
अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥

वे योद्धा लोग उस प्रबल अस्त्रके प्रभावसे मोहित होकर एक दूसरेके प्रहारसे क्षीण होने लगे। वे योद्धा फूले हुए पलाश वृक्षके समान रणभूमिमें शोभित होने लगे ॥ १४ ॥

ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् ।
कृत्वा तदस्त्रं तान्वीराननयद्यमसादनम् ॥ १५ ॥
अनंतर अर्जुनके चलाये हुए त्वाष्ट्र अस्त्रने शत्रु सेनाके सहस्रों बाणोंको भस्म करके उन वीरोंको यमलोकमें पहुंचा दिया ॥ १५ ॥

अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान्मालवानपि ।
माचेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चार्दयच्छरैः ॥ १६ ॥
अनन्तर अर्जुन हंसकर ललित्थ, मालव, माचेल्लक, त्रैगर्तक और यौधेय सैनिकोंको अपने बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

ते वध्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
व्यसृजञ्शरवर्षाणि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥
वे क्षत्रिय योद्धा वीर अर्जुनके बाणोंसे विकल होके भी मानो काल प्रेरित होकर अर्जुनके ऊपर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १७ ॥

ततो नैवार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥ १८ ॥
उस भयंकर बाण वर्षासे छिप जानेके कारण अर्जुन, श्रीकृष्ण और अर्जुनका रथ भी उस समयमें नहीं दीख पडता था ॥ १८ ॥

ततस्ते लब्धलक्ष्यत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
हतौ कृष्णाविति प्रीता वासांस्यादुधुवुस्तदा ॥ १९ ॥
अनन्तर श्रीकृष्ण–अर्जुनको इस प्रकारसे बाणोंके जालसे छिपा हुआ देख, वे सब योद्धा लोग अपने उद्देश्यको सिद्ध हुआ समझ कर परस्पर देखकर हर्षपूर्वक सिंहनाद करने लगे। "श्रीकृष्ण–अर्जुन युद्धमें मारे गये," ऐसा समझके वे सब लोग बडी प्रसन्नतासे अपने कपडे हिलाने लगे ॥ १९ ॥

भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥ २० ॥
मारिष ! वे सहस्रों वीर शंख, भेरी, मृदङ्ग आदि बाजोंको बजाकर, उग्र सिंहनाद करने लगे ॥ २० ॥

ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत् ।
क्वासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥ २१ ॥
उस समयमें श्रीकृष्णके शरीरसे पसीना निकलने लगा, वे दुःखित होके अर्जुनसे बोले– हे अर्जुन ! तुम कहां हो ? मैं तुमको नहीं देखता हूं। हे शत्रुओंका नाश करनेवाले ! क्या तुम जीवित हो ? ॥ २१ ॥

तस्य तं मानुषं भावं भावज्ञोऽऽज्ञाय पाण्डवः ।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥

मनका भाव जाननेवाले अर्जुनने श्रीकृष्णका प्रेममय भाव जानकर शीघ्र ही वायव्य अस्त्र चलाकर उन सब वीरोंकी बाणवृष्टिको नष्ट कर दिया ॥ २२ ॥

ततः संशप्तकव्रातान्साश्वद्विपरथायुधान् ।
उवाह भगवान्वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥ २३ ॥

उस समयमें भगवान् वायुने प्रबल वेगसे चलकर सूखे पत्तोंके ढेरके समान संशप्तक समूहोंको रथ, घोडे, हाथी, आयुध आदि सहित उडाना शुरू किया ॥ २३ ॥

उह्यमानास्तु ते राजन्बह्वशोभन्त वायुना ।
प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥ २४ ॥

हे राजन् ! जैसे वृक्ष परसे उडते हुए पक्षी शोभायमान लगते हैं, वैसे ही वे सब योद्धा वायव्य अस्त्रके प्रभावसे युद्धमें उडते हुए शोभित होने लगे ॥ २४ ॥

तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥

अर्जुन उन सब वीरोंको इस प्रकारसे अत्यन्त विकल करके, फिर अपने चोखे बाणोंसे शीघ्रता पूर्वक सौ सौ और सहस्रों पुरुषोंका वध करने लगे ॥ २५ ॥

शिरांसि भल्लैरहरद्बाहूनपि च सायुधान् ।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरूञ्शरैरुर्व्यामपातयत् ॥ २६ ॥

उन्होंने अपने भल्ल बाणोंसे उनके सिर काट दिये, शस्त्रों सहित भुजाएं काट डालीं और हस्तिशुण्डके समान जाङ्घोंको बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २६ ॥

पृष्ठच्छिन्नान्विचरणान्विमस्तिष्केक्षणाङ्गुलीन् ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकारारीन्धनञ्जयः ॥ २७ ॥

किन्हींको बीचोंबीचसे काट डाला, किन्हींके पांव, किन्हींके सिर, किन्हींके नेत्र, किन्हींकी अंगुलियां काट डालीं; धनंजयने शत्रुओंको अनेक अंगोंसे हीन कर दिया ॥ २७ ॥

गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
शरैर्विशकलीकुर्वंश्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥ २८ ॥

उन्होंने गन्धर्व नगरोंके समान उत्तम सजे हुए रथोंके बाणोंसे टुकडे टुकडे कर दिये और शत्रुओंको घोडे, रथ और हाथियोंसे रहित कर दिया ॥ २८ ॥

मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे ।
छिन्नध्वजरथव्राताः केचित्केचित्क्वचित्क्वचित् ॥ २९ ॥

किसी किसी स्थानमें रथके ध्वजोंके समूह रथके ऊपरसे कट जानेके कारण मुण्डित ताल-बनोंके समान दीख पडते थे ॥ २९ ॥

सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकाङ्कुशायुधाः ।
पेतुः शक्राशनिहता द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ ३० ॥

जैसे वृक्षोंके सहित पर्वत इन्द्रके वज्रकी चोटसे पृथ्वीपर गिर पडते हैं; वैसे ही पताका, अंकुश और ध्वजाओंके सहित बडे हाथी सवारोंके सहित मरके पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ३० ॥

चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनासवः ।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ ॥ ३१ ॥

चंवर, भूषण और कवचके सहित शिक्षित घोडे घुडसवारोंके सहित बाणोंकी चोटसे जिनके आंत्र, नेत्र और प्राण बाहर निकल गये हैं, ऐसे होकर मरके पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३१ ॥

विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणं शेरते हताः ॥ ३२ ॥

पैदल सैनिकोंकी तलवारें और नखर कटकर गिरे थे; कवच, ऋष्टि और शक्तियां छिन्न भिन्न हो गयी थीं; कवच कट जानेसे वे दीन होकर मरकर पृथ्वी पर शयन करते थे ॥ ३२ ॥

तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि ।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च घोरमायोधनं बभौ ॥ ३३ ॥

कितने ही मारे गये थे, कितने ही मारे जा रहे थे; कितने ही पीडित होकर पृथ्वीमें गिर गये थे और कुछ गिर पडते थे; कितने ही युद्धभूमिमें इधर उधर घूमते थे और कितनेही आर्त्तनाद करते थे; इस प्रकारसे मनुष्योंके समूहसे युक्त युद्धभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर मालूम होने लगी ॥ ३३ ॥

रजश्च महदुद्भूतं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।
मही चाप्यभवद्दुर्गा कबन्धशतसंकुला ॥ ३४ ॥

प्रबल वेगसे उडती हुई भारी धूलि रुधिरकी वर्षासे शान्त होगई । उस समय रणभूमि सैकडों कबन्धोंसे पूरित होनेके कारण भूमिपर चलना कठिन हो गया ॥ ३४ ॥

तद्बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे ।
आक्रीड इव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥

अर्जुनका वह रथ उस समय युद्धभूमिमें प्रलयकालके समय सब प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेवके क्रीडास्थानके समान भयङ्कर और विकृतरूपसे प्रकाशित होने लगा ॥ ३५ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्वरथद्विपाः।
तमेवाभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्यातिथितां गताः ॥ ३६ ॥
अर्जुनसे मारे जाते हुए घोडे, रथ और हाथी व्याकुल होगये, और उन्हींकी ओर मुख करके प्राण छोडनेके कारण इन्द्रलोकके मेहमान हो गये ॥ ३६ ॥

सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः।
आस्तीर्णा संबभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥ ३७ ॥
भरतश्रेष्ठ ! उन मारे गये महारथियोंसे आच्छादित हुई वह रणभूमि सब ओरसे प्रेतोंसे घिरी हुई जान पडती थी ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
जब सव्यसाची अर्जुन इस प्रकारसे युद्धमें संशप्तक वीरोंके सङ्ग संग्राममें प्रवृत्त हुए थे, तब अवसर देखकर द्रोणाचार्य अपनी सेनाको व्यूहबद्ध करके राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ ३८ ॥

तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ७५३ ॥

राजा युधिष्ठिरको पकडनेकी इच्छासे व्यूहपूर्वक प्रहारकुशल वीरोंने शीघ्र ही उनपर धावा किया, तब दोनों ओरकी सेनाओंका महा घोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ७५३ ॥

: १९ :

संजय उवाच

परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः।
बहूक्त्वा च ततो राजन्राजानं च सुयोधनम् ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! महारथी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने उस रात्रिको बिताकर राजा दुर्योधनसे बहुत प्रकारसे बातें कहीं ॥ १ ॥

विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह।
निष्क्रान्ते च रणात्पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥ २ ॥
और अर्जुनका संशप्तक वीरोंके सङ्ग संग्राम करा दिया। जब अर्जुन संशप्तक वीरोंका वध करनेके निमित्त रणभूमिसे उनकी ओर गये ॥ २ ॥

व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् ।
अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब उन्होंने अपनी सेनाका गरुड व्यूह बनाकर, धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी सेनापर धावा किया ॥ ३ ॥

व्यूहं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा ।
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरने उस समय द्रोणाचार्यके गरुडव्यूहको देखकर अपनी सेनाका मण्डलार्द्ध व्यूह बनाया ॥ ४ ॥

मुखमासीत्सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ।
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैः सह ॥ ५ ॥

अनन्तर महारथी द्रोणाचार्य उस गरुडव्यूहके मुखस्थलपर स्थित हुए। राजा दुर्योधन भाइयों और अनुयायियोंके सहित उस व्यूहके मस्तक हुए ॥ ५ ॥

चक्षुषी कृतवर्मा च गौतमश्चास्यतां वरः ।
भूतवर्मा क्षेमशर्मा करकर्षश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥

बाणोंके चलानेमें श्रेष्ठ योद्धा कृपाचार्य और कृतवर्मा उसके नेत्र स्थानपर स्थित हुए। भूतवर्मा, क्षेमशर्मा, वीर्यवान् करकर्ष, ॥ ६ ॥

कलिङ्गाः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः ।
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपदाश्च ये ॥ ७ ॥

कलिङ्ग, सिंहल, पूर्व दिशाके लोग, शूर आभीर, दाशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंसपद, ॥ ७ ॥

ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ।
गजाश्वरथपत्त्यौघास्तस्थुः शतसहस्रशः ॥ ८ ॥

शूरसेन, दरद, मद्र और केकय देशीय योद्धा लोग सैकडों, हजारों हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त होके उस व्यूहकी ग्रीवापर स्थित किये गये ॥ ८ ॥

भूरिश्रवाः शलः शल्यः सोमदत्तश्च बाह्लिकः ।
अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ९ ॥

भूरिश्रवा, शल, शल्य, सोमदत्त और बाह्लिक, ये वीर राजा अक्षौहिणी सेनाके सहित उसके दाहिने पक्षके स्थानपर स्थित हुए ॥ ९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
वामं पक्षं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रगाः स्थिताः ॥ १० ॥

अवन्तिराज सुदक्षिण, ये लोग द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाको आगे करके वामपक्षपर स्थित हुए ॥ १० ॥

पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ।
गान्धाराः शकुनिप्राग्याः पार्वतीया वसातयः ॥ ११ ॥

कलिङ्ग, अम्बष्ठ, मगध, पौण्ड्र, मद्रक, गान्धार, शकुन, प्राग्य, पार्वतीय और वसातिदेशीय योद्धालोग उसके पीठ स्थानपर स्थित हुए ॥ ११ ॥

पुच्छे वैकर्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।
महत्या सेनया तस्थौ नानाध्वजसमुत्थया ॥ १२ ॥

सूर्यपुत्र कर्ण बन्धु-बान्धव, पुत्र और नाना प्रकारके ध्वजाओंवाली बडी सेनाके सहित उस व्यूहके पूंछ स्थलपर बिराजमान हुए ॥ १२ ॥

जयद्रथो भीमरथः सांयात्रिकसभो जयः ।
भूमिञ्जयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! जयद्रथ, भीमरथ, सांयात्रिकसभ, जय, भूमिञ्जय, वृषक्राथ और महा बलवान् निषधराज ॥ १३ ॥

वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपुरस्कृताः ।
व्यूहस्योपरि ते राजन्स्थिता युद्धविशारदाः ॥ १४ ॥

बडी सेनाके साथ उस गरुडव्यूहके ऊपरके स्थानपर स्थित हुए। ये सब ब्रह्मलोकमें गमन करनेकी अभिलाषा करके लडनेवाले और युद्ध करनेमें कुशल थे ॥ १४ ॥

द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ।
वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यका बनाया हुआ हाथी, घोडे, रथ और पैदल चलनेवाले योद्धाओंसे वह व्यूह, मानो वायुके वेगसे उठते समुद्रकी तरङ्गके समान नृत्य करता हुआ दिखाई देने लगा ॥ १५ ॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे ॥ १६ ॥

जैसे वर्षाकालमें चारों ओरसे विद्युत्से प्रकाशित बादल गर्जते हुए आकाशमें इधर उधर दिखाई देते हैं, वैसे ही उस व्यूहके पक्ष और प्रपक्ष भागोंसे युद्धकी इच्छा रखनेवाले योद्धा निकलने लगे ॥ १६ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषो मध्ये विधिवत्कल्पितं गजम् ।
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ॥ १७ ॥

हे राजन् ! प्राग्ज्योतिषराज भगदत्त उस व्यूहके बीच विधिपूर्वक सज्जित हुए अपने गजराज पर आरुढ होके ऐसे शोभित हुए, जैसे उदयाचलपर सूर्य शोभायमान लगते हैं ॥ १७ ॥

माल्यदामवता राजा श्वेतच्छत्रेण धार्यता ।
कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ॥ १८ ॥

हे राजन् ! कृत्तिका नक्षत्रके योगयुक्त पूर्णिमाके चन्द्रमा समान मुखमालाओंसे भूषित श्वेत छत्र उनके शिरपर अत्यन्त ही प्रकाशित होने लगा ॥ १८ ॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ।
अभिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात्पर्वतो महान् ॥ १९ ॥

काली कज्जल राशिके समान श्यामवर्णवाला उनका मतवारा हाथी मदवर्षाके कारण महान् मेघोंकी वृष्टिसे भीगे हुए बडे पर्वतके समान दिखाई देने लगा ॥ १९ ॥

नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ।
समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ॥ २० ॥

अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और नाना भांतिके आभूषणोंको धारण करनेवाले वीर और पर्वत प्रदेशीय राजाओंसे घिरे हुए भगदत्त ऐसे शोभित हुए, जैसे देवताओंके सहित इन्द्र चलते हैं ॥ २० ॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ।
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके रचे हुए उस अलौकिक और शत्रुओंके लिये अजेय व्यूह-को देखकर समरमें धृष्टद्युम्नसे बोले ॥ २१ ॥

ब्राह्मणस्य वशं नाहमियामद्य यथा प्रभो ।
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २२ ॥

हे कपोतके समान रंगवाले घोडोंपर चलनेवाले वीर ! आज जिससे मैं इस ब्राह्मणके वशमें न होऊं, तुम वैसा ही उपाय करो ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २३ ॥

धृष्टद्युम्न बोले– हे सुव्रत ! द्रोणाचार्य आपको ग्रहण करनेके निमित्त यत्नवान् होनेपर भी आप उनके वशमें नहीं होंगे । मैं आज द्रोणाचार्यको उनके अनुयायियोंके सहित रणभूमिमें निवारण करूंगा ॥ २३ ॥

मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि ।
न हि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथञ्चन ॥ २४ ॥

हे भारत ! मेरे जीवित रहते आपको कुछ भी भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि द्रोणाचार्य मुझको रणभूमिमें कदापि जीत नहीं सकते ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा किरन्बाणान्द्रुपदस्य सुतो बली ।
पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २५ ॥

सञ्जय बोले– पारावतके समान रंगवाले घोडोंसे युक्त महा बलवान् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ऐसा कहकर फिर अपने बाणोंको चलाते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ २५ ॥

अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्षणेनैवाभवद्द्रोणो नातिहृष्टमना इव ॥ २६ ॥

द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नको संमुख खडा देखकर अनिष्ट दर्शनको जानकर, क्षणभरतक अत्यंत अप्रसन्न और भावित रहे; ॥ २६ ॥

तं तु संप्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्शनः ।
प्रियं चिकीर्षन्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २७ ॥

द्रोणाचार्यको उदास देखकर तुम्हारे पुत्र शत्रुनाशन दुर्मुखने उनके प्रिय कार्यके करनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्नको रोक दिया ॥ २७ ॥

स संप्रहारस्तुमुलः समरूप इवाभवत् ।
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥ २८ ॥

हे भारत ! महापराक्रमी धृष्टद्युम्नके सङ्ग दुर्मुखका अत्यन्त भयङ्कर तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २८ ॥

पार्षतः शरजालेन क्षिप्रं प्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २९ ॥

धृष्टद्युम्नने शीघ्रताके सहित अपने बाणोंके जालसे दुर्मुखको छिपाकर फिर महान् बाण समूहोंसे द्रोणाचार्यको भी निवारण करने लगे ॥ २९ ॥

द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवात्मजः ।
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यको रोका गया देख तुम्हारा पुत्र बहुत प्रयत्न करके अनेक प्रकारके बाण समूहोंसे धृष्टद्युम्नको मोहित करने लगा ॥ ३० ॥

तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः ।
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३१ ॥

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न और कुरुकुलके मुख्य वीर दुर्मुखको युद्धमें प्रवृत्त देखकर, द्रोणाचार्य बाणोंकी वर्षासे युधिष्ठिरकी सेनाको भस्म करने लगे ॥ ३१ ॥

अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित्क्वचित् ॥ ३२ ॥

जैसे वायुके प्रबल वेगसे बादल आकाशमें चारों ओर छिन्नभिन्न हो जाते हैं, वैसे ही युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण सेनाएं द्रोणाचार्यके बाणोंसे इधर उधर तितर बितर होने लगी ॥ ३२ ॥

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्तत ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! मुहूर्त भरतक वह युद्ध देखनेमें सुंदर लगा, फिर उन्मत्तोंके समान मर्यादारहित महाघोर विपरीत संग्राम होने लगा ॥ ३३ ॥

नैव स्वे न परे राजन्नज्ञायन्त परस्परम् ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत्समवर्तत ॥ ३४ ॥

हे भारत ! तब उस युद्धमें परस्परमें अपना पराया कोई भी किसीको नहीं मालूम होता था; उस समयमें केवल अनुमान और नाम ले लेकर ही सब योद्धा युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वसिचर्मसु ।
तेषामादित्यवर्णाभा मरीच्यः प्रचकाशिरे ॥ ३५ ॥

ऐसे अवसरमें शूरवीरोंके सिरके छत्र, कण्ठकी माला, आभूषण, तलवार और ढालोंमें सूर्यके समान तेजस्वी किरणें प्रकाशित हो रही थीं ॥ ३५ ॥

तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे ॥ ३६ ॥

रथ, हाथी और घोडोंका रूप उस युद्धमें फहराती हुई पताकाओंसे युक्त बक राजिसे विराजित बादलोंके समूहके समान शोभित दिखाई देता था ॥ ३६ ॥

नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् ।
रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३७ ॥

उस समय पैदल चलनेवाले वीर योद्धा लोग पैदल वीरोंको मार रहे थे, बलवान् घोडे घोडोंको नष्ट कर रहे थे, रथी रथियोंका वध करते थे और हाथी बडे हाथियोंको व्यथित करते थे ॥ ३७ ॥

समुच्छ्रितपताकानां गजानां परमद्विपैः ।
क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समवर्तत ॥ ३८ ॥

क्षणभरके बीचमें उत्तम ध्वजाओंसे युक्त हाथियोंका शत्रुओंके बडे बडे हाथियोंसे महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ३८ ॥

तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसङ्घातसङ्घर्षात्सधूमोऽग्निरजायत ॥ ३९ ॥

वे हाथी परस्पर अपने शरीरोंसे भिडकर एक दूसरेको अपनी ओर खींचने लगे, उन हाथियोंके दांतोंकी रगडसे धूएंसे युक्त अग्नि उत्पन्न होने लगी ॥ ३९ ॥

विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ ४० ॥

उन हाथियोंकी फहराती हुई पताकाएं छिन्न भिन्न होकर गिरने लगीं और उनके दांतोंके टकरानेसे अग्नि उत्पन्न होने लगी । इस कारण वे आकाशमें छाये हुए बिजली सहित बादलोंके समान शोभित होते थे ॥ ४० ॥

विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।
सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव शारदी ॥ ४१ ॥

कोई कोई हाथी एक दूसरेको उठाके फेंक देते थे, कोई बलपूर्वक चिंघाड मारते थे, कोई कोई हाथी मरकर पृथ्वीमें गिर गये; इससे उनसे आच्छादित हुई वह रणभूमि मानो शरत् ऋतुमें बादलोंसे युक्त आकाशके समान बोध होती थी ॥ ४१ ॥

तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरवृष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव संप्लवे ॥ ४२ ॥

हाथियोंके शरीरोंपर बाण और तोमरोंकी वर्षा होने लगी, वे हाथी उस समयमें वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित होकर प्रलयकालके बादलोंके समान गर्जने लगे ॥ ४२ ॥

तोमराभिहताः केचिद्बाणैश्च परमद्विपाः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानां शब्दमेवापरेऽव्रजन् ॥ ४३ ॥

तोमर और बाणोंकी चोटसे विकल हुए बडे हाथी अत्यन्त पीडित होके भयसे विह्वल हो गये; कुछ सब भूतोंके शब्दका अनुसरण करके उनकी ओर जा रहे थे ॥ ४३ ॥

विषाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४४ ॥

कितने ही हाथी दूसरे हाथियोंके दांतोंसे पीडित होकर उत्पात कालके बादलोंके समान घोररूपसे चीत्कार करके आर्तनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

प्रतीपं ह्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
उन्मथ्य पुनराजह्रुः प्रेरिताः परमाङ्कुशैः ॥ ४५ ॥

कितने ही हाथी श्रेष्ठ हाथियोंसे घायल होनेके कारण युद्धसे विमुख कर दिये गये थे, वे फिर तीक्ष्ण उत्तम अंकुशोंसे चलाये जानेपर सेनाको रौंदते हुए लौट आये ॥ ४५ ॥

महामात्रा महामात्रैस्ताडिताः शरतोमरैः ।
गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणाङ्कुशाः ॥ ४६ ॥

पीलवानोंने अपने बाण और तोमरोंसे पीलवानोंको घायल कर दिया, अनन्तर कितने ही पीलवान अंकुश और शस्त्रोंसे रहित होके हाथियोंसे पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ४६ ॥

निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
छिन्नाभ्राणीव संपेतुः संप्रविश्य परस्परम् ॥ ४७ ॥

कितने ही हाथी मनुष्योंसे रहित होकर चिंघाड मारते हुए इधर उधर घूम रहे थे; वे एक दूसरेकी सेनामें जाकर बिखरे हुए बादलोंके समान घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥४७॥

हतान्परिवहन्तश्च यन्त्रिताः परमायुधैः ।
दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥ ४८ ॥

कितने ही बडे बडे हाथी श्रेष्ठ आयुधोंसे मारे जाकर अपने पीठपर गिरे हुए सवारोंको ले जाते हुए अकेले घूमनेवाले हाथियोंके समान सब ओर बिचरने लगे ॥ ४८ ॥

ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा तदा विशसने गजाः ॥ ४९ ॥

कितने ही हाथी वहां तोमर, ऋष्टि और परशु आदि अस्त्रकी चोटसे घायल हो आर्तस्वर करके मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ४९ ॥

तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः ।
आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ॥ ५० ॥

उनके पर्वतके समान शरीरोंके इधर उधर गिरनेसे सब ओरसे आहत हुई पृथ्वी सहसा कम्पित होने लगी और आर्तनाद करने लगी ॥ ५० ॥

सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।
मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५१ ॥

गजपति योद्धा और पताकाओंके सहित सब ओर मरे हुए हाथियोंके शरीरोंसे पूर्ण होकर सम्पूर्ण रणभूमि, मानो बिखरे हुए पर्वतोंके समूहसे युक्त होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ ५१ ॥

गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।
रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णाङ्कुशतोमराः ॥ ५२ ॥

कितने ही रथियोंने युद्धमें अपने भल्लोंसे हाथीपर बैठे हुए पीलवानोंकी छाती छेदकर उन्हें मार गिराया, तब उनके अंकुश और तोमर सब जगह बिखर गये थे ॥ ५२ ॥

क्रौञ्चवद्विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः ।
परान्स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥ ५३ ॥

कितने हाथी शूरवीरोंके नाराचोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर क्रौञ्च पक्षीके समान घोर शब्दसे चीत्कार करते हुए, दसों दिशाओंमें अपनी तथा शत्रुसेनाको अपने पांवोंसे मर्दन करते हुए मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ५३ ॥

गजाश्वरथसंघानां शरीरौघसमावृता ।
बभूव पृथिवी राजन्मांसशोणितकर्दमा ॥ ५४ ॥

हे राजन् ! उस समय पृथ्वी घोडे, हाथी और रथी पुरुषोंके शरीरोंसे छिपकर रुधिर और मांसके कीचडसे युक्त हो गई ॥ ५४ ॥

प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्य च वारणैः ।
सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥ ५५ ॥

कितने ही हाथियोंने अपने दांतोंके अग्र भागसे चक्रवाले और चक्ररहित बडे बडे रथोंको रथियोंके सहित चूर करके सूंडोंसे उठाकर फेंक दिया ॥ ५५ ॥

रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः ॥ ५६ ॥

कितने ही रथ रथियोंसे, घोडे घुडसवारोंसे और हाथी अपने सवारोंसे हीन होकर बाणोंसे विकल होकर सब दिशाओंमें इधर उधर भागने लगे ॥ ५६ ॥

जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्रज्ञायत किंचन ॥ ५७ ॥

उस महाघोर युद्धमें पुत्र पिताका और पिता पुत्रका वध करने लगे । ऐसा महाघोर भयङ्कर संग्राम हो रहा था कि किसीको कुछ भी बोध नहीं होता था ॥ ५७ ॥

आ गुल्फेभ्योऽवसीदन्त नराः शोणितकर्दमे ।
दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥ ५८ ॥

मनुष्योंके पांव रुधिरकी कीचमें टखनोंतक डूब जाते थे । जैसे बडे बडे वृक्ष जलती हुई अग्निके तेजसे प्रकाशित होते हैं, वैसे ही वे दीखने लगे ॥ ५८ ॥

शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च ।
छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥ ५९ ॥

वीरोंके वस्त्र, कवच, छत्र और रथकी पताकाएं आदि रुधिरसे युक्त होकर रक्त वर्ण दीख पडने लगे ॥ ५९ ॥

हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
संवृत्ताः पुनरावृत्ता बहुधा रथनेमिभिः ॥ ६० ॥

गिराये हुए घोडे, रथ और पैदल मनुष्योंके समूह रथोंके वारंवार चलनेसे और भी कट कटके टुकडे टुकडे होते थे ॥ ६० ॥

स गजौघमहावेगः परासुनरशैवलः ।
रथौघतुमुलावर्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥ ६१ ॥

वह सेनाका समुद्र उस समय चलते हुए हाथियोंके समूह रूपी वेगवान् वायु, मरे हुए मनुष्य रूपी सेवार और रथ समूह रूपी भंवरोंसे युक्त होके शोभित होने लगा ॥ ६१ ॥

तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः ।
अवगाह्यावमज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ॥ ६२ ॥

योद्धा स्वरूप वणिक् लोग जय रूपी धनको प्राप्त करनेके अभिलाषी होकर वाहन रूपी नौकापर सवार होके डूबते हुए भी उस सेना रूपी महाघोर समुद्रमें मोहित नहीं हुए ॥ ६२ ॥

शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वजितलक्ष्मसु ।
न हि स्वचित्ततां लेभे कश्चिदाहतलक्षणः ॥ ६३ ॥

योद्धाओंपर निरन्तर बाणोंकी वर्षा हो रही थी, तो भी उनके चिन्ह अजेय थे। कोई भी योद्धा चिन्होंके नष्ट हो जानेपर मोहित नहीं हुआ ॥ ६३ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान्द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ६४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ८१७ ॥

इस प्रकार भयंकर महाघोर संग्राम जब चल रहा था, तब द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाको अपने अस्त्रोंसे मोहित करके युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ ६४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ८१७ ॥

: २० :

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वान्तिकमुपागतम् ।
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– अनन्तर राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यको अपने निकट आया हुआ देखकर, निर्भयचित्तसे उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें रोक दिया ॥ १ ॥

ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे बले ।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम् ॥ २ ॥

अनन्तर जैसे महाबलवान् सिंह हाथियोंके यूथपतियोंको ग्रहण करनेके निमित्त उद्यत होता है, वैसे ही जब द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उनकी ओर बढने लगे, तब पाण्डवोंकी सेनामें अत्यन्त ही कोलाहल होने लगा ॥ २ ॥

दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
युधिष्ठिरं परिप्रेप्सुमाचार्यं समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

सत्य पराक्रमी सत्यजित् द्रोणाचार्यको राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उनकी ओर जाते देखकर युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वेगपूर्वक द्रोणाचार्यपर टूट पडा ॥ ३ ॥

तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते परस्परम् ।
विक्षोभयन्तौ तत्सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥ ४ ॥

फिर द्रोणाचार्य और पाञ्चाल राजकुमार सत्यजित्का उस समयमें इन्द्र और बलिराजके समान उस सेनाको विक्षुब्ध करते हुए परस्पर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वास्य सशरं धनुः ॥ ५ ॥

अनन्तर शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यने सत्यजित्के धनुषको बाण सहित काटकर फिर उनको अपने मर्मस्थानोंको विदीर्ण करनेवाले दस तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५ ॥

स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत्प्रतापवान् ।
द्रोणं सोऽभिजघानाशु विंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६ ॥

पराक्रमी सत्यजित्ने शीघ्रताके सहित दूसरा धनुष ग्रहण करके कङ्क पत्रयुक्त वीस बाणोंसे फिर द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ ६ ॥

ज्ञात्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाहवे ।
वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्यो द्रोणमर्दयत् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! युद्धभूमिमें सत्यजित्‌ने बाणोंसे मानो द्रोणाचार्यको ग्रास कर लिया; यह जानकर, पांचाल वृकने सैंकडों तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यको बहुत विद्ध किया ॥ ७ ॥

संछाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् ।
चुक्रुशुः पाण्डवा राजन्वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ ८ ॥

राजन् ! महारथी द्रोणाचार्यको समरमें बाणोंसे आच्छादित होते देखके पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण वीर योद्धा हर्षित होकर सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ ८ ॥

वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान्राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

हे भारत ! उसही समयमें बलवान् वृकने अत्यंत क्रोधित होकर द्रोणाचार्यकी छातीमें साठ बाण मारे, वह अद्भुतसी बात हुई ॥ ९ ॥

द्रोणस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः ।
वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ १० ॥

महा वेगवान् महारथी द्रोणाचार्य उन लोगोंकी बाणवर्षासे छिप जानेपर क्रोधसे प्रज्वलित हो गये । अनन्तर उन्होंने लाल नेत्र करके अपना वेग प्रकट किया ॥ १० ॥

ततः सत्यजितश्चापं छित्त्वा द्रोणो वृकस्य च ।
षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद्वृकम् ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्यने सत्यजित् और वृकके धनुष काटके, वृकको छः बाणोंसे सारथि और घोडों सहित मार डाला ॥ ११ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १२ ॥

अनन्तर सत्यजित्‌ने दूसरा एक दृढ और अत्यंत वेगवान् धनुष ग्रहण करके अनेक बाणोंसे घोडे, सारथि और ध्वज सहित द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ १२ ॥

स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनार्दनं मृधे ।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ १३ ॥

युद्धमें द्रोणाचार्य इसी प्रकारसे पाञ्चालकुमार सत्यजित्‌के बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उसके पराक्रमको सह न सके; अनन्तर शीघ्रताके सहित सत्यजित्‌के बधके निमित्त अपने भयङ्कर बाणोंको वे चलाने लगे ॥ १३ ॥

हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।
अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १३ ॥
द्रोणाचार्यने सत्यजित्के घोडे, ध्वज, धनुषकी मुष्टि और दोनों पार्श्व रक्षकोंपर हजारों बाणोंकी वर्षा की ॥ १४ ॥

तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥ १५ ॥
इस प्रकार द्रोणाचार्यने सत्यजित्के धनुषोंको बार बार काटके पृथ्वीमें गिराया; तो भी परम अस्त्रोंको जाननेवाले पाञ्चालवीर सत्यजित् लालघोडोंवाले द्रोणाचार्यसे युद्ध करते ही रहे ॥१५॥

स सत्यजितमालक्ष्य तथोदीर्णं महाहवे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
द्रोणाचार्यने उस महायुद्धमें सत्यजित्को इस प्रकारसे अत्यन्त तीव्र होते देखके अर्द्धचन्द्र बाणसे उन महात्मा वीरका सिर काट डाला ॥ १६ ॥

तस्मिन्हते महामात्रे पाञ्चालानां रथर्षभे ।
अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात्त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥
उस रथियोंमें श्रेष्ठ विशाल शरीरवाले पाञ्चाल योद्धा सत्यजित्के मारे जानेके अनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यसे भयभीत होकर, वेगपूर्वक अपने रथके घोडोंको चलाकर रणभूमिसे भाग गये ॥ १७ ॥

पाञ्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूपकोसलाः ।
युधिष्ठिरमुदीक्षन्तो हृष्टा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ १८ ॥
तब पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारूष और कोसल देशीय योद्धाओंने हर्षित होकर राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके निमित्त द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ १८ ॥

ततो युधिष्ठिरप्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवानिलः ॥ १९ ॥
जैसे अग्नि रूईके ढेरको भस्म करती है, वैसे ही शत्रुनाशन द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे भस्म करने लगे ॥ १९ ॥

निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः ।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥ २० ॥
मत्स्यराज विराटके छोटे भाई शतानीक उस समय द्रोणाचार्यको सम्पूर्ण सेना बार बार भस्म करते देखकर उनकी ओर दौडे ॥ २० ॥

सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विद्ध्वानदद्भृशम् ॥ २१ ॥

उन्होंने कारीगरसे स्वच्छ किये हुए सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी छः बाणोंसे सारथि और घोडोंके साथ द्रोणाचार्यको विद्ध करके जोरसे सिंहनाद किया ॥ २१ ॥

तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
क्षुरेणापाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्यने उस ही समय क्षुरास्त्रसे गर्जना करते हुए शतानीकके कुण्डल भूषित सिरको काटके धडसे अलग कर दिया । द्रोणाचार्यका ऐसा पराक्रम देख मत्स्यदेशीय योद्धा लोग रणभूमिसे भागने लगे ॥ २२ ॥

मत्स्याञ्जित्वाजयच्चेदीन्कारुषान्केकयानपि ।
पाञ्चालान्सृञ्जयान्पाण्डून्भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २३ ॥

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने मत्स्य देशीय योद्धाओंको जीतकर बार बार चेदि, करुष, केकय, पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डव सेनाके योद्धाओंको भी पराजित किया ॥ २३ ॥

तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २४ ॥

जैसे दहकती अग्नि वनको भस्म कर देती है, वैसे ही सुवर्णमय रथवाले क्रुद्ध द्रोणाचार्यको सम्पूर्ण सेनाओंको दग्ध करते हुए देख कर सृञ्जय लोग कम्पित होने लगे ॥ २४ ॥

उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याशुकारिणः ।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान्दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ २५ ॥

वह जिस समय उत्तम धनुष ग्रहण करके शीघ्रताके सहित शत्रुओंका वध करने लगे, उस समय उनके धनुषका शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा ॥ २५ ॥

नागानश्वान्पदातींश्च रथिनो गजसादिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥ २६ ॥

द्रोणाचार्यके हस्तलाघवसे छूटे हुए घोर बाण हाथी, घोडे, रथी, हाथी सवार और पैदल चलनेवाले वीरोंको पीडित तथा प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ २६ ॥

नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये ।
अश्मवर्षमिवावर्षत्परेषां भयमादधत् ॥ २७ ॥

जैसे हेमन्त ऋतुके अन्तमें बार बार गर्जते हुए प्रबल वायुके झकोरेसे युक्त होकर कभी कभी बादल शिलाकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वह बार बार अपने बाणोंको चलाकर शत्रु सेनाको भयभीत करने लगे ॥ २७॥

सर्वां दिशः समचरत्सैन्यं विक्षोभयन्निव ।
बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥ २८ ॥

बलवान्, शूर, महाधनुर्धर और मित्रोंको अभय देनेवाले द्रोणाचार्य सारी सेनाको क्षुब्ध करते हुए रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥ २८ ॥

तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
दिक्षु सर्वास्वपश्याम द्रोणस्यामिततेजसः ॥ २९ ॥

उस समय महातेजस्वी द्रोणाचार्यका सुवर्ण भूषित उत्तम धनुष मानो बादलोंमें बिजलीके समान सब दिशाओंमें प्रकाशित होता हुआ देखते थे ॥ २९ ॥

द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत् ।
यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३० ॥

जैसे देव-दानव वंदित भगवान् विष्णु दानवोंका नाश करते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंकी भारी मारकाट करने लगे ॥ ३० ॥

स शूरः सत्यवाक्प्राज्ञो बलवान्सत्यविक्रमः ।
महानुभावः कालान्ते रौद्रीं भीरुविभीषणाम् ॥ ३१ ॥

शूर, सत्यवादी, बुद्धिमान्, महाबली और सत्य पराक्रमी महानुभाव द्रोणाचार्यने मानो प्रलय कालके रुद्रदेवकी बनाई हुई भीरू पुरुषोंको भयभीत करनेवाली उस रणभूमिमें रुधिरकी अत्यन्त भयङ्करी नदी उत्पन्न कर दी ॥ ३१ ॥

कवचोर्मिध्वजावर्तां मर्त्यकूलापहारिणीम् ।
गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३२ ॥

उस नदीमें कवच तरंग रूपी तथा ध्वजा भंवर रूपी दिखाई देते थे । मरे हुए योद्धा रूपी तटोंको वह तोड रही थी । हाथी और घोडोंके शरीर उसमें बडे मगर—घडियालके समान दीख पडते थे । तलवारें मछलियां थीं; उसे पार करना अत्यन्त कठिन था ॥ ३२ ॥

वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम् ।
चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाड्वलाम् ॥ ३३ ॥

वीरोंकी हड्डियां उसमें कंकड और बालूरूपसे बोध हो रही थीं । उसका रूप भयंकर था; भेरी नगाडे आदि बाजे कछुएके समान दिखाई देते थे । ढाल और कवच उसमें नौकाके समान बहे जाते थे । वह घोर नदी केश रूपी सेवार और घाससे युक्त थी ॥ ३३ ॥

शरौघिणीं धनुःस्रोतां बाहुपन्नगसंकुलाम् ।
रणभूमिवहां घोरां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ।
मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम् ॥ ३४ ॥

बाणोंका समूह प्रवाहका वेग, धनुष स्रोत और वीरोंकी कटी हुई भुजाएं सर्पोंके समान दिखाई देती थीं । रणभूमिमें वह भयंकर रूपमें बह रही थी, कौरव तथा सृञ्जयोंको वह बहाये लिये जाती थी । मनुष्योंके सिर उस नदीमें पत्थर रूपी और शक्तियां मत्स्यके समान थी, गदाएं नाक थीं ॥ ३४ ॥

उष्णीषफेनवसनां निष्कीर्णान्त्रसरीसृपाम् ।
वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ३५ ॥

उस नदीमें छत्र, मुकुट और वस्त्र आदिक संपूर्ण सामग्री फेनके समान दीख पडती थी । बिखरी हुई आंतें सर्पाकार दीखती थीं; वीरोंका अपहरण करनेवाली वह घोर नदी मांस और रुधिररूपी कीचडसे भरी थी ॥ ३५ ॥

हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ।
क्रूरां शरीरसंघाटां सादिनक्रां दुरत्ययाम् ।
द्रोणः प्रावर्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥ ३६ ॥

हाथी ग्राहके समान और ध्वजाएं वृक्षके समान थीं । वह नदी क्षत्रियोंको डुबानेवाली थी । उस घोर रूपिणी नदीमें मृत शरीरही घाट थे । घुडसवारोंके समूह उस नदीमें मगरोंके समान बोध होते थे । उसको पार करना बहुत कठिन था । वह लोगोंको यमलोकमें ले जानेवाली थी । ऐसी नदी द्रोणाचार्यने बहा दी ॥ ३६ ॥

क्रव्यादगणसंघुष्टां श्वशृगालगणायुताम् ।
निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥ ३७ ॥

मांस भक्षण करनेवाले भयंकर जीव वहां एकत्र हुए थे, कुत्ते और सियारोंके समूह जुटे हुए थे । उसके सब ओर अत्यंत भयंकर मांस भक्षण करनेवाले पिशाच रहते थे ॥ ३७ ॥

तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिरकी सेनाके सम्पूर्ण राजा लोग महारथ द्रोणाचार्यको यमराजके समान पाण्डवोंकी सेनाको भस्म करते देखकर क्रुद्ध होकर उनकी ओर दौडे ॥ ३८ ॥

तांस्तु शूरान्महेष्वासांस्तावकाभ्युद्यतायुधाः।
राजानो राजपुत्राश्च समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥

अनन्तर जब युधिष्ठिरकी ओरके सम्पूर्ण राजाओंने मिलकर चारों ओरसे द्रोणाचार्यको घेर लिया, तब तुम्हारी ओरके राजा और राजपुत्रोंने अस्त्रशस्त्र ग्रहण करके उन शूर महाधनुर्धर वीरोंको सब ओरसे घेर लिया ॥ ३९ ॥

ततो द्रोणः सत्यसंधः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ४० ॥

अनन्तर सत्य पराक्रमी, मदयुक्त हाथीके समान द्रोणाचार्यने रथ सेनाको अतिक्रम करके दृढसेनको मारके गिरा दिया ॥ ४० ॥

ततो राजनमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत् ।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ४१ ॥

अनन्तर क्षेमराजा निर्भयतासे अस्त्र चला रहे थे, उनके पास पहुंचकर द्रोणाचार्यने उन्हें नौ बाणोंसे विद्ध किया। वह उनके बाणोंसे मारे जा कर रथपरसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥४१॥

स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
त्राता ह्यभवदन्येषां न त्रातव्यः कथञ्चन ॥ ४२ ॥

द्रोणाचार्य शत्रुओंकी सेनाके बीचमें सब दिशाओंमें घूमते हुए अपनी ओरके दूसरे शूरवीरोंकी रक्षा करने लगे। परन्तु वह स्वयं किसीके भी रक्षाधीन नहीं हुए ॥ ४२ ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
वसुदानं च भल्लेन प्रेषयद्यमसादनम् ॥ ४३ ॥

उन्होंने बारह बाणोंसे शिखण्डी और बीस बाणोंसे उत्तमौजाको विद्ध करके वसुदानको एक भल्लसे मारकर यमपुरीको भेज दिया ॥ ४३ ॥

अशीत्या क्षत्रवर्माणं षड्विंशत्या सुदक्षिणम् ।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपाहरत् ॥ ४४ ॥

अनन्तर क्षत्रवर्माको अस्सी और सुदक्षिणको छब्बीस बाणोंसे घायल करके क्षत्रदेवको भल्लके प्रहारसे पीडित करके रथसे पृथ्वीपर गिराया ॥ ४४ ॥

युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम् ।
विद्ध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ४५ ॥

फिर चौसठ बाणोंसे युधामन्यु और तीस बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके सुवर्णभूषित रथवाले द्रोणाचार्य शीघ्रतासे राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ ४५ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं कितवो राजसत्तमः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ४६ ॥

अनन्तर जुआरी राजसत्तम युधिष्ठिर आचार्य द्रोणको संमुख आते देख, अत्यन्त वेगवान् घोडोंके रथपर बैठकर शीघ्रताके सहित रणभूमिसे दूर चले गये; तब उस समयमें एक पाञ्चालराजपुत्रने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ४६ ॥

तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमक्षिणोत् ।
स हतः प्रापतद्भूमौ रथाज्ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४७ ॥

द्रोणाचार्यने धनुष, घोडे और सारथि सहित उनको विद्ध किया; जैसे आकाशसे उल्का पृथ्वी पर गिरती है वैसेही वह पाञ्चाल राजपुत्र द्रोणाचार्यसे मारा जाकर रथसे पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ४७ ॥

तस्मिन्हते राजपुत्रे पाञ्चालानां यशस्करे ।
हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीत्तुमुलं महत् ॥ ४८ ॥

जब वह पाञ्चालोंका यश बढानेवाला राजपुत्र मारा गया, तब " द्रोणाचार्यको मारो, द्रोणाचार्यका बध करो " ऐसा ही महाघोर शब्द पाण्डवोंकी सेनामें सुनाई देने लगा ॥४८॥

तांस्तथा भृशसंक्रुद्धान्पाञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ।
सृञ्जयान्पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद्बली ॥ ४९ ॥

महाबलवान् द्रोणाचार्य इस प्रकार अत्यन्त क्रुद्ध हुए पाञ्चाल, मत्स्य, केकय, सृञ्जय और पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंको अपने बाणोंसे अत्यन्त ही क्षुब्ध करने लगे ॥ ४९ ॥

सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
वार्धक्षेमिं चित्रसेनं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम् ॥ ५० ॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान् ।
सर्वान्द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥ ५१ ॥

कौरवोंसे घिरे हुए द्रोणाचार्यने युद्धमें सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेमसुत, चित्रसेनपुत्र, सेनाबिन्दु, सुवर्चा इन सबको और दूसरे नाना देशोंसे आये हुए अनेक राजाओंको युद्धमें पराजित किया ॥ ५०–५१ ॥

तावकास्तु महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे ।
पाण्डवेयान्रणे जघ्नुर्द्रवमाणान्समन्ततः ॥ ५२ ॥

हे महाराज ! तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग महायुद्धमें विजयी होकर चारों ओर दौडते हुए पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे ॥ ५२ ॥

ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना ।
पाञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ८७० ॥

हे भारत ! उस समयमें पाञ्चाल, मत्स्य और केकय देशीय राजा लोग महात्मा द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकारसे कांपने लगे, जैसे इन्द्रके अस्त्रोंसे पीडित होकर दानव लोग कम्पित हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ८७० ॥

: २१ :

धृतराष्ट्र उवाच

भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे ।
पाञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्तत ॥ १ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम् ।
असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥ २ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! उस महायुद्धमें जब पाण्डव और सब पाञ्चालोंको द्रोणाचार्यने मार भगाया, तब क्षत्रियोंका यश बढानेवाली, कायरोंसे अस्वीकृत और श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवीत युद्धकी उत्तम बुद्धिका अवलम्बन करके, क्या कोई दूसरा वीर भी उनके सामने युद्धके लिये प्रवृत्त हुआ ? ॥ १–२ ॥

स हि वीरो नरः सूत यो भग्नेषु निवर्तते ।
अहो नासीत्पुमान्कश्चिद्दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥ ३ ॥

हे सूत ! सम्पूर्ण सेनाके भागनेपर भी जो पुरुष लौटकर युद्धमें प्रवृत्त होता है, वो ही श्रेष्ठ-वीर योद्धा हैं । कैसे आश्चर्यका बिषय है, कि द्रोणाचार्यको युद्धके लिये खडा हुआ देखकर भी पाण्डवोंमें कोई भी पुरुष वहां उनका सामना करनेके लिये नहीं था ॥ ३ ॥

जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
त्यजन्तमाहवे प्राणान्संनद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४ ॥

जंभाई लेते हुए व्याघ्रके समान तथा मदचूते हुए मतवारे हाथीकी भांति युद्धमें स्थित, संग्रामभूमिमें प्राण त्यागनेके निमित्त उद्यत हुए, कवच पहने हुए, विचित्र युद्ध करनेवाले ॥४॥

महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतामघवर्धनम् ।
कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५ ॥

महाधनुर्द्धारी, शत्रुओंका दुःख बढानेवाले, कृतज्ञ, सत्यनिरत, दुर्योधनका हित इच्छिने-वाले ॥ ५ ॥

भारद्वाजं तथानीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम् ।
के वीराः संन्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ६ ॥

शूर द्रोणाचार्यको युद्धमें डटा हुआ देखकर, उस समयमें किन वीरोंने लौटकर उनका सामना किया ? हे सञ्जय ! वह वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच

तान्दृष्ट्वा चलितान्संख्ये प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
पाञ्चालान्पाण्डवान्मत्स्यान्सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥ ७ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! उन पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, सृञ्जय, चेदि और केकय देशीय वीरोंको द्रोणाचार्यके बाणोंसे युद्धमें पीडित होकर विचलित हुए देख ॥ ७ ॥

द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणासुहारिणा ।
सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान्यथा प्लवान् ॥ ८ ॥

और जैसे समुद्रकी महान् जलराशि नावोंको बहा ले जाती है, वैसे ही द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए प्राण हरण करनेवाले बाण समुदायने उनको भगाया है ॥ ८ ॥

कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च ।
रथद्विपनराश्वैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥

तब वे कौरव सैनिक सिंहनाद और अनेक प्रकारके रणवाद्योंको बजाकर, रथी, हाथीसवार, पैदल सैनिक और घुडसवारोंके सहित उनको सब ओरसे रोकने लगे ॥ ९ ॥

तान्पश्यन्सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥ १० ॥

सेनाके बीचमें स्थित, बन्धु-बान्धवोंसे घिरे हुए राजा दुर्योधन पाण्डवोंकी सेनाको इस प्रकारसे विकल देख, अत्यंत हर्षित होकर हंसते हंसते कर्णसे यह बचन बोले ॥ १० ॥

पश्य राधेय पाञ्चालान्प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
सिंहेनेव मृगान्वन्यांस्त्रासितान्दृढधन्वना ॥ ११ ॥

हे राधेय ! यह देखो, जैसे सिंह वनके हरिणोंको भयभीत करता है, वैसे ही पाञ्चाल योद्धा लोग सुदृढ धनुष धारण करनेवाले द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित हो रहे हैं ॥ ११ ॥

नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः ।
यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः ॥ १२ ॥

मुझे ऐसा बोध होता है, कि ये लोग फिर युद्धकी इच्छा नहीं करेंगे । जैसे वायुके वेगसे बडे बडे वृक्षोंके समूह टूटके गिरते हैं, वैसे ही ये लोग द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे बिकल होके भागे जाते हैं ॥ १२ ॥

अर्द्यमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना ।
पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्ततः ॥ १३ ॥

ये लोग महात्मा द्रोणाचार्यके रुक्मपक्षयुक्त बाणोंके प्रहारसे अत्यन्त विकल होकर युद्धभूमिसे वितर बितर होकर चारों ओर भागे जाते हैं, वे एक ही मार्गसे नहीं भाग रहे हैं ॥ १३ ॥

संनिरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना ।
एतेऽन्ये मण्डलीभूताः पावकेनेव कुञ्जराः ॥ १४ ॥

यह देखो, महात्मा द्रोणाचार्य और कौरवोंने इनको रोका है । जैसे दावानलसे हाथी घिर जाते हैं, वैसे ये तथा दूसरे पाण्डव योद्धा कौरवोंसे घिर गये हैं ॥ १४ ॥

भ्रमरैरिव चाविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।
अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण बाण भ्रमरोंके झुण्डके समान उन योद्धाओंके ऊपर गिरते हुए दीख पड़ते हैं, इसहीसे घायल होकर वे लोग युद्धभूमिसे भागते हुए आपसमें छिप रहे हैं ॥१५॥

एष भीमो दृढक्रोधो हीनः पाण्डवसृञ्जयैः ।
मदीयैरावृतो योधैः कर्ण तर्जयतीव माम् ॥ १६ ॥

हे कर्ण ! यह देखो, यह महाक्रोधी भीम पाण्डव और सृञ्जयोंकी सेनाके शूरवीरोंसे रहित होकर मेरी सेनाके शूरवीर योद्धाओंमें घिर गया है, इसे देखकर मैं बहुत ही भयभीतसा हो रहा हूं ॥ १६ ॥

व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः ।
निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥ १७ ॥

मुझे यह निश्चय बोध हो रहा है, कि दुष्ट भीम आज जगत्को द्रोणमय देखकर राज्य और जीवनकी आशासे निराश हो रहा है ॥ १७ ॥

कर्ण उवाच

नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत् ।
न चेमान्पुरुषव्याघ्र सिंहनादान्विशक्ष्यते ॥ १८ ॥

कर्ण बोले, हे पुरुषसिंह ! महाबाहु भीम जीवित रहते कदापि युद्धसे नहीं हटेगा, और इन सम्पूर्ण योद्धाओंके सिंहनादको भी नहीं सहेगा ॥ १८ ॥

न चापि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः ।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १९ ॥

पाण्डव लोग सब ही शूर बलवान्, कृतास्त्र और युद्धदुर्मद हैं, वे लोग युद्धसे भागनेवाले नहीं हैं मेरा यही विश्वास है ॥ १९ ॥

विषाग्निद्यूतसंक्लेशान्वनवासं च पाण्डवाः ।
स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः ॥ २० ॥

विशेष करके विष, अग्नि दाह, जुएके क्लेशों और वनवासको स्मरण करके पाण्डव लोग कदापि युद्ध परित्याग नहीं करेंगे, ऐसा मेरा मानना है ॥ २० ॥

निकृतो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः ।
वरान्वरान्हि कौन्तेयो रथोदारान्हनिष्यति ॥ २१ ॥

यह महाबाहु अत्यन्त तेजस्वी कुन्तीपुत्र वृकोदर युद्धमें प्रवृत्त होकर हम लोगोंके मुख्य मुख्य महारथी वीरोंका संहार करेगा ॥ २१ ॥

असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः ।
आयसेन च दण्डेन व्रातान्व्रातान्हनिष्यति ॥ २२ ॥

तलवार, धनुष, शक्ति, घोडे, हाथी, मनुष्य, रथ और लोहमय दण्डसे हम लोगोंकी सेनाके समूहोंको नष्ट करेगा ॥ २२ ॥

तमेते चानुवर्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
पाञ्चालाः केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥

सात्यकि प्रभृति महारथी योद्धा और पाञ्चाल, केकय, मत्स्य तथा विशेषतः पाण्डवसेनाके मुख्य मुख्य शूरवीर पुरुष उसको पीछे आ रहे हैं ॥ २३ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः ।
विशेषतश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥ २४ ॥

विशेष करके दूसरे पाण्डव लोग भी शूरवीर, बलवान्, पराक्रमी तथा महारथी हैं; और उन सब लोगोंको युद्धके निमित्त उत्तेजित करनेवाला क्रोधी भीम है ॥ २४ ॥

ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥

इससे ये कुरुश्रेष्ठ पाण्डव लोग भीमकी रक्षाके लिये चारों ओरसे द्रोणाचार्यको ऐसे घेर रहे हैं, जैसे बादल सूर्यको घेरकर छिपा देते हैं ॥ २५ ॥

एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् ।
अरक्ष्यमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ।
असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चापि वारणे ॥ २६ ॥

जैसे मुमूर्षु फतिङ्गे एक बार ही दीपकपर गिरते हैं, वैसे ही एकही रास्तेपर चलनेवाले वे सब लोग एकत्रित होकर अरक्षित यतव्रती द्रोणाचार्यके समीप जाके अवश्य ही उन्हें अपने अस्त्रोंसे पीडित करेंगे । वे सब ही कृतास्त्र हैं, इससे द्रोणाचार्यको निवारण करनेमें अवश्य ही समर्थ होंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥

अतिभारं त्वहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् ।
ते शीघ्रमनुगच्छामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
काका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २७ ॥

मैं बोध करता हूं, कि इस समय द्रोणाचार्यके ऊपर बहुत ही कठिन भार अर्पण किया गया है । इससे हम लोग शीघ्र वहीं चलें, जिस स्थानपर द्रोणाचार्य खडे हैं; वहां पर ही हमलोग भी गमन करें । जिससे वे काक जैसे लोग गजराज समान व्रतधारी द्रोणाचार्यका वध न कर सकें ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच

राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्प्रायाद्द्रोणरथं प्रति ॥ २८ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! राजा दुर्योधनने राधापुत्र कर्णका वचन सुनकर भाइयोंके साथ शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके रथकी ओर जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ २८ ॥

तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम् ।
पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ८९९ ॥

वहांपर नाना वर्णोंके उत्तम घोडोंसे जुते हुए रथोंसे एक मात्र द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करके लौटे हुए पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंका महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ८९९ ॥

: २२ :

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि सञ्जय ।
ये द्रोणमभ्यवर्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! भीम प्रभृति जो सब शूरवीर योद्धा लोग क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण कर रहे थे, उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके रथोंके (घोडे–ध्वजा) चिह्न कैसे थे ? तुम मेरे समीप उनका वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

ऋश्यवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् ।
रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः संन्यवर्तत ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– भीमसेनको ऋश्यके समान वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके आते देखकर सात्यकि रजतके समान शुभ्र वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्ध करनेके निमित्त लौटे ॥ २ ॥

दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः ।
वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

शुक पक्षीके पंखके समान वर्णवाले केशोंसे युक्त दर्शनीय काम्बोज देशीय घोडे नकुलके रथको लेकर शीघ्रतासे तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे ॥ ३ ॥

कृष्णास्तु मेघसङ्काशाः सहदेवमुदायुधम् ।
भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन्वातरंहसः ॥ ४ ॥

बादलके समान श्याम वर्णवाले, वायुके समान भयंकर वेगवाले घोडे शस्त्रधारी नरव्याघ्र सहदेवको रणभूमिमें ले गये ॥ ४ ॥

हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे ।
अभ्यवर्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥ ५ ॥

सुवर्णभूषित उत्तम आवरणोंसे युक्त, वायुके समान वेगशाली घोडोंसे सब सेनाओंने राजा युधिष्ठिरको घेर रक्खा था ॥ ५ ॥

राज्ञस्त्वनन्तरं राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत् ।
जातरूपमयच्छत्रः सर्वैः स्वैरभिरक्षितः ॥ ६ ॥

सुवर्णभूषित छत्र धारण करके पाञ्चाल राजा द्रुपद अपनी सम्पूर्ण सेनाओंसे सुरक्षित होकर महाराज युधिष्ठिरके पीछे पीछे चले ॥ ६ ॥

ललामैर्हरिभिर्युक्तैः सर्वशब्दक्षमैर्युधि ।
राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत ॥ ७ ॥

महाधनुर्धारी राजा द्रुपद युद्धभूमिमें सब प्रकारके शब्दोंको सहनेमें समर्थ, मस्तकमें चिन्ह विशेषसे युक्त उत्तम घोडोंके सहित सब राजाओंके बीचमें निर्भय होकर युद्ध करनेके निमित्त कौरवोंकी सेनाकी ओर चले ॥ ७ ॥

तं विराटोऽन्वयात्पश्चात्सह शूरैर्महारथैः ।
केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च
स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः ॥ ८ ॥

राजा विराट सम्पूर्ण महारथी शूरवीरोंके सहित उनके अनुगामी हुए । केकय, शिखण्डी और धृष्टकेतु ये लोग अपनी अपनी सेनाओंसे घिरकर मत्स्यराज विराटका अनुगमन करने लगे ॥ ८ ॥

ते तु पाटलपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ।
वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्यामित्रघातिनः ॥ ९ ॥

पाटलि पुष्पके समान वर्णवाले घोडे जो शत्रुनाशन मत्स्यराज विराटके रथको वहन करते थे, वे अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ ९ ॥

हारिद्रसमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ।
पुत्रं विराटराजस्य सत्वराः समुदावहन् ॥ १० ॥

हरिद्रवर्णके और सुवर्णमय माला धारण करनेवाले वेगवान घोडे बिराटराजपुत्र उत्तरको शीघ्रतापूर्वक ले जा रहे थे ॥ १० ॥

इन्द्रगोपकवर्णैस्तु भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
जातरूपसमाभासः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥ ११ ॥

केकय राज पांचों भाई इन्द्रगोपक वर्णके घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्धके निमित्त प्रस्थान करने लगे । वे पांचों भाई सुवर्णके समान प्रकाशित होने लगे, उन सबके रथकी लाल ध्वजा थी ॥ ११ ॥

ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः ॥ १२ ॥

सुवर्णकी माला गलेमें डाले हुए सब युद्धविद्याके जाननेवाले वे पांचों भाई वर्म धारण करके कुरु सेनाके वीरोंके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाते हुए इस प्रकारसे गमन करने लगे, जैसे बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं ॥ १२ ॥

आमपात्रनिभाकाराः पाञ्चाल्यममितौजसम् ।
दान्तास्ताम्रारुणा युक्ताः शिखण्डिनमुदावहन् ॥ १३ ॥

मिट्टीके कच्चे बर्तनके समान आकारवाले, तांबेके समान लाल रंगवाले संयमी घोडे अमित तेजस्वी पाञ्चालपुत्र शिखण्डीको युद्धभूमिमें ले जाते थे ॥ १३ ॥

तथा द्वादशसाहस्राः पाञ्चालानां महारथाः ।
तेषां तु षट् सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः ॥ १४ ॥

बारह हजार महारथी पाञ्चाल योद्धाओंमेंसे छः हजार योद्धा इस समय शिखण्डीके अनुगामी हुए ॥ १४ ॥

पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ।
आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला हयाः ॥ १५ ॥

हे भारत ! सारङ्गके समान शवलवर्णके घोडे पुरुषसिंह शिशुपालपुत्रको क्रीडा करते हुएसे लेकर कुरुसेनाकी ओर चलने लगे ॥ १५ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
काम्बोजैः शबलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः ॥ १६ ॥

अत्यन्त बलबान् दुर्जय चेदि देशका श्रेष्ठ राजा धृष्टकेतु काम्बोजदेशीय चितकबरे घोडोंसे युक्त हो रणभूमिकी ओर लौट रहा था ॥ १६ ॥

बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः ।
पलालधूम्रवर्णाभाः सैन्धवाः शीघ्रमावहन् ॥ १७ ॥

पलाल धूंएंके समान उज्ज्वल वर्णवाले सिन्धुदेशके उत्तम घोडे केकयराज सुकुमार बृहत् क्षत्रको रणभूमिकी ओर शीघ्रतासे ले गये ॥ १७ ॥

मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा बाह्लिजाताः स्वलंकृताः ।
शूरं शिखण्डिनः पुत्रं क्षत्रदेवमुदावहन् ॥ १८ ॥

मल्लिकालोचन, पद्मवर्णवाले बाह्लिकदेशीय सुन्दर अलङ्कारोंसे भूषित घोडोंने शिखण्डीके शूरपुत्र क्षत्रदेवको युद्धभूमिमें पहुंचाया ॥ १८ ॥

युवानमवहन्युद्धे क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमाः ।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम् ॥ १९ ॥

क्रौञ्च पक्षीके वर्णवाले उत्तम घोडोंने काशिराज अभिभूके सुकुमार तरुण महारथी वीर पुत्रको युद्धभूमिमें पहुंचाया ॥ १९ ॥

श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः ।
यन्तुः प्रेष्यकरा राजन्राजपुत्रमुदावहन् ॥ २० ॥

हे राजेन्द्र ! श्याम ग्रीवावाले मनके समान वेगशाली, सारथीके वशवर्ती सफेद रंगके घोडे राजपुत्र प्रतिविन्ध्यको युद्धमें ले गये ॥ २० ॥

सुतसोमं तु यं धौम्यात्पार्थः पुत्रमयाचत ।
माषपुष्पसवर्णास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ २१ ॥

कुन्तीपुत्र भीमसेनने जिस सुतसोम पुत्रको धौम्य ऋषिसे प्रार्थना करके मांगा था, उसे उडदके फूलके समान वर्णवाले घोडोंने समरमें पहुंचाया ॥ २१ ॥

सहस्रसोमप्रतिमा बभूवुः पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाम्नि ।
तस्मिञ्जातः सोमसंक्रन्दमध्ये यस्मात्तस्मात्सुतसोमोऽभवत्सः ॥ २२ ॥

वह भीमपुत्र कौरवोंके उदयेन्दु अर्थात् इन्द्रप्रस्थ नामकी पुरीमें सोमयागके समय हजार सोमके समान सौम्य रूपसे उत्पन्न हुए थे, इस ही कारणसे उनका नाम सुतसोम हुआ ॥ २२ ॥

नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः ।
आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ॥ २३ ॥

शालपुष्पवर्णके, उदित सूर्यके समान शोभावाले घोडे स्तुत्य, नकुलपुत्र शतानीकको युद्ध-स्थलमें ले गये ॥ २३ ॥

काञ्चनप्रतिमैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसंनिभाः ।
द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमावहन् ॥ २४ ॥

मोरकी ग्रीवाके वर्ण समान उत्तम घोडे सुवर्ण–भूषित रस्सियोंसे सज्जित होकर पुरुषसिंह द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्माको लेकर युद्धभूमिकी ओर चले ॥ २४ ॥

श्रुतकीर्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः ।
ऊहुः पार्थसमं युद्धे चाषपत्रनिभा हयाः ॥ २५ ॥

चाषपत्रके समान वर्णवाले उत्तम घोडे युद्धमें अर्जुनके समान पराक्रमी, शास्त्रोंके जाननेवाले द्रौपदीपुत्र श्रुतकीर्तिको लेकर युद्धभूमिकी ओर चले ॥ २५ ॥

यमाहुरध्यर्धगुणं कृष्णात्पार्थाच्च संयुगे ।
अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन्रणे ॥ २६ ॥

जो युद्धभूमिमें श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे भी अधिक डेढ गुना पराक्रमका कार्य करता है, उस कुमार अभिमन्युको पिङ्गलवर्णके घोडे रणक्षेत्रकी ओर ले जाने लगे ॥ २६ ॥

एकस्तु धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन्रणे ॥ २७ ॥

जिन्होंने सम्पूर्ण धार्तराष्ट्रोंको त्यागकर युद्धमें पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण किया है, उन युयुत्सुको विशाल शरीरवाले बृहद् घोडोंने युद्धभूमिमें पहुंचाया ॥ २७ ॥

पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धक्षेमिं तरस्विनम् ।
ऊहुः सुतुमुले युद्धे हया हृष्टाः स्वलंकृताः ॥ २८ ॥

पलालकाण्डवर्णके सुन्दर रूपवाले अलंकृत हर्षित घोडोंने उस तुमुल युद्धमें वृद्धक्षेमके वेगवान् पुत्रको पहुंचाया ॥ २८ ॥

कुमारं शितिपादास्तु रुक्मपत्रैरुरश्छदैः ।
सौचित्तिमवहन्युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः ॥ २९ ॥

श्यामवर्णके चरणवाले, सारथीके अधीन रहनेवाले, सुवर्ण चित्रित कवचोंसे युक्त घोडोंने सुचित्त पुत्र कुमारको युद्धमें पहुंचाया ॥ २९ ॥

रुक्मपृष्ठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः ।
सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ॥ ३० ॥

पीठपर सुवर्णमय वस्त्रोंसे युक्त, कौशेयके सदृश पीतवर्णवाले, सुवर्णमाला धारण करनेवाले और सहनशक्तिसे युक्त घोडे श्रेणिमान्‌को लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए ॥ ३० ॥

रुक्ममालाधराः शूरा हेमवर्णाः स्वलंकृताः ।
काशिराजं हयश्रेष्ठाः श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३१ ॥

सुवर्णमाला धारण करनेवाले, सुवर्ण वर्णवाले, शूर, अच्छी तरहसे अलंकृत उत्तम घोडे श्लाघनीय काशिराजको लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥

अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् ।
तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥ ३२ ॥

लालवर्णवाले घोडे अस्त्रविद्या, धनुर्वेद और ब्राह्मवेदके जाननेवाले सत्यधृतिको लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

यः स पाञ्चालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत् ।
पारावतसवर्णाश्वा धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ३३ ॥

जो पाञ्चलोंके सेनापति हैं, जिन्होंने द्रोणाचार्यको वध करनेके निमित्त अपने हिस्सेमें चुना था, उन धृष्टद्युम्नको पारावत वर्णके घोडोंने रणभूमिमें पहुंचाया ॥ ३३ ॥

तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभो ॥ ३४ ॥

कांबोज देशीय उत्तम अश्वोंसे युक्त हो, शत्रुसेनाको भय दिखाते हुए, राजन् ! उनके पीछे सुचित्तके युद्धदुर्मद पुत्र सत्यधृति, श्रेणिमान्, वसुदान और काशिराजके पुत्र चलते थे ॥३४॥

युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेममालिभिः ।
भीषयन्तो द्विषत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥ ३५ ॥

वेगशाली, सुवर्णमालाओंसे भूषित, ये सब यम और कुबेरके समान पराक्रमी योद्धा धृष्टद्युम्नके अनुगामी हुए ॥ ३५ ॥

प्रभद्रकास्तु पाञ्चालाः षट् सहस्राण्युदायुधाः ।
नानावर्णैर्हयश्रेष्ठैर्हेमचित्ररथध्वजाः ॥ ३६ ॥

प्रभद्रक और पाञ्चाल देशीय छः हजार योद्धा लोग हथियार उठाये, नाना भांतिके मुख्य मुख्य घोडोंसे युक्त सुवर्णमय विचित्र रंगके रथ और ध्वजासे युक्त हो ॥ ३६ ॥

शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून्विततकार्मुकाः ।
समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥ ३७ ॥

अपने अपने धनुष्य सजकर, शत्रुओंको अपने बाणोंसे भयभीत करते हुए, मृत्युकी डर छोडकर, धृष्टद्युम्नके पीछे पीछे चलने लगे ॥ ३७ ॥

बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
ऊहुरग्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥

पिंगट गौरवर्णके, सुंदर सुवर्णमालासे विभूषित और प्रसन्न चित्तवाले उत्तम घोडे चेकितानको समरमें ले गये ॥ ३८ ॥

इन्द्रायुधसवर्णैस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः ।
आयात्सुवश्यैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥ ३९ ॥

अर्जुनके मामा कुन्तिभोजराज पुरुजित् इन्द्र धनुषके समान वर्णवाले संयमी घोडोंसे युक्त होकर रणभूमिमें आये ॥ ३९ ॥

अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाचित्रिता इव ।
राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥ ४० ॥

तारकाओंसे चित्रित आकाशके समान वर्णवाले घोडे राजा रोचमानको लेकर युद्धभूमिमें पहुंचे ॥ ४० ॥

कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः ।
जारासंधिं हयश्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ॥ ४१ ॥

श्यामवर्ण चरण, कर्बूरवर्ण, सुवर्णजालीसे विभूषित उत्तम घोडे जरासन्धपुत्र सहदेवको ले चले ॥ ४१ ॥

ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः ।
जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ॥ ४२ ॥

बाजपक्षीके समान वेगशील, पुष्करनालके समान वर्णवाले उत्तम और विचित्र घोडे सुदामाको ले चले ॥ ४२ ॥

शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्गतराजयः ।
पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥ ४३ ॥

शशलोहितवर्ण, श्वेतवीत रोमराजीसे शोभित घोडे पाञ्चाल देशीय गोपतिके पुत्र सिंहसेनको युद्ध स्थलकी ओर ले चले ॥ ४३ ॥

पाञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः ।
तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ४४ ॥

पाञ्चाल शूरवीर योद्धाओंमें विख्यात पुरुषसिंह जनमेजय सरसोंके फूलोंके समान वर्णवाले उत्तम घोडोंसे युक्त होकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए ॥ ४४ ॥

माषवर्णास्तु जवना बृहन्तो हेममालिनः ।
दधिपृष्ठाश्चन्द्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन्द्रुतम् ॥ ४५ ॥

दधिवर्ण पृष्ठ और विशाल शरीरवाले, तथा सुवर्ण मालासे शोभित, माषवर्णवाले, वेगवान् और चन्द्रमाके समान मुखवाले उत्तम घोडे पाञ्चाल राजकुमारको शीघ्रतासे युद्धकी ओर ले चले ॥ ४५ ॥

शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः ।
पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥ ४६ ॥

भद्रक देशीय, शरकाण्डके समान, पद्मकिंजल्क वर्ण, पराक्रमी घोडे दण्डधारको समरमें ले चले ॥ ४६ ॥

बिभ्रतो हेममालाश्च चक्रवाकोदरा हयाः ।
कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन् ॥ ४७ ॥

सुवर्णमाला धारण किये, चक्रवाकके समान उदरवाले घोडे कोसलराजके पुत्र सुक्षत्रको रण-भूमिमें ले गये ॥ ४७ ॥

शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः ।
युद्धे सत्यधृतिं क्षैमिमवहन्प्रांशवः शुभाः ॥ ४८ ॥

शबलवर्ण, उत्तम और विशाल शरीरवाले, वशमें किये हुए, सुवर्ण मालायुक्त और ऊंचे कद-वाले सुंदर घोडोंने युद्धभूमिमें क्षेमपुत्र सत्यधृतिको पहुंचाया ॥ ४८ ॥

एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्तत ॥ ४९ ॥

राजा शुक्ल जिनके ध्वज, कवच और धनुष ये सब एक ही रंगके थे, शुक्लवर्णवाले घोडोंसे युद्धके निमित्त लौट आये ॥ ४९ ॥

समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम् ।
अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रदेवमुदावहन् ॥ ५० ॥

चन्द्रमाके समान रंगवाले समुद्रसे उत्पन्न हुए घोडे समुद्रसेनपुत्र महातेजस्वी चन्द्रदेवको युद्धभूमिमें ले गये ॥ ५० ॥

नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः ।
शैब्यं चित्ररथं युद्धे चित्रमाल्यावहन्हयाः ॥ ५१ ॥

नील कमलके समान वर्णवाले सुवर्णमय अलंकारोंसे विभूषित, चित्र विचित्र मालाओंसे शोभित घोडे विचित्र रथसे युक्त राजा शैब्यको युद्धके निमित्त शत्रुओंकी ओर ले चले ॥ ५१ ॥

कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः ।
रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ५२ ॥

कलायपुष्पके रूपके समान श्वेत और लाल रोमराजीसे युक्त, उत्तम घोडे युद्धदुर्मद रथसेनको लेकर युद्ध करनेके निमित्त चलने लगे ॥ ५२ ॥

यं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् ।
तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णावहन्हयाः ॥ ५३ ॥

जिनको सब मनुष्योंसे अधिक पराक्रमी वीर राजा कहके वर्णन करते हैं, जो चोर और लुटेरोंका नाश करनेवाले हैं, उन राजाको तोतेके समान रंगवाले घोडे युद्धभूमिमें ले गये ॥ ५३ ॥

चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् ।
ऊहुः किंशुकपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ५४ ॥

पलाश फूलोंके समान रूपवाले उत्तम घोडे विचित्र अस्त्र, माला, ध्वजा और वर्मवाले चित्रायुद्धको युद्धभूमिमें ले चले ॥ ५४ ॥

एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥ ५५ ॥

नील वर्णके घोडोंसे युक्त रथपर चढके नीलराजा, जिनके ध्वज, कवच और धनुष सब एकही रंगके थे, रणभूमिमें लौट आये ॥ ५५ ॥

नानारूपै रत्नचित्रैर्वरूथध्वजकार्मुकैः ।
वाजिध्वजपताकाभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥ ५६ ॥

जिनके रथका आवरण, रथ और धनुष अनेक प्रकार रत्नोंसे युक्त तथा विचित्र थे, जिनके घोडे, ध्वज और पताकाएं भी विचित्र प्रकारकी थीं, वे राजा चित्र रंग–बिरंगे घोडोंसे युक्त हो युद्धमें आये ॥ ५६ ॥

ये तु पुष्करपत्रस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ।
ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ५७ ॥

कमलपत्रके समान वर्णवाले उत्तम घोडे रोचमानके पुत्र हेमवर्णको रणभूमिकी ओर ले गये ॥५७॥

योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डजाः ।
श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुमुदावहन् ॥ ५८ ॥

युद्धमें समर्थ, अच्छी क्रियावाले, सरकण्डेके समान श्वेत पृष्ठवाले, श्वेत अण्डकोशवाले और मुर्गीके अण्डेके समान सफेद वर्णवाले घोडे दण्डकेतुको युद्धमें ले गये ॥ ५८ ॥

आटरूषकपुष्पाभा हयाः पाण्डयानुयायिनाम् ।
अवहन्रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ५९ ॥

वासक पुष्पोंके समान वर्णवाले उत्तम घोडे पाण्डयराजके अनुगामी एक लक्ष चालीस हजार महारथी शूरवीरोंको लेकर चले ॥ ५९ ॥

नानारूपेण वर्णेन नानाकृतिमुखा हयाः ।
रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ६० ॥

नाना रूप-वर्ण और नाना प्रकारके आकृति और मुखवाले घोडे रथचक्र चिन्हित ध्वजासे युक्त वीर घटोत्कचको लेकर शत्रुसेनाकी ओर चले ॥ ६० ॥

सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् ।
राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ।
वर्णैश्चोच्चावचैर्दिव्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः ॥ ६१ ॥

सुवर्णके समान वर्णवाले उत्तम घोडे धर्मज्ञ, सेनाके मध्य भागमें स्थित, राजाओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर पीछे चल रहे थे । दूसरे कितने ही प्रभद्रक योद्धा लोग नानावर्णके दिव्य उत्तम घोडोंसे युक्त होकर उनके साथ चले ॥ ६१ ॥

ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ ६२ ॥

हे राजेन्द्र ! भीमसेन सहित युद्धके लिये सिद्ध हुए वे सब सुवर्ण ध्वजासे युक्त प्रभद्रक योद्धा लोग ऐसे शोभित दीखने लगे, जैसे इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता शोभायमान लगते हैं ॥६२॥

अत्यरोचत तान्सर्वान्धृष्टद्युम्नः समागतान् ।
सर्वाण्यपि च सैन्यानि भारद्वाजोऽत्यरोचत ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ९६२ ॥

सेनापति धृष्टद्युम्न वहां एकत्र हुए सब शूर योद्धाओंकी अपेक्षा अधिक शोभित हो रहे थे और भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य उन सम्पूर्ण शूरवीरोंको अतिक्रम करके अत्यन्त ही प्रकाशित हुए ॥ ६३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ९६२ ॥

: २३ :

धृतराष्ट्र उवाच

व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि संयुगे ।
आहवे ये न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा रथाः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! भीमसेन आदि जो सम्पूर्ण क्षत्रिय रथी योद्धा लौटकर युद्धमें उपस्थित हुए थे, वे सब देवताओंकी सेनाको भी युद्धमें पीडित कर सकते हैं ॥ १ ॥

संप्रयुक्तः किलैवायं दिष्टैर्भवति पूरुषः ।
तस्मिन्नेव तु सर्वार्था दृश्यन्ते वै पृथग्विधाः ॥ २ ॥

पुरुष प्रारब्धहीके वशमें होकर कार्योंके करनेमें प्रवृत्त होता है और सबके नाना प्रकारके पुरुषार्थ दैवपर ही अवलंबित दिखाई देते हैं ॥ २ ॥

दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी ।
अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

जो युधिष्ठिर बहुत दिनों तक जटा और मृगचर्म धारण कर वन वनमें भ्रमण करते थे, और सब लोगोंसे अविदित होकर विचरते थे ॥ ३ ॥

स एव महतीं सेनां समावर्तयदाहवे ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाभवत् ॥ ४ ॥

इस समय वेही दैवी संयोगसे युद्धके निमित्त बडी भारी सेना संग्रह करके रणभूमिमें उपस्थित हुए हैं । तब मेरे और पुत्रोंके प्रारब्धके सिवा दूसरा क्या कारण है ? ॥ ४ ॥

युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
स तथाकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥ ५ ॥

मनुष्य निश्चय ही भाग्यके अनुसार ही जन्म ग्रहण करता है, क्योंकि वह स्वयं जिसमें जानेकी इच्छा नहीं करता, प्रारब्ध उसे अवश्य ही उस अवस्थामें खींचकर ले जाता है ॥ ५ ॥

द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥

देखो, युधिष्ठिरको जुएके संकटमें डालकर हम लोगोंने बहुत कष्ट दिया था, और अब फिर वे प्रारब्धसे ही सहायकोंसे सम्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥

अर्धं मे केकया लब्धाः काशिकाः कोसलाश्च ये।
चेदयश्चापरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥ ७ ॥
पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा।
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनस्तदा ॥ ८ ॥

हे सूत ! मूर्ख दुर्योधनने पहिले मेरे समीपमें यह वचन कहा था, कि "हे तात ! इस समय केकय, काशी, कोसल और चेदीदेशीय शूरवीर मेरी सहाय्यताके लिये उपस्थित हैं; और दूसरे वङ्गदेशीय सम्पूर्ण योद्धा मेरी ओर हो गये हैं; पृथ्वीका अधिकांश भाग मेरी ओर है, उतना अर्जुनके साथ नहीं है ॥ ७–८ ॥

तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः।
निहतः पार्षतेनाजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥ ९ ॥

हे सूत ! आज उसी सेना समूहके बीचमें सुरक्षित रहकर भी जब द्रोणाचार्य रणभूमिमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये, तब भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जायगा ? ॥ ९ ॥

मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम्।
सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरुपेयिवान् ॥ १० ॥

नहीं तो राजाओंके बीच रहनेवाले, सदा युद्धका अभिनंदन करनेवाले, सब अस्त्रोंके जाननेवाले महाबाहु द्रोणाचार्यकी मृत्युकी कौनसी संभावना थी ? ॥ १० ॥

समनुप्राप्तकृच्छ्रोऽहं संमोहं परमं गतः।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥

मैं महान् संकट ग्रस्त और अत्यंत मोहसे मुग्ध हुआ हूं। मैं भीष्म और द्रोणाचार्यकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ११ ॥

यन्मा क्षत्ताब्रवीत्तात प्रपश्यन्पुत्रगृद्धिनम्।
दुर्योधनेन तत्सर्वं प्राप्तं सूत मया सह ॥ १२ ॥

हे तात ! विदुरने मुझे अपने पुत्रोंके प्रति अत्यंत आसक्त देखकर जो कुछ वचन कहा था, मेरे साथ दुर्योधनको वही सम्पूर्ण वचन प्राप्त हो रहा है ॥ १२ ॥

नृशंसं तु परं तत्स्यात्त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि।
पुत्रशेषं चिकीर्षेयं कृच्छ्रं न मरणं भवेत् ॥ १३ ॥

उनके वचनके अनुसार यदि मैं दुर्योधनको परित्याग करके शेष पुत्रोंकी रक्षा करनेकी इच्छा करूं, तो यह अत्यंत दुष्ट कार्य होगा; परंतु मेरे शेष सब पुत्रोंकी और सब लोगोंकी मृत्युका संकट भी नहीं प्राप्त होगा ॥ १३ ॥

*

यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः
सोऽस्माच्च हीयते लोकात्क्षुद्रभावं च गच्छति ॥ १४ ॥

जो मनुष्य धर्मका त्याग करके अर्थकी इच्छा करता है, वह इस लोकसे भ्रष्ट होकर, नीच गतिको जाता है ॥ १४ ॥

अद्य चाप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य सञ्जय।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥

हे सञ्जय! आज इस समय इस राष्ट्रका उत्साह भङ्ग हो गया। श्रेष्ठ पुरुषके मारे जानेसे सुतरां अब कोई शूरवीर पुरुष युद्धसे जीता बचेगा, ऐसी आशा मुझे नहीं होती है ॥१५॥

कथं स्यादवशेषं हि धुर्ययोरभ्यतीतयोः।
यौ नित्यमनुजीवामः क्षमिणौ पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥

जिन क्षमाशील पुरुषसिंहोंका आश्रय लेकर हम सदा जीवन धारण करते थे, उन धुरीण वीरोंके चले जानेपर अब बाकी बची हुई सेनाका कोई भी वीर कैसे युद्धभूमिमें जीवित बच सकता है? ॥ १६ ॥

व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्तत।
केऽयुध्यन्के व्यपाकर्षन्के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ॥ १७ ॥

हे सञ्जय! इस समय मुझसे स्पष्टरूपसे वर्णन करो, कि किस प्रकारसे वह युद्ध हुआ था? किन किन शूरवीरोंने युद्ध किया था? कौन कौन शूरवीर योद्धा रणभूमिमें किसको परास्त करते थे और किन अधम पुरुषोंने भयके कारण युद्धसे पलायन किया था? ॥ १७ ॥

धनञ्जयं च मे शंस यद्यच्चक्रे रथर्षभः।
तस्माद्भयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च विशेषतः ॥ १८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने जो कुछ इस महाघोर युद्धमें कर्म किया है, वह भी तुम मेरे समीपमें वर्णन करो। विशेष करके अर्जुन और भीम इन दोनों भाइयोंसे ही मुझे बहुत भय लगता है ॥१८॥

यथासीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेषु च सञ्जय।
मम सैन्यावशेषस्य संनिपातः सुदारुणः।
मामकानां च ये शूराः कांस्तत्र समवारयन् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ९८१ ॥

हे सञ्जय! पाण्डवोंके फिर युद्धमें लौटनेपर मेरी शेष सेनाके साथ उनका अत्यंत दारुण संग्राम हुआ था, उसे तुम मेरे समीपमें वर्णन करो। और मेरे पुत्रोंकी सेनाके किन किन शूरवीर पुरुषोंने शत्रु पक्षके किन वीरोंका निवारण किया था? ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ ९८१ ॥

: २४ :

संजय उवाच

महद्भैरवमासीन्नः संनिवृत्तेषु पाण्डुषु ।
दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाम्बुदैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– सम्पूर्ण सेनाके सहित पाण्डवोंके लौटनेपर द्रोणाचार्य उस समय जैसे बादलोंसे सूर्य आच्छादित होते हैं, वैसे ही उनके बाणोंकी वर्षासे छिपे हुए देखकर, हम लोगोंने उनके साथ बडा घोर युद्ध किया ॥ १ ॥

तैश्चोद्‌धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव ।
ततो हतममन्याम द्रोणं दृष्टिपथे हते ॥ २ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके चलनेसे जो तीव्र धूलि उडी उससे तुम्हारी सेना छिप गई । उस समय हम लोगोंकी आंखोंसे कुछ भी नहीं दीख पडता था, हम लोगोंने समझा कि द्रोणाचार्य मारे गये ॥ २ ॥

तांस्तु शूरान्महेष्वासान्क्रूरं कर्म चिकीर्षतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत् ॥ ३ ॥

दुर्योधन उन महा धनुर्द्धारी शूरवीरोंको क्रूर कर्मको करनेके निमित्त उत्सुक देखकर शीघ्रही अपनी सेनाको यह वचन बोले ॥ ३ ॥

यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः ।
वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥

हे क्षत्रिय पुरुषो ! तुम लोग अपनी शक्ति, उत्साह, पराक्रम और अवसरके अनुसार पाण्डवोंकी सेनाके वीरोंका निवारण करो ॥ ४ ॥

ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत्सुतस्तव ।
आराद्दृष्ट्वा किरन्बाणैरिच्छन्द्रोणस्य जीवितम् ॥ ५ ॥

अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण भीमसेनको संमुख पहुंचा हुआ देखकर, द्रोणाचार्यकी प्राणरक्षा करनेकी इच्छासे अपने बाणोंको चलाते हुए भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युमिवाहवे ।
तं च भीमोऽतुदद्बाणैस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ६ ॥

और उन्होंने क्रुद्ध होकर युद्धमें मृत्युसमान भीमको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया । भीमसेन भी अपने बाणोंसे उनको पीडित करने लगे, इसी प्रकारसे उन दोनोंमें महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ६ ॥

त ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः ।
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा प्रत्यातिष्ठन्परान्युधि ॥ ७ ॥

ऐसे ही तुम्हारी सेनाके बुद्धिमान्, शूरवीर, प्रहारकुशल सम्पूर्ण लोग मृत्युके भयको त्याग कर अपने राजा दुर्योधनकी आज्ञासे युद्धमें शत्रुओंकी ओर दौडे ॥ ७ ॥

कृतवर्मा शिनेः पुत्रं द्रोणप्रेप्सुं विशां पते ।
पर्यवारयदायान्तं शूरं समितिशोभनम् ॥ ८ ॥

पृथ्वीपते ! कृतवर्मा द्रोणाचार्यको मारनेकी इच्छासे आगे बढते हुए पराक्रमी समरशोभी सात्यकिको निवारण करने लगे ॥ ८ ॥

तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।
कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९ ॥

सात्यकिने भी क्रुद्ध होकर अपने बाणोंकी वर्षासे क्रोधित कृतवर्माको आगे बढनेसे रोका और कृतवर्माने भी सात्यकिको । जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीको रोक देता है, वैसे ही ॥ ९ ॥

सैन्धवः क्षत्रधर्माणमापतन्तं शरौघिणम् ।
उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १० ॥

प्रचण्ड धनुष धारण करनेवाले सिन्धुराज जयद्रथने यत्नवान् होकर, अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए आनेवाले महाधनुर्द्धारी क्षत्रधर्माको द्रोणाचार्यको आनेसे रोक दिया ॥ १० ॥

क्षत्रधर्मा सिन्धुपतेश्छित्त्वा केतनकार्मुके ।
नाराचैर्बहुभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ११ ॥

क्षत्रधर्माने क्रुद्ध होकर सिन्धुराज जयद्रथका धनुष और रथकी ध्वजा काट कर, फिर अनेक नाराच बाणोंसे उनके सम्पूर्ण मर्म स्थानोंको बिद्ध किया ॥ ११ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत् ।
विव्याध क्षत्रधर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥

राजा जयद्रथ शीघ्रतापूर्वक दूसरा धनुष ग्रहण करके सिद्ध हस्त पुरुषके समान फिर युद्धमें क्षत्रधर्माको अपने संपूर्ण लोहेके बने हुए तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम् ।
सुबाहुर्भ्रातरं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १३ ॥

सुबाहु यत्नवान् होकर पाण्डवोंकी ओरसे युद्धके निमित्त उपस्थित निज भ्राता महारथी पराक्रमी युयुत्सुको द्रोणाचार्यकी ओर आनेसे रोकने लगे ॥ १३ ॥

सुबाहोः सधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ ॥ १४ ॥

युयुत्सुने अपने तीक्ष्ण और पानीदार दो क्षुर बाणोंसे प्रहार करते हुए सुबाहुके परिघके समान और धनुषबाणोंसे युक्त दोनों भुजाओंको काट दिया ॥ १४ ॥

राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराट् समवारयत् ॥ १५ ॥

जैसे तट क्षुब्ध समुद्रके वेगको निवारण करता है, वैसे ही मद्रराज शल्यने पाण्डवोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको रोक दिया ॥ १५ ॥

तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत् ।
मद्रेशस्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विद्ध्वानदद्भृशम् ॥ १६ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने भी अनेक मर्मभेदी बाणोंकी मद्रराज शल्यपर वर्षा की, तब मद्रराज शल्य चौसठ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको विद्ध करके जोरसे गर्जना करने लगे ॥ १६ ॥

तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त सकार्मुकम्।
क्षुराभ्यां पाण्डवश्रेष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १७ ॥

अनन्तर पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिरने दो क्षुरोंसे गर्जते हुए मद्रराजके रथकी ध्वजा और उनका धनुष काट दिया, उनके ऐसे कर्मको देखकर सम्पूर्ण सेनाके पुरुष प्रसन्नतासे सिंहनाद करने लगे ॥ १७ ॥

तथैव राजा बाह्लीको राजानं द्रुपदं शरैः ।
आद्रवन्तं सहानीकं सहानीको न्यवारयत् ॥ १८ ॥

इसी प्रकार राजा बाह्लिकने अपनी सेनासे युक्त होकर तीक्ष्ण बाणोंसे सेनाके सहित आक्रमण करते हुए राजा द्रुपदको रोक दिया ॥ १८ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं वृद्धयोः सहसेनयोः ।
यथा महायूथपयोर्द्विपयोः संप्रभिन्नयोः ॥ १९ ॥

जैसे दो मतवाले गजयूथपति बडे हाथियोंका युद्ध होता है, वैसे ही सेनाके सहित उन दोनों वृद्ध राजाओंमें घोर संग्राम होने लगा ॥ १९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्छताम् ।
सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम् ॥ २० ॥

जैसे पहिले समयमें इन्द्र और अग्निने राजा बलिके सङ्ग युद्ध किया था, वैसे ही सम्पूर्ण सेनाके सहित अवन्तिके राजपुत्र विन्द और अनुविन्द, मत्स्यराज विराट और उनकी सेनाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥

तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् ।
मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥ २१ ॥

उस समय मत्स्य देशीय सेनाका केकय देशीय सेनाके साथ देवता और असुरोंके युद्धके समान महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा । दोनों सेनाओंके रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल चलनेवाले वीर योद्धा लोग निर्भय चित्तसे युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥

नाकुलिं तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः ।
अस्यन्तमिषुजालानि यान्तं द्रोणादवारयत् ॥ २२ ॥

भूतकर्मा सभापतिने नकुल पुत्र शतानीकको द्रोणाचार्यकी ओर युद्धके निमित्त बाण समूहोंकी वर्षा करता हुआ आता देखकर उसे द्रोणकी ओर आनेसे रोक दिया ॥ २२ ॥

ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः ।
चक्रे विबाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥

अनन्तर नकुलपुत्र शतानीकने तीन तीक्ष्ण भल्लोंसे भूतकर्माकी दोनों भुजाएं और सिरको काट डाला ॥ २३ ॥

सुतसोमं तु विक्रान्तमापतन्तं शरौघिणम् ।
द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत् ॥ २४ ॥

विविंशतिने पराक्रमी सुतसोमको बाणोंकी वर्षा करता हुआ द्रोणाचार्यके संमुख आते देखकर, उन्हें रोक दिया ॥ २४ ॥

सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः ।
विविंशतिं शरैर्विद्ध्वा नाभ्यवर्तत दंशितः ॥ २५ ॥

सुतसोम अत्यंत क्रुद्ध होकर शीघ्रताके सहित अपने चचा विविंशतिको सीधे जानेवाले बाणोंसे विद्ध करके, फिर उनके संमुख कवच धारण कर खडा रहा ॥ २५ ॥

अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः ।
षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद्यमसादनम् ॥ २६ ॥

अनन्तर भीमरथने लोहमय छः तीक्ष्ण शीघ्रगामी बाणोंसे सारथिके सहित शाल्वको यमपुरीमें भेज दिया ॥ २६ ॥

श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रो न्यवारयत् ॥ २७ ॥

हे राजन् ! चित्रसेनके पुत्र और तुम्हारे पौत्रने श्रुतकर्माको जो मयूर वर्णके घोडोंपर आता था, उसको रोका ॥ २७ ॥

तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ ।
पितॄणामर्थसिद्ध्यर्थं चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ २८ ॥

आपसमें एक दूसरेके वधकी इच्छा करते हुए वे तुम्हारे दोनों दुर्धर्ष पौत्र अपने अपने पिताके प्रियकार्य करनेकी इच्छासे तुमुल युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तिष्ठन्तमग्रतो दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं तमाहवे ।
द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन्मार्गणैः समवारयत् ॥ २९ ॥

अश्वत्थामा उस युद्धभूमिमें प्रतिविन्ध्यको संमुखमें स्थित देखके अपने पिता द्रोणाचार्यकी मानरक्षाके निमित्त उन्हें बाणोंसे निवारण करने लगे ॥ २९ ॥

तं क्रुद्धः प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः ।
सिंहलाङ्गूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥

क्रुद्ध प्रतिविन्ध्य पिताकी इष्ट सिद्धिके निमित्त युद्धमें स्थित और सिंह लांगूलवाली ध्वजासे युक्त अश्वत्थामाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नरर्षभ ।
द्रौणायनिर्द्रौपदेयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३१ ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे खेतमें किसान बीज बोनेके समयपर बीज डालता है, वैसे ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने द्रौपदीपुत्र प्रतिविन्ध्यपर बाणोंकी वर्षा की ॥ ३१ ॥

यस्तु शूरतमो राजन्सेनयोरुभयोर्मतः ।
तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! जो दोनों सेनाओंमें सबसे अधिक शूरवीर माना जाता था, डाकुओंको मारनेवाले उसको लक्ष्मणने रोका ॥ ३२ ॥

स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्त्वा लक्ष्म च भारत ।
लक्ष्मणे शरजालानि विसृजन्बह्वशोभत ॥ ३३ ॥

परन्तु भारत ! वह लक्ष्मणके धनुष और रथकी ध्वजाको काटके उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करता हुआ अत्यन्त ही शोभित होने लगा ॥ ३३ ॥

विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम् ।
पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥ ३४ ॥

महा बुद्धिमान् तरुण विकर्णने युद्धभूमिमें नवयुवक यज्ञसेनपुत्र शिखण्डीको आगे बढनेसे रोका ॥ ३४ ॥

ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत् ।
विधूय तद्बाणजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३५ ॥

तब शिखण्डीने अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया । तुम्हारे पुत्र बलवान् विकर्ण भी उस बाणजालको भग्न करके युद्धभूमिमें शोभित हुए ॥ ३५ ॥

अङ्गदोऽभिमुखः शूरमुत्तमौजसमाहवे ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ३६ ॥

सामने खडे हुए अङ्गदने युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके सामने शूरवीर उत्तमौजाको आते देखकर उन्हें अपने वत्सदन्त बाणोंसे रोक दिया ॥ ३६ ॥

स संप्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रीतिवर्धनः ॥ ३७ ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंमें तुमुल युद्ध होने लगा । उन दोनोंका वह संग्राम सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंकी और उन दोनोंकी प्रसन्नता बढाता था ॥ ३७ ॥

दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं कुन्तिभोजमवारयत् ॥ ३८ ॥

महाधनुर्धारी बलवान् दुर्मुखने वीर पुरुजित् कुंतीभोजको द्रोणाचार्यके सामने जाते देख रोक दिया ॥ ३८ ॥

स दुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन व्यताडयत् ।
तस्य तद्विबभौ वक्त्रं सनालमिव पङ्कजम् ॥ ३९ ॥

तब पुरुजित्ने नाराचसे दुर्मुखके दोनों भौंहोंके मध्यस्थलमें प्रहार किया । उस समय दुर्मुखका मुख मृणालयुक्त पद्मपुष्पके समान शोभित होने लगा ॥ ३९ ॥

कर्णस्तु केकयान्भ्रातॄन्पञ्च लोहितकध्वजान् ।
द्रोणायाभिमुखं यातान्शरवर्षैरवारयत् ॥ ४० ॥

कर्णने लाल रंगकी ध्वजासे युक्त पांचों भाई केकय राजपुत्रोंको द्रोणाचार्यके सम्मुख जाते देखकर उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे रोक दिया ॥ ४० ॥

ते चैनं भृशसंक्रुद्धाः शरव्रातैरवाकिरन् ।
स च तांश्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥

तब वे पांचों भाई अत्यंत क्रुद्ध होकर कर्णके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे । कर्ण भी अपने बाणोंके जालसे उन लोगोंको बार बार छिपाने लगे ॥ ४१ ॥

नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसंवृताः ।
साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः ॥ ४२ ॥

कर्ण और पांचों भाई केकयराज परस्पर बाणोंसे विद्ध होके बाणोंकी वर्षासे रथ, सारथि, ध्वज और घोडोंके सहित इस प्रकार छिप गये, कि तनिक भी न दीख पडते थे ॥ ४२ ॥

पुत्रस्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च ह ।
नीलं काश्यं जयं शूरास्त्रयस्त्रीन्प्रत्यवारयन् ॥ ४३ ॥

दुर्जय, जय और विजय तुम्हारे ये तीनों पुत्र नील, काश्य और जयको निवारण करने लगे ॥ ४३ ॥

तद्युद्धमभवद्धोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् ।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथेभमहिषर्षभैः ॥ ४४ ॥

जैसे हाथी, भैंसा और वृषभोंके सङ्ग सिंह, व्याघ्र और तेंदुओंका युद्ध होता है, वैसे ही उन लोगोंका महाघोर संग्राम होने लगा, उसे देखके दर्शक लोग अत्यन्तही प्रसन्न हुए ॥ ४४ ॥

क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तौ भ्रातरौ सात्वतं युधि ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततक्षतुः ॥ ४५ ॥

क्षेमधूर्ति और बृहन्त ये दोनों भाई युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर सात्वत सात्यकिको दौडे आते देखके उन्हें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥

तयोस्तस्य च तद्युद्धमत्यद्भुतमिवाभवत् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ४६ ॥

जैसे वनमें दो मतवाले हाथियोंके सङ्ग अकेले ही सिंहका युद्ध होता है, वैसे ही उन दोनों भाइयों और सात्यकिका अत्यन्त आश्चर्ययुक्त संग्राम होने लगा ॥ ४६ ॥

राजानं तु तथाम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् ।
चेदिराजः शरानस्यन्क्रुद्धो द्रोणादवारयत् ॥ ४७ ॥

चेदिराज क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यकी ओर युद्धकी इच्छा करनेवाले अम्बष्ठराजको बढे आते देखकर उन्हें अपने बाणोंसे निवारण करने लगे ॥ ४७ ॥

तमम्बष्ठोऽस्थिभेदिन्या निरविध्यच्छलाकया ।
स त्यक्त्वा सशरं चापं रथाद्भूमिमथापतत् ॥ ४८ ॥

अनन्तर अम्बष्ठ राजने अस्थिभेदिनी शलाकासे उन्हें अत्यन्त ही विद्ध किया; उससे चेदिराज धनुष बाण त्यागके रथसे पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ४८ ॥

वार्धक्षेमिं तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः ।
अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्द्रोणात्क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४९ ॥

शरद्वानके पुत्र श्रेष्ठ कृपाचार्यने क्रुद्ध वृष्णिवंशीय वृद्धक्षेमपुत्रको द्रोणाचार्यके पास आनेसे रोका ॥ ४९ ॥

युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ ।
ते युद्धसक्तमनसो नान्या बुबुधिरे क्रियाः ॥ ५० ॥

जिन्होंने विचित्र योद्धा कृपाचार्य और वृष्णिवंशी वृद्धक्षेमपुत्रके युद्धको देखा, उनका चित्त उन्हीं दोनों वीरोंके युद्धकौशलके देखनेमें लगा रहा; उन्हें दूसरी क्रियाओंका विचार नहीं रहा ॥ ५० ॥

सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् ।
पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५१ ॥

द्रोणाचार्यके यशकी वृद्धिकी अभिलाषासे सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने उद्योगी राजा मणिमान्को युद्धमें द्रोणाचार्यके संमुख आते देख, रोका ॥ ५१ ॥

स सौमदत्तेस्त्वरितश्छित्त्वेष्वसनकेतने ।
पुनः पताकां सूतं च छत्रं चापातयद्रथात् ॥ ५२ ॥

तब राजा मणिमानने शीघ्रताके साहित भूरिश्रवाके रथकी ध्वजा, धनुष, सारथि और उनके छत्रको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे रथसे काट गिरा दिया ॥ ५२ ॥

अथाप्लुत्य रथात्तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त वरासिना ॥ ५३ ॥

अनन्तर यूपचिह्न ध्वजावाले शत्रुनाशन सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा शीघ्रताके सहित रथसे कूदे और उन्होंने लंबी तलवारसे ध्वजा, पताका, रथ, सारथि और घोडोंके सहित राजा मणिमान्को काट डाला ॥ ५३ ॥

रथं च स्वं समास्थाय धनुरादाय चापरम् ।
स्वयं यच्छन्हयान्राजन्व्यधमत्पाण्डवीं चमूम् ॥ ५४ ॥

अनन्तर फिर अपने रथपर चढके, घोडोंकी बागडोर अपने ही हाथसे पकडकर, दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ ५४ ॥

समुलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिण्डिपालैः परश्वधैः ।
पांसुवाताग्निसलिलैर्भस्मलोष्ठतृणद्रुमैः ॥ ५५ ॥

मुसल, मुद्गर, चक्र, भिन्डिपाल, परश्वध, धूल, वात, अग्नि, जल, भस्म, मिट्टीके ढेले, तृण और वृक्षोंकी ॥ ५५ ॥

आरुजन्प्ररुजन्भञ्जन्निघ्नन्विद्रावयन्क्षिपन् ।
सेनां विभीषयन्नायाद्द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ५६ ॥
वर्षा करके कुरुसेनाको भग्न करता, तोडता–फोडता, मारता भगाता, पीडित करता, फेंकता तथा भयभीत करके तितर बितर करता हुआ घटोत्कच द्रोणाचार्यको गृहण करनेकी इच्छासे उनके समीप उपस्थित हुआ ॥ ५६ ॥

तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।
राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुसः ॥ ५७ ॥
अनन्तर राक्षस अलम्बुसने क्रुद्ध होकर अनेक प्रकारके युद्धमें उपयोगी नाना भांतिके शस्त्र अस्त्रोंसे घटोत्कचको पीडित करके उसे युद्धमें निवारण किया ॥ ५७ ॥

तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ५८ ॥
पहिले समयमें जैसे देवराज इन्द्र और शम्बरासुरका संग्राम हुआ था, वैसे ही राक्षसोंमें अग्रणी उन दोनों राक्षस राजाओंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ५८ ॥

एवं द्वंद्वशतान्यासन्रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च सङ्कुलम् ॥ ५९ ॥
राजन् ! आपका कल्याण हो । इसी प्रकारसे तुम्हारे और पाण्डवोंके–दोनों ओरकी सेनाके रथ, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंके आपसमें सैकडों द्वन्द्वयुद्ध होने लगे ॥ ५९ ॥

नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याभावभावेषु प्रसक्तानां यथाभवत् ॥ ६० ॥
द्रोणाचार्यका वध और उनकी जीवनरक्षा इन दोनों उद्देशोंसे युक्त होकर दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा युद्ध हम लोगोंने न कभी पहिले देखा और न कभी सुना ही था ॥ ६० ॥

इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ॥ ६१ ॥
॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ १०४२ ॥

हे प्रजानाथ ! इस अनेक भांतिके बडे भारी संग्रामके समय युद्धको पृथक् रूपसे देखनेसे वह युद्ध भयानक, आश्चर्यमय और तीव्ररूपका बोध होने लगा ॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ १०४२ ॥

: २५ :

धृतराष्ट्र उवाच

तेष्वेवं संनिवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले,– हे सञ्जय ! इसी प्रकारसे जब योद्धा लोग पृथक् पृथक् युद्धके लिये लौटे और कौरव सैनिक सामना करनेके लिये तैयार हुए, तब मेरे और कुन्तीके प्रबल पुत्रोंने कैसा संग्राम किया ? ॥ १ ॥

किमर्जुनश्चाप्यकरोत्संशप्तकबलं प्रति ।
संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥ २ ॥

और अर्जुनने संशप्तकोंसे और संशप्तक वीरोंने अर्जुनके सङ्ग किस प्रकारसे युद्ध किया ? ॥२॥

सञ्जय उवाच

तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– जब पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग इस प्रकारसे पृथक् पृथक् युद्धके लिये लौटे और कौरव लोग सामना करनेके लिये प्रवृत्त हुए, तब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन स्वयं हाथियोंकी सेना साथ लेकर भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ३ ॥

स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः ।
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे हाथीके अथवा एक वृषभ दूसरे वृषभके संमुख होता है, वैसे ही स्वयं भीमसेन राजा दुर्योधनके आव्हानित करनेपर हाथियोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥४॥

स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चान्वितः ।
अभिनत्कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष ॥ ५ ॥

मारिष ! और युद्धकुशल, बाहुवीर्यसे युक्त कुन्तीपुत्र भीमसेनने थोडीही देरमें उस गजसेनाको तितर बितर कर दिया ॥ ५ ॥

ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् ।
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ॥ ६ ॥

पर्वतके समान मदचूते हुए कितने ही मतवाले हाथी भीमसेनके नाराच बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मदसे रहित हो युद्धभूमिसे विमुख होकर भागने लगे ॥ ६ ॥

विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समन्ततः ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ॥ ७ ॥

जैसे प्रबल वायु मेघमण्डलको चारों ओरसे छिन्न भिन्न कर देती है, वैसे ही पवन पुत्र भीमसेनने उस सम्पूर्ण गजसेनाको तितर बितर कर दिया ॥ ७ ॥

स तेषु विसृजन्बाणान्भीमो नागेष्वशोभत ।
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥ ८ ॥

जैसे जगत्के बीच उदित हुए सूर्य अपनी किरणें प्रसारित करते हैं, वैसे ही हाथियोंकी सेनाके ऊपर बाणोंको छोडनेवाले भीमसेन शोभित होने लगे ॥ ८ ॥

ते भीमबाणैः शतशः संस्यूता विबभुर्गजाः ।
गभस्तिभिरिवार्कस्य व्योम्नि नानाबलाहकाः ॥ ९ ॥

जैसे आकाशमें सूर्यकी किरणोंसे युक्त अनेक मेघ शोभित होते हैं, वैसे ही भीमसेनके सैकडों बाणोंसे सम्पूर्ण हाथी ग्रसित, पूरित तथा पीडित होके शोभित होने लगे ॥ ९ ॥

तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम् ।
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ १० ॥

राजा दुर्योधन पवनपुत्र भीमसेनको इस भांति हाथियोंकी सेनाका संहार करते देख क्रुद्ध होकर, उनके पास जाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे उन्हें विद्ध करने लगे ॥ १० ॥

ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः ।
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥ ११ ॥

अनन्तर भीमसेन रुधिरके समान लाल नेत्र करके क्षणभरके बीचमें राजा दुर्योधनका नाश करनेकी इच्छासे उत्तम पानीसे बुझे हुए पंखयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध करने लगे ॥ ११ ॥

स शरार्पितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ।
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव ॥ १२ ॥

राजा दुर्योधनके सारे अंग बाणोंसे परिपूरित होनेपर भी वे क्रुद्ध होकर सूर्य-किरणोंके समान प्रकाशमान नाराच बाणोंसे पाण्डुपुत्र भीमसेनको हंसते हुए प्रहार करने लगे ॥ १२ ॥

तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रं ध्वजे स्थितम् ।
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः ॥ १३ ॥

पाण्डुपुत्र भीमसेनने क्रुद्ध होकर शीघ्रही एक भल्लसे उनके रथकी रत्नोंसे युक्त विचित्र ध्वजाको मणिमय हाथीके चित्र सहित काटके गिरा दिया, फिर दूसरे एक भल्ल बाणसे उनका धनुष भी काट डाला ॥ १३ ॥

दुर्योधनं पीडयमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः ॥ १४ ॥
हे भारत ! अनन्तर मतवाले हाथीपर चढे हुए अङ्गने दुर्योधनको भीमसेनके अस्त्रोंसे पीडित देखकर, भीमको क्षोभित करनेकी इच्छासे अपना गजराज उनकी ओर चलाया ॥ १४ ॥

तमापतन्तं मातङ्गमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचेनार्दयद्भृशम् ॥ १५ ॥
भीमसेनने राजा अङ्गके बादलके गर्जनेके समान शब्दसे युक्त उस हस्तिराजको सम्मुख आते देखकर नाराच बाणसे उसके गंडस्थलके बीचमें जोरसे प्रहार किया ॥ १५ ॥

तस्य कायं विनिर्भिद्य ममज्ज धरणीतले ।
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाचलः ॥ १६ ॥
वह बाण उसके शरीरको भेदके पृथ्वीमें समा गया और वह गजराज भी वज्रकी चोटसे टूटे हुए पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥

तस्यावर्जितनागस्य म्लेच्छस्यावपतिष्यतः ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥
हाथीके गिरते समयमें ज्योंही म्लेच्छराज अङ्ग उसके ऊपरसे कूद रहे थे, उस ही समय भीमसेनने शीघ्रताके सहित एक भल्लसे उनका शिर काट डाला ॥ १७ ॥

तस्मिन्निपतिते वीरे संप्राद्रवत सा चमूः ।
संभ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातीनवमृद्नती ॥ १८ ॥
जब राजा अङ्ग मारे गये, तब उनकी सम्पूर्ण सेना युद्धभूमिसे भागने लगी । हाथी, घोडे और रथ घबराहटमें पडकर अपनेही पैदल चलनेवाले वीर योद्धाओंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें दौडने लगे ॥ १८ ॥

तेष्वनीकेषु सर्वेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ १९ ॥
इस प्रकार उन सम्पूर्ण सेनाओंके चारों ओर भागनेपर प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त अपने गजराज पर चढके भीमसेनकी ओर दौडे ॥ १९ ॥

येन नागेन मघवानजयद्दैत्यदानवान् ।
स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् ॥ २० ॥
जिस हाथीके बलसे देवताओंके राजा इन्द्रने दैत्य-दानवोंको युद्धमें पराजित किया था, उस ही वंशमें उत्पन्न हुए महाबलवान् हस्तिराजने सहसा भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ २० ॥

श्रवणाभ्यामथो पद्भ्यां संहतेन करेण च ।
व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रदहन्निव पाण्डवम् ॥ २१ ॥

उस महाबली विशाल हाथीने अपने दोनों कान, पांव और सिकोडी हुई सूण्डसे भीमसेन पर आक्रमण करके, क्रोधसे लाल नेत्र किये थे, मानो पाण्डुपुत्र भीमसेनको जला देगा ॥ २१ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ।
हा हा विनिहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ॥ २२ ॥

हे भारत ! अनन्तर सम्पूर्ण सेनामें महान् घोर शब्द होने लगा । "हा हा ! भीमसेन हाथीसे मारा गया !" सब ऐसा ही कह रहे थे ॥ २२ ॥

तेन नादेन वित्रस्ता पाण्डवानामनीकिनी ।
सहसाभ्यद्रवद्राजन्यत्र तस्थौ वृकोदरः ॥ २३ ॥

हे राजन् ! पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना उस शब्दसे भयभीत होकर जहां पर भीमसेन खडे थे, वहां पर सहसा भाग गयी ॥ २३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ।
भगदत्तं सपाञ्चालः सर्वतः समवारयत् ॥ २४ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने भीमसेनको मारा गया मान कर, पाञ्चाल देशीय योद्धाओंके सहित मिलके राजा भगदत्तको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २४ ॥

तं रथै रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरञ्शरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥

वे रथियोंमें श्रेष्ठ रथी अपने रथोंसे उनको सब ओरसे घेरकर उनके ऊपर सैकडों और सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

स विघातं पृषत्कानामङ्कुशेन समाचरन् ।
गजेन पाण्डुपाञ्चालान्व्यधमत्पर्वतेश्वरः ॥ २६ ॥

पर्वतराज भगदत्तने उन बाणोंके प्रहारका अपने अंकुशसे निवारण करके फिर अपने गजराजको आगे बढाकर पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको रौंद डाला ॥ २६ ॥

तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ।
तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशां पते ॥ २७ ॥

हे नरनाथ ! उस समय युद्धमें हाथीके द्वारा वृद्ध राजा भगदत्तका हमने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम अवलोकन किया ॥ २७ ॥

ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ।
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाशुगामिना ॥ २८ ॥

अनन्तर दशार्णाधिपतिने एक महाबलवान् , शीघ्रगामी और तिरछी दिशाकी ओरसे आक्रमण करनेवाले गजराजसे राजा भगदत्तपर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ।
सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ॥ २९ ॥

जैसे पहिले समयमें वृक्षोंके सहित पंखवाले दो पर्वतोंका आपसमें युद्ध हुआ था, वैसे ही भयङ्कर मूर्त्तिवाले उन दोनों गजराजोंका युद्ध होने लगा ॥ २९ ॥

प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः संनिपत्यापवृत्य च ।
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत् ॥ ३० ॥

राजा भगदत्तके हाथीने पहिले युद्धसे निवृत्त हो कुछ दूर हटके फिर वेगपूर्वक दौडकर दशार्णराजके हाथीके पार्श्वभागमें आघात किया; उसही प्रहारसे दशार्णराजका हाथी मरकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ३० ॥

तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ।
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ॥ ३१ ॥

तब राजा भगदत्तने सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान् सात तोमरोंको चलाकर हाथीपर स्थित अपने शत्रु दशार्णराजको, जिसका आसन विचलित हो गया था, मार डाला ॥ ३१ ॥

उपसृत्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ।
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ॥ ३२ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने रथोंकी महासेना लेकर राजा भगदत्तके पास पहुंचकर उनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३२ ॥

स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतो वृतः ।
पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३३ ॥

अपने महाबलवान् गजराजपर बैठे हुए राजा भगदत्त सब ओर सम्पूर्ण रथियोंसे घिर जानेसे, वनके बीचमें पर्वतके ऊपर प्रदीप्त हुए अग्निके समान शोभित होने लगे ॥ ३३ ॥

मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ।
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ॥ ३४ ॥

उस समय भगदत्तका हाथी उग्र धनुष्य धारण करनेवाले बाणोंकी वर्षासे चारों ओर विद्ध होनेसे मोहित होकर वहां मंडलाकारगतिसे चारों ओर भ्रमण करने लगा ॥ ३४ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य द्विपर्षभम् ।
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ॥ ३५ ॥

अनन्तर राजा भगदत्तने उस अपने महान् हाथीको निगृहीत करके सहसा सात्यकिके रथकी ओर चलाया ॥ ३५ ॥

शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ।
अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ॥ ३६ ॥

तब सात्यकि अपने रथको छोडकर अत्यन्त शीघ्रताके साथ दूर हट गये और उस महान् गजराजने अपनी सूण्डसे सात्यकिके रथको उठाकर दूर फेंक दिया ॥ ३६ ॥

बृहतः सैन्धवानश्वान्समुत्थाप्य तु सारथिः ।
तस्थौ सात्यकिमासाद्य संप्लुतस्तं रथं पुनः ॥ ३७ ॥

अनन्तर उनके सारथिने सिन्धु देशीय विशाल शरीरवाले घोडोंको फिर उठाकर खडा किया और रथपर चढके सात्यकिके समीप उपस्थित हुआ ॥ ३७ ॥

स तु लब्ध्वान्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ।
निश्चक्राम ततः सर्वान्परिचिक्षेप पार्थिवान् ॥ ३८ ॥

अनन्तर वह गजराज अवसर पाकर शीघ्रताके सहित रथोंके समूहसे बाहर निकला, और चारों ओर सब राजाओंको उठा उठाकर फेंकने लगा ३८ ॥

ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ।
तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो नृपाः ॥ ३९ ॥

सम्पूर्ण नरश्रेष्ठ राजा लोग युद्धमें उस शीघ्रगामी हाथीसे अत्यन्त भयभीत होकर उस एक ही हाथीको सैकडों हाथियोंके समान लगे ॥ ३९ ॥

ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ।
ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ॥ ४० ॥

जैसे ऐरावत पर चढे देवराज इन्द्र दानव लोगोंका नाश करते हैं वैसे ही पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका महाबलवान् गजराज पर चढे हुए राजा भगदत्त संहार करने लगे ॥ ४० ॥

तेषां प्रद्रवतां भीमः पाञ्चालानामितस्ततः ।
गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान्समजायत ॥ ४१ ॥

उसी समय इधर उधर भागते हुए पाञ्चाल योद्धाओंके हाथी और घोडोंका महाघोर भयानक शब्द होने लगा ॥ ४१ ॥

भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ।
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ॥ ४२ ॥

इस प्रकारसे पाण्डवोंकी सेना जब भगदत्तके अस्त्र शस्त्र और उनके बलवान् गजराजसे नष्ट होने लगी, तब भीमसेन अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर फिर राजा भगदत्तके संमुख उपस्थित हुए ॥ ४२ ॥

तस्याभिद्रवतो वाहान्हस्तमुक्तेन वारिणा ।
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्ते पार्थमहरंस्ततः ॥ ४३ ॥

अनन्तर भगदत्तके हाथीने अपने सूण्डकी जलधारासे आक्रमण करनेवाले भीमसेनके घोडोंको भिंगा कर उन्हें भयभीत कर दिया, इससे वे घोडे रथ सहित भीमसेनको लेकर वहांसे भाग गये ॥ ४३ ॥

ततस्तमभ्ययात्तूर्णं रुचिपर्वाकृतीसुतः ।
समुक्षञ्शरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसंनिभः ॥ ४४ ॥

अनन्तर अन्तकके समान आकृतीपुत्र रुचिपर्वाने रथपर चढके तुरंत ही अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण करके उस हाथीको अत्यन्तही विद्ध किया ॥ ४४ ॥

ततो रुचिरपर्वाणं शरेण नतपर्वणा ।
सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ॥ ४५ ॥

अनन्तर पर्वतराज राजा भगदत्तने एक तीक्ष्ण बाणसे रुचिपर्वाका वध करके उसे यमपुरीमें भेज दिया ॥ ४५ ॥

तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुताः ।
चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चार्दयन्द्विपम् ॥ ४६ ॥

उस पराक्रमी रुचिपर्वाके मारे जाने पर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, द्रौपदीके पाचों पुत्र, चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु आदि महारथी योद्धा लोग भगदत्तके गजराजको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ४६ ॥

त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ।
सिषिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ॥ ४७ ॥

वे सब योद्धा लोग उस हस्तिराजके वधकी अभिलाषा करके बलपूर्वक सिंहनाद करते हुए, उसके ऊपर इस प्रकारसे अपने बाणोंको वर्षाने लगे, जैसे पर्वतके ऊपर बादल आकाशसे जलकी बर्षा करते हैं ॥ ४७ ॥

ततः पार्ष्ण्यङ्कुशाङ्गुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः ।
प्रसारितकरः प्रायात्स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम् ॥ ४८ ॥

अनन्तर पराक्रमी भगदत्तने उस गजराजको अंकुश देकर पांवके अंगूठेके इशारेसे प्रेरित करके उन महारथियोंकी ओर चलाया। तब उस गजराजने क्रोधसे लाल नेत्र कर एक टक देख तथा कान उठा और सूण्ड पसार कर शीघ्रताके सहित धावा किया ॥ ४८ ॥

सोऽधिष्ठाय पदा वाहान्युयुत्सोः सूतमारुजत् ।
पुत्रस्तु तव संभ्रान्तः सौभद्रस्याप्लुतो रथम् ॥ ४९ ॥

अपने पांवोंसे युयुत्सुके रथके घोडोंको दबाकर फिर उनके सारथिको भी मार डाला। तुम्हारे पुत्र युयुत्सु उस गजराजसे भयभीत होकर अभिमन्युके रथपर जा चढे ॥ ४९ ॥

स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः ।
बभौ रश्मीनिवादित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥ ५० ॥

जैसे सूर्य जगत्के बीच अपने तेजसे युक्त किरणोंको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही राजा भगदत्त उस महा बलवान् हाथीपर चढकर शत्रुओंके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाने लगे ॥५०॥

तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥ ५१ ॥

परन्तु अर्जुनपुत्र अभिमन्युने बारह, युयुत्सुने दस और द्रौपदीके पुत्रों तथा धृष्टकेतुने तीन तीन बाणोंसे राजा भगदत्तके हाथीको विद्ध किया ॥ ५१ ॥

सोऽरियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ५२ ॥

जैसे प्रचण्ड बादल सूर्यकिरणोंसे शोभित होता है, वैसे ही वह हस्तिराज उन सम्पूर्ण महारथियोंके प्रयत्नपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे पूरित होकर शोभित होने लगा ॥ ५२ ॥

नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेषितोऽरिशरार्दितः ।
परिचिक्षेप तान्नागः स रिपून्सव्यदक्षिणम् ॥ ५३ ॥

परन्तु वह गजराज शत्रुओंके बाणोंसे पीडित होकर भी अपने महावतके कौशल और प्रयत्नसे प्रेरित होकर उन शत्रुओंको दाहिनी और बायीं ओर उठाकर फेंकने लगा ॥ ५३ ॥

गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ।
आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ५४ ॥

जैसे वनमें पालक पशुओंको लाठीसे ताडित करता है, वैसे ही राजा भगदत्तने फिर पाण्डवोंकी सेनाको बारबार घेर लिया ॥ ५४ ॥

क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।
बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ५५ ॥

जैसे बाजपक्षीके आक्रमण समयमें शीघ्र ही कौवे कांव कांव करते हैं, वैसे ही पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भागते हुए महा घोर शब्द करने लगे ॥ ५५ ॥

स नागराजः प्रवराङ्कुशाहतः पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप ।
भयं तथा रिपुषु समादधद्भृशं वणिग्गणानां क्षुभितो यथार्णवः ॥ ५६ ॥

हे राजन् ! जैसे प्रक्षुब्ध समुद्रकी भयङ्कर लहरोंसे वणिक् लोग भयभीत होते हैं, वैसे ही वह हस्तिराज विशाल अंकुशकी मार खाकर शत्रुओंकी ओर चलानेपर मानो पहिलेके पक्षयुक्त श्रेष्ठ पर्वतके समान शत्रुओंको अत्यंत भयभीत करने लगा ॥ ५६ ॥

ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवैर्भयाद्द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः ।
क्षितिं वियद्द्यां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत्पार्थिव संयुगे तदा ॥५७॥

राजन् ! अनन्तर उस महाघोर संग्राममें क्षत्रिय योद्धा रथ, हाथी और घोडोंके सहित रणभूमिसे भयके कारण भागने लगे । भागनेके समयमें उन सब योद्धाओंके भयानक शब्दसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और सम्पूर्ण दिशा परिपूर्ण होगई ॥ ५७ ॥

स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम् ।
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥ ५८ ॥

पहिले समयमें जैसे दैत्यराज विरोचनने युद्धमें देवताओंसे सुरक्षित देव सेनामें प्रवेश किया था, वैसे ही राजा भगदत्तने अपने महाबलवान् हाथीसे शत्रु पाण्डवोंकी सेनामें अच्छी तरहसे प्रवेश किया ॥ ५८ ॥

भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।
तमेकनागं गणशो यथा गजाः समन्ततो द्रुतमिव मेनिरे जनाः ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ११०१ ॥

उस ही समय वायु प्रचण्ड वेगसे बहने लगा, उससे आकाशमें इतनी धूलि उडी, कि उस धूलने सम्पूर्ण सैनिकोंको ढक दिया । उस समय सब लोग चारों ओर दौडनेवाले उस एक ही भगदत्तके हाथीको हाथियोंके समूहके समान मानने लगे ॥ ५९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ ११०१ ॥

: २६ :

संजय उवाच

यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाराज पार्थो यदकरोन्मृधे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! तुमने युद्धमें जो अर्जुनके पराक्रमका वृत्तान्त मुझसे पूछा है, उसे मैं वर्णन करता हूं; अर्जुनने समरमें जो कुछ किया था, वह चित्त लगाके सुनो ॥ १ ॥

रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिस्वनम् ।
भज्यतां भगदत्तेन कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥ २ ॥

जब राजा भगदत्तने इस प्रकार सेनाको भग्न किया, तब उस समय रणभूमिमें अत्यन्त ही धूलि उडने लगी; और उनका हस्तिराज महा भयङ्कर शब्दसे चिल्ला रहा था । कुन्तीपुत्र अर्जुन उस धूलिका उडना और हाथीका चिल्लाना सुनकर श्रीकृष्णसे बोले ॥ २ ॥

यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन ।
त्वरमाणोऽभ्यतिक्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निस्वनः ॥ ३ ॥

हे मधुसूदन ! राजा भगदत्त अपने गजराजपर चढके जैसे त्वरा करते हुए आक्रमणके लिये आये थे, उससे जान पडता है कि निश्चय ही यह महान् शब्द उनका है ॥ ३ ॥

इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः ।
प्रथमो वा द्वितीयो वा पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ४ ॥

मेरे विचारमें राजा भगदत्त संग्राममें हाथीपर चढके लडनेमें इन्द्रसे न्यून नहीं है । पृथ्वीमें हाथीपर चढके युद्ध करनेमें राजा भगदत्त प्रथम अथवा द्वितीय रूपसे गिने जानेके योग्य हैं ॥ ४ ॥

स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाप्रतिगजो युधि ।
सर्वशब्दातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः ॥ ५ ॥

उनका हस्तिराज भी श्रेष्ठ है, युद्धमें उस हाथीके समान पराक्रमी और दूसरा कोई हाथी भी इस पृथ्वीपर नहीं है । यह गजराज सम्पूर्ण शब्दोंको अतिक्रम कर सकता है, यह हाथी युद्धमें अत्यन्त पराक्रमी और न थकनेवाला है ॥ ५ ॥

सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चानघ ।
स पाण्डवबलं व्यक्तमद्यैको नाशयिष्यति ॥ ६ ॥

हे अनघ ! यह सम्पूर्ण शस्त्रोंके प्रहार और अग्निस्पर्श भी सह सकता है । यह हाथी आज अकेले ही पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकता है ॥ ६ ॥

न चावाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम् ।
त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः ॥ ७ ॥

हम दोनोंके अतिरिक्त और कोई भी उस गजराजको निवारण करनेमें समर्थ न हो सकेगा, इसलिये जहांपर प्राग्ज्योतिषके राजा भगदत्त युद्ध कर रहे हैं, तुम शीघ्रताके सहित उस ही स्थानपर मेरे रथको ले चलो ॥ ७ ॥

शक्रसख्याद्द्विपबलैर्वयसा चापि विस्मितम् ।
अद्यैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥ ८ ॥

इन्द्रके साथ मित्रता रखनेके कारण हाथीके बलसे घमंड करनेवाले और अवस्थामें बडे होनेका अभिमान रखनेवाले इन भगदत्तको आज मैं इन्द्रका प्रिय अतिथि स्वरूप करके स्वर्गमें भेजूंगा ॥ ८ ॥

वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः ।
दार्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णने सव्यसाची अर्जुनके वचनको सुनते ही, जहांपर राजा भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाको तितर बितर कर रहे थे, उस ही ओर रथको चलाया ॥ ९ ॥

तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः ।
संशप्तकाः समारोहन्सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥

अर्जुनको जाते देख, चौदह हजार संशप्तक महारथी उनके पीछे गमन करके उन्हें युद्ध करनेके निमित्त आवाहन करते हुए चढ आये ॥ १० ॥

दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्तानां नराधिप ।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य येऽनुगाः ॥ ११ ॥

राजन् ! इनमें हजार त्रिगर्त्तदेशीय महारथी थे, और चार हजार वासुदेवके अनुयायी महारथी योद्धा थे ॥ ११ ॥

दार्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष ।
आह्वयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र ! इधर राजा भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाका नाश करते हुए दीख पडते थे और दूसरी ओर संशप्तक योद्धा लोग अर्जुनको आवाहन करने लगे, इस कारण अर्जुनका हृदय द्विधा हो गया ॥ १२ ॥

किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदिति विचिन्तयन्।
हतो वा विनिवर्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

इससे अर्जुन अपने मनमें चिन्ता करने लगे कि इस समय संशप्तक वीरोंसे युद्ध करनेके निमित्त पीछे फिरूं वा राजा युधिष्ठिरके समीपमें जाऊँ ? इन दोनों कर्मोंमें मेरे लिये कौनसा कार्य उत्तम है ? ॥ १३ ॥

तस्य बुद्धया विचार्यैतदर्जुनस्य कुरूद्वह।
अभवद्भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥

हे राजन् ! अन्तमें उन्होंने अपने बुद्धिसे विचार करके मनमें यह पूर्ण दृढ निश्चय किया कि इस समय संशप्तक वीरोंका वध करना उचित है ॥ १४ ॥

स संनिवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ कपिध्वजावाले इन्द्र पुत्र अर्जुन हजारों संशप्तक रथी योद्धाओंका युद्धमें अकेले ही नाश करनेके निमित्त सहसा पीछे लौटके उनके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १५ ॥

सा हि दुर्योधनस्यासीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः।
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥

दुर्योधन और कर्णके मनमें अर्जुनके वधके उपायके विषयमें यही संमति हुई थी, इसलिये उसने युद्धके दो भाग किये थे ॥ १६ ॥

स तु संवर्तयामास द्वैधीभावेन पाण्डवः।
रथेन तु रथाग्र्याणामकरोत्तां मृषा तदा ॥ १७ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनके मनमें द्विधाभाव उत्पन्न हुआ था, परंतु रथीश्रेष्ठ संहारक वीरोंका नाश करनेका निश्चय करके उन रथिवीरने उस अभिप्रायको व्यर्थ कर दिया ॥ १७ ॥

ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम्।
व्यसृजन्नर्जुने राजन्संशप्तकमहारथाः ॥ १८ ॥

हे राजन् ! अनन्तर संशप्तक महारथी योद्धा लोग अर्जुनके ऊपर एकबार ही सौ हजार तीक्ष्ण बाणोंको छोडने लगे ॥ १८ ॥

नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः।
न हया न रथो राजन्दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥

राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन, जनार्दन श्रीकृष्ण और रथके घोडे तथा रथ बाणोंकी जालसे छिपकर उस समय दिखाई भी नहीं पडते थे ॥ १९ ॥

यदा मोहमनुप्राप्तः सस्वेदश्च जनार्दनः ।
ततस्तान्प्रायशः पार्थो वज्रास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ २० ॥

जब श्रीकृष्णके शरीरसे पसीना निकलने लगा और वह मोहित हो गये; तब अर्जुनने वज्रा-स्त्रसे उन संशप्तक वीरोंको अधिकांशमें नष्ट कर दिया ॥ २० ॥

शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः ।
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चापतन्क्षितौ ॥ २१ ॥

सैकडों भुजाएं धनुष, बाण, रोदा और तनुत्राणके सहित कट गयीं; घोडे, रथ, ध्वजा और सारथिके सहित रथी भी मर कर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २१ ॥

द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समरूपाः सुकल्पिताः ।
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः ॥ २२ ॥

वृक्षोंके सहित पर्वतोंके शिखर और बादलकी घटाके समान विशाल और सज्जित किये हुए हाथी जिनके सवार पहले ही मारे गये थे, अर्जुनके बाणोंसे मरके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥२२॥

विप्रविद्धकुथावल्गाश्छिन्नभाण्डाः परासवः ।
सारोहास्तुरगाः पेतुर्मथिताः पार्थमार्गणैः ॥ २३ ॥

उस समय अनेक घोडे अर्जुनके बाणोंसे मथित होकर सवारों सहित मरकर पृथ्वीपर गिर पडे; उस समय उनके ऊपरके आसन, लगाम और अलंकार टूट फूट कर दूर पडे थे ॥२३॥

सर्ष्टिचर्मासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः ।
संछिन्ना बाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना ॥ २४ ॥

किरीटधारी अर्जुनके भल्ल बाणोंसे ऋष्टि, चर्म, तलवार, नखर, मुद्गर और परश्वध अस्त्रोंके सहित शूरवीर पुरुषोंकी भुजाएं कटके पृथ्वीमें गिर गयीं ॥ २४ ॥

बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष ।
संछिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्वीं प्रपेदिरे ॥ २५ ॥

हे भारत ! कितने ही महारथी शूरवीरोंके बालसूर्य, कमल और चन्द्रमाके समान सुन्दर शिर अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे छिन्नभिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २५ ॥

जज्वालालंकृतैः सेना पत्रिभिः प्राणभोजनैः ।
नानालिङ्गैस्तदामित्रान्क्रुद्धे निघ्नति फल्गुने ॥ २६ ॥

जब क्रुद्ध अर्जुन अनेक प्रकारके चिह्नोंसे युक्त, अलंकृत, प्राणनाशक बाणोंसे शत्रुओंका नाश करने लगे, तब संशप्तकोंकी सब सेना जलने लगी ॥ २६ ॥

क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
धनञ्जयं भूतगणाः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २७ ॥

जैसे मतवाला हाथी कमलोंसे भरे हुए तालाबको मथ डालता है वैसे ही अर्जुन सम्पूर्ण सेनाको पीडित करने लगे; तब दर्शक वृन्द धन्य धन्य कहके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥२७॥

दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
विस्मयं परमं गत्वा तलमाहत्य पूजयत् ॥ २८ ॥

यदुकुल शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्रने इन्द्रके समान अर्जुनके इस अद्भुत कर्मको देखकर विस्मित होकर ताली बजाकर उनका अभिनन्दन किया ॥ २८ ॥

ततः संशप्तकन्हत्वा भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ।
भगदत्ताय याहीति पार्थः कृष्णमचोदयत् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ११३० ॥

अनन्तर जो संशप्तक योद्धा वहांपर खडे थे, अर्जुनने शीघ्रताके सहित उनमेंसे अधिकांशका बध करके, श्रीकृष्णसे वे बोले, अब आप भगदत्तकी ओर चलिये ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ ११३० ॥

: २७ :

सञ्जय उवाच

यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याश्वान्मनोजवान् ।
अप्रैषीद्धेमसंछन्नान्द्रोणानीकाय पाण्डुरान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— अनन्तर जब अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाके समीपमें जानेकी इच्छा की, तब श्रीकृष्णने सुवर्णभूषित, मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले उनके रथके श्वेत घोडोंको द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर चलाया ॥ १ ॥

तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वांस्त्रातुं द्रोणतापितान् ।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ २ ॥

तब भाइयों सहित सुशर्माने कुरुश्रेष्ठ अर्जुनको द्रोणाचार्यसे पीडित अपने भाइयोंकी रक्षा करनेके लिये द्रोणाचार्यकी ओर जाते देख, उन्हें युद्धके निमित्त फिर आवाहन किया और पीछेसे उनपर धावा किया ॥ २ ॥

ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः ।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माह्वयतेऽच्युत ॥ ३ ॥

अनन्तर श्वेतवाहन अर्जुन अपराजित श्रीकृष्णसे बोले, हे श्रीकृष्ण ! इधर भाइयोंसहित सुशर्मा युद्ध करनेके निमित्त मुझे आवाहन कर रहा है ॥ ३ ॥

दीर्यते चोत्तरेणैतत्सैन्यं नः शत्रुसूदन ।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम् ॥ ४ ॥

और उत्तर दिशाकी ओर हम लोगोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश हो रहा है। हे शत्रुनाशन ! इससे संशप्तकोंने आज मेरे मनको द्वैधीभूत कर दिया है ॥ ४ ॥

किं नु संशप्तकान्हन्मि स्वान्रक्षाम्यहितार्दितान् ।
इति मे त्वं मतं वेत्थ तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ५ ॥

मैं आज संशप्तक वीरोंका नाश करूं, वा शत्रुओंसे पीडित अपने सैनिकोंकी रक्षा करूं ? मेरा मन संशयमें पडा है, यह आप जानते ही हैं। इन दोनों कार्योंमें जो श्रेष्ठ तथा उत्तम होवे, उसे अब कहिये ॥ ५ ॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्तयत् ।
येन त्रिगर्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णने अर्जुनका ऐसा वचन सुनकर, जिस ओर त्रिगर्तराज सुशर्मा उन्हें आवाहन कर रहे थे, उस ही ओर अर्जुनके रथको बढाया ॥ ६ ॥

ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
ध्वजं धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ ७ ॥

अनन्तर अर्जुनने सात बाणोंसे सुशर्माको विद्ध करके, दो क्षुरोंसे उनके ध्वज और धनुषको काटकर गिरा दिया ॥ ७ ॥

त्रिगर्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिरायसैः ।
साश्वं ससूतं त्वरितः पार्थः प्रैषीद्यमक्षयम् ॥ ८ ॥

फिर शीघ्रताके सहित अर्जुनने त्रिगर्तराजके भ्राताको छः बाणोंसे घोडे और सारथिके सहित काटके यमलोकमें भेज दिया ॥ ८ ॥

ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् ।
चिक्षेपार्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥ ९ ॥

अनन्तर सुशर्माने अर्जुनके ऊपर सर्पके समान भयङ्कर लोहेकी बनी हुई एक शक्ति चलायी और श्रीकृष्णके ऊपर एक तोमर चलाया ॥ ९ ॥

शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः ।
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्तत ॥ १० ॥

अर्जुनने तीन तीन बाणोंसे उस शक्ति और तोमरको काटकर, अपने बाण समूहोंसे सुशर्माको मूर्च्छित करके युद्धसे निवृत्त किया ॥ १० ॥

तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षशरौघिणम् ।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥

राजन् ! अनन्तर इन्द्रके समान अर्जुन अनेक बाणोंको बर्षाते हुए वेगपूर्वक तुम्हारी सेनाकी ओर आने लगे । उस समय तुम्हारी सेनाके बीच कोई भी शूरवीर योद्धा उन उग्ररूपधारी अर्जुनको निवारण करनेमें समर्थ न हुआ ॥ ११ ॥

ततो धनञ्जयो बाणैस्तत एव महारथान् ।
आयाद्विनिघ्नन्कौरव्यान्दहन्कक्षमिवानलः ॥ १२ ॥

जैसे अग्नि तृण और काष्ठ आदिको भस्म कर देती है, वैसे ही अर्जुन अपने बाणोंसे तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको विद्ध करते हुए द्रोणाचार्यकी ओर आ गये ॥ १२ ॥

तस्य वेगमसह्यं तु कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
नाशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥ १३ ॥

जैसे सम्पूर्ण प्राणी अग्निस्पर्श नहीं सह सकते, वैसे ही सम्पूर्ण योद्धा बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुनके उस असह्य वेगको न सह सके ॥ १३ ॥

संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः ।
सुपर्णपातवद्राजन्नायात्प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥

राजन् ! अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे शत्रुसेनाओंको आच्छादित करके गरुड पक्षीके समान वेगपूर्वक राजा भगदत्तपर धावा किया ॥ १४ ॥

यत्तदानामयज्जिष्णुर्भरतानामपायिनाम् ।
धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम् ॥ १५ ॥

विजयी अर्जुनने शत्रुओंकी अश्रुधाराको बढानेवाले जिस गाण्डीव धनुषको युद्धमें निष्पाप भरतवंशियोंका कल्याण करनेके लिये नमाया था ॥ १५ ॥

तदेव तव पुत्रस्य राजन्दुर्द्यूतदेविनः ।
कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६ ॥

उस ही को कपटद्यूत खेलनेवाले तुम्हारे पुत्रके पापोंके लिये क्षत्रियोंका नाश करनेके निमित्त खींचा था ॥ १६ ॥

तथा विक्षोभ्यमाणा सा पार्थेन तव वाहिनी ।
व्यदीर्यत महाराज नौरिवासाद्य पर्वतम् ॥ १७ ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे नौका पर्वतसे टक्कर खाकर टुकडे टुकडे हो जाती है; वैसे ही तुम्हारी सेना अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर तितर बितर होने लगी ॥ १७ ॥

ततो दश सहस्राणि न्यवर्तन्त धनुष्मताम् ।
मतिं कृत्वा रणे क्रुद्धा वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥

अनन्तर दस हजार धनुर्धारी वीर लोग युद्धके निमित्त जय अथवा पराजयके लिये दृढ निश्चय कर क्रुद्ध होकर लौट आए ॥ १८ ॥

व्यपेतहृदयत्रास आपद्धर्मातिगो रथः ।
आर्छत्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥

हृदयसे भयको निकालकर, आपद्धर्मका स्वीकार करके युद्धमें सब भार सहन करनेवाले रथी अर्जुनने इस प्रकारके समयमें उनसे लडनेका ऐसा बडा भार ग्रहण किया ॥ १९ ॥

यथा नडवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः ।
मृद्नीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नाच्चमूं तव ॥ २० ॥

जैसे मदचूता हुआ मतवाला साठ वर्षकी अवस्थावाला बलवान् हाथी क्रोधमें भरकर बेतके बनको मर्दन करता है, वैसे ही प्रयत्नशील अर्जुन तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥२०॥

तस्मिन्प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।
तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥

जब इस प्रकारसे कुरुसेनाका नाश होने लगा, तब राजा भगदत्तने अपने उस महाबलवान् हाथीपर चढके सहसा अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ २१ ॥

तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्लादभीतवत् ।
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥ २२ ॥

पुरुषसिंह अर्जुनने निर्भय होकर रथपरसे ही उस बलवान् गजराजका सामना किया । रथ और हाथीका वह युद्ध अत्यंत भयंकर था ॥ २२ ॥

कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च ।
संग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३ ॥

अर्जुन और भगदत्त दोनों महावीर योद्धा विधिपूर्वक सज्जित हो रथ और हाथीपर चढे हुए संग्रामभूमिके बीच चारों ओर युद्ध करते हुए भ्रमण करने लगे ॥ २३ ॥

ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इवाभिभूः ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४ ॥

अनन्तर इन्द्रके समान बलवान् राजा भगदत्त बादलके समान हस्तिराजपर चढकर अर्जुनके ऊपर बाणरूपी जलकी वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥

स चापि शरवर्षं तच्छरवर्षेण वासविः ।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥

पराक्रमी इन्द्रपुत्र अर्जुन अपने बाणोंकी वृष्टिसे राजा भगदत्तके बाणोंकी वर्षाको निकट न आते ही आते मार्ग ही में काट काट गिराने लगे ॥ २५ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत् ।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च भारत ॥ २६ ॥

भारत ! फिर प्राग्ज्योतिष राजा भगदत्त अर्जुनकी बाणवर्षाको निवारण करके, अपने बाणोंसे श्रीकृष्ण और महाबाहु अर्जुनको विद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

ततः स शरजालेन महताभ्यवकीर्य तौ ।
चोदयामास तं नागं वधायाच्युतपार्थयोः ॥ २७ ॥

अनन्तर अपने महान् बाण—जालसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको छिपाकर, उनका वध करनेकी इच्छासे अपने उस महाबलवान् गजराजको उनकी ओर बढाया ॥ २७ ॥

तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥

जनार्दन श्रीकृष्णने उस महाबली हाथीको क्रुद्ध हुए यमराजके समान संमुख आते देख, शीघ्रताके सहित बायीं ओर रथको लौटाया ॥ २८ ॥

संप्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम् ।
सारोहं मृत्युसात्कर्तुं स्मरन्धर्मं धनञ्जयः ॥ २९ ॥

यदि वह महान् गजराज आक्रमण करते समय अपने अत्यंत समीप आ गया था, तो भी अर्जुनने उस समय दाहिनी ओर स्थित उस महा गजराजको राजा भगदत्तके सहित वध करनेका अच्छा अवसर पाकर भी धर्मको विचार कर उनके वधकी इच्छा नहीं की ॥ २९ ॥

स तु नागो द्विपरथान्हयांश्चारुज्य मारिष ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततोऽक्रुध्यद्धनञ्जयः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ११६० ॥

मारिष ! इधर वह गजराज हाथी, घोडे और रथोंको मर्दनकर मृत्युके लोकमें पहुंचाने लगा, यह देखकर अर्जुन बहुत क्रुद्ध हुए ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ११६० ॥

: २८ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः ।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! पाण्डुपुत्र अर्जुनने क्रुद्ध होकर राजा भगदत्तसे किस प्रकार युद्ध किया, और भगदत्तने भी अर्जुनके सङ्गमें कैसा संग्राम किया था ? वह सब वृत्तान्त विस्तारसे तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ ।
मृत्योरिवान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– जब श्रीकृष्ण और अर्जुन राजा भगदत्तके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा उनको मृत्युके कराल मुखमें ही पडे हुए बोध करने लगे ॥ २ ॥

तथा हि शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो ।
भगदत्तो गजस्कन्धात्कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! राजा भगदत्त गजराजपर चढके रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥

अथ कार्ष्णायसैर्बाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः ।
अविध्यद्देवकीपुत्रं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥

और धनुषको बलपूर्वक कानपर्यन्त खींचकर छोडे हुए लोहेके बने, शिलापर घिसे हुए सुवर्णमय पंखयुक्त बाणोंसे उन्होंने देवकीपुत्र श्रीकृष्णको विद्ध किया ॥ ४ ॥

अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः ।
निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः शरास्ततः ॥ ५ ॥

भगदत्तके धनुषसे छूटे हुए अग्निके समान स्पर्श करनेवाले वे सम्पूर्ण तीक्ष्ण बाण देवकी पुत्र श्रीकृष्णके शरीरको भेदकर पृथ्वीमें समा गये ॥ ५ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा शरावापं निहत्य च ।
लाडयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥

तब अर्जुनने राजा भगदत्तका धनुष और कवच अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर, प्रसन्नता पूर्वक उनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान्वै चतुर्दश ।
प्रेरयत्सव्यसाची तांस्त्रिधैकैकमथाच्छिनत् ॥ ७ ॥

राजा भगदत्तने सूर्य–किरणोंके समान प्रकाशमान् तीक्ष्ण चौदह तोमर अर्जुनके ऊपर चलाये। परंतु सव्यसाची अर्जुनने अपने बाणोंसे हरएक तोमरोंको तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ७ ॥

ततो नागस्य तद्वर्म व्यधमत्पाकशासनिः ।
शरजालेन स बभौ व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ८ ॥

अनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंके जालसे उस हाथीका कवच काट डाला, अत्यन्त ही विद्ध होकर मेघरहित जलधारासे भीगे हुए पर्वतराजके समान वह हाथी अत्यन्त शोभित हुआ ॥ ८ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम् ।
व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥ ९ ॥

अनन्तर भगदत्तने श्रीकृष्णकी ओर सुवर्णदण्डसे युक्त एक लोहमयी शक्ति चलाई। परंतु अर्जुनने उसके दो टुकडे कर डाले ॥ ९ ॥

ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्त्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः ।
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन्पर्वताधिपम् ॥ १० ॥

फिर अर्जुनने अपने बाणोंसे राजा भगदत्तके ध्वज और छत्रको काटकर हंसते हुए दस बाणोंसे शीघ्रही उन पर्वताधिपतिको विद्ध किया ॥ १० ॥

सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः ।
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ११ ॥

हे राजेन्द्र ! राजा भगदत्त अर्जुनके कङ्कपत्र युक्त सुंदर पंखोंवाले बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हो, उन महात्मा पाण्डुपुत्र पर क्रुद्ध हो गये ॥ ११ ॥

व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ।
तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्तितम् ॥ १२ ॥

उन्होंने कई एक तोमरोंको श्वेतवाहन अर्जुनके शिरपर चलाकर जोरसे गर्जना की। उन तोमरोंने समरमें अर्जुनके किरीटको उलट दिया ॥ १२ ॥

परिवृत्तं किरीटं तं यमयन्नेव फल्गुनः ।
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥ १३ ॥

अर्जुन अपने मस्तकके उलटे हुए किरीटको संवारते हुए राजा भगदत्तसे बोले, “ तुम अब इस समय सम्पूर्ण लोकको भली भांति देख लो ” ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ।
अभ्यवर्षत्सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥ १४ ॥

राजा भगदत्त अर्जुनका ऐसा वचन सुनकर अत्यंत क्रुद्ध होकर एक तेजस्वी धनुष ग्रहण करके श्रीकृष्ण सहित अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १४ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा तूणीरान्संनिकृत्य च ।
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १५ ॥

अर्जुनने उनके धनुषको काटकर उनके तूणीरके भी टुकडे कर दिये; फिर शीघ्रताके सहित बहत्तर बाणोंसे उनके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें प्रहार किया ॥ १५ ॥

विद्धस्तथाप्यव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् ।
अभिमन्त्र्याङ्कुशं क्रुद्धो व्यसृजत्पाण्डवोरसि ॥ १६ ॥

अनन्तर बाणोंसे विद्ध होनेपर भी अव्यथित राजा भगदत्तने वैष्णवास्त्र प्रकट किया । उन्होंने क्रुद्ध होकर अंकुशको ही वैष्णवास्त्रमें अभिमन्त्रित करके अर्जुनके वक्षस्थलको लक्ष्य करके छोड दिया ॥ १६ ॥

विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघातकम् ।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थं संछाद्य केशवः ॥ १७ ॥

श्रीकृष्णने अर्जुनको छिपाकर भगदत्तके छोडे हुए उस सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले अस्त्रको स्वयं अपने वक्षस्थल पर ग्रहण किया ॥ १७ ॥

वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि ।
ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥ १८ ॥

वह वैष्णवास्त्र श्रीकृष्णके वक्षस्थलपर आकर वैजयन्ती माला बन गया । अनन्तर अर्जुन मनमें दुःखित होकर श्रीकृष्णसे बोले ॥ १८ ॥

अयुध्यमानस्तुरगान्संयन्तास्मि जनार्दन ।
इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि ॥ १९ ॥

हे जनार्दन ! पुण्डरीकाक्ष ! तुमने तो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं केवल तुम्हारे रथका सारथि बनकर घोडोंको चलाऊंगा और युद्ध नहीं करूंगा; वैसी बात कहकर भी इस समय तुमने उस प्रतिज्ञाकी रक्षा नहीं की ॥ १९ ॥

यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तु कार्यं मयि स्थिते ॥ २० ॥

यदि मैं संकटमें पड जाता अथवा अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता, तो तुमको ऐसा करना उचित था, परन्तु मेरे उपस्थित रहते तुमको ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये ॥२०॥

सबाणः सधनुश्चाहं ससुरासुरमानवान् ।
शक्तो लोकानिमाञ्जेतुं तच्चापि विदितं तव ॥ २१ ॥

मैं धनुष बाण ग्रहण करके देवता, असुर और मानवोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंको जीत सकता हूं; इसे तुम भी जानते हो ॥ २१ ॥

ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचार्थवद्वचः ।
शृणु गुह्यमिदं पार्थ यथा वृत्तं पुरानघ ॥ २२ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनसे यह अर्थयुक्त बचन बोले– हे पापरहित अर्जुन ! तुम एक गुप्त प्राचीन बात जो हुई थी वह मुझसे सुनो ॥ २२ ॥

चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः ।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥ २३ ॥

मेरी चार सनातन मूर्त्तियां हैं । मैं सदा सब लोकोंके परित्राणके निमित्त उद्यत रहता हूं । निज आत्माको अनेक रूपोंमें विभाग करके सब जगत्‌का हित साधन किया करता हूं ॥ २३ ॥

एका मूर्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता ।
अपरा पश्यति जगत्कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥ २४ ॥

मेरी एक मूर्ति इस भूलोकमें स्थित होके तपस्या कर रही है, दूसरी जगत्‌के सत् और असत् कर्मोंको देखती है ॥ २४ ॥

अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकाम् ॥ २५ ॥

तीसरी मनुष्य लोकका आश्रय लेकरके कर्म करती है; और चौथी मूर्त्ति सहस्र वर्ष पर्यन्त जलमें निद्रित होके शयन करती रहती है ॥ २५ ॥

यासौ वर्षसहस्रान्ते मूर्तिरुत्तिष्ठते मम ।
वरार्हेभ्यो वराञ्श्रेष्ठांस्तस्मिन्काले ददाति सा ॥ २६ ॥

जब मेरी वह चौथी मूर्ति सहस्र वर्षके अनन्तर निद्रासे जागके सावधान होकर उठती है, तब वही मूर्ति वरदान पानेके योग्य श्रेष्ठ पुरुषोंको उत्तम वर दिया करती है ॥ २६ ॥

तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
प्रायाचत वरं यं मां नरकार्थाय तं शृणु ॥ २७ ॥

एक समयमें उस ही मूर्तिके उठनेके समयमें पृथिवीने अपने पुत्र नरकासुरके निमित्त मुझसे जो वरदान मांगा था, वह मैं तुमसे कहता हूं, उसे सुनो ॥ २७ ॥

देवानामसुराणां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ २८ ॥

पृथिवी बोली– " मेरा पुत्र वैष्णवास्त्रसे युक्त होवे, जिससे देवता तथा असुर कोई उसका वध न कर सकें, इस निमित्त तुम मुझे यही अस्त्रका वरदान करो । " ॥ २८ ॥

एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
अमोघमस्त्रमददं वैष्णवं तदहं पुरा ॥ २९ ॥

उसी समय मैंने पृथिवीकी अपने पुत्रके लिये इस प्रकार प्रार्थना सुनकर पूर्वकालमें अपना अमोघ परम वैष्णव अस्त्र प्रदान किया ॥ २९ ॥

अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्ष्मे ।
नरकस्याभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्वधिष्यति ॥ ३० ॥

उस समय मैंने पृथ्वीसे यह वचन कहा था कि, हे पृथ्वी ! मैंने इस वैष्णवास्त्रको तुम्हारे पुत्र नरकासुरकी रक्षाके निमित्त दिया है; यह अमोघ अस्त्र है, इसको कोई भी नष्ट नहीं कर सकेगा ॥ ३० ॥

अनेनास्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ३१ ॥

तुम्हारा पुत्र सदा सर्वदा इस अस्त्रसे रक्षित होकर शत्रुओंकी सेनाको पीडित करनेवाला और सब लोकोंके बीच महा पराक्रमी गिना जावेगा ॥ ३१ ॥

तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी ।
स चाप्यासीद्दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३२ ॥

मनस्विनी पृथ्वीदेवी ऐसा ही होवे, यह वचन कहकर कृतकार्य चली गई । उसका पुत्र नरकासुर भी उस अस्त्रके प्रभावसे अत्यंत दुर्धर्ष और शत्रुओंको पीडित करनेवाला हो गया ॥ ३२ ॥

तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम् ।
नास्यावध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ३३ ॥

हे पुरुषर्षभ ! वही मेरा अस्त्र इस समयमें नरकासुरसे प्राग्ज्योतिष नरेश भगदत्तको मिला है, इन्द्र और रुद्र आदि देवता भी इस अस्त्रसे तीनों लोकोंमें अवध्य नहीं हैं ॥ ३३ ॥

तन्मया त्वत्कृतेनैतदन्यथा व्यपनाशितम् ।
वियुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥ ३४ ॥

इस ही कारणसे तुम्हारी रक्षाके निमित्त मैंने इस अस्त्रको अन्यथा नष्ट कर दिया है । हे अर्जुन ! इस समय यह महान् असुर पर्वतराज भगदत्त उत्तम वैष्णवास्त्रसे रहित हो गया है, इससे उसका नाश करो ॥ ३४ ॥

वैरिणं युधि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् ।
यथाहं जघ्निवान्पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥ ३५ ॥

दुर्धर्षवीर भगदत्त तुम्हारा शत्रु और देवताओंका द्रोही है, इसलिये तुम उसका वध करो; जैसे मैंने पहिले लोकहितके लिये नरकासुरका नाश किया था ॥ ३५ ॥

एवमुक्तस्ततः पार्थः केशवेन महात्मना ।
भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥ ३६ ॥

जब महात्मा श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र अर्जुनसे ऐसा वचन कहा, तब अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सहसा राजा भगदत्तको छिपा दिया ॥ ३६ ॥

ततः पार्थो महाबाहुरसंभ्रान्तो महामनाः ।
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥ ३७ ॥

फिर महाबाहु महामना अर्जुनने निर्भय चित्त होकर एक तीक्ष्ण नाराच बाणसे गजराजके गण्डस्थलके मध्यभागमें प्रहार किया ॥ ३७ ॥

समासाद्य तु तं नागं बाणो वज्र इवाचलम् ।
अभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥ ३८ ॥

जैसे वज्र लगनेसे पर्वतका भेद होता है, वैसे ही वह नाराच बाण उस हाथीके मस्तकपर लगा। जैसे सर्प बिलके बीच प्रवेश करता है, वैसे ही वह तीक्ष्ण बाण भगदत्तके हाथीके कुम्भस्थलमें पंखसहित घुस गया ॥ ३८ ॥

स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ ।
नदन्नार्तस्वरं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ३९ ॥

उस महान् गजराजने सूण्ड सिकोडकर अपने अंगोंको निश्चेष्ट करके दोनों दांत पृथ्वीपर टेक दिये और महाभयङ्कर आर्त्तनाद करके प्राण त्याग किया ॥ ३९ ॥

ततश्चन्द्रार्धबिम्बेन शरेण नतपर्वणा ।
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ॥ ४० ॥

इसके अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने तीक्ष्ण और अर्द्धचन्द्र बाणसे राजा भगदत्तके हृदयमें प्रहार करके उसको विदीर्ण कर दिया ॥ ४० ॥

स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ।
शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह ॥ ४१ ॥

राजा भगदत्त किरीटधारी अर्जुनसे हृदय विदीर्ण कर दिये जानेपर प्राणरहित हो गये, अनन्तर उनके हाथसे धनुष और बाण छूटके पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ४१ ॥

शिरसस्तस्य विभ्रष्टः पपात च वराङ्कुशः ।
नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४२ ॥

जैसे कमल-नालको उखाडनेसे कमलके मृणालसे उसके पत्र पृथक् हो जाते हैं, वैसे ही उनके शिरके ऊपरसे पगडी और पट्टीका उत्तम वस्त्र पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ४२ ॥

स हेममाली तपनीयभाण्डात्पपात नागाद्गिरिसंनिकाशात् ।
सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥ ४३ ॥

जैसे भलीभांति फला हुआ कर्णिकारका सुन्दर वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर पर्वतके शिखरसे नीचे गिर पडता है, वैसे ही सुवर्णमाला विभूषित राजा भगदत्त सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत उस पर्वतके समान ऊंचे हाथीसे पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ४३ ॥

निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तथैन्द्रिराहवे ।
ततोऽपरांस्तव जयकाङ्क्षिणो नरान्बभञ्ज वायुर्बलवान्द्रुमानिव ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ १२०४ ॥

जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षोंको उखाडके फेंक देता है, वैसे ही इन्द्रपुत्र अर्जुनने युद्धमें इन्द्रके सखा इन्द्रके समान महा पराक्रमी राजा भगदत्तका संहार करके तुम्हारी सेनाके अन्यान्य विजयाभिलाषी शूरवीरोंका बध किया ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ १२०४ ॥

: २९ :

सञ्जय उवाच

प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् ।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— अर्जुनने इन्द्रका प्रिय मित्र और सखा, महातेजस्वी प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्तका युद्धमें वध करके, उनकी प्रदक्षिणा की ॥ १ ॥

ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ ।
आर्छेतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २ ॥

अनन्तर गान्धारराज सुबलके दो पुत्र शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले वृषक और अचल नामक युद्धभूमिमें अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ २ ॥

तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ ।
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३ ॥

वे दोनों धनुर्धर वीर मिलकर अर्जुनके आगे और पीछेसे आक्रमण करके उन्हें वेगशाली तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित करने लगे ॥ ३ ॥

वृषकस्य हयान्सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् ।
तिलशो व्यधमत्पार्थः सौबलस्य शितैः शरैः ॥ ४ ॥

अर्जुनने अपने चोखे बाणोंसे सुबलपुत्र वृषकके घोडे, सारथि, रथ, छत्र, ध्वजा और धनुषको तिल तिल करके काट दिया ॥ ४ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि ।
गान्धारान्व्याकुलांश्चक्रे सौबलप्रमुखान्पुनः ॥ ५ ॥

और अपने बाणसमूहों तथा नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको चला कर उनके अनुयायी सौबल आदि गान्धार योद्धाओंको फिर अत्यन्त ही पीडित किया ॥ ५ ॥

ततः पञ्चशतान्वीरान्गान्धारानुद्यतायुधान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो बाणैर्धनञ्जयः ॥ ६ ॥

इतने ही समयमें क्रुद्ध अर्जुनने हथियार उठाये हुए पांच सौ गान्धार वीरोंको बाणोंसे मारकर उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ ६ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवतीर्य महाभुजः ।
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७ ॥

अनन्तर महाभुज वृषक घोडोंसे रहित रथसे उतरके अपने भाईके रथ पर जा चढा और उसने दूसरा दृढ धनुष ग्रहण किया ॥ ७ ॥

तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ ।
शरवर्षेण बीभत्सुमविध्येतां पुनः पुनः ॥ ८ ॥

अनन्तर एकरथमें स्थित वृषक और अचल दोनों भाई बार बार अपने बाणोंकी वर्षा करने और अर्जुनको विद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

स्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ ।
भृशं निजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव ॥ ९ ॥

जैसे वृत्रासुर और बलासुरने मिलकर इन्द्रके ऊपर अपने अस्त्रोंसे प्रहार किया था, वैसे ही तुम्हारे साले दोनों महात्मा राजपुत्र वृषक और अचल अर्जुनको घायल करने लगे ॥ ९ ॥

लब्धलक्ष्यौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः ।
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्माम्बुभिर्यथा ॥ १० ॥

जैसे गर्मीके दो महिने सूर्यकी उष्ण किरणें और जलकी वर्षासे सम्पूर्ण प्राणियोंको क्लेश देते हैं, वैसे ही लक्ष्य (निशाने) को वेधनेवाले उन दोनों गान्धारराजके पुत्रोंने अर्जुनको फिर पीडित करना आरम्भ किया ॥ १० ॥

तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ ।
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणार्जुनः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! अर्जुनने एक ही बाण चलाकर एक ही रथमें एक दूसरेसे मिलकर खडे हुए राजपुत्र वृषक और अचल दोनों भाइयोंका संहार किया ॥ ११ ॥

तौ रथात्सिंहसङ्काशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ ।
गतासू पेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२ ॥

वे दोनों वीर सगे भाई होनेके कारण एक जैसे लक्षणोंसे युक्त सिंहके समान पराक्रमी, रक्तनेत्रवाले, महाभुज भाई मरकर एक साथ ही रथसे पृथ्वी पर गिर गये ॥ १२ ॥

तयोर्देहौ रथाद् भूमिं गतौ बन्धुजनप्रियौ ।
यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥ १३ ॥

उन दोनों शूरवीरोंके शरीर उनके आप्तजनोंके लिये प्रिय थे, उस युद्धभूमिमें दसों दिशाओंमें अपने पवित्र यशको विस्तार करके वे रथसे पृथ्वीपर गिर कर वहीं स्थित हुए ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशां पते ॥ १४ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रोंने युद्धसे पीछे न हटनेवाले अपने दोनों मामाओंको मारा गया देख नेत्रोंसे आंसुओंकी अत्यंत वर्षा की ॥ १४ ॥

निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
कृष्णौ संमोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥ १५ ॥

अनन्तर सैकडों माया विद्याओंके जाननेवाले शकुनिने अपने दोनों भाइयोंको मारा गया देख कर, श्रीकृष्ण और अर्जुनको मोहित करनेके निमित्त माया उत्पन्न की ॥ १५ ॥

लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
गदापरिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥ १६ ॥

शकुनिकी मायाके प्रभावसे दंडे, लोहेके गोले, पत्थर, शतघ्नी, शक्ति, गदा, परिघ, खड्ग, शूल, मुद्गर, पट्टिश, ॥ १६ ॥

सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः ।
क्षुराः क्षुरप्रनालीका वत्सदन्तास्त्रिसंधिनः ॥ १७ ॥

कम्पन, ऋष्टि, नखर, मुसल, परशु, क्षुरास्त्र, क्षुरप्र, नालीक, वत्सदन्त, अस्त्रि सन्धि ॥ १७ ॥

चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च ।
प्रपेतुः सर्वतो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चार्जुनं प्रति ॥ १८ ॥

चक्र, बाण, प्रास और दूसरे नाना प्रकारके अस्त्र सब ओरसे—दिशाओं और प्रदिशाओंसे आकर अर्जुनके ऊपर पडने लगे ॥ १८ ॥

खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचिल्लिकाः ।
ऋक्षाः सालावृका गृध्राः कपयोऽथ सरीसृपाः ॥ १९ ॥

अनन्तर गदहे, ऊंट, भैंसे, सिंह, व्याघ्र, भेडिये, चित्ते, रीक्ष, कुत्ते, गीध, बानर, सांप ॥ १९ ॥

विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।
संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥ २० ॥

और नाना प्रकारके क्षुधित राक्षस तथा भांति भांतिके पक्षी अत्यंत क्रुद्ध होकर अर्जुनकी ओर दौडे ॥ २० ॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥ २१ ॥

अनन्तर दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले पराक्रमी कुन्तीपुत्र बलवान् अर्जुन अपने बाण समूहोंको चलाकर सहसा उन सबको नष्ट करने लगे ॥ २१ ॥

ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः ।
विरुवन्तो महारावान्विनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥

वे मायासे उत्पन्न हुए सब हिंसक पशु शूर अर्जुनके प्रबल और उत्तम सायकोंसे पीडित होकर महा भयङ्कर शब्द करते हुए वहीं नष्ट होगये ॥ २२ ॥

ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति ।
तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥ २३ ॥

अनन्तर अर्जुनके रथके समीप अन्धकार प्रकट हुआ और उस ही अन्धकारसे नाना प्रकारकी कडई बातें कानोंमें सुनाई देने लगीं और वे अर्जुनको धमकाने लगीं ॥ २३ ॥

तत्तमोऽस्त्रेण महता ज्योतिषेणार्जुनोऽवधीत् ।
हते तस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरासन्भयानकाः ॥ २४ ॥
अर्जुनने उस भयङ्कर अन्धकारका महान् श्रेष्ठ ज्योतिर्मय अस्त्रसे नाश किया। उस अन्धकारके दूर होनेपर महा भयङ्कर जल प्रवाह प्रकट होने लगे ॥ २४ ॥

अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथार्जुनः ।
प्रायुङ्क्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोषितम् ॥ २५ ॥
तब अर्जुनने उस जलवर्षाको निवारण करनेके निमित्त आदित्यास्त्र चलाया, उस अस्त्रके प्रभावसे सम्पूर्ण जल सूख गया ॥ २५ ॥

एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ।
जघानास्त्रबलेनाशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा ॥ २६ ॥
सुबलपुत्र शकुनिने इसी प्रकार बहुतसी माया बारंबार उत्पन्न की थी। परन्तु अर्जुनने उन मायाओंको हंसते हंसते अपने दिव्य अस्त्रबलोंसे शीघ्रही नष्ट कर दिया ॥ २६ ॥

तथा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा ॥ २७ ॥
इसी प्रकार सम्पूर्ण मायाओंके नष्ट होनेपर, अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित और भयभीत होकर शकुनि साधारण मनुष्यकी भांति वेगगामी घोडोंसे युक्त रथपर चढकर उनके सम्मुखसे भाग गये ॥ २७ ॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छ्रैष्ठ्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ॥ २८ ॥
अनन्तर अस्त्रोंके ज्ञाता अर्जुन शत्रुओंको अपनी श्रेष्ठता दिखाते हुए कुरुसेनाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २८ ॥

सा हन्यमाना पार्थेन पुत्रस्य तव वाहिनी ।
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवासाद्य पर्वतम् ॥ २९ ॥
हे महाराज ! जैसे गङ्गा पर्वतको मार्गमें पाकर दो धाराओंमें विभक्त हुई हैं, वैसे ही तुम्हारे पुत्रकी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर दो भागोंमें बंट गई ॥ २९ ॥

द्रोणमेवान्वपद्यन्त केचित्तत्र महारथाः ।
केचिद्दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना ॥ ३० ॥
हे राजन् ! किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीडित कितनेही महारथी योद्धा द्रोणाचार्यके और कितने ही लोग राजा दुर्योधनके समीपमें जाकर स्थित हुए ॥ ३० ॥

नापश्याम ततस्त्वेतत्सैन्यं वै तमसावृतम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया ॥ ३१ ॥
अनन्तर हम लोग उडती हुई धूलीके अंधकारसे व्याप्त हुई सेनाको देख नहीं सकते थे। उस समय मुझे दक्षिण दिशाकी ओर केवल गाण्डीव धनुषका शब्द ही सुनाई देता था ॥ ३१ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निस्वनम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो व्यतिक्रम्यास्पृशद्दिवम् ॥ ३२ ॥
शंख और दुन्दुभियोंका घोष, बाद्योंके शब्द और गाण्डीव धनुषकी टंकार आकाशको अतिक्रम करके स्वर्गतक जा पहुंचे ॥ ३२ ॥

ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम् ।
सुयुद्धमर्जुनस्यासीदहं तु द्रोणमन्वगाम् ॥ ३३ ॥
अनन्तर फिर दक्षिण दिशामें चित्रवेधी वीरोंका अर्जुनके सङ्ग भारी युद्ध होने लगा, मैं उस समय द्रोणाचार्यका अनुयायी हुआ था ॥ ३३ ॥

नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ३४ ॥
हे भारत ! जैसे वायु आकाशमें स्थित बादलोंके समूहको नष्ट करती है, वैसे ही अर्जुन तुम्हारे पुत्रोंकी अनेक प्रकारकी सेनाओंका नाश करने लगे ॥ ३४ ॥

तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षशरौघिणम् ।
महेष्वासं नरव्याघ्रं नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ३५ ॥
इन्द्रके समान बाणरूपी जलधाराकी वर्षा करनेवाले धनुर्धर पुरुषसिंह उग्रवीर अर्जुनको तुम्हारी सेनाकी ओर आते हुए देख कोई भी योद्धा उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुआ ॥ ३५ ॥

ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम् ।
स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३६ ॥
तुम्हारी सेना अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हो रही थी। उनमेंसे अनेक सैनिक युद्ध भूमिसे तितर बितर भागते समय अपनेही लोगोंको मार डालते थे ॥ ३६ ॥

तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥ ३७ ॥
अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए कङ्कपत्रसे युक्त शरीरोंको छेदनेवाले बाण शलभ समूहकी भांति सब दिशाओंको आच्छादित करते हुए वहां गिरने लगे ॥ ३७ ॥

तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ३८ ॥

हे राजेन्द्र ! वे सब बाण घोडे, रथी, हाथी और पैदल चलनेवाले योद्धाओंको भेद करके, जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार पृथ्वीमें घुस जाते थे ॥ ३८ ॥

न च द्वितीयं व्यसृजत्कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
पृथगेकशरारुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥ ३९ ॥

अर्जुन हाथी, घोडे और पैदल युद्ध करनेवाले वीरोंके ऊपर दूसरा बाण नहीं चलाते थे, वे सब पृथक् पृथक् एक एक बाणसे घायल हो प्राण–रहित होकर पृथ्वीमें गिरते थे ॥३९॥

हतैर्मनुष्यैस्तुरगैश्च सर्वतः शराभिवृष्टैर्द्विरदैश्च पातितैः ।
तदा श्वगोमायुबडाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव ह ॥ ४० ॥

उस समय वह संग्रामभूमि बाणोंसे बिद्ध, घायल तथा मरे मनुष्य और हाथी घोडोंके शरीरोंसे चारों ओर पूरित होकर विचित्र रूपसे दीख पडती थी । कौवे, गिद्ध, कुत्ते और शृगाल आदि मांसभक्षी जीवोंके समूह भयङ्कर बोली बोलते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे । उस समय युद्धका प्रमुख भाग अद्भुतसा दीखता था ॥ ४० ॥

पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः ।
स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ १२४५ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर पिताने पुत्रको और मित्रने अपने सुहृद मित्रको तथा बाणोंसे पीडित पुत्रने अपने पिताको त्याग दिया; अपने अपने प्राणकी रक्षाके निमित्त व्यग्रचित्त होकर कितने ही शूरबीर अपने वाहनोंको युद्धभूमिमें त्यागने लगे ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ १२४५ ॥

: ३० :

धृतराष्ट्र उवाच

तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।
चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जिस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर सम्पूर्ण सेनाएं भागने लगीं और तुम लोग भी भयभीत होकर भागने लगे, उस समयमें तुम लोगोंके चित्तमें कैसा विचार उत्पन्न हुआ था ? ॥ १ ॥

अनीकानां प्रभग्नानां व्यवस्थानमपश्यताम् ।
दुष्करं प्रतिसंधानं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

सम्पूर्ण सेना जब उसको रक्षाका आश्रयस्वरूप कोई भी न मिला, तब युद्धसे भागने लगी, भागती हुई सेनाको फिर लौटाकर संगठित करके युद्धमें प्रवृत्त करना बहुत कठिन होता है; परन्तु हे संजय ! उस समयमें उन सम्पूर्ण योद्धाओंकी जैसी दशा हुई थी, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

तथापि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशां पते ।
यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले— हे राजेन्द्र ! उस समयमें यद्यपि सेनाओंमें भगदड मच गयी थी, तथापि तुम्हारे पुत्रके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे श्रेष्ठ वीरोंने अपने यशकी रक्षा करनेके लिये द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

समुद्यतेषु शस्त्रेषु संप्राप्ते च युधिष्ठिरे ।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत् ॥ ४ ॥

जब सब ओरसे अस्त्र-शस्त्र धारण करके आक्रमण हो रहा था और राजा युधिष्ठिर समीप उपस्थित हुए थे, तब उस महाभयङ्कर संग्राममें तुम्हारी ओरके वे शूरबीर योद्धा लोग निर्भय-चित्त होकर क्षत्रियोंके योग्य श्रेष्ठ कर्मको करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥

अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः ।
सात्यकेश्चैव शूरस्य धृष्टद्युम्नस्य चाभिभो ॥ ५ ॥

वे महा तेजस्वी लोग भीमसेन, सात्यकि और बीर धृष्टद्युम्नकी असावधानीका लाभ लेकर पाण्डवोंकी सेनापर टूट पडे ॥ ५ ॥

द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पाञ्चालाः समचोदयन् ।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून्सर्वानचोदयन् ॥ ६ ॥

क्रूर पाञ्चाल योद्धा लोग, "द्रोणाचार्यको पकड लो ! द्रोणाचार्यको वशमें करो ! " ऐसा वचन कह कह कर अपनी ओरके योद्धाओंको उत्तेजित करने लगे और तुम्हारे पुत्र सब कौरवोंको द्रोणाचार्यको शत्रु पकड न पावें, ऐसा आदेश देते थे ॥ ६ ॥

द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति चापरे ।
कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ ७ ॥

एक ओरसे पाण्डव सेनाकी 'द्रोणाचार्यको पकडो' आवाज आती थी, तो दूसरी ओरसे 'द्रोणाचार्यको शत्रु पकड न पावें' ऐसा घोष होता था। इसी प्रकारसे द्रोणाचार्यको पण (बाजी) स्वरूप मानकर कौरव और पाण्डवोंका मानो जुआरूपी युद्ध क्रीडा आरंभ हुई ॥ ७ ॥

यं यं स्म भजते द्रोणः पाञ्चालानां रथव्रजम् ।
तत्र तत्र स्म पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽथ धीयते ॥ ८ ॥

द्रोणाचार्य पाञ्चाल सेनाके जिस जिस रथ समुदायको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगते थे, वहां वहां उनकी रक्षा करनेके निमित्त पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित होते थे ॥ ८ ॥

यथाभागविपर्यासे संग्रामे भैरवे सति ।
वीराः समासदन्वीरानगच्छन्त भीरवः परान् ॥ ९ ॥

इसी प्रकारसे दोनों सेनाके शूरवीर योद्धाओंने अपने अपने भागोंको त्याग कर विपर्यययुद्ध करना आरम्भ किया, और सम्पूर्ण योद्धा लोग सिंहनाद करते हुए एक दूसरेपर आक्रमण करने लगे ॥ ९ ॥

अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः ।
अकम्पयंस्त्वनीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥ १० ॥

उस महा युद्धमें पाण्डव लोग शत्रुसेनाके शूरवीरोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर भी युद्धसे विचलित नहीं हुए । बरन वह लोग वनवास आदि क्लेशको स्मरण करके हम लोगोंको युद्धसे विचलित करने लगे ॥ १० ॥

ते त्वमर्षवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः ।
त्यक्त्वा प्राणान्न्यवर्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे ॥ ११ ॥

महापराक्रमी लज्जावान् सत्त्वगुण युक्त और अमर्षशील होकर पाण्डव लोग अपने प्राणोंकी आशा त्याग कर उस महायुद्धमें द्रोणाचार्यका बध करनेकी इच्छासे लौट रहे थे ॥ ११ ॥

अयसामिव संपातः शिलानामिव चाभवत् ।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२ ॥

वे अमित तेजस्वी वीर अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर महाभयङ्कर तुमुल युद्ध रूपी द्यूतक्रीडा करने लगे । उन लोगोंके अस्त्र शस्त्र तुम्हारी सेनापर इस प्रकारसे पडने लगे, कि मानो आकाशसे लोहा और पत्थरकी शिलाकी वर्षा हो रही है ॥ १२ ॥

न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम् ।
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३ ॥

हे महाराज ! बूढे मनुष्योंने ऐसा संग्राम पहिले कभी देखा वा सुना था, यह किसीको भी स्मरण नहीं होता ॥ १३ ॥

प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन्वीरावसादने ।
प्रवर्तता बलौघेन महता भारपीडिता ॥ १४ ॥
उस वीर पुरुषोंका नाश करनेवाले महाघोर संग्राममें लौटती हुई महा सेनाके महान् भारसे पीडित हो पृथ्वी कांपने लगी ॥ १४ ॥

घूर्णतो हि बलौघस्य दिवं स्तब्ध्वेव निस्वनः ।
अजातशत्रोः क्रुद्धस्य पुत्रस्य तव चाभवत् ॥ १५ ॥
उस तुम्हारे क्रुद्ध पुत्रके सम्पूर्ण सेनाके लौटनेके समय अत्यंत घोर शब्द आकाशको स्तब्धसा करके अजातशत्रु युधिष्ठिरकी महासेनामें प्रविष्ट हुआ ॥ १५ ॥

समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्नानि शितैः शरैः ॥ १६ ॥
अनन्तर युद्धमें विचरते हुए द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी सेनाके सहस्रों योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके युद्धभूमिसे भगा दिया ॥ १६ ॥

तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाद्भुतकर्मणा ।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥
जब सम्पूर्ण सेनाएं अद्भुत पराक्रम करनेवाले द्रोणाचार्यके बाणोंसे रणभूमिमें मथित होने लगीं, तब स्वयं सेनापति धृष्टद्युम्न ही द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें युद्धसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥

तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चाल्ययोस्तदा ।
नैव तस्योपमा काचित्संभवेदिति मे मतिः ॥ १८ ॥
उस समय द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका अद्भुत युद्ध होने लगा ! मेरा यह मत है, कि उस युद्धकी उपमा नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम् ।
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन्कक्षमिवानलः ॥ १९ ॥
अनन्तर जैसे अग्नि सूखे तृण आदिकोंको भस्म कर देती है, वैसे ही अग्निके समान तेजस्वी नीलराजा अपने तीक्ष्ण बाणरूपी स्फुलिंगों और धनुषरूपी ज्वालाओंसे कुरु सेनाको दग्ध करने लगे ॥ १९ ॥

तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥
महाप्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा नील राजाको कुरु सेनाके शूरवीरोंको जलाते देखकर, पहले ही स्वयं भाषण शुरू करते हुए हंसते हुए उनसे यह मधुर वचन बोले ॥ २० ॥

नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा ।
मयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाशुगैः ॥ २१ ॥

हे नील ! तुम्हारे बाणरूपी अग्निसे अनेक योद्धाओंको भस्म करनेकी क्या आवश्यकता है ? तुम केवल एकमात्र मुझसे ही युद्ध करो, तुम क्रोधपूर्वक मेरे ही ऊपर शीघ्रही अपने तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करो ॥ २१ ॥

तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
व्याकोशपद्माभमुखं नीलो विव्याध सायकैः ॥ २२ ॥

तब राजा नीलने अपने बाणोंसे पद्मपुष्पके समान वर्ण, कमलदलके समान नेत्र और विकसित कमलके समान प्रसन्न वदनवाले अश्वत्थामाको विद्ध किया ॥ २२ ॥

तेनातिविद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत ॥ २३ ॥

अश्वत्थामाने उनके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध होकर सहसा अपने तीन तीक्ष्ण भल्ल बाणोंको चलाकर उनके रथकी ध्वजा, धनुष और छत्र काट दिया ॥ २३ ॥

सोत्प्लुत्य स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिधृक् ।
द्रोणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत्पतत्रिवत् ॥ २४ ॥

तब राजा नीलने उत्तम तलवार और ढाल ग्रहण करके रथसे कूदकर पक्षीके समान अश्वत्थामाके शिरको उसके धडसे काटनेकी इच्छा की ॥ २४ ॥

तस्योद्यतासेः सुनसं शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
भल्लेनापाहरद्द्रौणिः स्मयमान इवानघ ॥ २५ ॥

परन्तु हे अनघ ! अश्वत्थामाने हंसते हंसते एक भल्ल बाणसे तलवार ग्रहण करनेवाले राजा नीलका सुंदर नासिकाओं और कुण्डलोंसहित मस्तक धडसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २५ ॥

सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
प्रांशुरुत्पलगर्भाभो निहतो न्यपतत्क्षितौ ॥ २६ ॥

पूर्णचन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुख, पद्मपुष्पके समान सुंदर नेत्र, विशाल शरीरवाले और नील कमलके समान श्याम वर्णवाले राजा नील मर कर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २६ ॥

ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला ।
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥ २७ ॥

जब महातेजस्वी राजा नील आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके बाणसे मारे जाकर पृथ्वीमें गिरे, तब पाण्डवोंकी सेना अत्यन्त ही व्याकुल और शोकित हो गई ॥ २७ ॥

अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः ।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय पाण्डवोंके सब महारथी योद्धा चिन्ता करने लगे कि इन्द्रपुत्र अर्जुन शत्रुओंके हाथसे हमारी रक्षा कैसी करेंगे ? ॥ २८ ॥

दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली ।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ १२७४ ॥

वे बलवान् अर्जुन इस समय दक्षिण दिशाकी ओर बचे संशप्तक और नारायणी सेनाके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ १२७४ ॥

: ३१ :

संजय उवाच

प्रतिघातं तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः ।
सोऽभिनद्बाह्लिकं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— भीमसेन शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्रोंसे अपनी सेनाके शूरवीरोंका नाश होते देख सहन नहीं कर सके; उन्होंने महाराज बाह्लिकको साठ और कर्णको दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १ ॥

तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरयस्मयैः ।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्मण्याशु जघान ह ॥ २ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यने भीमके प्राणोंका अन्त कर देनेकी इच्छासे तीक्ष्ण धारवाले लोहेके पैने बाणोंसे शीघ्रतासे उनके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंको विद्ध किया ॥ २ ॥

कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ।
षड्भिर्दुर्योधनो राजा तत एनमवाकिरत् ॥ ३ ॥

फिर कर्णने बारह, अश्वत्थामाने सात और राजा दुर्योधनने छः बाणोंसे भीमसेनके ऊपर प्रहार किया ॥ ३ ॥

भीमसेनोऽपि तान्सर्वान्प्रत्यविध्यन्महाबलः ।
द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः ॥ ४ ॥

महाबलवान् भीमसेन भी उन सबको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे। भीमसेनने द्रोणाचार्यको पचास, कर्णको दस ॥ ४ ॥

दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिं चाष्टाभिराशुगैः ।
आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्तत तान्रणे ॥ ५ ॥

दुर्योधनको बारह और अश्वत्थामाको आठ बाणोंसे विद्ध किया; फिर भीमसेनने भयंकर गर्जना करके समरमें उनका सामना किया ॥ ५ ॥

तस्मिन्संत्यजति प्राणान्मृत्युसाधारणीकृते ।
अजातशत्रुस्तान्योधान्भीमं त्रातेत्यचोदयत् ॥ ६ ॥

भीमसेन मृत्युका भय त्यागकर, प्राणकी आशा छोड युद्ध करने लगे, तब अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरने अपने अनुयायी योद्धाओंको भीमसेनकी रक्षा करनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ ६ ॥

ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ।
युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ७ ॥

उनकी आज्ञासे सात्यकि आदि वीर और पाण्डुपुत्र माद्रीकुमार नकुल सहदेव अमित तेजस्वी भीमसेनके निकट उपस्थित हुए ॥ ७ ॥

ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ।
महेष्वासवरैर्गुप्तं द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ ८ ॥

वे सब पुरुषश्रेष्ठ योद्धा लोग मिलकर अत्यंत क्रुद्ध होकर, महा धनुर्द्धारी वीरोंसे रक्षित हुई द्रोणाचार्यकी सेनाको तितर बितर करनेकी इच्छा करके ॥ ८ ॥

समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ।
तान्प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः ॥ ९ ॥

वे भीम आदि महापराक्रमी रथी सेनापर टूट पडे, तब रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य निर्भयतासे उन सबका निवारण करने लगे ॥ ९ ॥

महाबलानतिरथान्वीरान्समरशोभिनः ।
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकाः पाण्डवान्ययुः ॥ १० ॥

तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा भी अपने चित्तसे मृत्युका भय त्यागके पाण्डवोंकी सेनाके अत्यंत बलवान्, युद्धमें शोभायमान होनेवाले वीर महारथियोंकी ओर दौडे ॥ १० ॥

सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान् ।
आसीच्छक्त्यसिसंपातो युद्धमासीत्परश्वधैः ॥ ११ ॥

उस समयमें घुडसवार घुडसवारोंको और रथी योद्धा रथियोंको मारने लगे । उस महाघोर युद्धमें शक्ति, तलवार और परशु आदि शस्त्रोंसे दोनों सेनाके शूरवीरोंका अत्यन्त ही नाश होने लगा ॥ ११ ॥

निकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम् ।
कुञ्जराणां च संघातैर्युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ १२ ॥

तलवार खींचकर युद्ध करनेवाले शूरवीर योद्धाओंका अत्यंत कटु परिणाम दीखाई देता था; और गजपति योद्धा तथा हाथियोंका महा दारुण भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ १२ ॥

अपतत्कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः ।
नरो बाणेन निर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष ॥ १३ ॥

कोई हाथीपरसे और कोई कोई घोडोंपरसे अस्त्रोंकी चोटसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे। मारिष ! कितने ही रथी बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर रथसे पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ १३ ॥

तत्रान्यस्य च संमर्दे पतितस्य विवर्मणः ।
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ॥ १४ ॥

उस युद्धमें कितने ही वीर कवचसे रहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे और कितने पुरुषोंकी छातीपर कोई हाथी पांव रखकर उनके शिरोंको कुचलता था ॥ १४ ॥

अपरेऽप्यपराञ्जघ्नुर्वारणाः पतितान्नरान् ।
विषाणैश्चावनिं गत्वा व्यभिन्दन्रथिनो बहून् ॥ १५ ॥

दूसरे हाथियोंने रणभूमिमें पडे हुए अनेक पुरुषोंको अपने पावोंसे रौंद डाला; कितने ही हाथियोंने अपने दांतोंसे पृथ्वीपर आघात करके अनेक रथियोंको चीर डाला ॥ १५ ॥

नरान्त्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंस्रवैः ।
बभ्रमुः शतशो नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् ॥ १६ ॥

कितने हाथियोंके दांतोंमें जो वीर पुरुषोंकी आंतें लगीं थीं, वे सैकडों हाथी उन आंतोंके सहित ही सैकडों मनुष्योंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ १६ ॥

कांस्यायसतनुत्राणान्नराश्वरथकुञ्जरान् ।
पतितान्पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनडानिव ॥ १७ ॥

कितने ही बडे हाथियोंने लोहेसे बने हुए कवचोंको धारण करनेवाले पृथ्वीमें पडे हुए मनुष्य, घोडे, रथ और हाथियोंको कमल वनके समान मथित कर दिया ॥ १७ ॥

गृध्रपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ।
ह्रीमन्तः कालसंपक्वाः सुदुःखान्यधिशेरते ॥ १८ ॥

क्षत्रिय राजा लोग कालके अनुसार अत्यंत दुःखदायक और गिद्धपङ्खसे युक्त शय्याओंपर लज्जित होकर शयन कर रहे थे ॥ १८ ॥

हन्ति स्मात्र पिता पुत्रं रथेनाभ्यतिवर्तते ।
पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्तत ॥ १९ ॥

रथपर चढके एक दूसरेके सम्मुख होकर पिता पुत्रका बध करता था और पुत्र भी मोहवश हो पिताका वध करता था; इस प्रकारका वहां मर्यादा रहित संग्राम आरम्भ हुआ ॥ १९ ॥

अक्षो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम् ।
युगार्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ॥ २० ॥

कितने ही अक्ष टूट गये, कितने ही ध्वज टूट गये, कितनोंके छत्र पृथ्वीमें गिरा दिये गये और जूए भग्न हुए; खण्डित हुए आधे जूओंकोही लेकर घोडे रणभूमिमें जोरसे दौडने लगे ॥२०॥

सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम् ।
गजेनाक्षिप्य बलिना रथः संचूर्णितः क्षितौ ॥ २१ ॥

कितने ही शूरवीरोंकी भुजाएं तलवार सहित कटके पृथ्वीपर गिर पडी और कितनोंके शिर मुकुट और कुण्डलोंके सहित कटके युद्धभूमिमें गिर पडे । किसी बलवान् हाथीने रथको सूण्डसे उठाकर दूर पृथ्वीपर फेंककर चूर्ण कर दिया ॥ २१ ॥

रथिना ताडितो नागो नाराचेनापतद्व्यसुः ।
सारोहश्चापतद्वाजी गजेनाताडितो भृशम् ॥ २२ ॥

किसी रथिके नाराचसे ताडित हाथी प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर गया; किसी हाथीके जोरके आघातसे सवारके सहित घोडा मरकर भूमिपर गिर गया ॥ २२ ॥

निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्तत सुदारुणम् ।
हा तात हा पुत्र सखे क्वासि तिष्ठ क्व धावसि ॥ २३ ॥

इस प्रकार वह संग्राम महा दारुण और मर्यादा रहित हो गया। उस संग्राममें कितनेही पुरुष “ हा तात ! हा पुत्र ! हा मित्र ! तुम कहां हो ? इसी स्थानपर रहो ! कहां दौडे जाते हो ? ॥ २३ ॥

प्रहराहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ।
इत्येवमुच्चरन्त्यः स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ॥ २४ ॥

प्रहार करो, लाओ, उसे मारो, ” ऐसे ही नाना प्रकारके वचन बोलते हुए शूरवीर लोग हंसते, रोते, चिल्लाते और कितने ही सिंहनाद करते हुए दिखाई देते थे ॥ २४ ॥

नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ।
उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरून्कश्मलमाविशत् ॥ २५ ॥

मनुष्य, हाथी और घोडोंके एक दूसरेसे मिले हुए रुधिरसे रणभूमिकी उडती हुई भयंकर धूलि शान्त हो गई और कायरोंका चित्त मोहसे व्याकुल होने लगा ॥ २५ ॥

आसीत्केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् ।
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ॥ २६ ॥

उस द्वीपरहित युद्धसागरमें द्वीप प्राप्त करनेकी इच्छासे शूरवीर लोग आपसमें एक दूसरेके केशोंको आकर्षण करते हुए, भयंकर मुक्कोंकी मार करने लगे, तथा नख और दांतोंसे परस्पर चोट पहुंचाकर दारुण युद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

तत्राच्छिद्यत वीरस्य सखड्गो बाहुरुद्यतः ।
सधनुश्चापरस्यापि सशरः साङ्कुशस्तथा ॥ २७ ॥

उस युद्धमें एक वीर योद्धाकी तलवार सहित ऊपर उठी हुई भुजा काट डाली गयी; दूसरेकी धनुष-बाण और अंकुशोंके सहित भुजा कटकर पृथ्वीमें गिर गयी ॥ २७ ॥

प्राक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथान्यो विमुखोऽद्रवत् ।
अन्यः प्राप्तस्य चान्यस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ २८ ॥

कोई योद्धा दूसरेको पुकारकर उसपर क्रोधपूर्वक दौडता था और दूसरा अस्त्र त्यागकर रणभूमिसे विमुख होकर भाग जाता था । किसी दूसरे योद्धाने सामने आये हुए दूसरे योद्धाके सिरको धडसे काट दिया ॥ २८ ॥

शब्दमभ्यद्रवच्चान्यः शब्दादन्योऽद्रवद्भृशम् ।
स्वानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः ॥ २९ ॥

कोई योद्धा कोलाहल करता हुआ भाग गया, उसके आर्त नादको सुनकर दूसरा भयभीत होकर अत्यंत जलदीसे भाग गया । कोई स्वयंके वीरोंको और कोई शत्रुपक्षके योद्धाओंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारता था ॥ २९ ॥

गिरिशृङ्गोपमश्चात्र नाराचेन निपातितः ।
मातङ्गो न्यपतद्भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ॥ ३० ॥

पर्वतके शृङ्ग समान बडा हाथी नाराचसे मारा जा कर वर्षा ऋतुमें नदीके तीरके समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ३० ॥

तथैव रथिनं नागः क्षरन्गिरिरिवारुजत् ।
अध्यतिष्ठत्पदा भूमौ सहाश्वं सहसारथिम् ॥ ३१ ॥

जलप्रवाह बहानेवाले पर्वतके समान मदचूते हुए किसी हाथीने अपने पावोंसे सारथि और घोडों सहित रथीको भूमिपर दबाया और चूर्ण करके पृथ्वीपर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥

शूरान्प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान्रुधिरोक्षितान् ।
बहूनप्याविशन्मोहो भीरून्हृदयदुर्बलान् ॥ ३२ ॥

कृतास्त्र शूरवीरोंको रुधिर पूरित शरीरसे युक्त और परस्पर अस्त्रोंको चलाते हुए देखकर दुर्बल हृदयवाले कायरोंका चित्त मोहसे कांपने लगा ॥ ३२ ॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
सैन्ये च रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्तत ॥ ३३ ॥

उस समय सम्पूर्ण सेनाके लोग पदके धक्केसे उडायी गयी धूलसे व्याप्त होकर उद्विग्न हुए थे; किसीको कुछ भी नहीं बोध होता था, ऐसे अवसरमें अमर्याद और महा भयङ्कर उन्मत्तकी भांति संग्राम होने लगा ॥ ३३ ॥

ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ।
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् ॥ ३४ ॥

अनन्तर सेनापति धृष्टद्युम्नने अपनी सम्पूर्ण सेनाके शूरवीरोंसे कहा, कि यही योग्य समय उपस्थित हुआ है, और नित्य शीघ्रता करनेवाले पाण्डवोंको और शीघ्रता करनेके लिये प्रोत्साहित किया ॥ ३४ ॥

कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवेया यशस्विनः ।
सरो हंसा इवापेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ॥ ३५ ॥

जैसे हंसोंका समूह सरोवरमें सब ओरसे उतरता है, वैसे ही सेनापति धृष्टद्युम्नकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेनाके यशस्वी शूरवीर द्रोणाचार्यके रथके ऊपर अपने अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए टूट पडे ॥ ३५ ॥

गृह्णीताद्रवतान्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ॥ ३६ ॥

पराक्रमी द्रोणाचार्यके रथके समीपमें आक्रमण करो, पकड लो, निर्भय चित्त होकर शत्रुओंको काटो,– इसी प्रकारके महा घोर शब्द सुनाई देने लगे ॥ ३६ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैनानवारयन् ॥ ३७ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, राजा जयद्रथ, अवन्तिराज विन्द–अनुविन्द और शल्य– इन सबने उन सम्पूर्ण योद्धाओंको रोका ॥ ३७ ॥

ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवार्या दुरासदाः ।
शरार्ता न जहुर्द्रोणं पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३८ ॥

श्रेष्ठ क्षत्रिय धर्मके अनुयायी विजयके लिये प्रयत्नशील पाण्डवों सहित पाञ्चाल योद्धाओंको रोकना वा पराजित करना अत्यंत दुष्कर था; उन्होंने बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भी द्रोणाचार्यको नहीं परित्याग किया ॥ ३८ ॥

ततो द्रोणोऽभिसंक्रुद्धो विसृजञ्शतशः शरान् ।
चेदिपाञ्चालपाण्डूनामकरोत्कदनं महत् ॥ ३९ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सैकडों बाणोंकी वर्षा करके चेदि, पाञ्चाल और पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंका वध करना शुरू किया ॥ ३९ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ।
वज्रसंघातसङ्काशस्त्रासयन्पाण्डवान्बहून् ॥ ४० ॥

हे राजेन्द्र ! इन्द्रके वज्रके समान उनके धनुषटङ्कार और तनुत्राणका शब्द पाण्डवोंके अनेक मनुष्योंको भयभीत करता हुआ चारों दिशाओंमें सुनाई देने लगा ॥ ४० ॥

एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्हत्वा संशप्तकान्बली ।
अभ्ययात्तत्र यत्र स्म द्रोणः पाण्डून्प्रमर्दति ॥ ४१ ॥

उस ही समय बलवान् अर्जुन अनेक संशप्तक वीरोंको नाश करके जहांपर द्रोणाचार्य पाण्डव सैनिकोंका मर्दन कर रहे थे, उसी स्थानपर उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥

तं शरौघमहावर्तं शोणितोदं महाह्रदम् ।
तीर्णः संशप्तकान्हत्वा प्रत्यदृश्यत फल्गुनः ॥ ४२ ॥

अर्जुन युद्धमें अनेक संशप्तक योद्धाओंको मारकर, बाणोंके वेगरूपी तरङ्गसे और रुधिररूपी जलसे युक्त महाह्रदको पार होकर पाण्डवोंकी सेनाका नाश करनेवाले द्रोणाचार्यके समीप दिखाई देने लगे ॥ ४२ ॥

तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ।
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ॥ ४३ ॥

हमने सूर्यके समान तेजस्वी, कीर्तिमान् अर्जुनकी दिव्य तेजसे प्रकाशित कपिध्वजाको अवलोकन किया ॥ ४३ ॥

संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्यास्त्रगभस्तिभिः ।
स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् ॥ ४४ ॥

वे पाण्डुपुत्र अर्जुन प्रलय कालके सूर्यके समान प्रकाशित होकर अपनी अस्त्ररूपी किरणोंसे संशप्तक सेनारूपी समुद्रको शुष्क करके, फिर कुरुसेनाके संमुख उपस्थित होकर सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगे ॥ ४४ ॥

प्रददाह कुरून्सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ।
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ॥ ४५ ॥

जैसे प्रलय कालके समयमें धूमकेतु उदय होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करता है, वैसे ही अर्जुन अपने अस्त्रोंके तेजोंबलसे सम्पूर्ण कुरुसेनाके वीरोंको भस्म करने लगे ॥ ४५ ॥

तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ।
ताडयमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तशस्त्राः शरार्दिताः ॥ ४६ ॥

हाथी, घोडे और रथपर आरूढ होकर युद्ध करनेवाले योद्धा लोग अर्जुनके सहस्रों बाणोंसे आहत और पीडित होकर शस्त्र त्यागकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ४६ ॥

केचिदार्तस्वरं चक्रुर्विनेदुरपरे पुनः ।
पार्थबाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः ॥ ४७ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर कोई आर्त्तनाद करने लगे, कोई रोदन करने लगे, और कितने ही योद्धा प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ४७ ॥

तेषामुत्पततां कांश्चित्पतितांश्च पराङ्मुखान् ।
न जघानार्जुनो योधान्योधव्रतमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥

जो लोग रथसे कूद पडे थे और जो लोग पीडित होकर पृथ्वीमें गिरे थे तथा युद्धसे विमुख होकर भागने लगे थे, उन लोगोंके ऊपर अर्जुनने योद्धाओंके नियमको स्मरण करके प्रहार नहीं किया ॥ ४८ ॥

ते विशीर्णरथाश्वेभाः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ।
कुरवः कर्ण कर्णेति हा हेति च विचुक्रुशुः ॥ ४९ ॥

कितने ही योद्धाओंके रथ, घोडे और हाथी इधर उधर छिन्न भिन्न होगये, वे सब योद्धा प्रायः युद्धसे विमुख होकर, हाहाकार शब्द करते हुए, कर्ण, कर्ण कहके पुकारने लगे ॥ ४९ ॥

तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम् ।
मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम् ॥ ५० ॥

तब शरणकी इच्छा करनेवाले कौरवोंकी करुण पुकार सुनकर 'भय न करो' ऐसा आश्वासनयुक्त वचन कहके अधिरथपुत्र कर्ण अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए ॥ ५० ॥

स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ।
प्रादुश्चक्रे तदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ५१ ॥

कुरुसेनाके बीच सम्पूर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धारी संपूर्ण भारतीय योद्धाओंका हर्ष बढानेवाले कर्णने आग्नेयास्त्र चलाया ॥ ५१ ॥

तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ।
शरौघाञ्शरजालेन विदुधाव धनञ्जयः
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद्विसृजञ्शरान् ॥ ५२ ॥

अर्जुनने अपने बाणोंके जालसे प्रकाशमान धनुष बाण धारण करनेवाले कर्णके बाणोंको छिन्न भिन्न किया । कर्णने भी अर्जुनके अस्त्रका अपने अस्त्रसे निवारण किया और फिर अर्जुनके ऊपर झुण्डके झुण्ड बाणोंको चलाकर सिंहनाद करने लगे ॥ ५२ ॥

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ।
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ५३ ॥

तब धृष्टद्युम्न, भीमसेन और महारथी सात्यकिने कर्णके समीप जाकर अपने तीन तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ५३ ॥

अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ।
तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ॥ ५४ ॥

राधापुत्र कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनके अस्त्रोंको निवारण करके, फिर तीन बाणोंसे तीनों महारथियोंके धनुषोंको भी काट दिया ॥ ५४ ॥

ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ।
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवानदन् ॥ ५५ ॥

वे तीनों शूर योद्धा अपने धनुष कटनेपर विषहीन सर्पोंके समान क्रुद्ध होगये । तब उन तीनों महारथियोंने रथ-शक्तियोंको ऊपर उठाकर सिंहोंके समान जोरसे गर्जना की ॥५५॥

ता भुजाग्रैर्महावेगा विसृष्टा भुजगोपमाः ।
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति ॥ ५६ ॥

अत्यंत वेगवान्, तेजसे जलती हुई, सर्पोंके समान भयंकर महाशक्तियां उन महारथियोंकी भुजाओंसे छूटकर कर्णकी ओर चलीं ॥ ५६ ॥

ता निकृत्य शितैर्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
ननाद बलवान्कर्णः पार्थाय विसृजञ्शरान् ॥ ५७ ॥

महाबलवान् कर्ण सीधे जानेवाले तीन तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उन तीनों शक्तियोंको काटकर अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके फिर सिंहनाद करने लगे ॥ ५७ ॥

अर्जुनश्चापि राधेयं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैस्त्रिभिः ॥ ५८ ॥

अर्जुनने भी सात शीघ्रगामी बाणोंसे कर्णको विद्ध करके, फिर तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उनके कनिष्ठ भ्राताका वध किया ॥ ५८ ॥

ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः ।
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् ॥ ५९ ॥

अनन्तर उसी समय अर्जुनने छः सीधे जानेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुञ्जयको मारकर फिर एक भल्ल बाणसे रथस्थित विपाटका शिर काटके पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ५९ ॥

पश्यतां धार्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ।
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ॥ ६० ॥

इसी प्रकारसे अकेले अर्जुनने धृतराष्ट्रपुत्रोंके देखते ही कर्णके तीन भाइयोंका संहार किया ॥ ६० ॥

ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ।
वरासिना कर्णपक्षाञ्जघान दश पञ्च च ॥ ६१ ॥

अनन्तर भीमसेनने अपने रथसे गरुड पक्षीकी भांति कूदके कर्णकी ओरके पंद्रह योद्धाओंको उत्तम तलवारसे काट डाला ॥ ६१ ॥

पुनः स्वरथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ।
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ ६२ ॥

और फिर अपने रथपर चढके दूसरा धनुष ग्रहण कर दस बाणोंसे कर्णको विद्ध करके, फिर पांच बाणोंसे उनके सारथि और रथके घोडोंको भी विद्ध किया ॥ ६२ ॥

धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चादाय भास्वरम् ।
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च पौरवम् ॥ ६३ ॥

धृष्टद्युम्नने उत्तम तलवार और प्रकाशमान ढाल ग्रहण करके पुरुराज बृहत्क्षत्र और चन्द्रवर्माका वध किया ॥ ६३ ॥

ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम् ।
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन्रणे ॥ ६४ ॥

अनन्तर पाञ्चाल पुत्र धृष्टद्युम्नने अपने रथपर चढके फिर दूसरा धनुष लेकर युद्धमें गर्जना करके तिहत्तर बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ ६४ ॥

शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्द्रायुधद्युति ।
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ ६५ ॥

सात्यकि भी इन्द्रके वज्रके समान तेजस्वी दूसरा धनुष ग्रहण करके चौसठ बाणोंसे सूतपुत्र कर्णको विद्ध करके सिंहनाद करने लगे ॥ ६५ ॥

भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां छित्त्वा कर्णस्य कार्मुकम् ।
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ६६ ॥

और उन्होंने अच्छी तरह छोडे हुए तीक्ष्ण दो भल्ल बाणोंसे कर्णका धनुष काटकर फिर तीन बाणोंसे कर्णकी भुजाओं और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ६६ ॥

ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ।
निमज्जमानं राधेयमुज्जहुः सात्यकार्णवात् ॥ ६७ ॥

अनन्तर दुर्योधन, द्रोणाचार्य और राजा जयद्रथने सात्यकिरूपी समुद्रमें डूबते हुए राधापुत्र कर्णका उद्धार किया ॥ ६७ ॥

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे ॥ ६८ ॥

तब धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि योद्धा समरमें सात्यकिकी रक्षा करने लगे ॥ ६८ ॥

एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ।
तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद्रणः ॥ ६९ ॥

इसी प्रकारसे प्राण देनेका प्रण करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओं और शत्रु सेनाके धनुर्द्धारी वीरोंका महाघोर विनाश करनेवाला दारुण युद्ध होने लगा ॥ ६९ ॥

पदातिरथनागाश्वैर्गजाश्वरथपत्तयः ।
रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः ॥ ७० ॥

गजपति, घुडसवार, रथी और पैदल चलनेवाले योद्धा लोग, गजारोही, घुडसवार रथी और पदाति सेनाके शूरवीरोंके सङ्ग युद्ध करने लगे । अनन्तर रथी गजपतियों, पैदल चलनेवाले योद्धा और घुडसवारोंके साथ भिड गये; कितने ही रथी और पदाति सैनिक रथियों और हाथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ७० ॥

अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ।
संसक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः ॥ ७१ ॥

घोडोंसे घोडे, हाथियोंसे हाथी, रथियोंसे रथी और पैदलोंसे पैदल युद्ध करते दिखायी दे रहे थे ॥ ७१ ॥

एवं सुकलिलं युद्धमासीत्क्रव्यादहर्षणम् ।
महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ७२ ॥

इसी प्रकारसे निर्भय सैनिकोंका अत्यंत शक्तिमान् शत्रुओंके साथ महाघोर यमराजके राष्ट्रको बढानेवाला, मांसभक्षी प्राणियोंको आनंद देनेवाला दारुण संग्राम होने लगा ॥ ७२ ॥

ततो हता नररथवाजिकुञ्जरैरनेकशो द्विपरथवाजिपत्तयः ।
गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥ ७३ ॥

उस समय पैदल, रथी, हाथीसवार और घुडसवारोंसे कितने ही हाथीसवार, घुडसवार, रथी और पैदल चलनेवाले योद्धा मरकर पृथ्वीमें गिर पडे । हाथियोंने हाथियोंको, रथियोंने शस्त्र उठाये हुए रथियोंको, घुडसवारोंने घुडसवारोंको और पदाति सेनाके योद्धाओंने पैदल योद्धा लोगोंको मार गिराया ॥ ७५ ॥

रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।
निरस्तजिह्वादशनेक्षणाः क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७४ ॥

रथियोंके अस्त्रोंसे कितने ही मतवारे हाथी, कितने ही बडे बडे मतवारे हाथियोंसे बडे बडे घोडे, घुडसवारोंसे पैदल मनुष्य और कितने ही श्रेष्ठ रथियोंके अस्त्रोंसे घुडसवारोंकी सेना मरकर पृथ्वीमें गिरने लगी । किसीके दांत, किसीकी जीभ और किसीके नेत्र बाहर निकल आये थे । कितने ही योद्धाओंके कवच और आभूषण कटके पृथ्वीमें गिर पडे थे । बहुतेरे योद्धा नाना भांतिके तीक्ष्ण अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरकर नष्ट हो गये थे ॥ ७४ ॥

तथा परैर्बहुकरणैर्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।
विपोथिता हयगजपादताडिता भृशाकुला रथखुरनेमिभिर्हताः ॥ ७५ ॥

शत्रुओंके अनेक उत्तम अस्त्र–शस्त्रोंके आयुधोंसे मारे जाकर पृथ्वीपर पडे हुए सैनिक भयंकर दिखायी देते थे । कितने ही शूरवीर योद्धा हाथी और घोडोंके पांवोंके धक्केसे पृथ्वीमें गिर पडते थे । कितने ही योद्धा टूटे हुए रथके काठ, कितने ही योद्धा घोडोंके खुर और कितने ही रथके चक्केसे क्षत विक्षत शरीर होकर अत्यन्त ही व्याकुल होगये ॥ ७५ ॥

प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां जनक्षये वर्तति तत्र दारुणे ।
महाबलास्ते कुपिताः परस्परं निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७६ ॥

अनेक श्वापद, पक्षि और राक्षसोंके हर्षको बढानेवाले उस महा भयंकर मनुष्योंके नाशरूपी घोर युद्धमें महाबलवान् शूरवीर योद्धा लोग कुपित होकर आपसमें एक दूसरेका बध करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ ७६ ॥

ततो बले भृशलुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसंप्लुते ।
दिवाकरेऽस्तंगिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिबिराय भारत ॥ ७७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तं संशप्तकवधपर्व ॥ १३५१ ॥

हे भारत ! अनन्तर सूर्यके अस्त होनेपर दोनों ओरकी सेना अत्यन्त ही पीडित और रुधिर-पूरित होकर आपसमें एक दूसरेकी ओर देखती हुई अपने अपने शिबिरोंकी ओर धीरे धीरे गमन करने लगीं ॥ ७७ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ संशप्तकवधपर्व समाप्त ॥ १३५१ ॥

: ३२ :

संजय उवाच

पूर्वमस्मासु भग्नेषु फल्गुनेनामितौजसा ।
द्रोणे च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥

संजय बोले– हे राजेन्द्र ! महातेजस्वी अर्जुनने पहले ही जब हम लोगोंको भगाया और राजा युधिष्ठिर सुरक्षित रह गये, तथा द्रोणाचार्यका सङ्कल्प निष्फल हुआ ॥ १ ॥

सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः ।
रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥ २ ॥

तब तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग युद्धमें पराजित होकर धूलमें भर गये थे, उनके कवच छिन्नभिन्न हो गये थे, वे सब अत्यन्त उद्विग्न चित्त हो दशों दिशाओंकी ओर देखते हुए ॥ २ ॥

अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य संमते ।
लब्धलक्ष्यैः परैर्दीना भृशावहासिता रणे ॥ ३ ॥

द्रोणाचार्यकी आज्ञाके अनुसार युद्धसे निवृत्त हुए । शत्रुओंके न चूकनेवाले बाणोंसे अत्यन्त पीडित हुए वे दीन और समरमें अत्यन्त उपहासपात्र हो गये थे ॥ ३ ॥

श्लाघमानेषु भूतेषु फल्गुनस्यामितान्गुणान् ।
केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ।
अभिशस्ता इवाभूवन्ध्यानमूकत्वमास्थिताः ॥ ४ ॥

अनन्तर बहुतेरे पुरुष अर्जुनके असंख्य गुणोंकी प्रशंसा और उनके सङ्ग श्रीकृष्णके सुहृद् भावकी कथा वर्णन करते हुए गमन करने लगे । उससे तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा मानो शापग्रस्तकी भांति अत्यन्त ही चिन्ता करने लगे । उनके मुखसे वचन बाहर नहीं निकलता था ॥ ४ ॥

ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
प्रणयादभिमानाच्च द्विषदृद्ध्या च दुर्मनाः ।
शृण्वतां सर्वभूतानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर प्रातःकालमें वाक्य विशारद राजा दुर्योधन शत्रुओंकी अभ्युदय वृद्धि देखकर, दुःखित मन और क्रुद्ध होके सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुखहीमें प्रीति और अभिमानके सहित द्रोणाचार्यसे यह वचन बोले ॥ ५ ॥

नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो ब्रह्मवित्तम ।
तथा हि नाग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मवित्तम ! हम लोग अवश्य ही तुम्हारे शत्रु पक्षमें हुए हैं, क्योंकि आज तुमने युधिष्ठिरको अपने समीपमें पाकर भी ग्रहण नहीं किया ॥ ६ ॥

इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः ।
जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ७ ॥

यदि तुम युद्धभूमिमें शत्रुको ग्रहण करनेकी इच्छा करो, तो वह पुरुष देवताओंके सहित पाण्डवोंसे रक्षित होकर भी तुम्हारे नेत्रके सामने आकर कदापि मुक्त नहीं हो सकता ॥७॥

वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि ।
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथञ्चन ॥ ८ ॥

श्रेष्ठ पुरुष किसी प्रकारसे भी अपने भक्तोंकी आशा भङ्ग नहीं करते; परन्तु तुमने प्रीतिपूर्वक मुझे वर प्रदान करके, फिर अन्यथा आचरण किया है ॥ ८ ॥

ततोऽप्रीतस्तथोक्तः स भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम् ।
नार्हसे मान्यथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ ९ ॥

द्रोणाचार्य राजा दुर्योधनके ऐसा वचन कहनेपर अत्यन्त अप्रसन्न होके उनसे बोले, महाराज! मैं सदा तुम्हारे प्रिय कार्योंको करने ही की चेष्टा करता रहता हूं, तुम मुझको अन्यथाचारी मत समझो ॥ ९ ॥

ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
नालं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ १० ॥

किरीटधारी अर्जुन समरमें जिसकी रक्षा करते हैं, उसको देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षस आदि सहित सब लोक भी युद्धमें नहीं जीत सकते ॥ १० ॥

विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनारिस्तथार्जुनः ।
तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यम्बकात्प्रभोः ॥ ११ ॥

जहांपर जगत्कर्त्ता गोविन्द और सेनाओंके शत्रु अर्जुन सेनानायक हैं; वहांपर देवोंके देव महादेवके अतिरिक्त और किसीका बल काम कर सकता है ? ॥ ११ ॥

सत्यं तु ते ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
अद्यैषां प्रवरं वीरं पातयिष्ये महारथम् ॥ १२ ॥

हे तात ! मैं आज तुमको एक सत्य वचन कहता हूं, यह कदापि अन्यथा न होगा; आज उन लोगोंके एक प्रधान महारथी वीरका वध करूंगा ॥ १२ ॥

तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि ।
योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥ १३ ॥

हे राजन् ! मैं आज एक ऐसे व्यूहकी रचना करूंगा, कि देवताओंको भी उस व्यूहको भेद करनेका सामर्थ्य नहीं; परन्तु आप लोग किसी उपायसे अर्जुनको उन लोगोंके समीपसे हटाकर अन्यस्थानमें ले जाइये ॥ १३ ॥

न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किंचन ।
तेन ह्युपात्तं बलवत्सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १४ ॥

क्योंकि युद्धका कोई कर्म भी उससे असाध्य वा अज्ञात नहीं है; उसने सब ओरसे युद्धका संपूर्ण ज्ञान उत्तम रीतिसे प्राप्त कर लिया है ॥ १४ ॥

द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः ।
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १५ ॥

जब द्रोणाचार्यने ऐसा वचन कहा तब फिर संशप्तक योद्धाओंने दक्षिण दिशाकी ओर जाकर अर्जुनको पुनर्बार युद्धके निमित्त आवाहन किया ॥ १५ ॥

तत्रार्जुनस्याथ परैः सार्धं समभवद्रणः ।
तादृशो यादृशो नान्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित् ॥ १६ ॥

अनन्तर संशप्तक वीरोंके सङ्ग अर्जुनका ऐसा युद्ध हुआ, कि वैसा युद्ध पहिले कभी न देखा गया और न सुना ही गया था ॥ १६ ॥

ततो द्रोणेन विहितो राजन्व्यूहो व्यरोचत ।
चरन्मध्यंदिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १७ ॥

राजन् ! इधर जैसे शरत्कालके मध्यान्ह समयमें भगवान् सूर्य अत्यन्त प्रचण्ड होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने तेजसे तपाके भस्म कर देते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्यने भी प्रकाशमान चक्र-व्यूहकी रचना की । उसे देखना भी अत्यन्त कठिन था ॥ १७ ॥

तं चाभिमन्युर्वचनात्पितुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
बिभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १८ ॥

हे भारत ! अभिमन्युने राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे कठिनाईसे भेद होने योग्य उस चक्रव्यूहको अपने पराक्रमके अनुसार बार बार भेद किया था ॥ १८ ॥

स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान्सहस्रशः ।
षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशं गतः ॥ १९ ॥

वह बहुत ही कठिन कर्म करके तथा सहस्रों शूरवीर पुरुषोंका वध करके, अन्तमें छः महा-रथियोंकी सहायतासे दुःशासन पुत्रके वशवर्ती होकर युद्धमें मारा गया ॥ १९ ॥

वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्शिताः ।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्वत ॥ २० ॥

अभिमन्युके मरनेसे पाण्डव लोग शोकसे अत्यन्त ही व्याकुल हुए, और हम लोग परम आनन्दित हो गये । राजन् ! सुभद्रापुत्रके मारे जानेपर हम लोग युद्धसे निवृत्त हुए ॥२०॥

धृतराष्ट्र उवाच

पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाप्राप्तयौवनम् ।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २१ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! पुरुषसिंह अर्जुनका पुत्र सुकुमार अभिमन्युका युद्धमें वध हुआ यह सुनकर मेरा चित्त अत्यन्त ही दुःखित हो रहा है ॥ २१ ॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः ।
यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥ २२ ॥

धर्मशास्त्र बनानेवाले पण्डितोंने इस क्षत्रिय धर्मको महा अनर्थका मूल करके सिद्ध किया है; जिस धर्मके आश्रयसे राज्यकी अभिलाषा करके शूरवीर योद्धाओंने बालकके ऊपर शस्त्र चलाया ॥ २२ ॥

बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् ।
कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि गावल्गणे कथम् ॥ २३ ॥

हे सञ्जय ! अभिमन्यु अत्यन्त ही सुखी बालक था, वह निर्भय चित्तवाले योद्धाओंकी भांति जब रणभूमिमें भ्रमण कर रहा था, तब अस्त्रविद्याके ज्ञाता बहुतसे योद्धाओंने मिलकर किस प्रकारसे उसका वध किया ? यह मुझे कहो ॥ २३ ॥

बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणामितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २४ ॥

संजय ! महातेजस्वी उस बालक सुभद्रापुत्रने किस प्रकारसे रथसेनाको भेद करके युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें क्रीडा की थी ? वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् ।
तत्ते कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन्समाहितः ।
विक्रीडितं कुमारेण यथानीकं बिभित्सता ॥ २५ ॥

सञ्जय बोले— हे राजेन्द्र ! तुमने अभिमन्युके वधके विषयमें मुझसे जो कुछ प्रश्न किया है और कुमार अभिमन्युने सेनाको भेद करनेकी इच्छासे रणभूमिमें क्रीडा करते हुए महापराक्रमी वीरोंको जिस प्रकारसे पीडित किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे निकटमें विस्तार-पूर्वक वर्णन करता हूं, तुम भली भांतिसे चित्त लगाकर सुनो ॥ २५ ॥

दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे ।
वनौकसामिवारण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ १३७७ ॥

जिस प्रकारसे बहुतसे तृण, गुल्म और वृक्षोंसे युक्त वनमें दावाग्निके लगनेसे सम्पूर्ण वनवासी जीवजन्तु भयभीत हो जाते हैं, इसी भांतिसे अभिमन्युके आक्रमणके समयमें तुम्हारी सेनाके शूरवीर योद्धा लोग भयभीत हो गये थे ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ १३७७ ॥

: ३३ :

सञ्जय उवाच

समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः ।
सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! श्रीकृष्ण सहित पांचों पाण्डव युद्धमें अत्यन्त प्रचण्ड कर्मोंके करनेवाले और देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं; उनका परिश्रम समर्थ कर्मसे ही प्रसिद्ध है ॥१॥

सत्त्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या प्रकृत्या यशसा श्रिया ।
नैव भूतो न भविता कृष्णतुल्यगुणः पुमान् ॥ २ ॥

सत्त्वगुण, कर्म, कुल, बुद्धि, स्वभाव, यश और श्री– इन सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त महात्मा श्रीकृष्णके समान न कोई पुरुष पहिले हुआ और न भविष्यहीमें होगा ॥ २ ॥

सत्यधर्मपरो दाता विप्रपूजादिभिर्गुणैः ।
सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

सत्यकर्ममें निष्ठावान्, दानवीर, धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर विप्रपूजा आदि गुणोंसे सदा सर्वदा स्वर्ग प्राप्त करनेहीके योग्य हैं ॥ ३ ॥

युगान्ते चान्तको राजञ्जामदग्न्यश्च वीर्यवान् ।
रणस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥ ४ ॥

प्रलय कालके यमराज, महापराक्रमी परशुराम और रणस्थित भीमसेन,– ये तीनों ही समान रूपसे वर्णन किये गये हैं ॥ ४ ॥

प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।
उपमां नाधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥ ५ ॥

सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कर्म करनेवाले तथा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनकी उपमा इस पृथ्वी पर नहीं मिल सकती ॥ ५ ॥

गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः ।
नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि षट् ॥ ६ ॥

नकुलमें अत्यन्त ही गुरुभक्ति, धीरज, विनय, दम, सुरूपता और वीरता ये छहों गुण सदासर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ६ ॥

श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्त्ववीर्यपराक्रमैः ।
सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाश्विनोः ॥ ७ ॥

वीर सहदेव शास्त्रके ज्ञान, गम्भीरता, माधुर्य, सत्त्व, वीर्य और पराक्रममें दोनों अश्विनीकुमारोंके समान हैं, यह विख्यात है ॥ ७ ॥

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसंचयाः ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण और पाण्डवोंमें जो समृद्ध गुण हैं, अभिमन्युमें भी वे सम्पूर्ण गुण निश्चयही विद्यमान थे ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरस्य धैर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥

अभिमन्यु, धीरज धारण करनेमें युधिष्ठिर, चरित्रोंमें श्रीकृष्ण और बलमें भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके समान था ॥ ९ ॥

धनञ्जयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात्सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥ १० ॥

और रूप, पराक्रम, शस्त्र तथा अस्त्रोंके ज्ञानमें अर्जुन और विनयमें नकुल और सहदेवके समान था ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! अपराजित सुभद्रापुत्र अभिमन्यु किस प्रकारसे युद्धभूमिमें मारा गया ? इस वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक सुननेकी मुझे अत्यन्त ही इच्छा है ॥ ११ ॥

संजय उवाच

चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभिकल्पितः ।
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १२ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! जब द्रोणाचार्यने चक्र-व्यूहकी रचना की, उसमें इन्द्रके समान पराक्रमी सब राजा लोगोंका यथास्थानमें समावेश किया था ॥ १२ ॥

सङ्घातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत्तदा ।
कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १३ ॥

उस समय वहां सम्पूर्ण राजपुत्रोंका संघ उपस्थित हुआ था। वे सब कृतप्रतिज्ञ और सुवर्ण निर्मित ध्वजाओंसे युक्त थे ॥ १३ ॥

रक्ताम्बरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ।
सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः ॥ १४ ॥

सब लाल वस्त्र धारण किये, लाल आभूषणोंसे भूषित, लालवर्णकी पताकाओंके सहित और सुवर्णकी मालाएं धारण करनेवाले थे ॥ १४ ॥

तेषां दशसहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ।
पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ॥ १५ ॥

उन धनुर्धारी वीरोंकी संख्या दस हजार थी । उन्होंने तुम्हारे प्रियदर्शन पौत्र लक्ष्मणको आगे करके अभिमन्युपर आक्रमण किया था ॥ १५ ॥

अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ।
अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रताः ॥ १६ ॥

वे सब ही युद्धभूमिमें परस्पर समदुःखी, तुल्य साहसी, तथा पराक्रमी, एक-दूसरेसे स्पर्धावाले, और एक दूसरेके हितकार्यमें तत्पर रहते थे ॥ १६ ॥

कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः ।
देवराजोपमः श्रीमाञ्श्वेतच्छत्राभिसंवृतः ।
चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः ॥ १७ ॥

राजा दुर्योधन उस व्यूहके बीच कर्ण, कृपाचार्य और दुःशासन आदि महारथियोंसे घिरकर ऐसे शोभित हुए, जैसे देवताओंके बीचमें देवराज इन्द्र शोभायमान लगते हैं। उनके शिरके ऊपर सफेद छाता लगाया गया था; और उनके दोनों तरफ श्वेत चंवर और व्यजन डुलाये जा रहे थे। राजा दुर्योधन उदय कालके सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ १७ ॥

प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायके ।
सिन्धुराजस्तथातिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाचलः ॥ १८ ॥

उस सेना व्यूहके मुखस्थलपर सेनापति द्रोणाचार्य खडे थे और वहीं पराक्रमी सिन्धु राज जयद्रथ मेरुपर्वतकी भांति शोभने लगे ॥ १८ ॥

सिंधुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः ।
सुतास्तव महाराज त्रिंशत्त्रिदशसंनिभाः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र ! देवताओंके समान तुम्हारे तीस पुत्र अश्वत्थामाको आगे करके सिन्धुराज जयद्रथके पार्श्वभागमें स्थित हुए ॥ १९ ॥

गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ।
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ १३९७ ॥

गान्धारराज जुआरी शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा ये महारथी वीर सिंधुराजके पार्श्वभागमें शोभित हो रहे थे ॥ २० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ १३९७ ॥

: ३४ :

सञ्जय उवाच

तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् ।
पार्थाः समभ्यवर्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— भीमसेनको आगे करके पाण्डव लोगोंने द्रोणाचार्यसे रक्षित उस व्यूहबद्ध दुर्धर्ष कुरुसेनापर धावा किया ॥ १ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः ॥ २ ॥

सात्यकि, चेकितान, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, पराक्रमी कुन्तिभोज, महारथी द्रुपद ॥ २ ॥

आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् ।
चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥ ३ ॥

अर्जुनपुत्र अभिमन्यु, क्षत्रधर्मा, वीर्यवान् बृहत्क्षत्र, चेदिराज धृष्टकेतु, माद्रीपुत्र नकुल–सहदेव, घटोत्कच ॥ ३ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चापराजितः ।
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः ॥ ४ ॥

पराक्रमसे युक्त युधामन्यु, अपराजित शिखण्डी, महाबली उत्तमौजा, महारथी विराट, ॥ ४ ॥

द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् ।
केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥

क्रुद्ध द्रौपदीके पांचों पुत्र, बलवान् शिशुपालपुत्र, महापराक्रमी केकय राजा लोग और सहस्रों सृंजय वीर ॥ ५ ॥

एते चान्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
समभ्यधावन्सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ६ ॥

ये तथा और भी युद्धविद्याके जाननेवाले, अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारमें निपुण योद्धावीर अपने अपने गणोंके सहित युद्धकी इच्छासे द्रोणाचार्यकी ओर सहसा आक्रमणके लिये दौडे ॥ ६ ॥

समवेतांस्तु तान्सर्वान्भारद्वाजोऽपि वीर्यवान् ।
असंभ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत् ॥ ७ ॥

महापराक्रमी द्रोणाचार्य भी निर्भयतासे अपना प्रचण्ड धनुष चढाकर बाणोंकी वर्षा करके मिलकर आये हुए उन सम्पूर्ण राजाओंको उस युद्धसे निवारण करने लगे ॥ ७ ॥

महौघाः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम् ।
द्रोणं ते नाभ्यवर्तन्त वेलामिव जलाशयाः ॥ ८ ॥

जैसे जलके प्रचण्ड प्रवाह अभेद्यपर्वतके पास पहुंचकर रुक जाते हैं, वा समुद्रके प्रबल वेगके प्रवाह तटके अगाडी नहीं जा सकते, वैसे ही वे सम्पूर्ण सैनिक द्रोणाचार्यके समीप न पहुंच सके ॥ ८ ॥

पीडयमानाः शरै राजन्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ ९ ॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डव और सृञ्जय द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर उनके संमुखमें न ठहर सके ॥ ९ ॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम् ।
यदेनं नाभ्यवर्तन्त पाञ्चालाः सृञ्जयैः सह ॥ १० ॥

उस समयमें हमने द्रोणाचार्यकी भुजाओंका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि पाञ्चालयोद्धा सृञ्जयोंके सहित एकत्र होकर भी उनके सम्मुखमें खडे न हो सके ॥ १० ॥

तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥ ११ ॥

राजा युधिष्ठिर उस संग्रामभूमिमें अत्यन्त क्रुद्ध द्रोणाचार्यको आते देखकर उनको निवारण करनेके विषयमें नाना प्रकारसे चिन्ता करने लगे ॥ ११ ॥

अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।
अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत् ॥ १२ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यको दूसरा कोई भी निवारण नहीं कर सकेगा, ऐसा विचार कर युधिष्ठिरने सुभद्रापुत्र अभिमन्युके ऊपर इस असह्य तथा अत्यन्त कठिन युद्धके भारको अर्पित किया ॥ १२ ॥

वासुदेवादनवरं फल्गुनाच्चामितौजसम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥ १३ ॥

वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी, अमित तेजस्वी और शत्रुवीर नाशन अभिमन्युसे वे ऐसे बोले ॥ १३ ॥

एत्य नो नार्जुनो गर्हेद्यथा तात तथा कुरु ।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्म भेदं कथञ्चन ॥ १४ ॥

हे तात ! चक्रव्यूहका किस प्रकारसे भेद किया जाता है, उसे हम लोग नहीं जानते हैं; इससे जिसमें अर्जुन आकर हम लोगोंकी निन्दा न करें, तुम वैसा ही उपाय करो ॥१४॥

त्वं वार्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात्प्रद्युम्न एव वा ।
चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमोऽन्यो न विद्यते ॥ १५ ॥

हे महाबाहो ! तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न– ये ही चार पुरुष चक्रव्यूहका भेदन कर सकते हैं, तुम लोगोंके अतिरिक्त पांचवां कोई भी योद्धा चक्र व्यूहका भेद करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १५ ॥

अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि ।
पितृणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

हे तात अभिमन्यु ! तुम्हारे पिता और मामाके पक्षके सब योद्धा और सब सैनिक तुमसे याचना करते हैं, तुम इन्हें वर देकर इनके मनोरथको पूर्ण करो ॥ १६ ॥

धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् ।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥ १७ ॥

तात ! तुम शीघ्रही अस्त्र ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी सेनाका नाश करो, ऐसा होनेसे ही अर्जुन संशप्तक योद्धाओंके युद्धसे लौटकर हम लोगोंकी निन्दा नहीं कर सकेंगे ॥ १७ ॥

अभिमन्युरुवाच

द्रोणस्य दृढमव्यग्रमनीकप्रवरं युधि ।
पितृणां जयमाकाङ्क्षन्नवगाहे भिनद्मि च ॥ १८ ॥

अभिमन्यु बोले– मैं युद्धभूमिमें आप लोगोंकी विजयके निमित्त द्रोणाचार्यकी महा प्रचण्ड, दृढ और श्रेष्ठ सेनामें प्रवेश करूंगा और चक्रव्यूहका भेदन करूंगा ॥ १८ ॥

उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकस्य भेदने ।
नोत्सहे तु विनिर्गन्तुमहं कस्यांचिदापदि　　　　॥ १९ ॥

मेरे पिताने मुझे केवल चक्रव्यूहके भेदन करनेहीकी युक्ति सिखाई है; परन्तु यदि वहांपर कोई आपद् उपस्थित होगी, तो मैं उस व्यूहके भीतरसे बाहर निकल नहीं सकूंगा ॥ १९॥

युधिष्ठिर उवाच

भिन्ध्यनीकं युधा श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
वयं त्वानुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि　　　　॥ २० ॥

राजा युधिष्ठिर बोले— हे तात ! हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! तुम उस सेनाके व्यूहको तोडके हम लोगोंके प्रवेश करनेका मार्ग बना दो; तुम जिस मार्गसे गमन करोगे, हम लोग भी उस ही मार्गसे तुम्हारे पीछे पीछे गमन करेंगे ॥ २० ॥

धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे ।
प्रणिधायानुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः　　　　॥ २१ ॥

हे पुत्र ! हम लोगोंको तुम युद्धमें अर्जुनके समान हो, इससे हम लोग अपना ध्यान तुम्हारी ही ओर रखकर, सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करते हुए तुम्हारे अनुगामी होकर चलेंगे ॥ २१॥

भीम उवाच

अहं त्वानुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ।
पाञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः　　　　॥ २२ ॥

भीमसेन बोले— मैं तुम्हारे साथ चलूंगा । धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और सब प्रभद्रक योद्धा आदि सब लोग तुम्हारे पीछे पीछे चलेंगे ॥ २२ ॥

सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः ।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान्वरान्　　　　॥ २३ ॥

तुम एक बार व्यूहको भेद करके जिस मार्गसे गमन करोगे, हम लोग उस ही मार्गमें मुख्य मुख्य योद्धाओंका बध करके बार बार उन स्थलोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर देंगे ॥ २३ ॥

अभिमन्युरुवाच

अहमेतत्प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं जातवेदसम्　　　　॥ २४ ॥

अभिमन्यु बोले— जैसे पतङ्ग जलती हुई अग्निमें प्रवेश करता है, वैसे ही आज मैं भी क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यकी इस दुर्गम सेनाके बीच प्रवेश करूंगा ॥ २४ ॥

तत्कर्माद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः ।
मातुलस्य च या प्रीतिर्भविष्यति पितुश्च मे ॥ २५ ॥

आज मैं पितृ और मातृ दोनों वंशोंके लिये हित कर और पिता तथा मामाके प्रीतिजनक कर्मका अनुष्ठान करूंगा ॥ २५ ॥

शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि सङ्घशः ।
अद्य द्रक्ष्यन्ति भूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥

मैं बालक हूं, परन्तु आज सम्पूर्ण प्राणी झुण्डके झुण्ड शत्रुसेनाके शूरवीरोंको मेरे अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीमें गिरे हुए देखेंगे ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् ।
यस्त्वमुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं सुदुर्भिदम् ॥ २७ ॥
रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैः प्रहारिभिः ।
साध्यरुद्रमरुत्कल्पैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥ २८ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले— हे सुभद्रानन्दन ! तुम साध्य, रुद्र तथा मरुद्गणोंके समान; और वसु, अग्नि और आदित्यके समान पराक्रमसे युक्त, महाधनुर्धर, महाबली पुरुषसिंहोंसे रक्षित दुर्गम द्रोणसेनाके व्यूहको भेद करनेका उत्साह प्रकाशित करते हो और ऐसी ओजस्वी बातें करते हो, इससे तुम्हारे बलकी वृद्धि होवे ॥ २७–२८ ॥

सञ्जय उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् ।
सुमित्राश्वान्रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ १४२६ ॥

सञ्जय बोले— राजा युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनकर अभिमन्यु सारथिसे बोले, हे सुमित्र ! तुम युद्धमें द्रोणाचार्यकी सेनाके संमुख ही शीघ्र घोडोंको हांककर मेरे रथको लेचलो ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ १४२६ ॥

: ३५ :

संजय उवाच

सौभद्रस्तु वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! सुभद्रापुत्र अभिमन्युने बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरके वचनको सुनकर सारथिको द्रोणाचार्यकी सेनाके निकट जानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥
राजन् ! 'चलो चलो' ऐसा कहकर अभिमन्युके प्रेरित करनेपर सारथि उनसे यह वचन कहने लगा ॥ २ ॥

अति भारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः ।
संप्रधार्य क्षमं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥
हे आयुष्मन् ! पाण्डवोंने तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही प्रचण्ड गुरुभार अर्पण किया है, परन्तु तुम अपने पराक्रमको विचारके देख लो, कि इस असाध्य कर्मके सिद्ध करनेमें तुम्हारी शक्ति है, वा नहीं ! तुमको बुद्धिसे भली भांति सोच विचार करके इस युद्धमें प्रवृत्त होना ही उचित है ॥ ३ ॥

आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः ।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं च युद्धविशारदः ॥ ४ ॥
द्रोणाचार्य सम्पूर्ण अस्त्रविद्याको जानते हैं और उत्तम अस्त्रोंकी संपादनामें उन्होंने अत्यंत परिश्रम लिये हैं । तुम भी युद्धविद्याको जानते हो, परन्तु अत्यन्त ही सुखपूर्वक पाले पोषे गये हो ॥ ४ ॥

ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत् ।
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥
अनन्तर अभिमन्यु हंसकर अपने सारथिसे बोले, हे सारथे ! इन द्रोणाचार्य तथा दूसरे सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी बात ही क्या ? मुझे कुछ भी भय नहीं है ॥ ५ ॥

ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम् ।
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ।
न ममैतद्द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् ॥ ६ ॥
मैं सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त ऐरावतपर चढे हुए इन्द्रके सङ्ग भी युद्ध कर सकता हूं; इसलिये इन संपूर्ण क्षत्रियोंके साथ युद्ध करनेमें मुझे आज कोई आश्चर्य नहीं लगता है। यह शत्रुओंकी सम्पूर्ण कुरुसेना मेरे सोलह भागका एक भाग भी नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ।
पितरं चार्जुनं संख्ये न भीर्मामुपयास्यति ॥ ७ ॥
सूतपुत्र ! विश्व-विजयी विष्णुस्वरूप मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें भी मुझे कुछ भय नहीं होगा ॥ ७ ॥

ततोऽभिमन्युस्तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ।
याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय माचिरम् ॥ ८ ॥

अनन्तर अभिमन्युने सारथिके वचनको न मानकर, उसे द्रोणाचार्यकी सेनाके संमुख शीघ्र गमन करनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ ८ ॥

ततः संचोदयामास हयानस्य त्रिहायनान् ।
नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ॥ ९ ॥

तब अप्रसन्न मनवाले सारथिने तीन वर्षकी अवस्थावाले सुवर्णभूषित साजोंसे युक्त उत्तम घोडोंको द्रोणाचार्यसे रक्षित सेनाकी ओर शीघ्र चलाया ॥ ९ ॥

ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ।
द्रोणमभ्यद्रवन्राजन्महावेगपराक्रमाः ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! महा वेगवान् पराक्रमी घोडे सुमित्र सारथिसे द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर चलनेपर वे घोडे द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ १० ॥

तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥

तब द्रोणाचार्य आदि सम्पूर्ण कौरव लोग अभिमन्युको इस प्रकारसे संमुख आते देखकर उसके संमुख उपस्थित हुए । पाण्डव लोग अभिमन्युके पीछे पीछे गमन करने लगे ॥ ११ ॥

स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्मार्जुनिरर्जुनाद्वरः ।
युयुत्सया द्रोणमुखान्महारथान्समासदत्सिंहशिशुर्यथा गजान् ॥ १२ ॥

जैसे सिंहका किशोर बच्चा हाथियोंके झुण्डपर आक्रमण करता है, वैसे ही सुवर्णभूषित कवच और सुन्दर ऊंची कर्णिकार चिह्नवाली ध्वजासे युक्त, अपने पिता अर्जुनसे भी श्रेष्ठ वीर अर्जुनपुत्र अभिमन्युने युद्धकी इच्छासे द्रोणाचार्य आदि महारथी वीरोंपर आक्रमण किया ॥ १२ ॥

ते विंशतिपदे यत्ताः संप्रहारं प्रचक्रिरे ।
आसीद्गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ॥ १३ ॥

अभिमन्यु बीस पग ही आगे बढे थे कि युद्धके लिये उद्यत कुरुवीरोंने उनपर प्रहार किया । जैसे भंवर युक्त गङ्गा और समुद्रका सङ्गम होनेसे मुहूर्त्तभरमें जलही जल उस स्थलमें दीख पडता है, वैसे ही उस समयमें दो घडीतक दोनों सेनाके शूरवीरोंका समागम हुआ ॥ १३ ॥

शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १४ ॥

महाराज ! अभिमन्युके द्रोणसेनाके बीच प्रवेश करनेके समयमें दोनों सेनाके शूरवीर योद्धा लोग युद्धमें प्रवृत्त होकर एक-दूसरेके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करने लगे; उससे महा भयङ्कर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥

प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥

जब इस प्रकारसे महाघोर युद्ध होने लगा, तब उस ही समय अभिमन्युने द्रोणाचार्यके सम्मुखहीमें व्यूहभेद करके शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया ॥ १५ ॥

तं प्रविष्टं परान्घ्नन्तं शत्रुमध्ये महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ १६ ॥

गजपति, घुडसवार, रथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग, महाबलवान् अभिमन्युको व्यूहके भीतर प्रवेश करके शत्रुगणोंको नष्ट करते हुए देखकर चारों ओरसे अस्त्रशस्त्र ग्रहण करके उन्हें घेरने लगे ॥ १६ ॥

नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः ।
हुङ्कारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निस्वनैः ॥ १७ ॥

नाना प्रकारके युद्धके बाजोंकी ध्वनि, कोलाहल, आव्हान, गर्जना, हुंकार, सिंहनाद, ' खडा रह, खडा रह ' की आवाज ॥ १७ ॥

घोरैर्हलहलाशब्दैर्मा गास्तिष्ठेहि मामिति ।
असावहममुत्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

और घोर हलहला शब्दसे ' मत जाओ, खडे रहो, मेरे सम्मुख आओ, वह मैं इधर हूं, यहांपर खडा हूं, ' इसी प्रकारके वचन बार बार कहते हुए ॥ १८ ॥

बृंहितैः शिञ्जितैर्हासैः खुरनेमिस्वनैरपि ।
संनादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥

हाथियोंके चिंघाड, घुघुरोंका शब्द, हास्य, घोडोंकी हिनहिनाहट और रथोंके पहियोंकी घरघराहटके सहित संपूर्ण पृथ्वीको नादित करते हुए सम्पूर्ण योद्धा अभिमन्युकी ओर दौडे ॥१९॥

तेषामापततां वीरः पूर्वं शीघ्रमथो दृढम् ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्व्रतान्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥

शीघ्र अस्त्र चलानेवाले मर्मस्थानोंको जाननेवाले महावीर अभिमन्यु उन लोगोंको सम्मुख आते देखकर शीघ्रताके सहित समूहके समूह वीर योद्धाओंको मर्मभेदक बाणोंसे विद्ध करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ २० ॥

ते हन्यमानाश्च तथा नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अभिपेतुस्तमेवाजौ शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥

जैसे फतिङ्गोंके समूह जलती हुई अग्निमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे योद्धा लोग अभिमन्युके अनेक प्रकारके तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २१ ॥

*

ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः ।
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाध्वरे ॥ २२ ॥

जैसे यज्ञस्थलमें कुशके समूहसे वेदी छिप जाती है, वैसे ही अभिमन्यूने शीघ्रहीं शत्रुओंके शरीरों और अनेक अवयवोंसे संग्रामकी भूमिको पूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणान्सशरावरकार्मुकान् ।
सासिचर्माङ्कुशाभीशून्सतोमरपरश्वधान् ॥ २३ ॥

मरे हुए वीरपुरुषोंकी उस भुजाओंमें गोहके चमडेसे बने हुए दस्ताने बंधे हुए थे; बाण और उत्तम धनुष थे । किन्हींमें तलवार, ढाल, अंकुश, घोडोंकी बागडोर, तोमर, और परशु दिखाई देते थे ॥ २३ ॥

सगुडायोमुखप्रासान्सर्ष्टितोमरपट्टिशान् ।
सभिण्डिपालपरिघान्सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥

किन्हींमें गदा, लोहेके प्रास, ऋष्टि, तोमर, पट्टिश, भिण्डिपाल, परिघ, उत्तम शक्तियां और कम्पन थे ॥ २४ ॥

सप्रतोदमहाशङ्खान्सकुन्तान्सकचग्रहान् ।
समुद्गरक्षेपणीयान्सपाशपरिघोपलान् ॥ २५ ॥

किन्हींमें प्रतोद, महाशंख और कुन्त दीखते थे। किन्हीं भुजाओंने शत्रुओंके बाल पकड रक्खे थे । किन्हींमें मुद्गर फेकने योग्य अस्त्र, पाश, परिघ और पत्थर थे ॥ २५ ॥

सकेयूराङ्गदान्बाहून्हृद्यगन्धानुलेपनान् ।
सञ्चिच्छेदार्जुनिर्वृत्तांस्त्वदीयानां सहस्रशः ॥ २६ ॥

उन वीरोंकी भुजाएं केयूर और अंगद आदि अलंकारोंसे भूषित थीं । उन भुजाओंमें सुगंध-युक्त चन्दन लगाया था । अर्जुनपुत्र अभिमन्युने तुम्हारे सहस्रों सैनिकोंकी उन भुजाओंको काट डाला ॥ २६ ॥

तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे लोहितोक्षितैः ।
पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥ २७ ॥

हे महाराज ! जैसे गरुडके द्वारा काटे हुए पञ्चमुखवाले सर्पोंके समूहसे पृथ्वी शोभित होती है, वैसे ही रुधिर पूरित कांपती हुई उन वीरोंकी कटी हुई भुजाओंसे संग्रामभूमि शोभायमान होने लगी ॥ २७ ॥

सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः ।
संदष्टौष्ठपुटैः क्रोधात्क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥

जिनमें उत्तम नासिका, मुख और उत्तम केश थे, जो फोडे और घावके चिन्होंसे रहित थे, और जो सुन्दर कुण्डलोंसे युक्त थे, जिनके ओष्ठ पुट क्रोधके कारण दबे हुए थे, जो रुधिर बहुत बहा रहे थे ॥ २८ ॥

चारुस्रङ्मुकुटोष्णीषैर्मणिरत्नविराजितैः ।
विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥ २९ ॥

जिनके ऊपर सुंदर मुकुट और पगडियां थीं, जो मणि और सुवर्ण युक्त रत्नोंसे शोभायमान थे, जो सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान थे, जो जालरहित कमल पुष्पके समान थे ॥ २९ ॥

हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
द्विषच्छिरोभिः पृथिवीमवतस्तार फाल्गुनिः ॥ ३० ॥

जो हितकारी और प्रियवादी थे, जिनकी संख्या बहुत थी, जो पवित्र चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त थे, शत्रु सेनाके शूरवीरोंके उन शिरोंसे अभिमन्युने वहांकी सारी पृथ्वीको पूरित कर दिया ॥ ३० ॥

गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
वीषामुखान्त्रिवेणून्व्यस्तदण्डकबन्धुरान् ॥ ३१ ॥

महाराज ! अर्जुनपुत्र अभिमन्युने अपने अनेक तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर सब ओर नाना प्रकारके विधिसे कल्पित गन्धर्व नगरके समान विशाल अनेक रथोंके टुकडे कर दिये; उनके मुख्य ईशादण्ड, त्रिवेणु, स्तम्भदण्ड और बन्धन टूट गये ॥ ३१ ॥

विजङ्घकूबराक्षांश्च विनेमीननरानपि ।
विचक्रोपस्करोपस्थान्भग्नोपकरणानपि ॥ ३२ ॥

रथके जङ्घा, कूबर और अक्ष नष्ट हो गये थे; पहियोंके ऊपरी भाग, अरे, चक्र, रथकी सजावटके समान और बैठकें नष्ट हो गयी थीं ॥ ३२ ॥

प्रशातितोपकरणान्हतयोधान्सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥

रथकी छतरी और आवरणको गिराकर, सहस्रों रथियोंको मार डाला था। इस प्रकार अभिमन्यु सब ओर अपने बाणोंसे रथोंके टुकडे टुकडे करता हुआ दीखाई देता था ॥ ३३ ॥

पुनर्द्विपान्द्विपारोहान्वैजयन्त्यङ्कुशध्वजान् ।
तूणान्वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयानथ कम्बलान् ॥ ३४ ॥

फिर शत्रुसेनाके हाथी, गजसवार और उनकी पताका, अंकुश, ध्वजा, तूणीर, वर्म, हौदे, गलेके भूषण, कम्बल (जीनपोष) ॥ ३४ ॥

घण्टाः शुण्डान्विषाणाग्रान्क्षुरपालान्पदानुगान् ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५ ॥

घण्टा, सूण्ड, दांत और पांव, क्षुरपाल और उनके पादरक्षक योद्धाओंको अभिमन्युने अपने तीक्ष्ण धारवाले बाणोंसे काट डाला ॥ ३५ ॥

वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजारट्टबाह्लिकान् ।
स्थिरवालधिकर्णाक्षाञ्जवनान्साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥

वनायुज, पर्वतीय, काम्बोज और बाह्लिक देशीय स्थिर पूंछ, उत्तम कर्ण और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त, वायुके समान वेगगामी और अच्छी तरह वहन करनेवाले उत्तम उत्तम अनेक घोडोंको ॥ ३६ ॥

स्वारूढाञ्शिक्षितैर्योधैः शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभिः ।
विध्वस्तचामरकुथान्विप्रकीर्णप्रकीर्णकान् ॥ ३७ ॥

शक्ति, ऋष्टि, और प्रास आदि अस्त्रोंको धारण करनेवाले अत्यन्त शिक्षित शूरबीर घुडसवार योद्धाओंके सहित मारकर पृथ्वीमें गिराया । उन घोडोंके मस्तक और गर्दनपरके चंवरके समान बाल और आस्तरण नष्ट हो गये थे । वे सब घायल हो गये थे । कितने ही घोडोंके सिर छिन्न–भिन्न होकर बिखर गये थे ॥ ३७ ॥

निरस्तजिह्वानयनान्निष्कीर्णान्त्रयकृद्धनान् ।
हतारोहान्भिन्नभाण्डान्क्रव्यादगणमोदनान् ॥ ३८ ॥

कितने ही घोडोंकी जिह्वा और नेत्र बाहर निकल आये थे, कितने ही घोडोंके आंत और पेट फट गये थे, उनके सवार मारे गये थे; कितने ही वायुवेगी घोडे घण्टारहित हो गये थे । वे सम्पूर्ण घोडे इसी प्रकारसे रुधिर युक्त होकर सम्पूर्ण मांसभक्षी प्राणियोंके आनन्दको बढाते हुए अभिमन्युके बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३८ ॥

निकृत्तवर्मकवचाञ्शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।
निपातयन्नश्ववरांस्तावकान्सोऽभ्यरोचत ॥ ३९ ॥

कितने ही घोडोंके तनुत्राण और कवच टूट फूट गये थे और वे रुधिरयुक्त शरीरसे मलमूत्र परित्याग करने लगे । उस समय तुम्हारे श्रेष्ठ घोडोंको धाराशायी करता हुआ वह अभिमन्यु शोभित हो रहा था ॥ ३९ ॥

एको विष्णुरिवाचिन्त्यः कृत्वा प्राक्कर्म दुष्करम् ।
तथा विमथितं तेन त्र्यङ्गं तव बलं महत् ।
व्यहनत्स पदात्योघांस्त्वदीयानेव भारत ॥ ४० ॥

जैसे महातेजस्वी महात्मा विष्णुने अकेले ही पहिले समयमें अचिंत्य और अत्यन्त कठिन कर्मोंको किया, अर्थात् दैत्योंका नाश किया था, वैसे ही अभिमन्युने रथ, हाथी और घोडे-इन तीन अंगोंसे युक्त तुम्हारी बडी सेनाको मथ डाला । भारत ! उन्होंने तुम्हारी संपूर्ण पैदल चलनेवाली सेना समूहोंका उस स्थलमें नाश किया ॥ ४० ॥

एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ।
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवासुरीं चमूम् ॥ ४१ ॥

जैसे पहिले समयमें देवताओंके सेनापति स्वामिकार्तिकेयने असुरोंकी सेनाका नाश किया था, वैसे ही सम्पूर्ण सेनाको अकेले ही सुभद्रापुत्र अभिमन्युने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित कर डाला है, यह देखकर ॥ ४१ ॥

त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ।
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ॥ ४२ ॥

तुम्हारी ओरके पराक्रमी योद्धा तथा तुम्हारे पुत्र चकित होकर दशों दिशाओंकी ओर देखने लगे । उन सब शूर वीरोंका मुख सूखने लगा, उनके नेत्र चञ्चल हो गये, शरीरसे पसीना आने लगा और शरीरके रोंएं खडे हो गये ॥ ४२ ॥

पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।
गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः ॥ ४३ ॥

अनन्तर वे युद्धभूमिसे भागनेमें उत्साह दिखाने लगे; शत्रुओंको जीतनेके लिये उत्साहरहित हो गये । वे सब लोग अपने जीवनकी अभिलाषा करके अपने सगे-सम्बन्धियोंके नाम और गोत्रको सुनाकर आपसमें एक दूसरेके लिये आक्रोश कर रहे थे ॥ ४३ ॥

हतान्पुत्रांस्तथा पितॄन्सुहृत्संबन्धिबान्धवान् ।
प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ १४७० ॥

वे इतने भयभीत हो गये थे कि, वहां मारे गये अपने पुत्र, पिता, मित्र और सम्बन्धि बान्धवोंको छोडकर शीघ्रताके सहित अपने घोडे हाथियोंको चलाकर अभिमन्युके सम्मुखसे भागने लगे ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ १४७० ॥

: ३६ :

सञ्जय उवाच

तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणामितौजसा ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— राजा दुर्योधन अपनी सेनाको अमित तेजस्वी सुभद्रापुत्र अभिमन्युने मार भगाया है, यह देखकर अत्यंत क्रुद्ध होकर स्वयं अभिमन्युका सामना करनेके लिये आया ॥ १ ॥

ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान्पर्याप्नुत नराधिपम् ॥ २ ॥

अनन्तर युद्धमें द्रोणाचार्य राजा दुर्योधनको अभिमन्युके सम्मुख जाते देखकर, सम्पूर्ण योद्धाओंसे बोले, कि कुरुराज दुर्योधनको सब ओरसे घिरकर रक्षा करो ॥ २ ॥

पुराभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥

पराक्रमी अभिमन्यु जबतक हम लोगोंके संमुखमें अपने लक्ष्य राजा दुर्योधनको नहीं विद्ध करता है, तुम लोग उसके पहिले ही भय त्याग कर दौडकर, अभिमन्युके सम्मुख शीघ्रताके सहित जाके कुरुराज दुर्योधनकी रक्षा करो ॥ ३ ॥

ततः कृतज्ञा बलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।
त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥ ४ ॥

अनन्तर कृतज्ञ, बलवान्, हितैषी और युद्धको जीतनेवाले योद्धाओंने, यद्यपि वे अभिमन्युके भयसे डरते थे, तो भी तुम्हारे वीर पुत्र दुर्योधनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः ।
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, बृहद्बल, मद्रराज शल्य, भूरि, भूरिश्रवा, शल ॥ ५ ॥

पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्शरान् ।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥

पौरव और वृषसेन आदि पराक्रमी योद्धा लोग अपने तीक्ष्ण बाणोंकी महान् वर्षा करके अभिमन्युको बाणोंसे छिपाने लगे ॥ ६ ॥

संमोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।
आस्यादूग्रासमिवाक्षिप्तं ममृषे नार्जुनात्मजः ॥ ७ ॥

इस प्रकार उन महारथी वीरोंने अपने बाणोंकी बर्षासे अभिमन्युको मोहित करके उसके संमुखमें पडे हुए ग्रासके समान राजा दुर्योधनको मुक्त किया; उन शूरवीरोंका यह कर्म अर्जुनपुत्र अभिमन्युसे नहीं सहा गया ॥ ७ ॥

ताञ्शरौघेण महता साश्वसूतान्महारथान् ।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथानदत् ॥ ८ ॥

उसने अनेक तीक्ष्ण बाणोंकी महान् वर्षासे घोडे और सारथियोंके सहित उन महारथियोंको युद्धभूमिसे विमुख करके सिंहनाद किया ॥ ८ ॥

तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवामिषैषिणः ।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ ९ ॥

द्रोणाचार्य आदि महारथी योद्धाओंने मांसकी इच्छावाले सिंहस्वरूप अभिमन्युके उस सिंह-नादको सुनकर अत्यन्त ही क्रोध किया; वे वह सह नहीं सके ॥ ९ ॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि संघशः ॥ १० ॥

मारिष ! अनन्तर उन महारथियोंने चारों ओरसे रथोंके समूहसे अभिमन्युको कोष्ठमें बद्धसा करके, वे उसके ऊपर नाना भांतिके बाण समूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्तव शितैः शरैः ।
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११ ॥

तुम्हारे पौत्रने उन लोगोंके चलाये हुए बाणोंको आकाशमार्गहीमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया; और उन सब महारथी योद्धाओंको भी विद्ध किया; वह युद्ध अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा ॥ ११ ॥

ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपलायिनम् ॥ १२ ॥

अनन्तर उन महारथियोंने अभिमन्युसे अत्यन्त ही कुपित होकर विषधारी सर्पके समान भयंकर बाणोंको वर्षाकर युद्धसे न हटनेवाले सुभद्रापुत्र अभिमन्युका वध करनेकी इच्छासे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १२ ॥

समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तद्बलार्णवम् ।
अभिमन्युर्दधारैको वेलेव मकरालयम् ॥ १३ ॥

जैसे तट समुद्रको सीमा लङ्घन नहीं करने देता, वैसे ही अकेले ही अभिमन्युने तुम्हारे उस सेना सागरको आगे बढनेसे रोक दिया ॥ १३ ॥

शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
अभिमन्योः परेषां च नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ १४ ॥

आपसमें एक दूसरेके ऊपर बाणोंको चलानेवाले अभिमन्यु तथा तुम्हारी सेनाके महारथी योद्धाओंमेंसे कोई भी युद्धसे विमुख नहीं हुआ ॥ १४ ॥

तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयङ्करे ।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५ ॥
दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६ ॥

उस महाघोर भयङ्कर युद्धमें दुःसहने नौ, दुःशासनने बारह, शारद्वत कृपाचार्यने तीन और द्रोणाचार्यने विषैले सर्पके समान भयंकर सतरह बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ १५–१६ ॥

विविंशतिस्तु विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ।
बृहद्बलस्तथाष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८ ॥

विविंशतिने बीस, कृतवर्माने सात, बृहद्बलने आठ, अश्वत्थामाने सात, भूरिश्रवाने तीन, मद्रराज शल्यने छः, शकुनिने दो और राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ १७–१८ ॥

स तु तान्प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय धनुष हाथमें लिये प्रतापी अभिमन्युने मानो रणभूमिमें नृत्य करते हुए, उन सब महारथी वीरोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ १९ ॥

ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्ताप्यमानस्तवात्मजैः ।
विदर्शयन्वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥ २० ॥

अनन्तर तुम्हारे पुत्रोंसे पीडित अभिमन्युने क्रुद्ध होकर, अपनी अस्त्रशिक्षा और हृदयके पराक्रमको प्रकाशित किया ॥ २० ॥

गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः ।
दान्तैरश्मकदायादं त्वरमाणोऽभ्यहारयत् ।
विव्याध चैनं दशभिर्बाणैस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥

सारथिकी आज्ञाका पालन करनेवाले, गरुड और बायुके समान वेगगामी सुशिक्षित उत्तम घोडोंसे युक्त रथपर चढकर संमुख आये हुए राजा अश्मकपुत्रको शीघ्रतासे अभिमन्युने अपने अस्त्रशस्त्रोंसे निवारण किया; और ' खडा रह! खडा रह! ' कहके उन्हें दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ २१ ॥

तस्याभिमन्युर्दशभिर्बाणैः सूतं हयान्ध्वजम् ।
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत् ॥ २२ ॥

फिर अभिमन्युने हंसते हंसते उसके सारथि, घोडे, रथकी ध्वजा, दोनों भुजा, धनुष और शिरको भी दस बाणोंसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २२ ॥

ततस्तस्मिन्हते वीरे सौभद्रेणाश्मकेश्वरे ।
संचचाल बलं सर्वं पलायनपरायणम् ॥ २३ ॥

अनन्तर जब पराक्रमी वीर अश्मकपति अभिमन्युके अस्त्रोंसे मारे गये, तब तुम्हारी सम्पूर्ण सेना भयभीत होके अभिमन्युके संमुखसे भागने लगी ॥ २३ ॥

ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट्शलः ।
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः ॥ २४ ॥

अनन्तर कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, गान्धारराज शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति ॥ २४ ॥

वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ।
वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः ।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २५ ॥

वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और अत्यंत क्रोधित दुर्योधन आदि योद्धा लोग अभिमन्युके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥२५॥

सोऽतिक्रुद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः ।
शरमादत्त कर्णाय परकायावभेदनम् ॥ २६ ॥

अभिमन्युने उन महारथी धनुर्द्धारियोंके चलाये हुए बाणोंसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर्णको लक्ष्य करके शत्रुदेह भेद करनेवाला एक तीक्ष्ण बाण हाथमें लिया ॥ २६ ॥

*

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाशुगः ।
प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नगः ॥ २७ ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करता है, वैसे ही अभिमन्युने छोडा हुआ वह बाण कर्णके तनुत्राण और शरीरको भेद करके पृथ्वीमें समा गया ॥ २७ ॥

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ।
संचचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ २८ ॥

जैसे भूचालसे पर्वत कम्पित होता है, वैसेही कर्ण अभिमन्युके उस बाणके अत्यन्त गहरे प्रहारसे व्यथित और बिह्वल होकर युद्धमें विचलित होगये ॥ २८ ॥

अथान्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ २९ ॥

अनन्तर बलबान् अभिमन्युने अत्यंत क्रुद्ध होकर अन्य तीन तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर सुषेण, दीर्घलोचन और कुण्डभेदी– इन तीन शूरवीरोंको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समर्पयत् ।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ॥ ३० ॥

तब कर्णने पचीस, अश्वत्थामाने बीस और कृतवर्माने सात नाराच बाणोंसे अभिमन्युपर गहरा प्रहार किया ॥ ३० ॥

स शरार्दितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्मजात्मजः ।
विचरन्दृश्यते सैन्ये पाशहस्त इवान्तकः ॥ ३१ ॥

उस समय इन्द्रकुमार अर्जुनके पुत्र अभिमन्युका सम्पूर्ण शरीर उन महारथियोंके बाणोंसे परिपूर्ण हो गया, और वह क्रुद्ध होकर पाशधारी यमराजके समान सम्पूर्ण सेनाके बीच घूमते हुए दिखाई देने लगे ॥ ३१ ॥

शल्यं च बाणवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् ।
उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥ ३२ ॥

महाबाहु अभिमन्युने समीपमें ही स्थित राजा शल्यको देखकर उन्हें अपने बाणोंसे छिपा दिया; और तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको भयभीत करते हुए बडे जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३२ ॥

ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
शल्यो राजन्रथोपस्थे निषसाद मुमोह च ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! राजा शल्य अस्त्रवेत्ता अभिमन्युके चलाये हुए मर्मभेदी बाणोंसे पीडित होकर रथदण्ड पकडके बैठ गये और मूर्च्छित हो गये ॥ ३३ ॥

तं हि विद्धं तथा दृष्ट्वा सौभद्रेण यशस्विना ।
संप्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

यशस्वी अभिमन्युके बाणोंसे इस प्रकारसे शल्यको पीडित देखकर द्रोणाचार्यके देखते देखते सब सेना युद्धभूमिसे भागने लगी ॥ ३४ ॥

प्रेक्षन्तस्तं महाबाहुं रुक्मपुङ्खैः समावृतम् ।
त्वदीयाश्च पलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३५ ॥

तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग महाबाहु शल्यको अभिमन्युके सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे व्याप्त हुए देखकर युद्धभूमिसे इस प्रकार भागने लगे, जैसे सिंहसे पीडित होकर मृगोंका समूह भागता है ॥ ३५ ॥

स तु रणयशसाभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्धयक्षसंघैः ।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घैरतिविबभौ हुतभुग्यथाज्यसिक्तः ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ १५०६ ॥

आकाशमें स्थित पितर, देवता, चारण, सिद्ध, यक्ष समूह और पृथ्वीपर स्थित भूत गणोंसे प्रशंसित होकर युद्धके सुयशसे शोभित होनेवाले अभिमन्यु मानों घीसे सिंचित अग्निके समान उस संग्रामभूमिमें प्रकाशित होने लगे ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ १५०६ ॥

: ३७ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रमथमानं तं महेष्वासमजिह्मगैः ।
आर्जुनिं मामकाः सर्वे के त्वेनं समवाकिरन् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जिस समय अर्जुनपुत्र महाधनुर्धारी अभिमन्यु महारथ वीरोंको अपने बाणोंसे पीडित कर रहा था, उस समयमें मेरी ओरके किन किन शूरवीर योद्धाओंने उसे अपने बाणोंसे छा दिया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् ।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! अर्जुन पुत्र अभिमन्युने द्रोणाचार्यसे रक्षित रथसेनाको भेद करनेकी इच्छा करके जिस प्रकारसे युद्धमें कठिन कार्य किया था, उस महान् रणक्रीडाका सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम सुनो ॥ २ ॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाशुगै रणे ।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन्बाणान्समभ्ययात् ॥ ३ ॥

युद्धमें मद्रराज शल्यको अभिमन्युने शीघ्रगामी बाणोंसे मूर्च्छित किया हुआ देखकर, उनके छोटे भाई क्रुद्ध हो बाणवर्षा करते हुए अभिमन्युके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम् ।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥

उन्होंने दस बाणोंसे अभिमन्युको घोडे और सारथिके सहित विद्ध करके ' खडा रह ! खडा रह ! ' कहके महाघोर शब्दके सहित सिंहनाद किया ॥ ४ ॥

तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान् ।
छत्त्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं शम्युपस्करम् ॥ ५ ॥
चक्रे युगेषां तूणीराननुकर्षं च सायकैः ।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ।
व्यधमल्लाघवात्तच्च ददृशे नास्य कश्चन ॥ ६ ॥

अर्जुनपुत्र अभिमन्युने हस्तलाघवके सहित शीघ्रही उनके शिर, ग्रीवा, हाथ, पांव, धनुष, घोडे, छत्र, ध्वज, सारथि, त्रिवेणु, दण्ड, उपकरण, रथके चक्र, रथकी धूरी, इषा, तूणीर, अनुकर्ष, पताक, चक्र–रक्षक तथा रथकी सम्पूर्ण सामग्रियोंके सहित उन्हें इस प्रकार अपने तीक्ष्ण सायकोंसे काट डाला, कि कोई पुरुष उन्हें देख भी न सका ॥ ५-६ ॥

स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ।
वायुनेव महाचैत्यः संभग्नोऽमिततेजसा ।
अनुगाश्चास्य वित्रस्ताः प्राद्रवन्सर्वतोदिशम् ॥ ७ ॥

जैसे प्रचण्डवायुके वेगसे कोई महान् देवायतन टूटकर गिर पडे, वैसे ही वह अमित तेजस्वी अभिमन्युके अस्त्रोंसे कटकर पृथ्वीमें छिन्न भिन्न होकर गिर पडे। उनके वस्त्र और अलंकारोंके टुकडे हो गये थे तब उनके अनुयायी योद्धा भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग गये ॥ ७ ॥

आर्जुनेः कर्म तद्दृष्ट्वा प्रणेदुश्च समन्ततः ।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ८ ॥

हे भारत ! अभिमन्युको इस प्रकारसे कठिन कर्म करते हुए देखकर सम्पूर्ण प्राणी धन्य धन्य करके उसकी प्रशंसा करने लगे और हर्षध्वनि करने लगे ॥ ८ ॥

शल्यभ्रातर्यथारुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः ।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥

हे भारत ! जब राजा शल्यका कनिष्ठ भ्राता मारा गया तब उसके बहुतसे सैनिक अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने कुल और निवासस्थानके नाम सुनाकर अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पादातैश्च बलोत्कटाः ॥ १० ॥

उन्होंने हाथोंमें अनेक प्रकारके आयुध धारण किये थे । उनमेंसे कितने शूरवीर योद्धा लोग रथ, हाथी और घोडेपर चढके आये और कितनेही अत्यंत बलवान् वीर पैदलही उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ १० ॥

बाणशब्देन महता खुरनेमिस्वनेन च ।
हुंकारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥ ११ ॥

उनके बाणोंके शब्द, रथके पहियोंकी घरघराहट, हुङ्कार, कोलाहल, ललकार, सिंहनाद, वीरोंके गर्जन ॥ ११ ॥

ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् ।
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन्मोक्ष्यसे जीवतामिति ॥ १२ ॥

धनुषटङ्कार और तनुत्राणके शब्दके साथ गर्जन करते हुए दूसरे अनेक शूरवीर योद्धा यह बचन कहते हुए अर्जुनपुत्र अभिमन्युकी ओर दौडे, कि 'तुम जीतेजी हमारे संमुखके नहीं बच सकोगे' ऐसे बचन कहते हुए उन सम्पूर्ण योद्धाओंने अभिमन्युपर आक्रमण किया ॥ १२ ॥

तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव ।
यो यः स्म प्राहरत्पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १३ ॥

सुभद्रापुत्र अभिमन्युने उन सम्पूर्ण वीरोंको इस प्रकारसे प्रलाप करते हुए संमुख आते देखा, और उन योद्धाओंमेंसे जिन शूरवीरोंने पहिले उनके ऊपर प्रहार किया था, अभिमन्युने हंसते हुए उन्हें अपने पंखयुक्त बाणोंसे विद्ध करना आरम्भ किया ॥ १३ ॥

संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि चित्राणि च लघूनि च ।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥ १४ ॥

उन समय युद्धमें पराक्रमी अभिमन्यु अपनी विचित्र और शीघ्रगामी अस्त्रोंकी निपुणता दिखाते हुए पहले मृदु युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

वासुदेवादुपात्तं यद्यदस्त्रं च धनंजयात् ।
अदर्शयत तत्कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषयन् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीपमें अभिमन्युने जिन अस्त्रोंकी विद्या सीखी थी, उसे वह उस समयमें उन्हीं दोनोंके समान प्रकाशित करने लगे ॥ १५ ॥

दूरमस्यन्गुरुं भारं साधयंश्च पुनः पुनः ।
संदधद्विसृजंश्चेषून्निर्विशेषमदृश्यत ॥ १६ ॥

वह इस अत्यन्त कठिन भार और भयको त्यागकर बार बार बाणोंका सन्धान करता और छोडता हुआ एकसा दिखाई देने लगे ॥ १६ ॥

चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद्दिक्ष्वदृश्यत ।
तमो घ्नतः सुदीप्तस्य सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १७ ॥

उनका धनुष मण्डलाकार रूपसे अत्यन्त प्रकाशित होकर अंधकारको नष्ट करनेवाले सूर्य मण्डलके समान उस समय संग्रामभूमिमें सब दिशाओंमें प्रकाशित होते दिखायी देने लगा ॥ १७ ॥

ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः ।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निस्वनः ॥ १८ ॥

हे भारत ! जैसे वर्षाकालके समय महा भयङ्कर बादलोंके गर्जने और बिजली गिरनेके समय भयानक शब्द होता है, वैसे ही अभिमन्युके दृढ धनुषकी प्रत्यञ्चा और तनुत्राणका शब्द युद्धभूमिमें सुनाई देने लगा ॥ १८ ॥

ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत्प्रियदर्शनः ।
संमिमानयिषुर्वीरानिष्वासांश्चाप्ययुध्यत ॥ १९ ॥

लज्जाशील, अमर्षी, दूसरोंको मान देनेवाला और प्रियदर्शन सुभद्रापुत्र अभिमन्यु शत्रुके वीर योद्धाओंका संमान करनेकी इच्छासे उस समय धनुष-बाणोंसे युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥

मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत ।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्शरदीव दिवाकरः ॥ २० ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे वर्षा कालके अनन्तर शरदृऋतुमें सूर्य प्रचण्ड हो जाते हैं, वैसे ही अभिमन्यु पहिले मृदु युद्ध करके फिर तीव्र रूपसे युद्ध करने लगे ॥ २० ॥

शरान्विचित्रान्महतो रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २१ ॥

जैसे सूर्य चारों ओर अपने किरणोंका विस्तार करके आकाशमें शोभित होते हैं, वैसे ही क्रुद्ध अभिमन्यु स्वर्णपंखसे युक्त सैकडों तेज, विचित्र और महान् बाणोंको चलाकर युद्ध भूमिमें शोभित होने लगे ॥ २१ ॥

क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः ।
नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २२ ॥
अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः ।
ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ १५२९॥

उस महायशस्वी अभिमन्युने द्रोणाचार्यके देखते देखते क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्द्धनाराच, भल्ल और अञ्जलिक आदि बाणोंको चलाकर शत्रुओंकी रथसेनाको छिपा दिया। अनन्तर अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होकर वह सेना युद्धभूमिसे विमुख होकर भागने लगी ॥ २२–२३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ १५२९ ॥

: ३८ :

धृतराष्ट्र उवाच

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्टया च संजय ।
मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! सुभद्रापुत्र अभिमन्युने जो मेरे पुत्रकी सेनाको युद्धभूमिमें निवारण किया था, उसे सुनकर मेरे चित्तमें लज्जा और सन्तोष दोनों ही उत्पन्न हो रहे हैं ॥ १ ॥

विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः ।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह ॥ २ ॥

हे सूत ! असुरोंके सङ्ग जैसे देवताओंके सेनापति कुमार स्वामिकार्तिकने युद्धभूमिमें क्रीडा की थी, वैसे ही कुमार अभिमन्युने रणभूमिमें जिस प्रकारसे क्रीडा की थी, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें विस्तारपूर्वक बर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम् ।
एकस्य च बहूनां च यथासीत्तुमुलो रणः ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! उस एक सुकुमार बालकका तुम्हारी सेनाके बहुतेरे महारथी योद्धाओंके साथ जो महाघोर तुमुल संग्राम हुआ था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे समीप दुःखित मनसे विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं ॥ ३ ॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहान्नरिंदमान् ।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानप्यहर्षयत् ॥ ४ ॥

उत्साहसे युक्त रथपर चढे हुए अभिमन्यु, तुम्हारी सेनाके उत्साही शत्रुदमन सब रथारोहियोंको भी हर्षित करने लगे ॥ ४ ॥

द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम् ।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा, भोजराज कृतवर्मा, बृहद्बल, दुर्योधन, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, महाबलवान् शकुनि ॥ ५ ॥

नानानृपान्नृपसुतान्सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत्सर्वांश्चरन्बाणैः समभ्ययात् ॥ ६ ॥

और दूसरे अनेक राजाओं, राजपुत्रों तथा उनकी अनेक प्रकारकी सेनाओंपर अभिमन्यु अलातचक्रकी भांति चारों ओर घूमते हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगा ॥ ६ ॥

निघ्नन्नमित्रान्सौभद्रः परमास्त्रः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! प्रतापी अत्यन्त तेजस्वी अभिमन्यु उस समय रणभूमिमें अपने परम अस्त्रोंसे शत्रुओंका नाश करते हुए चारों दिशाओंमें दीखने लगे ॥ ७ ॥

तद्दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यामितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि पुनः पुनः ॥ ८ ॥

तुम्हारी सहस्राबधि सेना उस युद्धभूमिमें महातेजस्वी अभिमन्युके चरित्रको देखकर बार बार भयसे कांपने लगी ॥ ८ ॥

अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥
घट्टयन्निव मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥

हे भारत ! अनन्तर महाबुद्धिमान् प्रतापी द्रोणाचार्यके नेत्र अभिमन्युकी युद्धमें निपुणता देखकर हर्षित हो गये । उन्होंने रणविशारद अभिमन्युको युद्धमें स्थित देखकर तुम्हारे पुत्रके मर्मको भेद करके ही शीघ्रही कृपाचार्यसे यह वचन कहा ॥ ९-१० ॥

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानामग्रतो युवा।
नन्दयन्सुहृदः सर्वान्राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम्।
बन्धून्संबन्धिनश्चान्यान्मध्यस्थान्सुहृदस्तथा ॥ १२ ॥

यह तरुण अवस्थावाला अभिमन्यु अपने सम्पूर्ण इष्टमित्र और राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन तथा दूसरे बन्धुवर्ग, सम्बंधी, मध्यस्थ सुहृद् लोगोंको आनंदित करता हुआ पाण्डवोंके आगे गमन कर रहा है ॥ ११-१२ ॥

नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम्।
इच्छन्हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥

मैं बोध करता हूं, युद्धमें इसके समान दूसरा कोई भी धनुर्धारी योद्धा नहीं है। यह इच्छा करनेसे सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकता है, परन्तु न जाने किस कारणसे इच्छा नहीं करता; मैं इस विषयको कुछ कह नहीं सकता हूं ॥ १३ ॥

द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥

तुम्हारे पुत्र द्रोणाचार्यके अभिमन्युके प्रति यह प्रीतिसे युक्त वचनको सुनकर उनकी ओर देखकर हंसे और फिर अत्यन्तही क्रुद्ध हुए ॥ १४ ॥

अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्बाह्लिकं कृपम्।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तांश्चान्यान्महारथान् ॥ १५ ॥

अनन्तर कर्ण, बाह्लिक, कृपाचार्य, दुःशासन, मद्रराज शल्य और दूसरे वहांपर स्थित हुए सम्पूर्ण महारथियोंसे दुर्योधन बोले ॥ १५ ॥

सर्वमूर्धावसिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नाभिहन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंके गुरु ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य मोहित होकर रणभूमिमें अर्जुनपुत्र इस मूढ अभिमन्युका वध करनेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ १६ ॥

न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः।
किमङ्ग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥

मैं तुम लोगोंके समीप यह सत्य वचन कहता हूं, कि द्रोणाचार्यके क्रुद्ध होनेपर यमराज भी उनके समीपसे मुक्त नहीं हो सकते, फिर दूसरे कोई मनुष्यकी तो बात ही क्या है ॥ १७ ॥

अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
पुत्राः शिष्याश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥

परन्तु ये अर्जुनके पुत्रकी रक्षा करते हैं, कारण कि अर्जुन इनके शिष्य हैं । शिष्य, पुत्र और उनकी सन्तानें भी धर्मशील पुरुषोंको प्रिय हुआ करती हैं ॥ १८ ॥

संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसंभावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत माचिरम् ॥ १९ ॥

यह अभिमन्यु द्रोणाचार्यसे रक्षित होकर ही अपनेको बलवान समझ रहा है; इससे तुम सब कोई इस अभिमानी मूढ अभिमन्युका शीघ्रही संहार करो ॥ १९ ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्तं जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥

सम्पूर्ण वीरोंने राजा दुर्योधनकी ऐसी आज्ञा सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर सुभद्रापुत्र अभिमन्युके वधकी इच्छा करके द्रोणाचार्यके देखते ही उसपर आक्रमण किया ॥ २० ॥

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत्कुरुशार्दूलो दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥

कुरुशार्दूल दुःशासन दुर्योधनका वह वचन सुनकर उस समय उनसे यह वचन बोले ॥२१॥

अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पाञ्चालानां च पश्यताम् ।
ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ॥ २२ ॥

हे महाराज ! मैं आपसे यह वचन कहता हूं, कि "मैं पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंके देखते देखते ही इसका वध करूंगा ।" जैसे राहु सूर्यको ग्रास करता है, वैसे ही मैं आज युद्धभूमिमें अभिमन्युको ग्रास करूंगा ॥ २२ ॥

उत्क्रुश्य चाब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ।
श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर फिर दुःशासन ऊंचे स्वरसे गर्जना करके कुरुराज दुर्योधनसे बोले, अत्यन्त मानी श्रीकृष्ण और अर्जुन अभिमन्युको मेरे हाथसे मरा हुआ सुनकर अवश्य जीवलोकसे प्रेतलोकको चले जायंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥

तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २४ ॥

पाण्डुके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए ये चारों पांडव लोग इन दोनोंको मरा हुआ सुनकर बलहीन होकर अपने सुहृद् मित्रोंके सहित एक ही दिनमें प्राणत्याग करेंगे ॥ २४ ॥

तस्मादस्मिन्हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन ध्याहि मा राजन्नेष हन्मि रिपुं तव ॥ २५ ॥

इससे तुम्हारे इस एक ही शत्रुके मारे जानेपर तुम्हारे और सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश होगा । महाराज ! तुम मेरे कल्याणकी शुभेच्छा करो, मैं आपके शत्रुओंका वध करूंगा ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा नदन्राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात्क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुःशासन ऐसा वचन कहकर सिंहनाद करते और क्रुद्ध हो बाणोंको वर्षाते हुए अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ २६ ॥

तमभिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिन्दमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समर्पयत् ॥ २७ ॥

शत्रुनाशन अभिमन्युने तुम्हारे पुत्र दुःशासनको अत्यन्त क्रोध-पूर्वक अपनी ओर आता हुआ देखकर, छब्बीस चोखे बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २७ ॥

दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २८ ॥

क्रोधी दुःशासन मतवाले हाथीके समान उस रणभूमिमें अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करने लगे; अभिमन्यु भी दुःशासनके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २८ ॥

तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ २९ ॥

रथयुद्धकी शिक्षामें निपुण वे दोनों महारथी योद्धा रथकी गतिसे बांई और दाहिनी ओर मण्डलाकार गतिके सहित विचित्र रूपसे घूमते हुए युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां कृकरमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रुर्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ १५५९ ॥

अनन्तर सम्पूर्ण योद्धा लोग ढोल, मृदङ्ग, नगाडे, कृकर, बडे आनक, भेरी और झांझ आदि बाजोंके अत्यंत भयंकर शब्द करने लगे; वहां शंख और सिंहनादकी भी ध्वनि संमिश्रित हुई थी ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ १५५९ ॥

: ३९ :

सञ्जय उवाच

शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन्धीमान्दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– बाणोंसे क्षतविक्षत शरीरवाले बुद्धिमान् अभिमन्यु हंसते हुए निकटमें ही स्थित शत्रु दुःशासनसे बोले ॥ १ ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शत्रुमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥

प्रारब्धहीसे मैं रणभूमिमें संमुख आये हुए और स्वयंको शूर समझनेवाले तुम्हारे जैसे अभिमानी, निष्ठुर, धर्मत्यागी और परनिन्दामें तत्पर शत्रुको, प्रत्यक्ष देख रहा हूं ॥ २ ॥

यत्सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषता ॥ ३ ॥

तुमने ही राजा धृतराष्ट्रके सुनते हुए धर्मराज युधिष्ठिरको अपनी कडवी बातोंसे कुपित किया था । तुमने ही जुएके खेलमें जय प्राप्त कर उन्मत्त होकर भीमसेनके प्रति अनेक नीच बचन कहे थे ॥ ३ ॥

परवित्तापहारस्य क्रोधस्याप्रशमस्य च ।
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्याहितस्य च ॥ ४ ॥

पराये धनके हरने, विवाद करने, क्रोध, अशान्ति, लोभ, ज्ञानलोप, द्रोह, दुःसाहसपूर्ण बर्तन ॥ ४ ॥

पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ।
तत्त्वामिदमनुप्राप्तं तत्कोपाद्वै महात्मनाम् ॥ ५ ॥

और मेरे प्रचण्ड धनुर्धर पितरोंके राज्यका अपहरण– इन सब बुराईयोंके कारण महात्मा पाण्डवोंके क्रोधसे तुझे आज यह फल प्राप्त हुआ है ॥ ५ ॥

सद्यश्चोग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥

हे दुष्टबुद्धि ! तू आज अपने उस अधर्मका भयंकर फल प्राप्त कर। आज मैं सम्पूर्ण सेनाओंके देखते देखते तुझे शासित करूंगा ॥ ६ ॥

अद्याहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ।
अमर्षितायाः कृष्णायाः कांक्षितस्य च मे पितुः ॥ ७ ॥

आज मैं रणभूमिमें सदासे क्रोधयुक्त कृष्णा द्रौपदी और अर्जुनके क्रोधको शान्त करके उनकी अभिलाषा पूर्ण करके ऋणरहित हो जाऊंगा ॥ ७ ॥

अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ८ ॥

कौरव्य ! आज मैं इस युद्धभूमिमें भीमसेनके ऋणसे मुक्त हो जाऊंगा । यदि तुम युद्ध त्याग कर, रणभूमिसे भाग न जाओगे, तो मेरे समीपसे जीते हुए मुक्त न हो सकोगे ॥८॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ।
संदधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ॥ ९ ॥

ऐसे ही वचन कह कर महाबाहु शत्रुवीरनाशन अभिमन्युने दुःशासनके वधके निमित्त महा भयङ्कर कालाग्निके समान प्रकाशमान् और वायुके समान वेगशील बाण सन्धान करके दुःशासनकी ओर चलाया ॥ ९ ॥

तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनश्चैव समर्पयत् ॥ १० ॥

वह बाण शीघ्रही दुःशासनके वक्षस्थलपर पहुंचकर उसके गलेकी हंसलीको भेदकर पृथ्वीमें गिरा । अनन्तर अभिमन्युने फिर पचीस बाण दुःशासनको मारे ॥ १० ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत् । ॥ ११ ॥

महाराज ! उनसे दुःशासन अत्यन्त विद्ध और पीडित हो रथका दण्ड पकडके रथपर बैठ गये, उस समय उनको भारी मूर्च्छा आ गयी ॥ ११ ॥

सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतसम् ।
रणमाध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ॥ १२ ॥

तब उनके सारथिने उन्हें अभिमन्युके बाणोंसे पीडित और मूर्च्छित हुए देखकर शीघ्रताके सहित रणभूमिसे पृथक् किया ॥ १२ ॥

पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ।
पाञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथानदन् ॥ १३ ॥

अनन्तर सम्पूर्ण पाण्डव, द्रौपदीके पांचों पुत्र, राजा विराट, पाञ्चाल और केकय देशीय लोग अभिमन्युके इस कर्मको देखकर सिंहनाद करने लगे ॥ १३ ॥

वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ।
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः ॥ १४ ॥

पाण्डवोंके सम्पूर्ण योद्धा वहां हर्षित होकर अनेक प्रकारके सब युद्धके बाजे बजाने लगे ॥ १४ ॥

पश्यन्तः स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ।
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ॥ १५ ॥

घमंडमें भरे अपने कट्टर शत्रु दुःशासनको पराजित हुआ देखकर वे सुभद्रापुत्र अभिमन्युका पराक्रम स्मितहास्यपूर्वक देखने लगे ॥ १५ ॥

धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ।
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ॥ १६ ॥

ध्वजाओंके अग्रभागमें धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनी कुमारोंकी प्रतिमासे युक्त रथोंपर स्थित द्रौपदीके पांचों महारथी ॥ १६ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्यपाञ्चालसृञ्जयाः ॥ १७ ॥

सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, कैकय योद्धा, धृष्टकेतु, मत्स्य, पाञ्चाल, सृंजय ॥ १७ ॥

पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त सहिता द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ १८ ॥

तथा युधिष्ठिर आदि पाण्डव प्रसन्न और हर्षित होकर द्रोणाचार्यकी सेनाको भेद करनेकी इच्छासे उसपर टूट पडे ॥ १८ ॥

ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ।
जयमाकाङ्क्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ १९ ॥

अनन्तर जयकी इच्छावाले, युद्धमें पीछे न हटनेवाले तुम्हारी ओरके शूरवीर योद्धाओंका शत्रुओंके साथ महाघोर युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥

दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।
पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥ २० ॥

महाराज ! दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे इस प्रकार कहा, हे कर्ण ! देखो, वीर दुःशासन अभिमन्युके वशमें पड गया है ॥ २० ॥

प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभिधावन्ति पाण्डवाः ॥ २१ ॥
वह दुःशासन सूर्यके समान शत्रुओंकी सेनाको संतप्त करते युद्धमें उन्हें मार रहे हैं; और इधर ये सब पाण्डव लोग अभिमन्युकी रक्षा करनेके निमित्त उद्यत हो धावा कर रहे हैं ॥ २१ ॥

ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ।
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत्तव ॥ २२ ॥
अनन्तर तुम्हारे पुत्रके हितकी इच्छा करनेवाले कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्धर्ष वीर अभिमन्युके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

तस्य चानुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ।
अवज्ञापूर्वकं वीरः सौभद्रस्य रणाजिरे ॥ २३ ॥
वीर कर्णने सुभद्रापुत्र अभिमन्युके अनुयायियोंको भी अत्यन्त तीक्ष्ण और उत्तम बाणोंसे उनकी अवज्ञा करते हुए विद्ध किया ॥ २३ ॥

अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ।
अविध्यत्त्वरितो राजन्द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः ॥ २४ ॥
हे राजन् ! महामनस्वी अभिमन्युने द्रोणाचार्यके समीपमें गमन करनेकी इच्छासे तुरंत ही कर्णको तिहत्तर बाणोंसे विद्ध किया ॥ २४ ॥

तं तदा नाशकत्कश्चिद्द्रोणाद्वारयितुं रणे ।
आरुजन्तं रथश्रेष्ठान्वज्रहस्तमिवासुरान् ॥ २५ ॥
उस समयमें कोई भी योद्धा रथिश्रेष्ठोंको पीडित करनेवाले अभिमन्युको द्रोणाचार्यके सम्मुखमें जाते देख, उन्हें निवारण करनेमें समर्थ न हुआ, जैसे पहले वज्र धारण करनेवाले इन्द्रको असुरोंको नष्ट करते समय कोई भी रोक नहीं सका ॥ २५ ॥

ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुर्भृताम् ।
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २६ ॥
अनन्तर सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें अग्रणी, मानी और विजयकी इच्छा करनेवाले कर्ण अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए रणभूमिमें सैंकडों बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ।
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ॥ २७ ॥
अस्त्रोंकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, परशुरामके शिष्य प्रतापी कर्ण शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष अभिमन्युको युद्धमें अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगे ॥ २७ ॥

स तथा पीडयमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः ।
समरेऽमरसङ्काशः सौभद्रो न व्यषीदत ॥ २८ ॥

देवताओंके समान पराक्रमी सुभद्रापुत्र अभिमन्यु राधानन्दन कर्णकी अस्त्र-वर्षासे अत्यन्त पीडित होकर भी समरमें दुःखित नहीं हुए ॥ २८ ॥

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैः संनतपर्वभिः ।
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।
स ध्वजं कार्मुकं चास्य छित्त्वा भूमौ न्यपातयत् ॥ २९ ॥

बल्कि शिलापर घिसकर तेज किए हुए चोखे भल्ल बाणोंसे दूसरे शूरवीर योद्धाओंके धनुष काटकर अर्जुनपुत्र फिर कर्णको पीडित करने लगे। अनन्तर अभिमन्युने कर्णकी ध्वजा और धनुषको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २९ ॥

ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ।
सौभद्रमभ्ययात्तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ॥ ३० ॥

अनन्तर कर्णका कनिष्ठ भ्राता कर्णको विपद्ग्रस्त देखकर सुदृढ धनुष चढाकर शीघ्रही अभिमन्युका सामना करनेके लिये आ गया ॥ ३० ॥

तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः ।
वादित्राणि च संजघ्नुः सौभद्रं चापि तुष्टुवुः ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ १५९० ॥

अनन्तर सम्पूर्ण पाण्डव और उनके अनुयायी योद्धा लोग हर्षपूर्वक युद्धके बाजे बजाकर सिंहनाद करते हुए अभिमन्युकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें उनतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ १५९० ॥

: ४० :

संजय उवाच

सोऽभिगर्जन्धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! कर्णका कनिष्ठ भ्राता धनुष हाथमें लेकर अत्यन्त ही तर्जन गर्जन करते और प्रत्यञ्चाको बार बार खींचते हुए शीघ्रही उन दोनों महात्माओंके रथोंके बीचमें आकर उपस्थित हुए ॥ १ ॥

सोऽविध्यद्दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम् ।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥

और उन्होंने हंसते हंसते छत्र, ध्वजा, घोडे और सारथिके सहित पराक्रमी अभिमन्युको शीघ्रताके सहित दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ २ ॥

पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
दृष्ट्वार्दितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताभवन् ॥ ३ ॥

तुम्हारी ओरके योद्धा लोग पिता और पितामहके समान अलौकिक कर्म करनेवाले अभिमन्युको उस समय बाणोंसे पीडित देखकर आनन्दित हुए ॥ ३ ॥

तस्याभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा ।
शिरः प्रच्यावयामास स रथात्प्रापतद्भुवि ॥ ४ ॥

परन्तु अभिमन्युने हंसते हुए धनुष खींचकर एक ही बाणसे उसका शिर धडसे काटके अलग कर दिया; उसका शिर रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ४ ॥

कर्णिकारमिवोद्धूतं वातेन मथितं नगात् ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन्कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र ! मानो, वायुके झोकेसे हिलकर उखडा हुआ कर्णिकार वृक्ष पर्वतके शिखरसे नीचे गिर गया हो । अपने भाईको मारा गया देखकर कर्ण अत्यन्त ही दुःखित हुए ॥ ५ ॥

विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः ।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥

सुभद्रापुत्र अभिमन्यु कङ्कपत्रयुक्त बाणोंसे कर्णको युद्धसे विमुख करके, शीघ्रताके सहित दूसरे धनुर्द्धारियोंकी ओर दौडे ॥ ६ ॥

ततस्तद्वितलं जालं हस्त्यश्वरथपत्तिमत् ।
झषः क्रुद्ध इवाभिन्ददभिमन्युर्महायशाः ॥ ७ ॥

वह महायशस्वी पराक्रमी अभिमन्यु बडे मत्स्यके समान क्रुद्ध होकर हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे युक्त उस सम्पूर्ण सेनाके जालको तितर बितर करने लगे ॥ ७ ॥

कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना ।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभिद्यत ॥ ८ ॥

उधर कर्ण अभिमन्युके अनेक बाणोंसे विद्ध तथा पीडित होकर वेगगामी घोडोंकी सहायतासे युद्धभूमिसे भाग गये, तब उनकी सम्पूर्ण सेना एकाएक भागने लगी ॥ ८ ॥

शलभैरिव चाकाशे धाराभिरिव चावृते ।
अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ९ ॥

हे राजेन्द्र ! अभिमन्युके बाणोंसे संपूर्ण आकाश छा गया था, मानो टिड्डीदलोंसे वा वर्षाकी धाराओंसे वह व्याप्त हो गया है । उस समयमें कुछ भी सूझता नहीं था ॥ ९ ॥

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः ।
अन्यत्र सैन्धवाद्राजन्न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥

राजन् ! तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा अभिमन्युके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हुए । उन सब योद्धाओंके बीच केवल सिन्धुराज जयद्रथको छोडके और दूसरा कोई भी युद्धभूमिमें खडा न हो सका ॥ १० ॥

सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माप्य पुरुषर्षभः ।
शीघ्रमभ्यपतत्सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥

हे भरतर्षभ ! अनन्तर पुरुषसिंह अभिमन्युने अपना शंख बजाकर फिर शीघ्र ही भारती सेनापर आक्रमण किया ॥ ११ ॥

स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत ॥ १२ ॥

सूखे जंगलमें छोडी हुई अग्निके समान वेगसे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंको भस्म करते हुए अभिमन्यु कौरवसेनाके बीचमें घूमने लगे ॥ १२ ॥

रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः ।
स प्रविश्याकरोद्भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥

उस सेनाके बीचमें प्रवेश करके अभिमन्युने अपने चोखे बाणोंसे रथी, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले योद्धाओंका वध करके रणभूमिको सैकडों कबन्धोंसे युक्त कर दिया ॥ १३ ॥

सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः ।
स्वानेवाभिमुखान्घ्नन्तः प्राद्रवञ्जीवितार्थिनः ॥ १४ ॥

कितने ही शूरवीर योद्धा सुभद्रापुत्रके धनुषसे छूटे हुए उत्तम तीक्ष्ण बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर होके अपने जीवनकी रक्षाके निमित्त सामने आये हुए अपनी ओरके योद्धाओंकाही वध करते हुए अभिमन्युके समीपसे भागने लगे ॥ १४ ॥

ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठाः पृथवः शिताः ।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुंधराम् ॥ १५ ॥

उसके अनेक भयङ्कर कर्म करनेवाले, घोर, चोखे विपाठ महान् बाण रथ, हाथी और घोडोंको नष्ट करके शीघ्रही पृथ्वीमें समा जाने लगे ॥ १५ ॥

सायुधाः सांगुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥

कितने ही वीरोंकी अस्त्रशस्त्र, अंगुलित्राण, तलवार, बाजूबंद सहित सुवर्ण अलंकारोंसे भूषित भुजाएं कट कट कर पृथ्वीमें गिरी हुई दिखाई देती थीं ॥ १६ ॥

शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन्सहस्रशः ॥ १७ ॥

धनुष, बाण, तलवार, शरीरमाला, और कुण्डलोंसे विभूषित शिर हजारोंकी संख्यामें भग्न होकर पडे थे ॥ १७ ॥

अपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा रथैः ।
शक्तिचापायुधैश्चापि पतितैश्च महाध्वजैः ॥ १८ ॥

आवश्यक सामग्री, आसन, ईषादण्ड, बन्धुर, अक्ष, चक्र और रथ चूर चूर होकर गिरे थे। शक्ति, धनुष, आयुध और विशाल ध्वज सब ओर भग्न होकर पडे थे ॥ १८ ॥

निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशां पते ।
अगम्यकल्पा पृथिवी क्षणेनासीत्सुदारुणा ॥ १९ ॥

हे पृथ्वीपते ! अनेक क्षत्रिय, घोडे और हाथी भी मारे गये थे । क्षणभरके बीचमें वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर और अगम्य जैसी हो गयी थी ॥ १९ ॥

वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ।
स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् ॥ २० ॥

अस्त्रोंकी चोटसे पीडित परस्पर क्रन्दन करते हुए राजपुत्रोंका कायरोंके भयको बढानेवाला महाघोर शब्द उत्पन्न होने लगा । हे भारत ! उस शब्दसे सम्पूर्ण दिशाएं पूरिपूर्ण हो गईं ॥ २० ॥

सौभद्रश्चाद्रवत्सेनां निघ्नन्नश्वरथद्विपान् ।
व्यचरत्स दिशः सर्वाः प्रदिशश्चाहितान्रुजन् ॥ २१ ॥

अभिमन्युने घोडे, रथ और हाथियोंका वध करते हुए कौरव सेनापर धावा किया; और शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करते हुए वे उस सेनामें सब दिशा और विदिशाओंमें विचरने लगे ॥ २१ ॥

तं तदा नानुपश्याम सैन्येन रजसावृतम् ।
आददानं गजाश्वानां नृणां चायूंषि भारत ॥ २२ ॥

हे भारत ! उस समय अभिमन्यु सम्पूर्ण सेनाके पांवके धक्केसे धूलि उडनेसे उसमें छिप गये, और हम लोग उन्हें देख न सके; वे हाथी, घोडे और पैदल सैनिकोंकी आयुको छीनते थे ॥ २२ ॥

क्षणेन भूयोऽपश्याम सूर्यं मध्यंदिने यथा ।
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान् ॥ २३ ॥

महाराज ! क्षणभरके बीचमें हमने फिर देखा, कि वह दोपहरके सूर्यके समान प्रकाशित होकर शत्रुओंको पीडित करते थे ॥ २३ ॥

स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः ।
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ १६१४ ॥

हे राजन् ! इन्द्रपुत्र अर्जुनका वह पुत्र अभिमन्यु कुरुसेनाके बीचमें विचरता हुआ युद्धमें इंद्रके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ १६१४ ॥

: ४१ :

धृतराष्ट्र उवाच

बालमत्यन्तसुखिनमवार्यबलदर्पितम् ।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! वह बालक अत्यन्त सुखी, अपने बाहु बलसे मतवारा, युद्धविद्याको जाननेवाला, वीर और शुद्धवंशमें उत्पन्न हुआ था; वह प्राणोंकी आशा त्याग कर युद्ध कर रहा था ॥ १ ॥

गाहमानमनीकानि सदश्वैस्तं त्रिहायनैः ।
अपि यौधिष्ठिरात्सैन्यात्कश्चिदन्वपतद्रथी ॥ २ ॥

जिस समय वह त्रिवर्षीय उत्तम घोडोंसे युक्त रथपर चढके हमारी सेनाके बीच प्रविष्ट हुआ, उस समय युधिष्ठिरकी सेनामेंसे कौन रथी योद्धा उसके अनुगामी हो सका था ? ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः।
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चान्वपतन्रणे ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले— महाराज! युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, क्रुद्ध धृष्टकेतु और मत्स्यदेशीय योद्धा ये सब उस समय युद्धमें अभिमन्युका अनुगमन करते हुए तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे ॥ ३ ॥

अभ्यद्रवन्परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाभवन् ॥ ४ ॥

सब महारथी योद्धा लोग अपनी सेनाको व्यूहबद्ध करके प्रहार करनेके लिये उद्यत हो अभिमन्युकी रक्षाके निमित्त उसके अनुगामी होकर आक्रमण करने लगे। तुम्हारी ओरके योद्धा लोग उन शूरवीर तथा पराक्रमी योद्धाओंको आते देखकर रणभूमिसे विमुख हुए ॥४॥

ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलम्।
जामाता तव तेजस्वी विष्टम्भयिषुराद्रवत् ॥ ५ ॥

तुम्हारे तेजस्वी पराक्रमी दामाद तुम्हारे पुत्रकी बडी सेनाको युद्धभूमिसे विमुख होते देख, उसे स्थिरतापूर्वक खडी करनेकी इच्छासे वहाँ दौडते उपस्थित हुए ॥ ५ ॥

सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान्सहसैन्यानवारयत् ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र! सिन्धुराजके पुत्र राजा जयद्रथने अपने पुत्र अभिमन्युकी रक्षा करनेवाले पाण्डवोंकी सेनाके सहित युद्धभूमिमें आगे बढनेसे रोक दिया ॥ ६ ॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन्।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत्प्रवणादिव कुञ्जरान् ॥ ७ ॥

जैसे मतवाले हाथी उतारवाली भूमिमें आकर वहांसे शत्रुओंका निवारण करते हैं, वैसे ही प्रचण्ड धनुष्य ग्रहण करनेवाले महारथी वृद्धक्षत्रकुमार जयद्रथने दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित करके उन लोगोंको युद्धसे निवारण किया ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे संजयाहितम्।
यदेकः पाण्डवान्क्रुद्धान्पुत्रगृद्धीनवारयत् ॥ ८ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय! मैं मानता हूं, कि सिन्धुराज जयद्रथके ऊपर यह अत्यन्त कठिन भार अर्पित हुआ था, क्योंकि उन्होंने अकेले ही पुत्रकी रक्षा करनेवाले क्रुद्ध पाण्डवोंको रणभूमिमें निवारित किया ॥ ८ ॥

अत्यद्भुतमिदं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे ।
तदस्य ब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्र्यं महात्मनः ॥ ९ ॥

मैं सिन्धुराज जयद्रथमें ऐसे बल और शौर्यका होना, अत्यन्त आश्चर्यकी बात समझता हूं । तुम महात्मा जयद्रथके बल और श्रेष्ठ पराक्रमसे युक्त युद्धके कर्मोंका वृत्तान्त मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ ९ ॥

किं दत्तं हुतमिष्टं वा सुतप्तमथ वा तपः ।
सिन्धुराजेन येनैकः क्रुद्धान्पार्थानवारयत् ॥ १० ॥

सिन्धुराजने ऐसा कौनसा दान, होम, यज्ञ-व्रत वा श्रेष्ठ तपस्या की थी, कि जिससे अकेले ही युद्धभूमिमें क्रुद्ध पाण्डवोंको निवारण करनेमें समर्थ हुए ॥ १० ॥

संजय उवाच

द्रौपदीहरणे यत्तद्भीमसेनेन निर्जितः ।
मानात्स तप्तवान्राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥ ११ ॥

सञ्जय बोले– राजा जयद्रथ द्रौपदीके हरण समयमें जो भीमसेनके संमुखसे पराजित हुए थे, उस ही निमित्त अभिमानके कारण उन्होंने वर पानेकी इच्छासे अत्यन्त कठीन तपस्या की थी ॥ ११ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सः ।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसंततः ।
देवमाराधयच्छर्वं गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ १२ ॥

वह प्रिय विषयोंसे सब इन्द्रियोंको निवृत्त करके भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि क्लेशोंको सहकर शरीरसे कृशित हो गये, उनके शरीरकी नस-नाडियां दिखायी देने लगीं, वे अत्यन्त कठिन तपस्या करके सनातन ब्रह्म महादेवकी स्तुति करते हुए उनकी आराधना करने लगे ॥ १२ ॥

भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ।
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाह हरः सिन्धुपतेः सुतम् ।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १३ ॥

अनन्तर भक्त वत्सल महादेवने उनके ऊपर दया की । भक्तोंपर कृपा करनेवाले भोलानाथने सिन्धुराजपुत्र जयद्रथसे स्वप्नकालमें यह वचन कहा, ' हे जयद्रथ ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम कौनसा वर मांगनेकी इच्छा करते हो ? वह मुझसे स्पष्ट रूपसे कहो ' ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १४ ॥

महादेवका ऐसा वचन सुन, व्रत करनेवाले सिन्धुराज जयद्रथने विनयपूर्वक प्रणाम करके, हाथ जोडकर यह वचन कहा ॥ १४ ॥

पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान् ।
एको रणे धारयेयं समस्तानिति भारत ॥ १५ ॥

हे देवोंके देव ! मैं युद्धमें अकेला ही महाबली अत्यन्त पराक्रमी सम्पूर्ण पाण्डवोंको परास्त करके आगे बढनेसे रोक दूं ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत् ।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ १६ ॥

जब जयद्रथने इस प्रकारसे वर मांगा, तब देवोंके देव महादेव प्रसन्न होकर उनसे यह वचन बोले, कि हे तात ! मैं तुमको यह वर देता हूं, कि कुन्तीपुत्र अर्जुनको छोडकर ॥ १६ ॥

धारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान् ।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाबुध्यत पार्थिवः ॥ १७ ॥

युद्धमें तुम शेष चारों पाण्डवोंको आगे बढनेसे रोक सकोगे । तब राजा जयद्रथ देवेश्वर महादेवसे ' एवमस्तु ' कहकर निद्रासे सावधान हुए ॥ १७ ॥

स तेन वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च ।
एकः संधारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १८ ॥

राजा जयद्रथने उस ही वरके प्रभाव और दिव्य अस्त्रोंके बलसे अकेलेही सम्पूर्ण पाण्डवोंको सेनाके सहित युद्धसे निवारण किया था ॥ १८ ॥

तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान्भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ १९ ॥

उनके धनुपटङ्कार और तनुत्राणके शब्दको सुनकर शत्रुसेनाके सम्पूर्ण क्षत्रिय लोग भयभीत होगये; और तुम्हारी सेनाके शूरवीर योद्धा अत्यन्त ही आनन्दित हुए ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमर्पितम् ।
उत्क्रुश्याभ्यद्रवन्राजन्येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ १६३४ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे ओरके योद्धाओंने सिन्धुराज जयद्रथके ऊपर सम्पूर्ण भार अर्पित देखकर सिंहनाद करते हुए युधिष्ठिरकी सेनापर आक्रमण किया ॥ २० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ १६३४ ॥

: ४२ :

सञ्जय उवाच

यन्मा पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।
शृणु तत्सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! तुम मुझसे सिन्धुराजके पराक्रमका विषय पूछते हो, इससे सिन्धुराज जयद्रथने पाण्डवोंके सङ्ग जिस प्रकारसे युद्ध किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं; चित्त लगाकर सुनो ॥ १ ॥

तमूहुः सारथेर्वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥

सारथिके वशमें रहकर उत्तम चलनेवाले, वायुके समान वेगगामी सिन्धुदेशीय उत्तम घोडे रथ सहित जयद्रथको लेकर पाण्डवोंके संमुख बढे ॥ २ ॥

गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।
तस्याभ्यशोभयत्केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥

उनका गन्धर्वनगरके समान विधिपूर्वक सज्जित रथ और वराह चिन्हसे युक्त सुवर्णभूषित उत्तम ध्वजा अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ ३ ॥

श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाम्बरे ॥ ४ ॥

जैसे आकाशमें ताराओंके बीच चन्द्रमा शोभित होता है, वैसे ही वह श्वेत छत्र, पताका, चंवर और व्यजन आदि नाना भांतिके राजचिन्होंसे युक्त होकर शोभित होने लगे ॥ ४ ॥

मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तदयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम् ॥ ५ ॥

उनके रथका मुक्ता, वज्रमणि और सुवर्णभूषित लोहमय आवरण रणभूमिमें ताराओंके सहित आकाशके समान शोभायमान लगता है ॥ ५ ॥

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान्बहून् ।
तत्खण्डं पूरयामास यद्व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥

अभिमन्युने शत्रुसेनाके व्यूहका जो जो अङ्ग विदारण किया, जयद्रथने अपने प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए शत्रुओंके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा कर, उन सम्पूर्ण स्थानोंको अपनी सेनासे फिर पूर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥

उन्होंने तीन बाणोंसे सात्यकि, आठ बाणोंसे भीमसेन, साठ बाणोंसे धृष्टद्युम्न, दस बाणोंसे विराट ॥ ७ ॥

द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैर्दशभिश्च शिखण्डिनम् ।
केकयान्पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

पांच तीक्ष्ण बाणोंसे द्रुपद, सात बाणोंसे शिखण्डी, पचीस बाणोंसे केकयदेशीय योद्धाओंको, तीन तीन बाणोंसे द्रौपदीके पुत्रोंको ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरं च सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

और सत्तर बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको विद्ध करके, फिर अनेक बाणोंकी वर्षाकर बाकी बचे हुए सम्पूर्ण योद्धाओंको पीछे हटाया, उस समय जयद्रथका पराक्रम अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा ॥ ९ ॥

अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन्राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥

अनन्तर महाप्रतापी राजा धर्मपुत्र युधिष्ठिर हंसते हंसते एक तीक्ष्ण और पानीदार भल्ल ग्रहण करके जयद्रथसे बोले, ' यही तुम्हारा धनुष काटता हूं, ' ऐसा कहकर उस भल्लसे जयद्रथका धनुष काट दिया ॥ १० ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥

जयद्रथने निमेष भरमें दूसरा धनुष ग्रहण करके दस बाणोंसे राजा युधिष्ठिर और तीन तीन बाणोंसे वहांपर स्थित दूसरे सम्पूर्ण योद्धाओंको विद्ध किया ॥ ११ ॥

तस्य तल्लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिः पुनः ।
धनुर्ध्वजं च छत्त्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥

भीमसेनने जयद्रथके उस हस्तलाघवको देख और जानकर फिर तीन भल्ल बाणोंसे उनका धनुष, ध्वजा और छत्र शीघ्रही काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १२ ॥

सोऽन्यदादाय बलवान्सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्यापोथयत्केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३ ॥

मारिष ! महा बलवान् सिन्धुराज जयद्रथने फिर दूसरा धनुष ग्रहण करके उसपर शीघ्र ही रोदा चढा दिया; और भीमसेनके रथकी ध्वजा, चारों घोडे और धनुषको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया ॥ १३ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥

जैसे सिंह पर्वतके शृङ्गपर चढता है, वैसे ही भीमसेन धनुषके कटने और घोडोंके रहित होनेपर अपने उत्तम रथसे कूद कर सात्यकिके रथपर जा चढे ॥ १४ ॥

ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति चुक्रुशुः ।
सिन्धुराजस्य तत्कर्म प्रेक्ष्याश्रद्धेयमुत्तमम् ॥ १५ ॥

अनन्तर तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग सिन्धुराज जयद्रथके इस उत्तम और अविश्वसनीय कर्मको देखकर आनन्दित होके धन्य धन्य कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १५ ॥

संक्रुद्धान्पाण्डवानेको यद्दधारास्त्रतेजसा ।
तत्तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥

उन्होंने जो अकेले ही अपने अस्त्रोंके प्रभावसे क्रुद्ध हुए सम्पूर्ण पाण्डवोंको युद्धसे निवारण किया, उससे युद्ध देखनेवाले सब प्राणी उनके पराक्रम और युद्धके कर्मोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥

सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायुधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥

सुभद्रापुत्र अभिमन्युने पहिले सवारोंमें मुख्य गजपति और हाथियोंको मारकर व्यूहके बीच प्रवेश करनेका मार्ग पाण्डवोंको दिखा दिया था, परन्तु सिन्धुराज जयद्रथने उसे रुद्ध कर दिया ॥ १७ ॥

यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपाञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रत्यैकश्येन सैन्धवम् ॥ १८ ॥

वे मत्स्य, पाञ्चाल, केकय और पाण्डव वीर यत्नवान होकर अकेले सिन्धुराज जयद्रथपर ही आक्रमण करते थे ॥ १८ ॥

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः ।
तं तं देववरप्राप्त्या सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ १६५२ ॥

तुम्हारे जिन जिन शत्रु वीरोंने यत्नवान होकर द्रोणाचार्यका बनाया हुआ तुम्हारी सेनाका व्यूह तोडनेकी इच्छा की, जयद्रथने वरके प्रभावसे उन सम्पूर्ण वीरोंको युद्धभूमिमें निवारण किया ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ १६५२ ॥

: ४३ :

संजय उवाच

सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— जयकी इच्छा करनेवाले पाण्डवलोगोंको सिन्धुराज जयद्रथने जब रोक दिया, तब पाण्डवोंकी सेनाके सङ्ग तुम्हारी सेनाका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ १ ॥

प्रविश्य त्वार्जुनिः सेनां सत्यसंधो दुरासदाम् ।
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥

जैसे मकर समुद्रके जलको मथते हुए भ्रमण करता है, वैसे ही महाबली तेजस्वी सत्य पराक्रमी अभिमन्यु तुम्हारी दुर्धर्ष सेनाके बीच प्रवेश करके अपने अस्त्रोंके बलसे उसे तितर बितर करने लगे ॥ २ ॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिंदमम् ।
यथाप्रधानाः सौभद्रमभ्ययुः कुरुसत्तमाः ॥ ३ ॥

कुरुसेनाके मुख्य मुख्य योद्धालोग शत्रुदमन अभिमन्युको सम्पूर्ण सेनाको इस प्रकार बाणोंकी वर्षासे क्षोभित करते देखकर, उनपर आक्रमण करने लगे ॥ ३ ॥

तेषां तस्य च संमर्दो दारुणः समपद्यत ।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥

उस समय अमित तेजस्वी कौरव योद्धा असंख्य बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, उनके सङ्ग अभिमन्युका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥

रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैरथार्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥

अर्जुनपुत्र अभिमन्युने उन सम्पूर्ण शत्रुओंके रथसमूहसे घिर जानेपर भी वृषसेनके सारथिको घायल करके उसके धनुषको भी काट डाला ॥ ५ ॥

तस्य विव्याध बलवाञ्छरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥

और उनके रथके चारों घोडोंको भी बलवान् अभिमन्युने अपने सीधे जानेवाले बाणोंसे विद्ध किया । वृषसेनके घोडे बाणोंसे विद्ध होकर वायुके समान वेगसे भागने लगे, इस प्रकार वह रणभूमिसे अश्वोंद्वारा दूर हटा गया ॥ ६ ॥

तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारयद्रथम् ।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चुक्रुशुः ॥ ७ ॥

अभिमन्युके सारथिने उस ही समय अवसर पाकर अभिमन्युके रथको शीघ्र ही वहांसे दूसरी ओर चलाया । उसके सारथिकी ऐसी निपुणता देखकर अभिमन्युके अनुयायी सम्पूर्ण रथी हर्षमें भरकर धन्य धन्य कहके उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद्द्रुतम् ॥ ८ ॥

सिंहके समान अत्यंत क्रुद्ध होकर बाणोंसे शत्रुओंका नाश करनेवाले अभिमन्युको अपने निकट आते देखकर शीघ्रही वसातीय उनका सामना करनेके लिये दौडा ॥ ८ ॥

सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
अब्रवीच न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥

और उन्होंने अभिमन्युपर रुक्मपङ्ख युक्त साठ बाणोंकी वर्षा करके, यह वचन बोले, ' मेरे जीवित रहते तुम हमारे सम्मुखसे जीतेजी मुक्त न हो सकोगे । ' ॥ ९ ॥

तमयस्मयवर्माणमिषुणा आशुपातिना ।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥

अभिमन्युने लोहमय कवच धारण करनेवाले वसातियके हृदयमें एक शीघ्रगामी तीक्ष्ण बाणसे प्रहार किया, उसके लगते ही वह प्राण-रहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १० ॥

वसातीयं निहतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! वसातीयको मारा गया देखकर श्रेष्ठ क्षत्रियवीरोंने क्रुद्ध होकर तुम्हारे पौत्र अभिमन्युका वध करनेकी इच्छासे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥

विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२ ॥

वे अपने अनेक प्रकारके धनुषोंकी टंकार करने लगे, शत्रुओंके सङ्गमें अभिमन्युका वह महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ १२ ॥

तेषां शरान्सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३ ॥

अर्जुनपुत्र अभिमन्यु क्रुद्ध होकर उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके धनुष, बाण, शरीर तथा माला और कुण्डलोंसे युक्त शिरोंको अपने अस्त्रोंसे काट काट कर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ १३ ॥

सखड्गाः साङ्गुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥

तलवार, अंगुलित्राण, पट्टिश और फरसों सहित सुवर्णके अलंकारोंसे भूषित वीरोंकी भुजाएं कट कट कर पृथ्वीमें गिरती हुई दिखाई देने लगीं ॥ १४ ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥

काटकर गिरायी हुई माला, आभूषण, वस्त्र, रथकी बडी बडी ध्वजा, कवच, ढाल, गलेके हार, मुकुट, छत्र, चंवर ॥ १५ ॥

अपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥

आवश्यक सामग्री, रथकी बैठक, ईषा, दण्ड, बन्धुर, चूर हुई धुरी, टूटे हुए चक्र, जूए ॥ १६ ॥

अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः ।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाभवन्मही ॥ १७ ॥

अनुकर्ष, पताका, सारथि, घोडे, भग्न रथ तथा मरे हुए हाथियोंसे वह रणभूमि परिपूरित हो गई थी ॥ १७ ॥

निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥

अनेक देशोंसे आये हुए, जयकी इच्छा करनेवाले वीर क्षत्रिय राजाओंके मृत शरीरोंसे वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर बोध होने लगी ॥ १८ ॥

दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

सब दिशा–विदिशाओंमें भ्रमण करनेवाले क्रुद्ध अभिमन्युका रूप उस समय रणभूमिके बीच अदृश्य हो गया था ॥ १९ ॥

काञ्चनं यद्यदस्यासीद्वर्म चाभरणानि च ।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥

केवल उसके धनुष, बाण, कवच और दूसरे सब आभूषण जो सुवर्णयुक्त थे, उन्हींकी चमक दमक देख पडती थी ॥ २० ॥

तं तदा नाशकत्कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम् ।
आददानं शरैर्योधान्मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ १६७४ ॥

वह जिस समय धनुष चढा कर अपने बाणोंकी वर्षासे योद्धाओंके प्राण ले रहे थे और व्यूहके मध्यभागमें सूर्यके समान खडे थे, उस समय कोई पुरुष उनकी ओर देखनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ १६७४ ॥

: ४४ :

सञ्जय उवाच

आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः ।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान्काल इवागते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– जिस प्रकार मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यमराज सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, वैसे ही अर्जुनपुत्र अभिमन्यु भी शूरवीरोंके प्राणोंका अपहरण करने लगे ॥ १ ॥

स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली ।
अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन्बह्वशोभत ॥ २ ॥

वह इन्द्रके समान पराक्रमी इन्द्रपुत्र अर्जुनके पुत्र बलवान् अभिमन्यु शत्रुओंकी सेनाको तितर बितर करके युद्ध करते हुए इन्द्रके समान रणभूमिमें अत्यंत शोभित होने लगे ॥ २ ॥

प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः ।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणम् ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे महाबलवान् सिंह बडे हरिणपर आक्रमण करता है, वैसेही श्रेष्ठ क्षत्रिय योद्धाओंके लिये यमराजके समान अभिमन्युने शत्रुसेनाके बीच प्रविष्ट होके सत्यश्रवाको आक्रमित किया ॥ ३ ॥

सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः ।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

सत्यश्रवाके मारे जानेपर उन महारथी योद्धा लोगोंने नाना भांतिके विपुल अनेक अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके शीघ्रतापूर्वक अभिमन्युपर धावा किया ॥ ४ ॥

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुंगवाः ।
स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥

पराक्रमी क्षत्रिय योद्धा 'पहिले मैं, पहिले मैं' ऐसा कहके परस्पर स्पर्धा करते हुए अर्जुन-पुत्र अभिमन्युका वध करनेकी इच्छासे उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ ५ ॥

क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्रास तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ॥ ६ ॥

जैसे समुद्रके बीचमें तिमिनामक महा मत्स्य छोटी छोटी मछलियोंको सम्मुख पाकर निगल लेता है, वैसे ही अर्जुनपुत्र अभिमन्युने उन सम्पूर्ण महारथी वीरोंकी सेनाके पुरुषोंको अपनी ओर बढे आते देखकर उनका नाश कर दिया ॥ ६ ॥

ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥

जैसे नदियां समुद्रमें पहुंचकर फिर वहांसे लौटती नहीं, वैसे ही युद्धमें पीछे न हटनेवाले जो कोई शूरवीर योद्धा लोग अभिमन्युके समीप उपस्थित हुए, वे उसके सम्मुखसे बचकर फिर पीछे नहीं लौट सके ॥ ७ ॥

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ॥ ८ ॥

जिसका मार्ग समुद्रमें भूल गया हो, जो वायुके वेगसे भयभीत हो रही हो और जिसे किसी बडे ग्राहने पकड लिया हो, ऐसी नौका जैसे डगमगाने लगती है, वैसे ही वह सेना अभिमन्युके भयसे कांप रही थी ॥ ८ ॥

अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन्सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अनन्तर मद्रराजके एक बलवान् रुक्मरथ नामक पुत्रने वहांपर उपस्थित होके उस भयभीत हुई सेनाको धीरज देते हुए निर्भय होकर कहा ॥ ९ ॥

अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥

हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग क्यों भय करते हो ? मेरे रहते यह क्या कर सकेगा ? मैं ही इसे जीते जी पकड लूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥

ऐसा वचन कहकर उस पराक्रमी रुक्मरथने अच्छे प्रकारसे सजित हुए प्रकाशमान रथपर चढके अभिमन्युपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥

सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥

उसने अभिमन्युके वक्षस्थलमें तीन, दाहिनी भुजामें तीन और बायीं भुजामें तीन तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करके सिंहनाद किया ॥ १२ ॥

स तस्येष्वसनं छित्त्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥

फिर अर्जुनपुत्र अभिमन्युने उसके धनुष और दोनों बायीं–दायीं भुजाओंको काटकर, उसके सुन्दर नेत्र और भ्रुकुटियोंसे युक्त शिरको भी शीघ्र ही काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥

हे राजन् ! अभिमन्युको जीतेजी पकडनेकी इच्छा करनेवाले शल्यपुत्र महामानी रुक्मरथको यशस्वी अभिमन्युसे मारा गया देखकर ॥ १४ ॥

संग्रामदुर्मदा राजन्राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥

युद्धविद्याको जाननेवाले, शस्त्र चलानेमें निपुण, सुवर्णभूषित ध्वजाओंसे युक्त शल्यपुत्र रुक्मरथके राजकुमार मित्र ॥ १५ ॥

तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १६ ॥

महारथियोंने ताल प्रमाण अपने दृढ धनुषोंको चढाकर अर्जुनपुत्रको चारों ओरसे घिरकर बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया ॥ १६ ॥

शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥

युद्धभूमिमें अकेले पराक्रमी अपराजित अभिमन्युको युद्धविद्या और बल जाननेवाले, अत्यन्त क्रोधी, तरुण अवस्थावाले शूर राजपुत्रों द्वारा ॥ १७ ॥

छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतमेनममन्यत ॥ १८ ॥

बाणोंके जालसे छिपे देखकर राजा दुर्योधन अत्यन्त ही हर्षित हुए; और मनमें समझा, कि अबकी बार अभिमन्यु अवश्य ही यमपुरीमें गमन करेगा ॥ १८ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥

उन राजपुत्रोंने निमेष भरमें सुवर्ण पंखवाले नाना प्रकारके चिह्नोंसे सुशोभित तीन तीन बाणोंको चलाकर अर्जुनपुत्र अभिमन्युको अदृश्य कर दिया ॥ १९ ॥

ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥

हे राजन् ! सारथि, घोडे और ध्वजाके सहित अभिमन्युके रथको मैंने उन राजपुत्रोंके बाणोंसे परिपूर्ण हुआ देखा, जैसे साहीका शरीर कांटोंसे भरा रहता है ॥ २० ॥

स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्त्रैर्गज इवार्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद्रथमायां च योजयत् ॥ २१ ॥

उन राजपुत्रोंके बाणोंसे अत्यन्त बिद्ध हुए वे अंकुशके प्रहारसे पीडित हुए मतवारे हाथीके समान अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गान्धर्व अस्त्रका प्रयोग किया और रथकी मायाका प्रयोग किया ॥ २१ ॥

अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥

अर्जुनने तप करके तुंबुरु आदि गंधर्वोंसे जो गांधर्व अस्त्र प्राप्त किया था, उसहीसे अभिमन्युने अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको मोहित किया ॥ २२ ॥

एकः स शतधा राजन्दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत्संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥

हे राजेन्द्र ! अलात चक्रकी भांति रणभूमिमें भ्रमण करते और हस्तलाघवके सहित शीघ्रतासे अस्त्रोंको चलाते हुए, एक ही अभिमन्यु उस समयमें मानो सैकडों तथा सहस्रों अभिमन्यु रूपसे दीख पडने लगे ॥ २३ ॥

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥

हे भारत ! शत्रुनाशन अभिमन्युने रथकी गति और अस्त्र-मायाके बलसे क्षत्रिय राजाओंको मोहित करके उनके शरीरोंके सौ सौ टुकडे कर दिया ॥ २४ ॥

प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषिता निशितैः शरैः ।
राजन्प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥

राजन् ! युद्धमें उसके तीक्ष्ण बाणोंसे सम्पूर्ण शूरवीर पुरुषोंके प्राण शरीरसे निकलकर परलोक गमन करने लगे, और उनके मृत शरीर पृथ्वीमें गिरते दिखाई देने लगे ॥ २५ ॥

धनूंष्यश्वान्नियन्तॄंश्च ध्वजान्बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्भल्लैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ २६ ॥

अर्जुनपुत्रने उत्तम पानीसे बुझे हुए तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे उन लोगोंके धनुष, घोडे, सारथि, ध्वज, अंगदयुक्त बाहु और सुन्दर शिरोंको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २६ ॥

चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षफलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत्सौभद्रेणापतद्धतम् ॥ २७ ॥

फल लगे हुए पांच वर्षवाले आमका बाग टूटते समय जिस प्रकार दीख पडता है, वैसे सैकडों राजपुत्रोंको अभिमन्युने तीक्ष्ण बाणोंसे मार गिराया ॥ २७ ॥

क्रुद्धाशीविषसंकाशान्सुकुमारान्सुखोचितान् ।
एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥

क्रुद्ध विषधर सर्पोंके समान भयंकर, सुकुमार और सुख सेवित राजपुत्रोंको अकेले अभिमन्युके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर राजा दुर्योधन भयभीत हुए ॥ २८ ॥

रथिनः कुञ्जरानश्वान्पदातींश्चावमर्दितान् ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात्तममर्षितः ॥ २९ ॥

रथी, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले शूरवीरोंका मर्दन होते हुए देख दुर्योधन क्रुद्ध होके शीघ्रही अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ २९ ॥

तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशतार्दितः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ १७०४ ॥

क्षण भरतक उन दोनोंमें अधूरासा युद्ध हुआ; परन्तु अन्तमें तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अभिमन्युके सैंकडो बाणोंसे पीडित होकर युद्धभूमिसे विमुख हुए ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ १७०४ ॥

: ४५ :

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! तुम अनेक पुरुषोंके सङ्ग अकेले महात्मा अभिमन्युका अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध हुआ और उसमें उसकी विजय हुई, ऐसा वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करते हो ॥ १ ॥

अश्रद्धेयमिवाश्चर्यं सौभद्रस्याथ विक्रमम् ।
किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥

यह सुभद्रापुत्रका पराक्रम आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय जैसा है; परन्तु इस वृत्तान्तको सुनकर मुझे कुछ भी अत्यन्त अद्भुत नहीं लगता, क्योंकि उसका पक्ष धर्मसे ही युक्त है ॥ २ ॥

दुर्योधनेऽथ विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥

जो हो, सौ राजपुत्रोंके मारे जाने और दुर्योधनके युद्धमें विमुख होनेपर, मेरी ओरके योद्धाओंने अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त कौनसे उपायका अवलम्बन किया ? ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षिणः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग शुष्कमुख, मनमलिन, चञ्चल नेत्र, पसीनेसे युक्त और लोमहर्षित हो गये थे । भाग जानेमें उत्साहित और शत्रुओंको जीतनेमें उत्साहरहित हो गये थे ॥ ४ ॥

हतान्भ्रातॄन्पितॄन्पुत्रान्सुहृत्संबन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य समियुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५ ॥

वे युद्धमें मारे गये भाई, बन्धु, पिता, पुत्र, सुहृत् तथा दूसरे सम्बन्धि–बान्धवोंको रणभूमिमें छोडकर, अपने अपने घोडे और हाथियोंको शीघ्रतापूर्वक हांकते हुए युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ ५ ॥

तान्प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः ।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माथ सौबलः ॥ ६ ॥

उन सम्पूर्ण शूरवीरोंको इस प्रकारसे भागते हुए देखकर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि ॥ ६ ॥

अभिद्रुताः सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम् ।
तेऽपि पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥

ये सब अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपराजित अभिमन्युकी ओर दौडे । हे राजन् ! परंतु तुम्हारे पौत्र अभिमन्युने उन सबको प्रायः युद्धसे बिमुख कर दिया ॥ ७ ॥

एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः ।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥

अनन्तर सुखमें पले हुए धनुर्विद्याके जाननेवाले, महातेजस्वी सुकुमार लक्ष्मण बालस्वभाव और अभिमानके कारण निर्भय चित्तसे अकेलेही अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ ८ ॥

तमन्वगेवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत ।
अनु दुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥

पुत्रप्रेमी उनके पिता राजा दुर्योधन पुत्रको अभिमन्युकी ओर जाते देख फिर उसके पीछे पीछे गमन करने लगे । तब दूसरे महारथी योद्धा लोग भी दुर्योधनके पीछे लौट आये ॥ ९ ॥

तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः ।
स च तान्प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाम्बुदान् ॥ १० ॥

जैसे बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करके उसे सींचते हैं, वैसे ही वे महारथी योद्धा अर्जुनपुत्र अभिमन्युके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाने लगे । जैसे चारों ओरसे बहनेवाली वायु बादलोंको तितर बितर करती है, वैसे ही अकेले अभिमन्युने उन सबको पीडित किया ॥ १० ॥

पौत्रं तु तव दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥

जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीपर आक्रमण करता है, वैसे ही अभिमन्युने दुर्धर्ष, प्रियदर्शी, अपने पिताके समीपमें स्थित, धनुष उठाये, अत्यंत सुखमें पले हुए, सुकुमार, कुबेरपुत्रके समान सुन्दर तुम्हारे शूर पौत्र लक्ष्मणपर आक्रमण किया ॥ ११-१२ ॥

लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पितः ॥ १३ ॥

लक्ष्मणने भी उसके सम्मुख होकर शत्रुवीरनाशन अभिमन्युकी दोनों भुजाएं और वक्षस्थलमें अत्यंत तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया ॥ १३ ॥

संक्रुद्धो वै महाबाहुर्दण्डाहत इवोरगः ।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर तुम्हारे पौत्र अर्जुनपुत्र अभिमन्यु मानो दण्डसे पीडित हुए सर्पके समान अत्यंत क्रुद्ध होकर तुम्हारे दूसरे पौत्र दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १४ ॥

सुदृष्टः क्रियतां लोको अमुं लोकं गमिष्यसि ।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥

तुम इस समय इस सम्पूर्ण लोकको भली भांति देख लो; क्योंकि अब तुम शीघ्र ही परलोकमें गमन करोगे । मैं तुम्हारे बन्धुबान्धवोंके देखते ही तुम्हें यमपुरीको भेजता हूं ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसंनिभम् ॥ १६ ॥

शत्रुवीरनाशन महाबाहु वीर अभिमन्युने ऐसा वचन कहकर केंचुलसे निकले हुए विषधर सर्पके समान एक महाभयङ्कर भल्ल बाणको तरकससे निकाला ॥ १६ ॥

स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम् ।
लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हा हेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १७ ॥

अभिमन्युकी भुजासे छूटकर उस भल्लने लक्ष्मणके देखनेमें मनोहर, सुन्दर नासिका, उत्तम भौंह, केश और प्रकाशमान कुण्डलोंके सहित उनका शिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । राजपुत्र लक्ष्मणको मारा हुआ देखकर सम्पूर्ण लोगोंने जोरसे हाहाकार किया ! ॥ १७ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ।
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ॥ १८ ॥

अनन्तर क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा दुर्योधन अपने प्यारे पुत्रको पृथ्वीमें गिरते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और सम्पूर्ण सेनाके महारथी योद्धाओंसे ऊंचे स्वरसे बोले, तुम लोग इस अभिमन्युका शीघ्र ही वध करो ॥ १८ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ १९ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, बृहद्बल और हृदिकनन्दन कृतवर्मा— इन छः महारथियोंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥

स तान्विद्ध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः ।
वेगेनाभ्यपतत्क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम् ॥ २० ॥

अर्जुनपुत्र अभिमन्युने तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण महारथियोंको विद्ध तथा युद्धसे बिमुख करके, क्रोधपूर्वक बडे वेगसे सिन्धुराज जयद्रथकी महासेनापर आक्रमण किया ॥ २० ॥

आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ।
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।
तत्प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद्विशां पते ॥ २१ ॥

तब कवच धारण करनेवाले कलिङ्ग और निषधदेशीय योद्धा तथा पराक्रमी क्राथराज पुत्रने हाथियोंकी सेना लेकर अभिमन्युके गमन करनेका मार्ग रुद्ध किया । हे राजेन्द्र ! उस समय उन लोगोंका अत्यन्त निकटसे महादारुण भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ २१ ॥

ततस्तत्कुञ्जरानीकं व्यधमद्धृष्टमार्जुनिः ।
यथा विवान्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे ॥ २२ ॥

जैसे सदा गति प्रबल वायु आकाशमें सैकडों बादलोंको छिन्नभिन्न कर देती है, वैसे ही अभिमन्यु उस धृष्ट हाथियोंकी सेनाको नष्ट करने लगे ॥ २२ ॥

ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
अथेतरे संनिवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ।
परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥ २३ ॥

अनन्तर क्राथने अर्जुनपुत्र अभिमन्युपर अपने बाणोंकी वर्षा आरंभ कर दी; उसे देख द्रोणाचार्य, आदि सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोगोंने फिर लौटकर अभिमन्युके ऊपर अपने परम अस्त्रोंको चलाते हुए आक्रमण किया ॥ २३ ॥

तान्निवार्यार्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत् ।
शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ॥ २४ ॥

अभिमन्युने अपने बाणोंसे उन सम्पूर्ण महारथियोंका निवारण करके क्राथपुत्रके बध करनेकी इच्छासे उनके ऊपर शीघ्रतासे अनेक बाणोंकी वर्षा कर पीडित किया ॥ २४ ॥

सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ।
छत्त्रं ध्वजं नियन्तारमश्वांश्चास्य न्यपातयत् ॥ २५ ॥

अनन्तर उनके धनुष बाण और केयूरके सहित दोनों भुजा, किरीट शोभित शिर, छत्र, ध्वजा, सारथि और रथके घोडोंको एक ही समयमें काटके गिरा दिया ॥ २५ ॥

कुलशीलश्रुतबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन्हते वीराः प्रायशो विमुखाभवन् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ १७३० ॥

कुल, शील, ज्ञानबल, कीर्त्ति और अस्त्रोंके बलसे युक्त उस पराक्रमी क्राथपुत्रके मारे जानेपर वहांपर स्थित सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा लोग युद्धभूमिसे विमुख होके अभिमन्युके सम्मुखसे भागने लगे ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पैतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ १७३० ॥

: ४६ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपलायिनम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! युद्धमें अपराजित, युद्धभूमिको कभी न त्यागनेवाले तरुण अवस्थावाले सुभद्रा कुमार अभिमन्युको कुलके अनुसार युद्धमें कठिन कर्म करते तथा सेनाके बीच प्रवेश करते ॥ १ ॥

आजानेयैः सुबलिभिर्युक्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥

और त्रिवर्षीय सुन्दर बलवान् उत्तम जातिवाले, घोडोंसे मानो आकाशमें तैरते हुए आक्रमण करते देखकर, मेरी सेनाके किन किन शूरवीरोंने उसे युद्धसे निवारण किया था ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

अभिमन्युः प्रविश्यैव तावकान्निशितैः शरैः ।
अकरोद्विमुखान्सर्वान्पार्थिवान्पाण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– अर्जुनपुत्र अभिमन्युने व्यूहके बीच प्रवेश करके अपने चोखे बाणोंसे तुम्हारे सम्पूर्ण राजाओंको युद्धसे विमुख किया ॥ ३ ॥

तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च सबृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिकनन्दन कृतवर्मा इन छः महारथियोंने अभिमन्युके सम्मुख उपस्थित होकर उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सेनाने सिन्धुराज जयद्रथके ऊपर अत्यन्त कठिन भार अर्पित होते देखकर राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥

सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ ६ ॥

दूसरे महारथी शूरवीर योद्धाओंने तालके प्रमाण धनुषोंको खींचते हुए वीर अभिमन्युके ऊपर अपने बाणरूपी जलकी वर्षा की ॥ ६ ॥

तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद्रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥

परंतु, शत्रुवीरनाशन अभिमन्युने उस युद्धभूमिमें उन सम्पूर्ण युद्धविद्याके जाननेवाले महाधनुर्धरोंको अपने बाणोंसे स्तम्भित कर दिया ॥ ७ ॥

द्रोणं पञ्चाशता विद्ध्वा विंशत्या च बृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥

और द्रोणाचार्यको पचास, बृहद्बलको बीस, कृतवर्माको अस्सी, कृपाचार्यको साठ तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ८ ॥

रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥

और अश्वत्थामाको कानपर्यन्त धनुष खींचकर छोडे हुए स्वर्णमय पंखयुक्त, अत्यंत वेगवान् दस बाणोंसे अर्जुनपुत्र अभिमन्युने विद्ध किया ॥ ९ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ १० ॥

फिर अर्जुनपुत्रने शत्रुओंके मध्यमें स्थित हुए कर्णका कान उत्तम पानीदार तीक्ष्ण बाणसे विद्ध किया ॥ १० ॥

पातयित्वा कृपस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ११ ॥

अनन्तर अभिमन्युने कृपाचार्यके रथके घोडे, और उनके दो पृष्ठ-रक्षकोंको मारकर दस बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ ११ ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्बली ॥ १२ ॥

अनन्तर बलवान् अभिमन्युने तुम्हारे पुत्रोंके देखते देखते ही कुरुवंशकी कीर्त्तिको बढानेवाले वीर वृन्दारकका वध किया ॥ १२ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समर्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥

अश्वत्थामाने अभिमन्युको कुरुसेनाके मुख्य मुख्य वीरोंको निर्भय चित्तसे वध करते देखकर उसके ऊपर पचीस बाण चलाये ॥ १३ ॥

स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥

हे राजेन्द्र ! अभिमन्युने भी तुम्हारे पुत्रोंके देखते देखते शीघ्र ही तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको विद्ध किया ॥ १४ ॥

षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाकम्पयद्विद्ध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥

तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अभिमन्युको अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले भयंकर साठ बाणोंसे विद्ध किया, तो भी मैनाक पर्वतके समान स्थित अभिमन्युको वह युद्धसे विचलित नहीं कर सके ॥ १५ ॥

स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥

महाबलवान् अत्यन्त तेजस्वी अभिमन्युने स्वर्ण पंखयुक्त तिहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे अपकारी अश्वत्थामाको फिर विद्ध किया ॥ १६ ॥

तस्मिन्द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्सन्पितरं रणे ॥ १७ ॥

अनन्तर पुत्रवत्सल द्रोणाचार्यने अभिमन्युके ऊपर एक सौ बाण चलाये और अश्वत्थामाने भी पिताकी रक्षाके निमित्त समरमें आठ बाणोंसे अभिमन्युके ऊपर प्रहार किया ॥ १७ ॥

कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान्कृतवर्मा चतुर्दश ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत्कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥

कर्णने बावीस, कृतवर्माने चौदह, बृहद्बलने पचास और शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने दस भल्लोंसे अभिमन्युपर प्रहार किया ॥ १८ ॥

तांस्तु प्रत्यवधीत्सर्वान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

अभिमन्युने सब ओरसे उन महारथियोंके चलाये हुए तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होकर, उन हर एक शूरवीरोंको दस दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १९ ॥

तं कोसलानामधिपः कर्णिनाताडयद्धृदि ।
स तस्याश्वान्ध्वजं चापं सूतं चापातयत्क्षितौ ॥ २० ॥

अनन्तर कोशलराज बृहद्बलने अभिमन्युके हृदयमें एक बाणका प्रहार किया । तब अभिमन्युने कोशलराज बृहद्बलके रथके घोडे, सारथि, रथकी ध्वजा और उनके धनुषको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २० ॥

*

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मधृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥

तब कोशलराज बृहद्बलने रथ रहित होके हाथमें तलवार और ढाल ग्रहण करके अभिमन्युके शरीरसे कुण्डल सहित उसके सुन्दर शिरको काटनेकी इच्छा की; ॥ २१ ॥

स कोसलानां भर्तारं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

उसही समय अभिमन्युने कोशल राज राजपुत्र बृहद्बलके हृदयमें एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाणका प्रहार किया, उस बाणके लगते ही बृहद्बल भिन्नहृदय होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २२ ॥

बभञ्ज च सहस्राणि दश राजन्महात्मनाम् ।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥

अनन्तर अभिमन्युने अशुभ वचन बोलनेवाले तथा तलवार और धनुष्य ग्रहण करनेवाले दस हजार महात्मा क्षत्रिय वीरोंका भी संहार किया ॥ २३ ॥

तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे ।
विष्टम्भयन्महेष्वासान्योधांस्तव शराम्बुभिः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ १७५४ ॥

अभिमन्यु इसी प्रकारसे कोशलराज बृहद्बलका वध करके फिर अपने बाणरूपी जलकी वर्षा कर तुम्हारी ओरके महाधनुर्धारी शूरवीरोंको स्तब्ध करते हुए रणभूमिमें विचरने लगे ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ १७५४ ॥

: ४७ :

संजय उवाच

स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः ।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्कोपयन्भृशम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भारत ! अभिमन्युने फिर एक बाणसे कर्णका कान विद्ध किया; और फिर उनको अत्यन्त कुपित करते हुए शीघ्रताके सहित पचास बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः ।
स तैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥

हे भारत ! राधापुत्र कर्णने भी अभिमन्युको उतनेही बाणोंसे विद्ध किया । कर्णके चलाये हुए बाणोंसे अभिमन्युका सम्पूर्ण शरीर पूरित होकर वह अत्यन्तही शोभित हुए ॥ २ ॥

कर्णं चाप्यकरोत्क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्चित्रोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥

और क्रुद्ध होकर कर्णके शरीरको भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे रुधिर पूरित कर दिया । शूर कर्ण भी अभिमन्युके बाणोंसे विद्ध होकर रुधिरयुक्त शरीरसे युद्धभूमिमें अत्यन्तही शोभित होने लगे ॥ ३ ॥

तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

उस समय उन दोनोंके शरीर एक दूसरेके बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण विचित्र दीखायी देते थे । दोनों ही रुधिरसे भींग गये थे, तब वे दोनों महात्मा वीर पुष्पित पलाश वृक्षके समान शोभित होने लगे ॥ ४ ॥

अथ कर्णस्य सचिवान्षट् शूरांश्चित्रयोधिनः
साश्वसूतध्वजरथान्सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥

अनन्तर अभिमन्युने कर्णके चित्रयोधी छः मन्त्रियोंके रथके घोडे, सारथि, रथ और ध्वजा काट कर, अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनका भी बध किया; ॥ ५ ॥

अथेतरान्महेष्वासान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
प्रत्यविध्यदसंभ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

फिर दस बाणों दूसरे महा धनुर्धरोंको भी अत्यंत निर्भय चित्तसे विद्ध किया; अभिमन्युका यह पराक्रम अद्भुत दीख पडा ॥ ६ ॥

मागधस्य पुनः पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥

अनन्तर छः तीक्ष्ण बाणोंसे मगधराजके तरुण पुत्र अश्वकेतुको मारकर फिर उनको घोडे और सारथिके सहित रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ७ ॥

मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर अभिमन्यु एक क्षुरप्र बाणसे हाथीके चिह्नकी ध्वजावाले मार्त्तिकावतक राज भोजको नष्ट करके, अपने बाणोंको बर्षाते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ८ ॥

तस्य दौःशासनिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥

अनन्तर दुःशासनपुत्रने चार बाणोंसे अभिमन्युके चारों घोडे और एक बाणसे उनके सारथिको विद्ध करके, दस बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ ९ ॥

तततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद्रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाब्रवीत् ॥ १० ॥

अनन्तर अभिमन्युने क्रोधसे नेत्र लाल करके सात बाणोंसे दुःशासनपुत्रको विद्ध करके उससे उच्च स्वरसे यह वचन बोले ॥ १० ॥

पिता तवाहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥

तुम्हारा पिता कायरकी भांति युद्ध छोडकर भाग गया है, प्रारब्धहीसे तुम भी युद्ध करना जानते हो; परन्तु आज मेरे संमुखसे जीवित बचकर न लौट सकोगे ॥ ११ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जास्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥

ऐसा वचन कहकर उत्तम कारीगरसे मांजे हुए एक तीक्ष्ण नाराच बाणको धनुषपर चढाकर अभिमन्युने दुःशासनपुत्रकी ओर चलाया; परन्तु अश्वत्थामाने तीन बाणोंसे उस बाणको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १२ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥

तब अभिमन्युने अश्वत्थामाके रथकी ध्वजाको अपने बाणसे काटकर तीन बाणोंसे शल्यको पीडित किया । शल्यने भी गीधके पंखसे युक्त नौ बाणोंसे अभिमन्युको आहत किया ॥ १३ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा उभौ च पार्ष्णिसारथी ।
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोऽपक्रामद्रथान्तरम् ॥ १४ ॥

अनन्तर अभिमन्युने शल्यके ध्वजको काटकर उनके दोनों पृष्ठरक्षकोंका भी वध करके, फिर लोहमय छः बाणोंसे शल्यको विद्ध किया । अनन्तर राजा शल्य अपने रथको छोडकर दूसरे रथपर चढ गये ॥ १४ ॥

शत्रुंजयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ।
सूर्यभासं च पञ्चैतान्हत्वा विव्याध सौबलम् ॥ १५ ॥

अनन्तर अभिमन्युने शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चस और सूर्यभास— इन पांच योद्धाओंका बध करके सुबलपुत्र शकुनिको भी विद्ध किया ॥ १५ ॥

तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा दुर्योधनमथाब्रवीत् ।
सर्व एनं प्रमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ॥ १६ ॥

तब शकुनिने तीन बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध करके दुर्योधनसे इस प्रकार बोले, हम सब कोई मिलकर शीघ्र ही इसका बध करें, नहीं तो एक एक करके यह हम सबका नाश कर देगा ॥ १६ ॥

अथाब्रवीत्तदा द्रोणं कर्णो वैकर्तनो वृषा ।
पुरा सर्वान्प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ॥ १७ ॥

अनन्तर सूर्यपुत्र कर्ण भी द्रोणाचार्यसे बोले; यह हम सब लोगोंका वध करे इसके पहिले ही आप शीघ्र ही इसके वधका उपाय कहिये ॥ १७ ॥

ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान्प्रत्यभाषत ।
अस्ति वोऽस्यान्तरं किञ्चित्कुमारस्य प्रपश्यति ॥ १८ ॥

तब महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य उन सब महारथियोंसे बोले, तुम लोगोंके बीचमें क्या कोई ऐसा पुरुष भी है, जो इस कुमारको क्षणभरके लिये भी अवकाश लेते देख सका हो ? इसमें कोई छिद्र देखा जाता है ? ॥ १८ ॥

अन्वस्य पितरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम्
शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ॥ १९ ॥

यह आज अपने पिताके समान युद्धभूमिमें सब ओर भ्रमण करता रहा है; इस पुरुषसिंह पाण्डवपुत्रकी शीघ्रता और हस्तलाघव तो देखो ॥ १९ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ।
संन्दधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ॥ २० ॥

यह कुमार इतनी शीघ्रताके सहित बाणोंको सन्धान करके छोडता है, कि इसके मार्गोंसे केवल मण्डलाकार उसका धनुष ही दीख पडता है ॥ २० ॥

आरुजन्निव मे प्राणान्मोहयन्नपि सायकैः ।
प्रहर्षयति मा भूयः सौभद्रः परवीरहा ॥ २१ ॥

वह शत्रु वीरनाशन सुभद्रापुत्र अभिमन्यु बार बार बाणोंको चलाकर मेरे प्राणोंको पीडित-सा और मोहित कर रहा है; परन्तु मैं उसका युद्धकार्य देखकर अत्यंत आनन्दित हो रहा हूं ॥ २१ ॥

अति मा नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन्रणे ।
अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ॥ २२ ॥

रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक चारों ओर भ्रमण करता हुआ सुभद्राका यह पुत्र मुझे अत्यन्त ही आनन्दित कर रहा है । सम्पूर्ण महारथ योद्धा अत्यन्त क्रुद्ध होकर भी इसका तनिक छिद्र नहीं देख सकते हैं ॥ २२ ॥

अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ।
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ॥ २३ ॥

यह शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाता हुआ महान् बाणोंसे सब दिशाओंको परिपूर्ण कर देता है; इससे युद्धभूमिमें मुझे यह गाण्डीवधारी अर्जुनसे किसी भांति युद्ध करनेमें कम नहीं दीख पडता है ॥ २३ ॥

अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशरार्दितः ।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीडयमानोऽभिमन्युना ॥ २४ ॥

अनन्तर अभिमन्युके बाणोंसे पीडित कर्ण फिर द्रोणाचार्यसे बोले, मैं अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होकर भी युद्धभूमिमें ही डटे रहना क्षत्रियको उचित है, यही विचार कर संग्राममें स्थित हूं ॥ २४ ॥

तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ।
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ॥ २५ ॥

इस तेजस्वी बालक अभिमन्युके परम दारुण और अग्निके समान स्पर्श करनेवाले घोर तेजस्वी बाण मेरे हृदयको पीडित कर रहे हैं ॥ २५ ॥

तमाचार्योऽब्रवीत्कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ।
अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः ॥ २६ ॥

यह सुनकर द्रोणाचार्य मन्द मुसकराकर धीरे धीरे कर्णसे बोले, इसका कवच अभेद है और यह तेजस्वी बालक युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाला है ! ॥ २६ ॥

उपदिष्टा मया अस्य पितुः कवचधारणा ।
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ॥ २७ ॥

मैंने इसके पिताको कवच धारण करनेकी विद्याका उपदेश दिया था; शत्रुओंके नगरियोंको जीतनेवाले यह कुमार अभिमन्युने निश्चयही अपने पितासे उसही कवचको धारण करनेका सम्पूर्ण कौशल सीख लिया है ॥ २७ ॥

शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ।
अभीशवो हयाश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २८ ॥

इसके धनुष और प्रत्यञ्चाको सिद्धिपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे काटा जा सकता है, और घोडोंकी लगाम, घोडे तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मारा जा सकता है ॥ २८ ॥

एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ।
अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात्प्रहरणं कुरु ॥ २९ ॥

हे महाधनुर्धर राधानन्दन ! यदि कर सको तो ऐसा ही कार्य करो; अभिमन्युको युद्धसे विमुख करके पीछे इसके ऊपर प्रहार करना ॥ २९ ॥

सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ।
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ॥ ३० ॥

इसके हाथमें धनुष बाण रहतेतक देवता और राक्षस भी इसे जीत नहीं सकेंगे । यदि तुम इसे परास्त करनेकी इच्छा करते हो, तो इसे धनुष रहित तथा रथसे रहित करो ॥ ३० ॥

तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन् ।
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ॥ ३१ ॥

विकर्तनपुत्र कर्णने द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाते हुए अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले अभिमन्युका धनुष काट दिया ॥ ३१ ॥

अश्वानस्यावधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ।
शेषास्तु छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३२ ॥

अनन्तर भोजवंशी कृतवर्माने अभिमन्युके रथके चारों घोडे मार डाले और कृपाचार्यने उसके दोनों पृष्ठ रक्षक योद्धाओंका वध किया, अनन्तर वहांपर स्थित सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग धनुषरहित उस बालकके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३२ ॥

त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ।
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वे छहों महारथी शीघ्रताके सहित दयारहित होकर लगातार अपने बाणोंकी वर्षासे उस रथरहित कुमार अभिमन्युको बार बार छिपाने लगे ॥ ३३ ॥

स छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ।
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसम् ॥ ३४ ॥

वह तेजस्वी बालक रथरहित तथा धनुष कट जानेपर अपने क्षत्रिय धर्मका पालन करते हुए तलवार और ढाल ग्रहण करके रथसे आकाशमें उछल पडा ॥ ३४ ॥

मार्गैः स कैशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ।
आर्जुनिर्व्यचरद्व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ॥ ३५ ॥

अभिमन्यु पक्षिराज गरुडके समान वेगपूर्वक अत्यन्त ही बल प्रकाशित करता हुआ अति शीघ्रताके सहित गति विशेषसे आकाश मार्गसे कूदता हुआ रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगा ॥ ३५ ॥

मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ।
विव्यधुस्तं महेष्वासाः समरे छिद्रदर्शिनः ॥ ३६ ॥

युद्धमें छिद्र देखनेवाले योद्धा लोग " यह तलवार ग्रहण करनेवाला अभिमन्यु मेरे ऊपर ही आक्रमण कर रहा है " ऐसा वचन करते हुए ऊपरको दृष्टि करके महाधनुर्धर अभिमन्युको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ३६ ॥

तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ।
राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३७ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने मुट्ठीमें ग्रहण किये हुए मणि जटित मूठसे शोभित अभिमन्युके तलवारको काट डाला । राधापुत्र कर्णने अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर अभिमन्युकी उत्तम ढाल काट दी ॥ ३७ ॥

व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात्पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३८ ॥

वह ढाल तलवार रहित और सम्पूर्ण शरीरमें बाणोंसे परिपूरित होकर कूदते हुए आकाशसे पृथ्वीपर आकर चक्र ग्रहण करके क्रुद्धचित्तसे द्रोणाचार्यकी ओर दौडा ॥ ३८ ॥

स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोन्नतचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणदासुभद्रः स वासुभद्रानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ३९ ॥

उसका शरीर चक्रकी प्रभासे उज्ज्वल और धूलिसे शोभित हो गया था तथा ऊंचे हाथसे चक्र ग्रहण किये हुए वह अत्यन्त ही शोभित होने लगा । वह हाथमें चक्र लेकर श्रीकृष्णके समान कठिन कार्य करके क्षणभरतक मङ्गल रूपसे रणभूमिमें स्थित हुआ ॥ ३९ ॥

स्रुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो भ्रुकुटिपुटाकुटिलोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ १७९४ ॥

उसका मुख बहनेवाले एकमात्र रुधिरके रंगमें रंग गया था; भौंहे टेढी होनेसे मुख कुटिल दीखता था और वह जोरसे सिंहनाद कर रहा था । अनन्तर वह प्रभावशाली अत्यन्त बलवान् अभिमन्यु उन मुख्य मुख्य राजाओंके बीच खडा होकर अत्यन्त ही प्रकाशित होने लगा ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ १७९४ ॥

: ४८ :

सञ्जय उवाच

विष्णोः स्वस्रानन्दिकरः स विष्ण्वायुधभूषितः ।
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राको आनन्दित करनेवाला और श्रीकृष्णके समान चक्र-रूपी आयुधसे विभूषित अतिरथी अभिमन्यु युद्धमें दूसरे जनार्दनके समान शोभित हो रहा था ॥ १ ॥

मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥

वायुवेगसे उसके केश उड रहे थे और उसने चक्र नामक उत्तम आयुध उठाया था । उसके शरीरको जिसकी ओर देखना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, देखकर सब नरेश॥ २॥

तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः संचिच्छिदुरनेकधा ।
महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥

अत्यन्त ही व्याकुलचित्त हो गये और उन्होंने उस चक्रके टुकडे टुकडे कर दिये । तब महारथी अभिमन्युने एक महा भयङ्कर गदाको ग्रहण किया ॥ ३ ॥

विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः ।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमाद्रवत् ॥ ४ ॥

शत्रुओंने उसको धनुष, रथ, तलवार और चक्रसे भी रहित कर दिया था; तो भी हाथमें गदा ग्रहण करके अभिमन्यु अश्वत्थामाकी ओर दौडे ॥ ४ ॥

स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव ।
अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥ ५ ॥

पुरुषसिंह अश्वत्थामा अभिमन्युके उस प्रकाशमान् वज्रके समान भयङ्कर महाघोर गदाको ऊपर उठी हुई देखकर रथकी बैठकसे तीन पग पीछे हट गये ॥ ५ ॥

तस्याश्वान्गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत्प्रत्यदृश्यत ॥ ६ ॥

अभिमन्युने उस ही गदासे अश्वत्थामाके रथके घोडे और दोनों पृष्ठ रक्षकोंका संहार किया और सम्पूर्ण शरीरमें बाणोंसे परिपूर्ण हुए सुभद्रापुत्र अभिमन्यु साहीके समान दिखायी देने लगे ॥ ६ ॥

×

ततः सुबलदायादं कालकेयमपोथयत् ।
जघान चास्यानुचरान्गान्धारान्सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥

अनन्तर अभिमन्युने सुबलराजके पुत्र कालकेयका वध किया और उनके अनुयायी गान्धार-देशीय सतहत्तर योद्धाओंका भी वध किया ॥ ७ ॥

पुनर्ब्रह्मवसातीयाञ्जघान रथिनो दश ।
केकयानां रथान्सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ।
दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत् ॥ ८ ॥

फिर ब्रह्म और वसाति देशीय दस रथियोंको मार डाला और केकयदेशीय सात रथों तथा दस हाथियोंका नाश कर दिया । अनन्तर उस ही गदासे दुःशासनपुत्रके रथको घोडोंके सहित चूर्ण कर दिया ॥ ८ ॥

ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ।
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥

हे भारत ! अनन्तर दुःशासनपुत्र अत्यन्त क्रुद्ध हो, गदा उठाकर " खडा रह ! खडा रह ! " बोलता हुआ अभिमन्युकी ओर दौडा ॥ ९ ॥

तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ।
भ्रातृव्यौ संप्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्तकौ ॥ १० ॥

जैसे पहिले समयमें महादेव और अन्धकासुरने आपसमें एक दूसरेके ऊपर अस्त्रोंका प्रहार किया था, वैसे ही वे दोनों भ्राता जो परस्पर शत्रु थे, गदा लेकर एक दूसरेके वधकी इच्छा करते हुए प्रहार करने लगे ॥ १० ॥

तावन्योन्यं गदाग्राभ्यां संहत्य पतितौ क्षितौ ।
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परंतपौ ॥ ११ ॥

वे शत्रुनाशन दोनों वीर रणभूमिमें गदाके अग्रभागसे परस्पर चोट पहुंचाकर नीचे गिराये हुए दो इन्द्र ध्वजोंकी भांति पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ११ ॥

दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ।
प्रोत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ॥ १२ ॥

अनन्तर कुरुकुलकी कीर्तिको बढानेवाले दुःशासनपुत्र उठकर खडे हुए । अभिमन्यु उठ रहे थे, उस ही समयमें दुःशासनपुत्रने उनके शिरमें गदासे प्रहार किया ॥ १२ ॥

गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ।
विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १३ ॥

शत्रु वीरनाशन वीर अभिमन्यु पहिलेहीसे युद्धभूमिमें चारों ओर दौडनेसे थके हुए थे उसपर भी अत्यन्त वेगपूर्वक उनके शिरपर गदाकी चोट लगनेसे वह चेतनारहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार युद्धमें अनेक योद्धाओंने मिलकर अकेले अभिमन्युको मार डाला ॥ १३ ॥

क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १४ ॥

वीर अभिमन्यु जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए सरोवरको मथ डालता है, वैसे ही तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाको तितर बितर करते हुए अनेक योद्धाओंका वध करके जैसे वनके बीच एक हाथी अनेक व्याधोंके हाथसे मारा जाता है, वैसे ही मारा गया अभिमन्यु वहां शोभित हो रहा था ॥ १४ ॥

तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १५ ॥

जैसे हेमन्तऋतुके अन्तमें दावाग्नि प्रगट होके सम्पूर्ण वनके वृक्षोंको भस्म करके शान्त हो जाती है, वैसे ही युद्धसे शान्त हुए और पृथ्वीमें गिरे अभिमन्युको तुम्हारी ओरके योद्धाओंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ १५ ॥

विमृद्य तरुशृङ्गाणि संनिवृत्तमिवानिलम् ।
अस्तं गतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम् ॥ १६ ॥

जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षोंकी शाखाओंको तोड फोडके शान्त हो जाती है, अथवा जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत्के प्राणियोंको तपाकर सन्ध्याके समय अस्त हो जाते हैं, वैसे ही कुरुसेनाको संतप्त करके, ॥ १६ ॥

उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षकम् ॥ १७ ॥

जैसे चन्द्रमापर ग्रहण लग गया हो, जैसे समुद्र सूख गया हो, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाला, अभिमन्यु पृथ्वीपर पडा था । उसके सिरके बडे बडे बालोंसे उसकी आंखे ढक गयी थीं ॥ १७ ॥

तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १८ ॥

उस दशामें पृथ्वीपर पडे हुए अभिमन्युको देखकर तुम्हारी ओरके महारथी लोग अत्यन्त हर्षके सहित बार बार सिंहनाद करने लगे ॥ १८ ॥

आसीत्परमको हर्षस्तावकानां विशां पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ १९ ॥

हे पृथ्वीपते ! तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग अत्यन्त हर्षित हुए, परन्तु पाण्डव तथा उनकी सेनाके योद्धाओंके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी ॥ १९ ॥

अभिक्रोशन्ति भूतानि अन्तरिक्षे विशां पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाम्बरात् ॥ २० ॥

हे राजेन्द्र ! अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले सम्पूर्ण प्राणी अभिमन्युको आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाके समान पृथ्वीमें पडे हुए देखकर ऊंचे स्वरसे यह वचन बोले ॥ २० ॥

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २१ ॥

'द्रोणाचार्य तथा कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंने अकेले बालकको मारकर पृथ्वीमें गिराया है, यह यहां सो रहा है; हम लोगोंके मतसे यह धर्मका कार्य नहीं हुआ है' ॥ २१ ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २२ ॥

महाराज ! जैसे नक्षत्र मालाओंसे अलंकृत आकाश पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेपर शोभित होता है, वैसे ही महावीर अभिमन्युके मारे जाकर पृथ्वीमें गिरनेपर रणभूमि शोभित हो रही थी ॥ २२ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च संपूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च वीराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २३ ॥

सुवर्णयुक्त पंखवाले बाणोंसे वह भूमि भरी हुई थी; रूधिरकी धाराएं वहां बहती थीं; प्रकाशमान कुण्डल और मुकुटोंके सहित वीरोंके तेजस्वी शिर, ॥ २३ ॥

विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाम्बरोत्तमैः ॥ २४ ॥

विचित्र झूल, पताका, चंवर, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कम्बल, इधर उधर कटे फटे पडे हुए उत्तम वस्त्र ॥ २४ ॥

रथाश्वनरनागानामलंकारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैश्च निशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २५ ॥
रथ, हाथी, घोडे और मनुष्योंके उत्तम चमकीले आभूषण केंचुलसे निकले हुए सर्पोंके समान मियानसे निकले हुए उत्तम तीक्ष्ण तलवार, ॥ २५ ॥

चापैश्च विशिखैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।
विविधैरायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २६ ॥
कटे हुए धनुष और बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, कम्पन और दूसरे बहुतेरे रुधिरयुक्त अस्त्रशस्त्रोंसे पृथ्वी परिपूर्ण होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ २६ ॥

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः स्वपद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २७ ॥
सुभद्रापुत्र अभिमन्युके द्वारा मारे हुए रुधिरसे भरे हुए निर्जीव और सोते हुए घोडे और घुडसवारोंके कारण वह रणभूमि विषम हो गयी थी ॥ २७ ॥

साङ्कुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखोन्मथितैर्गजैः ॥ २८ ॥
विध्वस्त पर्वतके समान कितने ही हाथी बाणोंसे मथित होकर, अंकुशधारी पलिवानोंके सहित, आयुध, ध्वजा पताका समेत पृथ्वीमें पडे हुए दीख पडते थे ॥ २८ ॥

पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ २९ ॥
घोडे, सारथि और रथियोंसे रहित कितने ही श्रेष्ठ रथ जिन्होंने हाथियोंको मार डाला था, वे मथे गये तालाबोंके समान चूर्ण होकर पृथ्वीपर बिखरे पडे थे ॥ २९ ॥

पदातिसंघैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाभवन्मही ॥ ३० ॥
अनेक प्रकारके आयुध और आभूषणोंसे युक्त कितनेही पैदल चलनेवाले शूरवीरोंके समूह उस युद्धमें मारे गये थे; इस कारण वह रणभूमि अत्यंत भयंकर घोर रूपसे दिखायी देने लगी; उसे देख कायर पुरुष अत्यन्त ही भयभीत होने लगे ॥ ३० ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाभवद्व्यथा ॥ ३१ ॥
चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी अभिमन्युको मरे हुए पृथ्वीमें पडे देखकर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग बहुत ही हर्षित और आनन्दित हुए, परन्तु पाण्डवोंकी ओरके शूरवीरोंको अत्यन्त ही दुःख तथा क्लेश हुआ ॥ ३१ ॥

अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
संग्राद्द्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! उस सुकुमार बालक अभिमन्युके मारे जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण सेना उनके संमुखहीमें रणभूमिसे भागने लगी ॥ ३२ ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुः स्वान्वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर सुभद्रापुत्र अभिमन्युके मारे जानेपर अपनी सेनाको दुःखित और युद्धभूमिसे भागती हुई देखकर, अपने वीरोंसे यह वचन बोले ॥ ३३ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो नपराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३४ ॥

यह शूरवीर अभिमन्यु युद्धभूमिमें पीछे न हटके शत्रुओंके हाथोंसे मारा गया है, इससे उसको निश्चय ही स्वर्ग लोग प्राप्त हुआ है; तुम लोग कुछ भी भय मत करो; धैर्य धारण करके स्थित होके युद्ध करो; रणभूमिमें हम लोग अवश्य शत्रुओंको जीतेंगे ॥ ३४ ॥

इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपानुदत् ॥ ३५ ॥

योद्धाओंमें मुख्य, महातेजस्वी, पराक्रमी धर्मराज युधिष्ठिरने अपनी सेनाके सम्पूर्ण दुःखित पुरुषोंसे ऐसे वचनोंको कहके उनके दुःख और क्लेशको दूर किया ॥ ३५ ॥

युद्धे ह्याशीविषाकारान्राजपुत्रान्रणे बहून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरन्वगात् ॥ ३६ ॥

अभिमन्युने पहिले युद्धभूमिमें विषधर सर्पोंके समान भयंकर अनेक राजपुत्रोंका वध करके, अन्तमें वह भी स्वर्गलोकको गया है; ॥ ३६ ॥

हत्वा दशसहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रसद्म गतो ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी अभिमन्यु दस हजार योद्धा और महारथी कोशल-राजका वध करके निश्चय ही इन्द्रसद्ममें गया है ॥ ३७ ॥

रथाश्वनरमातङ्गान्विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ॥ ३८ ॥

सहस्रों रथ, घोडे, हाथी और पैदल चलनेवाले वीरोंका नाश करके भी युद्धसे अतृप्त था। पुण्य कर्म करनेके कारण अभिमन्युके निमित्त शोक करना योग्य नहीं है ॥ ३८ ॥

वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।
निवेशायाभ्युपायाम सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ ३९ ॥

हम लोग पाण्डवोंके उस मुख्य वीर अभिमन्युका वध करके उनके बाणोंसे क्षत–विक्षत शरीरसे रुधिरयुक्त होकर सन्ध्याके समय अपने शिबिरोंमें विश्रामके लिये जानेके निमित्त गमन करने लगे ॥ ३९ ॥

निरीक्षमाणास्तु वयं परे चायोधनं शनैः ।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ ४० ॥

महाराज ! हम लोग और शत्रु पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग रणभूमिकी ओर देखते हुए धीरे धीरे वहांसे गमन करते थे; पाण्डवोंके लोग अत्यन्त ही दुःखित और चेतरहितके समान हो गये थे ॥ ४० ॥

ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः शिवारुतः संधिरवर्ततादुभुतः ।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ४१ ॥

रक्त कमलके समान वर्णवाले सूर्यदेवने अस्त होके अस्ताचल पर्वतके ऊपर गमन किया; सियारोंके महा भयंकर शब्द चारों ओरसे सुनाई देने लगे, इसी प्रकारसे अशुभ और अद्भुत लक्षणोंके सहित वह दिन और रात्रिकी सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ ॥ ४१ ॥

वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां विभूषणानां च समाक्षिपन्प्रभाम् ।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥ ४२ ॥

सूर्यदेवने मानो उत्तम तलवार, शक्ति, ऋष्टि, ढाल, कवच और आभूषणोंकी प्रभाको छीनते हुए, आकाश तथा पृथ्वीको एक रूपसे करके अपने प्रिय शरीरके सहित अग्निमें प्रवेश किया ॥ ४२ ॥

महाभ्रकूटाचलशृङ्गसंनिभैर्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः ।
सवैजयन्त्यङ्कुशवर्मयन्तृभिर्निपातितैर्निष्टनतीव गौश्चिता ॥ ४३ ॥

महान् बादलोंके समूह तथा पर्वतके शृङ्गके समान हाथी, मानो वज्रकी चोटसे गिराये गये हों– वहां पडे थे; वैजन्यती माला, अंकुश, वर्म और पीलवानोंके सहित मारे गये हाथियोंके समूहसे सारी पृथ्वी परिपूर्ण होकर महाभयंकर दीख पडती थी ॥ ४३ ॥

हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करैर्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः ।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः पुरैरिवामित्रहतैर्नराधिप ॥ ४४ ॥

हे राजेन्द्र ! शत्रुओंके हाथसे नष्ट किये गये बडे नगरोंके समान विशाल रथ चूर्ण हो गये थे; उनके घोडे, सारथि और ध्वजा–पताकाएं नष्ट कर दी गयी थीं; ऐसे ही उनके रथि सवार मरे पडे थे, पैदल सैनिक और अन्य सामग्री नष्ट भ्रष्ट हो गयी थी। इससे वह रणभूमि अद्भुत जान पडती थी ॥ ४४ ॥

रथाश्ववृन्दैः सहसादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः ।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनैर्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥ ४५ ॥

कितने ही रथ और अश्वोंके समूह सवारोंके सहित नष्ट हुए पडे थे; अनेक प्रकारके साधन और आभूषण कट कर इधर उधर पडे थे; मनुष्य और पशुओंकी जीभ, दांत, आंत और नेत्र बाहर निकल आये थे, इसी कारण वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर और घोर दिखाई देने लगी ॥ ४५ ॥

प्रविद्धवर्माभरणा वरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः ।
महार्हशय्यास्तरणोचिताः सदा क्षितावनाथा इव शेरते हताः ॥ ४६ ॥

शूरवीरोंके कवच, आभूषण और श्रेष्ठ आयुध नष्ट हो गये; हाथी, घोडे तथा रथोंके पीछे जानेवाले मनुष्य मरे पडे थे; उत्तम वस्त्रोंसे युक्त मणिजटित शय्यापर सदैव शयन करने योग्य कितने ही पराक्रमी राजालोग मारे जाकर, उस रणभूमिमें अनाथकी भांति पृथ्वीपर शयन करते हुए दिखाई देते थे ॥ ४६ ॥

अतीव हृष्टाः श्वसृगालवायसा बडाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः ।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः पिशाचसंघाश्च सुदारुणा रणे ॥ ४७ ॥

कुत्ते, सियार, कौवे, बगुले, गरुड, भेडिये, तेंदुए, रुधिर पीनेवाले पक्षी, राक्षसोंके समुदाय और अत्यंत भयानक पिशाच लोग उस युद्धभूमिमें अत्यन्त हर्षित हो गये थे ॥ ४७ ॥

त्वचो विनिर्भिद्य पिबन्वसामसृक्तथैव मज्जां पिशितानि चाश्नुवन् ।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥४८॥

वे मरे हुए प्राणियोंकी त्वचा फाडकर उनके वसा और रुधिर पीते थे, मज्जा और मांस खाते थे, चर्वियोंको काटकर चबाते थे; तथा मृत प्राणियोंके शरीरोंको इधर उधर खींचते हुए हंसते और गाते हुए दिखाई देते थे ॥ ४८ ॥

शरीरसंघाटवहा असृग्जला रथोडुपा कुञ्जरशैलसंकटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ४९ ॥
महाभया वैतरणीव दुस्तरा प्रवर्तिता योधवरैस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरं भृशं भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ ५० ॥

उस रणभूमिमें वैतरणी नदीके समान दुष्कर और महाभयङ्कर रुधिर रूपी जलसे युक्त नदी श्रेष्ठ योद्धाओंने उत्पन्न कर बहा दी। उस नदीमें अनेक शरीर बह रहे थे, तैरते हुए रथ उसमें नौकाके समान दीखते थे। मरे हुए हाथियोंके शरीर उस नदीके बीच पडे हुए पर्वत शृङ्गोंके समान दिखाई देते थे। मनुष्योंके शिर ही उसमें पत्थरके टुकडेके समान बोध होते थे, मांस ही उसमें कीचड रूपमें दीख पडता था; टूटे, फूटे कवच, आदि अस्त्रशस्त्र ही उस नदीमें फेन युक्त मालाके समान मालूम होते थे; वह अत्यंत भयंकर नदी युद्धभूमिके मध्यभागमें बहती थी; और मरे तथा अधमरे योद्धा लोग उस नदीमें बहते हुए दिखाई देते थे ॥ ४९–५० ॥

पिबन्ति चाश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः पिशाचसंघा विविधाः सुभैरवाः ।
सुनन्दिताः प्राणभृतां भयंकराः समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥ ५१ ॥

देखनेमें कठिन ऐसे अत्यंत भयंकर अनेक प्रकारके पिशाचोंके समुदाय वहां खाते और पीते थे; सब प्राणियोंको भयभीत करनेवाले वे पिशाच अत्यंत ही आनन्दित हो गये थे; कुत्ते, सियार और पक्षियोंको भी समान रूपसे वहां खानेको मिला था ॥ ५१ ॥

तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रसंनिभम् ।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः समुत्थितारुण्डकुलोपसंकुलम् ॥ ५२ ॥

सायंकालके समयमें यमराजके राज्यके समान वह युद्धभूमि अत्यंत भयंकर दीखती थी; वहां चारों ओर कबन्ध व्याप्त हो रहे थे; यह सब देखते हुए सब सैनिक धीरे धीरे उस रणभूमिसे अलग हो गये ॥ ५२ ॥

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं निपातितं शक्रसमं महारथम् ।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ १८४७ ॥

उन लोगोंने रणभूमिसे लौटते हुए देखा, इन्द्रके समान महारथी अभिमन्युको युद्धमें गिरा दिया गया है; उसके अत्यंत मूल्यवान आभूषण कटके शरीरसे पृथक् पडे हैं। और वह आहुति-रहित यज्ञवेदीकी अग्निके समान निस्तेज हो गया है ॥ ५३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ १८४७ ॥

: ४९ :

संजय उवाच

तस्मिंस्तु निहते वीरे सौभद्रे रथयूथपे ।
विमुक्तरथसंनाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! उस रथ यूथपति सुभद्रापुत्र वीर अभिमन्युके मारे जानेपर सम्पूर्ण योद्धा लोग उसके शोकसे दुःखित होकर रथ और कवचका त्याग कर और धनुषको नीचे डाल कर ॥ १ ॥

उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
तदेव दुःखं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युके विषयमें मग्नचित्त होकर उस ही दुःखका ध्यान करते हुए, चारों ओरसे राजा युधिष्ठिरको घेरकर उनके पास बैठ गये ॥ २ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिर अपने भाईके वीर पुत्र महारथी अभिमन्युके मारे जानेसे अत्यन्त दुःखित होके रोदन करने लगे ॥ ३ ॥

द्रोणानीकमसंबाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥

हा ! जैसे गौओंके बीचमें सिंह प्रवेश करता है, वैसे ही अभिमन्युने मेरे प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे निर्भयचित्तसे द्रोणाचार्यके बनाये हुए सैन्य व्यूहको भेद करके उसमें प्रवेश किया था ॥ ४ ॥

यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥

जिसके अस्त्रोंके प्रभावसे युद्धदुर्मद, महाधनुर्द्धर, अस्त्रविद्याके जाननेवाले शूरवीर योद्धा लोग भी उसके सामने हतोत्साह हो युद्धभूमिसे भाग गये थे ॥ ५ ॥

अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥

जिस पराक्रमी वीर अर्जुनपुत्र अभिमन्युने हमारे परम शत्रु दुःशासनको सामने आनेपर शीघ्रही अपने बाणोंसे मूर्च्छित करके युद्धभूमिसे भगा दिया था ॥ ६ ॥

स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिर्यातो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥

वही वीर महासमुद्रके समान दुस्तर द्रोणाचार्यकी महासेनाको पार करके भी अन्तमें दुःशासन-पुत्रके पास जाकर यमलोकको चला गया ॥ ७ ॥

कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥

सुभद्रापुत्र अभिमन्युके मारे जानेपर इस समय अब मैं अर्जुनकी ओर कैसे देख सकूंगा ? अथवा अपने प्यारे पुत्र अभिमन्युको न देख सकनेवाली महाभागी सुभद्राके संमुख कैसे जाऊंगा ? ॥ ८ ॥

किं स्विद्वयमपेतार्थमश्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनञ्जयौ ॥ ९ ॥

हम श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीपमें किस प्रकारसे यह अनर्थकारी, असंबद्ध और अनुचित वृत्त कह सकेंगे ? ॥ ९ ॥

अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥

मैंने ही स्वार्थके वशमें होकर प्रिय कार्य और जयकी इच्छासे श्रीकृष्ण, अर्जुन और सुभद्राके ऐसे अप्रिय कार्यको किया है ॥ १० ॥

न लुब्धो बुध्यते दोषान्मोहाल्लोभः प्रवर्तते ।
मधु लिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमिदमीदृशम् ॥ ११ ॥

लोभी पुरुष दोषकी ओर दृष्टि नहीं करता । मनुष्यकी मोहके वशमें होकर ही लोभमें प्रवृत्ति होती है । जैसे मधुकी इच्छावाला पुरुष पर्वतकी शिखरपर चढता है, और अपने गिरनेकी सम्भावना नहीं समझ सकता; वैसे ही मैंने भी इस प्रकारकी महाघोर विपद्को नहीं समझा था ॥ ११ ॥

यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥

भोजन, सवारी, शय्या और आभूषण देकर जिसको आनन्दित करना उचित था, हम लोगोंने ऐसे बालकको युद्धके निमित्त रणभूमिमें सबके आगे किया था ॥ १२ ॥

कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव संबाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥

वह तरुण कुमार बालक था, युद्धके कार्योंमें भली भांतिसे निपुण नहीं हुआ था; तब महा सङ्कटरूपी युद्धभूमिमें अकेले गमन करनेसे अच्छे अश्वके समान किस प्रकारसे उसके कल्याणकी सम्भावना हो सकती थी ? ॥ १३ ॥

नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥

हाय ! यदि हम लोग अभिमन्युके साथ ही उस युद्धभूमिमें शयन कर न सके तो क्रोधसे प्रज्वलित अर्जुनके शोकाकुल नेत्रोंसे भस्म होकर शयन करना पडेगा ॥ १४ ॥

अलुब्धो मतिमान्ह्रीमान्क्षमावान्रूपवान्बली ।
वपुष्मान्मानकृद्वीरः प्रियः सत्यपरायणः ॥ १५ ॥

जो लोभरहित, बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान् , रूपवान्, बलवान्, सुंदर शरीर धारण करनेवाले, दूसरोंका मान रखनेवाले, वीर सब लोकोंके प्यारे, सत्य परायण हैं ॥ १५ ॥

यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

जिसके कर्मोंकी देवता भी सदा प्रशंसा किया करते हैं, जिसके कर्म अत्यंत ही पवित्र हैं, जिस पराक्रमी वीरने युद्धमें निवातकवच और कालकेय दानवोंका बध किया था ॥ १६ ॥

महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥

जिन्होंने निमेष भरमें हिरण्यपुरवासी इन्द्रके शत्रु पौलोम नामक दानवोंका उनके अनुयायियोंके सहित मारकर गिरा दिया था ॥ १७ ॥

परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमद्यात्मजो भयात् ॥ १८ ॥

और जो पराक्रमी अर्जुन अभय चाहनेवाले शत्रुओंको भी अभयदान करते हैं; हम लोग आज भयसे युक्त होकर उनके प्यारे पुत्र अभिमन्युकी रक्षा युद्धभूमिमें नहीं कर सके ॥१८॥

भयं तु सुमहत्प्राप्तं धार्तराष्ट्रं महद्बलम् ।
पार्थः पुत्रवधात्क्रुद्धः कौरवाञ्शोषयिष्यति ॥ १९ ॥

परन्तु दुर्योधनकी विशाल सेनाके योद्धाओंको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ है, क्योंकि कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने पुत्रके वधसे अत्यन्त ही क्रुद्ध होके कौरवोंका नाश कर देंगे ॥१९॥

क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयमातुरः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन्हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥

नीच बुद्धिवाला दुष्ट दुर्योधन अपने क्षुद्र सहायोंका नाश देखके आतुर और शोकित होकर अवश्य ही प्राणत्याग करेगा ॥ २० ॥

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चामरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ १८६८ ॥

देवराज इन्द्रके पुत्र अर्जुनके पुत्र, अतुलनीय वीर्य और पौरुष सम्पन्न इस अभिमन्युको मारा गया देखकर, विजय, राज्य, अमरत्व अथवा देव लोककी प्राप्ति आदि कुछ भी मुझे इस समय प्रसन्न नहीं कर सकती ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें उनचालवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ १८६८ ॥

: ५० :

सञ्जय उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये ।
आदित्येऽस्तंगते श्रीमान्संध्याकाल उपस्थिते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भारत ! प्राणियोंका नाश करनेवाले उस महाभयङ्कर दिनके बीत जानेपर और सूर्यके अस्त होनेपर, सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ ॥ १ ॥

व्यपयातेषु सैन्येषु वासाय भरतर्षभ ।
हत्वा संशप्तकव्रातान्दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥ २ ॥

सम्पूर्ण सेनाएं, युद्धभूमिसे विश्रामके लिये अपने शिविरोंपर गईं, उस ही सन्ध्याके समयमें कपिध्वजावाले प्रतापी अर्जुन अपने दिव्य अस्त्रोंसे संशप्तक वीरोंका वध करके ॥ २ ॥

प्रायात्स्वशिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् ।
गच्छन्नेव च गोविन्दं सन्नकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

जयसे युक्त रथपर श्रीकृष्णके सहित चढके अपने शिविरकी ओर जाने लगे; और शिविरको चलते चलते ही वे गद्गदकण्ठ हो भगवान् गोविन्दसे यह वचन बोले ॥ ३ ॥

किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्यं सज्जति केशव ।
स्पन्दन्ति चाप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाच्युत ॥ ४ ॥

हे केशव ! अच्युत ! मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है, मेरे मुंहसे वचन बाहर नहीं निकलता है, अशुभ सूचक बायां अङ्ग फडक रहा है, शरीर सुस्त हुवा जाता है ॥ ४ ॥

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति ।
भुवि यद्दिक्षु चाप्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५ ॥

मेरे चित्तमें अनिष्टकी शंका हो रही है; वह शङ्का किसी प्रकारसे भी निवृत्त नहीं होती है; पृथ्वी, आकाश तथा चारों ओरसे भयङ्कर उत्पात प्रकट होके मुझे भयभीत कर रहे हैं ॥५॥

बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥

मैं अनेक प्रकारके अशुभसूचक उत्पातोंको देख रहा हूं; मेरे ज्येष्ठ भ्राता पूजाके योग्य महाराज युधिष्ठिर और उनके अनुयायियोंका कल्याण तो है ? ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच

व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति ।
मा शुचः किंचिदेवान्यत्तत्रानिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन ! अवश्य तुम्हारे भाई और उनके अनुयायी राजाओंके पक्षमें कुशलही होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तो भी इस अपशकुनके अनुसार कुछ थोडा अनिष्ट हुआ होगा; उसके निमित्त तुम शोक मत करो ॥ ७ ॥

संजय उवाच

ततः संध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥

संजय बोले– हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर वे दोनों वीर उस वीरसंहारक युद्धभूमिमें सन्ध्योपासना करके फिर रथपर चढे और उस दिनके युद्धवृत्तान्तका वर्णन करते हुए शिबिरकी ओर जाने लगे ॥ ८ ॥

ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम् ।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

संग्राम भूमिमें कठिन कर्मोंको करके वे दोनों महात्मा अपने शिबिर पर पहुंचे । उन दोनों पुरुषसिंहोंने देखा, शिबिर आनन्दहीन और शोभासे रहित हो रहा है ॥ ९ ॥

ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा ।
बीभत्सुरब्रवीत्कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥

अनन्तर शत्रुवीरनाशन अर्जुन अपने शिबिरको विध्वस्त हुआसा देखकर अस्वस्थ हृदय होकर श्रीकृष्णसे बोले ॥ १० ॥

नाद्य नन्दन्ति तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः सह ।
वीणा वा नाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह ॥ ११ ॥

हे जनार्दन ! आज मङ्गलसूचक बाजोंका शब्द नहीं सुनाई पडता है । तथा नगाडे और तुरहीके शब्दोंके साथ मिली हुई शङ्ख ध्वनि भी नहीं सुनाई देती है; वीरोंकी करताली, ढोल और वीणा आदि बाजोंके सहित कुछ भी शब्द नहीं सुनाई पडता है ॥ ११ ॥

मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ।
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममानीकेषु बन्दिनः ॥ १२ ॥

मेरी सेनाओंमें बन्दीजन मङ्गलसूचक गीत और स्तुतियुक्त रमणीय स्तोत्रोंका पाठ नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ।
कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति माम् ॥ १३ ॥

वीर योद्धा मुझे देखकर भी पहिले जिस प्रकारसे अभिवादन करते थे, वे आज मुझे देखकर कुछ भी वचन नहीं बोलते हैं; मुझसे कोई पुरुष वार्तालाप भी नहीं करते हैं; बल्कि नीचे शिर झुकाकर मेरे समीपसे हटे जाते हैं ॥ १३ ॥

अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ।
न हि शुध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ॥ १४ ॥

हे माधव ! मेरे भाइ आज सकुशल तो होंगे ? आज स्वजनोंको व्याकुल देखकर मेरा चित्त तो शान्त नहीं होता है ॥ १४ ॥

अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ।
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत ॥ १५ ॥

हे मानद ! राजा अच्युत ! द्रुपद, विराट तथा मेरी सेनाके दूसरे सब महारथी योद्धा तो सकुशल होंगे न ? ॥ १५ ॥

न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥

और दिनों जब मैं युद्धसे लौटता था तब सुभद्रापुत्र अभिमन्यु अपने भाइयोंके सहित प्रसन्न चित्तसे हंसते हुए मेरे समीपमें आता था, परन्तु वह आज मेरे समीपमें क्यों नहीं आता है ? ॥ १६ ॥

एवं संकथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम् ।
ददृशाते भृशास्वस्थान्पाण्डवान्नष्टचेतसः ॥ १७ ॥

इसी प्रकारसे बातचीत करते हुए उन दोनों पुरुषसिंहोंने शिबिरके भीतर प्रवेश करके देखा, कि पाण्डव लोग अत्यन्त दुःखित और कातर हो रहे हैं ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

कपिध्वजावाले अर्जुनने भाईयों तथा पुत्रोंको अत्यन्त दुःखित देखा और अभिमन्युको न देखकर खिन्नमन होकर यह वचन कहने लगे ॥ १८ ॥

मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥

मैं तुम लोगोंके मुख वर्णको अप्रसन्न देख रहा हूं और अभिमन्युको भी मैं आज नहीं देखता हूं । तुम लोग जैसे दूसरे दिन मुझसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप करते थे, वैसा आज नहीं करते हो ॥ १९ ॥

मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्तास्ति ऋते सौभद्रमाहवे ॥ २० ॥

मैंने सुना था, कि इधर द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह बनाया था, उस सुभद्रापुत्र बालकके सिवा आप लोगोंमेंसे और दूसरे किसीका भी सामर्थ्य नहीं था जो उस चक्रव्यूहको भेद करे ॥ २० ॥

न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकविनिर्गमः ।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥

मैंने उसे चक्रव्यूहको भेद करके उसके बीच प्रवेश करनेका उपदेश दिया था; परन्तु उस व्यूहसे निकलनेकी शिक्षा मैंने नहीं दी थी। तुम लोगोंने तो उस बालकको शत्रुओंकी सेनाके चक्रव्यूहके बीच प्रवेश नहीं कराया था ? ॥ २१ ॥

भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि ।
कच्चिन्न निहतः शेते सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥

वह शत्रु वीरनाशन महाधनुर्धर सुभद्रापुत्र युद्धभूमिमें अपरम्पार शत्रुसेनाओंके उस व्यूहका अनेक बार भेदन करके वहीं मारा जाकर शयन तो नहीं करता ? ॥ २२ ॥

लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाद्रिषु ।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥

पर्वतोंमें उत्सुक हुए सिंहके समान लाल कमलनेत्रवाला, श्रीकृष्णके समान पराक्रमी महाबाहु अभिमन्यु युद्धमें किस प्रकारसे मारा गया है, वह सब वृत्तान्त तुम लोग मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ २३ ॥

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम् ।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥

मेरा अत्यन्त प्यारा, महाधनुर्धर, देवराज इन्द्रका पौत्र सुकुमार अभिमन्यु युद्धमें कैसे मारा गया है, वह मुझसे कहो ॥ २४ ॥

वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत्कालचोदितः ॥ २५ ॥

सुभद्राके प्राणप्रिय शूर पुत्रको, जिसको मैंने नित्य प्रेमसे पालन किया है, और जो माता कुन्तीका सदा लाडला रहा है, उस अभिमन्युको कालप्रेरित होकर किसने युद्धभूमिमें मारा है ? ॥ २५ ॥

सदृशो वृष्णिसिंहस्य केशवस्य महात्मनः ।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥

पराक्रम, शस्त्र और अस्त्रके ज्ञान तथा माहात्म्यमें यदुकुलभूषण सिंह श्रीकृष्णके समान प्रतापी अभिमन्यु किस प्रकारसे युद्धभूमिमें मारा गया ? ॥ २६ ॥

सुभद्रायाः प्रियं नित्यं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ २७ ॥

सुभद्रा, द्रौपदी और श्रीकृष्ण इन सबके सदा प्यारे पुत्र अभिमन्युको यदि मैं न देखूंगा, तो मैं भी प्राणत्याग करके यमलोक चला जाऊंगा ॥ २७ ॥

मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् ।
मत्तद्विरदविक्रान्तं शालपोतमिवोद्गतम् ॥ २८ ॥

जिसके श्याम वर्ण अत्यन्त कोमल और घुंघरवाले केश थे, जिसके नेत्र हरिणके किशोर बालकके समान चञ्चल तथा सुन्दर थे, जिसका पराक्रम मतवाले हाथीके समान था; जिसका शरीर नूतन शालवृक्षके समान ऊंचा था ॥ २८ ॥

स्मिताभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
बाल्येऽप्यबालकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥

जिसके वचन हास्यमिश्रित थे, जो शान्त स्वभाववाला था, जो बालक अवस्थामें भी युवा पुरुषोंके समान अतुल पराक्रम प्रकाशित करता था, जो सदा गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करता था, जो सदा प्रिय वचन करता था, जो किसीका द्वेष नहीं करता था ॥ २९ ॥

महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥

जो महा उत्साही, महाबाहु और कमलके समान सुंदर बडे नेत्रवाला था; जो भक्त लोगों-पर कृपा करना, जितेंद्रिय और नीच पुरुषोंका साथ कभी नहीं करता था ॥ ३० ॥

कृतज्ञं ज्ञानसंपन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतामघवर्धनम् ॥ ३१ ॥

जो कृतज्ञ, ज्ञानसे युक्त, सब अस्त्रोंको जाननेवाला, युद्धसे विमुख न होनेवाला, युद्धका अभिनन्दन करनेवाला शत्रुओंके शोकको बढानेवाला ॥ ३१ ॥

स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वप्रहर्तारं संग्रामे नष्टसंभ्रमम् ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ ३२ ॥

जो अपने अनुयायियोंका प्यारा तथा उनके प्रिय कार्य और हितमें रत और पितृ कुलकी विजयकी इच्छा करनेवाला था; जो युद्धमें शत्रुओंके ऊपर पहिले शस्त्रप्रहार नहीं करता था; जो निर्भय होकर युद्ध करता था; यदि मैं अपने उस प्यारे पुत्र अभिमन्युको नहीं देखूंगा तो प्राण त्याग करूंगा ॥ ३२ ॥

सुललाटं सुकेशान्तं सुभ्र्वक्षिदशनच्छदम् ।
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३३ ॥

सुन्दर ललाट, उत्तम केश, नेत्र, भौंहें और सुन्दर ओठोंसे युक्त उसके शोभायमान उस मुखको यदि मैं नहीं देखूंगा; तो मेरे चित्तमें कैसे शान्ति हो सकेगी ॥ ३३ ॥

तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ।
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३४ ॥

उसके वीणाकी ध्वनिके समान सुखद, रम्य और कोकिलके समान मधुर मीठे वचनोंको मैं नहीं सुनूंगा, तो मेरे चित्तमें शान्ति किस प्रकारसे होवेगी ? ॥ ३४ ॥

रूपं चाप्रतिरूपं तत्त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् ।
अपश्यतोऽद्य वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३५ ॥

उस शत्रुनाशन वीर अभिमन्युका देवदुर्लभ अत्यन्त सुन्दर अतुलनीय रूप यदि आज मैं न देखूंगा, तो मेरे हृदयमें शान्ति कहां है ? ॥ ३५ ॥

अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ।
नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३६ ॥

प्रणाम करनेमें दक्ष और पिताओंके वचनमें रत अपने उस प्यारे पुत्रको यदि आज मैं नहीं देखूंगा, तो मेरा चित्त कैसे शान्त होवेगा ? ॥ ३६ ॥

सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ।
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ॥ ३७ ॥

वह वीरोंमें अग्रणी सनाथ बालक सदा सर्वदा बहुमूल्य कोमल शय्यापर शयन करनेके योग्य होकर भी, अनाथके समान पृथ्वीपर शयन कर रहा है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥

शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ।
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ॥ ३८ ॥

जब वह मणि–रत्नोंसे भूषित उत्तम शय्यामें शयन करते थे, तब अनेक अच्छी परिचारिकाएं उनकी सेवामें लगी रहती थीं, इस समय क्षत विक्षत शरीरसे युक्त पृथ्वीपर शयन करनेसे अशुभ सूचक सियार आदिके जन्तु उसके समीप अमांगलिक वाणी बोल रहेंगे ? ॥ ३८ ॥

यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधबन्दिभिः ।
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वरैः ॥ ३९ ॥

पहिले शयन करनेपर सूत, मागध और बन्दीजन जिसे स्तुतिपाठ सुनाकर निद्रासे जाग्रत करते थे, इस समय भयानक हिंसक पशु पक्षी अपने भयङ्कर शब्दोंसे उसे जगाते होंगे ॥ ३९ ॥

छत्त्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं शुभम् ।
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणे रेणुः करिष्यति ॥ ४० ॥

जिसका सुन्दर मुखमण्डल सदा छत्रछायाके योग्य था, परंतु आज वही प्रसन्नमुख रण-भूमिमें उडती हुई धूलिसे छिप गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥

हा पुत्रकावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ।
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ॥ ४१ ॥

हा पुत्र ! जो तुमको सदा सर्वदा देखते रहनेपर भी मेरा मन तृप्त नहीं होता था, उस मुझ भाग्यहीन तुम्हारे पितासे काल आज बलपूर्वक तुम्हें छीनकर ले जा रहा है ॥ ४१ ॥

साद्य संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ।
स्वभाभिर्भासिता रम्या त्वयात्यर्थं विराजते ॥ ४२ ॥

निश्चय ही उत्तम कर्म करनेवाले पुरुषोंके आश्रय स्थल वह संयमनी पुरी स्वयं अपनी प्रभासे प्रकाशित और मनोहारिणी होती हुई भी तुम्हारे तेजसे अत्यन्त शोभायमान हुई होगी ॥४२॥

नूनं वैवस्वतश्च त्वा वरुणश्च प्रियातिथिः ।
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ॥ ४३ ॥

वैवस्वत, वरुण, इन्द्र और कुबेर वहां तुम्हें भयरहित वीर प्रिय अतिथिको पाकर तुम्हारा पूजा अर्चना करते रहेंगे ॥ ४३ ॥

एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा ।
दुःखेन महताविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ॥ ४४ ॥

महाराज ! जलमें नौका टूट जानेपर जैसे वणिक् लोग व्याकुल होकर बिलाप करते हैं; उसी प्रकारसे अर्जुन बार बार बिलाप करते हुए अत्यंत दुःखित होकर युधिष्ठिरसे पूछने लगे ॥ ४४ ॥

कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां पाण्डुनन्दन ।
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभः ॥ ४५ ॥

हे पाण्डुनन्दन ! क्या नरश्रेष्ठ अभिमन्यु योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करके युद्धभूमिमें शत्रु सेनाका नाश करते हुए, संमुख मारा जाकर स्वर्गलोकमें गया है ? ॥ ४५ ॥

स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ।
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि उस अकेलेके सङ्ग बहुतेरे श्रेष्ठ और प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धा इकट्ठे होकर जब युद्ध करने लगे होंगे, तब उसने सहायरहित होकर मुझे स्मरण किया होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥

पीडयमानः शरैर्बालस्तात साध्वभिधाव माम् ।
इति विप्रलपन्मन्ये नृशंसैर्बहुभिर्हतः ॥ ४७ ॥

मैं अनुमान करता हूं, जब शत्रुओंने नाना भांतिके तीक्ष्ण बाणोंसे मेरे पुत्रको पीडित किया होगा, उस समयमें उसने मेरा स्मरण किया होगा कि, ' हे तात ! मेरी सहायताके लिये, रक्षाके लिये, दौडते आवो ' ऐसा बार बार विलाप करते हुए उसको उन अनेक निर्दयी शत्रुओंने मारा होगा ॥ ४७ ॥

अथ वा मत्प्रसूतश्च स्वस्रीयो माधवस्य च ।
सुभद्रायां च संभूतो नैवं वक्तुमिहार्हति ॥ ४८ ॥

अथवा वह मेरा पुत्र, श्रीकृष्णका भानजा और सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ था; इसलिये ऐसी दीनतापूर्ण बात यहां नहीं कह सकता था ॥ ४८ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ॥ ४९ ॥

निश्चय ही मेरा हृदय मानो पत्थरसे बना हुआ अत्यन्त कठोर है, कि विशाल भुजासे युक्त लाल कमलके समान नेत्रवाले अपने पुत्रको न देखनेपर भी नहीं फट जाता है ? ॥ ४९ ॥

कथं बाले महेष्वासे नृशंसा मर्मभेदिनः ।
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान् ॥ ५० ॥

उन निष्ठुर स्वभाववाले योद्धाओंने किस प्रकारसे मेरे महाधनुर्धर बालक पुत्र तथा श्रीकृष्णके भानजेके ऊपर मर्मभेदक बाणोंको चलाया था ? ॥ ५० ॥

यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याभिनन्दति ।
उपयान्तं रिपून्हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति ॥ ५१ ॥

पहिले जब मैं शत्रुओंका वध करके डेरेपर आता था, तो वह निर्भयचित्तवाला मेरा पुत्र मुझे सदा अभिनन्दित करता था, वह किस कारणसे आज मुझे देखनेके निमित्त आगमन नहीं करता है ? ॥ ५१ ॥

नूनं स पतितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ।
शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ॥ ५२ ॥

निश्चय ही वह रुधिर पूरित शरीरसे युक्त होकर, आकाशसे नीचे गिराये हुए सूर्यके समान अपने अंगोंसे पृथ्वीको शोभित करके रणभूमिमें पडकर शयन करता है ॥ ५२ ॥

रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनंक्ष्यति ।
सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ।
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं न्वहम् ॥ ५३ ॥

सुभद्रा युद्धमें अपने वीरपुत्रको मारा गया सुनकर दुःखित होके प्राणत्याग करेंगी; सुभद्रा और द्रौपदी भी अभिमन्युको न देखकर मुझे क्या कहेंगी ? मैं ही भला उन दुःखसे त्रस्त हुई दुःखिताओंसे क्या कहूंगा ? ॥ ५३ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ।
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ॥ ५४ ॥

मेरा हृदय अवश्य ही पाषाणसे निर्मित है, क्योंकि शोक करनेवाली पुत्रवधूको रुदन करते हुए देखकर मेरा हृदय सहस्रों टुकडोंमें विदीर्ण नहीं हो जाता ॥ ५४ ॥

हृष्टानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ।
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् ॥ ५५ ॥

धार्तराष्ट्रोंके हर्षयुक्त सिंहनादको मैंने सुना था और युयुत्सुने उन कौरव वीर पुरुषोंका जो तिरस्कार किया था, उसे भी श्रीकृष्णचन्द्रने सुना था ॥ ५५ ॥

अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ।
किं नदध्वमधर्मज्ञाः पार्थे वै दृश्यतां बलम् ॥ ५६ ॥

युयुत्सुने ऊंचे स्वरसे यह वचन कहकर उन योद्धाओंका तिरस्कार किया था, कि हे अधार्मिक महारथी पुरुषो ! तुम लोग अर्जुनको पराजित कर न सके, तब एक बालकका बध करके क्यों सिंहनाद कर रहे हो ? इसके बाद अर्जुनका पराक्रम देखोंगे ॥ ५६ ॥

किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ।
सिंहवन्नदत प्रीताः शोककाल उपस्थिते ॥ ५७ ॥

इस समय युद्धभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके अप्रिय कार्यको करके तुम्हारे लिये शोकका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें तुम लोग प्रसन्न होकर सिंहनाद कैसे कर रहे हो ? ॥५७॥

आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ।
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ॥ ५८ ॥

तुम लोगोंको इस पापकर्मका फल शीघ्र ही मिलेगा । तुम लोगोंने घोर अधर्मका कर्म किया है, इसका फल शीघ्र ही तुम लोगोंको भोग करना पडेगा ॥ ५८ ॥

इति तान्प्रति भाषन्वै वैश्यापुत्रो महामतिः ।
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ॥ ५९ ॥

महा बुद्धिमान् वैश्यपुत्र युयुत्सु क्रोध और दुःखके सहित उन योद्धाओंकी निन्दा करते हुए अस्त्रशस्त्र त्यागकर रणभूमिसे पृथक् हुए थे ॥ ५९ ॥

किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ।
अधक्ष्यं तानहं सर्वांस्तदा क्रूरान्महारथान् ॥ ६० ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुमने उस ही समय रणभूमिमें मुझसे यह वृत्तान्त क्यों नहीं कहा था; मैं उसी समय उन सब निष्ठुर क्रूर महारथियोंको जलाकर भस्म कर देता ॥ ६० ॥

निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
मैवमित्यब्रवीत्कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६१ ॥

अर्जुनको पुत्र वियोगके कारण शोकसे आर्त और अत्यंत दुःखी, देखकर श्रीकृष्णचन्द्र 'ऐसा मत करो ' ऐसी बात कहकर उनका हाथ पकडके संभालकर यह वचन बोले ॥ ६१ ॥

सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६२ ॥

युद्धसे पीछे न हटनेवाले पराक्रमयुक्त सम्पूर्ण क्षत्रियोंका यही श्रेष्ठ मार्ग है; विशेषतः युद्धसे जीविका करनेवाले क्षत्रियोंको इस ही मार्गसे जाना पडता है ॥ ६२ ॥

एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
विहिता धर्मशास्त्रज्ञैर्गतिर्गतिमतां वर ॥ ६३ ॥

हे श्रेष्ठ भारत ! धर्मशास्त्र जाननेवाले ऋषियोंने युद्धसे पीछे न हटनेवाले युद्धपरायण शूरवीर पुरुषोंके लिये ऐसी ही गति श्रेष्ठ कहके निश्चित की है ॥ ६३ ॥

ध्रुवं युद्धे हि मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।
गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६४ ॥

युद्धसे पीछे न हटनेवाले पुरुषोंका युद्धभूमिमें मरना ही निश्चित होता है; इससे अभिमन्युने पुण्यात्मा पुरुषोंके पानेयोग्य प्रकाशमान लोकमें गमन किया है, इसमें सन्देह नहीं है ॥६४॥

एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयामेति मानद ॥ ६५ ॥

हे मानद भरतर्षभ ! सब वीर लोग सदा यही अभिलाषा करते हैं, कि युद्धभूमिमें सम्मुख युद्ध करते हुए मुझे मृत्यु प्राप्त हो ॥ ६५ ॥

स च वीरान्रणे हत्वा राजपुत्रान्महाबलान् ।
वीरैराकाङ्क्षितं मृत्युं संप्राप्तोऽभिमुखो रणे ॥ ६६ ॥

वीर अभिमन्युने महाबली और पराक्रमी राजपुत्रोंका रणभूमिमें संहार करके युद्ध करते हुए वीरोंकी अभिलाषाके अनुसार मृत्यु प्राप्त की है ॥ ६६ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः ।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ६७ ॥

हे पुरुषसिंह ! पुराने ऋषि तथा धर्मशास्त्र बनानेवाले पण्डितोंने क्षत्रियोंके निमित्त युद्धमें वध होना ही सनातन धर्म नियत किया है, इससे तुम शोक मत करो ॥ ६७ ॥

इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम ।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ६८ ॥

हे भरतसत्तम ! तुम्हारे शोक करनेसे ये तुम्हारे भ्राता, सुहृद् मित्र और सम्पूर्ण राजा लोग कातर हो रहे हैं ॥ ६८ ॥

एतांस्त्वं वचसा साम्ना समाश्वासय मानद ।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ६९ ॥

मानद ! तुम इन लोगोंको अपने शान्तिपूर्ण विधानसे धीरज प्रदान करो । जानने योग्य तत्त्वका तुम्हें ज्ञान हो गया है, इससे तुम्हारे समान पुरुषको शोक करना योग्य नहीं हैं ॥६९॥

एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातृन्सर्वान्पार्थः सगद्गदान् ॥ ७० ॥

अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने जब अर्जुनको इस प्रकारसे धीरज धारण कराया, तब अर्जुन गद्गद कण्ठवाले अपने सब भाइयोंसे यह वचन बोले ॥ ७० ॥

स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः ।
अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७१ ॥

वह लम्बी भुजावाला, विशाल स्कन्ध और बडे पुण्डरीक नेत्रवाला अभिमन्यु युद्धभूमिमें किस प्रकारसे खडा था, वह वृत्तान्त मैं सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ७१ ॥

सनागस्यन्दनहयान्द्रक्ष्यध्वं निहतान्मया ।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान्मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७२ ॥

मेरे पुत्रके वैरी अपने हाथी, रथ, घोडे और बन्धु-बान्धव अनुयायियोंके सहित युद्धभूमिमें मारे गये हैं, यह तुम लोग कल देखेंगे ॥ ७२ ॥

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम् ।
सौभद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणापि समागतः ॥ ७३ ॥

अस्त्रशस्त्रोंका युद्ध जाननेवाले तुम लोगोंके हाथमें शस्त्र धारण करके युद्धभूमिमें उपस्थित रहने-पर वह सुभद्रापुत्र अभिमन्यु वज्रधारी इन्द्रके सङ्गमें यदि संग्राम करता, तो कैसे आपके सामने उसकी मृत्यु हो सकती थी ? ॥ ७३ ॥

यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान्रक्षणे मम ।
पुत्रस्य पाण्डुपाञ्चालान्मया गुप्तो भवेत्ततः ॥ ७४ ॥

यदि मैं पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा मेरे पुत्रकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं ऐसा जानता, तो स्वयं ही उसकी रक्षा करता ॥ ७४ ॥

कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ७५ ॥

तुम लोग रथपर चढके जब बाण वर्षा कर रहे थे, उस समयमें शत्रुओंने किस प्रकारसे तुम लोगोंको पराजित करके अभिमन्युका वध किया ? ॥ ७५ ॥

अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः ।
यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ७६ ॥

ओहो ! जब युद्धस्थलमें तुम लोगोंके सम्मुखहीमें अभिमन्यु मारा गया है, तब मुझे यह निश्चय बोध हो रहा है, कि तुम लोगोंमें कुछ भी पुरुषार्थ और पराक्रम नहीं है ॥ ७६ ॥

आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वः सुदुर्बलान् ।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्रमान् ॥ ७७ ॥

तुम लोगोंकी निन्दा निरर्थक है, परन्तु मैं अपनी ही निन्दा करता हूं । क्योंकि तुम लोग डरपोक, कायर, अकृतश्रमी और अत्यन्त ही निर्बल हो; ऐसी अवस्थामें मैंने तुम लोगोंके ऊपर युद्धका भार अर्पण करके अन्यत्र प्रस्थान किया था ॥ ७७ ॥

आहो स्विद् भूषणार्थाय वर्मशस्त्रायुधानि वः ।
वाचश्च वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ७८ ॥

जब तुम लोक रणभूमिमें मेरे पुत्रकी रक्षा नहीं कर सके, तब तुम लोगोंके शस्त्र, अस्त्र, कवच और सम्पूर्ण आयुध केवल देखनेहीके लिये हैं, और तुम लोगोंके बडे वचन केवल सभामें ही सुन पडते हैं ॥ ७८ ॥

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान् ।
न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ७९ ॥

ऐसा कहकर फिर अर्जुन प्रचण्ड गाण्डीव धनुष और उत्तम तलवार धारण करके खडे हो गये, उस समय उनकी ओर आंख उठाकर देखनेको कोई भी पुरुष समर्थ न हुआ ॥७९॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८० ॥

वह पुत्रशोकसे अत्यन्त संतप्त और दुःखित होकर बार बार लम्बी सांस लेते हुए यमराजके समान क्रुद्ध हो गये ! उनका मुख अश्रुपूर्ण हो गया ॥ ८० ॥

नाभिभाष्टुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८१ ॥

उस समयमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र तथा ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको छोडके और कोई सुहृद् उनसे कुछ बातचीत न कर सके और न देख सके ॥ ८१ ॥

*

सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
बहुमानात्प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥ ८२ ॥

श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर दोनों ही सब अवस्थाओंमें उनके हितैषी और उनके मनके भावके अनुसार चलनेवाले थे, और अर्जुनके प्रति इन दोनों महात्माओंको परम आदर और प्रेम था; इस ही से ये दोनों पुरुषसिंह उनसे बातचीत करनेमें समर्थ होते थे ॥ ८२ ॥

ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ १९५१ ॥

अनन्तर पुत्रशोकसे अत्यन्त ही पीडित चित्त और क्रोधसे युक्त कमल नेत्र अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए कहा ॥ ८३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ १९५१ ॥

: ५१ :

युधिष्ठिर उवाच

त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत्तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले,– हे महाबाहो! जब तुमने संशप्तक वीरोंके बध करनेके निमित्त यहांसे प्रस्थान किया, तब द्रोणाचार्य मुझे ग्रहण करनेके निमित्त अत्यंत ही यत्न करने लगे ॥१॥

व्यूढानीकं वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे ॥ २ ॥

वे अपनी रथसेनाका व्यूह बनाके बार बार प्रयत्नशील रहे थे, तब हम लोग भी रणभूमिमें अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यको सब ओरसे रोक देते थे ॥ २ ॥

स वार्यमाणो रथिभी रक्षितेन मया तथा ।
अस्मानपि जघानाशु पीडयन्निशितैः शरैः ॥ ३ ॥

जब हम लोगोंकी सेनाके रथी योद्धाओंने और सुरक्षित हुआ हुआ मैंने द्रोणाचार्यको युद्धमें रोक दिया, तब वे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हम लोगोंको अत्यन्त ही पीडित करके हमपर वेगसे आक्रमण करने लगे ॥ ३ ॥

ते पीडयमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत्कुत एव तु ॥ ४ ॥

हम लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनकी सेनाके व्यूहकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए, फिर युद्धमें व्यूह भेद करनेकी बात तो दूर है ॥ ४ ॥

वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म ते तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥

उस समय हमने अतुल पराक्रमी सुभद्राके पुत्र अभिमन्युसे कहा, हे पुत्र ! तुम शत्रुसेनाके व्यूहका भेद करो ॥ ५ ॥

स तथा चोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥

उस पराक्रमी बालकने हमने इस प्रकार प्रोत्साहित करनेपर अच्छे अश्वके समान उस कठिन भारको भी उठानेके निमित्त प्रयत्न किया ॥ ६ ॥

स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत्तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७ ॥

पराक्रमसे युक्त वह बालक तुम्हारे सिखाये हुए अस्त्रोंके बलसे इस प्रकार शत्रु सेनाके व्यूहमें प्रविष्ट हुआ, जैसे गरुड समुद्रमें प्रवेश किया करते हैं ॥ ७ ॥

तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥

उस महावीर सुभद्रापुत्रने जिस मार्गसे शत्रु सेनाके बीच प्रवेश किया, हम लोगोंने भी उसके अनुगामी बनकर उस ही मार्गसे व्यूहके बीच प्रवेश करनेकी इच्छा की ॥ ८ ॥

ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समवारयत् ॥ ९ ॥

तात ! परन्तु सिन्धुराजका पुत्र क्षुद्र जयद्रथने भगवान् रुद्रदेवके वर प्रभावसे हम सब लोगोंको रोक दिया ॥ ९ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च स बृहद्बलः ।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कोशलराज बृहद्बल और कृतवर्मा,– इन छः महारथियोंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥

परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः ।
यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥

वे सब महारथी लोग चारों ओरसे उस बालकको घेरकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगे, परन्तु वह अपनी शक्तिके अनुसार उन सब वीरोंके सङ्गमें युद्ध करता ही रहा। अन्तमें उन सम्पूर्ण महारथियोंने उसको रथरहित कर दिया ॥ ११ ॥

ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥

तब दुःशासनपुत्रने अभिमन्युके प्रहारसे परम प्राण संकटमें पडकर, उन महारथियोंसे रथहीन किये हुए उस बालक अभिमन्युका शीघ्रही प्राण नाश किया ॥ १२ ॥

स तु हत्वा सहस्राणि द्विपाश्वरथसादिनाम् ।
राजपुत्रशतं चाग्र्यं वीरांश्चालक्षितान्बहून् ॥ १३ ॥

इसके पहिले उसने सहस्रों हाथी, घोडे, रथ और घुडसवारोंका संहार किया था। सैकडों मुख्य मुख्य राजपुत्र तथा और दूसरे अगणित योद्धाओंको मार कर ॥ १३ ॥

बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह ।
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ॥ १४ ॥

तथा राजा बृहद्बलको युद्धमें स्वर्गलोकमें भेज दिया। अन्तमें परम धर्मात्मा अभिमन्यु मृत्युके अधीन हुआ ॥ १४ ॥

एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ।
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ॥ १५ ॥

वह पुरुषसिंह जो इस प्रकारसे स्वर्गलोकमें गया है, यह हम लोगोंके लिये शोक बढानेवाली घटना हुई है ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच

ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ।
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद्भुवि ॥ १६ ॥

संजय बोले— अनन्तर अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिरके वचनोंको सुनकर 'हा पुत्र !' कहके लम्बी सांस छोडते हुए दुःखित होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १६ ॥

विषण्णवदनाः सर्वे परिगृह्य धनञ्जयम् ।
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवेक्षन्परस्परम् ॥ १७ ॥

उस समय अर्जुनको चेतरहित होके पृथ्वीपर गिरते देखकर वहां पर खडे हुए विषण्णमुख सम्पूर्ण योद्धा लोग दुःखित होकर उन्हें ग्रहण करके एकटक नेत्रोंसे परस्पर देखने लगे ॥ १७ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्छितः ।
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

अनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुन थोडी देरके बाद सावधान होकर क्रोधसे मूर्च्छित और मानो ज्वरसे कांपते हुये शरीर ही वार वार लम्बी सांस छोडते ॥ १८ ॥

पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ।
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

तथा हाथपर हाथ मलते हुए आखोंसे आंसू बहाते हुए उन्मत्तके समान इधर उधर देखते हुए यह वचन कहने लगे ॥ १९ ॥

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
न चेद्वधभयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान्प्रहास्यति ॥ २० ॥

"मैं तुम लोगोंके समीप यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कल मैं जयद्रथका वध करूंगा; परन्तु यदि वह मारे जानेके भयसे डरकर धृतराष्ट्रपुत्रोंको छोडके उनके समीपसे भाग नहीं जावें ॥ २० ॥

न चास्मान्शरणं गच्छेत्कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥

अथवा यदि वह मेरी, देवकी नन्दन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी वा आप युधिष्ठिरकी शरणमें नहीं आवेगा; तो कल मैं उसे मार डालूंगा ॥ २१ ॥

धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्रपुत्रोंके प्रिय करनेमें दक्ष, मेरे साथ द्वेष करनेवाले, मेरे बालक पुत्रके मृत्युके कारण हुए उस पापी जयद्रथका कल वध करूंगा ॥ २२ ॥

रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन ।
अपि द्रोणकृपौ वीरौ छादयिष्यामि ताञ्शरैः ॥ २३ ॥

राजन् ! यदि कोई रणभूमिमें उसकी रक्षा करनेके निमित्त मेरे सङ्गमें युद्ध करेंगे; यदि वे वीर द्रोणाचार्य वा कृपाचार्य भी होंगे, तो भी उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे छिपा दूंगा ॥ २३ ॥

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।
मा स्म पुण्यकृतां लोकान्प्राप्नुयां शूरसंमतान् ॥ २४ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ राजसिंहो ! यदि युद्धभूमिमें मैं ऐसा कार्य नहीं करूं, तो मैं शूरवीरोंके मिलने योग्य उत्तम और पुण्यलोकोंको प्राप्त न कर सकूं ॥ २४ ॥

ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम् ।
गुरुदारगामिनां ये च पिशुनानां च ये तथा ॥ २५ ॥

मातृहत्या करनेवाले, पितृघाती, गुरुकी स्त्रीसे कुकर्म करनेवाले और चुगलखोर लोगोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती हैं ॥ २५ ॥

साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम् ।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥

साधुओंके साथ दुष्ट आचरण करनेवाले निन्दक, दूसरोंको कलंक लगानेवाले, धरोहर हरपनेवाले और विश्वासघाती ॥ २६ ॥

भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च निन्दतामघशंसिनाम् ।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥

पहिले दूसरेके उपभोगमें आयी हुई स्त्रीको प्राप्त करनेवाले, पापकी स्तुति करनेवाले, ब्रह्मघाती और गोहत्यारे लोगोंको जो लोक प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा ।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाश्नताम् ।
तानह्नैवाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ २८ ॥

पायस, यवान्न, शाक, उत्तम अन्न, मोहनभोग, मालपूजा आदिको विना देव और ब्राह्मणोंको समर्पण किये ही भोजन करते हैं, इनको जो लोक प्राप्त होते हैं, यदि मैं कल जयद्रथका बध न करूं तो मुझे भी उन्हीं लोकोंको ही जाना पडेगा ॥ २८ ॥

वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ।
अवमन्यमानो यान्याति वृद्धान्साधूंस्तथा गुरून् ॥ २९ ॥

वेद पढनेवाले और अत्यन्त कठोर व्रतका पालन करनेवाले प्रशंसाके योग्य उत्तम ब्राह्मण, बूढे, साधु और गुरुलोगोंका अपमान करनेवाला पुरुष जिन लोकोंमें गमन करता है ॥२९॥

स्पृशतां ब्राह्मणं गां च पादेनाग्निं च यां लभेत् ।
याप्सु श्लेष्म पुरीषं वा मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः ।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३० ॥

ब्राह्मण, गौ और अग्निको चरणसे स्पर्श करनेवाले पुरुषको जो लोक मिलता है, और जलमें श्लेष्म, मल मूत्र त्याग करनेवाले पुरुषोंकी जो गति होती है, मुझे यदि मैं जयद्रथको न मारूं तो उसी घोर गतिको मैं भी प्राप्त करूं ॥ ३० ॥

नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः ।
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ।
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम् ॥ ३१ ॥

नङ्गे स्नान करनेवाले, जिनके घरमें अतिथिको भोजन दिये विना असफल लौटा दिया जाता है, घूसखोर, मिथ्या वचन बोलनेवाले और दूसरेको ठगानेवाले, अपने आत्माकी हिंसा करनेवाले, दूसरोंपर झूठे आरोप करनेवाले लोगोंकी जो गति होती है ॥ ३१ ॥

भृत्यैः संदृश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ।
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मृष्टमश्नताम् ।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३२ ॥

सेवकोंकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले, पुत्र, स्त्री तथा अपने आश्रितोंको उनका भाग उन्हें समर्पण किये विना ही मिष्टान्न भोजन करनेवाले क्षुद्र पुरुषोंको जो घोर गति प्राप्त होती है, यदि मैं कल जयद्रथका वध न करूं तो मुझे भी वही दुर्गति प्राप्त होवे ॥ ३२ ॥

संश्रितं वापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम् ।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ॥ ३३ ॥

जो दुष्टात्मा शरणागत, साधु पुरुष और आज्ञाकारी उत्तम चरित्रवाले आश्रितोंको त्यागकर उसका पोषण पालन नहीं करता और उपकारीकी निन्दा ही करता है ॥ ३३ ॥

अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च ।
अनर्हते च यो दद्याद्वृषलीपत्युरेव च ॥ ३४ ॥

तथा जो पडोसमें रहनेवाले योग्य पात्रको श्राद्ध आदिमें उचित वस्तु दान नहीं करता, सदा अयोग्य व्यक्ति, वा बिबाहके पूर्व रजस्वला हुई कन्याके अथवा शूद्रीके साथ विवाह करनेवाले ब्राह्मणको श्राद्धकी सामग्री देता है ॥ ३४ ॥

मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भ्रातृनिन्दकः ।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३५ ॥

मद्य पीनेवाला, धर्म मर्यादा तोडनेवाला, कृतघ्न और भर्ताकी निन्दा करनेवाला है, इन सब लोगोंके लिये जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसीको मैं भी शीघ्र ही प्राप्त करूं, यदि मैं जयद्रथको मार न डालूं ॥ ३५ ॥

धर्मादपेता ये चान्ये मया नाम्नानुकीर्तिताः ।
ये चानुकीर्तिताः क्षिप्रं तेषां गतिमवाप्नुयाम्
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ ३६ ॥

जिन अधर्मियोंका नाम मैंने लिया है और दूसरे भी जो बहुतसे धर्मरहित पुरुषोंका मैंने नाम नहीं लिया है, उनकी जो दुर्गति होती है, यदि मैं यह रात बीत जानेपर कल जयद्रथका बध न करूं, तो मुझे भी वही गति शीघ्रही प्राप्त होवे ॥ ३६ ॥

इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ।
यमास्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव संप्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ३७ ॥

इसके अतिरिक्त और भी मैं दूसरी यह प्रतिज्ञा करता हूं उसे भी फिर आप सब लोग सुनिये, इस पापी जयद्रथके मारे जानेसे पहले ही सूर्य अस्ताचलको चले जायँगे, तो इस ही स्थलपर मैं जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके प्राण त्याग करूंगा ॥ ३७ ॥

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥ ३८ ॥

देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, सर्प, पितर, निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि आदि यह चराचर जगत् तथा इनसे भी श्रेष्ठ जो कुछ है वह– ये सब मिलकर भी मेरे सम्मुखसे हमारे उस शत्रु जयद्रथकी रक्षा करनेमें समर्थ न हो सकेंगे ॥ ३८ ॥

यदि विशति रसातलं तदग्र्यं वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिपत्य रिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ३९ ॥

यदि वह पाताल, या उससे भी आगे अथवा आकाश, देवलोक वा दितिलोकोंमें भी प्रवेश करे, तो भी मैं कल उसके समीपमें गमन करके सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे उस घोर शत्रुका शिर काटकर गिराऊंगा ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद्दिवम् ॥ ४० ॥

ऐसा बचन कहके अर्जुन बायें और दहिने हाथसे गाण्डीव धनुष चढाते हुए धनुष टङ्कार करने लगे; वह धनुष टङ्कारका शब्द दूसरे शब्दोंको अतिक्रम करके आकाशमें व्याप्त हो गया ॥ ४० ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं धनंजयः ॥ ४१ ॥

जब अर्जुनने इस प्रकारसे प्रतिज्ञा की, तब श्रीकृष्णने अत्यंत क्रुद्ध होकर पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया और अर्जुन भी अपने देवदत्त शंखको बजाने लगे ॥ ४१ ॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।
जगत्सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगात्ययये यथा ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णके मुखवायुसे पूरित अत्यन्त भयंकर ध्वनि प्रकट करनेवाले पाञ्चजन्य शंखके शब्दसे पाताल, आकाश, दिशा और दिक्पालों सहित जग प्रलय कालके समयके अनुसार कम्पित होने लगा ॥ ४२ ॥

ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्समन्ततः ।
सिंहनादाश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ समाप्तमभिमन्युवधपर्व ॥ १९९४ ॥

महात्मा अर्जुनके इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेपर चारों ओरसे पाण्डवोंकी सेनामें युद्धके जुझाऊ बाजोंके सहित बीरोंके सिंहनाद सुनाई देने लगे ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ अभिमन्युवधपर्व समाप्त ॥ १९९४ ॥

: ५२ :

सञ्जय उवाच

श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां पुत्रगृद्धिनाम् ।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! सिन्धुराजके पुत्र राजा जयद्रथ पुत्रवत्सल पाण्डवोंके उस महाघोर शब्दको सुनकर तथा दूतोंके मुखसे अर्जुनकी प्रतिज्ञाका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर अपने शिबिरसे उठे ॥ १ ॥

शोकसंमूढहृदयो दुःखेनाभिहतो भृशम् ।
मज्जमान इवागाधे विपुले शोकसागरे ॥ २ ॥

उनका हृदय शोकसे मोहित हो गया और वे अत्यन्त दुःखित और आर्त्त हो गये; तथा शोकके विशाल और अगाध समुद्रमें डूबते हुए ॥ २ ॥

जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्बहु ।
स तेषां नरदेवानां सकाशे परिदेवयन् ॥ ३ ॥

अपने मन ही मन अनेक प्रकारकी चिन्ता करते हुए राजाओंकी सभामें गये और उन नरदेवोंके समीप रोने लगे ॥ ३ ॥

अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् ।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥ ४ ॥

वह अभिमन्युके पिता अर्जुनके डरसे भयभीत होकर लज्जापूर्वक यह वचन बोले— जो पाण्डुकी पत्नीके क्षेत्रमें कामी इन्द्रके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है ॥ ४ ॥

स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् ।
तत्स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया ॥ ५ ॥

वह दुर्बुद्धि अर्जुन केवल अकेले मुझे ही यमपुरीमें भेजनेकी इच्छा करता है । आप लोगोंका कल्याण होवे, मैं अपनी प्राणरक्षाके निमित्त इसी समय यहांसे गमन करके अपने घरपर चला जाऊंगा ॥ ५ ॥

अथ वा स्थ प्रतिबलास्त्रातुं मां क्षत्रियर्षभाः ।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते ददन्तु ममाभयम् ॥ ६ ॥

अथवा हे क्षत्रिय वीर श्रेष्ठ पुरुषो ! आप लोग उस अर्जुनके विरुद्ध अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके मेरी रक्षा करें; अर्जुनने मेरे प्राण लेनेकी प्रतिज्ञा की है, इसलिये आप मेरी रक्षा करके मुझे अभय कीजिये ॥ ६ ॥

द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाह्लिकाः ।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुमप्यन्तकार्दितम् ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, मद्रराज शल्य, बाह्लिक, दुःशासन आदि आप सब वीर यमराजके संकटसे भी मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥

किमङ्ग पुनरेकेन फल्गुनेन जिघांसता ।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥ ८ ॥

जब अकेले अर्जुन मुझे मारनेकी इच्छा करता है, तब उनके हाथसे तुम सब भूमिपति मेरी रक्षा कैसे नहीं कर सकेंगे ? ॥ ८ ॥

प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम् ।
सीदन्तीव च मेऽङ्गानि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ॥ ९ ॥

पाण्डवोंके हर्षनादको सुनकर मैं अत्यन्त ही भयभीत हो गया हूं, मरणासन्न पुरुषके समान मेरे सारे अंग शिथिल हो रहे हैं ॥ ९ ॥

वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना ।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककालेऽपि पाण्डवाः ॥ १० ॥

गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनने अवश्यही मेरे वधके निमित्त प्रतिज्ञा की है, इसलिये ही पाण्डव लोग इस शोकके समयमें हर्षपूर्वक सिंहनाद कर रहे हैं ॥ १० ॥

न देवा न च गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥

देवता, गन्धर्व, असुर, सर्प और राक्षसलोग भी अर्जुनकी प्रतिज्ञाको निष्फल करनेको उत्साह नहीं कर सकते, तो आप लोग मनुष्योंके राजा होकर क्या कर सकेंगे ? ॥ ११ ॥

तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः ।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥

इससे आप लोगोंका मङ्गल होवे; आप सब कोई मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये । मैं इस प्रकारसे अदृश्य होकर गमन करूंगा, जिससे पाण्डवलोग मुझे न देख सकें ॥ १२ ॥

एवं विलपमानं तं भयाद्व्याकुलचेतसम् ।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

राजा दुर्योधन अपने कार्यकी श्रेष्ठताका विचार करते हुए, भयसे व्याकुल चित्त होकर विलाप करते हुए राजा जयद्रथको देखकर यह वचन बोले ॥ १३ ॥

न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वा पुरुषर्षभ ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि ॥ १४ ॥

हे नरव्याघ्र ! पुरुषश्रेष्ठ ! तुम भय मत करो, इन सम्पूर्ण क्षत्रिय वीरोंके वीचमें खडे रहनेपर कौन तुम्हें युद्धभूमिमें मारनेके लिये आवाहन कर सकेगा ? ॥ १४ ॥

अहं वैकर्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥

मैं, सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर वीर वृषसेन ॥ १५ ॥

पुरुमित्रो जयो भोजः काम्भोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखः सहः ॥ १६ ॥

पुरुमित्र, जय, भोज, काम्बोजराज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, सह ॥ १६ ॥

दुःशासनः सुबाहुश्च कलिङ्गश्चाप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिः ससौबलः ॥ १७ ॥

दुःशासन, सुबाहु, शस्त्रधारी कलिङ्गराज, अवन्तिनगरीके राजा विन्द और अनुविन्द, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और शकुनि— ये सब तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ १७ ॥

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युतिः ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १८ ॥

हे सिन्धुराज ! तुम भी स्वयं महातेजस्वी, शूरवीर तथा रथियोंमें श्रेष्ठ हो; तो तुम किस निमित्त पाण्डवोंसे अपने लिये भय देखते हो ? ॥ १८ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम् ॥ १९ ॥

विशेष करके मेरी यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना तुम्हारी रक्षा करनेके निमित्त यत्न पूर्वक शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करेगी । हे सिन्धुराज जयद्रथ ! इससे तुम अपने चित्तके शोकको दूर करो, तुम्हें कुछ भी भय नहीं है ॥ १९ ॥

एवमाश्वासितो राजन्पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २० ॥

हे राजन् ! सिन्धुराज जयद्रथ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके ऐसे वचनोंको सुनकर धीरज धारण कर रात्रिके समय दुर्योधनके साथ द्रोणाचार्यके समीप गये ॥ २० ॥

उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशां पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २१ ॥

पृथ्वीपते ! अनन्तर राजा जयद्रथ द्रोणाचार्यकी चरणवन्दना कर उनके समीपमें बैठके विनीतभावसे यह वचन बोले ॥ २१ ॥

निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान्विशेषं फल्गुनस्य च ॥ २२ ॥

निमित्त, निश्चय, दूरतक शस्त्र चलाने और हस्तलाघवमें मुझसे अर्जुनमें कितनी विशेषता है; उसे आप मुझे वर्णन कीजिये ॥ २२ ॥

विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
ममार्जुनस्य च विभो यथातत्त्वं प्रचक्ष्व मे ॥ २३ ॥

हे आचार्य ! मुझसे अर्जुनमें विशेष विद्या कौनसी है, उसे मैं तुम्हारे समीपसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप इस विषयको यथार्थ रीतिसे वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥

द्रोण उवाच

समसमाचार्यकं तात तव चैवार्जुनस्य च ।
योगाद्दुःखोचितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे तात ! गुरुका उपदेश तुम दोनोंको समान रूपसे मिला है, परन्तु योग साधन और बनवासके दुःखोंको सहनेसे अर्जुन तुमसे अधिक सामर्थ्यवान् हुआ है ॥२४॥

न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात्कथञ्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः ॥ २५ ॥

तोभी तुम युद्धमें अर्जुनसे तनिक भी भय मत करो, क्योंकि मैं उनके भयसे तुम्हारी रक्षा करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥

न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
व्यूहिष्यामि च तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥ २६ ॥

जो मेरे बाहुबलसे रक्षित होता है, उसके ऊपर देवता भी अपने बलको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं होते । मैं कल एक ऐसा व्यूह बनाऊंगा, कि अर्जुन उसे भेद नहीं कर सकेगा ॥ २६ ॥

तस्माद्युध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि नराधिप ॥ २७ ॥

हे नरेश ! इसलिये तुम युद्ध करना, तुम कुछ भी भय मत करो, तुम्हारे पितर और पितामह जिस मार्गसे गये हैं, तुम भी उस ही मार्गसे गमन करके अपने क्षत्रिय धर्मका पालन करो ॥ २७ ॥

अधीत्य विधिवद्वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया ।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युभयाद्भयम् ॥ २८ ॥

तुमने विधिपूर्वक बेद पढके, अग्निमें अच्छी तरहसे आहुतियोंका प्रदान किया है, तुमने बहुतसे यज्ञोंको पूर्ण किया है, तब तुम्हें मृत्युसे क्या भय है ? ॥ २८ ॥

दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान्दिव्यान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥ २९ ॥

अभागी पुरुषोंके लिये दुर्लभ ऐसे मृत्युरूप परम भाग्यको युद्धमें पाकर तुम अपने बाहुबलसे उपार्जित दिव्य तथा श्रेष्ठ लोकोंमें गमन कर सकोगे ॥ २९ ॥

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः ।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३० ॥

ये कौरव, पाण्डव, यदुवंशी लोग, दूसरे मनुष्य, मैं और मेरा पुत्र–सब ही को अस्थिर-नाशवान् समझो ॥ ३० ॥

पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३१ ॥

समयके अनुसार हम सब लोग बलवान् कालके हाथों मारे जाकर अपने कर्मके अनुकूल परलोकमें गमन करेंगे ॥ ३१ ॥

तपस्तप्त्वा तु याँल्लोकान्प्राप्नुवन्ति तपस्विनः ।
क्षत्रधर्माश्रिताः शूराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३२ ॥

तपस्वी लोग तपस्या करके जिन सम्पूर्ण उत्तम लोकोंमें गमन करते हैं, क्षत्रियधर्मको अवलम्बन करनेवाले शूरवीर क्षत्रिय लोग भी उन श्रेष्ठ ही लोकोंमें गमन करते हैं ॥ ३२ ॥

सञ्जय उवाच

एवमाश्वासितो राजान्भारद्वाजेन सैन्धवः ।
अपानुदद्भयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ २०२७ ॥

संजय बोले– हे राजन् ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके इस प्रकारसे आश्वासन तथा धीरज देनेपर सिन्धुराज जयद्रथने अर्जुनका भय छोड दिया और उन्होंने युद्ध करनेमें अपना चित्त लगाया ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ २०२७ ॥

: ५३ :

संजय उवाच

प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयमभाषत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! जब अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके बधकी प्रतिज्ञा कर ली, तब वसुदेवपुत्र महाबाहु श्रीकृष्ण अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

भ्रातॄणां मतमाज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं श्वोऽस्मि हन्तेति तत्साहसतमं कृतम् ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! तुमने अपने भाइयोंके अभिप्रायको न जानते ही वाणीसे जो प्रतिज्ञा की है, कि ' मैं कल सिन्धुराज जयद्रथका वध करूंगा, ' यह तुमने अत्यंत साहसका कर्म किया है ॥ २ ॥

असंमन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं नु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥

तुम मेरे सङ्ग बिना परामर्श किये ही जो अत्यन्त कठिन भारके उठानेमें तैयार हुए हो; इसलिये जिसमें सम्पूर्ण पुरुषोंके बीच हम लोगोंकी हंसी न होवे, मैं उस ही उपायका विचार रहा हूं ॥ ३ ॥

धार्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥

मैंने दुर्योधनके शिविरमें अपने गुप्त दूत भेजे थे, वे शीघ्रताके सहित वहांसे आकर मुझे उधरका समाचार बता गये हैं ॥ ४ ॥

त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे तदा ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥

जिस समय तुमने सिन्धुराज जयद्रथके वध करनेके निमित्त प्रतिज्ञा की थी, उस समयमें यहांपर सिंहनाद और रणबाजोंका महान् शब्द हुवा था; उसे कौरवोंने सुना था ॥ ५ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाकस्मात्सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

उस ही शब्दको सुनकर जयद्रथ सहित सब धृतराष्ट्र पुत्र भयभीत हो गये । वे लोग विना कारणके यह सिंहनाद नहीं हुआ है ऐसा समझकर युद्धके निमित्त सावधान हो गये ॥६॥

सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥

हे महाबाहो ! उस समयमें उन कौरव लोगोंकी सेनामें ही महान् जोरसे शब्द हुआ; हाथी, घोडे, पैदल चलनेवाले योद्धा और रथसेनाओंका घोर अत्यन्त तुमुल शब्द हुआ था ॥७॥

अभिमन्युवधं श्रुत्वा ध्रुवमार्तो धनञ्जयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

वे लोग यही समझ कर युद्धके निमित्त तैयार होके खडे हुए कि अर्जुन अभिमन्युके वधका वृत्तान्त सुनकर दुःखसे आर्त्त और क्रुद्ध होकर आज रात्रिके समयमें ही युद्धके निमित्त शिविरसे बाहर निकल पडेंगे ॥ ८ ॥

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥

हे कमललोचन अर्जुन ! उन लोगोंने इसी प्रकारसे युद्धके निमित्त सावधान होनेपर, जयद्रथके वधके निमित्त सदा सत्य बोलनेवाले तुम्हारी दृढ प्रतिज्ञा सुनी ॥ ९ ॥

ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन्सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

और तुम्हें सत्यप्रतिज्ञ समझके सुयोधनके मन्त्री और स्वयं राजा जयद्रथ–आदि सब योद्धा लोग क्षुद्र हरिणोंके समान भयभीत और उदास हो गये ॥ १० ॥

अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात्सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥

अनन्तर सिन्धु और सौवीर देशके राजा जयद्रथ अत्यन्त दुःखित तथा कातर होके अनुयायियोंके सहित उठकर अपने शिबिरपर आ गये ॥ ११ ॥

स मन्त्रकाले संमन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीः क्रियाः ।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२ ॥

अनन्तर उन्होंने मन्त्रणाके समय अपने कल्याणके कार्योंके सम्बंधमें मंत्रियोंसे विचार करके सम्पूर्ण राजाओंकी सभामें जाकर सुयोधनके समीपमें यह वचन कहा ॥ १२ ॥

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः ।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥

वह अर्जुन मुझे अपने पुत्रका वध करनेवाला समझकर कल युद्धभूमिमें मुझपर आक्रमण करेगा । अर्जुनने सेनाके बीच मेरे वध करनेके निमित्त प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥

तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥

उस सव्यसाची अर्जुनकी उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, सर्प और राक्षस आदि भी मिथ्या करनेका उत्साह नहीं कर सकते ॥ १४ ॥

ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः ।
पदं कृत्वाप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥

इससे आप लोग युद्धभूमिमें मेरी रक्षा कीजिये, जिससे वह आप लोगोंके शिरको पददलित करके अपना लक्ष्य ग्रहण न कर सके, आप लोग वैसे ही उपायका विधान कीजिये ॥१५॥

अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि गृहान्प्रति ॥ १६ ॥

कुरुनन्दन ! राजन् ! यदि आप लोग युद्धमें मेरी रक्षा न कर सकें, तो मुझे आज्ञा दो, मैं घर जानेके निमित्त यहांसे प्रस्थान करूंगा ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः ।
श्रुत्वाभिशप्तवन्तं त्वां ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥

जब जयद्रथने सुयोधनसे ऐसा वचन कहा, तब सुयोधन तुम्हारी प्रतिज्ञा सुनकर शिर नीचाकर दुःखित चित्त होके तुम्हारी निंदा करते हुए चिन्ता करने लगे ॥ १७ ॥

तमार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चात्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥

सिन्धुराज जयद्रथ सुयोधनको दुःखित चित्तसे चिन्ता करते हुए देखकर अपने हितके निमित्त कोमल और सापेक्ष यह वचन बोले ॥ १८ ॥

नाहं पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्यास्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥

मैं तुम्हारी सेनाके बीच ऐसे किसी धनुर्द्धर पुरुषको भी नहीं देखता हूं, जो महायुद्धमें अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके अस्त्रोंका निवारण कर सके ॥ १९ ॥

वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्ठेत्साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥

श्रीकृष्णकी सहायतासे युक्त अर्जुन गाण्डीव धनुष ग्रहण करके युद्धभूमिमें अपने बाणोंको चलाते रहे, तो उनके सामने कौन खडा रह सकता है ? साक्षात् इन्द्र भी उनके विरुद्ध संग्रामभूमिमें सम्मुख नहीं खडे हो सकेंगे ॥ २० ॥

महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महातेजा गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २१ ॥

मैंने सुना है, कि अर्जुनने पहले हिमालय पर्वतके ऊपर पैदल ही खडा होके अत्यन्त तेजस्वी महादेवके सङ्ग युद्ध किया था ॥ २१ ॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२ ॥

देवताओंके राजा इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार केवल एक रथकी सहायतासे हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंका वध किया था ॥ २२ ॥

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन्निहन्यादिति मे मतिः ॥ २३ ॥

मेरे विचारमें यह निश्चय होता है, कि कुन्तीपुत्र अर्जुन वसुदेवनन्दन बुद्धिमान् श्रीकृष्णके सङ्ग मिलके देवताओंके सहित तीनों लोकोंका भी संहार कर सकता है ॥ २३ ॥

*

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना ।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥

इसलिये आप आज्ञा कीजिये, तो मैं घर चला जाऊं । अथवा यदि आपका मत होवे, तो महात्मा पराक्रमी द्रोणाचार्य अपने पुत्रके सहित मिलकर मेरी रक्षा करें ॥ २४ ॥

स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमाक्रन्दितोऽर्जुन ।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! अनन्तर स्वयं राजा दुर्योधनने जयद्रथकी रक्षाके निमित्त रुदन करके द्रोणाचार्यसे अनुरोध किया । फिर उसकी रक्षाकी पूर्ण व्यवस्था कर दी गयी है और रथ भी सज्ज किये गये हैं ॥ २५ ॥

कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥

कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय वृषसेन, कृपाचार्य और मद्रराज शल्य,– ये छः महारथी योद्धा जयद्रथके आगे युद्धभूमिमें स्थित होंगे ॥ २६ ॥

शकटः पद्मपश्चार्धो व्यूहो द्रोणेन कल्पितः ।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपाशे जयद्रथः ।
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराड्युद्धदुर्मदैः ॥ २७ ॥

द्रोणाचार्य एक अद्भुत व्यूहकी रचना करेंगे, उस व्यूहके अगाडीका आधा हिस्सा शकटाकार और पीछेका आधा भाग पद्मकी आकृतिके समान रहेगा; इस ही पद्मकी कर्णिकाके बीचके भागमें और एक सूचीव्यूह बनावेंगे; उसही सूचीव्यूहके बीचमें सिन्धुदेशके राजा जयद्रथ उन सम्पूर्ण युद्धदुर्मद महावीर योद्धाओंके द्वारा रक्षित होकर स्थित होंगे ॥ २७ ॥

धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथोरसि ।
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः ।
एतानजित्वा सगणान्नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥ २८ ॥

धनुर्विद्या, अस्त्रोंके चलाने, पराक्रम, प्राणशक्ति और मनोबलमें ये छहों निमित्त किये गये रथी अत्यंत असहनीय माने गये हैं; उन लोगोंको उनके अनुयायियोंके सहित विना पराजित किये तुम जयद्रथके समीपमें नहीं जा सकोगे ॥ २८ ॥

तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय ।
सहिता हि नरव्याघ्रा न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ २९ ॥

हे पुरुषसिंह ! इन छहों रथियोंमेंसे एक–एकके बल पराक्रमको तुम विचार करके देखो तो सही ! उसपर भी उन छहोंके एक ही स्थानपर इकट्ठे होनेपर, उन लोगोंको सुगमतासे नहीं जीता जा सकता ॥ २९ ॥

भूयश्च चिन्तयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै ।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! हम लोग फिर इस विषयमें मन्त्री, अनुयायी राजा और सुहृद्मित्रोंके सहित अपने कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त विचार करेंगे ॥ ३० ॥

अर्जुन उवाच

षड्रथान्धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान्बलाधिकान् ।
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति लक्षये ॥ ३१ ॥

अर्जुन बोले— हे श्रीकृष्ण ! तुम दुर्योधनके ऊपर कहे हुए छः रथियोंको अधिक बलवान् समझते हो, परन्तु उन लोगोंका बल पराक्रम मेरे आधे पराक्रमके समान भी नहीं होगा ऐसा मैं देखता हूं ॥ ३१ ॥

अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन ।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ ३२ ॥

हे मधुसूदन ! मैं जब जयद्रथके वध करनेकी इच्छासे युद्ध करूंगा; तब तुम उन सम्पूर्ण रथियोंके अस्त्रशस्त्रोंको मेरे अस्त्रोंसे कटकर पृथ्वीमें गिरते हुए देखोगे ॥ ३२ ॥

द्रोणस्य मिषतः सोऽहं सगणस्य विलप्यतः ।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३३ ॥

मैं कल सिन्धुराज जयद्रथके शिरको द्रोणाचार्यके संमुखहीमें काटकर भूतलमें गिरा दूंगा; उसे देखके द्रोणाचार्य अनुयायियोंके सहित विलाप करेंगे ॥ ३३ ॥

यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथासुराः ॥ ३४ ॥

साध्य, रुद्र, वसु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वे देव और असुर ॥ ३४ ॥

पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागराद्रयः ।
द्यौर्वियत्पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ३५ ॥

पितर, गन्धर्व, गरुड, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग, आकाश, यह पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशाएं और दिक्पाल ॥ ३५ ॥

ग्राम्यारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ३६ ॥

ग्रामवासी और वनबासी और सम्पूर्ण चराचर प्राणी भी यदि सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥

तथापि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया ।
सत्येन ते शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ३७ ॥

हे मधुसूदन श्रीकृष्ण ! तोभी मैं अपने आयुधोंको स्पर्श करके सत्यकी शपथ करता हूं, कि तुम सिन्धुराज जयद्रथको मेरे बाणोंसे युद्धमें कल मारा हुआ देखोगे ॥ ३७ ॥

यश्च गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः ।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ३८ ॥

केशव ! महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य जो उन दुर्बुद्धि पापीकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हैं, तो मैं पहिले द्रोणाचार्यहीपर आक्रमण करूंगा ॥ ३८ ॥

तस्मिन्द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स्म सुयोधनः ।
तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥ ३९ ॥

जयद्रथ बध पण (बाजी) विषयक उस युद्धरूपी जुएके खेलमें दुर्योधन जिसके पराक्रमसे अभिमान करता है, मैं उसहीके सेनाके अग्रभागका भेद करके सिन्धुराज जयद्रथके समीप उपस्थित होऊंगा ॥ ३९ ॥

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान्नाराचैस्तिग्मतेजनैः ।
श्रृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान्मया युधि ॥ ४० ॥

तुम कल युद्धमें मेरे तेजस्वी तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे उन महाधनुर्द्धर वीरोंको इस प्रकारसे क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त देखोगे, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंके शिखरोंको विदीर्ण करते हैं ॥४०॥

नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम् ।
पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ४१ ॥

मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर गिरते और गिरे हुए मनुष्य, हाथी और घोडोंके शरीरोंसे रुधिर बहेगा ॥ ४१ ॥

गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोनिलसमा जवे ।
नृनागाश्वान्विदेहासून्कर्तारश्च सहस्रशः ॥ ४२ ॥

कल तुम देखोगे, मेरे गाण्डीवधनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण मन और वायुके समान वेगशील होकर, शत्रुओंके सहस्रों मनुष्य, हाथी और घोडोंको शरीर और प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा रहे हैं ॥ ४२ ॥

यमात्कुबेराद्वरुणाद्रुद्रादिन्द्राच्च यन्मया ।
उपात्तमस्त्रं घोरं वै तद्द्रष्टारो नरा युधि ॥ ४३ ॥

मैंने यम, कुबेर, बरुण, रुद्र और इन्द्रके समीपमें जिन घोर अस्त्रोंको प्राप्त किया है, उनको कलके युद्धमें सम्पूर्ण मनुष्य देखेंगे ॥ ४३ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमानानि संयुगे ।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याभिरक्षिणाम् ॥ ४४ ॥

जो लोग जयद्रथकी युद्धभूमिमें रक्षा करेंगे, तुम उन सम्पूर्ण योद्धाओंके छोडे हुए अस्त्रोंको मेरे ब्रह्मास्त्रसे नष्ट होते हुए कल तुम देखोगे ॥ ४४ ॥

शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः ।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥ ४५ ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुम कल युद्धमें मेरे बाणोंके वेगसे कटे हुए राजपुरुषोंके शिरोंसे पृथ्वीको परिपूरित हुई देखोगे ॥ ४५ ॥

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।
सुहृदो नन्दयिष्यामि पातयिष्यामि सैन्धवम् ॥ ४६ ॥

मैं कल मांसकी अभिलाषा करनेवाले जीवोंको तृप्त करूंगा, शत्रुओंको तितर बितर करते हुए, सुहृद् मित्रोंको आनन्दित करके, सिन्धुराज जयद्रथका वध करूंगा ॥ ४६ ॥

बह्वागस्कृत्कुसंबन्धी पापदेशसमुद्भवः ।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वाञ्शोचयिष्यति ॥ ४७ ॥

पापमय प्रदेशमें उत्पन्न हुआ, अत्यंत अपराधी और कुसम्बन्धी सिन्धुराज जयद्रथ मेरे अस्त्रोंसे मारा जाकर अपने इष्ट मित्रोंको शोकित करेगा ॥ ४७ ॥

सर्वक्षीरान्नभोक्तारः पापाचारा रणाजिरे ।
मया सराजका बाणैर्नुन्ना नंक्ष्यन्ति सैन्धवाः ॥ ४८ ॥

तुम सब प्रकारसे क्षीर और अन्नका भोजन करनेवाले, पापी सिन्धु देशके वीर राजा जयद्रथके सहित कल मेरे बाणोंसे मरकर नष्ट हुए देखोगे ॥ ४८ ॥

तथा प्रभाते कर्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः ।
नान्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ ४९ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैं कल सबेरे ऐसा युद्ध कार्य करूंगा, जिससे दुर्योधन युद्धक्षेत्रमें जगत्में दूसरे किसी धनुर्धरको मेरे समान नहीं मानेगा ॥ ४९ ॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥ ५० ॥

हे नरश्रेष्ठ ! हृषीकेश ! जहांपर दिव्य गाण्डीव धनुष, मैं योद्धा और तुम सारथि हो, उस स्थलमें मुझसे अजेय कौन है ? ॥ ५० ॥

यथा हि लक्ष्म चन्द्रे वै समुद्रे च यथा जलम् ।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ ५१ ॥

हे जनार्दन ! जैसे चन्द्रमामें निश्चय ही कलङ्कका चिन्ह और समुद्रमें सदा जल उपस्थित रहता है, उसी प्रकारसे तुम हमारी इस प्रतिज्ञाकोभी निश्चय ही सत्य समझो ॥ ५१ ॥

मावमंस्था ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम् ।
मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनञ्जयम् ॥ ५२ ॥

तुम हमारे सम्पूर्ण अस्त्रोंकी, मेरे दृढ धनुषकी, मेरे बाहुओंके बलकी और तुम्हारे भक्तसुहृद् मेरी अवमानना मत करो ॥ ५२ ॥

यथा हि यात्वा संग्रामे न जीये विजयामि च ।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ ५३ ॥

मैं रणभूमिमें गमन करके किसीके सम्मुखसे कभी पराजित नहीं होता, बल्कि विजयी होता रहता हूं; यह सत्य वचन प्रसिद्ध है; तुम उसही सत्यसे युद्धमें जयद्रथको मेरे अस्त्रोंसे मारा गया ही समझो ॥ ५३ ॥

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु संनतिः ।
श्रीर्ध्रुवा चापि दक्षेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ ५४ ॥

जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणोंमें निश्चय ही सत्य रहता है, जैसी साधु पुरुषोंमें सदा नम्रता रहती है और जैसी अत्यन्त कार्यदक्ष पुरुषके समीप सदा ही लक्ष्मी विद्यमान रहती है, वैसे ही जहां तुम नारायण विद्यमान् हैं वहां निश्चय ही विजय वर्तमान रहती है ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना ।
संदिदेशार्जुनो नर्दन्वासविः केशवं प्रभुम् ॥ ५५ ॥

सञ्जय बोले— इन्द्रपुत्र अर्जुन सब जगत्के प्रभु, साक्षात् परमात्मास्वरूप हृषीकेश श्रीकृष्णसे ऐसा बचन कहकर फिर यत्नपूर्वक सिंहनाद करके यह वचन बोले ॥ ५५ ॥

यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम ।
तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ २०८३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! रात्रि बीतनेपर सबेरे मेरा रथ जिस प्रकारसे सज्जित हुआ करता है, कल तुम उसी प्रकारसे मेरे रथको सज्जित करके तैयार रखना, क्योंकि कल बहुत बडा कार्य करना है ॥ ५६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ २०८३ ॥

: ५४ :

संजय उवाच

तां निशां दुःखशोकार्तौ श्वसन्ताविव चोरगौ ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज! श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंही उस रात्रिके समय शोक तथा दुःखसे आर्त होकर सर्पोंके समान लम्बी सांस छोडने लगे, किसी प्रकारसे उन्हें निद्राका सुख नहीं मिला ॥ १ ॥

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः ।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किं स्विदेतद्भविष्यति ॥ २ ॥

इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता नर और नारायणको क्रुद्ध और दुःखित देखकर व्यथित होकर यह चिन्ता करने लगे, कि न जाने कल कौनसी घटना होगी? ॥ २ ॥

ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः ।
सकबन्धस्तथादित्ये परिघः समदृश्यत ॥ ३ ॥

उस समय रूक्ष, दारुण और भयसूचक वायु बहने लगी, सूर्यमण्डलमें कबन्धके सहित परिघि देख पडा ॥ ३ ॥

शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥

आकाशसे उल्कापात होने लगे, बादलहीन आकाशमें बिजलीके कडकनेके साथ गर्जन सुनाई देने लगा, बन, उपवन और पर्वतोंके सहित पृथ्वी कांपने लगी ॥ ४ ॥

चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
प्रतिस्रोतःप्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥

तथा मगरोंके स्थान समुद्रोंका जल उथलने लगा। समुद्रकी ओर बहनेवाली नदियां अपने उद्गमकी ओर जाने लगीं ॥ ५ ॥

रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥

मांस भक्षण करनेवाले पशुपक्षियोंका हर्षित और यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करनेके निमित्त रथ, हाथी, घोडे और मनुष्योंके नीचे-ऊपरके ओठ फडकने लगे ॥ ६ ॥

वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
तान्दृष्ट्वा दारुणान्सर्वानुत्पाताँल्लोमहर्षणान् ॥ ७ ॥

सवारीके सम्पूर्ण वाहन मलमूत्र त्याग करते हुए रुदन करने लगे । रोएंको खडे करनेवाले उन सम्पूर्ण महाभयङ्कर उत्पातोंको देख ॥ ७ ॥

सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥

हे भरतश्रेष्ठ और महाबलवान् सव्यसाची अर्जुनकी उग्र प्रतिज्ञाको सुनकर तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण वीर योद्धालोग व्याकुल हो गये ॥ ८ ॥

अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनिः ।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥ ९ ॥

इधर इन्द्रपुत्र महाबाहु अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, हे माधव ! तुम्हारी बहन सुभद्रा और उसकी पुत्रबधू अभिमन्युके शोकसे कातर हुई होंगी, तुम जाके उन्हें धीरज धारण कराओ ॥ ९ ॥

स्नुषा श्वश्र्वावनघायस्ते विशोके कुरु माधव ।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाश्वासय प्रभो ॥ १० ॥

माधव ! समयके अनुसार शान्तिभरे, सत्य और उचित वचन कहकर निर्मल सुभद्रा, पुत्रबधू और सखियोंका शोक दूर कीजिए और उन सबको आश्वासन दीजिये ॥ १० ॥

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त दुःखित होकर अर्जुनके शिबिरमें जाकर पुत्रशोकसे अत्यन्त आर्त्त हुई अपनी दुःखित बहिन सुभद्राको धीरज देते हुए उसे शान्त करने लगे ॥ ११ ॥

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥

हे सुभद्रे ! तुम और पुत्रबधू कुमार अभिमन्युके निमित्त शोक मत करो, हे भीरु ! कालने सम्पूर्ण प्राणियोंकी ऐसी ही गतिका विधान किया है ॥ १२ ॥

कुले जातस्य वीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ।
सदृशं मरणं ह्येतत्तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥

तुम्हारा पुत्र उत्तम कुलमें उत्पन्न, वीर और विशेष करके क्षत्रिय था, यह मृत्यु उसके योग्य हुई है, सो शोक न करो ॥ १३ ॥

दिष्ट्या महारथो वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥

पिताके समान पराक्रमी वीर तुम्हारे महारथी पुत्रकी प्रारब्ध हीसे ऐसी मृत्यु हुई है; तुम्हारे पुत्रने क्षत्रिय धर्मके अनुसार कर्तव्य कर्मका पालन करके, वीर पुरुषोंकी अभिलषित गतिको प्राप्त किया है ॥ १४ ॥

जित्वा सुबहुशः शत्रून्प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
गतः पुण्यकृतां लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥

अनेक शत्रुओंको जीतकर और बहुतोंको यमपुरीमें भेजकर, उसने पुण्यात्मा पुरुषोंके पाने योग्य, सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले श्रेष्ठ तथा अक्षय लोकोंमें गमन किया है ॥ १५ ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च ।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति प्राप्तस्तां तव पुत्रकः ॥ १६ ॥

साधुपुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और बुद्धिसे जो गति पानेकी इच्छा करते हैं, तुम्हारे पुत्रने उस ही गतिको प्राप्त किया है ॥ १६ ॥

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरश्वशुरबान्धवा ।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥

हे भद्रे ! तुम वीरमाता, वीर पत्नी, वीर कन्या और वीर श्वशुर बान्धवोंसे युक्त हो, इससे परमगति पानेवाले अपने पुत्रके निमित्त शोक मत करो ॥ १७ ॥

प्राप्स्यते चाप्यसौ क्षुद्रः सैन्धवो बालघातकः ।
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८ ॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत् ।
न हि मोक्ष्यति पार्थात्स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥

हे वरारोहे ! इस रात्रिके बीतनेपर प्रातःकाल होते ही वह क्षुद्र अभिलाष करनेवाला शिशु-घाती पापी सिन्धुराज जयद्रथ अपने इष्टमित्र और बन्धु बान्धवोंके सहित अपने किये हुए अपराधका फल पावेगा । वह यदि इन्द्रपुरीमें प्रवेश करें, तो भी अर्जुनके बाणोंसे जीता न बचेगा ॥ १८–१९ ॥

श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥

कल तुम सुनोगी, कि युद्धमें जयद्रथका शिर अर्जुनके बाणसे काटा जाकर समन्त पंचकके क्षेत्रसे बाहर जा गिरा हुआ है । इसलिये शोकका त्याग करो, रुदन मत करो ॥ २० ॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां वयं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥

हमलोग तथा दूसरे शस्त्रधारी वीर पुरुष जो गति पानेकी अभिलाष करते हैं, तुम्हारे बल और पराक्रमसे युक्त महारथ पुत्र अभिमन्युने क्षत्रिय धर्मको अनुसरण करके सत्पुरुषोंकी उस ही गतिको प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती वरप्रणुत् ।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥

वरारोहे ! अत्यन्त पराक्रमी बडी छातीवाला, महाबाहु युद्धसे पीछे न हटनेवाला तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु स्वर्गलोकमें गया है, उसके निमित्त तुम शोक मत करो ॥ २२ ॥

अनु जातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् ।
सहस्रशो रिपून्हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥

महा पराक्रमी, महारथी शूरवीर अभिमन्यु पितृ और मातृकुलका अनुगामी होकर सहस्रों शत्रुओंका नाश करके रणभूमिमें मरकर स्वर्गलोकमें गया है ॥ २३ ॥

आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम् ।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥

हे भद्रे ! हे सुभद्रे ! तुम शोक त्यागकर पुत्रवधूको धीरज दो । कल तुम बहुत बडे अत्यन्त प्रिय समाचारको सुनोगी, इससे शोक करनेका इसमें कौनसा विषय है ? ॥२४॥

यत्पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥

अर्जुनने जिसके कारण प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य सिद्ध होगी; उसे कोई पलट नहीं सकता; क्योंकि तुम्हारे पति जिस कार्यके करनेकी इच्छा करते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता ॥२५॥

यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च ।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरपि प्रभाते ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥ २१०९ ॥

कल सवेरा होनेपर यदि मनुष्य, सर्प, पिशाच, निशाचर, पक्षी, देवता वा राक्षस भी रणभूमिमें आये हुए सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करें, तो भी वह तो जीवित बचेगा ही नहीं, परन्तु उसके ये सम्पूर्ण रक्षक भी यमपुरीमें गमन करेंगे ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ २१०९ ॥

: ५५ :

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
सुभद्रा पुत्रशोकार्ता विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महात्मा श्रीकृष्णके ऐसे वचनोंको सुनकर पुत्रशोकसे आर्त हुई सुभद्रा अत्यन्त दुःखित होकर रुदन करने लगी ॥ १ ॥

हा पुत्र मम मन्दायाः कथं संयुगमेत्य ह ।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितृतुल्यपराक्रमः ॥ २ ॥

हा पुत्र ! हा तात ! तुम मुझ अभागिनीके गर्भमें आकर पिताके समान पराक्रमी होकर किस प्रकार रणभूमिमें मारे गये ? ॥ २ ॥

कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् ।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥ ३ ॥

हे तात ! तुम्हारे नीलकमलके समान श्यामवर्ण, सुन्दर दांत और मनोहर नेत्रोंसे युक्त प्रसन्न मुख इस समय रणभूमिकी धूलिसे आच्छादित होकर कैसा दीखता होगा ? ॥ ३ ॥

नूनं शूरं निपातितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम् ।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं निरूदरम् ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! तुम्हारे मुख, गर्दन, भुजा और कन्धे आदि सब मनोहर थे ! तुम्हारी छाती विशाल सुन्दर थी, तुम्हारा उदर शोभायमान और सुडौल था ! तुम बालक होकर भी शूरवीर योद्धा थे । तुम कभी युद्धसे पीछे नहीं हटते थे । इस समय सम्पूर्ण प्राणी तुमको मरे हुए पृथ्वीमें पड़े देख रहे हैं ॥ ४ ॥

चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् ।
भूतानि त्वा निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ५ ॥

हा पुत्र ! तुम्हारे दोनों नेत्र बड़े सुन्दर थे ! तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर ही अत्यन्त मनोहर था; तुम्हारा सारा शरीर अस्त्रशस्त्रोंकी चोटसे व्याप्त था ! सम्पूर्ण प्राणी तुम्हें रणभूमिमें उदित हुए दूसरे चन्द्रमाके समान देख रहे होंगे ॥ ५ ॥

शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् ।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥ ६ ॥

जो पहिले मूल्यवान् , सुन्दर और कोमल वस्त्रोंसे युक्त उत्तम शय्यापर शयन करता था, वही मेरा पुत्र अभिमन्यु सुख भोगनेके योग्य होनेपर भी आज अस्त्र शस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर पृथ्वीपर किस प्रकारसे शयन कर रहा होगा ? ॥ ६ ॥

योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः ।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ॥ ७ ॥

जिस महाबाहु वीर अभिमन्युके पास पहिले सुंदर स्त्रियां बैठती थीं, रणभूमिमें गिरे हुए उसके पास सियारिनें बैठी होंगी; यह सब कैसे हुआ ? ॥ ७ ॥

योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधबन्दिभिः ।
सोऽद्य क्रव्यादगणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते ॥ ८ ॥

पहिले सूत, मागध और बन्दीजन स्तुतिपाठ करते हुए प्रसन्नचित्तसे जिसकी उपासना करते थे, आज डरावनी बोली बोलनेवाले घोर मांसभक्षी प्राणी उसकी उपासना कर रहे होंगे ॥ ८ ॥

पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु चाभिभो ।
पाञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत् ॥ ९ ॥

हे विभो ! पाण्डव, वृष्णिवीर और पाञ्चाल योद्धा लोग तुम्हारे रक्षक थे, तो भी तुम्हें अनाथके समान किसने मारा ? ॥ ९ ॥

अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम् ॥ १० ॥

हे पुत्र ! हे पापरहित ! मैं तुमको देखकर तृप्तिका शेषफल नहीं प्राप्त कर सकी ! हाय ! मैं बहुत ही अभागिन हूं, मैं निश्चय ही आज यमलोकमें गमन करूंगी ॥ १० ॥

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च ।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥ ११ ॥

हे पुत्र ! तुम्हारे बडे बडे नेत्र, उत्तम केशोंसे युक्त, मनोहर और मीठे बचनोंके कहनेवाले सुन्दर सुगन्धित, व्रण रहित मुखको मैं अब कब देख सकूंगी ? ॥ ११ ॥

धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम् ।
धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पाञ्चालानां च धिग्बलम् ॥ १२ ॥

भीमसेन, अर्जुन धनुर्द्धारी सम्पूर्ण यदुवंशीय वीर योद्धा और पाञ्चालोंके बलको धिक्कार है ॥ १२ ॥

धिक्केकयांस्तथा चेदीन्मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान् ।
ये त्वा रणे गतं वीरं न जानन्ति निपातितम् ॥ १३ ॥

केकेय, चेदि मत्स्य और सृञ्जय देशीय योद्धाओंको भी धिक्कार है, जो रणभूमिमें गये हुए तुम जैसे वीरको मारा हुआ भी नहीं जान सके ॥ १३ ॥

अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम् ।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥

आज अभिमन्युको न देखनेके कारण मेरी आंखें शोक और दुःखसे व्याकुल हो पृथ्वीको मैं शोभारहित तथा सूनी देख रही हूं ॥ १४ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वा विरथं वीरं द्रक्ष्याम्यन्यैर्निपातितम् ॥ १५ ॥

तुम श्रीकृष्णके भानजे गाण्डीवधारी अर्जुनके पुत्र वीर योद्धा थे, ऐसी अवस्थामें मैं विरथ तुम्हें रणभूमिमें शत्रुओंसे गिराए हुए देख सकूंगी ? ॥ १५ ॥

हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे ।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १६ ॥

हा पुत्र ! तुम मेरे समीप स्वप्नमें मिले हुए धनके समान दिखाई देकर फिर नष्ट हो गये । हा ! मनुष्योंका प्रकृतिक जीवन पानीके बुलबुलेकी भांति चञ्चल और अनित्य है ॥ १६ ॥

इमां ते तरुणीं भार्यां त्वदाधिभिरभिप्लुताम् ।
कथं संधारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १७ ॥

हे पुत्र ! तुम्हारी यह तरुणी भार्या तुम्हारे विरहमें शोकसे डूबी हुई है, मैं इसको बछडे रहित व्याकुल गायके समान कैसे धीरज दे सकूंगी ? ॥ १७ ॥

अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥ १८ ॥

हा पुत्र ! मैं तुम्हारे दर्शन करनेके निमित्त अत्यन्त ही उत्सुक थी और तुम फल प्राप्त होनेके कालमें मुझे छोडकर असमयमें ही चले गये ॥ १८ ॥

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ १९ ॥

जब श्रीकृष्ण सहायता करनेके निमित्त उपस्थित थे, तो भी तुम अनाथके समान युद्धभूमिमें मारे गये, कालकी गति बुद्धिमानोंसे भी नहीं जानी जाती इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २० ॥

हे पुत्र ! यज्ञ करनेवाले, दानी पुण्यात्मा, जितेंद्रिय, ब्रह्ममें निष्ठावान्, ब्रह्मचारी पुण्य तीर्थोंमें अवगाहन करनेवाले ॥ २० ॥

कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २१ ॥

कृतज्ञ, दान देनेवाले उदार, गुरुकी सेवा करनेवाले और सहस्र दक्षिणा देनेवाले पुरुषोंको जो गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले ॥ २१ ॥

या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हत्वारीन्निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥ २२ ॥

शूरवीर योद्धा लोग, युद्धसे पीछे न हटके शत्रुओंका नाश करते हुए युद्धभूमिमें मरकर जिस गतिको प्राप्त करते हैं, तुम भी वही गति प्राप्त करो ॥ २२ ॥

गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
नैवेशिकं चाभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥ २३ ॥

सहस्र गौवें दान करनेवाले, यज्ञके निमित्त धन देनेवाले और इच्छानुसार गृहदान करनेवाले पुरुषोंको जो उत्तम गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले ॥ २३ ॥

ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः ।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २४ ॥

हे पुत्र ! ध्याननिष्ठ योगी और मुनि लोग ब्रह्मचर्य व्रत करके जो गति प्राप्त करते हैं, तुम्हें भी वही गति मिले । एक ही स्त्रीमें रत रहनेवाले पुरुषोंको जो गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले ॥ २४ ॥

राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती ।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २५ ॥

हे पुत्र ! राजाओंको उत्तम चरित और श्रेष्ठ कर्मोंसे जो गति मिलती है, तथा सुरक्षित पुण्यके पवित्र हुए चारों आश्रमोंके पुण्यात्मा पुरुषोंको जो सनातन गति मिलती है ॥ २५ ॥

दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम् ।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥

और जो लोग दीन दुःखियोंके ऊपर कृपा करते हैं, जो लोग सदा पुत्र कलत्र और सेवकोंको अन्न और वस्त्रको विभाग करके उन्हें प्रदान करते हुए सब वस्तुओंको उपभोग करते हैं, और जो लोग धूर्ततासे निवृत्त रहते है उन सम्पूर्ण पुरुषोंको जो गति होती है, वही तुम्हारी भी होवे ॥ २६ ॥

व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २७ ॥

हे पुत्र ! गुरुकी सेवा करनेवाले, व्रतमें निष्ठावान्, धर्मात्मा पुरुषोंकी और जिसके घरसे अतिथि निराश होकर नहीं लौट जाते हैं उनकी जो गति होती है, तुम भी उसही गतिको प्राप्त करो ॥ २७ ॥

ऋतुकाले स्वकां पत्नीं गच्छतां या मनस्विनाम् ।
न चान्यदारसेवीनां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥

हे पुत्र ! जो मनस्वी पुरुष ऋतुकाल होनेपर अपनी भार्यासे समागम करते हैं, और पराई स्त्रियोंकी ओर दृष्टि नहीं करते, उन लोगोंकी जो गति होती है, तुम्हारी भी वही गति होवे ॥ २८ ॥

साम्ना ये सर्वभूतानि गच्छन्ति गतमत्सराः ।
नारुन्तुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २९ ॥

हे पुत्र ! जो पुरुष द्वेष रहित होकर सब प्राणियोंको समभावकी दृष्टिसे देखते हैं, जो लोग दूसरेके मर्मपीडक नहीं बनते और जो क्षमावान् होते हैं, उन सम्पूर्ण पुरुषोंकी जो गति होती है, तुम्हारी भी वही गति होवे ॥ २९ ॥

मधुमांसनिवृत्तानां मदाद्दम्भात्तथानृतात् ।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥

हे पुत्र ! जो पुरुष मधु-मांस भक्षण करनेसे निवृत्त रहते हैं, जो लोग मद, दम्भ और मिथ्या व्यवहारोंको त्याग देते हैं, और जो दूसरेको दुःख देनेकी इच्छा नहीं करते, उन लोगोंकी जो गति होती है, तुम्हें वही गति मिले ॥ ३० ॥

ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः ।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३१ ॥

हे पुत्र ! लज्जाशील, सब शास्त्रोंके जाननेवाले, ज्ञानसे तृप्त हुए, जितेन्द्रिय साधु पुरुषोंको जो गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले ॥ ३१ ॥

एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम् ।
अभ्यपद्यत पाञ्चाली वैराटीसहिता तदा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार शोक और दुःखसे पीडित होकर विलाप करती हुई दीन वदना सुभद्राके पास उस ही समयमें विराट राजाकी कन्या उत्तराके सहित द्रौपदी वहांपर आके उपस्थित हुई ॥ ३२ ॥

ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः ।
उन्मत्तवत्तदा राजन्विसंज्ञा न्यपतन्क्षितौ ॥ ३३ ॥

राजन् ! वे तीनों अत्यन्तही कातर होकर अपनी इच्छाके अनुसार रुदन और विलाप करती हुई उन्मत्तके समान सी हो गयीं और मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ी ॥ ३३ ॥

सोपचारस्तु कृष्णस्तां दुःखितां भृशदुःखितः ।
सिक्त्वाऽम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णने अत्यन्त दुःखी हो, उन अत्यन्त ही दुःखित स्त्रियोंको जलके छींटेसे सावधान कर समयके अनुसार हितकर वचन कहते हुए आश्वासन दिया ॥ ३४ ॥

विसंज्ञकल्पां रुदतीमपविद्धां प्रवेपतीम् ।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण पुत्रशोकसे दुःखित, चेतरहितके समान हुई रोदन करनेवाली और कांपती हुई शरीरसे युक्त अपनी बहिन सुभद्रासे यह वचन बोले ॥ ३५ ॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ३६ ॥

हे सुभद्रे ! तुम पुत्रके निमित्त शोक मत करो । हे द्रौपदी ! शोक त्याग करके उत्तराको धीरज दान करो । क्षत्रियोंमें मुख्य अभिमन्युने सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त की है ॥ ३६ ॥

ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने ।
सर्वे ते वै गतिं यान्तु अभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ३७ ॥

हे वरानने ! हम लोगोंके कुलमें और दूसरे जो सब मनस्वी पुरुष हैं, वे सब लोग भी यशस्वी अभिमन्युके समान ही श्रेष्ठगतिका लाभ करें, ये हमारी इच्छा है ॥ ३७ ॥

कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासुः सुहृदश्च नः ।
कृतवान्यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ३८ ॥

तुम्हारे पुत्र महाबलवान् अभिमन्युने अकेले ही आज जैसा उत्तम कर्म किया है, हम लोगोंके इष्ट मित्र और हम सब कोई भी युद्धभूमिमें वैसे ही कर्मोंको करें ॥ ३८ ॥

एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिंदमः ॥ ३९ ॥

शत्रुदमन महाबाहु श्रीकृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तराको ऐसे ही वचनोंसे धीरज देकर फिर अर्जुनके समीप उपस्थित हुए ॥ ३९ ॥

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान्कृष्णो बन्धूंस्तथाभिभूः ।
विवेशान्तःपुरं राजंस्तेऽन्ये जग्मुर्यथालयम् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ २१४९ ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर श्रीकृष्णने अर्जुन, उनके भाईयों तथा दूसरे सम्पूर्ण राजाओंसे समयके अनुसार बातचीत करके अन्तःपुरमें प्रवेश किया और उन सम्पूर्ण राजाओंने भी अपने अपने शिविरोंमें गमन किया ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ २१४९ ॥

: ५६ :

सञ्जय उवाच

ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ।
संतस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैडूर्यसंनिभैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— अनन्तर पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनके अप्रतिम भवनमें प्रवेश करके आचमन करके विधिपूर्वक शुभलक्षण युक्त स्थंडिलमें ॥ १ ॥

ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ।
अलञ्चकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः ॥ २ ॥

वैडूर्य मणियोंके समान कुशोंकी शुभशय्या तैयार की, और विधिपूर्वक परम मङ्गलकारी अक्षत, गन्ध और फूलोंकी माला आदिसे उसे अलंकृत किया। फिर उत्तम उत्तम अस्त्र शस्त्रोंको उस शय्याके चारों ओर स्थापित किया ॥ २ ॥

ततः स्पृष्टोदकं पार्थं विनीताः परिचारकाः ।
दर्शयां नैत्यकं चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर जब अर्जुनने आचमन किया, तब विनीत परिचारकोंने रात्रिमें कही हुई रीतिके अनुसार शिवबलि उनके सम्मुख तैयार करके पूजन किया ॥ ३ ॥

ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धैर्माल्यैश्च माधवम् ।
अलंकृत्योपहारं तं नैशमस्मै न्यवेदयत् ॥ ४ ॥

अनन्तर अर्जुनने आनन्दित मनसे उत्तम गन्ध और मालाओंसे श्रीकृष्णको अलंकृत करके रात्रिविहित सम्पूर्ण उपहारोंको उन्हें समर्पण किया ॥ ४ ॥

*

स्मयमानस्तु गोविन्दः फल्गुनं प्रत्यभाषत ।
सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् ॥ ५ ॥

तब श्रीकृष्णने स्मित हास्य करके अर्जुनसे यह वचन कहा, हे अर्जुन, तुम्हारा कल्याण हो ! अब तुम सुखसे शयन करो; मैं तुम्हारे कल्याणके निमित्त ही गमन करता हूं ॥ ५ ॥

स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान्गोप्तॄंश्चात्तायुधान्नरान् ।
दारुकानुगतः श्रीमान्विवेश शिबिरं स्वकम् ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ६ ॥

ऐसा वचन कहकर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने अर्जुनके शिबिरमें दरवाजेपर अस्त्र–शस्त्र धारण किये हुए पुरुषोंको द्वारपाल और रक्षक नियुक्त करके दारुक सारथिके सहित अपने शिबिरमें गमन किया । अनन्तर श्रीकृष्णने इस उपस्थित बृहत् कार्यकी चिन्ता करते हुए शुभ्र शय्यापर शयन किया ॥ ६ ॥

न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित्सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनमाविवेश विशां पते ॥ ७ ॥

हे राजेन्द्र ! उस रात्रिको पाण्डवोंके शिबिरोंमें किसीको भी निद्रा न हुई, सब पुरुष जागते ही रह गये ॥ ७ ॥

पुत्रशोकाभिभूतेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ८ ॥

गाण्डीव धनुष ग्रहण करनेवाले महात्मा अर्जुनने पुत्रशोकसे दुःखित तथा क्रुद्ध होकर सहसा सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली है ॥ ८ ॥

तत्कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ ९ ॥

शत्रुवीरनाशन महाबाहु इन्द्रपुत्र उस प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे पूर्ण कर सकेंगे; ऐसा ही विचार करते हुए पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण योद्धा चिन्ता करने लगे ॥ ९ ॥

कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ॥ १० ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनने यह अत्यन्त ही कठिन कर्मके करनेका निश्चय किया है; उन्होंने पुत्रशोकसे क्रुद्ध होकर अत्यंत कठिन प्रातिज्ञा कर ली है ॥ १० ॥

भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ॥ ११ ॥

उनके सब भ्राता भी महापराक्रमी हैं और सेनाएं भी उनके पास बहुत वर्त्तमान हैं; धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनने जयद्रथको सब कुछ कहा होगा ॥ ११ ॥

स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ।
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम् ॥ १२ ॥

जो हो, अर्जुन युद्धमें सिन्धुराज जयद्रथका वध करके कुशलपूर्वक फिर लौटे तथा शत्रुओंको जीत कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करें ॥ १२ ॥

अहत्वा सिन्धुराजं हि धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ।
न ह्येतदनृतं कर्तुमर्हः पार्थो धनञ्जयः ॥ १३ ॥

अगर अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथका वध नहीं करेंगे, तो अवश्य ही अग्निमें प्रवेश करके प्राण-त्याग करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है । कुन्तीपुत्र धनंजय अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ।
तस्मिन्हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः ॥ १४ ॥

यदि अर्जुन मर गये तो धर्मराज युधिष्ठिर कैसे राजा होंगे ? क्योंकि पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने अर्जुनहीके ऊपर सम्पूर्ण विजयके कार्यको निर्भर किया है ! ॥ १४ ॥

यदि नः सुकृतं किञ्चिद्यदि दत्तं हुतं यदि ।
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् ॥ १५ ॥

हम लोगोंने दान, होम वा दूसरे और भी जो कुछ पुण्यदायक कर्मोंको किये हैं, उन्हीं शुभ कर्मोंके फलोंसे सव्यसाची अर्जुन अपने शत्रुओंपर बिजय प्राप्त करें ॥ १५ ॥

एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ।
कृच्छ्रेण महता राजन्रजनी व्यत्यवर्तत ॥ १६ ॥

राजन् ! प्रभो ! इसी प्रकारसे और अर्जुनके विजयकी अभिलाष करते हुए आपसमें वार्त्तालाप करते उन सम्पूर्ण पुरुषोंकी रात्रि अत्यन्त कष्टसे व्यतीत हुई ॥ १६ ॥

तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ।
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ॥ १७ ॥

उस ही रात्रिके मध्यकालमें जनार्दन श्रीकृष्ण निद्रासे सावधान होकर अर्जुनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके दारुकसे यह वचन बोले— ॥ १७ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ।
जयद्रथं हनिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ॥ १८ ॥

हे दारुक ! अर्जुनने पुत्रवधसे कातर और क्रुद्ध हो कर यह प्रतिज्ञा की है कि मैं कल जयद्रथका बध करूंगा ॥ १८ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ।
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ॥ १९ ॥

दुर्योधन इस प्रतिज्ञाको सुनकर अपने मन्त्रियोंके सहित यह विचार विमर्षण करेगा कि जिससे अर्जुन युद्धभूमिमें जयद्रथका वध न कर सकें ॥ १९ ॥

अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ।
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ॥ २० ॥

दुर्योधनकी जो सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेनाएं हैं, वह जयद्रथकी रक्षा करेंगी, और सब अस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले धनुर्द्धारी द्रोणाचार्य भी अपने पुत्रके सहित जयद्रथकी रक्षा करेंगे ॥२०॥

एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवमर्दिता ।
सोऽपि तं नोत्सहेताजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ॥ २१ ॥

दैत्यदानवोंके नाश करनेवाले देवताओंके स्वामी सहस्र नेत्रधारी, सब लोकोंके एक मात्र वीर इन्द्र भी द्रोणाचार्यसे रक्षित जयद्रथका युद्धभूमिमें बध करनेमें उत्साह नहीं कर सकते ॥ २१ ॥

सोऽहं श्वस्तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ।
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ॥ २२ ॥

मैं कल वैसे ही उपायका विधान करूंगा जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन सूर्यके अस्त होनेसे पहले जयद्रथका बध कर सकें ॥ २२ ॥

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ।
कश्चिन्नान्य प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात् ॥ २३ ॥

मुझे कुन्तीपुत्र अर्जुनसे बढके स्त्री, मित्र, जाति-बन्धु और बान्धव कोई भी प्रिय नहीं है ॥ २३ ॥

अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक ।
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत्तथा ॥ २४ ॥

हे दारुक ! मैं इस जगत्को मुहूर्त मात्र भी अर्जुनसे सुना न देख सकूंगा, और ऐसा होगा भी नहीं ॥ २४ ॥

अहं ध्वजिन्यः शत्रूणां सहयाः सरथद्विपाः ।
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णाः ससुयोधनाः ॥ २५ ॥

मैं कल अर्जुनके निमित्त ध्वज, हाथी, रथ, घोडोंसे युक्त तथा कर्ण और दुर्योधन सहित शत्रु कौरवोंकी सम्पूर्ण सेनाओंका संहार करूंगा ॥ २५ ॥

श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ।
धनञ्जयार्थं समरे पराक्रान्तस्य दारुक ॥ २६ ॥

हे दारुक ! कल अर्जुनके निमित्त महायुद्धमें अपना पराक्रम प्रकट करते हुए, मेरे बल, वीर्य और पराक्रमको तीनों लोक देखेंगे ॥ २६ ॥

श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ।
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यन्ति दारुक ॥ २७ ॥

दारुक ! कल सहस्रों राजा तथा सैकडों राजपुत्र उनके घोडे, हाथी और रथोंके सहित युद्धभूमिसे भाग जावेंगे ॥ २७ ॥

श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ।
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ॥ २८ ॥

कल तुम देखोगे, कि मैंने पाण्डुपुत्र अर्जुनके निमित्त युद्धभूमिमें क्रुद्ध होकर राजाकी सम्पूर्ण सेनाको चक्रसे विडराते हुए उन शत्रु–सेनाके पुरुषोंका वध किया है ॥ २८ ॥

श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ॥ २९ ॥

कल देवता, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और राक्षस आदि सम्पूर्ण प्राणी भली भांति समझ जावेंगे कि मैं सव्यसाची अर्जुनका सुहृद् हूं ॥ २९ ॥

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तमनु स मामनु ।
इति सङ्कल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्धं ममार्जुनः ॥ ३० ॥

जो अर्जुनसे शत्रुता करता है वह मेरा भी शत्रु है, जो अर्जुका मित्र है वह मेरा भी मित्र ही है, ऐसा क्या तुम अपनी बुद्धिसे यह समझ लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है ॥ ३० ॥

यथा त्वमप्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ।
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रतसंयतः ॥ ३१ ॥

रात बीतने पर प्रातःकाल ही तुम मेरे उत्तम रथको शास्त्रविधिसे सज्ज करके सावधानीके साथ ले चलना ॥ ३१ ॥

गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ।
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ॥ ३२ ॥

हे सुत ! कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष, बाण तथा दूसरी युद्धके उपयोगी समस्त वस्तुओंको रथमें सज्जित करके रखना ॥ ३२ ॥

स्थानं हि कल्पयित्वा च रथोपस्थे ध्वजस्य मे ।
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ॥ ३३ ॥

और युद्धभूमिमें रथपर शोभायमान वीर गरुडके चिन्हयुक्त ध्वजको भी रथके ऊपर लगा रखना ॥ ३३ ॥

छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसंनिभैः ।
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि च भूषितान् ॥ ३४ ॥

बलाहकं मेघपुष्पं सैन्यं सुग्रीवमेव च ।
युक्त्वा वाजिवरान्यत्तः कवची तिष्ठ दारुक ॥ ३५ ॥

हे दारुक ! अनन्तर बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य और सुग्रीव इन चारों श्रेष्ठ घोडोंको छत्र लगा कर, विश्वकर्माके बनाये हुए अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान दिव्य सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित करके, रथमें नियुक्त करना और स्वयं भी कवच पहन कर सावधान रहना ॥ ३४–३५ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ।
श्रुत्वा तु भैरवं नादमुपयाया जवेन माम् ॥ ३६ ॥

पाञ्चजन्य शंखका ऋषभ स्वरसे बजाया हुआ शब्द और घोर नाद सुनते ही रथको लेकर शीघ्र ही युद्धभूमिमें मेरे समीप आगमन करना ॥ ३६ ॥

एकाह्नाहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ।
भ्रातुः पितृष्वस्रेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ॥ ३७ ॥

हे दारुक ! मैं एक ही दिनमें अपनी बुआजीके पुत्र भाई अर्जुनके क्रोध और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर कर दूंगा ॥ ३७ ॥

सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ॥ ३८ ॥

अर्जुन जिसमें सम्पूर्ण धृतराष्ट्रके पुत्रोंके देखते देखते युद्धमें जयद्रथका वध कर सके, मैं सब भांतिसे वही उपाय और यत्न करूंगा ॥ ३८ ॥

यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः ॥ ३९ ॥

हे सारथे ! अर्जुन जिस जिस वीरका वध करनेके निमित्त यत्न करेंगे, वहां उनकी निश्चयही विजय होगी, मैं ऐसीही अभिलाष करता हूं ॥ ३९ ॥

दारुक उवाच

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४० ॥

दारुक बोला— हे पुरुषोत्तम ! आप जिनके सारथि हुए हैं, उनकी पराजय किस प्रकार हो सकती है ? अवश्य ही उनकी जय होगी ही ॥ ४० ॥

एवं चैतत्करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥ २१९० ॥

आपने जिस प्रकारसे मुझे आज्ञा दी है, कल सबेरे अर्जुनकी जयके निमित्त मैं वैसा ही कार्य अवश्य करूंगा ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ २१९० ॥

: ५७ :

संजय उवाच

कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनंजयः ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— इधर अत्यन्त पराक्रमी कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मन्त्रका चिन्तन करते करते निद्रित हो गये ॥ १ ॥

तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम् ।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥

महातेजस्वी गरुडध्वज श्रीकृष्ण शोक दुःखसे युक्त कपिध्वज अर्जुनके समीप स्वप्नमें उपस्थित होगये ॥ २ ॥

प्रत्युत्थानं तु कृष्णस्य सर्वावस्थं धनञ्जयः ।
नालोपयत धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३ ॥

किसी भी अवस्थामें क्यों न रहें, परन्तु श्रीकृष्णको अपने समीपमें आया हुआ देखकर धर्मात्मा अर्जुन भक्ति और प्रेम पूर्वक उठके खडे होकर स्वागत करते थे; इस नियममें कभी वे त्रुटि नहीं करते थे ॥ ३ ॥

प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मायासनं ददौ ।
न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात्तदा ॥ ४ ॥

इस समय उन्होंने श्रीकृष्णको देखकर खडे होकर बैठनेके लिये आसन प्रदान किया; परन्तु उस समयमें स्वयं किसी आसनपर बैठनेकी इच्छा नहीं करी ॥ ४ ॥

ततः कृष्णो महातेजा जानन्पार्थस्य निश्चयम् ।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥

अनन्तर महातेजस्वी श्रीकृष्ण अर्जुनके इस निश्चयको जान कर आसनपर बैठके कुन्तीपुत्रसे यह बचन बोले ॥ ५ ॥

मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः ।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! तुम अपने मनको दुःखित मत करो, क्योंकि कालकी बात जानी नहीं जाती । काल ही सम्पूर्ण प्राणियोंको अवश्य होनेवाले विषयोंमें लगा देता है ॥ ६ ॥

किमर्थं च विषादस्ते तद्ब्रूहि वदतां वर ।
न शोचितव्यं विदुषा शोकः कार्यविनाशनः ॥ ७ ॥

हे बोलनेवालोमें श्रेष्ठ ! तुम किस निमित्त शोक-विषाद करते हो उस वृत्तान्तको मेरे समीपमें वर्णन करो । विद्वान् पुरुष किसी विषयमें भी कभी शोक नहीं करते; शोक ही कार्यविनाशका मूल है ॥ ७ ॥

शोचन्नन्दयते शत्रून्कर्शयत्यपि बन्धवान् ।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ८ ॥

शोकित होनेसे शत्रुलोग आनन्दित होते हैं तथा अपने अनुयायि बन्धु बान्धवोंको दुःख उत्पन्न होता है; और शोक करनेवाला पुरुष अपना भी नाश करता है, इसलिये तुम्हें शोकसे व्याकुल नहीं होना चाहिये ॥ ८ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः ।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ ९ ॥

जब श्रीकृष्णने उनसे ऐसे वचन कहे, तब महाबुद्धिमान् अपराजित अर्जुन उनसे यह अर्थयुक्त वचन बोले— ॥ ९ ॥

मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता ।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥ १० ॥
हे केशव ! " मैं कल अपने पुत्रके वध करनेवाले दुरात्मा जयद्रथका वध करूंगा " यह जो जयद्रथके लिये मैंने बहुत कठिन प्रतिज्ञा कर ली है, ॥ १० ॥

मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत ।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ ११ ॥
परंतु अच्युत ! उस ही मेरी प्रतिज्ञाके भङ्ग करनेके लिये धृतराष्ट्रकी ओरके सम्पूर्ण महारथी वीर योद्धा लोग अवश्य जयद्रथको अपने पीछे खडे करके उसे सबके द्वारा सुरक्षित करेंगे ॥ ११ ॥

दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः ।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवेत मद्विधः ॥ १२ ॥
श्रीकृष्ण ! कौरवोंकी अत्यन्त दुर्जय ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएं हैं । ऐसी अवस्थामें प्रतिज्ञा भंग होनेपर मेरे समान पुरुष कैसे जीवित रह सकता है ? ॥ १२ ॥

दुःखोपायस्य मे वीर विकाङ्क्षा परिवर्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १३ ॥
हे वीर श्रीकृष्ण ! अत्यन्त कठिन तथा दुःखसे सिद्ध होनेवाले कर्मकी ओरसे मेरी अभिलाषा परिवर्तित हो रही है; विशेष करके इन दिनोंमें सूर्य बहुत जलदी अस्त हो जाते हैं; इस लिये मैं ऐसा कह रहा हूं ॥ १३ ॥

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः ॥ १४ ॥
अर्जुनके शोकका कारण क्या है यह सुनकर कि विद्वान् गरुड ध्वज श्रीकृष्णने आचमन किया और पूर्वकी ओर मुंह करके बैठ गये ॥ १४ ॥

इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे वृतः ॥ १५ ॥
फिर महातेजस्वी कमल नेत्रवाले श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र अर्जुनके हितके निमित्त सिन्धुराजके वधके विषयमें उनसे यह वचन बोले— ॥ १५ ॥

पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान्मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १६ ॥
हे अर्जुन ! देवोंके देव महादेवने युद्धमें जिस अस्त्रसे सम्पूर्ण दैत्योंका नाश किया था वह पाशुपत नामक एक सनातन परम अस्त्र है ॥ १६ ॥

यदि तद्विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथ ज्ञातुं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ १७ ॥

यदि वह अस्त्र आज तुम्हें विदित होगा, तो तुम कल जयद्रथका वध कर सकोगे; परन्तु यदि उसका ज्ञान न हो तो वह ज्ञान करनेके लिये तुम अपने मनही मन वृषभध्वज महादेवका ध्यान करो, उसकी शरण लो ॥ १७ ॥

तं देवं मनसा ध्यायञ्जोषमास्स्व धनंजय ।
ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! तुम भक्तिपूर्वक उन ही देवोंके देव महादेवका मनमें ध्यान करते हुए चूप बैठ रहो; तो तुम उन महेश्वरकी कृपासे उनके भक्त होनेके कारण उस पाशुपत नामक परम अस्त्रको पाओगे ॥ १८ ॥

ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनञ्जयः ।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ १९ ॥

अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रके इस वचनको सुनकर आचमन किया और पृथ्वीपर एकाग्रचित्त होकर बैठ गये और मनसे महादेवका ध्यान करने लगे ॥ १९ ॥

ततः प्रणिहिते ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् ॥ २० ॥

इसके अनन्तर शुभ लक्षणोंसे युक्त ब्राह्म मुहूर्तमें ध्यानस्थ होनेपर स्वयंको श्रीकृष्णके साथ आकाश मार्गसे गमन करते देखा ॥ २० ॥

ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ।
वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ॥ २१ ॥

जाते जाते तेजःपुंजसे प्रकाशमान, सिद्ध चारणोंसे सेवित आकाशमें अर्जुन श्रीकृष्णके साथ वायुके समान वेगवान् गतिसे गमन करने लगे ॥ २१ ॥

केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ।
प्रेक्षमाणो बहून्भावाञ्जगामाद्भुतदर्शनान् ॥ २२ ॥

भगवान् केशवने अर्जुनकी दाहिनी भुजा पकड रक्खी थी; अद्भुत दिखनेवाले अनेक पदार्थोंको देखते हुए वे गये ॥ २२ ॥

उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ।
कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ॥ २३ ॥

धर्मात्मा अर्जुनने उत्तर दिशामें श्वेतपर्वतका अवलोकन किया; फिर कुबेरके विहारमें कमलोंसे युक्त सरोवर देखा ॥ २३ ॥

सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ।
सदापुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ॥ २४ ॥

अत्यन्त जलसे युक्त नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाको देखा; उसके तटपर सदा सर्वदा फूल और फलोंसे भरे हुए वृक्ष तथा स्फटिक मणिमय पत्थर शोभित होते थे ॥ २४ ॥

सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगगणाकुलाम् ।
पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ॥ २५ ॥

अनेक सिंह और व्याघ्र, तथा नाना प्रकारके मृग आदि पशु वहां सब ओर भरे हुए थे; जगह जगह पुण्यात्मा महात्माओंके आश्रम और मनोहर पक्षियोंसे युक्त रमणीय गंगाका दर्शन किया ॥ २५ ॥

मन्दरस्य प्रदेशांश्च किंनरोद्गीतनादितान् ।
हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ २६ ॥

आगे बढनेपर किन्नरोंके मधुर गीतोंसे निनादित मन्दराचलके प्रदेश दिखाई दिये; अनन्तर सोने-चांदीके शृङ्गोंसे शोभित अनेक प्रकारकी तेजस्वी ओषधियां और फूले हुए मन्दारके वृक्षोंसे युक्त पर्वतीय स्थान उन्होंने देखा ॥ २६ ॥

स्निग्धाञ्जनचयाकारं संप्राप्तः कालपर्वतम् ।
पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम्
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ॥ २७ ॥

अनन्तर वे अञ्जन राशिके समान आकारवाले काल पर्वतके पास पहुंचे; पवित्र हिमालयके शिखर और मणिमान् पर्वतको भी देखा; फिर ब्रह्मतुंग पर्वत, अन्य नदियां और जनपदोंको भी देखा ॥ २७ ॥

सुशृङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ २८ ॥

फिर उत्तम शतशृङ्ग, शर्यातिवन, पुण्यप्रद अश्वशिरका स्थान, आथर्वणमुनिका स्थान, ॥ २८ ॥

वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किंनरैश्चोपशोभितम् ॥ २९ ॥

पर्वतोंमें श्रेष्ठ वृषदंश तथा अप्सराओंसे पूर्ण और किन्नरोंसे शोभित महामन्दरगिरि देख पडे ॥ २९ ॥

तांश्च शैलान्व्रजन्पार्थः प्रेक्षते सहकेशवः ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टान्हेमधातुविभूषितान् ॥ ३० ॥

श्रीकृष्णके सहित अर्जुन उस ही पर्वतके ऊपरसे गमन करने लगे; वहांपर गमन करते हुए शुभ झरनोंसे युक्त सुवर्णधातुसे भूषित ॥ ३० ॥

चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।
समुद्रांश्चाद्भुताकारानपश्यद्बहुलाकरान् ॥ ३१ ॥

चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित पुरस्वरूपी मालासे युक्त पृथ्वी और सम्पूर्ण रत्नोंकी खानोंसे युक्त अद्भुत आकारवाले समुद्रोंको देखा ॥ ३१ ॥

वियद्द्यां पृथिवीं चैव पश्यन्विष्णुपदे व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवात्यगात् ॥ ३२ ॥

फिर धनुषसे छूटे हुए बाणवेगके समान आगे बढते हुए श्रीकृष्णके सहित अर्जुनने विस्मित होकर आकाश, पृथ्वी और अन्तारिक्षका दर्शन करके विष्णुपदमें गमन किया ॥ ३२ ॥

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३३ ॥

वहांपर ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान एक सुन्दर पर्वत जो अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था, अर्जुनने देखा ॥ ३३ ॥

समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्वृषभध्वजम् ॥ ३४ ॥

उस पर्वतपर जाके अर्जुनने उस पर्वतके शिखरपर स्थित नित्य तपस्यामें रत महात्मा वृषभ-ध्वज महादेवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥

सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३५ ॥

त्रिशूल ग्रहण करनेवाले, जटाधारी, भगवान् महादेव अपने तेजसे सहस्रों सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उनके अंगोंपर वल्कल और मृगछालाके वस्त्र शोभित होते थे; उनकी कान्ति गौर वर्णकी थी ॥ ३५ ॥

नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसङ्घैश्च भास्वरैः ॥ ३६ ॥

सहस्रों नेत्रोंसे युक्त उनका शरीर विचित्र रूपसे शोभा पा रहा था; महातेजस्वी महादेव पार्वतीके सहित विराजमान थे और तेजोमय शरीरवाले भूतोंके गण उनके समीप उपस्थित थे ॥ ३६ ॥

गीतवादित्रसंह्रादैस्तालललास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्क्रुष्टैः पुण्यगन्धैश्च सेवितम् ॥ ३७ ॥

उनके सम्मुख सुन्दर मीठे और मनोहर गीत और बाजोंकी मधुर ध्वनि हो रही थी; हास्य-नृत्य चल रहा था; सब गण कूदते, नाचते और जोरसे गाते थे; पुण्यजनक सुगन्धियोंसे वे सेवित थे ॥ ३७ ॥

स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ३८ ॥

और ब्रह्मवादी मुनि लोग दिव्य स्तोत्रोंसे उन धनुर्द्धर, अच्युत, देवोंके देव, सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले महादेवकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३८ ॥

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ३९ ॥

अर्जुनके सहित धर्मात्मा श्रीकृष्णने उनका दर्शन करते ही पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया, और सनातन ब्रह्म शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमां योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४० ॥

वे सम्पूर्ण लोकोंके रचनेवाले आदि कारण, जगत्स्रष्टा, जन्मरहित, ईशान, अव्यय, मनकी परम उत्पत्तिका स्थान, आकाशस्वरूप, वायुरूपी, ज्योतिके सागर ॥ ४० ॥

स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४१ ॥

जलधाराके आधारस्वरूप, पृथ्वीके परम प्रकृति, देवता, दानव, यक्ष और मनुष्योंके साधन ॥ ४१ ॥

योगिनां च परमं ब्रह्म व्यक्तं ब्रह्मविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४२ ॥

योगियोंके परब्रह्म, ब्रह्मज्ञानियोंके निधिस्वरूप, सम्पूर्ण चराचर जगत्के उत्पन्नकर्त्ता और संहार करनेवाले ॥ ४२ ॥

कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
अवन्दत तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४३ ॥

कालस्वरूप, कोपयुक्त, महात्मा, इन्द्र और सूर्यके गुणोंको प्रकाशित करनेवाले थे, देवोंके ईश्वर वृषभध्वजको उस समय श्रीकृष्णने वाणी, मन, बुद्धि और कर्मसे वन्दन किया ॥ ४३ ॥

यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४४ ॥

सूक्ष्म अध्यात्म पदकी इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुष जिनका ध्यान करते हैं, श्रीकृष्ण और अर्जुन उन ही अज, अविनाशी, कारणात्मा महादेवकी शरणमें उपस्थित हुए ॥ ४४ ॥

अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽभ्यवन्दत ।
ज्ञात्वैकं भूतभव्यादिं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ४५ ॥

अर्जुनने उनको सब भूत–भव्योंका आदि कारण और भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालके उत्पादक जानकर बार बार स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया ॥ ४५ ॥

ततस्तावागतौ शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ।
स्वागतं वां नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ४६ ॥

अनन्तर सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी महादेव उन दोनोंको अपने समीपमें आये हुए देखके प्रसन्नतापूर्वक हंसकर उनसे यह वचन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठो ! तुम दोनोंका स्वागत है; तुम दोनोंकी थकावट दूर होवे, तुम लोग उठके खडे होजाओ । हे वीर पुरुषो ! तुम्हारे मनमें कौनसी अभिलाषा है ? वह शीघ्र ही मुझसे प्रकट करो ॥ ४६ ॥

येन कार्येण संप्राप्तौ युवां तत्साधयामि वाम् ।
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत्सर्वं प्रददानि वाम् ॥ ४७ ॥

तुम दोनों जिस कार्यके निमित्त मेरे समीपमें आये हो वह क्या क्या है ? उसे मैं सिद्ध करूंगा । तुम लोग अपने कल्याणके निमित्त कुछ भी वस्तुको मांगो, तुम दोनोंको मैं सब कुछ अवश्य प्रदान करूंगा ॥ ४७ ॥

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ४८ ॥

अनन्तर महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुन उनके वचनोंको सुनके खडे हुए और हाथ जोडके विनयपूर्वक स्तुति वचनोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४८ ॥

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ४९ ॥

हे प्रभो ! तुम भव, शर्व, रुद्र, वरदान देनेवाले, पशुपति, नित्य उग्र और जटाजूटधारी हो; हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शंभवे ।
ईशानाय भगघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ ५० ॥

तुम महादेव, भीम, त्र्यम्बक, कल्याण स्वरूप, ईशान, दक्ष यज्ञके नाशक और अन्धकासुरके संहार करनेवाले हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ ५० ॥

कुमारगुरवे नित्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते ॥ ५१ ॥

तुम कुमार स्वामि कार्त्तिकेयके पिता, नित्य नीलग्रीव, वेधा, तुम विशेषरूपसे लोहितवर्ण, धूम्ररूप, मृगव्याध स्वरूप, अपराजित ॥ ५१ ॥

नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ।
हन्त्रे गोप्त्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ॥ ५२ ॥

सदा नीलचूड, त्रिशूलधारी, दिव्य नेत्रवाले, संहारक, पालक, त्रिनेत्रधारी, व्याधरूप, वसुरेता ॥ ५२ ॥

अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ।
वृषध्वजाय पिङ्गाय जटिने ब्रह्मचारिणे ॥ ५३ ॥

अचिन्त्य, अम्बिकापति, सब देवताओंके द्वारा प्रशंसित, वृषभध्वज, पिङ्ग, जटाधारी, ब्रह्मचारी ॥ ५३ ॥

तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ।
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ॥ ५४ ॥

जलके बीच तपस्या करनेवाले, ब्रह्मण्य, अजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा और संसारके बीच व्यापक होके स्थित हो रहे हो ॥ ५४ ॥

नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ।
ब्रह्मवक्त्राय शर्वाय शंकराय शिवाय च ॥ ५५ ॥

और सदा सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारणभूत हो, तुम्हें बार बार नमस्कार है। ब्राह्मण आपके मुख हैं, कल्याणकारी भगवान् शिवको नमस्कार है ॥ ५५ ॥

नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ।
नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ॥ ५६ ॥

हे शिव ! तुम सब प्राणियोंके ईश्वर, वाचस्पति और प्रजापति हो; हम तुम्हें प्रणाम करते हैं । तुम जगत्के नियन्ता और महात्माओंके पालक हो, आपको नमस्कार है ॥ ५६ ॥

नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमन्यवे ।
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ॥ ५७ ॥

सहस्र शिर और सहस्र भुजावाले शिवको नमस्कार है; तुम सहस्र नेत्र और सहस्र चरणवाले हो, तुम असंख्य कर्म करनेवाले हो, हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ५७ ॥

नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नौ वरः प्रभो ॥ ५८ ॥

हे प्रभु ! तुम हिरण्यवर्ण, सुवर्ण कवचधारी और भक्तोंके ऊपर सदा कृपा करनेवाले हो, आपको नमस्कार है । तुम हम दोनोंकी प्रार्थना सिद्ध करो ॥ ५८ ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः ।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ५९ ॥

अर्जुन सहित श्रीकृष्णचन्द्रने उस समय अस्त्र प्राप्त करनेकी इच्छासे इसी प्रकारसे स्तुति करते हुए महादेवको प्रसन्न किया ॥ ५९ ॥

ततोऽर्जुनः प्रीतमना ववन्दे वृषभध्वजम् ।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ ६० ॥

अनन्तर अर्जुनने प्रसन्न चित्त होकर वृषभध्वज भगवान् शिवको वन्दन किया और प्रफुल्लित नेत्रोंसे समस्त तेजोंके आधार महादेवका दर्शन किया ॥ ६० ॥

तं चोपहारं स्वकृतं नैशं नैत्यकमात्मनः ।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ ६१ ॥

और उन्होंने रात्रिके समयमें स्वयं समर्पित किए हुए उस नैत्यिक उपहारको जिसे श्रीकृष्णको निवेदित किया था, उसे त्रिनेत्रधारी महादेवके समीपमें अवलोकन किया ॥ ६१ ॥

ततोऽभिपूज्य मनसा शर्वं कृष्णं च पाण्डवः
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ६२ ॥

अनन्तर अर्जुन शङ्कर और श्रीकृष्णकी मनही मन पूजा करके भगवान् शंकरसे यह वचन बोले, मैं आपसे दिव्य अस्त्र पानेकी इच्छा करता हूं ॥ ६२ ॥

ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं प्रभुः ।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ६३ ॥

जगत्के स्वामी महादेव अर्जुनकी वरप्राप्तिके लिये प्रार्थना सुनकर हंसके श्रीकृष्ण और अर्जुनसे यह वचन बोले, ॥ ६३ ॥

सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
तत्र मे तद्धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६४ ॥

हे शत्रुओंके नाश करनेवाले ! यहां निकटहीमें जो अमृतमय दिव्य सरोवर है, वहीं मेरा दिव्य धनुष और बाण पहिलेसे ही रक्खा हुआ है ॥ ६४ ॥

येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ६५ ॥

इसही दिव्य अस्त्रसे युद्धमें मैंने देवताओंके शत्रु दैत्योंका नाश किया था; तुम लोग उस ही उत्तम धनुष और बाणको उस सरोवरमेंसे उठाकर मेरे समीप ले आवो ॥ ६५ ॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ तं शर्वं पार्षदैः सह ।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्याश्चर्यशतैर्वृतम् ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्ण—अर्जुन दोनों वीरोंने उन भगवान् शिवको 'जो आज्ञा' कहके भगवान् शिव शङ्करके पार्षदगणोंके सहित सैंकडों दिव्य ऐश्वर्योंसे युक्त उस दिव्य सरोवरकी ओर अस्त्रके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ६६ ॥

निर्दिष्टं यद्वृषाङ्केन पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।
तज्जग्मतुरसंभ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ६७ ॥

वृषभध्वज देवोंके देव महादेवने स्वयं जो पुण्यजनक सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला सरोवर बतलाया था, वे दोनों नरनारायण ऋषि निर्भयचित्तसे उसही सरोवरपर जा पहुंचे ॥ ६७ ॥

ततस्तु तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसंनिभम् ।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ ६८ ॥

उस सरोवरके तट पर पहुंच कर अर्जुन और श्रीकृष्णने उस सरोवरमें जलके बीच सूर्य-मण्डलके समान प्रकाशमान एक भयङ्कर सर्प देखा ॥ ६८ ॥

द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसं वरम् ।
वमन्तं विपुलां ज्वालां ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ६९ ॥

और वहीं दूसरा अग्निके समान तेजवाला और सहस्रफणोंसे युक्त श्रेष्ठ सर्प उन्होंने देखा; वह सर्प अपने मुखसे अग्निकी प्रचण्ड जालाएं बाहर निकाल रहा था ॥ ६९ ॥

ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्यापः कृताञ्जली ।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ ७० ॥

इसके अनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन जलसे आचमन करके हाथ जोड वृषभध्वज भगवान् शंकरको प्रणाम करके उन दोनों नागोंके समीप खडे हुए ॥ ७० ॥

×

गृणन्तौ वेदविदुषौ तद्ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमन्तौ गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ ७१ ॥

वे दोनों वेदोंके विद्वान् सब भांतिसे अविनाशी अप्रमेय ब्रह्मरूप वृषभध्वज महादेवके शरणागत होकर विनयपूर्वक शतरुद्रियश्रुतिका पाठ करने लगे और उन्होंने शिवको प्रणाम किया ॥ ७१ ॥

ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद्द्वंद्वं समपद्यत ॥ ७२ ॥

तब वे दोनों महाभयङ्कर सर्प भगवान् रुद्रके महात्म्यसे अपने सर्प रूपको त्याग कर, शत्रुओंके नाश करनेवाले धनुष और बाणके रूपमें दीख पडे ॥ ७२ ॥

ततो जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्तुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ ७३ ॥

तब प्रसन्न होकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस प्रकाशमान धनुष्य और बाणको ग्रहण करके, उन्हें महात्मा वृषभध्वज महादेवको समर्पण किया ॥ ७३ ॥

ततः पार्श्वाद्वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्तत ।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नीललोहितः ॥ ७४ ॥

उस समय पिङ्गलवर्णवाले नेत्रसे युक्त, पीले और काले वर्णके शरीरसे शोभित, तपस्याके आधार स्वरूप एक बलवान् ब्रह्मचारी भगवान् महादेवके पार्श्व भागसे प्रकट हुआ ॥ ७४ ॥

स तद्गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
व्यकर्षच्चापि विधिवत्सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७५ ॥

उसने उस श्रेष्ठ धनुषको ग्रहण किया । अनन्तर वह स्थिरचित्तसे सावधान होकर खडा हुआ; फिर उसने बाणसहित उस उत्तम धनुषको विधिपूर्वक खींचा ॥ ७५ ॥

तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च स्थानं चालक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाचिन्त्यविक्रमः ॥ ७६ ॥

उस समय अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुनने उसका मुट्ठीसे धनुष धारण करना धनुषकी डोरीको आकर्षण करना, विशेष भांतिसे चरण रखके खडा होना— इन सब बातोंको लक्ष्यपूर्वक देखकर और भगवान् शिवके कहे हुए मन्त्रको सुनकर, मनसे ग्रहण किया ॥ ७६ ॥

सरस्येव च तं बाणं मुमोचातिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन्सरसि तद्धनुः ॥ ७७ ॥

फिर अत्यन्त बलवान् वीर भगवान् शिवने उस बाणको उस ही सरोवरमें छोड दिया; अनन्तर उस धनुषको भी फिर उस ही सरोवरमें डाल दिया ॥ ७७ ॥

ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ।
मनसा चिन्तयामास तन्मे संपद्यतामिति ॥ ७८ ॥

अनन्तर स्मरणशक्ति संपन्न अर्जुनने भगवान् महादेवको प्रसन्न जानकर वनवासके समय जो भगवान् शंकरका दर्शन और वरदान मुझे प्राप्त हुआ था, उसका मन ही मन चिन्तन करके, मेरा वह मनोरथ पूर्ण हो, ऐसी इच्छा की ॥ ७८ ॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्वरं भवः ।
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ॥ ७९ ॥

महादेवने उनके मनकी अभिलाष जानकर प्रसन्न होकर वह भयङ्कर पाशुपत अस्त्र जो उनकी प्रतिज्ञाकी पूर्ति करनेवाला था, वरदानके स्वरूपमें दिया ॥ ७९ ॥

संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत ।
ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तौ महेश्वरम् ॥ ८० ॥

दिव्य पाशुपत अस्त्रको फिर पाकर दुर्धर्ष वीर अर्जुनके रोंएं प्रसन्नतासे खडे हो गये, अनन्तर अर्जुनने अपनेको कृतकार्य समझा । फिर अत्यंत आनन्दित हुए उन दोनोंने मस्तक नमाकर महेश्वरको प्रणाम किया ॥ ८० ॥

अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्भवेनार्जुनकेशवौ ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ २२७१ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों वीर महादेवकी वन्दना करके प्रसन्न चित्तसे उसही समय उनकी अनुमति तथा आज्ञा पाकर अत्यन्त आनन्दित होकर अपने शिबिरमें आकर उपस्थित हुए ॥ ८१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ २२७१ ॥

: ५८ :

संजय उवाच

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तदा ।
सात्यगाद्रजनी राजन्नथ राजान्वबुध्यत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण और दारुक सारथिकी ऐसी ही वार्तालापमें वह रात्रि व्यतीत हुई, और सवेरा हुआ; राजा युधिष्ठिर भी निद्रासे जागके सावधान हुए ॥ १ ॥

पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः ।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥

उस समयमें पुरुषोंकी करतालिसे युक्त मीठे स्वरके सहित उत्तम गीत गानेवाले सूत, मागध, मधुपर्किक और वैतालिक ये पुरुषश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः ।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥

गीत गानेवाले तथा नृत्य करनेवाले राग-रागिनियोंसे युक्त मधुर और मनोहर स्वरोंके सहित कुरुवंशकी स्तुतिसूचक गीतोंको गाते हुए नृत्य करने लगे ॥ ३ ॥

मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः ।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यान्यपि भारत ।
वादयन्ति स्म संहृष्टाः कुशलाः साधुशिक्षिताः ॥ ५ ॥

भारत ! सुशिक्षित और कुशल वादक अत्यंत प्रसन्न होकर मृदङ्ग, झांझ, भेरी, ढोल, सहनाई, नरसिंहे, आडम्बर, शङ्ख और नगाडा आदि बाजोंको बजाने लगे ॥ ४-५ ॥

स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद्दिवम् ।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥

वह बादलके गर्जनेके समान गंभीर और महान् शब्द आकाशको स्पर्श करने लगा; उस ध्वनिने सोये हुए महाराज युधिष्ठिरको निद्रासे जगा दिया ॥ ६ ॥

प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे ।
उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं ततः ॥ ७ ॥

वे मणिजटित उत्तम शय्यापर सुखपूर्वक शयन कर रहे थे, जगे हुए वहांसे उठके फिर आवश्यक कार्योंको करनेके लिये स्नान करने गये ॥ ७ ॥

ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाष्टोत्तरं शतम् ।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥

स्नान करके श्वेतवस्त्रोंको पहरानेवाले एकसौ आठ युवक जलसे भरे हुए सुवर्णके कलसोंको लेके राजा युधिष्ठिरको स्नान करानेके लिये उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

भद्रासने सूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु ।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥

अनन्तर एक पतला वस्त्र पहन कर राजा युधिष्ठिर उत्तम आसन पर बैठ कर चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त मन्त्रित पवित्र जलसे स्नान करने लगे ॥ ९ ॥

उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन च सुगन्धिना ॥ १० ॥

उत्तम शिक्षासे युक्त बलवान् सेवकोंने उबटन आदि वस्तुओंसे उनके शरीरको मलते हुए सुगन्धित जलसे स्नान कराया ॥ १० ॥

हरिणा चन्दनेनाङ्गमनुलिप्य महाभुजः ।
स्रग्वी चाक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ ११ ॥

अनन्तर महाबाहु युधिष्ठिर अपने सारे अंगोंमें सुगन्धित हरि चन्दनका अनुलेपन करके उत्तम वस्त्र और फूलोंकी माला धारण करके हाथ जोडे पूर्वाभिमुख होकर श्रेष्ठ आसन पर बैठ गये ॥ ११ ॥

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः ।
ततोऽग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १२ ॥

सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करनेवाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करके मन्त्रोंका जप किया । अनन्तर विनीत भावसे प्रज्वलित अग्निसे प्रकाशमान अग्निहोत्रके स्थानमें प्रवेश किया ॥ १२ ॥

समिद्धं स पवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा ।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः ॥ १३ ॥

वहां अग्निमें मन्त्र उच्चारण करके आहुति और पवित्री सहित समिधा प्रदान करके अग्नि देवताकी पूजा अर्चना करके वे अग्निहोत्रके गृहसे बाहर हुए ॥ १३ ॥

द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निष्क्रम्य पार्थिवः ।
तत्र वेदविदो विप्रानपश्यद्ब्राह्मणर्षभान् ॥ १४ ॥

पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरने इसके अनन्तर उस स्थानके दूसरे हिस्सेमें जाकर वेद-पारंगत ब्राह्मणश्रेष्ठ विप्रोंको देखा ॥ १४ ॥

दान्तान्वेदव्रतस्नातान्स्नातानवभृथेषु च ।
सहस्रानुचरान्सौरानष्टौ दशशतानि च ॥ १५ ॥

वे सब शम दम आदि गुणोंसे युक्त वेद विद्या जाननेवाले वैदिक व्रत करनेवाले यज्ञान्त स्नानसे पवित्र और नित्य सूर्यकी उपासना करनेवाले थे । वे एक हजार आठ थे और उनके साथ एक हजार सेवक थे ॥ १५ ॥

अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः ।
तान्द्विजान्मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १६ ॥

महाबाहु युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंको चन्दन, अक्षत, फूल देकर उनसे स्वस्तिवाचन कराया और फिर उनको मधु, घी और श्रेष्ठ मंगल फल प्रदान किये ॥ १६ ॥

प्रादात्काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः ।
अलंकृतं चाश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १७ ॥

उनमेंसे हर एक ब्राह्मणको सुवर्ण निष्क (स्वर्ण मुद्रा) आभूषणोंसे भूषित सौ घोडे, उत्तम वस्त्र और इच्छानुसार दक्षिणा प्रदान करीं ॥ १७ ॥

तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः सर्षभाः पाण्डुनन्दनः ।
हेमशृङ्गी रूप्यखुरा दत्त्वा चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ १८ ॥

कई एक सोनेके सींगे और चांदीके खुरसे युक्त बैलोंके सहित दूध देनेवाली कपिला गौएं प्रदान करके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने उन्हें प्रदक्षिण किया ॥ १८ ॥

स्वस्तिकान्वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान् ।
माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ १९ ॥

अनन्तर सोनेके बने हुए स्वस्तिक, वर्द्धमान, नन्द्यावर्त्त, काञ्चन माला, जलसे भरे हुए घडे, जलती हुई अग्नि ॥ १९ ॥

पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकान्रोचनांस्तथा ।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २० ॥

अक्षतोंसे भरे हुए पूर्ण पात्र, रुचक, गोरोचन, तथा आभूषणोंसे अलंकृत सब लक्षणोंसे युक्त सुंदरी कन्याओंका समूह, दही, घृत, मधु, जल ॥ २० ॥

मङ्गल्यान्पक्षिणश्चैव यच्चान्यदपि पूजितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यामगात्ततः ॥ २१ ॥

मङ्गल सूचक पक्षी,– इन सम्पूर्ण माङ्गलिक द्रव्य और इसके अतिरिक्त दूसरी भी पूजनके योग्य बहुतसी वस्तुओंके दर्शन तथा स्पर्श करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उस स्थानके बाहरी हिस्सेमें आकर उपस्थित हुए ॥ २१ ॥

ततस्तस्य महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः ।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैडूर्यमण्डितम् ॥ २२ ॥

महाबाहु महाराज युधिष्ठिरके वहीं पर उपस्थित होते ही सेवकोंने उनके लिये सोनेका बनाया हुआ एक मोती और वैडूर्य मणियोंसे युक्त सर्वतोभद्र नामक श्रेष्ठ आसन दिया ॥ २२ ॥

परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् ।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २३ ॥

वह उत्तम वस्त्रोंसे भूषित था और उसके ऊपर सुंदर चादर बिछायी थी । वह दिव्य और श्रेष्ठ सिंहासन विश्वकर्माका बनाया हुआ था ॥ २३ ॥

तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
उपजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २४ ॥

महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर जब सिंहासन पर बैठे तब सेवकोंने उनके यथायोग्य अङ्गोंमें महामूल्यवान् शुभ्र आभूषणोंको पहना दिया ॥ २४ ॥

युक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ २५ ॥

महाराज ! कुन्तीपुत्र महात्मा युधिष्ठिर जब मुक्ता आदि सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित होकर सिंहासन पर बैठे, तब उनका रूप उस समय उनके शत्रुओंका शोक बढा रहा था ॥ २५ ॥

पाण्डरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैश्च चामरैः ।
दोधूयमानः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २६ ॥

सेवक लोग उनके समीप खडे होकर सुवर्णमय दण्डसे शोभित चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशमान् सफेद चंवरको लेकर डुलाने लगे । श्वेत चंवरके इधर उधर डोलने पर वे बिजलीसे युक्त बादलके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २६ ॥

संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च बन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥ २७ ॥

सूत मागध उनकी स्तुति, बन्दीजन उनकी वन्दना करने लगे, और गन्धर्व लोग उनके यश सूचक गीतोंको गाने लगे। इन सबसे धिरे हुए कुरुकुलनन्दन युधिष्ठिर वहां सिंहासन-पर शोभित होते थे ॥ २७ ॥

ततो मुहूर्तादासीत्तु बन्दिनां निस्वनो महान् ।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २८ ॥

अनन्तर मूहूर्त्त भरके बाद बन्दिजनोंका महान् शब्द, रथियोंके रथोंके पहियोंकी घरघराहट, और घोडोंकी टांपोंके शब्द चारों ओर सुनाई देने लगे ॥ २८ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ २९ ॥

हाथियोंके चलने पर उनके हौदे परसे लटकते हुए घण्टोंका शब्द सुनाई देने लगा; शंखोंकी आवाज और मनुष्योंके पांवके धक्केसे पृथ्वी कांपने लगी ॥ २९ ॥

ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
शिरसा वन्दनीयं तमभिवन्द्य जगत्पतिम् ॥ ३० ॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः संनद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयातं महात्मने । ॥ ३१ ॥

अनन्तर कुण्डल पहने, कवच धारण किये और कमरमें तलवार बांधे एक युवा द्वारपालने राजसभामें प्रवेश करके दोनों घुटनोंको पृथ्वीपर टेक दिये और वन्दनीय जगत्पति युधिष्ठिरको मस्तक नवाकर प्रणाम किया । इस प्रकार सिरसे प्रणाम करके उसने धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरको यह निवेदन किया कि, भगवान् हृषीकेश श्रीकृष्ण आरहे हैं ।। ३०–३१ ।।

सोऽब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ।
अर्घ्यं चैवासनं चास्मै दीयतां परमार्चितम् ॥ ३२ ॥

तब पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने द्वारपालसे कहा– तुम माधवको स्वागत पूर्वक ले आवो और उन्हें अर्घ्य और अत्यन्त उत्तम आसन प्रदान करो ॥ ३२ ॥

ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ।
सत्कृत्य सत्कृतस्तेन पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ २३०४ ॥

फिर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको अंदर ले आकर एक श्रेष्ठ आसनपर बैठा दिया । तदनंतर धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं उनका आदर सत्कार करके पूजन किया और श्रीकृष्णसे सत्कार पाकर युधिष्ठिरने उनसे पूछा ॥ ३३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ २३०४ ॥

५९

युधिष्ठिर उवाच

सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित्ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत ॥ १ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन ! तुम्हें सुखसे निद्रा हुई थी न ? तुमने सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करी है न ? अच्युत ! आपकी सब ज्ञानेंद्रियां प्रसन्न तो हैं न ? ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरम् ।
ततः क्षत्ता प्रकृतयो न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ २ ॥

संजय बोले– अनन्तर वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण भी युधिष्ठिरसे उनके योग्य वचनोंको पूछने लगे; उस ही समय सेवकने आके निवेदन किया कि सम्पूर्ण मन्त्रीवर्ग और राजा लोग आये हैं ॥२॥

अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ३ ॥

अनन्तर सेवक महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे उन सम्पूर्ण राजा और राजपुरुषोंको सभामण्डपमें प्रवेश कराने लगा । विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, ॥ ३ ॥

शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं च केकयान् ।
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् । ॥ ४ ॥

शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकय, कुरुवंशी युयुत्सु, पाञ्चाल वीर उत्तमौजा, ॥ ४ ॥

एते चान्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चासनेषु ते ॥ ५ ॥

ये तथा और भी दूसरे बहुतेरे क्षत्रिय श्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार उस सभामें आकर उत्तम उत्तम शुभ आसनोंपर बैठ गये ॥ ५ ॥

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ६ ॥

महाबलशाली महातेजस्वी महात्मा श्रीकृष्ण और सात्यकि ये दोनों वीर एकही आसनपर बैठे थे ॥ ६ ॥

ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर उन सम्पूर्ण लोगोंके सुनते हुए पुण्डरीक नेत्रवाले मधुसूदन श्रीकृष्णसे मधुर वचनोंसे वार्तालाप करते हुए यह वचन बोले ॥ ७ ॥

एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः ।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ ८ ॥

हे मधुसूदन ! जैसे देवता लोग केवल सहस्र नेत्रवाले देवराज इन्द्रके आसरेसे बास करते हैं, हम लोग भी उसही प्रकारसे एकमात्र तुम्हारे आसरेसे युद्धमें विजय करने तथा शाश्वत परम सुख प्राप्त करनेका अभिलाष करते हैं ॥ ८ ॥

त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् ।
क्लेशांश्च विविधान्कृष्ण सर्वांस्तानपि वेत्थ नः ॥ ९ ॥

हे श्रीकृष्ण ! शत्रुओंने जो हम लोगोंके राज्यका नाश किया, हमारा तिरस्कार किया और नाना प्रकारके क्लेश दिये, उन सबको आप जानतेही हैं ॥ ९ ॥

त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १० ॥

हे सबके स्वामी ! हे भक्तवत्सल ! हे मधुसूदन ! हम सब लोगोंका सुख तुम्हारेही अधिकारमें है; और तुमही हम लोगोंके सब विषयोंमें उपाय स्वरूप हो ॥ १० ॥

स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम ।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ ११ ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे ऊपरही हम लोगोंका मन लगा हुआ है; इसलिये जिस प्रकारसे अर्जुनकी इप्सित प्रतिज्ञा पूर्ण होवे, तुम उसही उपायका विधान करो ॥ ११ ॥

स भवांस्तारयत्वस्माद्दुःखामर्षमहार्णवात् ।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १२ ॥

हे श्रीकृष्ण ! माधव ! हम लोग इस दुःख और अमर्षरूपी महासमुद्रसे पार होनेकी अभिलाष करते हैं; तुम नौकारूपी होकर इस दुःखरूपी घोर समुद्रसे हम लोगोंको पार उतारो, हमारा उद्धार करो ॥ १२ ॥

न हि तत्कुरुते संख्ये कार्तवीर्यसमस्त्वपि ।
रथी यत्कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १३ ॥

हे कृष्ण ! युद्धस्थलमें सारथि यत्नवान् होकर जिस प्रकार कार्योंको कर सकता है, कार्तवीर्य सहस्रार्जुनके समान रथी भी वैसे कार्योंको संग्राममें नहीं कर सकता है ॥ १३ ॥

वासुदेव उवाच—

सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः ।
शरासनधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण बोले— हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुनके समान धनुर्द्धारी योद्धा देवताओं सहित सब लोकोंमें कोई भी नहीं हैं ॥ १४ ॥

वीर्यवानस्त्रसंपन्नः पराक्रान्तो महाबलः ।
युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥ १५ ॥

वे शक्तिमान्, सब अस्त्रशस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले, पराक्रमी, महाबली, युद्धकुशल, सदा अमर्षी और मनुष्योंके बीच परम तेजस्वी हैं ॥ १५ ॥

स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः ।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान्द्विषतस्ते हनिष्यति ॥ १६ ॥

वे युवा अवस्थावाले, वृषभके समान पुष्ट कन्धेसे युक्त, लम्बी भुजावाले, महाबलवान्, महाबली पराक्रमी श्रेष्ठ सिंहकी चालसे गमन करनेवाले और श्रीमान् तथा महातेजस्वी हैं, अतः वे अवश्य ही तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे ॥ १६ ॥

अहं च तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥

जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनकी सेनाको प्रज्वलित अग्निके समान भस्म कर सकें, मैं भी वैसाही यत्न करूंगा ॥ १७ ॥

अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम् ।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥ १८ ॥

आज अर्जुन उस क्षुद्र, पापी, अभिमन्युका वध करनेवाले जयद्रथको अपने बाणोंसे जहां जानेपर जीवका पुनः इस लोकोंमें दर्शन नहीं होता, उसही मार्गपर फेंक देंगे ॥ १८ ॥

तस्याद्य गृध्राः श्येनाश्च वडगोमायवस्तथा ।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चान्ये पुरुषादकाः ॥ १९ ॥

गीध, बगुले, बाज, गीदड, आदि नर मांस खानेवाले भयङ्कर जीवजंतु आज उसका मांस भक्षण करेंगे ॥ १९ ॥

यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाप्यसौ ।
राजधानीं यमस्याद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २० ॥

यदि इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भी आज उसकी रक्षा करें, तोभी वह आज युद्धभूमिमें मरकर यमराजकी राजधानीमें गमन करेगा ॥ २० ॥

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति ।
विशोको विज्वरो राजन्भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ २३२५ ॥

हे राजन् ! विजयी अर्जुन आज सिन्धुराज जयद्रथका वध करके तुम्हारे निकट आयेंगे, तुम समृद्धिसे आनन्दित होकर शोक और चिन्ताको त्याग दो ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ २३२५ ॥

: ६० :

सञ्जय उवाच

तथा संभाषतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः ।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजेन्द्र ! वे लोग आपसमें इसी प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उसही समय अर्जुन इष्टमित्रोंके सहित भरतश्रेष्ठ महाराजा युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे वहांपर उपस्थित हुए ॥ १ ॥

तं प्रविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवाद्याग्रतः स्थितम् ।
समुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥

वे उस सुंदर सभामण्डपके भीतर जाकर महाराज युधिष्ठिरको प्रणाम करके आगे खडे हुए । सामने खडे हुए अर्जुनको पाण्डव श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने उठके प्रीतिपूर्वक आलिङ्गन किया ॥ २ ॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

उन्होंने अर्जुनके मस्तकको सूंघा और अपनी लम्बी भुजाओंसे उन्हें आलिङ्गन किया । फिर आशीर्वाद देकर हंसते हुए उनसे यह वचन बोले ॥ ३ ॥

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् ।
यादृग्रूपा हि ते छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे शरीरकी कान्ति जिस प्रकारसे दीख पडती है और जनार्दन श्रीकृष्णको भी मैं जिस भांतिसे प्रसन्न देखता हूं; इससे मुझे निश्चय ही बोध होता है, कि युद्धभूमिमें तुम्हारी अवश्य महान् विजय होगी ॥ ४ ॥

तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥

अनन्तर विजयी अर्जुन उनसे बोले, महाराज ! आपका मङ्गल हो; मैंने श्रीकृष्णकी कृपासे बहुत उत्तम और बडा आश्चर्ययुक्त स्वप्न देखा है ॥ ५ ॥

ततस्तत्कथयामास यथादृष्टं धनञ्जयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेन समागमम् ॥ ६ ॥

ऐसा कह कर अर्जुनने सुहृद मित्रोंको धीरज देनेके निमित्त जिस प्रकारसे रात्रिके समयमें स्वप्न देखा, और जिस भांतिसे महादेव त्रिनेत्रवाले शिवशङ्करका दर्शन किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया ॥ ६ ॥

ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ७ ॥

तब वहांपर इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजा तथा शूरवीर पुरुषोंने विस्मित होकर, धन्य धन्य कहते हुए अपने मस्तकसे पृथ्वीको स्पर्श करके महादेव वृषभध्वज शंकरको प्रणाम किया ॥ ७ ॥

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसंनद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥

अनन्तर कवच धारण किये हुए सम्पूर्ण सुहृद्-मित्र धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक शीघ्रताके सहित युद्ध करनेके निमित्त वहांसे बाहर निकले ॥ ८ ॥

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥

तदनंतर सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुनने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक उनकी सभासे निकलके युद्धके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ॥ १० ॥

महा पराक्रमी वीर सात्यकि और श्रीकृष्णचन्द्र एक ही रथपर चढके एक साथ अर्जुनके शिविरपर उपस्थित हुए ॥ १० ॥

तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ।
रथं रथवरस्याजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११ ॥

हृषीकेश श्रीकृष्ण वहां पहुंचकर रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके वानर श्रेष्ठ हनुमान्के चिह्नसे युक्त ध्वजावाले उत्तम रथको एक सारथिकी भांति भलीभांति युद्धके लिये सज्जित करने लगे ॥ ११ ॥

स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ॥ १२ ॥

बादलके गर्जनेके समान शब्द करनेवाला और उत्तम भांतिसे तपाये हुए सुवर्णके समान प्रकाशित होनेवाला वह सज्जित श्रेष्ठ रथ ऐसे शोभित होने लगा; जसे भोरके समयमें बाल सूर्य प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥

ततः पुरुषशार्दूलः सज्जः सज्जं पुरःसरः ।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥ १३ ॥

अनन्तर युद्धके लिये सज्जित पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ पुरुषसिंह श्रीकृष्णने स्वयं सज्जित होकर सन्ध्या उपासना आदि नित्यकर्मोंसे निवृत्त हुए अर्जुनके समीपमें जाकर रथ सज्जित होनेका संवाद सुनाया ॥ १३ ॥

तं तु लोके वरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ।
चापबाणभृत्‌ वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४ ॥

संपूर्ण लोकोंके पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने सुवर्णभूषित कवच और किरीट धारण करके धनुष–बाण लेकर रथके समीप जाकर उसकी प्रदक्षिणा की ॥ १४ ॥

ततो विद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
स्तूयमानो जयाशीभिरारुरोह महारथम् ॥ १५ ॥

अनन्तर विद्या, अवस्थामें वृद्ध, बडे उत्तम कर्म करनेवाले, जितेन्द्रिय विद्वान् ब्राह्मण विजयके निमित्त उन्हें शुभ आशीर्वाद प्रदान करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। तब अर्जुन उस महान् रथपर आरूढ हुए ॥ १५ ॥

जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ॥ १६ ॥

उस श्रेष्ठ रथको पहलेसे ही जययुक्त, युद्धमें विजय देनेवाले वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया था; उदयाचलपर आरोहण किये हुए सूर्यके समान उस रथपर आरूढ हुए अर्जुन दीखने लगे ॥ १६ ॥

स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ।
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान्मेराविव दिवाकरः ॥ १७ ॥

सुवर्ण भूषित कवचधारी रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन सुवर्ण खचित उस उत्तम रथमें चढकर ऐसे शोभित हुये, जैसे सूर्य मेरु गिरिपर शोभायमान लगते हैं ॥ १७ ॥

अन्वारुरोहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ।
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ॥ १८ ॥

युयुधान और जनार्दन श्रीकृष्ण भी अर्जुनके बाद उसही रथपर चढे, मानो राजा शर्यातिके यज्ञमें आते हुए इन्द्रके साथ दोनों अश्विनीकुमार आ रहे हैं ॥ १८ ॥

अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन्रश्मिवतां वरः ।
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ॥ १९ ॥

जैसे मातलिने वृत्रासुरके वधके निमित्त युद्धभूमिमें गमन करनेवाले इन्द्रके रथके घोडोंकी बागडोर ग्रहण करी थी, वैसे ही घोडोंकी लगाम पकडनेकी कलामें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने अर्जुनके रथ पर चढके उनके घोडोंकी बागडोर (लगाम) ग्रहण कर ली ॥ १९ ॥

स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ।
सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन्यथा शशी ॥ २० ॥

जैसे अन्धकार नाश करनेवाले चन्द्रमा बुध और शुक्रके सहित आकाशमें शोभित होते हैं, सात्यकि और श्रीकृष्णके सहित श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए अर्जुन भी उसी भांतिसे शोभित होने लगे ॥ २० ॥

सैन्धवस्य वधप्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ।
सहाम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ॥ २१ ॥

जैसे वरुण और सूर्यके सहित देवराज इन्द्रने तारकासुरके युद्धमें गमन किया था, वैसे ही शत्रुओंके नाश करनेवाले अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी अभिलाष करके सात्यकि और श्रीकृष्णके सहित युद्धके निमित्त प्रस्थान किया ॥ २१ ॥

ततो वादित्रनिर्घोषैर्मङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ।
प्रयान्तमर्जुनं सूता मागधाश्चैव तुष्टुवुः ॥ २२ ॥

उस समयमें बाजा बजानेवाले पुरुषोंने नाना प्रकारके बाजे बजाये, और सूत मागध बन्दीजन शुभसूचक मङ्गलकारी स्तोत्रोंका पाठ करके अर्जुनकी स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिस्वनः ।
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ॥ २३ ॥

सूत मागधोंके जय आशीर्वाद और पुण्याहवाचनकी ध्वनि जुझाऊ बाजोंके शब्दके सङ्ग मिलकर उन्हें आनन्दित करने लगी ॥ २३ ॥

तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
ववौ संहर्षयन्पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् ॥ २४ ॥

अर्जुनके प्रस्थान करनेपर मंगल, पवित्र, शीतल मन्द तथा सुगन्धित गतिसे वायु बहके अर्जुनको हर्षित करने लगी, और उधर उनके शत्रुओंको शोषण करने लगी ॥ २४ ॥

प्रादुरासन्निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥

हे राजन् ! उस ही समय पाण्डवोंकी विजय सूचक नाना प्रकारके शुभ शकुन चारों ओर प्रकट हुए और तुम्हारी ओरकी सेनामें पराजयकी सूचना देनेवाले अशकुन दिखाई देने लगे ॥ २५ ॥

दृष्ट्वार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

अर्जुन अपने दाहिने प्रकट होनेवाले विजय सूचक उत्तम तथा अनुकूल शकुन देखकर, महाधनुर्धारी सात्यकिसे इस प्रकार बोले ॥ २६ ॥

युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

हे सात्यकि ! शिनि श्रेष्ठ ! आज जिस प्रकारके ये शुभ लक्षण (शकुन) दिखायी देते हैं उनसे बोध होता है, कि आज युद्धमें अवश्य ही मेरी विजय होगी ॥ २७ ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥

सिन्धुराज जयद्रथ यमलोकमें गमन करनेकी इच्छासे यहांपर स्थित होके मेरे बल पराक्रमकी प्रतीक्षा कर रहा है; मैं उस ही स्थलमें गमन करूंगा ॥ २८ ॥

यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधे मम ।
तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणे ॥ २९ ॥

जैसे सिन्धुराज जयद्रथका वध करना मेरा बहुत बडा कार्य है, वैसे ही धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है ॥ २९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ॥ ३० ॥

हे महाबाहो ! इसलिये आज तुम धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना । जैसे मैं उनकी रक्षा करता था, वैसे ही तुम भी आज धर्मराजकी रक्षा कर सकते हैं ॥ ३० ॥

त्वयि चाहं पराश्वस्य प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३१ ॥

हे पुरुषर्षभ ! मैं तुम्हारे वा महारथी प्रद्युम्नके ऊपर यह भार अर्पण करके भरोसा रखकर निश्चिन्त हो सकता हूं; सिन्धुराज जयद्रथका वध किसीकी सहायताके बिना ही कर सकता हूं ॥ ३१ ॥

मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३२ ॥

हे सात्यके ! तुम मेरे लिये किसी प्रकारसे भी चिन्ता मत करना; तुम राजा युधिष्ठिरहीकी सब भांतिसे यत्न पूर्वक रक्षा करना ॥ ३२ ॥

न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

जहां महाबाहु वासुदेव श्रीकृष्ण विराजमान हैं और मैं स्थित हूं, वहां किसी प्रकार भी भयकी संभावना निश्चितही नहीं है ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वागमत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ॥ २३५९ ॥

शत्रुवीरनाशन सात्यकिने इस प्रकारसे अर्जुनके वचनोंको सुनके ठीक, वैसाही होगा ऐसा कहकर जहां राजा धर्मराज युधिष्ठिर थे वहां गमन किया ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ २३५९ ॥

: ६१ :

धृतराष्ट्र उवाच

श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यौ हते तत्र के वायुध्यन्त मामकाः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! अभिमन्युके मारे जानेपर दुःख और शोकमें सन्तप्त पाण्डवोंने रात्रि बीतनेके अनन्तर सबेरा होनेपर किन कार्योंका अनुष्ठान किया ? और मेरी सेनाके योद्धाओंमेंसे किन लोगोंने युद्ध किया ? ॥१ ॥

जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः ।
कथं तत्किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥

मेरी सेनाके कौरव योद्धा लोग सव्यसाची अर्जुनके बल पराक्रमको जानबूझ कर और उनके समीप अपराधी होकर किस प्रकारसे निर्भय हुए ? वह वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ २ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥

पुत्रशोकसे संतप्त हो अत्यन्त क्रुद्ध हुए, प्राणियोंके नाश करनेवाले यमराजके समान आते हुए उस पुरुषसिंह अर्जुनको मेरी सेनाके योद्धा लोग युद्धमें कैसे देख सके ? ॥ ३ ॥

कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद्धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वन्त मामकाः ॥ ४ ॥

पुत्रशोकसे आर्त्त हुए कपिराज ध्वजावाले अर्जुनको युद्धमें गाण्डीवधनुष चढाते देखकर मेरी ओरके शूरवीरोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया ? ॥ ४ ॥

किं नु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानत्र श्रुतो मे नाभिनन्दनम् ॥ ५ ॥

हे सञ्जय ! संग्रामभूमिमें दुर्योधनकी सेनामें कैसी घटना हुई है ? आज कुछ भी हर्ष ध्वनि मेरे कानोंमें नहीं सुन पडती है; बल्कि महान् विलापके शब्दही सुन पडते हैं ॥ ५ ॥

बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।
न श्रूयन्तेऽद्य ते सर्वे सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६ ॥

सिन्धुराज जयद्रथके शिविरमें पहिले मनोहर, कानोंको सुख देनेवाले शब्द सुन पडते थे, वह सम्पूर्ण शब्द इस समयमें नहीं सुन पडते हैं ॥ ६ ॥

*

स्तुवतां नाद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिबिरे मम ।
सूतमागधसंघानां नर्तकानां च सर्वशः ॥ ७ ॥

मेरे पुत्रोंके शिबिरोंमेंसे भी स्तुतिपाठ करनेवाले सूत, मागध, बन्दी और नर्त्तकोंके शब्द भी आज सर्वथा नहीं सुनायी पडते हैं ॥ ७ ॥

शब्देन नादिताभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥

जहां मेरे कानमें हमारे लोगोंके आनन्द भरे शब्द सुनाई पडते थे, वहीं आज मैं अपने दीन दुःखी हुए लोगोंकी वह हर्षभरी आवाज नहीं सुन रहा हूं ॥ ८ ॥

निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य सञ्जय ।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥ ९ ॥

हे तात सञ्जय ! पहिले मैं सावधान होकर भोरके समय सत्य पराक्रमी सोमदत्तके भवनमें बैठा हुआ मनोहर शब्दोंको सुनता था ॥ ९ ॥

तदद्य हीनपुण्योऽहमार्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं हतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥

परन्तु इस समयमें वे शब्द मुझे नहीं सुनाई देते हैं । हा ! मैं कैसा पुण्यहीन हूं, कि मुझे अपने पुत्रोंके उन घरोंको इस समय उत्साह रहित और आर्त्त स्वरोंसे युक्त बोध करना पडा ॥ १० ॥

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥

विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण और मेरे दूसरे पुत्रोंके घरोंसे भी पहिलेके समान आज कोई आनन्दके शब्द नहीं सुन पडते हैं ॥ ११ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२ ॥

जिस महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग शिष्य होकर उपासना किया करते हैं, जो मेरे पुत्रोंके आश्रयस्वरूप हैं ॥ १२ ॥

वितण्डालापसंलापैर्हुतयाचितवन्दितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥

जो वितण्डावाद, भाषण, आपसमें वार्तालाप, द्रुत गतिसे बजाये बाजोंके शब्द और नाना-प्रकारके इच्छित गीतोंसे दिन रात आनन्दित करते थे ॥ १३ ॥

उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥ १४ ॥

हे सूत ! और बहुतेरे कौरव, पाण्डव तथा सात्वत वंशी जिसकी उपासना करते रहते थे, उस द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके घरमें पहलेके समान शब्द आज नहीं सुन पडता है ॥ १४ ॥

द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्तकाश्च ये ।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥

जो गायक और नर्तक महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी अत्यन्तही उपासना करते रहते थे, उन लोगोंके कुछ भी शब्द इस समय नहीं सुन पडते हैं ॥ १५ ॥

विन्दानुविन्दयोः सायं शिबिरे यो महाध्वनिः ।
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु ॥ १६ ॥

विन्द और अनुविन्दके शिबिरसे सन्ध्याके समय जो महान् शब्द सुनाई देता था, वह इस समय मुझे नहीं सुनाई देता है । और केकयोंके भवनोंसे भी कुछ शब्द नहीं सुन पडता है ॥ १६ ॥

नित्यप्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ।
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न ध्वनिः ॥ १७ ॥

नृत्य करनेवाले ताल-स्वरके सहित सदा प्रसन्नतापूर्वक गीत गाते हुए नृत्य करते थे; उन लोगोंके वह ताल स्वरसे युक्त गीतके शब्द इस समय नहीं सुन पडते हैं ॥ १७ ॥

सप्ततन्तून्वितन्वाना यमुपासन्ति याजकाः ।
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १८ ॥

बहुतसे यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले यज्ञशील याजक श्रुतनिधि सोमदत्तके पुत्रकी उपासना करते रहते हैं, उन लोगोंकी वेदध्वनि भी इस समयमें नहीं सुन पडती है ॥ १८ ॥

ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ।
द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तन्न शृणोम्यहम् ॥ १९ ॥

धनुषटंकारके शब्द, वेद मंत्रोंकी ध्वनि, तोमर, तलवार और रथके शब्द द्रोणाचार्यके शिबिरसे लगातार सुन पडते थे, वह भी इस समयमें नहीं सुन पडते हैं; ॥ १९ ॥

नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः ।
वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ॥ २० ॥

और नानास्थानोंसे गाये हुए गीत और बजाये हुए बाजोंकी महान् ध्वनि सुन पडती थी, वह भी आज नहीं सुनाई देती है ॥ २० ॥

यदा प्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ।
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ॥ २१ ॥

जिस समय जनार्दन श्रीकृष्ण सब भूतोंकी दयासे प्रेरित होकर कुरुपाण्डवोंमें शान्ति स्थापित करनेकी इच्छासे विराट नगरसे यहां आये थे, ॥ २१ ॥

ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ।
वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ॥ २२ ॥

मैंने उसही समय मूढ बुद्धिवाले दुर्योधनसे कहा था– ' हे पुत्र ! तुम श्रीकृष्णके वचनोंको मानके पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि कर लो ॥ २२ ॥

कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः
शमे चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराजयः ॥ २३ ॥

मैं मानता हूं, कि सन्धि करनेका यही उचित समय है । हे दुर्योधन ! तुम मेरे वचनोंको मत टालो । श्रीकृष्ण तुम्हारे हितके निमित्त ही शान्तिके निमित्त प्रार्थना कर रहे हैं, इसलिये यदि तुम श्रीकृष्णके वचनोंको न मानोंगे तो तुम्हारी विजय नहीं होगी ॥ २३ ॥

प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥ २४ ॥

उस समय सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ दाशार्ह श्रीकृष्णने अनेक प्रकारसे विनय युक्त वचन कहे थे; परन्तु दुर्योधन दुष्टनीतिके वशमें होकर उनका अनुगामी नहीं हुआ, बरन उनकी विरुद्धता किया करता था ॥ २४ ॥

ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्तत हित्वा मां कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर वह दुष्ट बुद्धि दुर्योधन कालके वशमें होकर मेरी बातोंको न मानकर दुःशासन और कर्ण इन दोनोंके मतानुवर्ती हुआ ॥ २५ ॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छते द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २६ ॥

हे सञ्जय ! जुएके खेलमें मेरी इच्छा नहीं थी; विदुर भी उसकी प्रशंसा नहीं करते थे; सिन्धुराज जयद्रथ भी जूआ नहीं इच्छिते थे और भीष्म भी द्यूतकी इच्छा नहीं रखते थे ॥ २६ ॥

शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २७ ॥

संजय ! शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य ये भी जुएके खेलको नहीं चाहते थे ॥ २७ ॥

एतेषां मतमाज्ञाय यदि वर्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २८ ॥

मेरा पुत्र यदि इन सब लोगोंके मतके अनुसार चलता, तो जातिके लोग और इष्टमित्रोंके सहित आनन्दित होके सुखपूर्वक अपने जीवन समयको दीर्घकालतक नीरोग रहकर व्यतीत करता ॥ २८ ॥

श्लक्ष्णा मधुरसंभाषा ज्ञातिमध्ये प्रियंवदाः ।
कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ २९ ॥

पाण्डव लोग सरल, मधुरभाषी, जातिके लोगोंमें मनको आनन्दित करनेवाले प्यारे वचनोंके कहनेवाले, कुलके अनुसार उत्तम चरित्रवाले, सम्पूर्ण पुरुषोंमें आदरके योग्य और बुद्धिमान हैं । अतः वे लोग अवश्य सुख प्राप्त करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥

धर्मापेक्षो नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३० ॥

धर्मात्मा पुरुष ही इस लोक और परलोकमें सदा सर्वत्र सुख और कल्याण पानेका अधिकारी होता है, मृत्यूके बाद भी उसे कल्याण और आनंद प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

अर्हन्त्यर्धं पृथिव्यास्ते भोक्तुं सामर्थ्यसाधनाः ।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३१ ॥

सब साधनोंसे युक्त पाण्डव लोग समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीका आधा राज्य भोग करनेके योग्य पात्र हैं; विषेश करके इस समुद्रांत पृथ्वीका राज्य उनके पिता पितामहसे चला आता है ॥ ३१ ॥

नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि ।
सन्ति नो ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३२ ॥

तात ! पाण्डवोंको यदि नियुक्त किया जाय तो वे उसे मानकर सदा धर्म पथपर अवश्य स्थित रहेंगे; हम लोगोंमें अपने जातिके ऐसे पुरुष हैं, कि पाण्डव लोग अवश्य उनके वचनोंको मान्य करेंगे ॥ ३२ ॥

शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
द्रोणस्याथ विकर्णस्य बाह्लिकस्य कृपस्य च ॥ ३३ ॥

शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, विकर्ण, बाह्लिक, कृपाचार्य ॥ ३३ ॥

अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम् ।
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हितम् ॥ ३४ ॥

तथा और भी दूसरे बहुतेरे वृद्ध भरतवंशीय महात्मा लोग हैं, वे यदि तुम्हारे निमित्त पाण्डवोंसे जो कुछ वचन कहेंगे, तो पाण्डव लोग उन हितकर वचनोंका कभी भी निरादर नहीं करेंगे ॥ ३४ ॥

कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्त्वा ब्रूयादतोऽन्यथा ।
कृष्णो न धर्मं सञ्जह्यात्सर्वे ते च त्वदन्वयाः ॥ ३५ ॥

तुम क्या उन व्यक्तियोंमेंसे किसीको ऐसा समझते हो, जो तुम्हारे विरुद्ध उन लोगोंसे कुछ वचन कह सके । श्रीकृष्ण कभी धर्मको त्याग नहीं करेंगे; और वे लोग भी श्रीकृष्णके अनुयायी हैं; श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे जो वचन कहेंगे, उनके विरुद्ध वे लोग कदापि आचरण नहीं कर सकेंगे ॥ ३५ ॥

मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम् ।
नान्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३६ ॥

और मैं भी धर्मके अनुसार वचन यदि उन शूरवीर पाण्डवोंसे कहूंगा, तो वे लोग कभी मेरे वचनोंको न मेटेंगे, क्योंकि पाण्डव लोग धर्मात्मा हैं ॥ ३६ ॥

इत्यहं विलपन्सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान् ।
न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ३७ ॥

हे सूत ! मैंने अपने पुत्र दुर्योधनको इसी प्रकारसे विलाप करते हुए अनेक वचन कहा था, परन्तु उस मूढने मेरे वचनोंको ग्रहण नहीं किया, अतः मैं मानता हूं कि काल विपरीत हो गया है ॥ ३७ ॥

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः ।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥ ३८ ॥

हे सञ्जय ! भीमसेन, अर्जुन, वृष्णिवंशीय वीर सात्यकि, पाञ्चाल उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु ॥ ३८ ॥

धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापराजितः ।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥ ३९ ॥

पराक्रमी धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, अश्मक, केकयदेशीय शूरवीर योद्धा, सोमकनन्दन क्षत्रधर्मा ॥ ३९ ॥

चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभुः ।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः ॥ ४० ॥

चेदिराज, चेकितान, काशिराजके पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पांचो पुत्र, विराव, महारथी द्रुपद, पुरुषसिंह नकुल और सहदेव, ये सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष जिस सेनाके योद्धा हैं और मधुसूदन श्रीकृष्ण जिसके मन्त्री हैं ॥ ४० ॥

क एताञ्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन्वै जिजीविषुः ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्संहरेयुररिंदमाः ॥ ४१ ॥

उस स्थलमें कौन पुरुष इस लोकमें जीवित रहनेकी इच्छा करके इन सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्ग युद्ध कर सकता है ? इन सम्पूर्ण शत्रुदमन वीरोंके दिव्य अस्त्र चलानेपर कौन पुरुष उनके अस्त्रोंकी चोट सह सकेगा ? ॥ ४१ ॥

अन्यो दुर्योधनात्कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ।
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम् ॥ ४२ ॥

दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और चौथे दुःशासनके सिवा मैं पांचवें किसी अन्य ऐसे वीरको नहीं देखता हूं ॥ ४२ ॥

येषामभीशुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः ।
संनद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः ॥ ४३ ॥

रथपर बैठे हुए जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके घोडेकी बागडोर ग्रहण करके सारथि हुए हैं और कवचधारी अर्जुन जिस सेनाका मुख्य योद्धा है; उनके पराजयकी सम्भावना कभी नहीं हो सकती ॥ ४३ ॥

तेषां मम विलापानां न हि दुर्योधनः स्मरेत् ।
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ मे ॥ ४४ ॥

दुर्योधन मेरे उन सम्पूर्ण विलाप युक्त बचनोंको कभी स्मरण नहीं करेगा । तुमने मेरे समीप इस वृत्तान्तको वर्णन किया है, कि पुरुषसिंह भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये हैं ॥ ४४ ॥

तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शिनाम् ।
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४५ ॥

भविष्यमें होनेवाली घटनाओंको सूचित करनेवाली जो बातें विदुरने कही थीं, वे सफल होती हुई देखकर, मैं मानता हूं कि मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे ॥ ४५ ॥

हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ।
अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः ॥ ४६ ॥

जैसे वसन्त ऋतुके बीतने पर अग्नि वायुके सहित मिलकर सूखे तृण और काष्ठोंको भस्म कर देती है; वैसे ही अर्जुन मेरी सेनाको दग्ध कर डालेंगे ॥ ४६ ॥

आचक्ष्व तद्धि नः सर्वं कुशलो ह्यसि सञ्जय ।
यदुपायात्तु सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् ।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ४७ ॥

हे सञ्जय ! तुम इस सम्पूर्ण वृत्तान्तके वर्णन करनेमें निपुण हो; इससे युद्धमें जैसी घटना हुई है, वह संपूर्ण वृत्तान्त मेरे समीपमें वर्णन करो। तुम लोग उपाय रचकर जब अभिमन्युका वध करके अर्जुनका महान् अपराध करके सन्ध्याके समय शिबिरको लौट गये, तब उस समयमें तुम लोगोंका चित्त किस प्रकारका हुआ था ? ॥ ४७ ॥

न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अपकृत्वा महत्तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥ ४८ ॥

हे तात ! मेरे पुत्र लोग गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुनका बहुत बडा अपराध करके युद्धमें उनके पराक्रमके कार्योंको कभी भी सहनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ४८ ॥

किं नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत्
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गते अपि ।
सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम सञ्जय ॥ ४९ ॥

उनकी ऐसी अवस्थामें दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनिने उस समयमें किन कार्योंका अनुष्ठान निश्चित किया था ? संजय ! मेरे एकत्र हुए दूसरे पुत्रोंने भी क्या किया ? ॥ ४९ ॥

यद्वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्यापनयैर्भृशम् ।
लोभानुगतदुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः ॥ ५० ॥

हे तात ! मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनके अत्यंत अन्यायोंसे संग्राममें जो कुछ हुआ वह कहो। नीचबुद्धिवाले दुर्योधनने लोभके वशमें होकर क्रोधसे अपने आत्माके भावको अत्यन्त टेढा कर डाला है ॥ ५० ॥

राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः ।
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकषष्टीतमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ २४१० ॥

हे सञ्जय ! दुर्योधन राज्यकामी, मूढ और मोहसे दूषित मनका हुआ है; उसकी दुष्ट नीति होवे, अथवा सुनीति होवे, युद्धभूमिमें जो जो घटना हुई है वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ ५१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ २४१० ॥

: ६२ :

सञ्जय उवाच

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! युद्ध विषयक सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको मैंने प्रत्यक्ष देखा है; वह सम्पूर्ण समाचार मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, आप चित्त लगाकर सुनिये, महान् अनीतिका कार्य आपहीसे प्रकट हुआ है ॥ १ ॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृगयं तव ।
विलापो निष्फलो राजन्मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ राजन् ! जल निकलनेपर जैसे वहां पुल बांधनेका कार्य निष्फल होता है, उसही प्रकारसे इस समयमें आपके ये विलाप वचन निष्फल होरहे हैं; इससे आप इस समय शोक मत कीजिये ॥ २ ॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत्पुरातनम् ॥ ३ ॥

हे भारत ! कालकी इस अद्भुत गतिको कोई भी नहीं रोक सकता है । यह प्राणियोंके नाश होनेका वृत्तान्त पहिलेहीसे सबको विदित है, इससे उसके निमित्त आप शोक न कीजिये ॥ ३ ॥

यदि हि त्वं पुरा द्यूतात्कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
निवर्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥

यदि पहिले तुम कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर और अपने पुत्रोंको जूएके खेलसे रोकते, तो इस समयमें तुम्हें यह व्यसन प्राप्त न होता ॥ ४ ॥

×

युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि ।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥

फिर जब युद्धका अवसर आया, उसी समय यदि आप अपने क्रोधी पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोकते तो भी इस समयमें तुम्हें यह व्यसन उपस्थित न होता ॥ ५ ॥

दुर्योधनं चाविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि ।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥

तुम यदि पहिलेसेही इस दुष्ट दुर्योधनके बंधनके विषयमें कौरवोंको आज्ञा दे देते, तो तुमपर यह संकट नहीं आता ॥ ६ ॥

तत्ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः ।
पाञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चान्येऽपि महाजनाः ॥ ७ ॥

पाण्डव, पाञ्चाल, सब यदुवंशी और दूसरे सम्पूर्ण श्रेष्ठ पुरुष, तुम्हारी कुबुद्धिका फल निश्चयसे भोगेंगे ॥ ७ ॥

स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे ।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

आप यदि धर्ममार्ग पर स्थित रहकर, अपने पुत्रको श्रेष्ठ मार्गमें चला कर पिताके योग्य कर्मोंका पालन किया होता, तो आपको ऐसे विपद्में न फंसना पडता ॥ ८ ॥

त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् ।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चान्वगा मतम् ॥ ९ ॥

आपने पृथ्वीके बीच बडे बुद्धिमान् होकर भी सनातन धर्मको त्यागके दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके मतका अनुसरण किया है ॥ ९ ॥

तत्ते विलपितं सर्वं मया राजन्निशामितम् ।
अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥

आपका अन्तःकरण अर्थ-लाभसे मुग्ध होगया है; आपका यह सब विलाप मैंने सुना है, यह विष मिलाये हुए मधुके समान मुझे जान पडता है ॥ १० ॥

न तथा मन्यते कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा ।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यते नृप ॥ ११ ॥

नृप ! श्रीकृष्ण आपको पहिले जैसे मानते थे, पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर, भीष्म और द्रोणाचार्यको वैसा वे नहीं मानते थे ॥ ११ ॥

व्यजानत यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम् ।
तदा प्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥

परंतु जब उन्होंने आपको राजधर्मसे भ्रष्ट होते हुए जान लिया, उस ही समयसे फिर तुम्हारा वैसा अधिक मान नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे ।
तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुकम् ॥ १३ ॥

जिस समय तुम्हारे पुत्र पाण्डवोंको कडवे वचन सुनाते थे, उस समय आप पुत्रोंके लिये राज्यके लोभमें पडके पुत्रोंके वचनोंकी उपेक्षा करते थे, उसी अन्यायका फल इस समयमें आप अनुभव कर रहे हैं ॥ १३ ॥

पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदानघ ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥

हे पापरहित ! यह पैतृक राज्य तो आपने अपने अधिकारमें लिया ही था; अनन्तर पाण्डवोंसे जीती हुई सम्पूर्ण पृथ्वीका विशाल साम्राज्य भी अनुचित रीतिसे ग्रहण कर लिया ॥ १४ ॥

पाण्डुनावर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा ।
ततश्चाभ्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥

राजा पाण्डुने पृथ्वीके राज्यको ग्रहण करके कुरुवंशके यशको बढाया था, धमपरायण पाण्डवोंने उनसे भी अधिक विशाल राज्य ग्रहण करके यश प्राप्त किया है ॥ १५ ॥

तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम् ।
यत्पित्र्याद्भ्रंशिता राज्यात्त्वयेहामिषगृद्धिना ॥ १६ ॥

उन लोगोंका ऐसा बडा कार्य तुम्हारे ही कारणसे अत्यंत निष्फल हुआ; क्योंकि तुमने राज्य लोभके आधीन होकर उन लोगोंको अपने पैतृक राज्यसे भी वञ्चित कर दिया है ॥ १६ ॥

यत्पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान्गर्हयसे नृप ।
बहुधा व्याहरन्दोषान्न तदद्योपपद्यते ॥ १७ ॥

नृप ! इस समय युद्ध उपस्थित होने पर तुम अपने दोषोंको स्वीकार न करके अपने पुत्रोंके अनेक दोष बताकर उनकी निर्भर्त्सना कर रहे हैं, यह उचित कार्य नहीं होता है ॥ १७ ॥

न हि रक्षन्ति राजानो युध्यन्तो जीवितं रणे ।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥ १८ ॥

देखो, क्षत्रिय श्रेष्ठ राजालोग युद्धमें प्रवृत्त होकर पाण्डवोंकी सेनामें प्रविष्ट होके समरमें अपने प्राणकी रक्षा नहीं कर रहे हैं ॥ १८ ॥

यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ ।
रक्षेरन्को नु तां युध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥

जिस सेनाकी श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन रक्षा करते हैं, कौरवोंको छोडके उस सेनाके सङ्ग और दूसरा कौन पुरुष युद्ध कर सकता है ? ॥ १९ ॥

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
येषां च सात्यकिर्गोप्ता येषां गोप्ता वृकोदरः ॥ २० ॥

जिस सेनाके गुडाकेश अर्जुन योद्धा और श्रीकृष्ण मन्त्री हैं, जिस सेनाके रक्षक पराक्रमी सात्यकि और भीमसेन हैं, ॥ २० ॥

को हि तान्विषहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः ।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥

उस सेनासे कौरव तथा कौरवोंके अनुयायी पुरुषोंको छोडके और कौन मरणधर्मशील धनुर्धारी पुरुष युद्ध करनेका उत्साह कर सकता है ? ॥ २१ ॥

यावत्तु शक्यते कर्तुमनुरक्तैर्जनाधिपैः ।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत्कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥

कौरवोंकी ओरके क्षत्रिय-धर्म-अवलम्बन करनेवाले शूरवीर राजा और पराक्रमी क्षत्रिय पुरुष भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार युद्ध कर रहे हैं ॥ २२ ॥

यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् ।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ २४३३ ॥

जो हो, पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ कौरवोंका जिस प्रकारसे महाघोर संग्राम हुआ है, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं, आप चित्त लगाकर सुनिये ॥ २३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें बासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ २४३३ ॥

: ६३ :

संजय उवाच

तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद्व्यूहितुं ततः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! उस रात्रिके बीतनेपर जब सवेरा हुआ, तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी सम्पूर्ण सेनाका व्यूह बनाना आरम्भ किया ॥ १ ॥

शूराणां गर्जतां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम् ॥ २ ॥
राजन् ! क्रोधी, बाहुबलसे मतवाले, आपसमें एक दूसरेके वधकी अभिलाष करनेवाले शूरवीरोंकी सिंहनादके सहित विचित्र बातें सुनाई देने लगीं ॥ २ ॥

विस्फार्य च धनूंष्याजौ ज्याः करैः परिमृज्य च ।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन्क्वेदानीं स धनञ्जयः ॥ ३ ॥
युद्धभूमिमें कितने ही शूरवीर योद्धा लोग धनुषपर रोदा चढाकर, हाथमें धनुष फेरते हुए, लम्बी और गर्म सांस लेकर ' इस समयमें वह अर्जुन कहां है ? ' ऐसे वचनोंको कहते हुए जोरसे चिल्लाने लगे ॥ ३ ॥

विकोशान्सुत्सरूनन्ये कृतधारान्समाहितान् ।
पीतानाकाशसङ्काशानसीन्केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४ ॥
कितनेही वीर आकाशके समान स्वच्छ पानीदार, सुंदर मूठवाली और उत्तम धारवाली तलवारोंको म्यानसे निकालकर चलाने लगे ॥ ४ ॥

चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया ।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५ ॥
सहस्रों शूरवीर योद्धा युद्ध करनेके निमित्त उत्सुक होकर अपनी शिक्षाके अनुसार धनुष, तलवार तथा दूसरे अस्त्र–शस्त्रोंको घुमाते हुए मार्गमें गमन करते हुए दिखाई देने लगे ॥ ५ ॥

सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः ।
समुत्क्षिप्य गदाश्चान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥
दूसरे कितने ही पराक्रमी योद्धा लोग घण्टायुक्त, चन्दनचर्चित, सुवर्ण और हीरा रत्नोंसे भूषित गदाएं घुमाते हुए ' कहां है अर्जुन ' ऐसा पूछने लगे ॥ ६ ॥

अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः ।
चक्रुः संबाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥
सुंदर भुजाओंवाले कितने ही पराक्रमी बीर योद्धा अपने बलसे मतवाले होकर ऊँचे उडते हुए इन्द्रधनुषके समान अपने परिघ उछालते हुए आकाशको परिपूर्ण करने लगे ॥ ७ ॥

नानाप्रहरणैश्चान्ये विचित्रस्रगलंकृताः ।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥
विचित्र माला और आभूषणधारी दूसरे शूरवीर योद्धा लोग अनेक प्रकारके आयुध लेकर युद्धके लिये उत्साहित चित्त होकर अपने नियमित स्थानोंपर स्थित हो गये ॥ ८ ॥

क्वार्जुनः क्व च गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः ।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्तो रणे तदा ॥ ९ ॥

' कहां है अर्जुन ? कहां है श्रीकृष्ण ? बल पराक्रमके अभिमानसे मतवाला वह भीमसेन कहां है ? और उन पाण्डवोंके अनुयायी उनके सुहृद लोग कहां हैं ? ' ऐसे ही वचनोंको कहते हुए तुम्हारी ओरके पराक्रमी योद्धा लोग रणभूमिमें पाण्डवोंकी सेनाके शूरबीरोंको युद्धके निमित्त आवाहन करने लगे ॥ ९ ॥

ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन्वाजिनः स्वयम् ।
इतस्ततस्तान्रचयन्द्रोणश्चरति वेगितः ॥ १० ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य अपना शंख बजाकर स्वयं ही अपने घोडोंको शीघ्रतासे हांकते और उन सम्पूर्ण वीर योद्धाओंको यथा योग्य स्थानोंमें स्थित करते हुए सेनाको व्यूहबद्ध करके, युद्धके निमित्त बडे वेगसे इधर उधर घूमने लगे ॥ १० ॥

तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु ।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

हे महाराज ! युद्ध करनेके वास्ते उत्सुक उस सम्पूर्ण सेनाको व्यूहबद्ध करके द्रोणाचार्यने योद्धाओंको यथा योग्य स्थानोंमें स्थित किया । अनन्तर भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य राजा जयद्रथसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥

त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः ।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥ १२ ॥

हे सिन्धुराज ! तुम, सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य, ॥ १२ ॥

शतं चाश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट् ।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १३ ॥

इन छहों महारथियोंके सहित एक लाख घुडसवार, साठ हजार रथ, चौदह हजार मतवाले हाथी ॥ १३ ॥

पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः ।
गव्यूतिषु त्रिमात्रेषु मामनासाद्य तिष्ठत ॥ १४ ॥

और इक्कीस हजार कवचधारी पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंको सङ्ग लेकर मेरे समीपसे छः कोसकी दूरीपर जाकर सेनाके बीचमें खडे रहो ॥ १४ ॥

तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः ।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ १५ ॥

सिन्धुराज ! तुम इस ही प्रकारसे उस स्थानमें स्थित रहोगे तो, सम्पूर्ण देवताओंके सहित इन्द्र भी तुमपर युद्ध भूमिमें आक्रमण नहीं कर सकेंगे फिर सब पाण्डवोंकी बातही क्या है ? अतः तुम धैर्य धारण करो ॥ १५ ॥

एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः ।
संप्रायात्सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः ॥ १६ ॥

सिन्धुराज जयद्रथसे जब द्रोणाचार्यने ऐसे वचन कहे तब उन्होंने धीरज धरके द्रोणाचार्यके बतलाये हुए उन सम्पूर्ण गान्धार महारथवीरोंसे घिरकर और प्रासधारी, कवच पहने हुए, यत्नशील घुडसवारों सहित अपने निश्चित स्थानपर जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ १६ ॥

चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैव सप्तसाहस्रा द्विसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! चवंर और सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित सवारीमें अच्छा काम देनेवाले दस हजार उत्तम सिन्धु देशीय घोडे उनके सङ्ग गमन करने लगे ॥ १७ ॥

मत्तानामधिरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १८ ॥

जिनपर युद्धविशारद हाथीसवार आरूढ थे, ऐसे भयङ्कर मूर्त्तिवाले, युद्धमें भयानक कार्योंके करनेमें समर्थ, मतवाले, कवचधारी ॥ १८ ॥

अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां योत्स्यमानो व्यवस्थितः ॥ १९ ॥

डेढ हजार हाथियोंके साथ आकर तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण युद्धके लिये सज्ज हो सम्पूर्ण सेनाके आगाडी स्थित हुए ॥ १९ ॥

ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २० ॥

इसके अनन्तर तुम्हारे दो पुत्र दुःशासन और विकर्ण सिन्धुराज जयद्रथके प्रयोजनके सिद्ध करनेके निमित्त सेनाके आगाडीके हिस्सेमें स्थित हुए ॥ २० ॥

दीर्घो द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः ।
व्यूहः स चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २१ ॥

आचार्य द्रोणाचार्यने चक्र शकट व्यूह बनाया; इस व्यूहकी लम्बाई चौवीस कोसकी हुई और उसके पीछले भागकी चौडाई दस कोस थी ॥ २१ ॥

नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्वगजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २२ ॥

भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यने स्वयं रथी, घुडसवार, गजपति, पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा और नाना देशोंके पराक्रमी राजाओंको यथा योग्य स्थानोंमें स्थित करते हुए अपनी सेनाका चक्रशकट व्यूह बनाया ॥ २२ ॥

पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूची पद्मस्य मध्यस्थो गूढो व्यूहः पुनः कृतः ॥ २३ ॥

उस व्यूहके पिछले भागमें पद्म नामक एक दुर्भेद्य गर्भव्यूह बनाया; और फिर पद्मव्यूहके मध्यमें सूची नाम और एक गूढ व्यूह बनाया ॥ २३ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २४ ॥

इसी प्रकारसे इस महाव्यूहको सज्जित करके सम्पूर्ण सेनाके आगे द्रोणाचार्य स्थित हुए । महाधनुर्द्धर कृतवर्मा उस सूची व्यूहके मुखस्थल पर स्थित हुए ॥ २४ ॥

अनन्तरं च काम्बोजो जलसंधश्च मारिष ।
दुर्योधनः सहामात्यस्तदनन्तरमेव च ॥ २५ ॥

मारिष ! उनके पीछे काम्बोज और जलसन्ध खडे हुए; उनके पश्चात् अपने अनुयायी तथा सेवकोंसे घिरकर राजा दुर्योधन स्थित हुए; ॥ २५ ॥

ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यूवस्थितानि सर्वाणि शकटे सूचिरक्षिणः ॥ २६ ॥

उनके बाद युद्धभूमिमें पीछे न हटनेवाले एक लाख शूरबीर योद्धालोग युद्धके निमित्त खडे हुए, वे सब शकटव्यूहके सूची व्यूहकी रक्षाके लिये रखे गये थे ॥ २६ ॥

तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजन्सूचिपाशे व्यवस्थितः ॥ २७ ॥

राजन् ! उनके पीछे बहुत बडी सेनासे घिरकर सूचीव्यूहके मध्यमें राजा जयद्रथ खडा था ॥ २७ ॥

शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः।
अनु तस्याभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २८ ॥
राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य शकटव्यूहके मुखस्थलपर स्थित हुए। उनके पीछे भोज खडे होकर स्वयं उनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ २८ ॥

श्वेतवर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः।
धनुर्विस्फारयन्द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ २९ ॥
सफेद कवच और सफेद वस्त्र तथा सफेद शिरस्त्राणको धारण करनेवाले, विशाल वक्षस्थल-वाले, महाबाहु द्रोणाचार्य धनुष चढाकर क्रुद्ध यमराजके समान सम्पूर्ण सेनाके आगे स्थित हुए ॥ २९ ॥

पताकिनं शोणहयं वेदीकृष्णाजिनध्वजम्।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३० ॥
कौरवलोग लालवर्णके घोडोंके सहित द्रोणाचार्यके सुन्दर रथ और पताकाके सहित, उनके रथकी ध्वजाके ऊपर प्रकाशमान् वेदी और कृष्णाजिनको देखकर अत्यंत हर्षित हुए ॥ ३० ॥

सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत्।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३१ ॥
सिद्ध–चारणोंके समुदाय उथलते हुये समुद्रके समान द्रोणाचार्यके बनाये हुए उस अद्भुत व्यूहको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ३१ ॥

सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम्।
ग्रसेद्व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३२ ॥
सम्पूर्ण प्राणी उस व्यूहको देखकर यह मानने लगे कि सेनाका यह अद्भुत व्यूह पर्वत, समुद्र और वनके सहित सम्पूर्ण चराचरोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीको ग्रास कर सकेगा ३२॥

बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं प्रतिभयनिस्वनमद्भुताभरूपम्।
अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ २४६६ ।

राजा दुर्योधन अनेक रथ, पैदल मनुष्य, घोडे और हाथियोंसे युक्त, भयंकर कोलाहलसे युक्त, शत्रुओंके हृदयको भेदन करनेमें समर्थ, अद्भुत रूपसे युक्त उस महान् बिकट शकट व्यूहको देखकर बहुत आनन्दित हुए ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ २४६६ ॥

: ६४ :

सञ्जय उवाच

ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥

संजय बोले– महाराज ! जब इस प्रकारसे कुरुसेनाका व्यूह बनाया गया, तब व्यूहके बीच स्थित शूरवीर योद्धालोग युद्धकी इच्छासे बार बार सिंहनाद करके तर्जन करने लगे। भेरी और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे ॥ १ ॥

अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निस्वने ।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु संनादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥

सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग महाघोर शब्दके सहित सिंहनाद करने लगे और भी युद्धके जुझाऊ बाजोंके शब्द सेनाके बीच चारों ओर सुनाई देने लगे। शंख फूंके जाने लगे, रोमांचकारी शब्द होने लगा ॥ २ ॥

अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।
रौद्रे मुहूर्ते संप्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥

भरतवंशी शूरवीर योद्धा कवच धारण करके हर्षित होकर धीरे धीरे शस्त्र चलानेके निमित्त तैयार होकर युद्ध भूमिमें स्थित हुए। उस ही भयङ्कर रौद्र मुहूर्तके समयमें सव्यसाची अर्जुन वहां पर दीख पडे ॥ ३ ॥

वडानां वायसानां च पुरस्तात्सव्यसाचिनः ।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥

हे भारत ! सव्यसाची अर्जुनके रथके आगे आगे मांसकी अभिलाष करनेवाले सहस्रों पक्षी तथा कौवे गिद्ध आदि हर्षित होकर क्रीडा करते गमन करने लगे ॥ ४ ॥

मृगाश्च घोरसंनादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः ।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥

हमलोगोंने जब युद्धके निमित्त गमन किया तब भयंकर शब्द करनेवाले पशु और अशुभ दर्शनवाले सियार आदिक पशु हमलोगोंके दाहिनी ओर भयानक शब्द करने लगे ॥ ५ ॥

सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः समन्ततः ।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥

महान् घोर भय उत्पन्न होनेके कारण भयानक शब्दोंके सहित आकाशसे चारों ओर जलती हुई उल्काएं गिरने लगीं और सारी पृथ्वी कांपने लगी ॥ ६ ॥

विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः ।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥

अर्जुनके आनेके और युद्धका समय उपस्थित होनेपर वायु प्रचण्ड वेगसे युक्त होकर गर्जनके साथ रूखी और कङ्कडोंकी वर्षा करनेवाली भयङ्कर रूपसे वहने लगी ॥ ७ ॥

नाकुलिस्तु शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥

नकुल पुत्र शतानीक और पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न– इन दोनों बुद्धिमान् पुरुषोंने उस समयमें पाण्डवोंकी सेनाका व्यूह बनाया ॥ ८ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥

अनन्तर एक सहस्र रथी, एक सौ गजपति, तीन हजार घुडसवार और दस हजार पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंके साथ आकर ॥ ९ ॥

अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

अर्जुनसे डेढ हजार धनुषकी दूरीपर स्थित हो, सब कौरव सेनाके आगे खडे होकर तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण यह वचन कहने लगे ॥ १० ॥

अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥

जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है, वैसे ही मैं आज शत्रुनाशन युद्धदुर्मद गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनको रोक दूंगा ॥ ११ ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाश्मनि ॥ १२ ॥

जैसे पत्थर दूसरे पत्थर समूहोंसे टकराकर रुकता है, वैसेही अमर्षण दुर्धर्ष अर्जुन युद्धमें मुझसे भिडकर रुक जायेंगे ॥ १२ ॥

एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन्महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र ! महाधनुर्धारी वीरोंके बीचमें स्थित हुए महाधनुर्द्धर महा बुद्धिमान् महात्मा दुर्मर्षण इसी प्रकारसे वचन कहते हुए सम्पूर्ण सेनाके आगे युद्धके लिये खडे हुए ॥ १३ ॥

ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १४ ॥

इसके अनन्तर क्रोधित हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, दण्डधारी असह्य अन्तक और काल-प्रेरित मृत्यु ॥ १४ ॥

शूलपाणिरिवाक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्प्रधक्ष्यन्वै पुनः प्रजाः ॥ १५ ॥

क्षुब्ध न होनेवाले त्रिशूलधारी महादेव, पाशधारी वरुण; फिर प्रजाको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित प्रलयकालीन अग्निके समान प्रकाशित ॥ १५ ॥

क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन्महाव्रतम् ॥ १६ ॥

क्रोध, अमर्ष और बलसे प्रेरित, निवातकवच दानवोंका संहार करनेवाले, जय नामके अनुसार विजयी, सत्यमें स्थित, महान् व्रतको पूर्ण करनेके लिये उद्यत ॥ १६ ॥

आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रवर्माम्बरधरः स्वङ्गदी चारुकुण्डली ॥ १७ ॥

कवच बांधे हुए, खड्ग धारण करनेवाले, सुवर्णमय किरीट धारण किये हुए, शुभ्र कवच और वस्त्र पहने हुए, सुंदर अंगद और मनोहर कुण्डलोंसे शोभित ॥ १७ ॥

रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
विधुन्वन्गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १८ ॥

वे नर स्वरूप अर्जुन नारायण स्वरूप श्रीकृष्णका अनुसरण करते थे । वीर अर्जुन युद्धभूमिमें प्रकाशमान श्रेष्ठ रथपर चढकर गाण्डीव धनुष फेरते हुए उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ १८ ॥

सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः ।
व्यवस्थाप्य रथं सज्जं शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १९ ॥

प्रतापी अर्जुनने अपने सज्जित रथको अपने सामने खडी हुई बडी शत्रुसेनासे बाण चलाने तककी दूरीपर खडा करके अपना शङ्ख बजाया ॥ १९ ॥

अथ कृष्णोऽप्यसंभ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।
प्राध्मापयत्पाञ्चजन्यं शङ्खप्रवरमोजसा ॥ २० ॥

मारिष ! अनन्तर श्रीकृष्णने भी अर्जुनके साथ निर्भयचित्तसे शंखोंमें श्रेष्ठ अपना पाञ्चजन्य शंख बलपूर्वक बजाया ॥ २० ॥

तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशां पते।
आसन्संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २१ ॥
हे राजेन्द्र ! उन दोनों पुरुषसिंहोंके शङ्खके शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनाके पुरुषोंके रोएं खडे होगये, कितने ही पुरुष कांपने लगे और कितने मूर्च्छितसे होगये ॥ २१ ॥

यथा त्रसन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिस्वनात्।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २२ ॥
जैसे वज्रकी गडगडाहट सुनकर सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होजाते हैं, उस ही प्रकारसे उन दोनोंके शङ्खके शब्दको सुनकर तुम्हारे सब सैनिक संत्रस्त होगये; ॥ २२ ॥

प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद्बलम् ॥ २३ ॥
सवारीके सम्पूर्ण वाहन भयसे मलमूत्र त्याग करने लगे। इसी प्रकारसे सवारियों सहित सम्पूर्ण सेना उद्विग्न होगई ॥ २३ ॥

व्यषीदन्त नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष।
विसंज्ञाश्चाभवन्केचित्केचिद्राजन्वितत्रसुः ॥ २४ ॥
हे राजन् ! कुरुसेनाके सम्पूर्ण मनुष्य उन दोनों पुरुषसिंहोंके शङ्खके शब्द सुनकर उत्साह-रहित होगये; कितने ही मूर्च्छित हुए; और कितने ही योद्धा भयभीत होगये ॥ २४ ॥

ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः।
अकरोद्व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २५ ॥
अनन्तर अर्जुनकी ध्वजापर स्थित वानर हनुमान मुंह पसारकर ध्वजस्थित भूतोंके सहित तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करते हुए महानाद करने लगे ॥ २५ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह।
पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २६ ॥
इसके अनन्तर तुम्हारी सेनाके बीच भी शूरवीरोंके हर्ष और उत्साहको बढानेवाले शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, ढोल और नगाडे आदि युद्धके बाजे बजने लगे ॥ २६ ॥

नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः।
सिंहनादैः सवादित्रैः समाहूतैर्महारथैः ॥ २७ ॥
नाना प्रकारके रणवाद्योंका शब्द, महारथ शूरवीरोंके धनुषटङ्कार और सम्पूर्ण वीर योद्धाओंका सिंहनाद जुझाऊ बाजोंके सङ्ग मिलकर ॥ २७ ॥

तस्मिन्स्तुतुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत्पाकशासनिः ॥ २८ ॥

शूरवीर पुरुषोंके हर्ष और कायरोंके भयको बढाता हुआ अत्यन्त तुमुल उत्पन्न होने लगा । अनन्तर इन्द्र पुत्र अर्जुन अत्यन्त हर्षित होकर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ २८ ॥

चोदयाश्वान्हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।
एतद्भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ २९ ॥

अर्जुन बोले, हे हृषीकेश ! जहां दुर्मर्षण स्थित है, उस ही स्थानपर मेरे घोडोंको ले चलो, मैं उसकी इस गजसेनाको भेद करके शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करूंगा ॥ २९ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ ३० ॥

जब सव्यसाची अर्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्रने जिस स्थान पर दुर्मर्षण सेनाके सहित स्थित थे, उस ही ओर अर्जुनके रथके घोडोंको चलाया ॥३०॥

स संप्रहारस्तुमुलः संप्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३१ ॥

अनन्तर एक वीरका अनेक योद्धाओंके साथ अनेक रथ, हाथी और मनुष्योंका नाश करनेवाला भयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ३१ ॥

ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत्पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ३२ ॥

बादल जैसे पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करके उनको आच्छादित करते हैं, वैसे ही अर्जुनने अपने बाणोंकी जल बरसानेवाले मेघके समान वर्षा करके शत्रुसेनाको ढक दिया ॥ ३२ ॥

ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन्बाणजालैस्ततः कृष्णधनञ्जयौ ॥ ३३ ॥

उन सम्पूर्ण रथी योद्धाओंने भी सिद्धहस्त वीरोंके समान शीघ्रताके सहित श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करके उनको आच्छादित कर दिया ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ३४ ॥

अनन्तर महाबाहु अर्जुन युद्धमें शत्रुसेनाके वीरोंके द्वारा रोके जानेपर क्रोधपूर्वक अपने बाणोंसे उन रथियोंके शिरोंको धडसे काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ३४ ॥

उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः संदष्टोष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ३५ ॥

कितने ही कटे हुए शिरोंसे नेत्र बाहर होगये; कितनोंके दांतोंसे चबाये जाते हुए ओठ दीख पडते थे । कितने ही शिर कुण्डल और टोपोंके सहित पृथ्वी पर गिरे हुए दिखाई देने लगे; उस समयमें वीरोंके कटे हुए सुंदर शिरोंसे पृथ्वी परिपूरित होगई ॥ ३५ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ३६ ॥

योद्धाओंके मुख इधर उधर सब ओर रणभूमिमें गिर कर टूटे हुए कमलवनके समान दिखाई देने लगे ॥ ३६ ॥

तपनीयविचित्राणि सिक्तानि रुधिरेण च ।
अदृश्यन्त यथा राजन्मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ३७ ॥

राजन् ! सुवर्णमय विचित्र कवच धारण किये और रुधिरसे पूरित हुए वीरोंके शरीर मानों बिजलीसे युक्त बादलोंके समान दिखाई देने लगे ॥ ३७ ॥

शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूत्पृथिवीतले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ ३८ ॥

राजन् ! समयके पके हुए तालवृक्षके फलोंके गिरनेसे जिस प्रकार शब्द होता है, वैसे ही पृथ्वी पर शूरवीरोंके कटे हुए शिरोंके गिरनेका शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥

ततः कबन्धः कश्चित्तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
कश्चित्खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ३९ ॥

इसके अनन्तर रणभूमिमें चारों ओर कबन्ध उठके इधर उधर दौडने लगे । कोई-कोई कबन्ध धनुष चढाकर खडा था; कोई मियानसे तलवार निकालके उसे हाथमें उठाये खडा हुआ था ॥ ३९ ॥

नाजानन्त शिरांस्युर्व्यां पतितानि नरर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः कौन्तेयं संग्रामे जयगृद्धिनः ॥ ४० ॥

युद्धमें विजयकी इच्छा रखनेवाले कितने ही नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र अर्जुन पर क्रोधित होकर धावा करते थे; उस अवस्थामें उनके शिर कब कटकर गिर गये, यह भी वे जान न सके ॥ ४० ॥

हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥ ४१ ॥

घोडोंके मस्तक, हाथियोंकी सूंड और वीरोंके बाहु और शिरोंसे पृथ्वी परिपूर्ण हो गई ॥ ४१ ॥

अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोगोंको सब जगह अर्जुन ही दीख रहे थे; वे " यही अर्जुन है ! कहां अर्जुन है ? यही अर्जुन है ! " ऐसे कहते थे ॥ ४२ ॥

अन्योन्यमपि चाजघ्नुरात्मानमपि चापरे ।
पार्थभूतममन्यन्त जगत्कालेन मोहिताः ॥ ४३ ॥

कोई आपसमें परस्पर तथा कोई अपनेको ही मारने लगे । तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धालोग रणभूमिमें कालसे मोहित होकर सब जगत्को अर्जुनमय मानने लगे ॥ ४३ ॥

निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराः कीर्तयन्तः सुहृज्जनम् ॥ ४४ ॥

कितने ही शूरवीर योद्धा लोग अस्त्रोंकी चोटसे अत्यन्त पीडित होके रुधिर बहते हुए शरीरसे चेतरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे और दूसरे कितने ही योद्धा धरतीपर पडे पडे अपने मित्र बन्धुबान्धवोंका नाम लेकर कातर स्वरसे पुकारने लगे ॥ ४४ ॥

सभिण्डिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः ।
सनिर्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥ ४५ ॥
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
महाभुजगसङ्काशा बाहवः परिघोपमाः ॥ ४६ ॥
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संवेष्टन्ति च सर्वशः ।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥ ४७ ॥

शूरवीरोंकी लोहमय परिघ और महान् सर्पके समान दिखायी देनेवाली विशाल भुजाएं, भिन्डिपाल, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, परशु, निर्यूह, खड्ग, धनुष, तोमर, बाण, बर्म, आभूषण, गदा और भुज बंद तथा दूसरे अनेक प्रकारके अस्त्रों सहित अर्जुनके श्रेष्ठ बाणोंसे कटके, वेगपूर्वक इधर उधर गिरती और हाथ पसारके शस्त्रोंको चलाती, लुढकती और भ्रमण करती हुई दीख पडीं ॥ ४५–४७ ॥

यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंरभते नरः ।
तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥ ४८ ॥

जो जो पुरुष क्रोधपूर्वक दौडके समरमें अर्जुनके संमुख हुआ, उस–उसके शरीर पर प्राणोंका अन्त करनेवाला बाण आ पडता था ॥ ४८ ॥

नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा ।
न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददर्शान्तरमण्वपि ॥ ४९ ॥

अर्जुन रथपर चढ कर नृत्य करते हुए धनुष चढाकर रथके मार्गोंपर विचरते रहे थे कि उस समय कोई पुरुष उनपर प्रहार करनेका तनिक भी अवसर नहीं देख सके ॥ ४९ ॥

यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् ।
लाघवात्पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ ५० ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन यत्नवान् होकर ऐसे बडी शीघ्रताके सहित बाणोंको चलाने लगे, कि सम्पूर्ण सेनाके शूरवीर योद्धा लोग उनके हस्तलाघवको देखकर विस्मित हो गये ॥ ५० ॥

हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च ।
अभिनत्फल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥ ५१ ॥

अर्जुनने गजपतियोंके सहित हाथी, घुडसवारोंके सहित घोडे और सारथियोंके सहित रथियोंको अपने बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ ५१ ॥

आवर्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न कंचिन्न निहन्ति सः ॥ ५२ ॥

जो लौटकर आते थे, जो आये थे, जो युद्ध करते थे और जो सामने खडे थे– इनमेंसे किसीको भी अर्जुन अपने बाणोंसे मारे विना नहीं छोडते थे ॥ ५२ ॥

यथोदयन्वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः ।
तथार्जुनो गजानीकमवधीत्कङ्कपत्रिभिः ॥ ५३ ॥

जैसे आकाशमें सूर्य उदय होके सम्पूर्ण अन्धकारको दूर कर देता है, वैसे ही अपने कंकपत्र युक्त बाणोंसे अर्जुन तुम्हारी गज सेनाका नाश करने लगे ॥ ५३ ॥

हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
अन्तकाले यथा भूमिर्विनिकीर्णैर्महीधरैः । ॥ ५४ ॥

जैसे प्रलयकालके समय इधर उधर बिखरे हुए पर्वतोंके समूहसे पृथ्वी पूरित हो जाती है, वैसे ही तुम्हारी सेना बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर नीचे पडे हुए हाथियोंके समूहसे दिखाई देती थी ॥ ५४ ॥

यथा मध्यंदिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
तथा धनंजयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ ५५ ॥

जैसे दोपहरके समयमें सम्पूर्ण प्राणियोंको सूर्यकी ओर देखना सदा कठिन हो जाता है, वैसे ही शत्रु लोग क्रोधित अर्जुनकी ओर युद्धभूमिमें अत्यंत कठिनतासे देख सके ॥ ५५ ॥

×

तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परंतप ।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ ५६ ॥

हे परन्तप ! अन्तमें तुम्हारे पुत्रकी सेना युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भग्न हो गयी और वह अत्यंत भयभीत होकर युद्धभूमिसे भागने लगी ॥ ५५ ॥

मारुतेनेव महता मेघानीकं विधूयता ।
प्रकाल्यमानं तत्सैन्यं नाशकत्प्रतिवीक्षितुम् ॥ ५७ ॥

जैसे प्रचण्ड वेगसे बहनेवाली वायु बादलोंके समूहको तितर बितर कर देती है, उस ही प्रकारसे वह सम्पूर्ण सेना अर्जुनके बाणोंसे तितर बितर होकर जोरसे भागने लगी, तब सेनाके योद्धा लोग फिरकर अर्जुनकी ओर देख भी न सके ॥ ५७ ॥

प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुंकारैः साधुवाहितैः ।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ५८ ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चार्जुनार्दिताः ॥ ५९ ॥

तुम्हारे पैदल, रथी और घुडसवार योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर कोडे, धनुषके नोक, हुङ्कार शब्द, हांकनेकी कला, चाबुकके प्रहार, पैरोंके आघात और कठोर वचन कहते हुए अपने घोडोंको शीघ्रतासे युद्धभूमिसे लौटा कर अर्जुनके संमुखसे भागने लगे ॥ ५८–५९ ॥

पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्नागाश्चोदयन्तस्तथापरे ।
शरैः संमोहिताश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययौ ।
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा । ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ २५२६ ॥

दूसरे हाथीसवार अपने अंकुश और पांवके अंगूठेसे हाथियोंको हांकते हुए रणभूमिसे भाग गये; और कितने ही शूरवीर योद्धा बाणोंकी चोटसे मोहित होकर अर्जुन ही की ओर दौडने लगे । उस समय तुम्हारे सब योद्धा उत्साहरहित और मनमें भयभीत हो गये थे ॥ ६० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ २५२६ ॥

: ६५ :

धृतराष्ट्र उवाच—

तस्मिन्प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना ।
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय! जब किरीटधारी अर्जुनके अस्त्रोंसे पीडित होकर वह अग्रगामी सेना भागने लगी, तब युद्धभूमिमें कौन कौन योद्धा उस समयमें अर्जुनके सम्मुख हुए थे ? ॥ १ ॥

आहो स्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तः प्राकारमकुतोभयाः ॥ २ ॥

ऐसा तो नहीं हुआ कि अपना सङ्कल्प निष्फल हुआ यह देखकर वे सब योद्धा द्रोणाचार्य रूपी दिवालका आश्रय कर शकटव्यूहमें प्रवेश करके भयसे रहित होकर स्थित हुए ? ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—

तथार्जुनेन संभग्ने तस्मिंस्तव बले तदा ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले - जब अर्जुनने उस तुम्हारी सेनाके शूरवीर योद्धाओंको मारकर उसे उत्साहरहित करके भागनेके लिये विवश कर दिया, तब वे भागनेका अवसर देखने लगे ॥ ३ ॥

पाकशासनिनाभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ।
न तत्र कश्चित्संग्रामे शशाकार्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥

इन्द्रपुत्र अर्जुनके श्रेष्ठ बाणोंकी उनके उपर सतत वर्षा होकर वे विद्ध हो रहे थे, तब कोई भी पुरुष अर्जुनकी ओर संग्राममें देखनेमें समर्थ न हुए ॥ ४ ॥

ततस्तव सुतो राजन्दृष्ट्वा सैन्यं तथागतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्ययात् ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्र दुःशासन सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको इस प्रकार अर्जुनके सम्मुखसे भागते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो युद्ध करनेके लिये अर्जुनकी ओर बढे ॥ ५ ॥

स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥

महापराक्रमी बलवान् शूरवीर दुःशासनने सुवर्णभूषित विचित्र कवच और सुवर्णभूषित शिरस्त्राण धारण किया था ॥ ६ ॥

नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥

महाराज ! उन्होंने हाथियोंकी बडी सेना सङ्ग लेकर मानो इस सारी पृथ्वीको ग्रास करते हुए सव्यसाची अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥

हाथियोंकी घंटोंकी ध्वनि, शंखनाद, धनुषकी टंकार और हाथियोंके चिंघाडनेके शब्दसे ॥ ८ ॥

भूर्दिशश्चान्तरिक्षं च शब्देनासीत्समावृतम् ।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥

पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशाएं और आकाश परिपूर्ण होगये । उस समय मुहूर्त भरके लिये वह अत्यंत भयंकर और दारुण प्रतीत हुआ ॥ ९ ॥

तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णमङ्कुशैरभिचोदितान् ।
व्यालम्बहस्तान्संरब्धान्सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १० ॥

उन सम्पूर्ण हाथियोंको अंकुश देकर चलाने पर लम्बी सूंड उठाये क्रुद्ध होके, पक्षयुक्त पर्वतोंके समान वेगसे अपने ऊपर आते देख, ॥ १० ॥

सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः ।
गजानीकममित्राणामभितो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥

नरसिंह अर्जुनने बडे जोरसे सिंहनाद किया और निर्भयचित्तसे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंकी गजसेनाका सब भांतिसे नाश करने लगे ॥ ११ ॥

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम् ।
किरीटी तद्गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा ॥ १२ ॥

वायुके वेगसे ऊपर उठाये हुए ऊंची तरङ्गोंसे युक्त महासमुद्रके समान उस गजसेनामें किरीटधारी अर्जुनने मकर घडियालके समान प्रवेश किया ॥ १२ ॥

काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन्युगसंक्षये ।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥

उस समय शत्रुओंके नगरोंपर विजय पानेवाले अर्जुन, जैसे प्रलयके समयमें सूर्य सीमाका उल्लंघन करके तपते हैं, उसीप्रकार चारों ओर पराक्रम करते हुए दिखाई देने लगे ॥ १३ ॥

खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १४ ॥

घोड़ोंकी टापोंके शब्दसे रथोंके चक्कोंकी घर घराहटसे, वीरोंके सिंहनादसे, धनुषकी टङ्कारसे देवदत्त शंखके शब्दसे और गाण्डीव धनुषकी टंकार ध्वनिसे ॥ १४ ॥

मन्दवेगतरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥ १५ ॥

हाथियोंके वेग शिथिल होगये; सव्यसाची अर्जुनने विषधर सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध कर दिया ॥ १५ ॥

ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १६ ॥

गाण्डीव धनुषसे छुटे हुए सैकड़ों तथा सहस्रों तीक्ष्ण बाण उन हाथियोंके सब अंगोंमें धसे हुए थे ॥ १६ ॥

आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ १७ ॥

अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर बारबार महाघोर शब्द करते हुए वे हाथी पंख कटे हुए पर्वतके समान मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ १७ ॥

अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १८ ॥

दूसरे अनेक हाथी ओठ, कुंम्भस्थल और कनपटि आदि सम्पूर्ण शरीरोंमें बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर क्रौञ्च पक्षीके समान बारबार आर्तनाद करने लगे ॥ १८ ॥

गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
आच्छिद्यन्तोत्तमाङ्गानि भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ १९ ॥

हाथियोंकी पीठपर स्थित पुरुषोंके शिर किरीटधारी अर्जुनने तीक्ष्ण भल्लबाणोंसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिये ॥ १९ ॥

सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २० ॥

पृथ्वीपर गिरते हुए योद्धाओंके कुण्डल भूषित शिर कमल पुष्पोंके समूहके समान दीखते थे, उस समय मानो कुन्तीपुत्र अर्जुन पृथ्वीको पद्मपुष्प निवेदन करने लगे ॥ २० ॥

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २१ ॥

हाथियोंके ऊपर अस्त्रशस्त्र ग्रहण करनेवाले जो यन्त्रबद्ध शूरवीर योद्धा थे, वे सम्पूर्ण योद्धा लोग हाथियोंके चारों ओर भ्रमण करनेके समय घावसे अत्यन्त पीडित, रुधिरसे पूरित और कवचरहित होके हाथियोंके हौदेपर इधर उधर झुलने लगे ॥ २१ ॥

केचिदेकेन बाणेन सुमुक्तेन पतत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २२ ॥

अर्जुनके धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए, सुंदर पंखयुक्त एक ही बाणसे दो दो तीन तीन हाथी एक साथ विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २२ ॥

मौर्वीं धनुर्ध्वजं चैव युगानीषास्तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २३ ॥

अनन्तर अर्जुनने अपने तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे रथियोंकी मौर्वी, धनुष, ध्वजा, जुआ और ईषादण्डके काट काट करके टुकडे कर डाले ॥ २३ ॥

न संदधन्न चाप्यस्यन्न विमुञ्चन्न चोद्धरन् ।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन्पार्थः स्म दृश्यते ॥ २४ ॥

उस समयमें बाण ग्रहण करते, सन्धान करते, बाण छोडते और बाणोंको निकालते समय कोई भी पुरुष अर्जुनको न देख सके । केवल उस समयमें अर्जुन मण्डलाकार धनुषके साथ चारों ओर नृत्य करनेसे दीख पडते थे ॥ २४ ॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्तान्निपतन्त्यन्ये वारणा वसुधातले ॥ २५ ॥

कितने ही हाथी अर्जुनके नाराच बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर मुहूर्तभरमें मुखसे रुधिर उगलते हुए पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २५ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ २६ ॥

महाराज ! उस महाघोर भयङ्कर संग्राममें अनगिनत कबन्ध उठके चारों ओरसे दौडते हुए दिखाई देने लगे ॥ २६ ॥

सचापाः साङ्गुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २७ ॥

कटी हुई सुवर्णमय अलंकारोंके भूषित वीरोंकी भुजाएं, धनुष, तलवार, अंगुलि त्राण और भुजबन्दोंके सहित कटकर युद्धभूमिमें गिरी हुई दिखाई देने लगीं ॥ २७ ॥

सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षै भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ २८ ॥

उत्तम उपकरण, बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, चक्र, अक्ष और जूए—इनके साथ रथ भग्न होकर चूर हो गये ॥ २८ ॥

वर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ २९ ॥

कवच, धनुष और बाणों सहित टूटे हुए रथ इधर उधर बिखरे पडे थे; गलेकी माला, अलंकार, वस्त्र और विशाल ध्वज पृथ्वीपर पडे हुए थे ॥ २९ ॥

निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३० ॥

हाथी, घोडे और क्षत्रिय भी मारे गये थे; इन सबके कारण वहांकी रणभूमि देखनेमें अत्यंत भयंकर जान पडती थी ॥ ३० ॥

एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।
संप्राद्रवन्महाराज व्यथितं वै सनायकम् ॥ ३१ ॥

महाराज ! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनसे मारी जाती हुई वह दुःशासनकी सेना अत्यंत पीडित होकर अपने नायकके साथ भाग गयी ॥ ३१ ॥

ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकाङ्क्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ २५५८ ॥

इसके अनन्तर अर्जुनके बाणोंसे पीडित और भयभीत होके दुःशासनने भी अपनी सेनाके सहित परित्राणकी अभिलाषसे द्रोणाचार्यके निकट जाकर शकटव्यूहमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ २५५८ ॥

: ६६ :

संजय उवाच

दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची धनंजयः ।
सिन्धुराजं परीप्सन्वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! सव्यासाची अर्जुन दुःशासनकी सेना नष्ट करके सिन्धुराज जयद्रथके समीप जानेकी इच्छासे द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे ॥ १ ॥

स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥

उन्होंने व्यूहके मुखपर स्थित द्रोणाचार्यके पास पहुंचकर श्रीकृष्णकी अनुमतिके अनुसार हाथ जोडकर यह बचन कहा ॥ २ ॥

शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन्स्वस्ति चैव वदस्व मे ।
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप मेरे मङ्गल और कल्याणका चिन्तन करके, स्वस्तिवाद कीजिये; आशीर्वाद दीजिये, मैं तुम्हारी कृपासे इस दुर्भेद्य शत्रुसेनाके व्यूहमें प्रवेश करनेकी अभिलाष करता हूं ॥ ३ ॥

भवान्पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

मैं आपसे सत्य कहता हूं, कि आप मेरे पिताके सदृश तथा धर्मराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्णके समान मुझे प्रिय हैं ॥ ४ ॥

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्तवानघ ।
तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥

हे द्विजसत्तम ! हे पापरहित ! अश्वत्थामा जिस प्रकारसे तुम्हारी रक्षाके योग्य पात्र है, मैं भी उस ही प्रकारसे सदैव तुमसे रक्षित होनेके योग्य हूं ॥ ५ ॥

तव प्रसादादिच्छामि सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे विभो ॥ ६ ॥

हे पुरुषर्षभ ! हे आचार्य ! मैं तुम्हारी कृपासे युद्धभूमिमें सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छा करता हूं । आज आप मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥

जब द्रोणाचार्यसे अर्जुनने ऐसा बचन कहा, तब द्रोणाचार्यने हंसकर उन्हें यह उत्तर दिया— हे अर्जुन ! तुम मुझे विना पराजित किये जयद्रथको न जित सकोगे ॥ ७ ॥

एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिम् ॥ ८ ॥

ऐसा बचन कहकर द्रोणाचार्यने हंसते हुए तीक्ष्ण बाण समूहोंसे अर्जुनको रथ, घोडे, ध्वज और सारथिके सहित छिपा दिया ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातान्द्रोणस्यावार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यर्दयद्बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥

अनन्तर अर्जुनने भी अपने बाणोंसे द्रोणाचार्यके बाण समूहोंका निवारण करके फिर अत्यन्त भयङ्कर अनेक बडे बाणोंको चलाकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशां पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥

हे नरनाथ ! इसके अनन्तर अर्जुनने द्रोणाचार्यको सम्मानित करके क्षत्रियधर्मका अवलम्बन करनेसे युद्धमें फिर नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ १० ॥

तस्येषूनिषुभिश्छित्त्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलनप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे अर्जुनके बाणोंको काटके विष तथा जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी बाणोंको चलाकर अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनोंको विद्ध किया ॥ ११ ॥

इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फल्गुनस्य महात्मनः
द्रोणः शरैरसंभ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् ॥ १२ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंसे द्रोणाचार्यके धनुषको काटनेकी इच्छा की; महात्मा अर्जुन इस प्रकार धनुष काटनेका विचार करते ही थे कि उस ही समयमें पराक्रमी द्रोणाचार्यने निर्भय चित्तसे अपने बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक अर्जुनके धनुषका रोदा काट दिया ॥ १२ ॥

विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च
अर्जुनं च शरैर्वीरं स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ॥ १३ ॥

और अनन्तर उनके रथके घोडे, ध्वजा और सारथिको भी विद्ध करके, फिर हंसकर वीर अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्जं कृत्वा महद्धनुः ।
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरम् ।
मुमोच षट्शतान्बाणान्गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १४ ॥

उस ही समय अर्जुनने अपने प्रचण्ड गाण्डीव धनुषपर रोदा चढाकर सम्पूर्ण अस्त्रोंके मर्मको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको अपनी युद्ध विषयक निपुणता दिखानेकी इच्छासे शीघ्रता पूर्वक छः सौ बाणोंको ग्रहण करके हस्तलाघवके सहित मानो एक ही बाण धनुषसे चलाया ॥ १४ ॥

पुनः सप्त शतानन्यान्सहस्रं चानिवर्तिनाम् ।
चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन्द्रोणस्य तां चमूम् ॥ १५ ॥

अनन्तर सात सौ और फिर एक सहस्र अप्रातिहत बाण छोडे; इसी प्रकारसे लगातर दस दस हजार बाण अर्जुन धनुषपर रखके द्रोणाचार्यकी ओर चलाने लगे। अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण बाण द्रोणाचार्यकी सेनाका नाश करने लगे ॥ १५ ॥

तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १६ ॥

विचित्र योद्धा पराक्रमी वीर्यवान् अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए उन सम्पूर्ण बाणोंसे विद्ध होकर मनुष्य, घोडे और हाथी प्राण त्यागकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १६ ॥

विद्रुताश्च रणे पेतुः संछिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहयाः शरपीडिताः ॥ १७ ॥

रथी योद्धा लोग युद्धमें सहसा अर्जुनके बाणोंसे पीडित हो अस्त्र-शस्त्र और प्राणोंसे भी रहित होकर श्रेष्ठ रथोंसे नीचे गिरने लगे ॥ १७ ॥

चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥ १८ ॥

वज्र प्रहारसे टूटे हुए पर्वत, वायुके प्रचण्ड वेगसे तितर बितर हुए बादलोंके समूह और अग्निसे जलते हुए घरोंके समान रूपवाले हाथी अर्जुनके बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ १८ ॥

पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ १९ ॥

सहस्रों घोडे अर्जुनके बाणोंसे मारे जाकर इस भांति पृथ्वीपर गिरे हुए दिखाई देते थे, जैसे हिमालयपर्वतपर वर्षाके जलधारासे आहत हुए हंसोंके समूह पडे हुए दिखाई देते हैं ॥ १९ ॥

रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्तशरैर्हताः ॥ २० ॥

प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंके समान अर्जुनके प्रकाशमान बाणोंसे समूहके समूह रथ, घोडे, हाथी और पैदल सेनाके शूरवीर योद्धा लोग मारे गये; वे सोखे गये अद्भुत जल प्रवाहके समान दिखते थे ॥ २० ॥

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं कुरुप्रवीरान्युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवर्षवेगैः प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन् ॥ २१ ॥
इसी प्रकारसे अर्जुन रूपी सूर्यके किरण समान बाणोंकी जाल जब कुरुसेनाके शूरवीरोंको दुःखित करने लगी, तब द्रोणाचार्य रूपी बादलने अपने बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनके बाणोंको तथा अर्जुनको इस प्रकार छिपा दिया जैसे बादल सूर्यको छिपा देते हैं ॥ २१ ॥

अथात्यर्थविसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥ २२ ॥
अनन्तर द्रोणाचार्यने शत्रुओंके प्राण नाश करनेवाले एक भयङ्कर नाराच बाणको ग्रहण करके वेगपूर्वक अर्जुनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ २२ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥ २३ ॥
जैसे भूकम्प होनेसे पर्वत विचलित होता, वैसे ही अर्जुनका सारा शरीर उस बाणकी चोटसे विह्वल हो गया, तो भी उन्होंने धीरज धारण कर द्रोणाचार्यको पंखयुक्त बाणोंसे विद्ध किया ॥ २३ ॥

द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चास्य त्रिभिः शरैः ॥ २४ ॥
द्रोणाचार्यनेभी फिर श्रीकृष्णको पांच बाणोंसे विद्ध करके, अर्जुनको तिहत्तर और उनके रथकी ध्वजाको तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ २४ ॥

विशेषयिष्यञ्शिष्यं च द्रोणो राजन्पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २५ ॥
राजन् ! अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्यने अपने शिष्य अर्जुनको अपनी युद्धविषयक अधिक निपुणता दिखानेकी इच्छासे निमेष भरके बीच अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको छिपा दिया ॥ २४ ॥

प्रसक्तान्पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २६ ॥
उस समयसे हमने केवल द्रोणाचार्यके बाणोंको अर्जुनके रथ पर गिरते और उनके अद्भुत धनुषको मण्डलाकार गतिसे सदा चारों ओर भ्रमण करते हुए देखा ॥ २६ ॥

तेऽभ्ययुः समरे राजन्वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २७ ॥
हे राजन् ! उस समय युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके धनुषके छूटे हुए कङ्कपत्र युक्त अनेक बाण श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर पडने लगे ॥ २७ ॥

तद्दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २८ ॥

महाबुद्धिमान् वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण उस समयमें द्रोणाचार्य और अर्जुनका ऐसा युद्ध देखकर चिन्ता करने लगे और श्रीकृष्णने मनमें कर्तव्यका निश्चय किया ॥ २८ ॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २९ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! महाबाहो ! हम लोगोंका निरर्थक समय यहां न बीत जाय ॥ २९ ॥

द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।
पार्थश्चाप्यब्रवीत्कृष्णं यथेष्टमिति केशव ॥ ३० ॥

इसलिये चलो, हमलोग द्रोणाचार्यको परित्याग करके जिस बडे कार्यको करनेकी इच्छासे आये हैं, उसहीके पूर्ण करनेके निमित्त आगे गमन करें; यही सबसे महान् कार्य है। श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर अर्जुन उनसे बोले, हे केशव ! तुम्हारी जैसी इच्छा है, वैसाही करो ॥ ३० ॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजः ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद्विसृजञ्शरान् ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर अर्जुनने महाबाहु द्रोणाचार्यको प्रदक्षिण करके उनके समीपसे लौटकर आगे प्रस्थान किया। अर्जुन अपने बाणोंको चलाते हुए दूसरे मार्गसे गमन करने लगे ॥ ३१ ॥

ततोऽब्रवीत्स्मयन्द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे ॥ ३२ ॥

तब उन्हें इस प्रकारसे जाते देखकर द्रोणाचार्य स्वयं यह वचन बोले, अर्जुन ! तुम इस प्रकार किधर जारहे हो ? तुम तो संग्राममें शत्रुको विना पराजित किये निवृत्त नहीं होते, वह प्रतिज्ञा कहां गई ? ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच

गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३३ ॥

अर्जुन बोले— आप हमारे गुरु हैं, शत्रु नहीं हैं; मैं भी तुम्हारा पुत्रके समान प्रिय शिष्य हूं; विशेष करके इस जगत्के बीच ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो युद्धभूमिमें आपको पराजित कर सके ॥ ३३ ॥

सञ्जय उवाच

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्तत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३४ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! जयद्रथवधके लिये उत्सुक महाबाहु अर्जुन ऐसे ही वचन कहते हुए शीघ्रतापूर्वक उस सेनाकी ओर दौडे ॥ ३४ ॥

तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥ ३५ ॥

अर्जुनके चक्र रक्षक पाञ्चाल देशीय वीर महात्मा युधामन्यु और उत्तमौजा तुम्हारी सेनाके बीच अर्जुनके प्रवेश करनेके समय उनके अनुगामी हुए ॥ ३५ ॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥ ३६ ॥

महाराज ! अनन्तर जय, सात्वत कृतवर्मा, काम्बोजराज और श्रुतायुने अर्जुनको रोक दिया ॥ ३६ ॥

तेषां दशसहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३७ ॥

उनके अनुगामी दस हजार रथी और अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति ॥ ३७ ॥

मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३८ ॥

मावेल्लक, ललित्थ, केकय, मद्रक देशीय योद्धा, नारायणी सेना गोपाली और काम्बोज देशीय सैनिक थे ॥ ३८ ॥

कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसंमताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य त्यक्तात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥ ३९ ॥

सम्पूर्ण शूरवीरोंमें पूजित और प्रशंसित इन सब वीरोंको पहिले कर्णने जीत लिया था; वे सम्पूर्ण योद्धा लोग द्रोणाचार्यको आगे करके प्राणकी आशा छोडके अर्जुनपर आक्रमण करने लगे ॥ ३९ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्संनद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४० ॥

अर्जुन पुत्रशोकसे संतप्त और क्रुद्ध हुए, प्राणियोंके नाश करनेवाले मृत्युके समान दीखते थे; वे उस तुमुल युद्धमें प्राण त्याग करनेके निमित्त उत्सुक, कवच धारण करके सज्ज और विचित्रयोद्धा थे ॥ ४० ॥

गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४१ ॥

जैसे हाथियोंके यूथपति गजराज हाथियोंके समूहमें प्रवेश करता है, वैसेही तुम्हारी सेनामें प्रवेश करनेवाले महापराक्रमी महाधनुर्द्धर पुरुषसिंह अर्जुनको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ ४१ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४२ ॥

उस समय अकेले अर्जुनके सङ्ग एक दूसरेको पुकारते हुए उन सम्पूर्ण योद्धाओंका रोएंको खडा करनेवाला महा भयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ४२ ॥

जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ २६०१ ॥

नाना प्रकारकी औषधी जैसे उत्पन्न हुई एक व्याधिको निवारण करती है, वैसे ही जयद्रथका वध करनेके निमित्त आनेवाले पुरुषसिंह अर्जुनको वे सम्पूर्ण योद्धा लोग आपसमें मिलकर युद्धभूमिसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छाछठवां अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ २६०१ ॥

: ६७ :

सञ्जय उवाच

संनिरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— उन सम्पूर्ण कौरव योद्धा लोगोंने जब रथियोंमें श्रेष्ठ महाबली अत्यन्त पराक्रमी अर्जुनको आगे बढते देख रोक दिया, और द्रोणाचार्यने भी उस समय शीघ्रतासे अर्जुनका पीछा किया ॥ १ ॥

किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान्स्वरश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत्सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥

सूर्य जैसे अपनी प्रचंड किरणोंसे सर्वत्र प्रकाश करता है, अथवा व्याधियां उत्पन्न होकर जैसे देहको पीडित करती हैं, वैसे ही अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाते हुए उस कौरव सेनाको पीडित करने लगे ॥ २ ॥

अश्वो विद्धो ध्वजश्छिन्नः सारोहः पतितो गजः ।
छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः ॥ ३ ॥

कितने ही घोडे बाणोंसे बिद्ध हुए, कितने रथियोंके रथ टूट गये; गजसवारोंके सहित कितने ही हाथी मरकर पृथ्वीमें गिर पडे, कितने वीरोंके छत्र कटकर छिन्नभिन्न होगये, कितने ही रथ चक्र रहित होगये ॥ ३ ॥

विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्तानि समन्ततः ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४ ॥

कितने ही शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर चारों ओर भागने लगे । उस समयमें ऐसा दारुण संग्राम होने लगा, कि कुछ भी वहांपर बोध नहीं होता था ॥ ४ ॥

तेषामायच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः ।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥

राजन् ! वे लोग युद्धमें परस्पर काबूमें रखनेका प्रयत्न करते थे; अर्जुन भी अपने बाणोंकी वर्षासे उन राजाओंकी सेनाके शूरवीरोंको बार बार पीडित करके उन्हें कम्पित करते थे ॥ ५ ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसंगरः ।
अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥

परन्तु द्रोणाचार्यको आते हुए देखकर सत्य प्रतिज्ञ श्वेतवाहन अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेकी अभिलाषसे लाल वर्णवाले घोडोंसे युक्त उत्तम रथपर चढे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समर्दयत् ॥ ७ ॥

तब द्रोणाचार्यने अपने महाधनुर्द्धर शिष्य अर्जुनके ऊपर मर्मभेदी पच्चीस बाण चलाये ॥ ७ ॥

तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥

सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उन बाणोंके वेगका निवारण करने योग्य बाणोंको शीघ्रताके सहित चलाते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ८ ॥

तस्याशु क्षिपतो भल्लान्भल्लैः संनतपर्वभिः ।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥

जब इस प्रकार वे शीघ्रताके सहित भल्ल बाणोंको चला रहे थे, तब उस ही समय अमेयात्मा द्रोणाचार्यने अर्जुनके चलाये हुए उन भल्लोंको अपने नतपर्व भल्ल बाणोंके समूहसे काट दिया और ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ९ ॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि ।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद्यदर्जुनः ॥ १० ॥

उस समय युद्धभूमिमें हमने द्रोणाचार्यकी अद्भुत अस्त्रविद्या तथा आश्चर्यमय कार्य अवलोकन किया, कि युवा अर्जुन यत्नवान् होकर भी उन बूढे आचार्य द्रोणको प्रतिविद्ध करनेमें समर्थ न हुए ॥ १० ॥

क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥

महान् बादलोंका समूह जैसे सहस्रों धारासे जल वर्षा करते हैं, वैसेही द्रोणाचार्यरूपी बादलने अर्जुनरूपी पर्वतके ऊपर बाणरूपी वर्षा करके उन्हें छिपा दिया ॥ ११ ॥

अर्जुनः शरवर्षं तद्ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान्विदारयन् ॥ १२ ॥

मारिष ! प्रथम अपने बाणोंसे उनके बाणोंको काटकर अर्जुनने भी तेजस्वी ब्रह्मास्त्रसे द्रोणाचार्यकी बाणवर्षाका निवारण किया ॥ १२ ॥

द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः ॥ १३ ॥

परन्तु द्रोणाचार्यने पचीस बाणोंसे श्वेतवाहन अर्जुनको पीडित किया और सात बाणोंसे श्रीकृष्णके बक्षस्थल और भुजाओंमें प्रहार किया ॥ १३ ॥

पार्थस्तु प्रहसन्धीमानाचार्यं स शरौघिणम् ।
विसृजन्तं शितान्बाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् अर्जुनने भी हंसते हुए युद्धमें तीक्ष्ण बाणोंके चलानेवाले द्रोणाचार्यको उनकी बाण वर्षासहित रोक दिया ॥ १४ ॥

अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित किये जाते हुए वे दोनों रथिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रलय कालकी अग्निके समान उठे हुए दुर्धर्ष द्रोणाचार्यको छोडकर दूसरी ओर चल गये ॥ १५ ॥

वर्जयन्निशितान्बाणान्द्रोणचापविनिःसृतान् ।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं न्यपातयत् ॥ १६ ॥

किरीट धारण करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाणोंका निवारण करके भोजराज कृतवर्माकी सेनामें प्रवेश करके उसका नाश करना शुरू किया ॥ १६ ॥

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
अभ्ययाद्वर्जयन्द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥

वे मैनाक पर्वतके समान स्थित द्रोणाचार्यको त्यागके कृतवर्मा और काम्बोजराज सुदक्षिणकी सेनाके बीचसे होकर निकले ॥ १७ ॥

ततो भोजो नरव्याघ्रं दुःसहः कुरुसत्तम ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥

हे कुरुसत्तम ! अनन्तर दुःसह भोजराज कृतवर्माने अव्यग्रचित्तसे पुरुषसिंह अर्जुनको शीघ्रताके सहित कंकपत्रसे युक्त दस बाणोंसे बिद्ध किया ॥ १८ ॥

तमर्जुनः शितेनाजौ राजन्विव्याध पत्रिणा ।
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥

राजन् ! अर्जुनने कृतवर्माको युद्धमें पहिले एकसौ पंखयुक्त बाणोंसे विद्ध करके फिर तीन बाणोंके प्रहारसे उन्हें मोहितसा कर दिया ॥ १९ ॥

भोजस्तु प्रहसन्पार्थं वासुदेवं च माधवम् ।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २० ॥

परन्तु कृतवर्माने हंसके श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर प्रत्येकको पचीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ २० ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसंनिभैः ॥ २१ ॥

अनन्तर अर्जुनने कृतवर्माके धनुषको काटकर, अग्निकी ज्वालाओंके समान तेजस्वी और क्रोधित बिषधर सर्पके समान भयंकर इक्कीस बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २१ ॥

अथान्यद्धनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥

भारत ! अनन्तर महारथी कृतवर्माने दूसरा धनुष ग्रहण करके तुरंतही पांच बाणोंसे अर्जुनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ २२ ॥

×

पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥

फिर और पांच तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया । अर्जुनने भी नौ बाणोंसे कृतवर्माकी छातीमें प्रहार किया ॥ २३ ॥

विषक्तं दृश्य कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥

वृष्णिनन्दन श्रीकृष्णने अर्जुनको कृतवर्माके रथसे युद्धमें फंसे हुए देखकर, ऐसा हमारा वृथा कालयापन करना ठीक नहीं ऐसा विचार किया ॥ २४ ॥

ततः कृष्णोऽब्रवीत्पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम् ।
कुरुसंबन्धिकं कृत्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥

फिर श्रीकृष्ण अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! तुम कृतवर्माके ऊपर दया मत करो; इस समय वह सम्बन्धी है, यह विचार छोडकर इसे मथकर विनष्ट करो ॥ २५ ॥

ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वार्जुनः शरैः ।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥ २६ ॥

अनन्तर अर्जुनने अपने बाणोंसे कृतवर्माको मोहित करके वेगगामी घोडोंसे काम्बोजोंकी सेनापर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
विधुन्वन्सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥ २७ ॥

कृतवर्मा श्वेतवाहन अर्जुनको काम्बोजोंकी सेनामें प्रवेश करते देख कर अत्यंत क्रोधित होकर बाण सहित धनुष फेरते हुए उनके दोनों पृष्ठरक्षकोंके सहित युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २७ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥ २८ ॥

वे दोनों पाञ्चालवीर अर्जुनके चक्ररक्षक होकर उनके पीछे जा रहे थे; कृतवर्माने अपने रथ और बाणोंसे वहां उन दोनों वीरोंको आते देखकर निवारण किया ॥ २८ ॥

तावविध्यत्ततो भोजः सर्वपारशवैः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥ २९ ॥

तिसके अनन्तर भोजराज कृतवर्माने उत्तम पानीसे बुझे हुए तीन बाणोंसे युधामन्यु और चार बाणोंसे उत्तमौजाको विद्ध किया ॥ २९ ॥

तावप्येनं विव्यधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
संचिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३० ॥

उन दोनोंने भी दस दस बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया और कृतवर्माके ध्वज और धनुषको भी उन्होंने काट दिया ॥ ३० ॥

अथान्यद्धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ।
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३१ ॥

यह देख कृतवर्माने क्रोधसे मूर्छित होकर दूसरा धनुष ग्रहण किया और उन दोनों योद्धाओंको धनुष रहित करके, फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया ॥ ३१ ॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ।
तेनान्तरेण बीभत्सुर्विवेशामित्रवाहिनीम् ॥ ३२ ॥

वे दोनों भी दूसरा धनुष ग्रहण करके भोजराज कृतवर्माको विद्ध करने लगे । उस ही समय अर्जुनने शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ३२ ॥

न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ।
धार्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ ॥ ३३ ॥

उनके अनुगामी वे दोनों पुरुषसिंह तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके बीच प्रवेश करनेके निमित्त यत्नवान् होनेपर भी कृतवर्मासे निवारित होकर प्रवेश करनेमें समर्थ न हुए ॥ ३३ ॥

अनीकान्यर्दयन्युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ।
नावधीत्कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः ॥ ३४ ॥

शीघ्रताके सहित शत्रुनाशन श्वेतवाहन अर्जुनने युद्धमें शत्रुसेनाको पीडित करके गमन करते हुए, कृतवर्माको युद्धमें सामने पाकर भी उनका बध नहीं किया ॥ ३४ ॥

तं दृष्ट्वा तु तथायान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद्धनुः ॥ ३५ ॥

महा पराक्रमी राजा श्रुतायुध अर्जुनको इस प्रकार शत्रुसेनाका नाश करते हुए युद्धभूमिमें आगे बढे आते देखकर अत्यंत क्रोधित होकर अपने बडे धनुषको फेरते हुए उनकी ओर दौडे ॥ ३५ ॥

स पार्थं त्रिभिरानर्छत्सप्तत्या च जनार्दनम् ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् ॥ ३६ ॥

उन्होंने अर्जुनको तीन और श्रीकृष्णको सत्तर बाणोंसे विद्ध करके, एक तीक्ष्ण धारवाले क्षुरप्र बाणसे उनके रथकी ध्वजाको विद्ध किया ॥ ३६ ॥

तमर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ।
आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३७ ॥

जैसे महाबलवान् हाथीको अंकुशोंसे प्रहार करते हैं, वैसे ही अर्जुनने अत्यंत क्रुद्ध होकर नतपर्व नब्बे बाणोंसे श्रुतायुधके ऊपर प्रहार किया ॥ ३७ ॥

स तन्न ममृषे राजन्पाण्डवेयस्य विक्रमम् ।
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् ॥ ३८ ॥

राजन् ! श्रुतायुधने भी पाण्डुपुत्र अर्जुनके उस पराक्रमको न सहके, उनके ऊपर सतहत्तर बाणोंसे प्रकार किया ॥ ३८ ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥

अर्जुनने राजा श्रुतायुधके धनुषको काट कर उनके तरकसके भी टुकडे कर दिये; फिर क्रुद्ध होकर नतपर्व सात बाणोंसे उनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ३९ ॥

अथान्यद्धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्छितः ।
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४० ॥

फिर राजा श्रुतायुधने क्रोधमें भर कर दूसरा धनुष, ग्रहण करके नौ बाणोंसे इन्द्रपुत्र अर्जुनकी भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ४० ॥

ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिंदमः ।
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ॥ ४१ ॥

हे भारत ! अनन्तर शत्रुदमन अर्जुनने हंसते हुए ही सहस्रों बाणोंसे राजा श्रुतायुधको पीडित किया ॥ ४१ ॥

अश्वांश्चास्यावधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः ।
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः । ॥ ४२ ॥

और महारथी और महाबलवान् वीरने शीघ्रताके सहित उनके चारों घोडे तथा सारथिका वध किया और सत्तर नाराच बाणोंसे उन्हें फिर विद्ध किया ॥ ४२ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ।
अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ४३ ॥

घोडोंके मारे जानेपर पराक्रमी राजा श्रुतायुध उस रथको त्याग कर गदा उठाके समरमें अर्जुनके रथकी ओर दौडे ॥ ४३ ॥

वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ।
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ॥ ४४ ॥

महाराज ! वीर राजा श्रुतायुध वरुणदेवके पुत्र थे और उनकी माता शीतल जलसे युक्त महानदी पर्णाशा थी ॥ ४४ ॥

तस्य माताब्रवीद्वाक्यं वरुणं पुत्रकारणात् ।
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ॥ ४५ ॥

उनकी माता पर्णाशा अपने पुत्रके लिये वरुणसे बोली– 'हे स्वामिन् ! मेरा यह पुत्र जगत्के बीच शत्रुओंके लिये अवध्य होवे। मैं यह वर मांगती हूं ॥ ४५ ॥

वरुणस्त्वब्रवीत्प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ।
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनावध्यो भविष्यति ॥ ४६ ॥

तब वरुण प्रसन्न होके पर्णाशासे बोले, जिस प्रकारसे तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंसे अवध्य होगा, उस निमित्त मैं इसको हितकारक वरके रूपमें यह दिव्य अस्त्र प्रदान करता हूं ॥ ४६ ॥

नास्ति चाप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथंचन ।
सर्वेणावश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ॥ ४७ ॥

हे नदिओंमें श्रेष्ठ पर्णाशे ! मनुष्य किसी प्रकारसे भी अमर नहीं होता; यहां जन्म लेनेसे अवश्य मरना पडता है ॥ ४७ ॥

दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ।
अस्त्रस्यास्य प्रभावाद्वै व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ४८ ॥

परन्तु तुम्हारा यह पुत्र मेरे दिये हुए अस्त्रके प्रभावसे सदा सर्वदा युद्धभूमिमें शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष होगा; इससे तुम अपने इस पुत्रके निमित्त कुछ भी चिन्ता मत करो ॥ ४८ ॥

इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद्गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ।
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः ॥ ४९ ॥

वरुणने ऐसा वचन कह कर श्रुतायुधको मन्त्रके सहित एक गदा प्रदान की। उस गदाको पाकर राजा श्रुतायुध सम्पूर्ण लोकोंके बीच दुर्जय हो गये ! ॥ ४९ ॥

उवाच चैनं भगवान्पुनरेव जलेश्वरः ।
अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति ॥ ५० ॥

भगवान् वरुण राजा श्रुतायुधसे फिर यह वचन बोले– हे पुत्र ! जो पुरुष युद्ध नहीं कर रहा है, उसके ऊपर तुम इस गदासे प्रहार मत करना; यदि तुम युद्ध न करनेवाले पुरुषके उपर इस गदाको चलाओगे तो यह लौटकर तुम्हारे ही ऊपर गिरेगी ॥ ५० ॥

स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ।
प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांसेन वीर्यवान् ॥ ५१ ॥

उन्होंने उस वीरघातिनी गदासे श्रीकृष्णके ऊपर प्रहार किया; पराक्रमी श्रीकृष्णने अपने विशाल पुष्ट कन्धेपर उस गदाकी चोटको ग्रहण किया ॥ ५१ ॥

नाकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ।
प्रत्यभ्ययात्तं विप्रोढा कृत्येव दुरधिष्ठिता ॥ ५२ ॥

जैसे वायु विन्ध्याचलको विचलित नहीं कर सकती, वैसे ही वह गदा श्रीकृष्णको कम्पित न कर सकी । बल्कि अच्छीतरहसे प्रयुक्त न हुई अभिचार कृत्या देवताके समान घूमकर उसपर ही गिर पडी ॥ ५२ ॥

जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ।
हत्वा श्रुतायुधं वीरं जगतीमन्वपद्यत ॥ ५३ ॥

और युद्धभूमिमें खडे हुए अत्यन्त क्रुद्ध वीर श्रुतायुधके ऊपर गिरके उसका प्राण नाश करती हुई वह पृथ्वीमें गिर पडी ॥ ५३ ॥

हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।
स्वेनास्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ५४ ॥

शत्रुदमन श्रुतायुधको अपने ही अस्त्रसे मरके पृथ्वी पर गिरते देखकर तुम्हारी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ५४ ॥

अयुध्यमानाय हि सा केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाथ तस्मात्तमवधीद्गदा ॥ ५५ ॥

हे राजेन्द्र ! श्रुतायुधने उस गदाको युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्णके ऊपर चलाया था, इसही कारणसे उस गदाने उनका वध किया था ॥ ५५ ॥

यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥

वरुणने जैसा वचन कहा था, उसही वचनके अनुसार युद्धभूमिमें श्रुतायुधकी मृत्यु हुई; वे सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके संमुखहीमें प्राण त्याग कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ५६ ॥

पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः ।
संभग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५७ ॥

पर्णाशाके प्रिय पुत्र श्रुतायुध मानो वायुके वेगसे टूटे हुए अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्षके समान पृथ्वी पर गिरके शोभित होने लगे ॥ ५७ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ५८ ॥

अनन्तर सम्पूर्ण सैनिक और सेनापति शत्रुदमन श्रुतायुधको मरे हुए देखकर युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ ५८ ॥

ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ५९ ॥

इसके अनन्तर काम्बोजराजके पराक्रमी पुत्र सुदक्षिण वेगवान् घोडोंसे युक्त अपने सुन्दर रथपर चढके शत्रुदमन अर्जुनके सम्मुख सामना करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ ५९ ॥

तस्य पार्थः शरान्सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन्धरणीतलम् ॥ ६० ॥

भारत ! अर्जुनने सुदक्षिणके ऊपर सात बाण चलाये, वे सातों बाण उस शूरवीर सुदक्षिणके शरीरको भेदकर पृथ्वीमें घुस गये ॥ ६० ॥

सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे ।
अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६१ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए उन तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर सुदक्षिणने युद्धमें कङ्क पत्र युक्त दस बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया ॥ ६१ ॥

वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥ ६२ ॥

तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया । मारिष ! अर्जुनने उनके धनुषको काट कर उनके रथकी ध्वजाको भी काट दिया ॥ ६२ ॥

भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा सिंहनादमथानदत् ॥ ६३ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने अत्यन्त तीक्ष्ण दो भल्लोंसे उन्हें विद्ध किया । फिर सुदक्षिण भी तीन तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करके सिंहनाद करने लगे ॥ ६३ ॥

सर्वपारशवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
सघण्टां प्राहिणोद्घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६४ ॥

अनन्तर शूर सुदक्षिणने क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण लोहेकी बनी हुई घण्टा युक्त एक महाघोर शक्ति गाण्डीवधारी अर्जुनकी ओर चलायी ॥ ६४ ॥

सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् ।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६५ ॥

प्रकाशमान महोल्काके समान वह जलती हुई प्रचण्ड शक्ति महारथी अर्जुनके पास जा उनके शरीरको भेद कर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ६५ ॥

तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः ।
रथं चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ॥ ६६ ॥

महापराक्रमी महातेजस्वी अर्जुनने कङ्कपत्र युक्त चौदह नाराच बाणोंसे घोडे, ध्वज, धनुष और सारथिके सहित काम्बोजराज सुदक्षिणको विद्ध किया; फिर दूसरे अनेक बाणोंसे उनके रथको काटके खण्ड खण्ड कर दिया ॥ ६६ ॥

सुदक्षिणं तु काम्बोजं मोघसङ्कल्पविक्रमम्
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ॥ ६७ ॥

अनन्तर काम्बोजराज सुदक्षिणको संकल्प और पराक्रमको निष्फल करके अर्जुनने तीक्ष्ण धारवाले एक बाणसे उनके हृदयको भेद डाला ॥ ६७ ॥

स भिन्नमर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः
पपाताभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ॥ ६८ ॥

उनका मर्म छिन्न भिन्न हो गया, सारे अंग शिथिल होगये, मुकुट और बाजूबंद पृथ्वी पर गिर पडे; शूर वीर सुदक्षिण संमुख होकर ही यन्त्रमुक्त ध्वजाकी भांति रणभूमिमें गिर पडे ॥ ६८ ॥

गिरेः शिखरजः श्रीमान्सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ।
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये ॥ ६९ ॥

जैसे पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ उत्तम शाखाओंसे युक्त, सुप्रतिष्ठित, अत्यन्त विशाल शोभायमान कर्णिकारका सुन्दर वृक्ष हेमन्त ऋतुके अन्तमें वायुके वेगसे टूट कर गिरता है, ॥ ६९ ॥

शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ।
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ॥ ७० ॥

वैसे ही काम्बोजदेशीय उत्तम वस्त्रोंसे युक्त शोभायमान शय्यापर शयन करने योग्य सुदक्षिण वहां मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहे थे। सुदर्शनीय, लाल नेत्रसे युक्त उत्तम शरीरवाले काम्बोजराजके पुत्र सुदक्षिणको अर्जुनने एक ही बाणसे मारा था ॥ ७० ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ।
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ २६७२ ॥

अनन्तर तुम्हारे पुत्रकी सम्पूर्ण सेनाके योद्धालोग श्रुतायुध और काम्बोजराजके पुत्र सुदक्षिणको मारे हुए देखकर युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ ७१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें सरसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ २६७२ ॥

---

६८ :

सञ्जय उवाच

हते सुदक्षिणे राजन्वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाभ्यद्रवन्पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! काम्बोजराज सुदक्षिण और वीर श्रुतायुधके मारे जानेपर तुम्हारे बहुतसे सैनिक कुपित होकर अर्जुनके ऊपर वेगपूर्वक दौड आये ॥ १ ॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥ २ ॥

नृप ! अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देशीय सेनाके शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तेषां षष्टिशतानार्यान्प्रामथ्नात्पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्त व्याघ्रात्क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने उन सम्पूर्ण वीरोंके बीचसे छः हजार मुख्य मुख्य योद्धाओंको अपने बाणोंसे मथ डाला; उससे वे लोग अर्जुनसे भयभीत हो इस प्रकार वहांसे भाग गये, जैसे व्याघ्रसे डरकर छोटे हरिण भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

ते निवृत्य पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान्युधि ॥ ४ ॥

अनन्तर उन सैनिकोंने फिर लौट कर, युद्धमें शत्रुओं पर विजय पानेकी इच्छासे उनको मारनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चैव धनञ्जयः ॥ ५ ॥

उन लोगोंके आक्रमणके लिये लौटते ही अर्जुनने अपने गाण्डीवधनुषसे छोडे हुए बाणोंसे शीघ्रही उनके शिर और भुजाओंको भी काट गिराया ॥ ५ ॥

शिरोभिः पतितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवासीद् ध्वाङ्क्षगृध्रवडैर्युधि ॥ ६ ॥
उन लोगोंके कटे हुए शिरोंसे वह रणभूमि परिपूरित होगई; और गिद्ध, कौवे, बगुले आदि मांस भक्षण करनेवाले पक्षियोंने वहां पर उडते हुए आकाशमण्डलको मेघच्छायाकी भांति छिपा दिया ॥ ६ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनञ्जयमयुध्यताम् ॥ ७ ॥
जब उस सम्पूर्ण सेनाका अर्जुनके बाणोंसे इस प्रकार नाश होने लगा, तब श्रुतायु और अच्युतायु ये दोनों क्रोध और अमर्षमें भरकर अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥
महाराज ! वे दोनों बलवान् अर्जुनसे स्पर्धा करनेवाले, वीर, उत्तम कुलमें उत्पन्न और सुंदर भुजाओंसे भूषित थे। वे दाहिनी और बायीं ओरसे अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८ ॥

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥
महाराज ! वे दोनों वीर महान् यशको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे, तुम्हारे पुत्रके लिये अर्जुनके वधकी इच्छा रखकर धनुष्य लेकर अत्यंत उतावलीके साथ बाण चलाते थे ॥ ९ ॥

तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तडागं जलदौ यथा ॥ १० ॥
जैसे दो बादल जल वर्षा करके तालावको परिपूर्ण कर देते हैं, वैसेही उन दोनों वीरोंने क्रुद्ध होकर नतपर्व सहस्रों बाणोंसे अर्जुनको छिपा दिया ॥ १० ॥

श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥
अनन्तर रथियोंमें मुख्य श्रुतायुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुनके ऊपर शिला पर घिसे हुए पानीदार तीक्ष्ण धारसे युक्त एक तोमर चलाया और विद्ध किया ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
आजगाम परं मोहं मोहयन्केशवं रणे ॥ १२ ॥
शत्रुनाशन अर्जुन उस बलवान् शत्रुके तोमरकी चोटसे अत्यन्त विद्ध होकर, श्रीकृष्णको उस समय मोहित करते हुए स्वयं परम मूर्छित होगये ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥

उस ही अवसरमें महारथी अच्युतायुने एक अत्यंत तीक्ष्ण शूलसे अर्जुनके ऊपर प्रहार किया ॥ १३ ॥

क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥

उस समय अच्युतायुने शूलसे प्रहार करके मानो महात्मा अर्जुनके कटे हुए घाव पर लोन लगा दिया, अर्जुन भी अत्यन्त पीडित होकर रथके ध्वजाका दण्ड पकडके बैठ गये ॥ १४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशां पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनञ्जयम् ॥ १५ ॥

पृथ्वीपते ! उस समयमें अर्जुनको मरा हुआ समझके तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा लोग महाघोर सिंहनाद करने लगे ॥ १५ ॥

कृष्णश्च भृशसंतप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतसम् ।
आश्वासयत्सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥ १६ ॥

तब श्रीकृष्ण अर्जुनको अचेत हुआ देखकर अत्यंत सन्तप्त होगये, और प्रिय वचनोंसे वहां उन्हें धीरज देने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १८ ॥

अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ उन दोनों वीरोंने उस ही समयमें अपना लक्ष्य सामने पाकर वे अर्जुन और वृष्णिवंशी श्रीकृष्णको चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षासे चक्र, धुरी, रथ, घोडे, ध्वजा और पताकाके सहित युद्धमें छिपा दिया, वह उस समयमें अद्भुतकी बात हो गयी ॥ १७–१८ ॥

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥

हे भारत ! अनन्तर अर्जुन धीरे धीरे सावधान हुए । उस समय मानों अर्जुन यमलोकमें जाकर फिर वहांसे लौट आये ॥ १९ ॥

संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ ॥ २० ॥

उस समय श्रीकृष्णके सहित अपने रथको बाणोंके जालसे छिपे हुए देखकर और सामने खडे हुए उन दोनों शत्रुओंको जलते हुए अग्निके समान देदीप्यमान अवलोकन करके ॥ २० ॥

प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन्सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥

महारथी अर्जुनने ऐन्द्र अस्त्र चलाया । उस ऐन्द्र अस्त्रसे सहस्रों नतपर्व बाण प्रकट होने लगे ॥ २१ ॥

ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां सृष्टांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥

उन बाणोंने उन दोनों महाधनुर्द्धर वीरोंको और उनके छोडे हुए सायकोंको भी छिन्न भिन्न कर दिया; उन दोनों वीरोंके सम्पूर्ण बाण उस समय अर्जुनके बाणोंसे कटते हुए आकाशमें भ्रमण करते हुए दिखाई देने लगे ॥ २२ ॥

प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन्वै महारथान् ॥ २३ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंके वेगसे शीघ्र ही शत्रुओंके बाणोंको नष्ट करके, अन्य महारथियोंके सङ्ग युद्ध करनेके लिये प्रस्थान किया ॥ २३ ॥

तौ च फल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥

वे दोनों पराक्रमी वीर अर्जुनके बाण समूहोंसे भुजा और शिरसे रहित होकर, मानों वायुके वेगसे टूटे हुए दो वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २४ ॥

श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत्समुद्रस्येव शोषणम् । ॥ २५ ॥

श्रुतायुका मरना और अच्युतायुका वध समुद्र सूखनेके समान सम्पूर्ण पुरुषोंको विस्मित करने लगा ॥ २५ ॥

तयोः पदानुगान्हत्वा पुनः पञ्चशतान्रथान् ।
अभ्यगाद्भारतीं सेनां निघ्नन्पार्थो वरान्वरान् ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर अर्जुनने उन दोनोंके अनुयायी पचास रथियोंका वध करके, फिर मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धाओंका संहार करते हुए भारती सेनाके बीच प्रवेश करके उसपर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम् ।
अयुतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥
पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान्बाणान्पितृव्यसनकर्शितौ ॥ २८ ॥

भारत ! श्रुतायु और अच्युतायुको मारा गया देखकर उन दोनोंके पुत्र पुरुषश्रेष्ठ अयुतायु और दीर्घायु अपने पिताके मारे जानेपर दुःखित और अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्ध करनेके लिये अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ २७-२८ ॥

तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः संनतपर्वभिः ।
प्रैषयत्परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुहूर्त्त भरके बीचमें उन दोनोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे प्राण रहित करके यमपुरीमें भेज दिया ॥ २९ ॥

लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाशक्नुवन्वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥

जैसे मतवाला हाथी कमलोंसे युक्त तालाबको मथ डालता है, उस ही भांतिसे कुन्तीपुत्र अर्जुन तुम्हारी सेनाको तितर बितर करने लगे; तब मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धालोग यत्नवान् होकर भी अर्जुनको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ३० ॥

अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥ ३१ ॥

राजन् ! अंगदेशके शिक्षित हजारों गजसवार योद्धाओंने क्रुद्ध होकर हाथियोंके समूहोंसे पाण्डुपुत्र अर्जुनको घेर लिया ॥ ३१ ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥

अनन्तर दुर्योधनकी आज्ञासे पूर्व और दक्षिण देशोंके कलिङ्ग आदि राजाओंने भी पर्वतके समान अपने हाथियोंके समूहसे आक्रमण किया ॥ ३२ ॥

तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥

उग्र अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे शीघ्रताके सहित उन सब आक्रमण करनेवाले योद्धाओंके शिर और सुन्दर आभूषणोंसे भूषित भूजाओंको भी काट दिया ॥ ३३ ॥

तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥

उन कटे हुए शिरों और प्रकाशमान आभूषणोंके सहित भुजाओंसे परिपूरित हुई वहांकी भूमि मानो सर्पोंसे घिरी हुई सुवर्णमय पत्थरयुक्त पृथ्वीके समान शोभित होने लगी ॥ ३४ ॥

बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
च्यवमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥

जैसे वृक्षोंसे पक्षियोंके समूह उडते हुए दीख पडते हैं, वैसेही अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई भुजाएं और कटे हुए शिर गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ ३५ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
व्यदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥

सहस्रों बाणोंसे विद्ध होकर रुधिरकी धारा बहाते हुए हाथी वर्षाऋतुमें गेरुयुक्त जल बहानेवाले पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३६ ॥

निहताः शेरते स्मान्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥

हाथियोंपर चढे हुए दूसरे कितने ही म्लेच्छ सैनिक अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे प्राणरहित होकर हाथीकी पीठपर ही सो गये थे; उनके नाना प्रकारके रूप भयङ्कर दिखाई पडते थे ॥ ३७ ॥

नानावेषधरा राजन्नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणानुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

राजन्! नाना वेषवाले शूरवीर योद्धा लोग नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको धारण करके अर्जुनके सङ्ग युद्ध करते हुए उन विचित्र तीक्ष्ण बाणोंसे मरकर रुधिरपूरित शरीरसे अद्भुत शोभा पा रहे थे ॥ ३८ ॥

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥

सवारों और अनुचरों सहित सहस्रों हाथी अर्जुनके बाणोंसे पीडित और सर्वाङ्ग छिन्न भिन्न होकर रुधिर वमन करने लगे ॥ ३९ ॥

चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहुधा स्वानेव ममृदुर्गजाः ।
सान्तरायुधिका मत्ता द्विपास्तीक्ष्णविषोपमाः ॥ ४० ॥

बहुतेरे हाथी चिंघाडते थे; अनेक मरकर पृथ्वीमें गिर गये थे; दूसरे कितने हाथी चारों ओर भ्रमण कर रहे थे; कितने ही हाथी अत्यंत भयभीत होकर भागते हुए अपने ही योद्धाओंको मथित करते थे; तीक्ष्ण विषधारी सर्पोंके समान भयंकर वे मत्त हाथी गुप्त अस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे युक्त थे ॥ ४० ॥

विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ।
यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सुनिकैः सह ॥ ४१ ॥

अनन्तर असुर मायाको जाननेवाले, महाघोर स्वरूपवाले और भयङ्कर नेत्रवाले यवन, पारद, शक और सुनिक भी वहां युद्धके लिये उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥

गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ।
दार्वाभिसारा दरदाः पुण्ड्राश्च सह बाह्लिकैः ॥ ४२ ॥

गोयोनिसे उत्पन्न हुए कालके समान प्रहार करनेवाले म्लेच्छ लोग और दार्वाभिसार, दरद, पुण्ड्र तथा बाह्लिक देशीय लोग वहां उपस्थित थे ॥ ४२ ॥

न ते स्म शक्याः संख्यातुं व्राताः शतसहस्रशः ।
वृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवायतिः ॥ ४३ ॥

सहस्रों तथा लाखों म्लेच्छोंके दल, जिनकी गिनती नहीं हो सकती, वहां उपस्थित थे । अर्जुन उन लोगोंके ऊपर शलभ समूहकी भांति झुण्डके झुण्ड बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ४३ ॥

अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः ।
मुण्डार्धमुण्डजटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ।
म्लेच्छानशातयत्सर्वान्समेतानस्त्रमायया ॥ ४४ ॥

अर्जुनने बाणोंसे आकाश मण्डलको मेघच्छायाकी भांति छा लिया; और उन मुण्डित, अर्धमुण्डित, जटा बढाये, अपवित्र और दाढीभरे मुखवाले उन सम्पूर्ण म्लेच्छोंके दलका अपने अस्त्रकी मायासे इकबारगी संहार किया ॥ ४४ ॥

शरैश्च शतशो विद्धास्ते संघाः संघचारिणः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४५ ॥

कितने ही समूहोंसे विचरनेवाले तथा पर्वतकी कन्दर पहाडों पर वास करनेवाले सैकडों म्लेच्छ संघ अर्जुनके बाणोंसे विद्ध और भयभीत होकर रणभूमिसे भागने लगे ॥ ४५ ॥

गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शतैः शरैः ।
वडाः कङ्का वृका भूमावपिबन्रुधिरं मुदा ॥ ४६ ॥

कौवे, गिद्ध और सियार आदि मांस भक्षण करनेवाले प्राणी हर्षित होकर अर्जुनके सैकडों बाणोंसे मरकर गिरे हुए उन हाथीसवार और घुडसवार म्लेच्छोंका रुधिर पीने लगे ॥ ४६ ॥

पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ।
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाड्वलाम् ।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ४७ ॥

वह नदी पैदल मनुष्य, घोडे, रथ और हाथियोंको मानो बिछाकर धूलसे युक्त, बाणोंकी वर्षारूपी नौका, केशरूपी सेवार और घाससे युक्त– ऐसी वह भयंकर नदी रुधिर रूपी तरंगोंसे भरी हुई वहां बहने लगी ॥ ४७ ॥

शिरस्त्राणक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसंभृताम् ।
अकरोद्गजसंबाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ।
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ॥ ४८ ॥

कटे हुए शिरस्त्राण रूपी छोटी छोटी मछलियां, मरे हुए हाथीरूपी द्वीपोंसे युक्त, हाथी, घोडे, और रथोंकी सवारी करनेवाले राजकुमारोंके शरीरोंसे बहनेवाले रुधिरसे परिपूर्ण प्रलयकालकी नदीके समान एक भयङ्करी नदीको अर्जुनने उत्पन्न कर दिया ॥ ४८ ॥

यथा स्थलं च निम्नं च न स्याद्वर्षति वासवे ।
तथासीत्पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता । ॥ ४९ ॥

जैसे इन्द्रके जल वर्षाके समयमें कोई भी गढा जलसे खाली नहीं रह जाता, वैसे ही वह नीची ऊंची रणभूमि रुधिरसे युक्त होकर समान होगई ॥ ४९ ॥

षट्सहस्रान्वरान्वीरान्पुनर्दशशतान्वरान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ॥ ५० ॥

क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुनने छः हजार श्रेष्ठ वीरोंको और एक हजार मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धाओंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ ५० ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः ।
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ॥ ५१ ॥

उत्तम भांतिसे सज्जित हुए हाथी अर्जुनके सहस्रों बाणोंसे विद्ध होकर मानो वज्रकी चोटसे आहत हुए पर्वतोंकी भांति पृथ्वीपर गिरे हुए दिखाई देने लगे ॥ ५१ ॥

स वाजिरथमातङ्गान्निघ्नन्व्यचरदर्जुनः ।
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन्नडवनं यथा ॥ ५२ ॥

जैसे मदकी धारा बहानेवाला मतवाला हाथी नरकुलके वनको मर्दन करते हुए भ्रमण करता है, वैसेही अर्जुन घोडे, रथ और हाथियोंसहित शत्रुओंका संहार करते हुए युद्धभूमिमें भ्रमण करते थे ॥ ५२ ॥

भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ।
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ॥ ५३ ॥

और जैसे अग्नि वायुसे प्रेरित होकर बहुतेरे वृक्ष, लतागुल्म, सूखे इंधन और काष्ठोंसे युक्त जङ्गलको भस्म कर देती है, ॥ ५३ ॥

सैन्यारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ।
शरार्चिरदहत्क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः ॥ ५४ ॥

उसी प्रकारसे श्रीकृष्णरूपी वायुसे प्रेरित होकर बाणरूपी ज्वालाओंसे युक्त पाण्डुपुत्र अर्जुन-रूपी अग्नि क्रुद्ध होकर तुम्हारी सेनारूपी वनको भस्म करने लगे ॥ ५४ ॥

शून्यान्कुर्वन्रथोपस्थान्मानवैः संस्तरन्महीम् ।
प्रानृत्यदिव संबाधे चापहस्तो धनञ्जयः ॥ ५५ ॥

रथकी बैठकोंको रथिरहित करके, पृथ्वीको मृत मनुष्योंसे आच्छादित करते हुए धनुषधारी अर्जुन युद्धभूमिमें नृत्यसा कर रहे थे ॥ ५५ ॥

वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ।
प्राविशद्भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनञ्जयः ।
तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ५६ ॥

अर्जुनने क्रुद्ध होकर वज्रके समान अपने तीक्ष्ण बाणोंसे रणभूमिको रुधिरसे परिपूर्ण करते हुए भारती सेनाके बीच प्रवेश किया। सेनामें प्रवेश करते हुए अर्जुनको श्रुतायु और अम्बष्ठने रोक दिया ॥ ५६ ॥

तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ।
धनुश्चास्यापरैश्छित्त्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ॥ ५७ ॥

मारिष ! अर्जुनने कङ्कपत्र युक्त तीक्ष्ण बाणोंसे विजयके लिये यत्न करनेवाले अम्बष्ठके घोडोंका शीघ्रही वध किया; फिर अपने दूसरे बाणोंसे उनका धनुष काट कर अर्जुनने अपना पराक्रम प्रकाशित किया ॥ ५७ ॥

×

अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् । ॥ ५८ ॥

तब वीर अम्बष्ठने क्रोधसे अपनी आंखे लाल करके गदा ग्रहण कर युद्धमें महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर धावा किया ॥ ५८ ॥

ततः स प्रहसन्वीरो गदामुद्यम्य भारत ।
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ॥ ५९ ॥

भारत ! अनन्तर वीर अम्बष्ठने गदा उठाये आगे बढकर हंसते हुए अर्जुनके रथको रोककर, श्रीकृष्णपर गदासे प्रहार किया ॥ ५९ ॥

गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ।
अर्जुनो भृशसंक्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ॥ ६० ॥

राजन् ! शत्रुनाशन अर्जुन श्रीकृष्णको गदासे आहत हुआ देखकर अम्बष्ठके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होगये ॥ ६० ॥

ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ६१ ॥

अर्जुनने समरमें सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे गदासहित रथियोंमें श्रेष्ठ अम्बष्ठको इस प्रकार छिपा दिया, जैसे बादल आकाशमें उदित हुए सूर्यको छिपा देता है ॥ ६१ ॥

ततोऽपरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ।
अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६२ ॥

फिर दूसरे अनेक बाणोंको चलाकर अर्जुनने महात्मा अम्बष्ठकी उस गदाको उसी समय टुकटे टुकटे कर दिया; अर्जुनका वह पराक्रम अद्भुतरूपसे दीख पडा ॥ ६२ ॥

अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्यान्यां महतीं गदाम् ।
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ॥ ६३ ॥

अम्बष्ठने उस गदाको अर्जुनके बाणोंसे नष्ट हुई देख दूसरी बडी गदा ग्रहण करके श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर बार बार प्रहार किये ॥ ६३ ॥

तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ।
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा ॥ ६४ ॥

तब अर्जुनने दो क्षुरप्र बाणोंसे उनकी गदासहित इन्द्रध्वजके समान उठी हुई दोनों भुजाओंको काट डाला और दूसरे पंखयुक्त बाणसे उनका शिर भी काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६४ ॥

स पपात हतो राजन्वसुधामनुनादयन् ।
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः ॥ ६५ ॥

हे राजन् ! पराक्रमी अम्बष्ठ मर कर मानो यन्त्रसे बंधनमुक्त होकर छूटे हुए इन्द्रध्वजाकी भांति पृथ्वीको निनादित करते हुए गिर पडे ॥ ६५ ॥

रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः ।
सोऽदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवावृतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ २७३८ ॥

उस समय रथियोंकी सेनामें प्रवेश कर सैकडों हाथी और घोडोंसे घिरे हुए अर्जुन बादलोंमें छिपे हुए सूर्यके समान दिखायी देने लगे ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ २७३८ ॥

: ६९ :

संजय उवाच

ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भारत ! कुन्तीपुत्र अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी अभिलाष करके द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको भेदकर उस शकट व्यूहके बीच प्रवेश किया ॥ १ ॥

काम्बोजस्य च दायादे हते राजन्सुदक्षिणे ।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥

काम्बोजराजके पुत्र सुदक्षिण और पराक्रमी श्रुतायुध जब सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ २ ॥

विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

और सम्पूर्ण सेनाएं विध्वस्त होके उनके सम्मुखसे चारों ओर भागने लगीं; तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अपनी संपूर्ण सेनामें भगदड मची देख द्रोणाचार्यके समीप गये ॥ ३ ॥

त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।
गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्येमां महाचमूम् ॥ ४ ॥

राजा दुर्योधन शीघ्रताके सहित अपने रथपर चढके द्रोणाचार्यके समीप जाकर यह वचन बोले, हे आचार्य ! वह पुरुषसिंह अर्जुन मेरी इस सम्पूर्ण सेनाको पीडित करते हुए तितर बितर करके आगे बढा जा रहा है ; ॥ ४ ॥

अत्र बुद्ध्या समीक्षस्व किं नु कार्यमनन्तरम् ।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥

इस समय मेरी सेनाके पुरुषोंका अत्यन्त ही भयंकर नाश हो रहा है, इससे अर्जुनका विनाश करनेके निमित्त यहां जो कुछ कर्त्तव्य कार्य हो, उसका आप विचार कीजिये ॥५॥

यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत्त जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥

जिस प्रकार वह पुरुषसिंह जयद्रथका वध न कर सके, आप उसही उपायका विधान कीजिये । आपका मङ्गल होवे, आपही हम लोगोंके परम आश्रयस्वरूप हैं ॥ ६ ॥

असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥

जैसे सहसा उठी हुई जलती अग्नि सूखे हुए तृण काष्ठ आदिको भस्म कर देती है, वैसे ही अर्जुनरूपी अग्नि क्रोधरूपी वायुसे प्रेरित होकर मेरे सैन्यरूपी सूखे वनको जला रही है ॥७॥

अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परंतप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥

हे परन्तप ! कुन्तीपुत्र अर्जुन सम्पूर्ण सेनाको भेदकर, आपको भी बांधकर आगे चले गये हैं, इसलिये जयद्रथके रक्षक सम्पूर्ण योद्धा अत्यन्त ही संशयमें पडे हैं ॥ ८ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद्ब्रह्मविदां वर ।
नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन्धनञ्जयः ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मज्ञ सत्तम ! राजाओंको यह दृढविश्वास था, कि अर्जुन जीवित रहते द्रोणाचार्यको कभी भी अतिक्रम नहीं कर सकेगा ॥ ९ ॥

सोऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्यातुरं मन्ये नैतदस्ति बलं मम ॥ १० ॥

हे महातेजस्विन् ! जब अर्जुनने तुम्हारे संमुख ही व्यूहबद्ध सेनाको भेदकर कुरुसेनाके बीच प्रवेश किया है; तब मैं बोध करता हूं, मेरी सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग आतुर होरहे हैं; ऐसा क्या मेरी इस सम्पूर्ण सेनाको नष्ट हुई ही समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥

जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन्कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

हे महाभाग ! ब्रह्मन् ! आप पाण्डवोंके हितैषी हैं, यह मैं जानता हूं तोभी इस उपस्थित अत्यन्त बडे कार्यकी महत्ताका विचार करके तुम्हारे ऊपर सम्पूर्ण भारको अर्पित करके मोहित हो रहा हूं ॥ ११ ॥

यथाशक्ति च ते ब्रह्मन्वर्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १२ ॥

हे ब्राह्मण ! आपकी उत्तम उपजीविका भी शक्तिके अनुसार उत्तम रीतिसे देता रहता हूं, और तुम्हें अपनी शक्तिके अनुसार प्रसन्न रखनेका प्रयत्न भी करता हूं; परन्तु आप इन बातोंका विचार नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
पाण्डवान्सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १३ ॥

हे अत्यन्त पराक्रमिन् ! हम लोग सदा तुम्हारे भक्त हैं, तो भी तुम हमारे ऊपर प्रीति नहीं करते हो; वरन हम लोगोंसे शत्रुता करनेवाले पाण्डवोंको आप सदैव प्रसन्न रखते हैं ॥ १३ ॥

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥

आप हम लोगोंके यहांसे उपजीविका पाते हैं, और हमारे ही अप्रिय कार्योंके करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं; इससे आप जो मधु युक्त छूरेके समान हैं, उस बातको मैं नहीं जानता था ॥ १४ ॥

नादास्यचेद्वरं मह्यं भवान्पाण्डवनिग्रहे ।
नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥

यदि आप अर्जुनको रोके रखनेका वर मुझे न देते, तो मैं घरको जाते हुए सिन्धुराज जयद्रथको न रोकता ॥ १५ ॥

मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना ।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्दत्तश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥

मेरी बुद्धिहीनतासे ऐसा हुआ है । मैंने समझा था, कि आप सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करेंगे ! इस ही कारणसे जयद्रथको धीरज देकर यहीं रोक लिया; इसीप्रकार मोहवश होकर मैंने उन्हें यमराजके हाथमें समर्पण किया है ॥ १६ ॥

यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येतापि हि मानवः ।
नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥

मनुष्य यमराजकी कराल दाढोंमें प्रवेश करके भी जीता बच सकता है, परन्तु जयद्रथ युद्धमें अर्जुनके वशमें होकर कभी भी जीते जी मुक्त न हो सकेंगे ॥ १७ ॥

स तथा कुरु शोणाश्व यथा रक्ष्येत सैन्धवः ।
मम चार्तप्रलापानां मा क्रुधः पाहि सैन्धवम् ॥ ॥ १८ ॥

हे लाल घोडोंवाले आचार्य ! जो हो, इस समय सिन्धुराज जयद्रथ जिस प्रकारसे बच सके, आप वैसे ही उपायका विधान करके जयद्रथकी रक्षा कीजिये । मैं इस समयमें आर्त्त हो रहा हूं; इससे आप मेरे प्रलापको सुनकर क्रोध मत कीजिये, सिन्धुराजकी रक्षा कीजिये ॥ १८ ॥

द्रोण उवाच

नाभ्यसूयामि ते वाचमश्वत्थाम्नासि मे समः ।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशां पते ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे राजन् ! मैं तुम्हारी बातोंमें दोषारोपण नहीं करता हूं, तुम मुझे अश्वत्थामाके समान प्रिय हो । मैं तुमसे यह यथार्थ वचन कहता हूं, उसे तुम अच्छी प्रकारसे निश्चय करके हृदयमें धारण करो ॥ १९ ॥

सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः ।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सारथि हैं और उनके रथके उत्तम घोडे महावेगवान् हैं; इससे अर्जुन थोडासा भी मार्ग बना कर ही सेनाके बीच शीघ्र गमन कर सकते हैं ॥ २० ॥

किं नु पश्यसि बाणौघान्क्रोशमात्रे किरीटिनः ।
पश्चाद्रथस्य पतितान्क्षिप्तान्शीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१ ॥

तुम क्या नहीं देखते हो, कि मेरे चलाये हुए बाण समूह अर्जुनके द्रुतगामी रथके एक कोस पीछे गिरे हैं ॥ २१ ॥

न चाहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसान्वितः ।
सेनामुखे च पार्थानामेतद्बलमुपस्थितम् ॥ २२ ॥

विशेष करके मैं वृद्ध होनेके कारण अर्जुनके समान शीघ्रतासे रथ चलानेमें समर्थ नहीं हूं, और पाण्डवोंकी यह सम्पूर्ण सेना भी हमारे इस व्यूहके मुखस्थल पर उपस्थित हैं; ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३ ॥

हे महाभुज ! मैंने क्षत्रिय योद्धाओंके बीचमें यह प्रतिज्ञा की है, कि सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके सम्मुखहीमें राजा युधिष्ठिरको जीते ही ग्रहण करूंगा ॥ २३ ॥

धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे मम ।
तस्माद्व्यूहमुखं हित्वा नाहं यास्यामि फल्गुनम् ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर भी इस समय अर्जुनसे रहित होकर मेरे सम्मुख उपस्थित हुए हैं । इसलिये मैं व्यूहके मुखको छोडकर अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेके लिये गमन नहीं करूंगा ॥ २४ ॥

तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान् ।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५ ॥

तुम और अर्जुन एकही वंशमें उत्पन्न हुए हो, और तुम्हारे शत्रु अर्जुन तुम्हारे जैसेही पराक्रमसे युक्त है; विशेष करके तुम इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा और सहायतासे युक्त हो, परन्तु अर्जुन सहायकोंसे रहित अकेले हैं, इससे तुम भय त्याग कर जाक उनके संग युद्ध करो ॥ २५ ॥

राजा शूरः कृती दक्षो वैरमुत्पाद्य पाण्डवैः ।
वीर स्वयं प्रयाह्याशु यत्र यातो धनञ्जयः ॥ २६ ॥

तुम राजा, शूरवीर, कृतास्त्र तथा युद्धके सम्पूर्ण कार्योंके जाननेवाले हो; और तुमने ही पाण्डवोंके सङ्ग शत्रुता उत्पन्न करी है; इस समय जहां पर अर्जुन तुम्हारी सेनाके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं उस ही स्थान पर शीघ्रतापूर्वक जाकर तुम स्वयं उनके सङ्ग युद्ध करो ॥ २६ ॥

दुर्योधन उवाच

कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥

दुर्योधन बोले– हे आचार्य ! जब तुम्हें भी सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें अग्रगण्य अर्जुनने अतिक्रम करके व्यूह बद्ध सेनाके बीच प्रवेश किया है, तब मैं उसे किस प्रकारसे निवारण कर सकूंगा ? ॥ २७ ॥

अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः ।
नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥ २८ ॥

युद्धमें वज्रधारी इन्द्रको भी जीता जा सकता है, परन्तु पराये देशके जीतनेवाले अर्जुनको युद्धमें पराजित नहीं किया जा सकता ॥ २८ ॥

येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः ।
अस्त्रप्रतापेन जितौ श्रुतायुश्च निबर्हितः ॥ २९ ॥

जिसने अपने अस्त्रोंके बलसे भोजराज कृतवर्मा और देवताओंके समान पराक्रमी आपको जीता है, और श्रुतायुका वध किया ॥ २९ ॥

सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च म्लेच्छाश्च शतशो हताः ॥ ३० ॥

काम्बोज राज सुदक्षिण और राजा श्रुतायुधको भी मार डाला, श्रुतायु अच्युतायु तथा सैकडों म्लेच्छोंका वध किया है ॥ ३० ॥

तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमहितान्बहून् ।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तन्मे शंसास्त्रकोविद ॥ ३१ ॥

हे अस्त्र–शस्त्रोंके ज्ञाता आचार्य ! युद्धमें बहुत शत्रु सैनिकोंको अग्निके समान दग्ध करनेवाले उस दुर्धर्ष वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूंगा, यह आप मुझे कहिये ॥ ३१ ॥

क्षमं चेन्मन्यसे युद्धं मम तेनाद्य शाधि माम् ।
परवानस्मि भवति प्रेष्यकृद्रक्ष मे यशः ॥ ३२ ॥

यदि आज आप मुझे अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेके योग्य समझते हो, तो आप मुझे आज्ञा कीजिये, मैं आपकी आज्ञाके अधीन हूं; जैसे अपने अनुयायी पुरुषकी रक्षा की जाती है वैसेही आप मेरे यशकी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

द्रोण उवाच

सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः ।
अहं तु तत्करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे कुरुकुल श्रेष्ठ राजन् ! अर्जुन जो युद्धमें दुर्जय वीर हैं, यह तुमने सत्य ही कहा है; परन्तु जिस प्रकार तुम उनके वेगको सहन करनेमें समर्थ होंगे, मैं वही विधान कर दूंगा ॥ ३३ ॥

अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः ।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

आज जगत्के सम्पूर्ण धनुर्द्धर योद्धा श्रीकृष्णके संमुख ही अर्जुनको तुम्हारे साथ युद्ध करते हुए देखकर अचरज मानेंगे ॥ ३४ ॥

एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् ।
यथा न बाणा नास्त्राणि विषहिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५ ॥

महाराज ! इस सुवर्णमय कवचको मैं तुम्हारे शरीरमें इस प्रकारसे पहना दूंगा, जिससे युद्धमें किसी बाण और अस्त्रकी चोट तुम्हारे शरीरमें न लगेगी ॥ ३५ ॥

यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।
योधयन्ति त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते भयम् ॥ ३६ ॥

यदि सुर, असुर, यक्ष, सर्प, राक्षस और मनुष्योंके सहित तीनों लोकके प्राणी इकट्ठे होकर युद्ध करें, तो भी युद्धभूमिमें तुम्हें कोई भय न होगा ॥ ३६ ॥

न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृद्रणे ।
शरानर्पयितुं कश्चित्कवचे तव शक्ष्यति ॥ ३७ ॥

न श्रीकृष्ण, न अर्जुन और न दूसरा कोई शस्त्रधारी पुरुष,– कोई भी युद्धभूमिमें तुम्हारे इस कवचके भीतर अपने शस्त्रोंसे प्रहार नहीं कर सकेगा ॥ ३७ ॥

स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।
त्वरमाणः स्वयं याहि न चासौ त्वां सहिष्यते ॥ ३८ ॥

इसलिये तुम इस कवचको पहन कर शीघ्रताके सहित युद्धभूमिमें आज उस क्रुद्ध अर्जुनके समीप जाकर उसके सङ्ग स्वयं युद्ध करो। वे तुम्हारा वेग सहन नहीं कर सकेंगे ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः स्पृष्ट्वाम्भो वर्म भास्वरम् ।
आबबन्धाद्भुततमं जपन्मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९ ॥

सञ्जय बोले– द्रोणाचार्यने ऐसा वचन कहकर तुरंत आचमन करके विधिपूर्वक मन्त्रका जप करके वह अत्यंत तेजस्वी अद्भुत कवच बांध दिया ॥ ३९ ॥

रणे तस्मिन्सुमहति विजयाय सुतस्य ते ।
विसिस्मापयिषुर्लोकं विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४० ॥

ब्रह्मज्ञसत्तम द्रोणाचार्यने उस महाभयङ्कर युद्धके समयमें, तुम्हारे पुत्रके विजयके निमित्त अपनी विद्याके प्रभावसे सम्पूर्ण लोकोंके प्राणियोंको विस्मित करनेकी इच्छासे वह वर्म पहना दिया ॥ ४० ॥

द्रोण उवाच

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्मा स्वस्ति चापि द्विजातयः ।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे भरतकुलभूषण ! ब्रह्म और ब्रह्मा तुम्हारे स्वस्तिको विधान करें; ब्राह्मण लोग तुम्हारी स्वस्ति करें; जो सम्पूर्ण श्रेष्ठ सर्प हैं उनसे भी तुम्हारी स्वस्ति होवे ॥ ४१ ॥

ययातिर्नहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु सर्वशः ॥ ४२ ॥

नहुष पुत्र ययाति, धुन्धुमार, भगीरथ और दूसरे राजऋषि लोग भी सर्वदा सब ओरसे तुम्हारे स्वस्तिका विधान करें ॥ ४२ ॥

*

स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च ।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३ ॥

एक पांववाले और अनेक पांववाले तथा पांवरहित जीवोंसे भी इस रणभूमिमें तुम्हारी स्वस्ति होवे ॥ ४३ ॥

स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४ ॥

हे पापरहित ! स्वाहा, स्वधा और शची आदि देवियां तुम्हारा सदा कल्याण करें; लक्ष्मी और अरुन्धती भी तुम्हारे स्वस्तिका विधान करें ॥ ४४ ॥

असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५ ॥

राजन् ! असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वसिष्ठ और कश्यप ये सम्पूर्ण ऋषि लोग तुम्हारी स्वस्तिका विधान करें ॥ ४५ ॥

धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्त्तिकेयश्च षण्मुखः ॥ ४६ ॥

धाता, विधाता, लोकपाल, दिशाएं, दिक्पाल और षडानन स्वामी कार्तिक आज तुम्हें स्वस्ति प्रदान करें ॥ ४६ ॥

विवस्वान्भगवान्स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ।
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिः खं गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥

भगवान् विवस्वान्, चारों दिशाओंके चारों दिग्गज, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश और सम्पूर्ण ग्रह तुम्हारी स्वस्तिका विधान करें ॥ ४७ ॥

अधस्ताद्धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप ।
स शेषः पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥

नृप ! जो सदा इस पृथ्वीके नीचे रहकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करते हैं, वे सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनाग तुम्हें स्वस्ति प्रदान करें ॥ ४८ ॥

गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥

हे गान्धारीनन्दन ! पहिले समयमें जब वृत्रासुर नामक दैत्यने युद्धमें पराक्रमको प्रकाशित करके सहस्रों श्रेष्ठ देवताओंके शरीरको क्षतविक्षत करके उन्हें पराजित किया था ॥ ४९ ॥

हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद्भीता महासुरात् ॥ ५० ॥

तब सम्पूर्ण देवताओंके सहित इन्द्र बल और पराक्रमसे रहित होके वृत्रासुरसे भयभीत हो ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ ५० ॥

देवा ऊचुः

प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम ।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥

देवता बोले— हे देवसत्तम ! सुरश्रेष्ठ ! वृत्रासुरने हम सब लोगोंको पीडित किया है, इस समय आपही हम लोगोंके आश्रयस्वरूप हैं, आप इस महाभयसे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ ५१ ॥

द्रोण उवाच

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान्सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥

द्रोणाचार्य बोले— उस समय ब्रह्माने पास खडे हुए विष्णु और दुःखित हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंसे यह सत्य वचन कहा ॥ ५२ ॥

रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः ।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३ ॥

इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवताओं और द्विजपतियोंकी सदा रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य कार्य है । त्वष्टा ऋषिका तेज महाप्रचण्ड दुर्धर्ष है, उस ही त्वष्टाऋषिके तेजसे वृत्रासुर उत्पन्न हुवा है ॥ ५३ ॥

त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्यानुज्ञां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥

हे देवताओं ! त्वष्टाने पहिले दस लाख वर्षपर्यन्त तपस्या करके महादेव शंकरकी आज्ञासे उनके वरसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया है ॥ ५४ ॥

स तस्यैव प्रसादाद्वै हन्यादेव रिपुर्बली ।
नागत्वा शङ्करस्थानं भगवान्दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥

वह बलवान् शत्रु वृत्रासुर महादेवकी ही कृपासे तुम सम्पूर्ण देवताओंको मार सकता है, तुम लोग महादेवके निवासस्थान पर गये बिना, उनका दर्शन न कर सकोगे ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा हनिष्यथ रिपुं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
यत्रास्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ।
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ॥ ५६ ॥

उनका दर्शन पाकर तुम लोग शत्रु वृत्रासुरको मार सकोगे, इसलिये शीघ्रही तुम लोग मन्दर पर्वतपर महादेवके समीप गमन करो । जहां तपस्याके उत्पत्ति स्थान, दक्ष यज्ञके नाश करनेवाले और भगदेवताके नेत्रोंका निपातन करनेवाले पिनाकधारी सब प्राणियोंके ईश्वर महादेव शिव थे ॥ ५६ ॥

ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम्
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ५७ ॥

सब देवताओंने ब्रह्माके सहित उसही मन्दर पर्वतपर गमन करके करोडों सूर्योंके समान प्रकाशमान् अत्यन्त तेजस्वी महादेवका दर्शन किया ॥ ५७ ॥

सोऽब्रवीत्स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ।
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ॥ ५८ ॥

उस समय महादेव बोले, हे देवगण ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं; बोलो, मैं तुम लोगोंका कौनसा कार्य करूं ? मेरा दर्शन तुम लोगोंके पक्षमें सफल होगा; तुम लोगोंकी अभिलाषा सिद्ध होगी ॥ ५८ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ।
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ॥ ५९ ॥

महादेवने जब सम्पूर्ण देवताओंसे ऐसा वचन कहा, तब वे देवता लोग महादेवसे यह वचन बोले, हे भगवन् ! वृत्रासुरने हम लोगोंका तेज हरण किया है; इससे आप हम लोगोंके आश्रयस्वरूप होइये ! ॥ ५९ ॥

मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥

हे महादेव ! देखिये, हम लोगोंके शरीर वृत्रासुरके अस्त्रोंकी चोटसे क्षतविक्षत होरहे हैं; इससे हम लोग तुम्हारे शरणागत हुए हैं, आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥

महेश्वर उवाच

विदितं मे यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला ।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याकृतात्मभिः ॥ ६१ ॥

महादेव बोले— हे देवता लोगों ! यह त्वष्टाऋषिके तेजसे उत्पन्न हुई अत्यन्त बलवान् भयङ्कर मूर्तिवाली कृत्या है; इस कृत्याका निवारण असंयमी लोगोंके लिये अत्यंत कठिन है यह मुझे विदित है ॥ ६१ ॥

अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम् ।
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ।
बधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर ॥ ६२ ॥

परन्तु सम्पूर्ण देवताओंकी सहायता करना मेरा आवश्यक कर्त्तव्य कार्य है । हे देवताओंके राजा इन्द्र ! तुम मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए इस प्रकाशमान कवचको ग्रहण करो और यह मानस मन्त्र जपते हुए इसे अपने शरीरमें बांधो ॥ ६२ ॥

द्रोण उवाच

इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्वर्म तन्मन्त्रमेव च ।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद्वृत्रचमूं प्रति ॥ ६३ ॥

द्रोणाचार्य बोले— हे राजसत्तम ! वरदान करनेवाले महादेवने ऐसा वचन कहकर वह कवच और उसका मन्त्र इन्द्रको प्रदान किया । इन्द्रने उसही वर्मको पहनकर सुरक्षित हो वृत्रासुरकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त गमन किया ॥ ६३ ॥

नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे ।
न संधिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु ॥ ६४ ॥

उस महायुद्धमें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंके समुदायोंके प्रहार करके भी इन्द्रके उस कवच बन्धनकी सन्धि भी नहीं काटी जा सकी ॥ ६४ ॥

ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम् ।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददौ ॥ ६५ ॥

इसके अनन्तर देवराज इन्द्रने युद्धभूमिमें स्वयं ही वृत्रासुरका वध किया । अनन्तर उस ही वर्मको और उसे बांधनेके मन्त्रको इन्द्रने अङ्गिराको प्रदान किया ॥ ६५ ॥

अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः ।
बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय धीमते ॥ ६६ ॥

अङ्गिराने अपने मन्त्रज्ञ पुत्र बृहस्पतिको वह बतलाया, और बृहस्पतिने बुद्धिमान् अग्निवेशको यह प्रदान किया; ॥ ६६ ॥

अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते ।
तावद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६७ ॥

और अग्निवेशने मन्त्र सहित उस वर्मको मुझे प्रदान किया । मैंने आज उसी मन्त्रसे तुम्हारे शरीरकी रक्षाके लिये इस वर्मको इस समय तुम्हें पहना दिया है ॥ ६७ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिः ।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६८ ॥

सञ्जय बोले– महातेजस्वी आचार्यश्रेष्ठ द्रोण तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर फिर धीरेसे यह बोले ॥ ६८ ॥

ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव पार्थिव ।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ६९ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! जैसे पहिले हिरण्यगर्भने युद्धमें विष्णुको यह कवच पहनाया था; वैसे ही मैं भी ब्रह्मसूत्रसे इस वर्मको तुम्हारे शरीरमें बांधता हूं ॥ ६९ ॥

यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये ।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७० ॥

तारकामय युद्धमें ब्रह्माने इन्द्रके शरीरमें जैसे दिव्य कवच बांधा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे शरीरमें बांध रहा हूं ॥ ७० ॥

बद्ध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७१ ॥

ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने इसी प्रकारसे राजा दुर्योधनके शरीरमें विधिपूर्वक मन्त्रके सहित कवच बांधकर उसे महायुद्धके निमित्त अर्जुनके समीप भेजा ॥ ७१ ॥

स संनद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना ।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७२ ॥

महाबाहु दुर्योधन महात्मा द्रोणाचार्यके समीपसे अभेद कवच पाकर अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें प्रहार करनेमें निपुण त्रिगर्त्तदेशीय एक हजार रथियों, ॥ ७२ ॥

तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् ।
अश्वानामयुतेनैव तथान्यैश्च महारथैः ॥ ७३ ॥

एक हजार पराक्रमयुक्त मतवाले हाथी सवार, एक लाख घुडसवार और दूसरे बहुतसे महारथी शूरवीरोंके सहित ॥ ७३ ॥

वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति ।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७४ ॥

घिरकर नाना प्रकारके जुझाऊ बाजे बजवाते हुए अर्जुनके रथकी ओर जाने लगे; उस समय राजा दुर्योधनने विरोचनपुत्र राजा बलिकी भांति युद्ध करनेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ७४ ॥

ततः शब्दो महानासीत्सैन्यानां तव भारत।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ २८१३ ॥

भारत ! अगाध समुद्रके समान सेनाके सहित कुरुराज दुर्योधनको अर्जुनकी ओर देख तुम्हारी सेनाके शूरवीर हर्षित होकर सिंहनाद करने लगे ॥ ॥ ७९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ २८१३ ॥

: ७० :

सञ्जय उवाच

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययोस्तदा ।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! उधर अर्जुन और श्रीकृष्णने शत्रुसेनाके व्यूहके बीच प्रवेश किया; और दुर्योधन उनके पीछे पीछे युद्ध करनेके निमित्त गमन करने लगे ॥ १ ॥

जवेनाभ्यद्रवन्द्रोणं महता निस्वनेन च ।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

इधर सोमकवीरोंके सहित पाण्डवोंने महा तर्जन गर्जन करके द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक आक्रमण किया। तब जोरसे युद्ध होने लगा ॥ २ ॥

तद्युद्धमभवद्धोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाञ्चालानां कुरूणां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥

उस शकटव्यूहके अग्रभागमें होनेवाला पाञ्चाल और कौरवोंका वह अद्भुत, घोर, तुमुल रोएंको खडा करनेवाला प्रचण्ड युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

राजन्कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ्न च श्रुतम् ।
यादृङ्मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशां पते ॥ ४ ॥

महाराज ! उस दिन दो पहरके समय जिस प्रकार भयङ्कर युद्ध होने लगा, वैसा संग्राम मैंने पहिले कभी नहीं देखा और न सुना ही था ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥

प्रहार करनेमें निपुण धृष्टद्युम्न और पाण्डव योद्धा लोग अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५ ॥

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
पार्षतप्रमुखान्पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥

हम लोग भी सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोणको आगे करके धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्षीय योद्धाओंको बाणोंकी वर्षासे छिपाने लगे ॥ ६ ॥

महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये ।
सेनाग्रे विप्रकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥ ७ ॥

हेमन्त ऋतुके अन्तमें उठे हुए वायुके वेगसे आगे बढते हुए दो महामेघ जैसे प्रकाशित होते हैं, वैसे ही रथभूषित अत्यन्त मनोहर दोनों मुख्य सेनाएं प्रकाशित होने लगीं ॥ ७ ॥

समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम् ।
जाह्नवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥

जैसे वर्षा कालमें जलकी बाढसे युक्त गङ्गा और यमुना नदियां आपसमें मिलकर महावेगवती होती हैं, वैसेही दोनों ओरकी विशाल सेनाएं परस्पर वेगपूर्वक भिडकर अपने अपने पराक्रमको प्रकाशित करने लगीं ॥ ८ ॥

नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः ।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥

आगे बढते हुए नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्ररूपी पूर्व वायुसे युक्त, गदारूपी बिजलीसे प्रकाशित हाथी, घोडे और रथोंसे परिपूरित वह संग्राम-मेघ महान् बादलके समान भयंकर दीखता था ॥ ९ ॥

भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान् ।
अभ्यवर्षन्महारौद्रः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥

द्रोणाचार्यरूपी प्रचण्ड पवनके वेगसे चलाते हुए महासंग्राममें कुरुसेनारूपी बादल अग्निके समान उठी हुई पाण्डवोंकी सेनाके ऊपर बाणरूपी जलकी सहस्रों धाराओंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

समुद्रमिव घर्मान्ते विवान्घोरो महानिलः ।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥

जिस प्रकार ग्रीष्मऋतुके अन्तमें महाप्रचण्ड वेगवान् वायु समुद्रके जलको उथलित करती है, वैसेही द्विजसत्तम द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको छिन्न भिन्न करने लगे ॥ ११ ॥

तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् ।
बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥ १२ ॥

जैसे अत्यन्त प्रबल जलका वेग किसी महान् पुलको तोड डालना चाहता है, वैसे ही पाण्डव लोग भी सारी शक्ति लगाकर द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण करने लगे ॥ १२ ॥

वारयामास तान्द्रोणो जलौघानचलो यथा ।
पाण्डवान्समरे क्रुद्धान्पाञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥

जैसे पर्वत बहते हुए जलराशिके स्रोतको रोकता है, वैसे ही द्रोणाचार्य क्रुद्ध पाण्डव, पाञ्चाल और केकय देशीय योद्धाओंको युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ १३ ॥

अथापरेऽपि राजानः परावृत्य समन्ततः ।
महाबला रणे शूराः पाञ्चालानभ्यवारयन् ॥ १४ ॥

और दूसरे महाबली शूरवीर नरेश भी युद्धमें सब ओरसे घेर कर पाञ्चाल वीरोंको ही निवारण करने लगे ॥ १४ ॥

ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह ।
संजघानासकृद्द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥

अनन्तर पाण्डवोंके सहित पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न समरमें शत्रुसेनाको भेद करनेकी इच्छासे बार बार द्रोणाचार्यके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥

यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते ।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्षत ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके ऊपर जैसे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, धृष्टद्युम्न भी उस ही भांति द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाने लगे ॥ १६ ॥

सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः ।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥

तलवार रूपी पुरवैया हवासे युक्त शक्ति, प्रास, ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे संपन्न, प्रत्यञ्चारूपी बिजलीसे प्रकाशित, धनुष टङ्कार रूपी गर्जनसे युक्त धृष्टद्युम्न रूपी बादलने ॥ १७ ॥

शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत्सर्वतोदिशम् ।
निघ्नन्रथवराश्वौघांश्छादयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें अपने बाणरूपी जलधारा और अस्त्र-शस्त्ररूपी शिलाकी वर्षा करके तुम्हारी ओरके मुख्य रथी और घुडसवारोंकी सेनाको युद्धमें आच्छादित किया ॥ १८ ॥

यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम् ।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य अपने बाणोंकी वर्षासे पाण्डवोंकी जिस जिस रथसेनाको विद्ध करने लगते थे, धृष्टद्युम्न उस ही स्थानोंसे द्रोणाचार्यको बाणोंकी वर्षा करके निवारण करते थे ॥ १९ ॥

×

तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥

हे भारत ! युद्धमें द्रोणाचार्यके ऐसे प्रयत्नशील होने पर भी उनकी सेना धृष्टद्युम्नके पास पहुंचकर तीन हिस्सोंमें बंट गई ॥ २० ॥

भोजमेके न्यवर्तन्त जलसंधमथापरे ।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवापरेऽव्रजन् ॥ २१ ॥

पाण्डवोंकी सेनासे पीडित होकर कितने ही कुरुसेनाके शूरवीरोंने कृतवर्माका, कईयोंने जलसंधका और दूसरे वीरोंने द्रोणका आश्रय ग्रहण किया ॥ २१ ॥

सैन्यान्यघटयद्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सेनाओंको ज्योंही इकट्ठे करके व्यूहबद्ध करते थे, उस ही समय महारथी धृष्टद्युम्न उनकी सब सेनाओंको छिन्न भिन्न कर देते थे ॥ २२ ॥

धार्तराष्ट्रास्त्रिधाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥

जैसे वनके बीच रक्षकरहित पशुओंको अनेक हिंसक प्राणी नष्ट कर देते हैं, वैसे ही तुम्हारी सेना पाण्डव और सृञ्जयोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर तीन हिस्सोंमें बटके नष्ट होने लगी ॥ २३ ॥

कालः संग्रसते योधान्धृष्टद्युम्नेन मोहितान् ।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति संमेनिरे जनाः ॥ २४ ॥

उस समय सम्पूर्ण पुरुष यह समझने लगे, कि इस तुमुल संग्राममें काल ही धृष्टद्युम्नके जरियेसे योद्धाओंको मोहित करके ग्रास कर रहा है ॥ २४ ॥

कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥

जैसे दुष्ट राजाका राज्य दुर्भिक्ष, व्याधि और चोर डाकुओंके कारण नष्ट होता है, वैसे ही पाण्डवों द्वारा विपद् सागरमें पडी हुई तुम्हारी सेना भगाई जा रही थी ॥ २५ ॥

अर्करश्मिप्रभिन्नेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंषि प्रतिहन्यन्ते सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥

सेनाके पुरुषोंके अस्त्र शस्त्र और कवचों पर सूर्यकिरणके पडने तथा धूलिके उडनेसे आखोंमें चकाचौंध आती और उस समय कुछ भी नहीं दिखाई देता था ॥ २६ ॥

त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पाञ्चालान्व्यधमच्छरैः ॥ २७ ॥

जब पाण्डवोंने द्रोणाचार्यकी सेनाको अपने अस्त्रोंसे पीडित करके तीन भाग कर दिया, तब द्रोणाचार्यने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर बाणोंसे पाञ्चाल योद्धाओंको तितर बितर कर दिया ॥ २७ ॥

प्रमृद्नंस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥

अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुसेनाको तितर बितर करते हुए योद्धाओंके वध करनेके समयमें द्रोणाचार्यका स्वरूप जलती हुई प्रलय कालकी अग्निके समान दिखाई देने लगा ॥ २८ ॥

रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशां पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥ २९ ॥

प्रजापते ! महारथी द्रोणाचार्य एक एक बाणसे ही शत्रुसेनाके प्रत्येक रथ, हाथी, घोडे और पैदल सेनाके योद्धाओंको घायल करने लगे ॥ २९ ॥

पाण्डवानां तु सैन्येषु नास्ति कश्चित्स भारत ।
दधार यो रणे बाणान्द्रोणचापच्युताञ्शितान् ॥ ३० ॥

हे भारत ! उस समयमें पाण्डवसेनामें ऐसा कोई पुरुष भी नहीं था, जो युद्धमें द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाणोंको सहनेमें समर्थ हो सके ॥ ३० ॥

तत्पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥

सूर्यकिरणोंके प्रचण्ड उत्तापके समान पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विकल होकर इधर उधर भ्रमण करने लगे ॥ ३१ ॥

तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।
अभवत्सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ३२ ॥

तुम्हारी सेना भी धृष्टद्युम्नके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार दीखने लगी, जैसे सूखे हुए वृक्ष सब ओरसे जलती हुई अग्निके वेगसे भस्म हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

वध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।
त्यक्त्वा प्राणान्परं शक्त्या प्रायुध्यन्त स्म सैनिकाः ॥ ३३ ॥

तुम्हारी ओर द्रोणाचार्य, पाण्डवोंकी ओर धृष्टद्युम्न, इन दोनों पुरुषसिंहोंके बाणोंसे दोनों ओरकी सेना पीडित होकर नष्ट होने लगीं; परन्तु दोनों सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग अपने प्राणोंकी आशा त्यागकर पूरी शक्तिके अनुसार युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥

तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
नासीत्कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत्संयुगं भयात् ॥ ३४ ॥

हे भरतर्षभ ! वहां युद्ध करते हुए तुम्हारे और शत्रुओंके सेनाके बीचमें उस समय कोई ऐसा वीर पुरुष नहीं था, जो भयके कारण संग्रामसे हटके रणभूमिसे भाग जावे ॥ ३४ ॥

भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥

विविंशति, चित्रसेन और महारथी विकर्ण इन तीनों भाइयोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनको घेर लिया ॥ ३५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥ ३६ ॥

अवन्ती नगरीके राजपुत्र विन्द और अनुविन्द और वीर्यवान् क्षेमधूर्ति ये तीनों योद्धा तुम्हारे तीनों पुत्रोंके अनुगामी हुए ॥ ३६ ॥

बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए तेजस्वी महारथी बाह्लिक राज अपनी सेना और मन्त्रियोंको सङ्ग लेकर द्रौपदीके पुत्रोंको रोकने लगे ॥ ३७ ॥

शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः ।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥

एक सहस्र योद्धाओंके सहित शिवि देशीय राजा गोवासन काशिराज अभिभूके पराक्रमी पुत्रको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ ३८ ॥

अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥

मद्रदेशके अधिपति राजा शल्यने जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी आजतशत्रु राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥ ३९ ॥

दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः ।
सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥

अमर्षशील पराक्रमी दुःशासनने अपनी भागती हुई सेनाको युद्धके निमित्त पुनः स्थिरतापूर्वक खडी करके अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि पर युद्धमें धावा किया ॥ ४० ॥

स्वकेनाहमनीकेन संनद्धकवचावृतः ।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥
मैं कवच धारण करके सज्ज होकर अपनी सेनाके सहित चार सौ महा धनुर्द्धारी वीरोंको सङ्ग लेकर युद्धभूमिमें चेकितानको निवारण करने लगा ॥ ४१ ॥

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्तिशरासिभिः ॥ ४२ ॥
शकुनि अपनी सेनाके सहित, धनुष, शक्ति, बाण ग्रहण करनेवाले सात सौ गान्धार देशीय योद्धाओंको सङ्ग लेकर माद्रीपुत्र नकुल सहदेवको युद्धभूमिसे निवारण करने लगे ॥ ४२ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्छताम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतौ युधि ॥ ४३ ॥
अवन्तिके राजपुत्र महाधनुर्धारी विन्द और अनुविन्दने अपने मित्र राजा दुर्योधनके निमित्त प्राणोंकी आशा छोडके हथियार उठाकर युद्धमें मत्स्यराज विराटपर आक्रमण किया ॥ ४३ ॥

शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
बाह्लिकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥
बाह्लिक देशीय राजाने अपराजित पराक्रमी यज्ञसेन पुत्र शिखण्डीको, जो युद्धमें राह रोककर खडा था, अत्यंत यत्नपूर्वक संग्रामसे निवारण करना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥
अवन्ति देशके राजाने क्रूर प्रभद्रक और सौवीर देशीय सैनिकोंके साथ आकर क्रोधित पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नको युद्धभूमिमें रोका ॥ ४५ ॥

घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरयोधिनम् ।
अलायुधोऽद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥
क्रूर रीतिसे युद्ध करनेवाले, महा पराक्रमी राक्षस घटोत्कचको युद्धके निमित क्रोधमें भरकर आगे बढे आते देखकर अलायुधने उसपर शीघ्रताके सहित आक्रमण किया ॥ ४६ ॥

अलम्बुसं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥
महारथी राजा कुन्तिभोज अपनी बडी सेनाको संग लेकर राक्षसोंमें श्रेष्ठ क्रोधी अलम्बुषका निवारण करने लगे ॥ ४७ ॥

सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत्सर्वसैन्यस्य भारत ।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥

हे राजेन्द्र ! सिन्धुराज जयद्रथ सम्पूर्ण सेनाके पीछे थे, महाधनुर्धर कृपाचार्य आदि रथि योद्धा लोगोंसे वे सुरक्षित हुए थे ॥ ४८ ॥

तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन्सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥

राजन ! दो महारथी योद्धा उनके चक्ररक्षक थे, उनमेंसे अश्वत्थामा दाहिने चक्रकी और सूतपुत्र कर्ण बायें चक्रकी रक्षा करते थे ॥ ४९ ॥

पृष्ठगोपास्तु तस्यासन्सौमदत्तिपुरोगमाः ।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥

सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा आदि वीर उनके पृष्ठ भागकी रक्षा करते थे; कृपाचार्य, वृषसेन, शल और पराक्रमी शल्य ॥ ५० ॥

नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे तदा ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ २८६४ ॥

ये सब लोग नीतिज्ञ, महाधनुर्धर और युद्धके सम्पूर्ण कार्योंके जाननेवाले थे; और सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके निमित्त इसही प्रकारका विधान करके वहां युद्ध करने लगे ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ २८६४ ॥

: ७१ :

सञ्जय उवाच

राजन्संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम ।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! कौरव और पाण्डवोंका जिस प्रकारसे आश्चर्यमय युद्ध हुआ था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे समीपमें वर्णन करता हूं, आप चित्त लगा कर सुनिये ॥ १ ॥

भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अयोधयन्रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ २ ॥

पाण्डवोंने द्रोणाचार्यकी व्यूहबद्ध सेनाको भेद करनेकी इच्छासे व्यूहके मुखस्थल पर स्थित द्रोणाचार्यके पास आकर समरमें उनपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

रक्षमाणाः स्वकं व्यूहं द्रोणस्यापि च सैनिकाः ।
अयोधयन्रणे पार्थान्प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ३ ॥

द्रोणाचार्यके सैनिक भी महत् यश उपार्जन करनेकी इच्छासे अपने व्यूहकी रक्षा करते हुए युद्धभूमिमें कुन्तीपुत्रोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥

अवन्तिराज विन्द और अनुविन्दने अत्यंत क्रुद्ध होकर तुम्हारे पुत्रके हितकी अभिलाष करके दस बाणोंसे राजा विराटको विद्ध किया ॥ ४ ॥

विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥

महाराज ! राजा विराटने भी समरमें अनुयायी योद्धाओं सहित खडे हुए उन दोनों पराक्रमी वीरोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध किया ॥ ५ ॥

तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥

जैसे वनके बीच मद बहानेवाले बडे दो हाथियोंके सङ्ग एक सिंहका युद्ध होता है, उस ही भांतिसे उन महारथी योद्धाओंका महा भयङ्कर पानीकी तरह रुधिर बहानेवाला संग्राम होने लगा ॥ ६ ॥

बाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥

महाबलवान् शिखण्डीने युद्धमें वेगशील बाह्लिकको मर्मस्थल और हड्डीको भेदनेवाले घोर तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ७ ॥

बाह्लीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ८ ॥

बाह्लिकने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिलापर घिसकर तेज किये हुए सुवर्ण पंखयुक्त नतपर्व नौ बाणोंसे शिखण्डीको विद्ध किया ॥ ८ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥

इन दोनों महारथी वीरोंके बाण और शक्ति आदि अस्त्रोंसे इस प्रकार अत्यंत भयंकर युद्ध होने लगा, कि उस संग्रामको देखकर कायर पुरुष भयभीत होगये और शूरवीर योद्धा हर्षित होने लगे ॥ ९ ॥

ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
अभवत्संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ १० ॥

उस समय उन दोनों महारथी वीरोंके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे आकाश मण्डलके सहित सम्पूर्ण दिशाएं परिपूरित हो गईं । उस समय कुछ भी सूझ नहीं पडता था ॥ १० ॥

शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् ।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीके सङ्ग युद्ध करता है, वैसेही गोवासन शैब्य अपनी सेनाको सङ्ग लेकर काशिराजके महारथी पुत्रके साथ संग्राममें युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥

बाह्लीकराजः संरब्धो द्रौपदेयान्महारथान् ।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन्रणे ॥ १२ ॥

जैसे पांचों इन्द्रियोंके सङ्गमें मनका युद्ध होता है, वैसेही द्रौपदीके महारथी पांचों पुत्रोंके सङ्ग क्रोधित बाह्लिक राज समरमें युद्ध करते हुए शोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥

अयोधयंस्ते च भृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद्देहभृतां वर ॥ १३ ॥

राजन् ! जैसे इन्द्रियोंके विषय शरीरको सदा क्लेश देते हैं, वैसेही द्रौपदीके पुत्र चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए बाह्लिक राजके साथ बडे जोरसे युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥

तुम्हारे पुत्र दुःशासनने युद्धमें वृष्णिवंशीय सात्यकिको नौ नतपर्व तीक्ष्ण बाणोंसे बिद्ध किया ॥ १४ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्छां जगामाशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ १५ ॥

सत्य पराक्रमी सात्यकि बलवान् महाधनुर्धर दुःशासनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर तुरंत ही थोडेसे मूर्च्छित होगये ॥ १५ ॥

समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥

फिर सावधान होकर सात्यकिने शीघ्र ही तुम्हारे महारथी पुत्र दुःशासनको कङ्कपत्र युक्त दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १६ ॥

तावन्योन्यं दृढं विद्ध्वावन्योन्यशरविक्षतौ।
रेजतुः समरे राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १७ ॥
राजन् ! वे दोनों आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हो, रुधिरपूरित क्षतविक्षत शरीर होकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान रणभूमिमें शोभित होने लगे ॥ १७ ॥

अलम्बुसस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः।
अशोभत परं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥
राजा कुन्तिभोजके बाणोंसे पीडित होकर अत्यंत क्रुद्ध हुआ राक्षस अलम्बुस फूलोंसे भरे हुए पलाशवृक्षके समान अत्यंत शोभित होने लगा ॥ १८ ॥

कुन्तिभोजं ततो रक्षो विद्ध्वा बहुभिरायसैः।
अनदद्भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १९ ॥
फिर वह राक्षस अलम्बुस अनेक लोहेके बाणोंसे राजा कुन्ति भोजको विद्ध करके तुम्हारी सेनाके आगे भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करने लगा ॥ १९ ॥

ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम्।
ददृशुः सर्वभूतानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥
जैसे पहिले समयमें इन्द्रके संग जम्भासुरका युद्ध हुआ था, वैसे ही उन दोनों शूरवीर योद्धाओंको आपसमें युद्ध करते हुए सब प्राणियोंने देखा ॥ २० ॥

शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैरर्दयतां मृधे ॥ २१ ॥
भारत ! माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव अत्यन्त क्रुद्ध होकर शत्रुताकी जड उत्पन्न करनेवाले और युद्धमें वेगपूर्वक आगे बढनेवाले शकुनिको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ २१ ॥

तन्मूलः स महाराज प्रावर्तत जनक्षयः।
त्वया संजनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥ २२ ॥
हे राजेन्द्र ! सम्पूर्ण वीरपुरुषोंके नाश होनेका मूल कारण ऐसा वह जनसंहार तुमसे ही प्रकट हुआ हैं और कर्णने उस ही जडको बढाया है ॥ २२ ॥

उद्धुक्षितश्च पुत्रेण तव क्रोधहुताशनः।
य इमां पृथिवीं राजन्दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥
और तुम्हारे पुत्रने उस तुम्हारे क्रोधरूपी अग्निको प्रज्वलित किया है; इस समय वही क्रोधरूपी अग्नि सम्पूर्ण पृथ्वीको भस्म करनेके निमित्त उद्यत हुई है ॥ २३ ॥

×

शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
नाभ्यजानत कर्तव्यं युधि किञ्चित्पराक्रमम् ॥ २४ ॥

अन्तमें शकुनि पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेवके बाणोंसे पीडित होकर उनके सम्मुखसे भाग गये । उस समय उनको युद्धके कर्तव्यका और पराक्रमका कुछ भी ज्ञान न रहा ॥ २४ ॥

विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥

महारथी नकुल और सहदेव उन्हें अपने सम्मुखसे पृथक् होते देखकर, जैसे दो दिशासे दो बादलके टुकडे एकही स्थलमें इकठ्ठे होकर किसी महान् पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही फिर उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

स वध्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः ।
संप्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥

शकुनि उन दोनों महारथी पुरुषोंके अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर, अपने वेगगामी घोडोंसे युक्त रथ पर चढकर द्रोणाचार्यकी सेनाके पास जा पहुंचे ॥ २६ ॥

घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
अभ्ययाद्भृशं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥

राक्षस घटोत्कच मध्यम वेगके सहित महावेगशील शूर राक्षस अलायुधके संग युद्ध करने लगा ॥ २७ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥

महाराज ! जैसे पहिले समयमें श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, वैसे ही उन दोनों राक्षसोंका आश्चर्यमय विचित्र युद्ध होने लगा ॥ २८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे ।
विद्ध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मद्रराज शल्यको पचास बाणोंसे विद्ध करके फिर दूसरी बार सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ २९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
यथा पूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥

नृप ! जैसे पहिले समयमें शम्बरासुरके सङ्ग देवराज इन्द्रका महान् युद्ध हुआ था, वैसेही इन दोनों राजाओंका अत्यंत अद्भुत रूपसे संग्राम होने लगा ॥ ३० ॥

विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः ।
अयोधयन्भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ २८९५ ॥

विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण तुम्हारे ये तीनों पुत्र बडी सेनाके साथ भीमसेनके सङ्ग संग्राम करने लगे ॥ ३१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ २८९५ ॥

: ७२ :

सञ्जय उवाच

तथा तस्मिन्प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधाभूतान्पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! इसी प्रकार रोएंको खडे करनेवाले भयङ्कर संग्रामके समय जब कौरवोंकी सेना तीन हिस्सेमें बंट गई, तब पाण्डव लोग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंपर आक्रमण करने लगे ॥ १ ॥

जलसंधं महाबाहुर्भीमसेनो न्यवारयत् ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥

महाबाहु भीमसेनने जलसन्धपर और सेनाके सहित युधिष्ठिरने कृतवर्मापर आक्रमण किया ॥ २ ॥

किरन्तं शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नने जैसे प्रकाशमान सूर्य अपने किरणोंका प्रसार करते हैं, वैसेही बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यके ऊपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां सोमकानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥

अनन्तर कौरव और सोमकोंके सम्पूर्ण धनुर्द्धारी योद्धा लोग परस्पर अत्यन्त क्रुद्ध और उतावले होकर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

संक्षये तु तथा भूते वर्तमाने महाभये ।
द्वंद्वीभूतेषु सैन्येषु युद्धमानेष्वभीतवत् ॥ ५ ॥

जब इस प्रकार मनुष्योंका महाभयङ्कर नाश होने लगा और सब सैनिक निर्भय चित्तसे द्वन्द्व युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
विचिक्षेप पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥
तब बलवान् द्रोणाचार्यने शक्तिमान् पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करते हुए बाणोंकी वर्षा की, उस समयमें वह अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगी ॥ ६ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥
वे दोनों द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न चारों ओर टूटे हुए कमल वनके समान मनुष्योंके अनेक शिरोंको काट काटके युद्धभूमिमें गिराने लगे ॥ ७ ॥

विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥
सेनाके योद्धाओंके वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, ध्वजा, कवच और धनुष बाण कटकर इधर उधर चारों ओर गिरे हुए दीख पडते थे ॥ ८ ॥

तपनीयविचित्राङ्गाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
सुवर्ण भूषित विचित्र अलंकारोंसे युक्त तथा रुधिरसे परिपूरित हुए शूरवीर पुरुषोंके शरीर आपसमें सटके मानो बिजलीयों सहित बादलोंके समूहोंके समान दिखाई देते थे ॥ ९ ॥

कुञ्जराश्वनरान्संख्ये पातयन्तः पतत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥
कितने ही महारथी योद्धा ताल प्रमाण अपने धनुषोंको खींचकर अपने पंखयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे हाथी, घोडे और मनुष्योंका वध करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ १० ॥

असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां संप्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥
महात्मा शूरवीर पुरुषोंके तलवार, ढाल, धनुष, बाण, कवच और शिर कटकर इधर उधर बिखरे गये थे ॥ ११ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ १२ ॥
महाराज ! उस भयंकर युद्धमें चारों ओर असंख्य कबंध खडे हुए दिखाई देने लगे ॥ १२ ॥

गृध्राः कङ्का बडाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
बहवः पिशिताशाश्च तत्रादृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥

मारिष ! गिद्ध, कङ्क, बगुले, बाज, कौवे और सियार आदि अनेक मांस भक्षी जीव उस रणभूमिमें चारों ओर दिखाई देने लगे ॥ १३ ॥

भक्षयन्तः स्म मांसानि पिबन्तश्चापि शोणितम् ।
विलुम्पन्तः स्म केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥

नृप ! वे सब मांस भक्षण करते, रुधिर पीते और केश खींचते और मज्जाको बारबार बाहर निकालते थे ॥ १४ ॥

आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः ॥ १५ ॥

तथा मनुष्य, घोडे और हाथियोंके शरीर, शरीरोंके अवयव और मस्तकोंको इधर उधर खींचते हुए दिखाई देते थे ॥ १५ ॥

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिताः शरधारिणः ।
रणे जयं प्रार्थयन्तो भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥

उस समय अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, सेनाके बाणधारी शूरवीर योद्धा लोग रणयज्ञकी दीक्षा लेकर अपने विजयकी अभिलाष करके महाघोर संग्राम करने लगे ॥ १६ ॥

असिमार्गान्बहुविधान्विचेरुस्तावका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥

तुम्हारे शूरवीर योद्धा तलवार घुमाते हुए रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे । कोई कोई ऋष्टि, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर, पट्टिश ॥ १७ ॥

गदाभिः परिघैश्चान्ये व्यायुधाश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥

गदा, परिघ, दूसरे आयुध और बाहुओंसे आघात करते थे; वे क्रुद्ध होकर युद्ध करते हुए आपसमें एक दूसरेका बध करने लगे ॥ १८ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥

रथी रथियोंसे, घुडसवार घुडसवारोंसे, मतवाले हाथी श्रेष्ठ हाथियोंसे और पैदल योद्धा पैदलोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥

क्षीबा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च चारणाः ।
उच्चुक्रुशुस्तथान्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ २० ॥

बहुतेरे मतवाले हाथी रणभूमिमें मदमत्त तथा उन्मत्तके समान होकर एक दूसरेको देखकर चिंघाडते और आपसमें आघात–प्रत्याघात करते थे ॥ २० ॥

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशां पते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥

हे राजन् ! जब वह मर्यादाशून्य युद्ध चल रहा था, उसी समयमें धृष्टद्युम्नने अपने रथके घोडोंको द्रोणाचार्यके रथके घोडोंके सङ्ग मिला दिया ॥ २१ ॥

ते हया साध्वशोभन्त विमिश्रा वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे
हयाः शुशुभिरे राजन्मेघा इव सविद्युतः ॥ २२ ॥

राजन् ! उन दोनों पुरुषसिंहोंके वायुके समान महावेगशाली घोडे युद्धमें परस्पर मिलकर अत्यन्तही शोभित हुए । धृष्टद्युम्नके पारावत बर्णवाले और द्रोणाचार्यके लाल वर्णवाले घोडे एक ही स्थानपर मिलके बिजलीसे युक्त बादलके समान शोभित हुए ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्नश्च संप्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्मादद वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २३ ॥

हे भारत ! वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको अपने समीप आया हुआ देखकर धनुष बाण त्यागके ढाल और तलबारको ग्रहण किया ॥ २३ ॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २४ ॥

शत्रु वीर नाशन पृषत् पुत्र धृष्टद्युम्न कठिन कर्म करनेकी इच्छासे रथकी धुरी अतिक्रम करके द्रोणाचार्यके रथ पर चढ गये ॥ २४ ॥

अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसंनहनेषु च ।
जघानार्धेषु चाश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ २५ ॥

जब वह शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके रथ पर चढके उनके घोडोंके पिछाडी स्थित होकर अश्वोंके मध्यभागमें प्रहार करने लगे, तब उनके उस अद्भुत कर्मको देखकर पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग धृष्टद्युम्नकी प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥

खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शान्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २६ ॥

यह जिस समय द्रोणाचार्यके लालवर्णवाले घोडोंके ऊपर स्थित होकर तलबार घुमाते थे, उस समय द्रोणाचार्य उनका तनिक भी छिद्र न देख सके; उस स्थलमें धृष्टद्युम्नका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ २६ ॥

यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २७ ॥

जैसे बाजपक्षी मांसकी अभिलाष करके वनके बीच वेगपूर्वक अपने भक्ष्यकी ओर दौडता है, वैसेही द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धृष्टद्युम्नका यह सहसा आक्रमण हुआ था ॥ २७ ॥

ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर द्रोणाचार्यने सौ बाणोंसे सौ चन्द्रप्रतिमासे शोभित द्रुपदपुत्रकी ढालको काट गिराया और दस बाणोंसे उनकी तलवारके भी टुकडे कर दिये ॥ २८ ॥

हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान्बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २९ ॥

फिर बलवान् द्रोणने चौसठ बाणोंसे उनके रथके घोडोंका वध करके, दो भल्ल बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा और छत्र काटकर उनके दोनों पृष्ठरक्षकोंको भी मार डाला ॥ २९ ॥

अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३० ॥

अनन्तर शीघ्रताके सहित प्राणनाश करनेवाले एक भयङ्कर बाणको द्रोणाचार्यने धनुषपर चढा कर धनुषको कानतक खींचकर इन्द्रके वज्र छोडनेके समान धृष्टद्युम्नके ऊपर चलाया ॥ ३० ॥

तं चतुर्दशभिर्बाणैर्बाणं चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नमोचयत् ॥ ३१ ॥

उस समय सात्यकिने चौदह बाणोंसे उस बाणको काट डाला और इसप्रकार आचार्य श्रेष्ठके कराल ग्रासमें फंसे हुए धृष्टद्युम्नको बचा लिया ॥ ३१ ॥

सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुंगवः ॥ ३२ ॥

मारिष ! जैसे सिंहने किसी हरिणको पकड लिया हो, वैसेही नरसिंह द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको ग्रस लिया था, परंतु शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने उन्हें मुक्त किया ॥ ३२ ॥

सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यस्य महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समर्पयत् ॥ ३३ ॥

उस महायुद्धमें द्रोणाचार्यने सात्यकिको धृष्टद्युम्नकी रक्षा करते देखकर, शीघ्रताके सहित छब्बीस बाणोंको चला कर उनको विद्ध किया ॥ ३३ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमिव सृञ्जयान् ।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३४ ॥

अनन्तर शिनि पौत्र सात्यकिने द्रोणाचार्यको सृञ्जय योद्धाओंको ग्रास करते देखकर छब्बीस तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें दोनों स्तनोंके बीचमें विद्ध किया ॥ ३४ ॥

ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाला जयगृद्धिनः ।
सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नममोचयन् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ २९३० ॥

जब द्रोणाचार्य सात्यकिके संग युद्ध करने लगे, तब विजयकी अभिलाष करनेवाले सम्पूर्ण पाञ्चाल देशीय महारथी लोग तुरंतही धृष्टद्युम्नको दूर हटा ले गये ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ २९३० ॥

: ७३ :

धृतराष्ट्र उवाच

बाणे तस्मिन्निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते ।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! वृष्णिवंशीय श्रेष्ठ वीर सात्यकिने जब द्रोणाचार्यके उस बाणको काटकर धृष्टद्युम्नको उनके हाथसे छुडाया ॥ १ ॥

अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद्युधि ॥ २ ॥

तब महाधनुर्द्धारी, सम्पूर्ण शस्त्रधारीयोंमें श्रेष्ठ, क्रोधसे भरे नरव्याघ्र द्रोणाचार्यने उस युद्धमें शिनि पौत्र सात्यकिके प्रति क्या किया ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

संप्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः ।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महाहिरिव निःश्वसन् ।
नरवीरप्रमुदितैः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– उस समय द्रोणाचार्यने क्रोध और अमर्षसे लाल नेत्र करके महा नागके समान फुफकारते हुए बडे वेगसे सात्यकिपर आक्रमण किया । क्रोधही उस महान् सर्पका विष था, खींचा हुआ धनुष फैलाये मुखके समान था, तीक्ष्ण धारवाले बाण दातोंके समान थे और तेज नाराच दाढा थे । नरश्रेष्ठ शूरवीर योद्धाओंसे प्रोत्साहित अपने महान् वेगशाली लाल घोडों द्वारा ॥ ३–४ ॥

उत्पतद्भिरिवाकाशं क्रमद्भिरिव सर्वतः ।
रुक्मपुङ्खाञ्शरानस्यन्युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

जो मानो आकाशमें उड रहे थे और सब ओर घूम रहे थे, द्रोणाचार्यने सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा करते हुए युयुधानपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥

शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम् ।
कार्मुकाकर्षविक्षिप्तं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥

पराये नगरोंके जीतनेवाले युद्धदुर्मद शूरवीर सात्यकिने बाणोंके प्रहारोंकी महान् वर्षा करनेवाले, रथकी घरघराहट रूपी मेघ गर्जन करनेवाले, धनुष खींचकर सतत वृष्टि करनेवाले, अनेक नाराच बाण विजलीके समान प्रकाशित करनेवाले ॥ ६ ॥

शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥

शक्ति और तलवार रूपी वज्रधारी, क्रोधरूपी वेगसे उत्थित, अश्वरूपी वायुसे प्रेरित द्रोणाचार्यरूपी अनिवार्य मेघको ॥ ७ ॥

दृष्ट्वैवाभिपतन्तं तं शूरः परपुरंजयः ।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥

अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर हंसके अपने सारथिसे यह वचन कहा ॥ ८ ॥

एतं वै ब्राह्मणं क्रूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयावहम् ॥ ९ ॥

हे सारथि ! ये क्रूर स्वभाववाले ब्राह्मण अपने ब्राह्मणोचित कर्ममें स्थित नहीं है; धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनके आश्रय होकर, राजा युधिष्ठिरके दुःख और भयके बढानेवाले हैं ॥ ९ ॥

शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥

ये सब राजपुत्रोंके आचार्य हैं और सदा अपनेको शूरवीर माननेवाले हैं । तुम प्रसन्न होकर शीघ्रही वेगवान् घोडोंसे इनका सामना करनेके लिये चलो ॥ १० ॥

ततो रजतसंकाशा माधवस्य हयोत्तमाः ।
द्रोणस्याभिमुखाः शीघ्रमगच्छन्वातरंहसः ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर चांदीके समान सफेद रंगवाले और वायुके समान वेगवान् सात्यकिके उत्तम घोडे द्रोणाचार्यके सामने शीघ्रही पहुंच गये ॥ ११ ॥

इषुजालावृतं घोरमन्धकारमनन्तरम् ।
अनाधृष्यमिवान्येषां शूराणामभवत्तदा ॥ १२ ॥

अनन्तर बाणोंका जाल फैला जानेके कारण वहां घोर अन्धकार छा गया था; तब दूसरे शूर वीरोंका वहां जाना अशक्यसा हो गया ॥ १२ ॥

ततः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ।
नान्तरं शरवृष्टीनां दृश्यते नरसिंहयोः । ॥ १३ ॥

शीघ्र अस्त्र चलानेकी विद्याको जाननेवाले दोनों नरसिंह द्रोणाचार्य और सात्यकिके बाणवृष्टिमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता था ॥ १३ ॥

इषूणां संनिपातेन शब्दो धाराभिघातजः ।
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ॥ १४ ॥

केवल इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रकी गडगडाहटके समान, उनके धनुषोंसे छूटे हुए बाणोंके परस्पर टकरानेसे उनकी धारोंके आघातसे उत्पन्न होनेवाला शब्द ही चारों ओर सुनाई देने लगा ॥ १४ ॥

नाराचैरतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ।
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! नाराचोंसे अत्यंत विद्ध हुए बाणोंका स्वरूप विषधर सर्पोंके डसे हुए सर्पोंके समान दीखता था ॥ १५ ॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषो व्यश्रूयत सुदारुणः ।
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव ॥ १६ ॥

उन दोनों शूरवीरोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कारका शब्द इस प्रकार सुनाई देने लगा, जैसे पर्वतोंके शिखरोंके ऊपर सतत वज्रसे आघात किया जा रहा है ॥ १६ ॥

उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाश्वास्तौ च सारथी ।
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ॥ १७ ॥

राजन् ! उन दोनोंके रथ, सारथि और घोडे सुवर्ण भूषित पंखवाले बाणोंसे विद्ध होनेसे विचित्र रूपके दीखने लगे ॥ १७ ॥

निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशां पते ।
निर्मुक्ताशीविषाभानां संपातोऽभूत्सुदारुणः ॥ १८ ॥

पृथ्वीपते ! केंचुलीसे बाहेर निकले हुए सर्पोंके समान निर्मल और सीधे चलनेवाले चोखे नाराचोंसे महा दारुण शब्द होने लगा ॥ १८ ॥

उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ।
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ॥ १९ ॥

दोनोंको अपने अपने विजयकी अभिलाषा थी, दोनोंहीके छत्र और ध्वज कट कर गिर गये, तथा दोनोंहीका शरीर रुधिरसे परिपूरित हो गया ॥ १९ ॥

स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ।
अन्योन्यमभिविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ॥ २० ॥

दोनोंके शरीरोंसे रुधिर बहने लगा, उस समय वे दोनों ही वीर मदच्युत हुए मतवारे हाथीकी भांति युद्ध करते हुए आपसमें एक दूसरेको प्राणान्तकारी तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ २० ॥

गर्जितोत्क्रुष्टसंनादाः शङ्खदुन्दुभिनिस्वनाः ।
उपारमन्महाराज व्याजहार न कश्चन ॥ २१ ॥

महाराज ! उस समय शूरवीरोंके तर्जन, गर्जनके शब्द, सिंहनाद शब्द और शंख नगाडे आदि बाजोंके सब घोष एकदम बंद हो गये । उस समय किसीके मुखसे कुछ वचन न निकलता था ॥ २१ ॥

तूष्णींभूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ।
ददृशे द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ॥ २२ ॥

सब सेनाएं चूप हो गयी थीं, योद्धा लोग युद्धसे विमुख हुए थे, सम्पूर्ण पुरुष कौतुहलवश उन दोनोंके द्वैरथ युद्धको देखने लगे ॥ २२ ॥

रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ।
अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य रथर्षभौ ॥ २३ ॥

रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल सेनाके शूरवीर योद्धा लोग चारों ओरसे उन दोनों रथिश्रेष्ठोंको घेर कर एकटक नेत्रोंसे उनका आश्चर्यमय युद्ध देखने लगे ॥ २३ ॥

हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनाम् ।
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ॥ २४ ॥

हाथियोंकी सेनाएं, घुडसवार सैनिक और रथियोंकी सेनाएं व्यूहबद्ध होकर रणभूमिमें स्थिर भावसे खडी होके उन दोनोंका संग्राम अवलोकन करने लगीं ॥ २४ ॥

मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ।
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ॥ २५ ॥

मणि और सुवर्णसे भूषित तथा मोती और रत्नोंसे चित्रित सुन्दर ध्वज, विचित्र आभूषण, सुवर्णमय कवच ॥ २५ ॥

वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ।
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ॥ २६ ॥

वैजयन्ती पताका, हाथियोंके झूल और कम्बल, शिलापर घिसे हुये प्रकाशमान् चोखे अस्त्र-शस्त्र, घोडोंपर लटकते हुये चंवर, ॥ २६ ॥

जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्धसु ।
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ॥ २७ ॥

हाथियोंके कुम्भस्थलोंमें और मस्तकोंपर शोभित होनेवाली सुवर्ण-चांदी युक्त रत्न जटित मालाएं और उनके दांतोंके आभूषण ॥ २७ ॥

सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ।
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ॥ २८ ॥

इन सम्पूर्ण वस्तुओंके कारण दोनों सेनाएं वर्षाकालमें बकपांतिसे युक्त, खद्योतश्रेणीके सहित, ऐरावत हाथी और बिजलियोंसे युक्त बादलोंकी भांति दीखती थीं ॥ २८ ॥

अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ।
तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ २९ ॥

राजन् ! महात्मा द्रोणाचार्य और सात्यकिके उस युद्धको हमारी और युधिष्ठिरकी सेनाके योद्धा लोग रणभूमिमें खडे होकर देखने लगे ॥ २९ ॥

विमानाग्रगता देवा ब्रह्मशक्रपुरोगमाः ।
सिद्धचारणसंघाश्च विद्याधरमहोरगाः ॥ ३० ॥

आकाशमण्डलमें विमानों पर चढे हुए ब्रह्मा और चन्द्रमा आदि देवता, सिद्ध और चारणोंके समूह, विद्याधर और बडे बडे सर्प भी वहां युद्ध देखनेके लिये आये थे ॥ ३० ॥

गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैः शस्त्रविघातिभिः ।
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ३१ ॥

वे सब लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंके शस्त्र चलानेकी तथा नाना प्रकारकी शस्त्र गति, निवारण करनेकी प्रक्रिया और युद्ध विषयक निपुणता देखकर विस्मित होगये ॥ ३१ ॥

हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ।
अन्योन्यं समविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ॥ ३२ ॥

महाबली अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्य और सात्यकि अस्त्रविषयक हस्तलाघव दिखाते हुए एक दूसरेको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ।
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युते ॥ ३३ ॥

वृष्णिवंशी सात्यकिने अपने पंखयुक्त सुदृढ तीक्ष्ण-बाणोंसे महातेजस्वी द्रोणाचार्यके धनुष और बाणोंको युद्धमें शीघ्रही काट दिया ॥ ३३ ॥

निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ।
सज्यं चकार तच्चाशु चिच्छेदास्य स सात्यकिः ॥ ३४ ॥

अनन्तर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने क्षणभरके बीच दूसरा धनुष लेकर उसपर रोदा चढा लिया; परंतु सात्यकिने उस ही समय उनके उस धनुषको भी काट दिया ॥ ३४ ॥

ततस्त्वरन्पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ।
सज्यं सज्यं पुनश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥

तब द्रोणाचार्य फिर अत्यंत शीघ्रतासे दूसरा धनुष हाथमें लेकर खडे हो गए; परंतु जब वे धनुष पर रोदा चढाते थे, सात्यकि उस ही समय अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके धनुषको काट देते थे ॥ ३५ ॥

ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ।
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसेदमचिन्तयत् । ॥ ३६ ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें सात्यकिका अलौकिक पराक्रम देखकर अपने मनही मन इसप्रकार विचार किया ॥ ३६ ॥

एतदस्त्रबलं रामे कार्तवीर्ये धनंजये ।
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ॥ ३७ ॥

यदुकुलभूषण श्रेष्ठ सात्यकिमें जिस भांति यह अस्त्रबल दिखायी देता है, वैसा तो परशुराम, कार्त्तवीर्य अर्जुन, धनंजय और पुरुषसिंह भीष्ममें ही देखा और सुना गया है ॥ ३७ ॥

तं चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ।
लाघवं वासवस्येव संप्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ॥ ३८ ॥

द्रोणाचार्यने मनही मन सात्यकिके पराक्रमकी प्रशंसा की । द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने देवराज इन्द्रके समान सात्यकिका हस्तलाघव देखा ॥ ३८ ॥

तुतोषास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ।
न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रकारिणः ॥ ३९ ॥

और अस्त्रवेत्ताओमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और इन्द्र सहित सब देवता प्रसन्न हुए; उन्होंने शीघ्र अस्त्र चलानेवाले सात्यकिका ऐसा हस्तलाघव पहिले कभी नहीं देखा था ॥ ३९ ॥

देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशां पते ।
सिद्धचारणसंघाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ॥ ४० ॥

पृथ्वीनाथ ! देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण गणोंने सात्यकिकी उस फूर्तीको पहिले कभी नहीं देखा था, केवल द्रोणाचार्यके वैसे अद्भुत कर्मको वे सब कोई जानते थे ॥ ४० ॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ॥ ४१ ॥

हे भारत ! अनन्तर क्षत्रियोंके नाश करनेवाले, सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्य दूसरा धनुष लेकर अस्त्रयुद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहन्य स सात्यकिः ।
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥

सात्यकिने अपने अस्त्रोंकी मायासे उनके अस्त्रोंका निवारण करके उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया, उस समय वह अद्भुत सी बात हुई ॥ ४२ ॥

तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे ।
युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ॥ ४३ ॥

युद्धभूमिमें सात्यकिका ऐसा युक्तियुक्त, अद्वितीय और अलौकिक कर्म देखके तुम्हारी ओरके युद्धशास्त्र विशारद योद्धा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४३ ॥

यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवास्यति सात्यकिः ।
तमाचार्योऽप्यसंभ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्य जिस अस्त्रको चलाते थे, सात्यकि भी उस ही अस्त्रको चलाकर उनके अस्त्रका निवारण करते थे। शत्रुनाशन द्रोणाचार्य भी निर्भय चित्तसे उनके संग युद्ध करते रहे ॥ ४४ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ।
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ४५ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर धनुर्वेद विद्या जाननेवाले द्रोणाचार्यने सात्यकिके वधके लिए एक दिव्य अस्त्र प्रकट किया ॥ ४५ ॥

तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ।
अस्त्रं दिव्यं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ॥ ४६ ॥

महाधनुर्धर सात्यकिने भी शत्रुओंका नाश करनेवाले उस महा भयंकर आग्नेय अस्त्रको देखकर दिव्य वारुणास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४६ ॥

हाहाकारो महानासीद्दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ।
न विचेरुस्तदाकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ॥ ४७ ॥

उन दोनोंको दिव्य अस्त्र ग्रहण किये हुए देखकर वहां महान् हाहाकार मच गया। उस समय आकाशमें आकाशचारी प्राणी भ्रमण नहीं कर सके ॥ ४७ ॥

अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ।
न तावदभिषज्येते व्यावर्तंदथ भास्करः ॥ ४८ ॥

उन दोनों पुरुषोंने आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्रको अपने बाणोंमें स्थापित किया, परन्तु उनको चलाया नहीं । उस समय सूर्य पश्चिम दिशाकी ओर गमन कर रहे थे ॥ ४८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ॥ ४९ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिर, पाण्डुपुत्र भीमसेन, नकुल और सहदेव सात्यकिकी रक्षा करने लगे ॥ ४९ ॥

धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ।
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ॥ ५० ॥

धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके सहित विराट, केकय, मत्स्य और शाल्वदेशी सेनाके शूरवीरोंको सङ्ग लेकर सहसा द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुए ॥ ५० ॥

दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ।
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ॥ ५१ ॥

सहस्रों राजपुत्र योद्धा लोग दुःशासनको आगे करके शत्रुओंके बीचमें घिरे हुए द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेके निमित्त उनके पास आ पहुंचे ॥ ५१ ॥

ततो युद्धमभूद्राजंस्तव तेषां च धन्विनाम् ।
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ॥ ५२ ॥

हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर पाण्डवोंके और तुम्हारी ओरके धनुर्द्धारी योद्धाओंका परस्पर घोर युद्ध होने लगा । उस समय सम्पूर्ण लोग धूलिसे परिपूर्ण और बाण समूहोंसे आच्छादित हो गये ॥ ५२ ॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किंचन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्तत ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ २९८३ ॥

सेनाके पुरुषोंको कुछ भी उस समय नहीं सूझ पडता था । सम्पूर्ण योद्धा व्याकुल होकर मर्यादारहित युद्ध करने लगे । उस समय उडायी हुई धूलिके कारण आंखसे कुछ भी नहीं दीख पडता था ॥ ५३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ २९८३ ॥

: ७४ :

सञ्जय उवाच

परिवर्तमाने त्वादित्ये तत्र सूर्यस्य रश्मिभिः ।
रजसा कीर्यमाणाश्च मन्दीभूताश्च सैनिकाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! सूर्य अपनी किरणोंके सहित अस्ताचलकी ओर जा चुके थे, और धूलसे आवृत होनेके कारण सब सैनिक मन्द हो गये थे ॥ १ ॥

तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥

सेनाके शूरवीर योद्धा लोगोंमेंसे कोई खडे थे, कोई युद्ध करते थे, कोई भागकर फिर वापस आते थे और कोई विजयी हो रहे थे । इसी प्रकार धीरे धीरे उस दिनका समय बीतने लगा ॥ २ ॥

तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥

दोनों सेनाओंके शूरवीर योद्धा विजयकी अभिलाष करके महा घोर युद्ध कर रहे थे, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण सिन्धुराज जयद्रथके समीप जानेकी इच्छासे सेनाके बीच प्रवेश करते हुए आगे गमन कर रहे थे ॥ ३ ॥

रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण जिस ओर अर्जुनके रथको चलाते थे, अर्जुन उस ही ओर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा कर रथके गमन करने योग्य मार्ग बना देते थे ॥ ४ ॥

यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशां पते ॥ ५ ॥

पृथ्वीपते ! महात्मा अर्जुनका रथ जिस ओरसे गमन करता था, उस ही ओर सेनाके योद्धा लोग उनके बाणोंसे तितरबितर होने लगते थे ॥ ५ ॥

रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् ।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥

दाशार्हनन्दन पराक्रमी श्रीकृष्ण उत्तम, मध्यम और मन्दरीतिसे मण्डलाकार गतिविशेषसे रथको चलाते हुए रथ चलानेकी निपुणता प्रकाशित करने लगे ॥ ६ ॥

ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसंनिभाः ।
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः　　　　॥ ७ ॥

अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाण उनके नामसे अंकित, चोखे, प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर, तांतमें बंधे हुए, सुंदर पंखवाले, मोटे, दूर पर्यन्त गमन करनेवाले थे ॥ ७ ॥

वैणवायस्मयशराः स्वायता विविधाननाः ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे　　　　॥ ८ ॥

कुछ बाण बांसके बने हुए थे और कुछ लोहेके; वे सुदीर्घ और अनेक प्रकारके मुखवाले थे; वे पक्षियोंके साथ उडकर युद्धमें प्राणियोंका रुधिर पीते थे ॥ ८ ॥

रथस्थितः क्रोशमात्रे यानस्यत्यर्जुनः शरान् ।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान्　　　　॥ ९ ॥

रथपर बैठे हुए अर्जुन एक कोसकी दूरीतक शत्रुसेनाके ऊपर बाण चलाते थे, रथ चलनेके मार्गको एक कोस तक उल्लङ्घन करके जाते तब वे सम्पूर्ण बाण शत्रुओंका संहार करते हुए पृथ्वीमें गिरते थे ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाहिभिः ।
तथागच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत्　　　　॥ १० ॥

श्रीकृष्ण शीघ्रताके सहित गरुड और वायुके समान वेगशील, अच्छी प्रकारसे वहन करनेवाले अर्जुनके रथके घोडोंको चलाकर युद्धभूमिमें सम्पूर्ण जगत्को विस्मित करते हुए गमन करने लगे ॥ १० ॥

न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशां पते ।
नेन्द्रस्य न च रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च　　　　॥ ११ ॥

पृथ्वीपते ! सूर्य, इन्द्र, रुद्र और कुबेरका रथ भी उस तीव्र गतिसे गमन नहीं करता था, जैसे अर्जुनका चलता था ॥ ११ ॥

नान्यस्य समरे राजन्गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोऽभिप्रायशीघ्रगः　　　　॥ १२ ॥

महाराज ! मनकी इच्छाके समान शीघ्र गमन करनेवाला अर्जुनका रथ जिस प्रकारसे वेगपूर्वक युद्धभूमिमें गमन करने लगा; उसी प्रकार युद्धभूमिमें दूसरे किसीका रथ पहले कभी तीव्र गतिसे नहीं चला था ॥ १२ ॥

प्रविश्य तु रणे राजन्केशवः परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत　　　　॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र ! भारत ! शत्रुवीरनाशन श्रीकृष्ण संग्रामभूमिमें शत्रुओंकी सेनाके बीच प्रवेश करके रथके घोडोंको शीघ्रताके सहित चलाने लगे ॥ १३ ॥

×

ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासाश्रमान्विताः ॥ १४ ॥

अनन्तर अर्जुनके रथके वे उत्तम घोडे युद्धभूमिमें रथियोंके समूहके मध्यमें पहुंचकर, भूख, प्यास और श्रमसे पीडित होकर बडी कठिनतासे रथका भार वहन कर सकते थे ॥ १४ ॥

क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

युद्धप्रवीण योद्धाओंने नाना प्रकारके शस्त्रोंसे उन्हें अनेक बार विद्ध किया और वे क्षतविक्षत हो बार बार विचित्र मण्डलाकार गतिसे भ्रमण करने लगे ॥ १५ ॥

हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥

मरे हुए सहस्रों पर्वतके समान हाथी, घोडे, रथ तथा मनुष्योंको ऊपरही ऊपर उल्लङ्घन करते हुए वे अर्जुनके घोडे गमन करते थे; ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥

महाराज ! उसही समय महापराक्रमी अवन्तिराज दोनों भाई विन्द और अनुविन्दने अपनी सेनाको सङ्ग लेकर थके हुए रथके घोडोंसे युक्त अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ १७ ॥

तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम् ।
शराणां च शतेनाश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥

उन दोनों भाइयोंने हर्षित होकर चौसठ बाणोंसे अर्जुन, सत्तर बाणोंसे श्रीकृष्ण और सौ बाणोंसे उनके रथके घोडोंको विद्ध किया ॥ १८ ॥

तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥

मर्मको जाननेवाले अर्जुनने क्रुद्ध होकर मर्मभेदी नौ तीक्ष्ण बाणोंसे उन दोनों वीरोंको युद्धमें विद्ध किया ॥ १९ ॥

ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम् ।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च नेदतुः ॥ २० ॥

अनन्तर उन दोनों वीरोंने क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण सहित अर्जुनको अपने बाणसमूहोंसे छिपाकर सिंहनाद किया ॥ २० ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः ।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥

परन्तु श्वेतवाहन अर्जुनने समरमें दो भल्लोंसे उन दोनोंके विचित्र धनुष और सुवर्णभूषित प्रकाशमान उनके रथकी दोनों ध्वजाओंको शीघ्रही काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २१ ॥

अथान्ये धनुषी राजन्प्रगृह्य समरे तदा ।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥

हे राजन् ! वे दोनों भ्राता युद्धमें अत्यन्त क्रुद्ध होके दूसरे धनुष ग्रहण कर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको पीडित करने लगे ॥ २२ ॥

तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः ।
चिच्छेद धनुषी तूर्णं भूय एव धनंजयः ॥ २३ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुनने भी अत्यन्त क्रुद्ध होके तुरंत ही दो बाण मारकर उन दोनोंके धनुषोंको फिर काट दिया ॥ २३ ॥

तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
जघानाश्वान्सपदातांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २४ ॥

फिर शिलापर घिसे हुए सुवर्णमय पंखवाले दूसरे तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके घोडे, सारथि और पृष्ठरक्षक योद्धाओंका शीघ्रही संहार किया ॥ २४ ॥

ज्येष्ठस्य च शिरः कायात्क्षुरप्रेण न्यकृन्तत ।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर एक क्षुरप्र बाणसे बडे भाई विन्दके शिरको धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । विन्द मर कर मानो वायुके वेगसे टूटे हुए वृक्षके समान पृथ्वी पर गिर पडा ॥ २५ ॥

विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा अनुविन्दः प्रतापवान् ।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥

विन्दको मारा गया देख महाबलवान् प्रतापी अनुविन्दने घोडोंसे रहित रथको त्यागकर हाथमें गदा लेली ॥ २६ ॥

अभ्यद्रवत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ।
गदया गदिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥

अपने भाईके बधका बारंबार चिन्तन करता हुआ, गदाधारी योद्धाओंमें श्रेष्ठ महारथी अनुविन्द मानो गदा धारण करके नृत्य करते हुए अर्जुनकी ओर दौडे ॥ २७॥

अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् ।
स्पृष्ट्वा नाकम्पयत्क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥

अनन्तर क्रोधित अनुविन्दने उस गदासे श्रीकृष्णके ललाटमें प्रहार किया; परन्तु गदाके प्रहारसे अनुविन्द श्रीकृष्णको मैनाक पर्वतके समान विचलित नहीं कर सका ॥ २८ ॥

तस्यार्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः ।
निचकर्त स सञ्छिन्नः पपाताद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने छः बाणोंसे अनुविन्दकी गर्दन, दोनों पांव और हाथ तथा शिरको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया; अनुबिन्द अर्जुनके बाणोंसे छिन्नभिन्न होकर पर्वत समूहके समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥ २९ ॥

ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन्पदानुगाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान् ॥ ३० ॥

राजन् ! अनन्तर उन दोनों भाइयोंको मारा गया देखकर उनके अनुयायी योद्धा लोग अत्यन्त क्रोधपूर्वक सैकडों बाणोंको चलाते हुए अर्जुनकी ओर दौडे ॥ ३० ॥

तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनका संहार करके मानो, हेमन्त ऋतुके अन्तमें बनको भस्म करनेवाले दावाग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ ३१ ॥

तयोः सेनामतिक्रम्य कृच्छ्रान्निर्यद्धनंजयः ।
विबभौ जलदान्भित्त्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥

अनन्तर जैसे सूर्य बादलोंके समूहको भेद करके उदित होते हैं, वैसे ही अर्जुन विन्द–अनुविन्दकी सेनाको अत्यन्त कष्टसे अतिक्रम करके सेनाके बीच प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन्पुनः ।
अभ्यवर्षंस्तदा पार्थं समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

हे भारत ! अर्जुनको देखकर कुरुसेनाके वीर योद्धा पहले तो भयभीत हुए; फिर हर्षित होकर उन्होंने चारों ओरसे अर्जुन पर बाणोंकी वर्षा आरंभ की ॥ ३३ ॥

श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम् ।
सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥

उन सम्पूर्ण योद्धाओंने अर्जुनको थके हुए और सिन्धुराज जयद्रथको उनसे बहुत दूर स्थित देख कर महान् सिंहनाद करके उन्हें सब ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन्पुरुषर्षभः ।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

पुरुष श्रेष्ठ अर्जुनने उन समस्त वीरोंको अत्यन्त क्रुद्ध हुए देखकर हंसके श्रीकृष्णसे धीरे धीरे यह बचन बोले ॥ ३५ ॥

शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः ।
किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मेरे सब घोडे बाणोंसे विद्ध होकर थक गये हैं, और सिन्धुराज जयद्रथ भी अब बहुत दूर है, तो इस समय यहां कौनसा कार्य आपको श्रेष्ठ लगता है ? ॥ ३६ ॥

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून्विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! आपही सदा सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं; इसलिये मुझे उचित कार्य बताइये । आपको स्वामी बनाकर ही इस युद्धमें पाण्डव अपने शत्रुओंको जीतेंगे ॥ ३७ ॥

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्संनिबोध मे ।
हयान्विमुच्य हि सुखं विशल्यान्कुरु माधव ॥ ३८ ॥

माधव ! मैं जो इस समय कर्त्तव्य कर्मका विचार करता हूं, वह बताता हूं, आप उसे सुनिये । घोडोंको रथसे खोलकर इन्हें सुख देनेके लिये उनके शरीरसे बाण निकाल दीजिये ॥ ३८ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥

जब अर्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब श्रीकृष्ण उन्हें इस प्रकार बोले, हे अर्जुन ! तुमने जो इस समय कहा है, उसमें मेरी भी सम्मति है ॥ ३९ ॥

अर्जुन उवाच

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥

अर्जुन बोले, हे केशव ! तुम भी इस ही स्थानमें इस समय योग्य कार्यको पूर्ण करो, मैं सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको रोक रखूंगा ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसंभ्रान्तो धनंजयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४१ ॥

सञ्जय बोले, अर्जुन निर्भय चित्तसे रथकी बैठक परसे नीचे उतरे और गाण्डीव धनुष चढाये हुए अचल रूपसे पर्वतके समान पृथ्वी पर खडे हुए ॥ ४१ ॥

तमभ्यधावन्क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकाङ्क्षिणः ।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनंजयम् ॥ ४२ ॥

जब अर्जुन पृथ्वी पर खडे हुए, तब तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग यह उत्तम अवसर है ऐसा देखकर विजयकी अभिलाषासे सिंहनाद करते हुए उनकी ओर दौडे ॥ ४२ ॥

तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥
उन सम्पूर्ण योद्धाओंने महान् रथोंके समूहसे अकेले अर्जुनको घेर कर, धनुष खींचकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरंभ की ॥ ४३ ॥

अस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
क्रुद्ध हुए कौरव सैनिक वहां विचित्र अस्त्रोंको प्रकाशित करते हुए और बाणोंसे अर्जुनको आच्छादित करने लगे; जैसे बादल सूर्यको छिपा देते हैं ॥ ४४ ॥

अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
रथसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥
जैसे बहुतसे मतवारे हाथी एक सिंह पर आक्रमण करनेके लिये दौडते हैं, वैसे ही वे श्रेष्ठ रथी क्षत्रिय योद्धा लोग क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर वेगपूर्वक दौडे ॥ ४५ ॥

तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत ।
यत्क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥ ४६ ॥
उस ही समय अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महान् बल दीख पडा, कि उन्होंने अकेलेही क्रुद्ध होकर चारों ओरसे सेनाके बहुतसे शूरवीर योद्धाओंका निवारण किया ॥ ४६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥
पराक्रमी अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्रोंको सब ओरसे निवारण करके, हस्तलाघवके सहित अनेक बाणोंकी वर्षा करके उन सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने बाणोंके जालसे शीघ्र ही छिपा दिया ॥ ४७ ॥

तत्रान्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशां पते ।
संघर्षेण महार्चिष्मान्पावकः समजायत ॥ ४८ ॥
हे प्रजानाथ ! उस समय आकाशमण्डलमें ठसाठस भरे अनेक बाणोंकी रगडसे भारी ज्वालाओंसे युक्त अग्नि उत्पन्न होने लगी ॥ ४८ ॥

तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
हयैर्नागैश्च संभिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्शनैः ॥ ४९ ॥
तदनन्तर सर्वत्र वेगसे सांस लेते और रुधिरसे भरे हुए महाधनुर्धर योद्धा, अर्जुनके शत्रुनाशक बाणोंसे क्षत विक्षत हो, चीत्कार करते हुए हाथी और घोडे ॥ ४९ ॥

संरब्धैश्चारिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥

युद्धमें विजयकी इच्छा करके रोषमें भरकर एक जगह क्रुद्ध होकर खडे हुए शत्रुओंके अनेक वीरोंकी भीडसे वहां गर्मीसी होने लगी ॥ ५० ॥

शरोर्मिणं ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिस्वनम् ॥ ५१ ॥
असंख्येयमपारं च रजोऽऽभीलमतीव च ।
उष्णीषकमठच्छन्नं पताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
रथसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥

उस समय उन सम्पूर्ण इकट्ठे हुए रथियोंका समूह समुद्रके समान शोभित होने लगा । इस दुर्लंघ्य रथसेनारूपी समुद्रमें बाणोंके वेग तरङ्ग, ध्वजा भंवर, हाथी ग्राह, पैदल सेनाके योद्धा लोग मत्स्य और कीचड, शङ्खनगाडे आदि बाजोंके शब्द ही समुद्रकी लहरोंका गर्जन, अत्यंत भयंकर धूलिसे युक्त योद्धाओंकी पगडी कछुवे, छत्र और पताका फेन और हाथियोंके शरीर ही पत्थरके टुकडे रूपसे बोध होने लगे । अर्जुन तटरूपी होकर उस महा भयंकर अपरम्पार दुर्लंघ्य और अक्षोभ्य रथसेनारूपी महासमुद्रको अपने बाणोंके बलसे निवारण करने लगे ॥५१–५३॥

ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
असंभ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

अनन्तर महाबाहु श्रीकृष्ण संभ्रम रहित चित्तसे अपने प्रिय सखा पुरुषसत्तम अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ ५४ ॥

उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेऽर्जुन ।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५५ ॥

हे अर्जुन ! यहां घोडोंके लिये यथेष्ट पानी नहीं है; ये पीनेके लिये योग्य पानी चाहते हैं; ये स्नानकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ५५ ॥

इदमस्तीत्यसंभ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५६ ॥

अर्जुनने निर्भयचित्तसे ' यहीं तैयार है, इनके पीनेके लिये पानी ' ऐसा वचन कहकर क्षणभरके बीच पृथ्वीपर अपने अस्त्रसे प्रहार करके घोडोंके पीने योग्य अगाध जलसे युक्त एक बहुत उत्तम तालाबको रणभूमिमें उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥

शरवंशं शरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
शरवेश्माकरोत्पार्थस्त्वष्टेवाद्भुतकर्मकृत् ॥ ५७ ॥

विश्वकर्माके समान अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने बाणोंका एक अद्भुत मनोहर घर बना दिया; उसमें बाणोंके बास, बाणोंके खम्भे और बाणोंकाही छप्पर था ॥ ५७ ॥

ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाब्रवीत् ।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन्महारणे ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ३०४१ ॥

जब अर्जुनने उस महारणभूमिमें अपने बाणोंके प्रतापसे बाणमय घर तैयार किया, तब श्रीकृष्ण हंसकर ' धन्य धन्य ' कहके उनके कर्मोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५८ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ ३०४१ ॥

: ७५ :

सञ्जय उवाच

सलिले जनिते तस्मिन्कौन्तेयेन महात्मना ।
निवारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! महात्मा कुन्तीपुत्र अर्जुनने जब उस ही स्थानपर जल उत्पन्न कर दिया, शत्रुओंकी सेनाको रोक दिया और बाणोंका सुन्दर घर बना दिया ॥ १ ॥

वासुदेवो रथात्तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः ।
मोचयामास तुरगान्वितुन्नान्कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥

तब महा तेजस्वी श्रीकृष्णने शीघ्रही रथसे उतर कर कंकपत्र युक्त बाणोंसे विद्ध हुये घोडोंको खोल दिया ॥ २ ॥

अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा सिंहनादो महानभूत् ।
सिद्धचारणसंघानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥

पहिले कभी भी जो कर्म देखनेमें नहीं आया था, उस अलौकिक कार्यको देखकर सिद्ध, चारण और सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग सब ओरसे महान् सिंहनाद करने लगे ॥ ३ ॥

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं नरर्षभाः ।
नाशक्नुवन्वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

अर्जुनके पृथ्वीपर खडे होकर युद्ध करनेपर भी नरश्रेष्ठ योद्धा लोग उन्हें रोक न सके, वह एक अद्भुतसी घटना हुई ॥ ४ ॥

आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नासंभ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥

रथियोंके समूह और अनेक घोडे–हाथियोंके झुण्डने उनपर आक्रमण किया; तोभी अर्जुनके चित्तमें तनिक भी भय उत्पन्न नहीं हुआ; यह उनका धैर्य सब पुरुषोंसे बढकर था ॥ ५ ॥

व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥

सब राजा लोग इकट्ठे होकर शत्रु वीरनाशन इन्द्रपुत्र अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे । तोभी धर्मात्मा अर्जुन दुःखित नहीं हुए ॥ ६ ॥

स तानि शरजालानि गदाः प्रासांश्च वीर्यवान् ।
आगतानग्रसत्पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥

पराक्रमी अर्जुनने उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके गदा, प्रास और बाणोंके समूहोंको अपने पास आनेपर इस प्रकार ग्रस लिया, जैसे नदियां समुद्रमें पहुंच कर फिर आगे नहीं देख पडतीं ॥ ७ ॥

अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्तान्शरोत्तमान् ॥ ८ ॥

अर्जुनने अपनी भुजाओंके बल और अस्त्रोंके महान् वेगसे सम्पूर्ण श्रेष्ठ राजाओंके चलाये हुए उत्तम बाणोंको नष्ट किया ॥ ८ ॥

तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन्महाराज कौरवाः परमाद्भुतम् ॥ ९ ॥

महाराज ! कौरव लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंके उस परम अद्भुत पराक्रमकी अत्यंत प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥

किमद्भुततरं लोके भवितास्यथ वाप्यभूत् ।
यदश्वान्पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनने रणभूमिके बीच अपने घोडोंको रथसे पृथक् करके शल्य निकाला और उन्हें जल पिलाया है, जगतमें इस प्रकारका अद्भुत कार्य क्या कभी फिर दीख पडेगा, वा कभी ऐसा हुआ था ? ॥ १० ॥

भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

इन दोनों पुरुषसिंहोंने हम लोगोंके चित्तमें अत्यन्त ही भय उत्पन्न किया है और रणभूमिके बीच निर्भय होके अपने प्रचण्ड तेजको धारण किया है ॥ ११ ॥

×

अथोत्स्मयन्हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तदा ॥ १२ ॥

हे भारत ! श्रीकृष्णने हंस कर निर्भय चित्तसे युद्धभूमिमें अर्जुनके बनाये हुए बाणोंके घरमें घोडोंको लेकर इस प्रकारसे गमन किया, जैसे पुरुष स्त्रियोंके बीच अपने घरमें प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान्पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशां पते ॥ १३ ॥

पृथ्वीपते ! कमल नेत्रवाले श्रीकृष्णने तुम्हारी संपूर्ण सेनाके देखते देखते अव्यग्र चित्तसे उन घोडोंको धीरे धीरे फिराया ॥ १३ ॥

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वेपथुं वमथुं व्रणान् ।
सर्वं व्यपानुदत्कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥

घोडोंके सम्पूर्ण चिकित्सा कार्योंके जाननेवाले श्रीकृष्णने घोडोंके परिश्रम, थकावट, कम्पन, वमन और घाव– सब कष्टोंको दूर किया ॥ १४ ॥

शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान्हयान् ।
उपावृत्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥

उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे घोडोंके शरीरसे बाण बाहर निकालकर उनको मला और यथा योग्य रीतिसे घोडोंको इधर उधर घुमाकर जल पिलाया ॥ १५ ॥

स ताँल्लब्धोदकान्स्नाताञ्जग्धान्नान्विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने पानी पिलाकर उन्हें नहलाके साफ किया; उन्हें उनके खाने योग्य वस्तुओंको–घास और दाने–खिलाया; तब उनकी सारी थकावट दूर हो गयी; तब श्रीकृष्णने अर्जुनके उस श्रेष्ठ रथमें उन घोडोंको प्रसन्नतासे फिर जोत दिया ॥ १६ ॥

स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥

अनन्तर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महा तेजस्वी श्रीकृष्ण अर्जुनके सहित उस उत्तम रथ पर चढके वेगसे आगे बढे ॥ १७ ॥

रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥

रथियोंमें मुख्य अर्जुनके रथमें युद्धमें पानी पिलाकर स्वस्थ किये हुए घोडोंको फिर जुते हुए देख कर कुरुसेनाके श्रेष्ठ योद्धा लोग फिर व्याकुल हो गये ॥ १८ ॥

विनिःश्वसन्तस्ते राजन्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन्पृथक् ॥ १९ ॥

राजन् ! दांत टूटे हुए सर्पोंके समान लम्बी सांस छोडते हुए वे पृथक् पृथक् आपसमें कहने लगे, यह देखो, अर्जुन और श्रीकृष्ण आगे बढे जाते हैं, ओहो ! हम लोगोंको धिक्कार है ॥ १९ ॥

सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथनैकेन दंशितौ ।
बालक्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २० ॥

हम सब क्षत्रियोंके देखते देखते, हम लोगोंकी सेनाके बलका अपमान करके, एकमात्र रथसे ही, ये दोनों कवचधारी, बालक जैसे खिलौनोंसे खेलता हुआ निकल जाता है, आगे चले गये ॥ २० ॥

क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परंतपौ ।
दर्शयित्वात्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २१ ॥

हम लोग तो चिल्लाते और रोकनेके लिये प्रयत्न करते ही रह गये; परंतु कुछ नहीं हुआ । ये दोनों शत्रुतापन वीर सब राजाओंको अपना पराक्रम दिखाकर आगे बढ गये ॥ २१ ॥

तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदान्ये सैनिकाब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २२ ॥

उन दोनोंको फिर आगे बढते हुए देख दूसरे सैनिक कहने लगे– हे कौरव सैनिको ! श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेके लिये तुम सब शीघ्रताके सहित प्रयत्न करो ॥ २२ ॥

रथं युक्त्वा हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २३ ॥

क्योंकि इस समरमें श्रीकृष्ण रथको जोतकर हम सब धनुर्धारियोंके देखते देखते हम लोगोंकी अवज्ञा करके जयद्रथके समीप जानेकी इच्छासे आगे बढे जाते हैं ॥ २३ ॥

तत्र केचिन्मिथो राजन्समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद्दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २४ ॥

हे राजन् ! वहां कुछ नरेश रणभूमिके बीच श्रीकृष्ण और अर्जुनके पहिले कभी भी न देखे हुए उस अद्भुत कर्मको देखकर आपसमें कहने लगे ॥ २४ ॥

सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २५ ॥

दुर्योधनके दोषहीसे सम्पूर्ण सेनाएं और राजा धृतराष्ट्र तथा संपूर्ण क्षत्रिय लोग और पृथ्वी संकटमें फंस गये हैं ॥ २५ ॥

विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।
इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २६ ॥

सब विनाशको प्राप्त हो रहे हैं; इसे राजा धृतराष्ट्र नहीं समझ सकते हैं। भारत! इसी प्रकार वहां और बहुतेरे क्षत्रिय योद्धा लोग यह वचन भी कहने लगे ॥ २६ ॥

सिन्धुराजस्य यत्कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत्करोतु वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २७ ॥

सिन्धुराज जयद्रथके यमपुरीमें गमन करने पर जो कर्म करना योग्य है, योग्य उपायको न जाननेवाले और वृथा दृष्टिवाले दुर्योधन उन ही कार्यका अनुष्ठान करे ॥ २७ ॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात्पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
निवर्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर सूर्य पश्चिम दिशामें गमन करने लगे; पाण्डूनन्दन अर्जुन भी भूखप्याससे रहित प्रसन्न घोडोंसे युक्त अपने रथपर चढे हुए सिन्धुराज जयद्रथकी ओर शीघ्रताके सहित गमन करने लगे ॥ २८ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ २९ ॥

क्रुद्ध यमराजके समान तेजस्वी सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन जब जयद्रथकी ओर गमन कर रहे थे, उस समय कोई भी शूरवीर योद्धा उन्हें निवारण करनेमें समर्थ न हुए ॥ २९ ॥

विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान्सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३० ॥

जैसे अकेला सिंह मृगोंके झुण्डको तितर बितर कर देता है, वैसे ही शत्रुतापन पाण्डुपुत्र अर्जुन जयद्रथके लिये शत्रुसेनाके योद्धाओंको मथकर तितर बितर करते हुए आगे बढने लगे ॥३०॥

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकवर्णान्दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३१ ॥

वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णने सेनामें प्रवेश करते हुए बडे वेगसे अपने बगुलोंके समान श्वेतवर्णवाले घोडोंको आगे चलाया और अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ ३१ ॥

कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन्पृष्ठतः शराः ।
तूर्णात्तूर्णतरं ह्यश्वास्तेऽवहन्वातरंहसः ॥ ३२ ॥

वायुके समान शीघ्रगामी घोडे इतनी शीघ्रताके सहित गमन करने लगे, कि अर्जुन उस समयमें जितने बाण अगाडी चलाते थे वे सम्पूर्ण बाण उनके रथके पीछे गिरते हुए दिखाई पडते थे ॥ ३२ ॥

वातोद्धूतपताकान्तं रथं जलदनिस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥ ३३ ॥
वायुके वेगसे अर्जुनके रथकी पताका फहरा रही थी; उस रथसे बादलोंकी गर्जनाके समान शब्द हो रहा था; और ध्वजापर वानर श्रेष्ठ हनुमान् बैठे थे; उस भयंकर रथको देखकर सब रथी योद्धा भयभीत हो गये ॥ ३३ ॥

दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्ताश्च रणे योधा न कृष्णौ शेकुरीक्षितुम् ॥ ३४ ॥
उनके गमन करनेके समयमें सब ओर धूलिके उडनेसे सूर्य छिप गये; समरमें सेनाके शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए ॥ ३४ ॥

ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्जयम्
क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३५ ॥
अनन्तर क्रुद्ध हुए बहुतेरे राजा और दूसरे बहुतसे क्षत्रिय योद्धालोगोंने जयद्रथ वधकी इच्छा करनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३५ ॥

अपनीयत्सु शल्येषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनस्त्वगात्पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३६ ॥
॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ २०७७ ॥
राजा शैल्यने सहसा आक्रमण करनेपर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कुछ रुक गये, तब उस महायुद्धमें राजा दुर्योधनने शीघ्रतापूर्वक अर्जुन पर आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें पचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥ २०७७ ॥

७६

सञ्जय उवाच

स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप ।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥
सञ्जय बोले— हे राजेन्द्र ! अतिक्रमण करके आगे गये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भयभीत होने लगे ॥ १ ॥

सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः ।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन्धनञ्जयम् ॥ २ ॥
परन्तु वे सब ही महात्मा और लज्जाशील थे, इससे प्रकृतिके अनुसार प्रेरित, युद्धके लिये स्थिरचित्त होकर और क्रुद्ध होकर उन सम्पूर्ण योद्धाओंने अर्जुनके समीप गमन किया ॥२॥

ये गताः पाण्डवं युद्धे क्रोधामर्षसमन्विताः ।
तेऽद्यापि न निवर्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥ ३ ॥

जो लोग उस समय क्रोध और अमर्षके वशमें होकर अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए, वे अर्जुनके समीप पहुंचकर इस प्रकार नष्ट होगये, जैसे नदियां समुद्रमें पहुंचकर लुप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥

असन्तस्तु न्यवर्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः ।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम् ॥ ४ ॥

जैसे नास्तिक लोग वेदमें कहे हुए धर्मसे दूर रहते हैं, वैसे ही अधम पुरुष ही अर्जुनके सामने जाकर लौटे; वे नरकमें पडकर अपने पापका फल भोगेंगे ॥ ४ ॥

तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥ ५ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा राहूके मुखसे छूटकर सम्पूर्ण प्राणियोंको दिखाई देते हैं, वैसे ही वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन शूरवीरोंकी रथ सेनाको अतिक्रम करके उन सम्पूर्ण योद्धाओंसे मुक्त हुए दिखाई देने लगे ॥ ५ ॥

मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतज्वरौ ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत् ॥ ६ ॥

जैसे दो बडे मत्स्य महाजालको फाडके बाहर निकल कर कष्ट मुक्त होते हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण और अर्जुन सेना समूहको विदीर्ण करके क्लेशरहित दिखायी देते थे ॥ ६ ॥

विमुक्तौ शस्त्रसंबाधाद्द्रोणानीकात्सुदुर्भिदात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ ७ ॥

उदित हुए प्रलयकालके दो सूर्योंके समान वे दोनों महात्मा शस्त्रोंसे परिपूर्ण, दुर्भेद्य द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त होकर दिखायी देते थे ॥ ७ ॥

अस्त्रसंबाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसङ्कटात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसंबाधकारिणौ ॥ ८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों महात्मा अस्त्र-शस्त्रोंके विघ्न तथा संकटोंसे मुक्त होकर दिखायी दे रहे थे ॥ ८ ॥

विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव ।
व्यक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव ॥ ९ ॥

वे दोनों महात्मा मानो अग्निके समान दाहक स्पर्शवाले घडियालके मुखसे मुक्त हुए दो मत्स्योंके समान शत्रुसेनाके शूरवीरोंके संमुखसे मुक्त हुए, और जैसे दो घडियाल समुद्रके जलको क्षोभित करते हैं, वैसे ही उन दोनोंने शत्रु सेनाको व्याकुल कर दिया ॥ ९ ॥

तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः ।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥ १० ॥

जिस समय वे दोनों द्रोणाचार्यकी सेनाके समीप पहुंचे थे, उस समय तुम्हारे पुत्रों और दूसरे सम्पूर्ण योद्धाओंने यह समझा था, कि ये दोनों द्रोणाचार्यके संमुखसे आगे न बढ सकेंगे ॥ १० ॥

तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती ।
नाशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥ ११ ॥

परन्तु, महाराज ! जब उन सम्पूर्ण योद्धाओंने इन दोनों महातेजस्वी पुरुषसिंहोंको द्रोणाचार्यकी सेनासे पार हुए देखा तब उन्हें सिन्धुराज जयद्रथके जीवित रहनेकी आशा नहीं रही ॥ ११ ॥

आशा बलवती राजन्पुत्राणामभवत्तव ।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो ॥ १२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! तुम्हारे पुत्रोंकी यह प्रबल आशा हो गयी थी, कि द्रोणाचार्य और कृतवर्माके हाथसे श्रीकृष्ण और अर्जुन नहीं छूटेंगे और आगे नहीं बढ सकेंगे ॥ १२ ॥

तामाशां विफलां कृत्वा निस्तीर्णौ तौ परन्तपौ ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १३ ॥

परन्तु वे दोनों शत्रुतापन वीर तुम्हारे पुत्रोंकी उस आशाको निष्फल करके द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी दुस्तर सेनासे पार हो गये ॥ १३ ॥

अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं नाशशंसिरे ॥ १४ ॥

तब उस समयमें तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंको जलती हुई अग्नियोंके समान सब सेनाको लांघकर आगे बढते देख निराश होकर सिन्धुराज जयद्रथके जीवनकी आशा छोड दी ॥ १४ ॥

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनञ्जयौ ॥ १५ ॥

शत्रुओंके भयको बढानेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन निर्भय चित्तसे गमन करते हुए जयद्रथके वध विषयक वार्तालाप आपसमें करने लगे ॥ १५ ॥

असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न नौ मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥

" वह सिन्धुराज जयद्रथको दुर्योधनकी ओरके छः महारथी वीरोंने अपने बीचमें छिपाया है; परन्तु वह हमलोगोंके नेत्रसे दिखाई देनेसे कभी हमारे संमुखसे मुक्त न हो सकेगा ॥ १६ ॥

यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाप्येनं हनिष्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥

यदि सम्पूर्ण देवताओंके सहित देवराज इन्द्र भी सिन्धुराज जयद्रथकी समरमें रक्षा करेंगे, तो भी हम दोनों इसका बध करेंगे; इस प्रकार दोनों कृष्ण आपसमें बोल रहे थे ॥ १७ ॥

इति कृष्णौ महाबाहू मिथः कथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ तत्पुत्रास्तव शुश्रुवुः ॥ १८ ॥

महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धभूमिमें सिन्धुराज जयद्रथको ढूंढते हुए इस ही प्रकारसे वार्तालाप कर रहे थे, उस समय तुम्हारे पुत्रोंने यह बात सुनी ॥ १८ ॥

अतीत्य मरुधन्वेव प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्तामरिन्दमौ ॥ १९ ॥

जैसे दो मतवाले हाथी प्यासे होके मरुभूमिको अतिक्रम करनेके पश्चात् पानी पीकर संतुष्ट होकर गमन करते हुए दीख पडते हैं, वैसे ही वे दोनों शत्रुदमन वीर शत्रुसेनाको अतिक्रम करके संतुष्ट हुए दिखाई देने लगे ॥ १९ ॥

व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्येव पर्वतान् ।
अदृश्येतां महाबाहू तथा मृत्युजरातिगौ ॥ २० ॥

जैसे सिंह, व्याघ्र और हाथी आदि जीवोंसे युक्त पर्वतोंको उल्लङ्घन करके मनुष्य प्रसन्न दीख पडते हैं, वैसे ही मृत्यु और जरासे रहित वे दोनों महाबाहु वीर तुम्हारी सेनाको लांघकर संतुष्ट दिखाई देने लगे ॥ २० ॥

तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका दृश्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वतः ॥ २१ ॥

तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग इन दोनोंके मुखवर्ण वैसे ही प्रफुल्लित देख तथा द्रोणाचार्य की सेनासे मुक्त हुए देखकर चारों ओरसे महाघोर शब्द करने लगे ॥ २१ ॥

द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२ ॥

विषधर सर्प और प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर द्रोणाचार्य और अन्य भूपालोंके हाथसे छूटकर वे दो प्रकाशमान सूर्योंके समान दीखने लगे ॥ २२ ॥

तौ मुक्तौ सागरप्रख्याद्द्रोणानीकादरिन्दमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥ २३ ॥

समुद्रके समान अपार द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त हुए वे दोनों शत्रुनाशन वीर अत्यंत आनंदित दीखते थे, मानो महासागर पार कर गये हों ॥ २३ ॥

शस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितान् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥
वे दोनों पुरुषसिंह द्रोणाचार्य और कृतवर्मा रक्षित महान् शस्त्रसमुदायसे मुक्त होकर, युद्धमें इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २४ ॥

उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाचलौ ॥ २५ ॥
वे दोनों द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण बाणोंसे क्षतविक्षत शरीर और रुधिरसे युक्त होके, कर्णिकार पुष्पसे शोभित हुए दो पर्वतोंके समान प्रकाशित हुए ॥ २५ ॥

द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसङ्कटात् ।
अयःशरोग्रमकरात्क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥
और मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धारूपी जल, शक्तिरूपी विषधर सर्प, लोहमय बाणरूपी भयंकर मकर, और द्रोणाचार्य रूपी ग्राहसे युक्त शत्रुसेना रूपी ह्रदसे पार होकर प्रकाशित होने लगे ॥ २६ ॥

ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद्गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥ २७ ॥
जैसे सूर्य और चन्द्रमा अन्धकारसे मुक्त होते हैं, वैसे ही वे दोनों महात्मा गदा, तलवाररूपी बिजली, धनुषकी टंकाररूपी मेघ गर्जनसे युक्त द्रोणाचार्यके अस्त्ररूपी बादलसे मुक्त हुए ॥ २७ ॥

बाहुभ्यामिव सन्तीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥
बडे ग्राहोंसे युक्त वर्षाकालकी जलसे परिपूर्ण सिन्धु आदि छः नदियोंको अपने भुजाओंके बलसे तैरकर पार किया ऐसा लगता था ॥ २८ ॥

इति कृष्णौ महेष्वासौ यशसा लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलविस्मयात् ॥ २९ ॥
इस प्रकार द्रोणाचार्यके अस्त्र-बलका निवारण करके उनके विषयमें सन्देह निर्माण करनेके कारण सब प्राणी श्रीकृष्ण और अर्जुनको यशसे लोकविख्यात महाधनुर्धर मानने लगे ॥ २९ ॥

जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्रवत्तावतिष्ठताम् ॥ ३० ॥
जिस प्रकार दो व्याघ्र जलाशयके समीप रुरु मृग पकड लेनेकी इच्छासे स्थिर होते हैं, वैसे ही वे दोनों पुरुषसिंह समीपवर्ती जयद्रथके वधकी अभिलाष करके उसकी ओर देखते हुए खडे थे ॥ ३० ॥

यथा हि सुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

महाराज ! उस समय उन दोनों महात्माओंके मुख वर्णको देखकर तुम्हारी ओरके योद्धालोग राजा जयद्रथको मरा हुआ ही समझने लगे ॥ ३१ ॥

लोहिताक्षौ महाबाहू संयत्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥

लाल नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन यत्नपूर्वक सिन्धुराज जयद्रथको देखकर आनन्दित हो बार बार सिंहनाद करने लगे ॥ ३२ ॥

शौरेरभीशुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः ।
तयोरासीत्प्रतिभ्राजः सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥

राजन् ! घोडोंकी लगाम हाथमें ग्रहण किये हुए श्रीकृष्ण और धनुर्धारी अर्जुनका तेज उस समय सूर्य और अग्निके समान दिखाई देने लगा ॥ ३३ ॥

हर्ष एव तयोरासीद्द्रोणानीकप्रमुक्तयोः ।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥

जैसे मांस देखकर दो बाज पक्षी हर्षित होते हैं, वैसे ही वे दोनों महात्मा द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त होकर सिन्धुराज जयद्रथको अपने समीप ही देखके हर्षित हुए ॥ ३४ ॥

तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्तमानमिवान्तिके ।
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषे ॥ ३५ ॥

सिन्धुराज जयद्रथको अपने समीप ही खडे हुए देखकर वे दोनों वीर तत्काल क्रुद्ध होकर शीघ्रताके सहित उस पर टूट पडे, जैसे दो बाज मांस पर धावा करते हैं ॥ ३५ ॥

तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनञ्जयौ ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने श्रीकृष्ण और अर्जुनको सारी सेनाका अतिक्रमण करके आगे बढते हुए देखकर, सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये पराक्रम दिखाना सुरू किया ॥ ३६ ॥

द्रोणेनाबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्तदा ।
ययावेकरथेनाजौ हयसंस्कारवित्प्रभो ॥ ३७ ॥

हे प्रभो ! घोडोंके संस्कारको जाननेवाला राजा दुर्योधन तब द्रोणाचार्यके बांधे हुए कवचको धारण करके एकमात्र रथसे ही युद्धमें गया ॥ ३७ ॥

कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः ।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥

नृपति ! तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुनको अतिक्रम करके कमलनयन श्रीकृष्णके संमुख उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥

ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् ।
प्रावाद्यन्नतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जयम् ॥ ३९ ॥

उस समयमें जब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अर्जुनको भी लांघकर आगे बढ गया, तब संपूर्ण सेनाके बीच हर्षसूचक नाना प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ३९ ॥

सिंहनादरवाश्चासञ्शङ्खदुन्दुभिमिश्रिताः
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥

दुर्योधनको श्रीकृष्ण और अर्जुनके संमुख खडा देख शंख-दुंदुभिके सहित ध्वनि चारों ओरसे शूरवीरोंका सिंहनाद सुनाई देने लगा ॥ ४० ॥

ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः ।
ते प्रहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तवाभिभो ॥ ४१ ॥

अग्निके समान तेजस्वी जो महारथी योद्धा लोग सिन्धुराज जयद्रथके रक्षक हुए थे, वे सब कोई तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको श्रीकृष्ण और अर्जुनके संमुख युद्धके लिये स्थित देखकर आनन्दित हुए ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णस्त्वतिक्रान्तं सहानुगम् ।
अब्रवीदर्जुनं राजन्प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ३११९ ॥

हे राजेन्द्र ! अनुयायियोंके सहित दुर्योधनको सबको लांघकर संमुख स्थित देखकर, श्रीकृष्णचन्द्र समयके अनुसार अर्जुनसे यह वचन कहने लगे ॥ ४२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ ३११९ ॥

: ७७ :

वासुदेव उवाच

सुयोधनमतिक्रान्तमेनं पश्य धनञ्जय ।
आपद्गतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले- हे धनंजय ! यह देखो, सुयोधन सबको अतिक्रमण करके संमुख उपस्थित हैं, मैं तो इनको विपत्तिमें पडे हुए मानता हूं, उनके समान रथी दूसरा कोई भी नहीं है ॥ १ ॥

दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ २ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथैः ।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च पाण्डवान् ॥ ३ ॥

वह धृतराष्ट्र पुत्र दूर तक बाण चलानेवाला, महाधनुर्द्धारी, अस्त्र–शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाला, युद्धमें महापराक्रमी, दृढ अस्त्रधारी, विचित्र योद्धा और महाबलवान् हैं। पार्थ ! यह अत्यंत सुखसे संवर्धित, महारथियोंसे संमानित, कृतास्त्र और सदैव पाण्डवोंका द्वेष करनेवाले है ॥ ३ ॥

तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
अत्र वो द्यूतमायातं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥

अनघ ! मैं बोध करता हूं, उसके सङ्ग युद्ध करनेका तुम्हारा यही समय उपस्थित हुआ है। इस युद्धरूपी जुएके खेलमें जीत और हार तुम दोनोंके सामर्थ्यके अनुसार हैं ॥ ४ ॥

अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम् ।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥

पार्थ ! यह महारथी दुर्योधन पाण्डवोंके कष्टभोग करानेका मूल कारण है, तुम सदासे रुके हुए क्रोधको इस समय उसके ऊपर प्रकट करो ॥ ५ ॥

सोऽयं प्राप्तस्तवाक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥ ६ ॥

और यह जब तुम्हारे बाणोंके चलानेके मार्गमें आया है, तब तुम इसे अपनी सफलता समझो। राजा दुर्योधन राज्यकी अभिलाषा करके तुम्हारे संग युद्ध कैसे कर सकता है ? ॥ ६ ॥

दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम् ।
यथा स जीवितं जह्यात्तथा कुरु धनंजय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! प्रारब्धहीसे यह दुर्योधन इस समय तुम्हारे बाणोंके मार्गमें उपस्थित हुआ है; इसलिये जिस प्रकारसे यह अपने प्राणोंका त्याग करेगा, वैसे ही कार्यका तुम विधान करो ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यमदसंमूढो नैष दुःखमुपेयिवान् ।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इसने ऐश्वर्यके अभिमानसे मतवाला होकर आजतक दुःखका अनुभव नहीं किया है, उस ही भांतिसे युद्धभूमिमें तुम्हारे बल और पराक्रमको भी नहीं जानता है ॥ ८ ॥

त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः ।
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! देवता, दानव और मनुष्योंके सहित तीनों लोक भी तुम्हें युद्धभूमिमें जीतनेका उत्साह नहीं कर सकते, तब युद्धभूमिके बीच अकेला सुयोधन तुम्हारा क्या कर सकेगा ? ॥ ९ ॥

स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम् ।
जह्येनं वै महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ १० ॥

पार्थ ! महाबाहो ! जब प्रारब्धके अनुसार वह तुम्हारे रथके समीप आया है, तो इन्द्रने जैसे वृत्रासुरका नाश किया था, वैसे ही तुम भी इस दुर्योधनका वध करो ॥ १० ॥

एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवानघ ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥

हे पापरहित ! दुर्योधनने तुम्हारे नाशके लिये सदासे यत्न किया है, इसहीने धर्मराज युधिष्ठिरको जुएमें छलसे ठग लिया है ॥ ११ ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येनेन मानद ।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥

मानद ! और तुम लोगोंके कुछ अपराध न रहने पर भी इस पापबुद्धिने सदा तुम लोगोंके संग अनेक भांतिसे निष्ठुरताके सहित व्यवहार किये हैं ॥ १२ ॥

तमनार्यं सदा क्षुद्रं पुरुषं कामचारिणम् ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन् ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! इससे तुम इस सदा क्षुद्रबुद्धिवाले, स्वेच्छाचारी दुर्योधनके विषयमें कुछ भी विचार न करके युद्धमें श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले इसका वध करो ॥ १३ ॥

निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रम ॥ १४ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! इन ही दुष्टात्माके छलसे तुम्हारा राज्य हरण किया गया है, इसहीके कारण तुम लोगोंको वनवासी होना पडा है; और द्रौपदीको क्लेश और अपमान उठाना पडा है— तुम इन सब बातोंको स्मरण करके अपना पराक्रम प्रकाशित करो ॥ १४ ॥

दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्तते ।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥ १५ ॥

यह प्रारब्धहीसे तुम्हारे बाण चलानेके मार्गमें आया है, प्रारब्धहीसे तुम्हारे कार्यमें विघ्न डालनेके लिये तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होकर प्रयत्न कर रहा है ॥ १५ ॥

दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह ।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा हि काङ्क्षिताः ॥ १६ ॥

और प्रारब्धहीसे समरमें तुम्हारे संग युद्ध करनेको अपना कर्तव्य कर्म समझ रहा है । और प्रारब्धहीसे इच्छा की हुई सब कामनाएं सफल हो रही हैं ॥ १६ ॥

तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्तराष्ट्रं कुलाधमम् ।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! जैसे पहिले देवासुर युद्धमें इन्द्रने जंभासुरका वध किया था, वैसे ही तुम युद्धमें इस नीच तथा कुलकलंक धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनका वध करो ॥ १७ ॥

अस्मिन्हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम् ।
वैरस्यास्यास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥ १८ ॥

दुर्योधनके मारे जानेपर उसकी संपूर्ण सेना अनाथ हो जायगी, तब उसकी सेनाका वध करो । यही पापी दुष्टात्मा पुरुषोंका मूल है, उसका वध करके तुम शत्रुताका अन्त करो, फिर अवभृत स्नान हो सकता है ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच

तं तथेत्यब्रवीत्पार्थः कृत्यरूपमिदं मम ।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥

संजय बोले— जब श्रीकृष्णने अर्जुनसे ऐसा वचन कहा, तब कुन्तीपुत्र अर्जुन ऐसा ही होगा कह कर श्रीकृष्णसे यह वचन बोले, यह कार्य मेरे करने ही योग्य है; इससे तुम, और संपूर्ण योद्धाओंको त्यागके सुयोधनके निकट रथ ले चलो ॥ १९ ॥

येनैतद्दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम् ।
अप्यस्य युधि विक्रम्य छिन्द्यां मूर्धानमाहवे ॥ २० ॥

जिसने हम लोगोंके इस राज्यका निष्कण्टक रूपसे बहुत दिनोंतक उपभोग किया है, मैं युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करके उसका शिर काट डालूंगा ॥ २० ॥

अपि तस्या अनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥ २१ ॥

हे माधव ! क्लेश भोगनेके अयोग्य द्रौपदीके केशोंको पकडकर जिस दुष्टने उसे बहुत क्लेशित किया है, मैं आज इस दुष्ट दुर्योधनको रणभूमिमें मार कर इस दुष्टके कृत्योंका बदला ले सकूंगा ॥ २१ ॥

इत्येवंवादिनौ हृष्टौ कृष्णौ श्वेतान्हयोत्तमान् ।
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥ २२ ॥

दोनों पुरुषसिंह इस ही प्रकार बातचीत करते हुए हर्षपूर्वक युद्धमें राजा दुर्योधनके निकट जानेकी इच्छासे अपने रथके उत्तम सफेद घोडोंको उसकी ओर बढाने लगे ॥ २२ ॥

तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उन दोनोंके समीप पहुंचके अत्यन्त भयकी सम्भावना रहनेपर भी तनिक भय नहीं किया ॥ २३ ॥

तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातोऽविचारयन् ॥ २४ ॥

वह जब निर्भय चित्तसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके संमुख होकर युद्ध करनेके लिये आगे बढे, सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धाओंने उनके इस कठिन कर्मकी अत्यन्त प्रशंसा की ॥ २४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशां पते ।
महान्नादो ह्यभूत्तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥

हे विशांपते ! अनन्तर युद्धमें राजा दुर्योधनको उपस्थित देखकर तुम्हारी सेनामें महान् सिंहनाद होने लगा ॥ २५ ॥

तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति ।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६ ॥

जिस समय वह महाघोर जनकोलाहल उत्पन्न हो रहा था उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अपने शत्रु अर्जुनके उद्देश्यको भङ्ग करनेके निमित्त उन्हें युद्धसे निवारण किया ॥ २६ ॥

आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना ।
संरम्भमगमद्भूयः स च तस्मिन्परन्तपः ॥ २७ ॥

शत्रुतापन कुन्तीपुत्र अर्जुन तुम्हारे धनुर्धारी पुत्रसे निवारित होजानेपर फिर उसके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥ २७ ॥

तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनञ्जयौ ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥ २८ ॥

दुर्योधन और अर्जुनको एक दूसरेके ऊपर क्रुद्ध देखकर चारों ओरसे सम्पूर्ण भयंकर नरेश योद्धा लोग उनका पराक्रम देखने लगे ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष ।
प्रहसन्निव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९ ॥

मारिष ! अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अर्जुन और श्रीकृष्णको क्रुद्ध देखके हंसकर ही युद्धके निमित्त उन दोनोंको आवाहन किया ॥ २९ ॥

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
व्याक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाम्बुजोत्तमौ ॥ ३० ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनने भी अत्यन्त हर्षित होकर सिंहनाद करके अपने उत्तम शङ्खोंको बजाया ॥ ३० ॥

तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयाश्च सर्वशः ।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥

उन दोनों पुरुषोंको अत्यंत हर्षित देखकर सम्पूर्ण कौरव योद्धा तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके जीवनसे निराश हुए ॥ ३१ ॥

शोकमीयुः परं चैव कुरवः सर्व एव ते ।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२ ॥

और दूसरे सब कौरव ही तुम्हारे पुत्रको अग्निमें पडे आहुतिके घृतके समान मानते हुए शोकसे व्याकुल होगये ॥ ३२ ॥

तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचुरेवं भयार्दिताः ॥ ३३ ॥

तुम्हारी सेनाके बहुतेरे योद्धा श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार हर्षित देखकर भयभीत होगये और " राजा मारे गये, राजा मारे गये ! " ऐसे ही वचनोंको कहते हुए शोर मचाने लगे ॥ ३३ ॥

जनस्य संनिनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥

राजा दुर्योधन उन लोगोंके उस आर्त शब्दको सुनकर यह वचन बोले, तुम लोग कुछ भय मत करो, मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनको यमपुरीमें भेजूंगा ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा सैनिकान्सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः ।
पार्थमाभाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंसे ऐसा वचन कहके विजयकी अभिलाषा करनेवाले राजा दुर्योधन क्रोधपूर्वक इस प्रकार बोले ॥ ३५ ॥

पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं मानुषमेव च ।
तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥

हे अर्जुन ! तुमने दिव्य और मानुषिक जिन संपूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या सीखी है, यदि तुम पाण्डुसे उत्पन्न हुए हो, तो मेरे निकट अपने संपूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको शीघ्र प्रकाशित करो ३६॥

यद्बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च ।
तत्कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥

तुम्हारा और श्रीकृष्णका जो कुछ बल और पराक्रम हो, वह मेरे ऊपर शीघ्र प्रकट करो; तुम्हारा कितना बल पराक्रम है, उसे मैं देखूंगा ॥ ३७ ॥

अस्मत्परोक्षं कर्माणि प्रवदन्ति कृतानि ते ।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ३१५७ ।

लोग कहते हैं तुमने प्रभु तथा गुरुके निकट सत्कार पाने योग्य कर्म किये हैं, परंतु तुमने मेरे निकट अपना कुछ पराक्रम नहीं दिखाया है; इससे तुम अपने बल पराक्रमको इस समय मेरे निकट प्रकाशित करो ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ ३१५७ ॥

: ७८ :

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः
प्रत्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥

संजय बोले— राजा दुर्योधनने अर्जुनसे ऐसा वचन कहके वेगवान् मर्मभेदी तीन बाणोंसे अर्जुनको और चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ १ ॥

वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥

और दस बाणोंसे श्रीकृष्णकी छातीमें प्रहार किया । अनन्तर फिर दुर्योधनने एक भल्ल बाणसे श्रीकृष्णके उत्तम कोडेको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २ ॥

×

तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रस्तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ३ ॥
अर्जुनने निर्भय चित्तसे शीघ्रताके सहित शिलापर घिसे हुए तेज विचित्र पंखवाले चौदह बाण दुर्योधनकी ओर चलाये, परंतु वे बाण दुर्योधनके वर्म पर लगते ही फिसलकर गिर पडे ॥ ३ ॥

तेषां वैफल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणांस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ४ ॥
उन बाणोंको निष्फल होते देख अर्जुनने फिर चौदह तीक्ष्ण बाण दुर्योधनकी ओर चलाये; वे बाण भी वर्म पर लगते ही छटकके गिर पडे ॥ ४ ॥

अष्टाविंशत्तु तान्बाणानस्तान्विप्रेक्ष्य निष्फलान् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥
चलाये हुए उन अट्ठाइस बाणोंको व्यर्थ होते देखकर शत्रुओंके नाश करनेवाले श्रीकृष्ण अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ ५ ॥

अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम् ।
त्वया संप्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥
हे अर्जुन ! जो मैंने पहिले कभी नहीं देखा था, वह पत्थरोंके चलनेके समान बातको आज मैं देख रहा हूं ! तुमने जो संपूर्ण बाण दुर्योधनके ऊपर चलाये, वे तो कुछ भी कार्य नहीं कर रहे हैं ॥ ६ ॥

कच्चिद्गाण्डीवतः प्राणास्तथैव भरतर्षभ ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥
भरतश्रेष्ठ ! पहिलेके समान ही तुम्हारे गाण्डीव धनुषका बल है न ? तुम्हारी मुट्ठी और बाहुओंका बल भी पहले जैसा ही है न ? ॥ ७ ॥

न चेद्विधिरयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः ।
तव चैवास्य शत्रोश्च तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥
आजका यह उपस्थित समय दुःखसे प्राप्त होनेवाला है, परन्तु यह तुम्हारे या शत्रुके पक्षमें निष्फल तो नहीं होगा ? मैं यही तुमसे पूछता हूं तुम मुझे इसका उत्तर दो ॥ ८ ॥

विस्मयो मे महान्पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान् ।
व्यर्थान्निपततः संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥
पार्थ ! दुर्योधनके ऊपर चलाये हुए तुम्हारे बाणोंको युद्धमें दुर्योधनके रथके पास व्यर्थ होकर गिरते देखकर मैं अत्यन्त ही विस्मित हुआ हूं ॥ ९ ॥

वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः ।
शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ काद्य विडम्बना ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! आज यह कैसा आश्चर्यमय कार्य हो रहा है ? तुम्हारे वज्र और अशनिके समान भयंकर और शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण करनेवाले बाण आज कुछ काम नहीं कर रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है ? ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच

द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता ।
अन्ते विहितमस्त्राणामेतत्कवचधारणम् ॥ ११ ॥

अर्जुन बोले— हे श्रीकृष्ण ! मुझे बोध होता है, कि द्रोणाचार्यने दुर्योधनको अभेद्य कवच धारण करा दिया है और उसमें यह अद्भुत शक्ति स्थापित कर दी है । यह कवच अस्त्रोंके अन्तकारी है ॥ ११ ॥

अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि ।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण ! तीनों लोकोंकी शक्ति इस कवचमें रक्खी गयी है; उस विद्याको अकेले द्रोणाचार्य ही जानते हैं, और मैं भी उस द्विजसत्तम द्रोणाचार्यकी कृपासे जानता हूं ॥ १२ ॥

न शक्यमेतत्कवचं बाणैर्भेत्तुं कथंचन ।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥

यह कवच बाणोंसे किसी प्रकार भी भेदित नहीं हो सकता । गोविन्द ! युद्धमें स्वयं इन्द्र भी वज्र लेकर इस कवचको भेद करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ १३ ॥

जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम् ।
यद्वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्तते ॥ १४ ॥

हे श्रीकृष्ण ! इन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको जानकर भी तुम मुझे क्यों मोहित कर रहे हो ? केशव ! तीनों लोकोंके बीच जो बात हो चुकी है, जो हो रही है ॥ १४ ॥

तथा भविष्यच्चैव तत्सर्वं विदितं तव ।
न त्वेवं वेद वै कश्चिद्यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥

और कुछ आगे होनेवाली है, वह सम्पूर्ण तुम्हें विदित है। मधुसूदन ! इस बातको जैसा तुम जानते हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ १५ ॥

एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् ।
तिष्ठत्यभीतवत्संख्ये बिभ्रत्कवचधारणाम् । ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! द्रोणाचार्यने इस दुर्योधनको विधिपूर्वक धारण कराये हुए कवचको पहना दिया है; इस हीसे वह अभेद्य कवचधारी होकर निर्भय चित्तसे युद्धमें खड़ा है ॥ १६ ॥

यस्त्वत्र विहितं कार्यं नैव तद्वेत्ति माधव ।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येनां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥
माधव ! परन्तु इस कवचके विषयमें किन कार्योंका विधान करना होता है, उसे वह नहीं जानता; जैसे स्त्रियां आभूषण धारण करती हैं वैसेही केवल उसने उस कवचको पहन लिया है ॥ १७ ॥

पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन ।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितम् ॥ १८ ॥
जनार्दन ! जो हो, तुम मेरे धनुषका बल और भुजाओंका पराक्रम देखो; इस कुरुराज दुर्योधनको कवचसे रक्षित होने पर भी मैं उसे पराजित करूंगा ॥ १८ ॥

इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम् ।
पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम् ॥ १९ ॥
देवेश ब्रह्माने इस तेजस्वी कवचको अङ्गिराको दिया था, अनन्तर देवराज इन्द्रने इस वर्मको सम्पूर्ण मन्त्र और इसके उपयोगी कर्मोंके सहित मुझे प्रदान किया है ॥ १९ ॥

दैवं यद्यस्य वर्मैतद्ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ।
नैतद्गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया ॥ २० ॥
यह कवच देवताओंका बनाया होवे, वा ब्रह्माने स्वयं उसे तैयार किया हो; परन्तु आज मैं नीच बुद्धिवाले दुर्योधनका अपने बाणोंसे संहार करूंगा । यह कवच उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥ २० ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनो बाणानभिमन्त्र्य व्यकर्षयत्
विकृष्यमाणांस्तेनैवं धनुर्मध्यगतान्शरान् ।
तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना ॥ २१ ॥
सञ्जय बोले— अर्जुनने श्रीकृष्णको इतनी कथा सुनाकर अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करके धनुषकी डोरीको खींचा; बाणोंको अर्जुन धनुषके बीचमें रखकर खींच ही रहे थे, उस ही समय अश्वत्थामाने सर्वास्त्रघाती अस्त्रसे उन बाणोंको काट दिया ॥ २१ ॥

तान्निकृत्तानिषून्दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ।
न्यवेदयत्केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः ॥ २२ ॥
ब्रह्मवेत्ता अश्वत्थामासे दूरसे ही काट दिये गये उन बाणोंको देखकर श्वेतवाहन अर्जुन विस्मित होके, श्रीकृष्णसे यह वचन बोले ॥ २२ ॥

नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ।
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि पश्य त्वद्य बलं मम ॥ २३ ॥

हे जनार्दन ! यह अस्त्र अब मैं दूसरी बार नहीं चला सकता । यदि मैं फिर इस अस्त्रको चलाऊंगा, तो यह मुझे ही मार डालेगा; इतना होनेपर भी अब आज आप मेरा बल देखिये ॥ २३ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नतपर्वभिः
अविध्यत रणे राजञ्शरैराशीविषोपमैः ।
भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २४ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर दुर्योधनने युद्धमें विषधारी सर्पके समान भयंकर नौ तीक्ष्ण बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको विद्ध किया; फिर बाणोंकी बडी भारी वर्षा श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन पर शुरू कर दी ॥ २४ ॥

शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।
चक्रुर्वादित्रनिनदान्सिंहनादरवांस्तथा ॥ २५ ॥

तुम्हारी ओरके योद्धा लोग दुर्योधनको श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा करते देखकर हर्षित होके जुझाऊ बाजोंको बजाते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ २५ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
नापश्यत ततोऽस्याङ्गं यन्न स्याद्वर्मरक्षितम् ॥ २६ ॥

अनन्तर युद्धमें अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर ओठोंको काटते हुये, दुर्योधनके छिद्रको देखने लगे । उस समय अर्जुनने दुर्योधनके शरीरमें ऐसा कोई स्थान भी खाली नहीं देखा, जो कि वर्मसे रक्षित न हुआ हो ॥ २६ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः ।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २७ ॥

अनन्तर अर्जुनने यमराजके समान भयङ्कर तीक्ष्ण और चोखे बाणोंसे उनके रथके घोडे और दोनों पृष्ठरक्षकोंको मार डाला ॥ २७ ॥

धनुरस्याच्छिनच्चित्रं हस्तावापं च वीर्यवान् ।
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ २८ ॥

फिर पराक्रमी सव्यसाची अर्जुनने शीघ्रतापूर्वक उसके धनुष और दस्तानेको काट दिया; फिर उनके रथके टुकडे टुकडे करना शुरू किया ॥ २८ ॥

दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम् ।
अविध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ २९ ॥

अनन्तर अर्जुनने रथरहित हुए दुर्योधनकी दोनों हथेलियोंमें दो तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया ॥ २९ ॥

तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः
समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशरार्दितम् ॥ ३० ॥

दुर्योधनको अर्जुनके बाणोंसे पीडित और अत्यंत आपद्ग्रस्त देखकर तुम्हारी सेनाके श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा लोग उनकी रक्षा करनेके निमित्त आ पहुंचे ॥ ३० ॥

तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः ।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३१ ॥

उन्होंने कई हजार रथों, सज्जित हाथी, घोडे और क्रोधित पैदल सेनाके योद्धाओंको संग लेके चारों ओरसे अर्जुनको घेर दिया ॥ ३१ ॥

अथ नार्जुनगोविन्दौ रथो वापि व्यदृश्यत ।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३२ ॥

उन योद्धाओंके बीचमें घिरकर चारों ओरसे उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे श्रीकृष्ण, अर्जुन और उनका रथ, उस समयमें कोई भी नहीं दिखाई पडते थे ॥ ३२ ॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम् ।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥ ३३ ॥

अनन्तर अर्जुन अपने अस्त्रोंके बलसे उस संपूर्ण सेनाका नाश करने लगे; उस समय अर्जुनके अस्त्रोंसे सैकडों रथ और हाथी अंगभंग होनेके कारण प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३३ ॥

ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम् ।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रं समन्ततः ॥ ३४ ॥

उन मारे और मारे जानेवाले कौरवोंके सैनिकोंने श्रेष्ठ रथी अर्जुनको रोक दिया; उससे अर्जुनका रथ जयद्रथसे एक कोसकी दूरीपर चारों ओरसे रथसेनासे घिरकर रुक गया ॥ ३४॥

ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत् ।
धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्मास्यामि चाम्बुजम् ॥ ३५ ॥

अनन्तर यदुकुलभूषण पराक्रमी वीर श्रीकृष्ण तुरंतही अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! तुम धनुष चढाओ और मैं अपना शङ्ख बजाता हूं ॥ ३५ ॥

ततो विस्फार्य बलवद्गाण्डीवं जघ्निवान्रिपून् ।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चार्जुनः ॥ ३६ ॥

तब अर्जुन अपने तनुत्राण शब्दके सहित जोरसे गाण्डीव धनुषको चढाकर तीक्ष्ण बाणोंकी भारी वर्षा करके शत्रु सेनाका बध करने लगे ॥ ३६ ॥

पाञ्चजन्यं च बलवद्दध्मौ तारेण केशवः ।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ३७ ॥

और श्रीकृष्णने भी अपना पाञ्चजन्य शङ्ख उच्च स्वरमें जोरसे बजाया । उस समय श्रीकृष्णके नेत्रकी बरौनी और सम्पूर्ण शरीर धूलिसे परिपूरित होगया था; तथा उनके मुखपर पसीना ही आया था ॥ ३७ ॥

तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निस्वनेन च ।
निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥ ३८ ॥

उस शङ्खकी ध्वनि और धनुष टङ्कार शब्दको सुनकर निर्बल और बलवान् सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग मोहित होके पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ ३८ ॥

तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाम्बुदः ।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ३९ ॥

अनन्तर जैसे बादल वायुके वेगसे शोभित हुए दिखाई देते हैं, वैसेही अर्जुनका रथ उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके घेरेसे मुक्त होकर प्रकाशित होने लगा । उसे देखकर जयद्रथके रक्षक अपने अनुयायिओंके सहित अत्यन्त क्षुब्ध हुए ॥ ३९ ॥

ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु ।
चक्रुर्नादान्बहुविधान्कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ ४० ॥

जयद्रथकी रक्षा करनेवाले वे महारथी योद्धा सहसा अर्जुनको देखकर अपने अनेक प्रकारके महा भयङ्कर शब्दसे पृथ्वीको कम्पित करने लगे ॥ ४० ॥

बाणशब्दरवांश्चोग्रान्विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः ।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४१ ॥

उन महात्माओंके बाण छोडनेके प्रचण्ड शब्द शंख और वीरोंके सिंहनादके सहित मिलकर महाघोर सुनाई देने लगे ॥ ४१ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम् ।
प्रदध्मतुस्तदा शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उन सम्पूर्ण योद्धाओंके महाघोर शब्दको सुनकर अपने शंख बजाने लगे ॥ ४२ ॥

तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा ।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशां पते ॥ ४३ ॥

महाराज ! उस महान् शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी परिपूरित होगई ॥ ४३ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश ।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कुरु-पाण्डवोंकी सेनाके बीच दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर वह शब्द प्रतिध्वनित होने लगा ॥ ४४ ॥

तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
संरम्भं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४५ ॥

तुम्हारी ओरके रथी और महारथी योद्धा लोग वहां श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर अत्यन्तही विस्मित और क्रुद्ध होकर शीघ्रता करने लगे ॥ ४५ ॥

अथ कृष्णौ महाभागौ तावका दृश्य दंशितौ ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ३२०३ ॥

अनन्तर वे सम्पूर्ण महारथी लोग कवच धारण किये हुए महाभाग श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर क्रुद्ध होकर उनकी ओर दौडे, यह एक अद्भुतसी घटना हुई ॥ ४६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ ३२०३ ॥

७९

सञ्जय उवाच

तावकास्तु समीक्ष्यैव वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा लोग वृष्णि और अन्धक वंशके श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण और कुरुकुलश्रेष्ठ अर्जुनको देखकर शीघ्रताके सहित उनका वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर बढे; अर्जुन भी उन लोगोंके वध करनेके निमित्त शीघ्रताके सहित आगे बढे ॥ १ ॥

सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः ।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥

वे लोग सुवर्ण चित्रित व्याघ्रके चर्मसे युक्त, घोर शब्द करनेवाले, प्रज्वलित अग्निके समान अपने उत्तम रथोंपर चढके सब दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ २ ॥

रुक्मपृष्ठैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते ।
कूजद्भिरतुलान्नादान्क्रोधितैरुरगैरिव ॥ ३ ॥

पृथ्वीपते ! वे सोनेके पृष्ठवाले, दुर्दर्श, क्रोधमें भरे हुए सर्पोंके समान, अतुल टंकार ध्वनि करनेवाले धनुषोंसे सब दिशाओंको परिपूरित कर रहे थे ॥ ३ ॥

भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः ।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४ ॥

भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य और रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा ॥ ४ ॥

ते पिबन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः ।
व्यराजयन्दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥

ये आठ महारथी व्याघ्रचर्म और सुवर्णमय चन्द्रबिन्दोंसे विभूषित घोडोंसे युक्त रथपर चढके, मानो आकाशमार्गसे गमन करते हुए दसों दिशाओंमें शोभित होने लगे ॥ ५ ॥

ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिस्वनैः ।
समावृण्वन्दिशः सर्वाः पार्थं च विशिखैः शितैः ॥ ६ ॥

कवचधारी और अत्यन्त क्रोधित हुए उन महारथियोंने बादलके गर्जनेके समान शब्द करनेवाले रथों सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाकर अर्जुन और सब दिशाओंको छिपा दिया ॥ ६ ॥

कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान्महारथान् ।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥ ७ ॥

कुलूत देशके शीघ्र गमन करनेवाले उत्तम विचित्र घोडे उन महारथियोंके रथोंको खींचते हुए दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए शोभित होने लगे ॥ ७ ॥

आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः ।
पार्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥

राजन् ! अनेक देशोंमें उत्पन्न महा वेगशील आजानेय, पर्वतीय, नदीज और सिन्धुदेशीय उत्तम घोडोंसे ॥ ८ ॥

कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी रक्षा करनेकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठ कौरव योद्धाओंने शीघ्रताके सहित अर्जुनके रथपर चारों ओरसे आक्रमण किया ॥ ९ ॥

ते प्रगृह्य महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ।
पूरयन्तो दिवं राजन्पृथिवीं च ससागराम् ॥ १० ॥

राजन् ! उन पुरुष श्रेष्ठ योद्धाओंने अपने बडे शंखोंको लेकर बजाते हुए समुद्र सहित पृथ्वी और आकाशको परिपूरित कर दिया ॥ १० ॥

तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
प्रवरौ सर्वभूतानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ।
देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः ॥ ११ ॥

वैसे ही सब भूतोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी सब संसारके संपूर्ण शंखोंमें श्रेष्ठ अपने अपने दिव्य शङ्ख बजाये। कुन्तीपुत्र अर्जुनने देवदत्त शंख और श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ ११ ॥

शब्दस्तु देवदत्तस्य धनञ्जयसमीरितः ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत् ॥ १२ ॥

धनंजयके बजाये हुए देवदत्त शंखका शब्द पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण दिशाओंमें परिपूरित हो गया ॥ १२ ॥

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ।
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी ॥ १३ ॥

इसी प्रकार श्रीकृष्णके बजाये शङ्खने भी सम्पूर्ण शब्दोंको अतिक्रम करके स्वर्ग और मर्त्यलोकको परिपूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे नादसंकुले ।
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ॥ १४ ॥

इस प्रकार वहां सब ओर भयंकर शब्द भर गया। वह शूरवीरोंके हर्ष और कायरोंके भयको बढानेवाला था ॥ १४ ॥

प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ।
मृदङ्गेषु च राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः ॥ १५ ॥

राजेन्द्र! उन महाशङ्खोंके शब्दके समय अनेक ढोल, नगाडे, भेरी और झांझ मृदङ्ग आदि अनेक बाजे बजाये जाने लगे, और बजने लगे ॥ १५ ॥

महारथसमाख्याता दुर्योधनहितैषिणः ।
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः ।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १६ ॥

दुर्योधनके हितैषी प्रख्यात महारथी उस शब्दको सह नहीं सके और क्रुद्ध हुए; वे अनेक देशोंसे आये हुए वीर महाधनुर्धार भूपाल अपनी सेनाका रक्षण करनेमें तत्पर थे ॥ १६ ॥

अमर्षिता महाशङ्खान्दध्मुर्वीरा महारथाः ।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥ १७ ॥

वे महारथी वीर लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनके कार्यका प्रतिकार करेंगे, ऐसा निश्चय करके अमर्षमें भरकर ऊंचे शब्दके सहित अपने बडे बडे शङ्ख बजाने लगे ॥ १७ ॥

बभूव तव तत्सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम् ।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव चाभिभो ॥ १८ ॥

हे भारत ! तुम्हारी वह सेना शंखके शब्दसे परिपूरित होकर अस्वस्थ हो गयी; उसके रथी, हाथी और घोडे उद्विग्न हो गये ॥ १८ ॥

तत्प्रयुक्तमिवाकाशं शूरैः शङ्खनिनादितम् ।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ १९ ॥

जैसे वज्रके शब्दसे आकाश अनुनादित होता है, वैसे ही रणभूमि शूरवीरोंके शङ्खके शब्दोंसे परिपूरित होगई और वह अत्यन्त उद्विग्न हो गई ॥ १९ ॥

स शब्दः सुमहान्राजन्दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
त्रासयामास तत्सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २० ॥

राजन् ! प्रलयकालके महाघोर शब्दके समान सब ओर फैला हुआ वह महान् शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करके तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करने लगा ॥ २० ॥

ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः ।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन और आठ महारथी राजाओंने जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये अर्जुनको घेर लिया ॥ २१ ॥

ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २२ ॥

अश्वत्थामाने तिहत्तर बाणोंसे श्रीकृष्ण, तीन भल्ल बाणोंसे अर्जुन और पांच बाणोंसे अर्जुनके रथकी ध्वजा तथा उनके रथके चार घोडोंके ऊपर प्रहार किया ॥ २२ ॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २३ ॥

जनार्दन श्रीकृष्णके विद्ध हो जाने पर अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अश्वत्थामाके ऊपर छः सौ बाण चलाये और उसको विद्ध किया ॥ २३ ॥

कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥ २४ ॥

फिर कर्णको दस और वृषसेनको तीन बाणोंसे विद्ध किया; फिर वीर्यवान् अर्जुनने शल्यके बाण सहित धनुषको बीचसे काट दिया ॥ २४ ॥

गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् ।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २५ ॥

शल्य दूसरा धनुष ग्रहण करके अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे । भूरिश्रवाने शिलापर घिसे हुए सुवर्णमय पंख युक्त तीन बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २५ ॥

कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ।
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फल्गुनं रणे ॥ २६ ॥

कर्णने बत्तीस, वृषसेनने सात, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दस और मद्रराज शल्यने दस बाण मारकर युद्धमें अर्जुनको घायल किया ॥ २६ ॥

ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ॥ २७ ॥

और अश्वत्थामाने साठ बाण अर्जुनके ऊपर चलाये; फिर सत्तर बाणोंसे श्रीकृष्णको और पांच बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया ॥ २७ ॥

प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
प्रत्यविध्यत्स तान्सर्वान्दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २८ ॥

श्रीकृष्ण जिनके सारथी हैं, उन श्वेतवाहन पुरुषसिंह अर्जुनने हंसकर अपना हस्तलाघव दिखाते हुए उन सबको अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ २८ ॥

कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शल्यस्य समरे चापं मुष्टिदेशे न्यकृन्तत ॥ २९ ॥

कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे विद्ध करके, मद्रराज शल्यके समर धनुषका मुष्टिग्रह काट दिया ॥ २९ ॥

सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः ।
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाष्टभिः ॥ ३० ॥

अनन्तर भूरिश्रवाको तीन और शल्यको दस बाणोंसे विद्ध करके, अश्वत्थामाको अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी आठ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३० ॥

गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ।
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ॥ ३१ ॥

फिर कृपाचार्यको पच्चीस, सिन्धुराज जयद्रथको एक सौ और फिर अश्वत्थामाको सत्तर बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३१ ॥

भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ॥ ३२ ॥

परन्तु भूरिश्रवाने क्रुद्ध होकर श्रीकृष्णके हाथमें स्थित कोडेको काटके, तिहत्तर बाणोंसे अर्जुनको अत्यंत विद्ध किया ॥ ३२ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ।
प्रत्यषेधद्द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ३२३६ ॥

इसके अनन्तर श्वेतवाहन अर्जुनने क्रुद्ध होकर अपने सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे उन शत्रुओंको शीघ्र ही इस प्रकारसे विद्ध किया जैसे प्रबल वायु बादलोंको छिन्नभिन्न करती है ॥ ३३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें उन्नासीवां अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ ३२३६ ॥

८०

धृतराष्ट्र उवाच

ध्वजान्बहुविधाकारान्भ्राजमानानतिश्रिया ।
पार्थानां मामकानां च तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! मेरे और कुन्ती पुत्रोंके अनेक प्रकारके अत्यंत सुंदर ध्वज प्रकाशित होते थे, उनका तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

ध्वजान्बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम् ।
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! उन महापुरुषोंके नाना प्रकारकी आकृतिवाले ध्वज वहां दीख रहे थे; उनका रूप, रंग और नामके अनुसार मैं बर्णन करता हूं, आप सुनिये ॥ २ ॥

तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! उन मुख्य मुख्य राजाओं तथा महारथियोंके रथोंपर नाना प्रकारके ध्वज अग्निके समान प्रकाशित हो दिखायी दे रहे थे ॥ ३ ॥

काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः ।
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥

वे ध्वज संपूर्ण सुवर्णमय, सुवर्ण शेखरसे सज्जित और सुवर्ण मालाओंसे अलंकृत थे; इसलिये वे सुवर्णमय बडे पर्वतके स्वर्णमय शिखरोंके समान शोभित होते थे ॥ ४ ॥

ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ।
नानावर्णविरागाभिर्विबभुः सर्वतो वृताः ॥ ५ ॥

वे ध्वज सब ओरसे अनेक प्रकारके रंगकी पताकाओं द्वारा घिरकर अत्यंत शोभित होते थे ॥ ५ ॥

पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ।
नृत्यमानाः व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः ॥ ६ ॥

उन ध्वजाओंकी सुवर्ण पताकाएं वायुके वेगसे इधर उधर डोलती हुई मानो रङ्गभूमिपर नृत्य करती हुई नर्त्तकियोंके समान दिखाई देने लगीं ॥ ६ ॥

इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ।
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ॥ ७ ॥

इन्द्रधनुषके समान प्रकाशमान समस्त पताकाएं बार बार वायुके झकोरसे लहराती हुई उन सम्पूर्ण रथियोंके उत्तम उत्तम विशाल रथोंके ऊपर शोभित होने लगीं ॥ ७ ॥

सिंहलाङ्गूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ।
धनञ्जयस्य संग्रामे प्रत्यपश्याम भैरवम् ॥ ८ ॥

संग्राममें उग्र मुखवाले, सिंहके समान पूंछवाले, वानर चिह्नसे युक्त अर्जुनका भयंकर ध्वज हमने देखा था ॥ ८ ॥

स वानरवरो राजन्पताकाभिरलंकृतः ।
त्रासयामास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ॥ ९ ॥

राजन् ! वानरश्रेष्ठसे युक्त, उत्तम पताकाओंसे अलंकृत गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुनका वह ध्वज तुम्हारी सेनाको भयभीत करता था ॥ ९ ॥

तथैव सिंहलाङ्गूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ।
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ॥ १० ॥

भारत ! उसी प्रकार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके रथपर सिंहके लांगूल चिह्नसे युक्त प्रातःकालीन बाल सूर्यके समान लाल वर्णवाला श्रेष्ठ ध्वज हमने देखा ॥ १० ॥

काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ।
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्षणमुच्छ्रितम् ॥ ११ ॥

इन्द्र ध्वजके समान प्रकाशमान सुवर्णमय ऊंचा भाग्यशाली ध्वज वायुके झोंकेसे लहराता हुआ कौरवोंके राजाओंको आनन्दित करता था ॥ ११ ॥

हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाधिरथेर्ध्वजे ।
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ॥ १२ ॥

महाराज ! अधिरथपुत्र कर्णका ध्वज सुवर्णमय हाथी कक्षा चिन्हसे युक्त था, और वह युद्धमें आकाशको पूरित करता हुआ दिखायी देता था ॥ १२ ॥

पताकी काञ्चनस्रग्वी ध्वजः कर्णस्य संयुगे ।
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरितः ॥ १३ ॥

युद्धमें कर्णके ध्वजपर स्वर्णमालासे शोभित सुन्दर पताका वायुके वेगसे लहराती हुई रथमें नृत्यसा कर रही थी ॥ १३ ॥

आचार्यस्य च पाण्डूनां ब्राह्मणस्य यशस्विनः ।
गोवृषो गौतमस्यासीत्कृपस्य सुपरिष्कृतः ॥ १४ ॥

यशस्वी द्विजसत्तम पाण्डवोंके आचार्य और गौतमपुत्र कृपाचार्यके रथपर अत्यन्त सुन्दर वृषभचिन्हसे युक्त ध्वज दीख पडता था ॥ १४ ॥

स तेन भ्राजते राजन्गोवृषेण महारथः ।
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद्गोवृषेण विराजते ॥ १५ ॥

राजन् ! जैसे त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले महादेवका रथ वृषभचिन्हसे युक्त ध्वजसे शोभित होता है, वैसेही कृपाचार्यका महान् रथ भी वृषभध्वजसे शोभायमान लगता था ॥ १५ ॥

मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ।
व्याहरिष्यन्निवातिष्ठत्सेनाग्रमपि शोभयन् ॥ १६ ॥

वृषसेनके रथ पर नाना भांतिके मणि-रत्नोंसे शोभित सुवर्णमय मयूरध्वजा लगी थी । वृषसेनके रथकी ध्वजाका वह मयूर सेनाके अग्रभागकी शोभा बढाता हुआ ऐसा खडा था, मानो बोलनेके निमित्त उद्यत हुआ है ॥ १६ ॥

तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ।
यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! जैसे स्वामि कार्तिकका रथ मयूर चिन्हसे शोभित होता है, वैसे ही महात्मा वृषसेनका रथ मयूर चिन्ह युक्त शोभित होने लगा ॥ १७ ॥

मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ।
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् ॥ १८ ॥

मद्रराज शल्यके रथकी ध्वजाके अग्रभागमें अग्निशिखाके समान प्रकाशमान, सुवर्णमय, अप्रतिम और शुभ लक्षणोंसे युक्त लाङ्गल रेखाका चिन्ह हमने देखा ॥ १८ ॥

सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ।
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता ॥ १९ ॥
मारिष ! जैसे खेतको हलसे जोतने पर बनी हुई रेखा बीजोंके अंकुरित होने पर शोभित होती है, वैसे ही सुवर्ण चित्रित उनके ध्वजाकी लाङ्गलरेखा शोभित होने लगी ॥ १९ ॥

वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ।
ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः ॥ २० ॥
सिन्धुराज जयद्रथके रथकी ध्वजाके अग्रभाग पर उज्ज्वल सूर्यके समान श्वेत कांतिमान्, सुवर्णके तारोंसे बनाये हुए जालसे विभूषित और रजतका बनाया हुआ वराह चिन्ह विराजमान होकर अत्यंत शोभित हो रहा था ॥ २० ॥

शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ॥ २१ ॥
राजा जयद्रथ उस रजतमय वराह ध्वजासे युक्त होकर इस प्रकार शोभित होने लगे, जैसे पहिले समय देवासुर संग्राममें पषा शोभित होते थे ॥ २१ ॥

सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ।
ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र प्रदृश्यते ॥ २२ ॥
यज्ञशील बुद्धिमान् सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाके रथ पर सूर्यके समान प्रकाशमान यूप चिन्हसे युक्त ध्वजा लगी थी । उस यूप ध्वजा पर चन्द्रमाकी प्रतिमा दीख पडती थी ॥ २२ ॥

स यूपः काञ्चनो राजन्सौमदत्तेर्विराजते ।
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ॥ २३ ॥
राजन् ! जैसे यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूयमें ऊंचा खडा किया हुआ प्रकाशमान यूप विराजमान होता है, उस ही प्रकार उनका सुवर्णमय यूप रणभूमिमें शोभित होने लगा ॥ २३ ॥

शलस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ।
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः ॥ २४ ॥
महाराज ! राजा शलके रथकी ध्वजा रजतमयी मतवाले हाथीके चिन्हसे युक्त थी और सुवर्ण निर्मित अंगोंवाले मयूरोंकी प्रतिमासे वह ध्वजा शोभित होने लगी ॥ २४ ॥

स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ।
यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ॥ २५ ॥
जैसे सफेद वर्णका महागजराज देवताओंके राजा इन्द्रकी सेनाको सुशोभित करता है, भरतर्षभ ! वैसे ही वह ध्वजा तुम्हारी सेनाकी शोभा बढा रहा था ॥ २५ ॥

नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ।
किङ्किणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रे रथोत्तमे ॥ २६ ॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके विचित्र उत्तम रथ पर सुवर्णके तारोंसे खचित और सैंकडों छोटी छोटी घण्टियोंसे युक्त ध्वजा पर सुवर्ण और रत्नोंसे चित्रित हाथीकी प्रतिमा तुम्हारी सेनाके बीच शोभित होने लगी ॥ २६ ॥

व्यभ्राजत भृशं राजन्पुत्रस्तव विशां पते ।
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ॥ २७ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय तुम्हारे पुत्र कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन उस महान् ध्वजासे युद्धमें अत्यन्त ही शोभायमान हुए ॥ २७ ॥

नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ।
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसंनिभाः ॥ २८ ॥

उस संग्रामभूमिमें तुम्हारी सेनाके बीच ये नौ उत्तम ध्वज बहुत ऊंचे थे, और प्रलयकालके सूर्यके समान प्रकाशते हुए तुम्हारी सेनाको शोभित करते थे ॥ २८ ॥

दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ।
अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वह्निना ॥ २९ ॥

अर्जुनकाही दसवां ध्वज था, वह एक मात्र महान् वानरके चिन्हसे शोभित था; जैसे अग्निसे हिमालय पर्वत प्रकाशित होता है, वैसे ही वे देदिप्यमान हो रहे थे ॥ २९ ॥

ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ।
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परन्तपाः ॥ ३० ॥

अनन्तर शत्रुओंके पीडा करनेवाले उन सब महारथी वीरोंने अर्जुनको मारनेके लिये शीघ्र ही अपने विचित्र, दृढ और प्रकाशमान धनुषोंको ग्रहण किया ॥ ३० ॥

तथैव धनुरायच्छत्पार्थः शत्रुविनाशनः ।
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद्राजन्कुमन्त्रिते तव ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! उसी प्रकार दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशन अर्जुनने भी तुम्हारी कुमन्त्रणाके कारण अपने गाण्डीव धनुषको ग्रहण करके खींचा ॥ ३१ ॥

तवापराधाद्धि नरा निहता बहुधा युधि ।
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ॥ ३२ ॥

महाराज ! यह सम्पूर्ण युद्ध कार्य तुम्हारी अनीतिसे ही उपस्थित हुआ है और युद्धमें तुम्हारे ही दोषसे नाना दिशाओंसे आमन्त्रित होकर आये हुए बहुतसे राजा लोग अपने घोडे, हाथी और रथोंके सहित नष्ट हुए हैं ॥ ३२ ॥

तेषामासीद्व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ।
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ॥ ३३ ॥

दुर्योधन आदि सम्पूर्ण योद्धा और पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन ये सब लोग परस्पर लक्ष्य करके तर्जन गर्जन करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ।
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ॥ ३४ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुनने जिनके सारथि श्रीकृष्ण हैं, उन्होंने युद्धभूमिमें यह अत्यंत अद्भुत कर्म किया कि अकेलेही अनेक महारथियोंके सङ्ग निर्भयतासे युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ।
जिगीषुस्तान्नरव्याघ्राञ्जिघांसुश्च जयद्रथम् ॥ ३५ ॥

वे महाबाहु अर्जुन उन सम्पूर्ण नरश्रेष्ठ वीरोंपर विजय पानेकी अभिलाषा करके और जयद्रथके वधकी इच्छासे अपना गाण्डीव धनुष फेरते हुए रणभूमिमें शोभित हुए ॥ ३५ ॥

तत्रार्जुनो महाराज शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ।
अदृश्यानकरोद्योधांस्तावकाञ्शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने अपने छोडे हुए सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके तुम्हारे योद्धाओंको अदृश्य कर दिया ॥ ३६ ॥

ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ।
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ॥ ३७ ॥

अनन्तर उन सब पुरुषसिंह महारथी योद्धाओंने भी समरमें चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षा कर अर्जुनको छिपा दिया ॥ ३७ ॥

संवृते नरसिंहैस्तैः कुरूणामृषभेऽर्जुने ।
महानासीत्समुद्धूतस्तस्य सैन्यस्य निस्वनः ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ३२७४ ॥

जब तुम्हारी ओरके पुरुषसिंहोंने कुरुश्रेष्ठ अर्जुनको घेर लिया, तब उस सेनामें महान् शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ ३२७४ ॥

८१

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पाञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! अर्जुन जब सिन्धुराज जयद्रथके समीप उपस्थित हुए, तब द्रोणाचार्यसे रोके हुए पाञ्चाल योद्धाओंने कौरवोंके सङ्ग किस प्रकारसे युद्ध किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
पाञ्चालानां कुरूणां च द्रोणे द्यूतमवर्तत ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अपराह्ण समयमें पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग जो कौरवोंका महाभयङ्कर रोएंको खडा करनेवाला तुमुल संग्राम हुआ था, वह मानो द्रोणाचार्यको लेकर जुएंका खेल होने लगा, अर्थात् द्रोणाचार्य पणरूपी हुए ॥ २ ॥

पाञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः ।
अभ्यवर्षन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥

मारिष ! पाञ्चाल योद्धालोग द्रोणाचार्यके वध करनेकी इच्छासे हर्षित चित्त होके सिंहनाद करते हुए उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥

ततः सुतुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्ततादूभुतः ।
पाञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥ ४ ॥

इसके बाद उन पाञ्चाल और कौरव लोगोंका देवासुर युद्धके समान घोर अत्यन्त अद्भुत और तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥ ५ ॥

पाण्डवोंके सहित सब पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके रथके निकट उपस्थित होकर उनकी व्यूह बद्ध सेनाके भेदन करनेकी इच्छासे अपने बडे अस्त्र शस्त्रोंको चलाने लगे ॥ ५ ॥

द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ ६ ॥

वे पाञ्चाल रथी लोग रथपर चढके धीरे धीरे आगे बढ पृथ्वीको कंपाते हुए द्रोणाचार्यके रथके समीप पहुंच कर उनका सामना करने लगे ॥ ६ ॥

तमभ्यगाद्बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन्निशितान्बाणान्महेन्द्राशनिसंनिभान् ॥ ७ ॥

केकय देशके महारथी योद्धा बृहत्क्षत्रने इन्द्रके वज्रके समान तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥ ७ ॥

तं तु प्रत्युदियाच्छीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन्निशितान्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

महायशस्वी क्षेमधूर्तिने शीघ्रताके सहित सैकडों तथा सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए बृहत्क्षत्रपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद्द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥

जैसे देवराज इन्द्र शम्बरासुरकी ओर धावा करते हैं, उस ही प्रकारसे अत्यंत बलवान् चेदिराज धृष्टकेतुने शीघ्रतासे द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥

उसको मुख फैलाये हुए कालके समान सहसा आक्रमण करनेके लिये आते देख महाधनुर्धर वीरधन्वा शीघ्रताके सहित उनके सम्मुख सामना करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ १० ॥

युधिष्ठिरं महाराज जिगीषुं समवस्थितम् ।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर पराक्रमी द्रोणाचार्य विजयकी अभिलाष करनेवाले युद्धभूमिमें स्थित राजा युधिष्ठिरको उनकी सेनाके सहित निवारण करने लगे ॥ ११ ॥

नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यगच्छत्समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥

प्रभो ! तुम्हारे पुत्र पराक्रमी विकर्णने वहां आते हुए युद्धविद्या जाननेवाले पराक्रमी नकुलका युद्धभूमिमें सामना किया ॥ १२ ॥

सहदेवं तथायान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्शनः ।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥

शत्रुनाशन दुर्मुख सहदेवको अपने सम्मुख आते देखकर सहस्रों बाण चलाते हुए उनके निकट उपस्थित हुए ॥ १३ ॥

सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन्वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

व्याघ्रदत्तने बार बार अपने अत्यंत तेज और तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंको कंपित करते हुए पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिको आगे बढनेसे रोका ॥ १४ ॥

द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान्मुञ्चतः सायकोत्तमान् ।
संरब्धान्रथिनां श्रेष्ठान्सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ नरव्याघ्र द्रौपदीके पांचों पुत्र क्रुद्ध होकर उत्तम तीक्ष्ण बाण शत्रुओंपर चलाते थे; उन सबको सोमदत्त पुत्रने रोका ॥ १५ ॥

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकम् ।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृङ्गिर्महारथः ॥ १६ ॥

भयंकर रूपवाले और महारथी ऋष्यशृङ्गके पुत्र अलम्बुसने भयानक भीमसेनको अत्यन्त क्रुद्ध होकर सम्मुख आते देखकर उन्हें रोक दिया ॥ १६ ॥

तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥

राजन् ! जैसे पहिले समयमें श्रीराम और रावणका युद्ध हुआ था, वैसे ही युद्धभूमिमें भीमसेन और अलम्बुसका युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठ सर्वमर्मसु भारत ॥ १८ ॥

भारत ! भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरने नब्बे नतपर्व बाणोंसे द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण मर्मस्थलोंमें प्रहार किया ॥ १८ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे ।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्यने यशस्वी कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके बाणोंके प्रहारसे क्रुद्ध होके पचीस बाणोंसे राजा युधिष्ठिरके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया ॥ १९ ॥

भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत् ।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥

द्रोणाचार्यने सब धनुर्धारियोंके देखते देखते ही फिर बीस बाणोंसे अश्व, सारथि और ध्वज सहित उनको विद्ध किया ॥ २० ॥

तान्शरान्द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः ।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २१ ॥
तब धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपना हस्तलाघव दिखाकर द्रोणाचार्यके छोडे हुए उन बाणोंको अपनी बाण वृष्टिसे रोक दिया ॥ २१ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे ।
चिच्छेद सहसा धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥
अनन्तर धनुर्धर द्रोणाचार्यने युद्धमें महात्मा धर्मराजपर अत्यंत क्रुद्ध होकर राजा युधिष्ठिरका धनुष्य सहसा काट दिया ॥ २२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥ २३ ॥
और धनुष काट देनेपर महारथी द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित कई हजार बाणोंकी वर्षासे उनको सब ओरसे छिपा दिया ॥ २३ ॥

अदृश्यं दृश्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
सम्पूर्ण प्राणियोंने राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके बाणोंके जालसे अदृश्य हुआ देखकर समझा कि महाराज युधिष्ठिर मारे गये ॥ २४ ॥

केचिच्चैनममन्यन्त तथा वै विमुखीकृतम् ।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन यशस्विना ॥ २५ ॥
राजेन्द्र ! किसी किसीने समझा कि राजा युधिष्ठिर विमुख होकर युद्ध भूमिसे भाग गये, किसी किसीने समझा कि यशस्वी द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने राजा युधिष्ठिरको हरण किया ॥२५॥

स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्यक्त्वा तत्कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ।
आददेऽन्यद्धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम् ॥ २६ ॥
इस प्रकार अत्यंत संकटमें पडे हुए धर्मराज राजा युधिष्ठिरने युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा अपना कटा हुआ धनुष्य त्यागकर फिर दूसरा एक दिव्य, प्रकाशमान, अत्यंत वेगशाली धनुष ग्रहण किया ॥ २६ ॥

ततस्तान्सायकान्सर्वान्द्रोणमुक्तान्सहस्रशः ।
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् । ॥ २७ ॥
अनन्तर वीर युधिष्ठिरने युद्धमें द्रोणाचार्यके छोडे हुए उन सहस्रों बाणोंके टुकडे कर दिये; उस समय वह अद्भुत सी घटना हुई ॥ २७ ॥

छित्त्वा च ताञ्शरान्राजा क्रोधसंरक्तलोचनः।
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम्।
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २८ ॥

समरमें क्रोधसे आंखें लाल किये राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके उन बाणोंको काटकर, पर्वतों को भी तोडनेमें समर्थ एक शक्तिको हाथमें ग्रहण किया। सुवर्ण दण्डसे युक्त आठ घण्टियोंसे शोभित वह अत्यंत भयङ्कर शक्ति मनमें भय उत्पन्न करनेवाली थी ॥ २८ ॥

समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ २९ ॥

भारत ! उसे द्रोणाचार्यकी ओर चलाकर प्रसन्न हुए बलवान् राजा युधिष्ठिरने जोरसे सिंहनाद किया; उनके सिंहनादके शब्दको सुनकर सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगये ॥ २९ ॥

शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाब्रुवन् ॥ ३० ॥

युद्धमें धर्मराज युधिष्ठिरसे छोडी हुई उस शक्तिको देखकर सम्पूर्ण प्राणी द्रोणाचार्यकी स्वस्ति हो ऐसा सहसा बोले ॥ ३० ॥

सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशश्च विदिशस्तथा।
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा ॥ ३१ ॥

राजा युधिष्ठिरके हाथसे छूटी हुई केंचुलीसे मुक्त सर्पके समान वह शक्ति आकाश, दिशा और विदिशाओंको प्रकाशित करती हुई जलते मुखवाली सांपिनके समान द्रोणाचार्यके समीप आ पहुंची ॥ ३१ ॥

तामापतन्तीं सहसा प्रेक्ष्य द्रोणो विशां पते।
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३२ ॥

हे राजेन्द्र ! अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने उस शक्तिको अपनी ओर आते देखकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ३२ ॥

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम्।
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः ॥ ३३ ॥

वह ब्रह्मास्त्र भयंकर दीखनेवाली शक्तिको भस्म करके शीघ्रही यशस्वी युधिष्ठिरके रथकी ओर गया ॥ ३३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत्समुद्यतम् ।
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव भारत ॥ ३४ ॥

भारत ! तब महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके चलाये हुए उस ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे ही शान्त किया ॥ ३४ ॥

विव्याध च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद्धनुः ॥ ३५ ॥

फिर युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित पांच नतपर्व बाणोंसे युद्धमें द्रोणाचार्यको विद्ध करके, एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे उनका महान् धनुष काट दिया ॥ ३५ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष ॥ ३६ ॥

मारिष ! क्षत्रिय मर्दन द्रोणाचार्यने उस कटे हुए धनुषको त्यागके सहसा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके ऊपर एक गदा चलायी ॥ ३६ ॥

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
गदामेवाग्रहीत्क्रुद्धश्चिक्षेप च परन्तपः ॥ ३७ ॥

उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख कर शत्रुतापन युधिष्ठिरने भी क्रुद्ध होकर एक गदा ग्रहण करके उसे द्रोणाचार्यके ऊपर चलायी ॥ ३७ ॥

ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ।
संघर्षात्पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले ॥ ३८ ॥

दोनों पुरुष सिंहोंके हाथसे सहसा छोडी हुई वे दोनों गदाएं आपसमें टक्कर खाके अग्निको उत्पन्न करती हुई पृथ्वीमें गिर पडीं ॥ ३८ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ।
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः ॥ ३९ ॥

मारिष ! इसके अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होके, चार अत्यन्त तेज, तीक्ष्ण और उत्तम बाणोंसे धर्मराजके रथके चारों घोडोंको मार डाला ॥ ३९ ॥

धनुश्चैकेन बाणेन चिच्छेदेन्द्रध्वजोपमम् ।
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चार्दयत्त्रिभिः ॥ ४० ॥

फिर एक बाणसे उनका धनुष काट दिया । अनन्तर एक बाणसे इन्द्रध्वजके समान उनकी ध्वजा काटके, तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको भी पीडित किया ॥ ४० ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ।
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ । ॥ ४१ ॥

भरतर्षभ ! राजा युधिष्ठिर अस्त्ररहित होकर घोडोंसे हीन रथसे शीघ्र ही कूदकर दोनों भुजाएं ऊपर उठाके पृथ्वीपर खडे हुए ॥ ४१ ॥

विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून्सर्वसैन्यानि चाभिभो ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्यने उन्हें रथ और विशेषतः अस्त्ररहित देखकर शत्रुओं और उनकी संपूर्ण सेनाओंको मोहित कर दिया ॥ ४२ ॥

मुञ्चन्निषुगणांस्तीक्ष्णाँल्लघुहस्तो दृढव्रतः ।
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ॥ ४३ ॥

अनन्तर जैसे पराक्रमी सिंह किसी हरिणकी ओर दौडता है, वैसे ही दृढव्रती, अपने हाथोंकी फुर्ती दिखानेवाले द्रोणाचार्य अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये तीक्ष्ण बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ ४३ ॥

तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनामित्रघातिना ।
हा हेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ॥ ४४ ॥

शत्रुनाशन द्रोणाचार्यको युधिष्ठिरकी ओर पीछा करते हुए दौडते देखकर पाण्डवोंकी सेनामें सहसा महाघोर हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ४४ ॥

हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष
इत्यासीत्सुमहाञ्शब्दः पाण्डुसैन्यस्य सर्वतः ॥ ४५ ॥

मारिष ! राजा मारे गये, राजा मारे गये, ऐसे ही तुमुल शब्द पाण्डवोंकी सेनाके बीच चारों ओरसे सुनाई देने लगे ॥ ४५ ॥

ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकाशीतमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ३३२० ॥

इसके अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर शीघ्रताके सहित सहदेवके रथपर चढके वेगपूर्वक घोडोंको दौडा कर रणभूमिसे हट गये ॥ ४६ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥ ३३२० ॥

८२

सञ्जय उवाच

बृहत्क्षत्रमथायान्तं केकयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! महापराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्रको संमुख आते देख, पराक्रमी क्षेमधूर्तिने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके बक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ १ ॥

बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो युद्धे द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २ ॥

राजन् ! राजा बृहत् क्षत्रने भी शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यकी सेनाको भेद करनेकी इच्छासे नब्बे नतपर्व बाणोंसे क्षेमधूर्तिके ऊपर प्रहार किया ॥ २ ॥

क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः केकयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३ ॥

क्षेमधूर्तिने क्रुद्ध होके एक तीक्ष्ण धारवाले भल्ल बाणसे महात्मा केयकराज बृहत्क्षत्रके धनुषको काट दिया ॥ ३ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरेण नतपर्वणा ।
विव्याध हृदये तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ४ ॥

और धनुष कट जानेपर सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ केकयराजको युद्धमें शीघ्रही एक नतपर्व बाणसे हृदयमें विद्ध किया ॥ ४ ॥

अथान्यद्धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतध्वजं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥

अनन्तर बृहत्क्षत्रने हंसते हुए दूसरा धनुप ग्रहण करके महारथी क्षेमधूर्तिको घोडे, सारथि और ध्वजसे रहित कर दिया ॥ ५ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥

और उसके अनन्तर उत्तम पानीसे बुझे हुए एक तीक्ष्ण भल्लसे प्रज्वलित कुण्डलोंसे शोभित राजा क्षेमधूर्तिके शिरको धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६ ॥

तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ७ ॥

सहसा कटा हुआ उनका घुंघराले केश और किरीट शोभित शिर पृथ्वीपर गिरकर आकाशसे गिरे हुए ज्योतिवाले तारेके समान दीख पडता था ॥ ७ ॥

तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाभ्यपतत्सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥

महारथी बृहत्क्षत्र युद्धमें क्षेमधूर्त्तिका वध करके प्रसन्न चित्तसे पाण्डवोंके प्रिय कार्यको करनेके लिये सहसा तुम्हारी सेनापर टूट पडे ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुमथायान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥

हे भारत ! द्रोणाचार्यके हितके लिये महाधनुर्धारी पराक्रमी वीरधन्वाने धृष्टकेतुको वहां आते हुए देखकर उनको रोक दिया ॥ ९ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥

वे दोनों वेगशाली वीर बाणरूपी दाढोंसे युक्त हो अपने बल पराक्रमको प्रकाशित करते हुए आपसमें भिडकर एक दूसरेके ऊपर सहस्रों बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ १० ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव रोषितौ ॥ ११ ॥

जैसे महाघोर वनके बीच दो तीव्र मदवाले यूथपति हाथी आपसमें युद्ध करते हैं, वैसेही उन दोनों पुरुषसिंहोंका आपसमें संग्राम होने लगा ॥ ११ ॥

गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव यूथपौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥

वे दोनों ही महापराक्रमी वीर एक दूसरेके वधकी अभिलाष करके मानो पर्वतकी कन्दरामें पहुंचकर लडनेवाले दो शार्दूलोंके समान क्रुद्ध होकर आपसमें लड रहे थे ॥ १२ ॥

तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशां पते ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥

महाराज ! उन दोनों वीरोंका वह तुमुल युद्ध देखने ही योग्य था; वह सिद्ध और चारण आदि सम्पूर्ण प्राणियोंको भी आश्चर्यजनक और अद्भुत दिखायी देता था ॥ १३ ॥

वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥

भारत ! तब वीरधन्वाने क्रुद्ध होकर हंसते हुए एक भल्लबाणसे धृष्टकेतुके धनुषके दो टुकडे कर दिये ॥ १४ ॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां रुक्मदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥

महारथी चेदिराज धृष्टकेतुने उस कटे हुए धनुषको त्यागकर स्वर्णदण्डसे युक्त लोहमयी एक प्रचण्ड शक्ति ग्रहण की ॥ १५ ॥

तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत ।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६ ॥

भारत ! उस अत्यंत प्रचण्ड प्रवल शक्तिको दोनों हाथोंसे उठाकर यत्नशील धृष्टकेतुने सहसा वीरधन्वाके रथपर उसे चलाया ॥ १६ ॥

स तया वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥

उस वीरघातिनी शक्तिकी अत्यंत गहरी चोट खाकर वीरधन्वाका हृदय छिन्नभिन्न हो गया और वह शीघ्रही रथसे पृथ्वी पर गिर पडा ॥ १७ ॥

तस्मिन्विनिहते शूरे त्रिगर्तानां महारथे ।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥

प्रभो ! त्रिगर्त्तदेशीय महारथी पराक्रमी शूर वीरधन्वाके मारे जानेपर पाण्डवलोग तुम्हारी सेनाको चारों ओरसे रणभूमिमें नष्ट करने लगे ॥ १८ ॥

सहदेवे ततः षष्टिं सायकान्दुर्मुखोऽक्षिपत् ।
ननाद च महानादं तर्जयन्पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥

हे भारत ! तुम्हारे पुत्र दुर्मुखने युद्धमें सहदेवके ऊपर साठ बाणोंसे प्रहार करके, उनको डांट बताते हुए बडे जोरसे गर्जना की ॥ १९ ॥

माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं दशभिः शरैः ।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥ २० ॥

यह देख माद्रीपुत्र सहदेवने क्रुद्ध होकर अपने पास आते हुए भाई दुर्मुखको हंसकर दस बाणोंसे बिद्ध किया ॥ २० ॥

तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥

भारत ! युद्धमें महाबलवान् सहदेवको वेगशील देखकर दुर्मुखने नौ बाणोंसे फिर उनके शरीरमें प्रहार किया ॥ २१ ॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः ।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

परन्तु महाबली सहदेवने एक भल्ल बाणसे दुर्मुखके रथकी ध्वजाको काटके, चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको मार डाला ॥ २२ ॥

अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर उत्तम पानीसे बुझे हुए एक तीक्ष्ण भल्ल बाणसे कुण्डलशोभित उनके सारथिका शिर धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २३ ॥

क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद्धनुः ।
सहदेवो रणे छित्त्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥ २४ ॥

फिर सहदेवने एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे समरमें दुर्मुखके बडे धनुषको काटकर, पांच बाणोंसे उन्हें भी विद्ध किया ॥ २४ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन्निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥

राजन्! भारत! अनन्तर दुर्मुख दुःखी मनसे घोडोंसे रहित रथको त्यागके निरमित्रके रथपर जा चढे ॥ २५ ॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥

अनन्तर शत्रु वीर नाशन सहदेवने क्रुद्ध होकर महायुद्धमें सेनाके बीच निरमित्रको तीक्ष्ण भल्लके प्रहारसे प्राणरहित कर दिया ॥ २६ ॥

स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥

त्रिगर्तराजके पुत्र राजा निरमित्र तुम्हारी सेनाको दुःखित करते हुए रथकी बैठकसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २७ ॥

तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८ ॥

जैसे पहले दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्र महाबली पराक्रमी खर राक्षसको मार कर युद्धभूमिमें शोभित हुए थे, उसही भांति महाबाहु सहदेव निरमित्रका वध करके संग्राममभूमिमें प्रकाशित होने लगे ॥ २८ ॥

हाहाकारो महानासीत्त्रिगर्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महाबलम् ॥ २९ ॥
त्रिगर्तराजके पुत्र महाबलवान् निरमित्रको मारा गया देखकर त्रिगर्तसेनाके बीच महाघोर हाहाकार शब्द उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥

नकुलस्ते सुतं राजन्विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्ताज्जितवान्संख्ये तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३० ॥
हे राजन् ! नकुलने तुम्हारे पुत्र बडे नेत्रवाले विकर्णको मुहूर्त भरके बीच युद्धभूमिमें पराजित किया; वह नकुलका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ ३० ॥

सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः संनतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१ ॥
व्याघ्रदत्तने सेनाके बीच अपने तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको घोडे, सारथि और रथकी ध्वजाके सहित छिपा दिया ॥ ३१ ॥

तान्निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥
शिनिपुत्र शूरवीर सात्यकिने सिद्धहस्त पुरुषके समान उनके सम्पूर्ण बाणोंका निवारण किया और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे घोडे, सारथि और रथकी ध्वजाको काटकर व्याघ्रदत्तका भी वध करके उन्हें रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ३२ ॥

कुमारे निहते तस्मिन्मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥
प्रभो ! मगधराजके पुत्र राजकुमार व्याघ्रदत्तको मारा हुआ देख मगधी सेनाके शूरवीरोंने सब ओरसे प्रयत्नशील होकर सात्यकिपर आक्रमण किया ॥ ३३ ॥

विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिण्डिपालांस्तथा प्रासान्मुद्गरान्मुसलानपि ॥ ३४ ॥
वे सम्पूर्ण शूरवीर योद्धालोग सहस्रों बाण, तोमर, भिन्दिपाल, प्रास, मुद्गर और मुसल चलाते हुए ॥ ३४ ॥

अयोधयन्रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
तांस्तु सर्वान्स बलवान्सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥
समरमें युद्धदुर्मद सात्यकिके सङ्ग युद्ध करने लगे । हे पुरुषर्षभ ! युद्धमें कठिन कर्मोंके करनेवाले बलवान् सात्यकिने हंसते हुए उन सम्पूर्ण योद्धाओंको लीलाकी भांति युद्धभूमिमें पराजित किया ॥ ३५ ॥

मागधान्द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान्समन्ततः ।
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ॥ ३६ ॥

प्रभो ! सात्यकिके बाणोंसे पीडित हुई तुम्हारी सेना मरनेसे बचे हुए मागधी सेनाके शूरवीरोंको इधर उधर चारों ओर भागते देख भग्न होकर युद्धभूमिसे भागने लगी ॥ ३६ ॥

नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ।
विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः । ॥ ३७ ॥

यदुवंशियोंकी कीर्तिको बढानेवाले महायशस्वी श्रेष्ठवीर सात्यकि तुम्हारी सेनाका नाश करके अपने उत्तम धनुषको फेरते हुए उस संग्रामभूमिमें अत्यन्त शोभित होने लगे ॥ ३७ ॥

भज्यमानं बलं राजन्सात्वतेन महात्मना ।
नाभ्यवर्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ॥ ३८ ॥

राजन् ! महाबाहु महात्मा सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर भयभीत हुई और भागती हुई वह सम्पूर्ण सेना युद्ध करनेके लिये फिर उनके संमुख नहीं आयी ॥ ३८ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ३२५९ ॥

इसके अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होके सहसा आंखें घुमाकर सत्यकर्मा सात्यकि पर स्वयं आक्रमण किया ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बयासीवां अध्याय समात ॥ ८२ ॥ ३२५९ ॥

: ८३ :

संजय उवाच

द्रौपदेयान्महेष्वासान्सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! महायशस्वी सोमदत्तके पुत्रने महाधनुर्धारी द्रौपदी पुत्रोंमेंसे एक-एकको पांच पांच बाणोंसे विद्ध करके फिर सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ १ ॥

ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किंचन ॥ २ ॥

प्रभो ! वे पांचों उस भयंकर वीर सोमदत्तके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होके रणभूमिमें सहसा मोहित हो गये, और किसी भी युद्धका कार्य नहीं जान सके ॥ २ ॥

नाकुलिस्तु शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां विद्ध्वानदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुतापनः ॥ ३ ॥

अनन्तर नकुलपुत्र शत्रुतापन शतानीकने पुरुषश्रेष्ठ सौमदत्तिको दो बाणोंसे विद्ध करके प्रसन्न होकर सिंहनाद किया ॥ ३ ॥

तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अन्य द्रौपदी पुत्रोंने युद्धमें सावधान होके प्रयत्नपूर्वक तीन तीन बाणोंसे अमर्षशील सौमदत्तिको शीघ्रताके सहित विद्ध किया ॥ ४ ॥

स तान्प्रति महाराज चिक्षिपे पञ्च सायकान् ।
एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥

महाराज ! महा यशस्वी सौमदत्तिने उन पांचों महारथियोंके हृदयमें एक एक बाणसे प्रहार किया ॥ ५ ॥

ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मना ।
परिवार्य रथैर्वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥

अनन्तर महात्मा शलके बाणोंसे पीडित हुए उन पांचों भाईयोंने उस वीरको रथोंसे चारों ओरसे घिरकर अपने बाणोंसे अत्यंत विद्ध किया ॥ ६ ॥

आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥

अर्जुनपुत्रने अत्यन्त क्रुद्ध होके अपने चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको यमलोक भेज दिया ॥ ७ ॥

भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥

भीमसेनके पुत्रने महात्मा सोमदत्तपुत्रका धनुष काट दिया; और अपने बाणोंसे उन्हें अत्यन्त विद्ध करके अत्यंत जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

यौधिष्ठिरो ध्वजं तस्य छित्त्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाश्वयन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरके पुत्रने उनकी रथकी ध्वजाको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । फिर नकुलपुत्रने सारथिको मारकर रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ९ ॥

साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् ।
क्षुरप्रेण शिरो राजन्निचकर्त महामनाः ॥ १० ॥

राजन् ! सहदेवपुत्रने सोमदत्तपुत्रको भाइयोंके द्वारा युद्धसे विमुख किया हुआ जान कर एक क्षुरप्र बाणसे सोमदत्तपुत्रके शिरको काटकर पृथ्वीमें गिराया ॥ १० ॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत्तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥

सुवर्णभूषित सोमदत्तपुत्रका वह कटा हुआ शिर पृथ्वीमें गिरकर बाल सूर्यके समान उस रणभूमिको प्रकाशित करने लगा ॥ ११ ॥

सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निपतत्तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन्प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥

राजन् ! महात्मा सोमदत्त पुत्रके शिरको कटा हुआ देख तुम्हारी सेनाके योद्धालोग अत्यंत भयभीत हो चारों ओर भागने लगे ॥ १२ ॥

अलम्बुसस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥

जैसे पहले रावणपुत्र मेघनादने लक्ष्मणके सङ्ग युद्ध किया था, वैसे ही अलम्बुस राक्षस क्रुद्ध होके महाबलवान् भीमसेनके संग युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥

संप्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षश्चाभवत्तदा ॥ १४ ॥

समरमें अलम्बुस और भीमसेनको आपसमें युद्ध करते हुए देखकर सम्पूर्ण प्राणियोंको हर्ष और विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्राजन्राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर भीमसेनने ऋष्यशृंगपुत्र अमर्षशील राक्षसश्रेष्ठ अलम्बुसको हंसकर अपने नौ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ १५ ॥

तद्रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत्ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥

वह राक्षस युद्धभूमिमें भीमसेनके बाणोंसे विद्ध होकर महाभयङ्कर शब्द करता हुआ भीमसेन और उनके अनुयायी योद्धाओंकी ओर दौडा ॥ १६ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विध्द्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
भीमानुगाञ्जघानाशु रथांस्त्रिंशदरिंदमः ।
पुनश्चतुःशतान्हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा ॥ १७ ॥

शत्रुदमन अलम्बुसने पांच नतपर्व बाणोंसे भीमसेनको विद्ध करके अपने अस्त्रोंसे उनके तीन सौ अनुयायी रथियोंका शीघ्रही नाश किया; और फिर उनकी सेनाके चार सौ योद्धाओंका वध करके, एक बाणसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ १७ ॥

सोऽतिविद्धस्तदा भीमो राक्षसेन महाबलः ।
निषसाद रथोपस्थे मूर्छयाभिपरिप्लुतः ॥ १८ ॥

महाबलवान् भीमसेन उस राक्षसके बाणसे अत्यन्त विद्ध किये जानेपर मूर्च्छित होके रथका दण्ड पकडके बैठे गये ॥ १८ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्छितः ।
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुसं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ १९ ॥

अनन्तर पवनपुत्र भीमसेन फिर सावधान होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और एक भार वहन करनेमें समर्थ, उत्तम और प्रचण्ड धनुष ग्रहण कर तीक्ष्ण बाणोंसे सब ओरसे अलम्बुसको पीडित करने लगे ॥ १९ ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन्प्रदीप्त इव किंशुकः ॥ २० ॥

राजन् ! कज्जलके नील वर्ण ढेरके समान श्याम मूर्त्तिवाला वह अलम्बुस भीमसेनके अनेक बाणोंसे विद्ध होकर रुधिरसे परिपूर्ण हो फूले पलास वृक्षके समान शोभित हुआ ॥ २० ॥

स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन्भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २१ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे युद्धमें विद्ध होकर और महात्मा भीमके हाथसे किये गये अपने भाईके वधका स्मरण कर ॥ २१ ॥

घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।
तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २२ ॥

वह राक्षस भयङ्कर रूप धारण करके भीमसेनसे यह वचन बोला, हे भीम ! अब तुम युद्धमें खडे रहो और आज मेरा पराक्रम देखो ॥ २२ ॥

बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली ।
परोक्षं मम तद्‌वृत्तं यद्‌भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २३ ॥

हे दुर्बुद्धे ! मेरे भाई राक्षसश्रेष्ठ बलवान् बकका जो तुमने वध किया था, वह सब कुछ तुमने मेरी अनुपस्थितिमें किया था ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानगतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २४ ॥

मेरे सामने तुमने अपना पराक्रम नहीं दिखलाया था । भीमसेनसे ऐसा कहकर वह राक्षस उस ही समय अन्तर्द्धान हुआ और फिर उनके ऊपर बाणोंकी भारी वर्षा करने लगा ॥ २४ ॥

भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥

राजन् ! परन्तु उस समय राक्षसके समरमें अदृश्य होनेपर भीमसेनने अपने चोखे बाणोंसे आकाशमण्डलको परिपूरित कर दिया ॥ २५ ॥

स वध्यमानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं क्षुद्रः खं चैव सहसागमत् ॥ २६ ॥

अनन्तर वह राक्षस आकाशमें भीमसेनके बाणोंसे पीडित होके क्षणभरके बीच अपने रथपर आ बैठा और वह क्षुद्र राक्षस कभी धरतीपर आजाता और कभी सहसा आकाशमें चला जाता था ॥ २६ ॥

उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ॥ २७ ॥

अनन्तर नाना प्रकारके छोटे–बडे अनेक भांतिके रूप उसने धारण किये; इसी प्रकार चारों ओरसे वह अनेक प्रकारकी बोलियां भी बोलता था ॥ २७ ॥

तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ।
हयाश्च बहवो राजन्पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः ॥ २८ ॥

राजन् ! राक्षस अलम्बुसने युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाके बहुतेरे हाथी, घोडे, रथी और पैदल चलनेवाले वीर योद्धाओंका बारबार संहार किया; उसके बाणोंसे क्षत विक्षत होकर अनेक रथी रथोंसे गिर पडे ॥ २८ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ २९ ॥

उसने रुधिरकी नदी बहा दी; जिसमें रुधिररूपी जल, रथरूपी भंवर, मरे हुए हाथी घडियाल रूपी, छत्र हंसकी श्रेणी, वीरोंकी भुजारूपी सर्प ॥ २९ ॥

नदीं प्रवर्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपाञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३० ॥

और मांसरूपी कीचडसे युक्त रणभूमिके बीच एक भयङ्करी नदी उत्पन्न हुई। राजन्! चेदि, पाञ्चाल तथा सृञ्जय योद्धा लोगोंको बहाती हुई वह नदी राक्षसोंसे घिरी हुई थी ॥ ३० ॥

तं तथा समरे राजन्विचरन्तमभीतवत् ।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३१ ॥

राजन्! उस राक्षसको इस भांति निर्भयचित्तसे रणभूमिके बीच घूमते देख, पाण्डवलोग अत्यन्तही व्याकुल होकर उसका पराक्रम देखने लगे ॥ ३१ ॥

तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत ।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥ ३२ ॥

तुम्हारी ओरके सैनिकोंको महा हर्ष उत्पन्न हुआ; वहां जुझाऊ बाजोंका रोयें खडे करनेवाला और भयंकर शब्द जोरसे होने लगा ॥ ३२ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः ।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३३ ॥

पाण्डुपुत्र भीमसेनने तुम्हारी सेनाका वह भयङ्कर हर्ष शब्द सुनकर, जैसे मतवाला हाथी ताल ठोकनेका शब्द नहीं सह सकता, वैसेही उस शब्दको सहन नहीं किया ॥ ३३ ॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः ।
संदधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारिष ॥ ३४ ॥

मारिष! भीमसेन क्रोधसे लाल नेत्र करके जलानेको उद्यत हुए अग्निके समान प्रज्वलित होगये; और उन्होंने साक्षात् त्वष्टादेवकी भांति त्वाष्ट्र अस्त्रका संधान किया ॥ ३४ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्समन्ततः ।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रावः सुमहानभूत् ॥ ३५ ॥

उससे चारों ओर सहस्रों बाण उत्पन्न हुए। उन बाणोंकी वर्षासे तुम्हारी सेनाके पुरुष शीघ्रताके सहित रणभूमिसे भागने लगे ॥ ३५ ॥

तदस्त्रं प्रेषितं तेन भीमसेनेन संयुगे ।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥ ३६ ॥

युद्धमें भीमसेनने छोडे हुए उस अस्त्रने राक्षसकी महामायाको नाश करके उस राक्षसको पीडित किया ॥ ३६ ॥

स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः।
संत्यज्य संयुगे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥
अनन्तर वह राक्षस नाना भांतिसे पीडित होके युद्धमें भीमसेनको छोडकर द्रोणाचार्यकी सेनामें भाग गया ॥ ३७ ॥

तस्मिंस्तु निर्जिते राजन्राक्षसेन्द्रे महात्मना।
अनादयन्सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ॥ ३८ ॥
राजन्! इस प्रकारसे जब वह अलम्बुस राक्षस महात्मा भीमसेनके द्वारा पराजित हुआ, तब पाण्डवोंने अपने सिंहनादोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित कर दिया ॥ ३८ ॥

अपूजयन्मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम्।
प्रह्रादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ३३९८ ॥

समरमें प्रह्लादको जीतनेपर मरुत्गणोंने जैसे देवराज इन्द्रकी प्रशंसा की थी, वैसे ही पाण्डव लोग अत्यंत प्रसन्न होके महाबलवान् भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ ३३९८ ॥

: ८४ :

सञ्जय उवाच

अलम्बुसं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत्।
हैडिम्बः प्रययौ तूर्णं विव्याध च शितैः शरैः ॥ १ ॥
सञ्जय बोले— महाराज! अलम्बुसको इसप्रकार रणभूमिमें निर्भयचित्तसे घूमते हुए देखकर हिडम्बापुत्र घटोत्कच शीघ्र ही उसके समीप जाके उसे तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगा ॥ १॥

तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २ ॥
जैसे पहिले समयमें इन्द्र और शंबरासुरका संग्राम हुआ था, वैसे ही वे दोनों सिंहके समान पराक्रमी राक्षस श्रेष्ठ नाना भांतिकी माया उत्पन्न करके भयङ्कर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

अलम्बुसो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत्।
घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे।
अलम्बुसमथो विद्ध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥ ३ ॥
तब अलम्बुसने अत्यंत क्रोधसे व्याप्त होकर घटोत्कचको विद्ध किया। अनन्तर घटोत्कच भी अलम्बुसके हृदयमें बीस नाराच बाणोंसे प्रहार करके बार बार सिंहनाद करने लगा ॥ ३ ॥

तथैवालम्बुसो राजन्हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ।
विद्ध्वा विद्ध्वानदद्धृष्टः पूरयन्खं समन्ततः ॥ ४ ॥

राजन् ! अनन्तर इसी प्रकार अलम्बुसने युद्धदुर्मद घटोत्कचको बार बार विद्ध करके हर्षित होकर चारों ओर आकाशको अपने भयङ्कर शब्दसे परिपूरित कर दिया ॥ ४ ॥

तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ।
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् ॥ ५ ॥

महाबली पराक्रमी वे दोनों राक्षस श्रेष्ठ अत्यंत क्रुद्ध होकर परस्पर माया उत्पन्न करते हुए समान रूपसे युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

मायाशतसृजौ दृप्तौ मोहयन्तौ परस्परम् ।
मायायुद्धे सुकुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ॥ ६ ॥

दोनों ही मायायुद्धमें निपुण और बलसे मतवाले थे, इससे दोनों ही सैकडों प्रकारकी माया उत्पन्न करके एक दूसरेको मोहित करते हुए मायायुद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप ।
तां तामलम्बुसो राजन्माययैव निजघ्निवान् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! घटोत्कच युद्धमें जो जो माया उत्पन्न करता था, अलम्बुस अपनी मायासे ही उसकी मायाको नष्ट कर देता था ॥ ७ ॥

तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ।
अलम्बुसं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाक्रुध्यन्त पाण्डवाः ॥ ८ ॥

महायुद्ध जाननेवाले राक्षसराज अलम्बुसको इस प्रकार युद्ध करते देख सब पाण्डव अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥ ८ ॥

त एनं भृशसंक्रुद्धाः सर्वतः प्रवरा रथैः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ॥ ९ ॥

हे नृप ! वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए भीमसेन आदि श्रेष्ठ वीर फिर क्रोधित होकर रथोंसे सब ओरसे उसपर टूट पडे ॥ ९ ॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
सर्वतो व्यकिरन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १० ॥

मारिष ! जैसे मशाल जलाके चारों ओरसे घेरकर हाथीको पीडित करते हैं, वैसे ही वे सब लोग रथसमूहोंसे उसको कोष्ठबद्ध करके चारों ओरसे उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ।
तस्माद्रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ॥ ११ ॥

जैसे जलते हुए वनसे हाथी मुक्त होता है, वैसे ही वह राक्षस उन संपूर्ण महारथियोंके अस्त्रोंके वेगको अपने अस्त्रोंकी मायासे नष्ट करके उन लोगोंके रथोंके बीचसे निकल कर पृथक् हुआ ॥ ११ ॥

स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः । ॥ १२ ॥

अनन्तर उसने इन्द्रके वज्रके समान शब्द करनेवाला अपना भयंकर धनुष चढा कर भीमसेनको पचीस, उनके पुत्र घटोत्कचको पांच, युधिष्ठिरको तीन और सहदेवको सात बाण मारे ॥ १२ ॥

नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १३ ॥

फिर नकुलको तिहत्तर और द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको पांच पांच बाणोंसे विद्ध करके घोर सिंहनाद किया ॥ १३ ॥

तं भीमसेनो नवभिः सहदेवश्च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ।
नकुलश्च चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १४ ॥

अनन्तर भीमसेनने नौ, सहदेवने पांच, युधिष्ठिरने एक सौ, नकुलने चौसठ और द्रौपदीके पुत्रोंने तीन तीन बाणोंसे उस राक्षसको विद्ध किया ॥ १४ ॥

हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ॥ १५ ॥

महाबलवान् घटोत्कचने युद्धमें उसे पचास बाणोंसे विद्ध किया, फिर सत्तर बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया ॥ १५ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सर्वतस्तैर्महारथैः
प्रतिविव्याध तान्सर्वान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १६ ॥

उन महाधनुर्द्धर महारथियोंके बाणोंसे सब ओरसे अत्यन्त विद्ध होकर अलम्बुसने भी उन लोगोंको पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ १६ ॥

तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! परंतु घटोत्कच राक्षसने उसके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होके उस क्रोधी राक्षसको युद्धमें सात बाणोंसे फिर विद्ध किया ॥ १७ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ॥ १८ ॥

अनन्तर राक्षसेन्द्र महाबलवान् अलम्बुस पराक्रमी बलवान् घटोत्कचके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर स्वर्णपंखवाले शिलापर घिसे हुए अनेक तीक्ष्ण बाणोंको चलाने लगा ॥ १८ ॥

ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ।
रुषिताः पन्नगा यद्वद्गिरिमुग्रा महाबलाः ॥ १९ ॥

जैसे महाबलवान् भयंकर सर्प क्रुद्ध होकर कठिन पर्वतमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे समस्त नतपर्व बाण घटोत्कचके शरीरमें घुस गये ॥ १९ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन्समन्तान्निशिताञ्शरान् ।
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः । ॥ २० ॥

राजन् ! इसके अनन्तर पाण्डव लोग और हिडिम्बापुत्र घटोत्कच उद्विग्न होकर चारों ओरसे अपने तीक्ष्ण बाणोंको उसके ऊपर चलाने लगे ॥ २० ॥

स वध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् । ॥ २१ ॥

जयकी अभिलाषा करनेवाले पाण्डवोंने समरमें उसको अत्यन्त ही विद्ध किया; तब वह राक्षस जले हुए पर्वत शिखर और भग्न कोयलेके ढेरके समान प्रतीत होता था ॥ २१ ॥

समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविध्य च पुनः पुनः ।
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाश्मनि ॥ २२ ॥

फिर घटोत्कचने अपने दोनों हाथोंसे अलम्बुसको ऊपर उठाकर बार बार घुमाया और जैसे जलसे भरे हुए घडेको पत्थरके ऊपर पटकके चूर चूर कर देते हैं, वैसे ही उसे शीघ्र ही पृथ्वी पर फेंक कर उसको प्राणरहित कर दिया ॥ २२ ॥

बललाघवसंपन्नः संपन्नो विक्रमेण च ।
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत् ॥ २३ ॥

घटोत्कच बल, पराक्रम और फुर्तीसे संपन्न था; उसने युद्धमें क्रुद्ध होकर संपूर्ण सेनाओंको भयभीत कर दिया ॥ २३ ॥

स विस्फुटितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिविभूषणः ।
घटोत्कचेन वीरेण हतः सालकटङ्कटः ॥ २४ ॥

वीर घटोत्कचके हाथसे मारे गये शालकटंकटाके पुत्र अलम्बुषके सारे अंग फट गये; उसके शरीरकी संपूर्ण हड्डियां छितरा गई थीं । उस समय उसका स्वरूप अत्यन्त भयंकर दिखाई देने लगा ॥ २४ ॥

ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन्निशाचरे ।
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ २५ ॥

उस राक्षसके मारे जानेपर सब कुन्तीपुत्र आनन्दित होके सिंहनाद करने लगे, और आनंदसे वस्त्रोंको फहराने लगे ॥ २५ ॥

तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ।
अलम्बुसं भीमरूपं विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकुर्वन्त सैन्यानि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतर्षभ ! तुम्हारी ओरके शूरवीर योद्धालोग और उनकी सारी सेनाएं टूटे हुए पर्वतके समान महाबलवान् भयंकर रूपवाले, राक्षसराज अलम्बुसको मारा गया देखकर हाहाकार शब्द करने लगे ॥ २६ ॥

जनाश्च तद्ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः ।
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ २७ ॥

उस समय सम्पूर्ण प्राणी पृथ्वीपर अकस्मात् टूटकर गिरे हुए मंगल ग्रहके समान पृथ्वीपर पडे हुए उस राक्षसको कौतूहलवश देखने लगे ॥ २७ ॥

घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ २८ ॥

जैसे इन्द्रने बलासुरका वध करके सिंहनाद किया था; उस ही प्रकारसे घटोत्कचने महा-बलवान् राक्षसराज अलम्बुसका वध करके बलपूर्वक सिंहनाद किया ॥ २८ ॥

स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवैर्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा अलम्बुसं पक्वमलम्बुलं यथा ॥ २९ ॥

घटोत्कचके पिता, पितृव्य और दूसरे बन्धु बान्धव लोग उसे कठिन कर्म करते देख आदरके सहित उसकी प्रशंसा करने लगे । घटोत्कच भी उस समय पके हुए फल तोडनेके समान अलम्बुसका वध करके अत्यन्त ही आनन्दित हुआ ॥ २९ ॥

ततो निनादः सुमहान्समुत्थितः सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु कौरवास्ततो ध्वनिर्भुवनमथास्पृशाद् भृशम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुरशीतमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ३४२८ ॥

इसके अनन्तर पाण्डवोंकी सेनामें शङ्खके शब्द और जुझाऊ बाजोंके सहित नाना भांतिके बाणोंकी सनसनाहटके आनन्दके शब्द सुनाई देने लगे। उसे सुनकर कौरव लोग भी उसके विरुद्ध नाना भांतिके बाजोंके सहित महाघोर शब्द करने लगे। उससे अत्यन्त भयङ्कर शब्द उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पृथ्वीमें परिपूरित हो गया ॥ ३० ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ ३४२८ ॥

: ८५ :

धृतराष्ट्र उवाच

भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानोऽभ्यवारयत् ।
संजयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! सात्यकिने द्रोणाचार्यको किस भांति निवारण किया ? इस वृत्तान्तको तुम विस्तार पूर्वक मेरे समीप वर्णन करो। इसे सुननेके लिये मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

शृणु राजन्महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– हे महाप्राज्ञ राजन् ! सात्यकि आदि पाण्डवोंके योद्धाओंके साथ द्रोणाचार्यका जो रोएंको खडा करनेवाला तुमुल युद्ध हुआ था, वह मैं वर्णन करता हूं; तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ २ ॥

वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत्स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥

मारिष ! जब तुम्हारी सेनाको द्रोणाचार्यने युयुधानसे पीडित होते देखा, तब द्रोणाचार्य स्वयं सत्यपराक्रमी सात्यकिकी ओर दौडे ॥ ३ ॥

तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥

सात्यकिने महारथी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यको सहसा अपनी ओर आते देख उनके ऊपर पचीस क्षुद्रक बाण चलाये ॥ ४ ॥

द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः ।
अविध्यत्पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ५ ॥

पराक्रमी द्रोणाचार्यने भी युद्धमें सावधान चित्त हो शीघ्रताके सहित हेमपुङ्खयुक्त पांच तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ ५ ॥

ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्यगुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥

राजन् ! शत्रुमांस भक्षण करनेवाले वे बाण सात्यकिके सुदृढ कवचको भेद कर क्रोधसे फुफकारते हुए सर्पोंके समान पृथ्वीमें घुस गये ॥ ६ ॥

दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताविध्यन्नाराचैरग्निसंनिभैः ॥ ७ ॥

महाबाहु सात्यकिने उन बाणोंसे विद्ध होकर मानो अंकुशसे विद्ध हुए गजराजके समान अत्यंत क्रुद्ध होकर अग्नि तुल्य पचास नाराच बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ ७ ॥

भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥

सात्यकिके बाणोंसे युद्धमें विद्ध होकर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित अनेक बाणोंसे विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले सात्यकिको विद्ध किया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शतेन नतपर्वणा ॥ ९ ॥

फिर महाधनुर्धारी महाबलवान् द्रोणाचार्यने अत्यंत क्रुद्ध होकर सौ नतपर्व बाणोंसे सात्यकिको पीडित किया ॥ ९ ॥

स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नाभ्यपद्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशां पते ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! सात्यकि उस समय युद्धमें द्रोणाचार्यके बाणोंसे विद्ध होकर क्या कार्य करना उचित है, ऐसी ही चिन्ता करते हुए कुछ भी निश्चय नहीं कर सके ॥ १० ॥

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप ।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥ ११ ॥

राजन् ! बल्कि युद्धमें द्रोणाचार्यको तीक्ष्ण बाण चलाते हुए देखकर युयुधान विषण्णवदन हो गये ॥ ११ ॥

तं तु संप्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशां पते ।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १२ ॥

पृथ्वीपते ! तुम्हारे पुत्र और कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग सात्यकिको इस प्रकार विकल देखकर आनन्दित हो बार बार सिंहनाद करने लगे ॥ १२ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीडयमानं च माधवम् ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद्राजन्सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥

भारत ! राजा युधिष्ठिर उन योद्धाओंके भयङ्कर सिंहनादको सुनकर और सात्यकिको द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित देखकर अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंसे बोले ॥ १३ ॥

एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यकर्मकृत् ।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ।
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते ॥ १४ ॥

जैसे राहु सूर्यको ग्रास करता है, वैसे ही वीर द्रोणाचार्य युद्धमें यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीर सत्य कर्म करनेवाले सात्यकिका ग्रास कर रहे हैं; इसलिये जहां पर सात्यकि युद्ध कर रहे हैं, उस ही स्थानपर तुम लोग गमन करो; जल्दी दौडो ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिप ।
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किं नु तिष्ठसि पार्षत ।
न पश्यसि भयं घोरं द्रोणान्नः समुपस्थितम् ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नसे बोले, हे पृषतनन्दन ! तुम किस प्रकारसे निश्चिन्त हो खडे रहे हो ? शीघ्र ही द्रोणाचार्य पर आक्रमण करो। क्या तुम नहीं देखते हो, कि द्रोणाचार्यसे हम लोगोंको महान् घोरभय उपस्थित हुआ है ? ॥ १५ ॥

असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे ।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १६ ॥

जैसे बालक सूत्रसे बद्ध किये पक्षीसे खेल करता है, वैसे ही महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें सात्यकिको अपने बाणोंसे पीडित करते हुए क्रीडा कर रहे हैं ॥ १६ ॥

तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनमुखा रथाः ।
त्वयैव सहिता यत्ता युयुधानरथं प्रति ॥ १७ ॥

भीमसेन आदि सब महारथी लोग तुम्हारे साथ यत्नवान् होकर वहीं युयुधानके रथके समीप गमन करें ॥ १७ ॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः ।
सात्यकिं मोक्षयस्वाद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ १८ ॥

तुम सब कोई मिलकर यमराजके कराल मुखमें पडे हुए के समान सात्यकिको इस समय द्रोणाचार्यके हाथसे छुडाओ; सेनाके सहित मैं भी तुम लोगोंके पीछे पीछे आऊंगा ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन पाण्डवः ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ १९ ॥

पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने ऐसा कहके तब संपूर्ण सेनाके सहित सात्यकिकी रक्षाके लिये युद्धमें द्रोणाचार्य पर धावा किया ॥ १९ ॥

तत्राराबो महानासीद्द्रोणमेकं युयुत्सताम् ।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ २० ॥

राजन् ! आपका कल्याण हो ! संपूर्ण पाण्डव और सृंजयलोग जब अकेले द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेके लिये उनकी ओर गमन करने लगे, तब उन लोगोंका उस समय महाभयङ्कर शब्द होने लगा ॥ २० ॥

ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २१ ॥

अनन्तर वे नरश्रेष्ठ संपूर्ण योद्धा लोग इकट्ठे होके कंक और मोरपंखसे युक्त तीक्ष्ण बाणोंको द्रोणाचार्यके पास जाकर उनके ऊपर बरसाने लगे ॥ २१ ॥

स्मयन्नेव तु तान्वीरान्द्रोणः प्रत्यग्रहीत्स्वयम् ।
अतिथीनागतान्यद्वत्सलिलेनासनेन च ॥ २२ ॥

जैसे घरपर आये हुए अतिथियोंका गृहस्थ पुरुष आसन, जल आदि वस्तुओंको प्रदान करके उनका सत्कार करते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्यने स्वयं युद्धभूमिमें उन सब वीरोंका योग्य संमान किया ॥ २२ ॥

तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः ।
आतिथेयगृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥ २३ ॥

जैसे अतिथि लोग सत्कार निपुण गृहस्थके अतिथिशालामें पहुंचकर संमानित होते हैं, वैसे ही वे संपूर्ण योद्धा लोग महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे संमानित हुए ॥ २३ ॥

भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २४ ॥

प्रभो ! उस समय मध्यन्दिनके सहस्ररश्मि सूर्यके समान प्रकाशमान द्रोणाचार्यकी ओर कोई भी देखनेमें समर्थ न हो सके ॥ २४ ॥

तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् ॥ २५ ॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्को त्रस्त करते हैं, वैसे ही शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने बाणसमूहोंको चारों ओर चलाकर पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको पीडित करने लगे ॥ २५ ॥

बध्यमाना रणे राजन्पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २६ ॥

राजन् ! पाण्डव और सृञ्जय लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होके कीचडमें फंसे हुए हाथियोंके समान किसीको भी अपना परित्राण करनेवाला न देख सके ॥ २६ ॥

द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः ।
गभस्तय इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २७ ॥

उस समय द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए सूर्य किरणोंके समान प्रकाशमान महान् बाण ही चारों ओर फैलते और शत्रुओंको संतप्त करते दिखाई देते थे ॥ २७

तस्मिन्द्रोणेन निहताः पाञ्चालाः पञ्चविंशतिः ।
महारथसमाख्याता धृष्टद्युम्नस्य संमताः ॥ २८ ॥

उस समय धृष्टद्युम्नसे संमानित हुए पाञ्चाल देशीय पचीस विख्यात महारथी योद्धा द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वी पर गिर पडे ॥ २८ ॥

पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पाञ्चालानां तथैव च ।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान्वरान् ॥ २९ ॥

उस समय सम्पूर्ण प्राणी महापराक्रमी द्रोणाचार्यको पाण्डवसेना और पाञ्चाल सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंका ही वध करते हुए देखने लगे ॥ २९ ॥

केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः ।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३० ॥

महाराज ! द्रोणाचार्यने केकयदेशीय एक सौ योद्धाओंका वध किया और संपूर्ण योद्धाओंको चारों ओर रणभूमिसे भगाकर, वे मुंह पसारे हुए यमराजके समान रणभूमिमें स्थित हुए ॥ ३० ॥

पाञ्चालान्सृञ्जयान्मत्स्यान्केकयान्पाण्डवानपि ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥

अनन्तर महाबाहु द्रोणाचार्यने सैकडों और सहस्रों पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य, केकय और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंको युद्धभूमिमें पराजित किया ॥ ३१ ॥

तेषां समभवच्छब्दो वध्यतां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवारण्ये दह्यतां धूमकेतुना ॥ ३२ ॥

वे सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर अरण्यमें चारों ओरसे दावाग्निसे दग्ध होते हुए वनवासी प्राणियोंके समान आर्त शब्द करते सुनायी पडे ॥ ३२ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाब्रुवन्नृप ।
एते द्रवन्ति पाञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३३ ॥

राजन् ! आकाशमें स्थित देवता, गन्धर्व और पितर लोग यह वचन कहने लगे– 'ये पाञ्चाल और पाण्डव अपनी सेनाओंके सहित युद्धभूमिसे भाग रहे हैं' ॥ ३३ ॥

तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान्रणे ।
न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य जब इस प्रकारसे समरमें सोमकोंका वध कर रहे थे, तब कोई योद्धा भी उनके संमुख न जा सके, और न उन्हें अपने बाणोंसे विद्ध ही कर सके ॥ ३४ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अशृणोत्सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निस्वनम् ॥ ३५ ॥

श्रेष्ठ वीरोंका नाश करनेवाला वह महाघोर संग्राम चल ही रहा था, तब युधिष्ठिरने अकस्मात् पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुना ॥ ३५ ॥

पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याभिरक्षिषु ।
नदत्सु धार्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ॥ ३६ ॥

सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करनेवाले महारथी वीर युद्ध कर रहे थे; श्रीकृष्णने उस समय शंखराज पाञ्चजन्यको बलपूर्वक बजा कर उसके ध्वनिसे सब मण्डल पूरित कर दिया; धृतराष्ट्रकी ओरके योद्धालोग अर्जुनके रथके समीप उस समय सिंहनाद कर रहे थे ॥ ३६ ॥

गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रनष्टे समन्ततः ।
कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः ॥ ३७ ॥

उस ही कारणसे गाण्डीव धनुषका शब्द नहीं सुन पडता था । तब पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर दुःखित और मोहित होकर चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥

न नूनं स्वस्ति पार्थस्य यथा नदति शङ्खराट् ।
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥

'जब केवल पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुनाई देता है, और कौरव लोग भी हर्षित होकर बार बार गर्जना कर रहे हैं, तब अवश्यही अर्जुनके स्वस्तिविषयमें विघ्न उपस्थित हुआ है' ॥ ३८ ॥

एवं संचिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना ।
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्यकं प्रत्यभाषत ॥ ३९ ॥
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुंगवम् । ॥ ४० ॥

इसी प्रकार चिन्ता करते हुए अजातशत्रु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर व्याकुलचित्त हो गये; और उस समय वे जयद्रथवधका कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण होवे, ऐसा वे चाहते थे; इसलिये बारबार मोहित होकर अश्रुगद्गद वाणीसे शिनिश्रेष्ठ सात्यकिसे यह वचन बोले ॥ ३९–४० ॥

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः ।
सांपराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४१ ॥

हे शैनेय ! युद्धमें विपत्तिके समय सुहृद् मित्रोंके कर्त्तव्य विषयमें पहिले समयके ऋषियोंने जिस सनातन धर्मका वर्णन किया है, उसका समय आज यही उपस्थित हुआ है ॥ ४१ ॥

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुंगव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥ ४२ ॥

शिनिश्रेष्ठ सात्यकि ! मैंने खूब सोच कर देखा, परन्तु सम्पूर्ण योद्धालोगोंके बीच तुमसे बढके सुहृद्-पुरुष मैं किसीको भी नहीं समझता हूं ॥ ४२ ॥

यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः ।
स कार्ये सांपराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४३ ॥

जो पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है, और सर्वदा अपने अनुकूल रहता है, मेरे विचारसे युद्धसम्बन्धी संकट कालके कार्योंमें उसीको ही नियुक्त करना उचित है ॥ ४३ ॥

यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४४ ॥

हे वृष्णिकुलभूषण ! जैसे श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके परम सहायक हैं, वैसेही श्रीकृष्णके समान पराक्रमी तुम भी पाण्डवोंके अवलम्बस्वरूप हो ॥ ४४ ॥

सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि ।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥ ४५ ॥

इससे तुम्हारे ही ऊपर मैं यह भार अर्पण करता हूं, तुम इस भारके शीघ्र उठाने योग्य हो, और तुम्हें कदापि मेरे अभिप्रायको व्यर्थ नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥

स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे ।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! अर्जुन तुम्हारे भाई, मित्र और गुरु हैं, इसलिये तुम इस संकटके समय संग्रामभूमिके बीच उनकी सहायता करनेके लिये शीघ्र प्रयत्न करो ॥ ४६ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः ।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४७ ॥

हे वीर ! तुम सत्य व्रत करनेवाले, शूरवीर, मित्रोंको अभय देनेवाले और अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे पृथ्वीके बीच सत्यवादीके रूपमें विख्यात हो ॥ ४७ ॥

यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत्तनुम् ।
पृथिवीं वा द्विजातिभ्यो यो दद्यात्सममेव तत् ॥ ४८ ॥

हे सात्यकि ! जो मित्रके निमित्त युद्ध करते हुए शरीरका त्याग करता है, और जो ब्राह्मणोंको भूमिदान करता है, वे दोनों ही समान पुण्यात्मा कहे जाते हैं ॥ ४८ ॥

श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः ।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ४९ ॥

हमने सुना है, अनेक राजा लोग इस सम्पूर्ण पृथ्वीका ब्राह्मणोंको यथारीतिसे दान करके स्वर्गलोकको गये हैं ॥ ४९ ॥

एवं त्वामपि धर्मात्मन्प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः ।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥ ५० ॥

धर्मात्मा ! इसी प्रकार तुमसे भी मैं हाथ जोडकर यह प्रार्थना करता हूं, कि अर्जुनकी सहायता करके तुम मेरी इच्छा पूर्ण करो । प्रभो ! तो तुम्हें पृथ्वी दान करनेके समान वा उससे भी अधिक पुण्य–फल मिलेगा ॥ ५० ॥

एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः ।
रणे संत्यजति प्राणान्द्वितीयस्त्वं च सात्यके ॥ ५१ ॥

हे सात्यकि ! अकेले श्रीकृष्ण ही हमारे ऊपर प्रेम करते और अभय देते हुए सदा हमारे लिये युद्धमें प्राणत्याग करनेके लिये उद्यत रहते हैं, और दूसरे तुम ॥ ५१ ॥

विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः ।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५२ ॥

जो वीर युद्ध करके यश प्राप्त करनेकी अभिलाष करता है, वैसे पराक्रमी शूरवीरकी सहायता उसके समान शूरवीर पुरुष ही कर सकता है, साधारण पुरुष उसकी सहायता नहीं कर सकता ॥ ५२ ॥

ईदृशे तु परामर्दे वर्तमानस्य माधव ।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५३ ॥

माधव ! ऐसे भयंकर संग्रामभूमिमें अर्जुनकी रक्षा करनेवाला इस समय तुम्हें छोडकर और दूसरा कोई नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥

*

श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः ।
मम संजनयन्हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५४ ॥

अर्जुनने तुम्हारे सैकडों कर्मोंकी प्रशंसा करके मुझे हर्षित करते हुए बार बार तुम्हारे गुणोंका वर्णन किया है ॥ ५४ ॥

लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च तथा लघुपराक्रमः ।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥ ५५ ॥

सात्यकि विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला, हस्त लाघवसे अस्त्र चलानेवाला, शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाला, बुद्धिमान् , सब अस्त्रोंके मर्मको जाननेवाला, शूरवीर और युद्धमें कदापि भयभीत नहीं होता ॥ ५५ ॥

महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाधनुः ।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥ ५६ ॥

वह ऊंचे कन्धे, चौडी छाती, लम्बी भुजा और विशाल ठोढीवाला है; वह महाबलवान् , महापराक्रमी, महारथी और महात्मा है ॥ ५६ ॥

शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे ।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५७ ॥

तथा वह मेरा मित्र और शिष्य है; मैं उसको प्रिय हूं और वह मुझे; युयुधान युद्धके समयमें मेरा सहायक होकर कौरवोंका नाश करेगा ॥ ५७ ॥

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद्यदि केशवः ।
रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५८ ॥

हे राजेन्द्र ! यदि हमारी सहायताके लिय कवच धारण करके श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न ॥ ५८ ॥

गदो वा सारणो वापि साम्बो वा सह वृष्णिभिः ।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ५९ ॥

गद, सारण अथवा संपूर्ण यदुवंशियोंके सहित साम्ब युद्धभूमिमें तयार होंगे ॥ ५९ ॥

तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् ।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६० ॥

तो भी मैं सत्य पराक्रमी पुरुषसिंह शिनिपौत्र सात्यकिको अपनी सहायताके निमित्त युद्धके कार्योंमें नियुक्त करूंगा, उसके समान मेरा हितू दूसरा कोई नहीं है ॥ ६० ॥

इति द्वैतवने तात मामुवाच धनंजयः ।
परोक्षं त्वद्गुणांस्तथ्यान्कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६१ ॥
यह बचन अर्जुनने मुझसे द्वैतवनके बीच महात्मा ऋषियोंकी सभामें तुम्हारे यथार्थ गुणोंका वर्णन करते हुए परोक्षमें कहा था ॥ ६१ ॥

तस्य त्वमेवं संकल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि ।
धनञ्जयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६२ ॥
वार्ष्णेय ! इसलिये अर्जुन, मैं, भीमसेन और दोनों माद्रीकुमारोंका जो तुम्हारे लिये हमारे मनमें पूर्ण विश्वास है, उसे तुम्हें व्यर्थ नहीं करना चाहिये ॥ ६२ ॥

यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति ।
तत्राहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६३ ॥
तुम्हारी जो अर्जुनके ऊपर दृढ भक्ति और प्रेम है, उसे हम लोग तीर्थाटन करते हुए जब द्वारिकामें पहुंचे थे, उस ही समय सब मालूम कर लिया था ॥ ६३ ॥

न तत्सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् ।
यथा त्वमस्मान्भजसे वर्तमानानुपप्लवे ॥ ६४ ॥
सात्यकि ! वर्तमान संकटमें तुम हमें जिस प्रकार प्रेमयुक्त सहायता करते हो, वैसी मित्रता और भक्ति हमने तुम्हारे बिना दूसरोंमें नहीं देखी है ॥ ६४ ॥

सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च ।
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६५ ॥
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च ।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६६ ॥
हे महाबाहो ! तुम्हारा जैसे उत्तम वंशमें जन्म हुआ है, इन लोगोंके ऊपर जैसी तुम्हारी भक्ति है, मित्रता और प्रेमके सहित अर्जुनको अपना गुरु कहके तुम जिस प्रकार उनको मान्य करते रहते हो, तथा तुम्हारी जैसी मित्रता, पराक्रम, कुलीनता और सत्यनिष्ठा है, हे महाधनुर्धर माधव ! उनहींके अनुरूप तुम्हें कार्य करनेमें प्रवृत्त होना उचित है, और कृपा करके भी तुम इस कार्यको कर सकते हो ॥ ६५–६६ ॥

सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः ।
पूर्वमेव तु यातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६७ ॥
द्रोणाचार्यने दुर्योधनको अभेद कवच पहना दिया है, इसहीसे वह निडर होकर सहसा अर्जुनके समीप सामना करनेके लिये गया है और कौरवोंके दूसरे महारथी योद्धा लोग पहिलेहीसे वहां युद्धके लिये गये हैं ॥ ६७ ॥

सुमहान्निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति ।
स शैनेय जवेनात्र गन्तुमर्हसि माधव ॥ ६८ ॥

इस समय अर्जुनके समीप अत्यन्त जोरकी गर्जना सुनाई दे रही है, हे मानद शैनेय ! इसलिये तुम्हें शीघ्रतासे ही वहां जाना चाहिये ॥ ६८ ॥

भीमसेनो वयं चैव संयत्ताः सहसैनिकाः ।
द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रति यास्यति ॥ ६९ ॥

यदि द्रोणाचार्य तुम्हें रोकनेके निमित्त तुम्हारे संग युद्ध करेंगे, तो भीमसेन और सम्पूर्ण सेनाके सहित मैं यत्नपूर्वक उन्हें निवारण करेंगे ॥ ६९ ॥

पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे ।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥ ७० ॥

हे शैनेय ! यह देखो, सम्पूर्ण सेनाएं युद्धमें ऊधर भाग रही हैं; और रणभूमिमें महाघोर शब्द हो रहा है । कौरवोंकी सेनाएं विदीर्ण हो रही हैं ॥ ७० ॥

महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु ।
धार्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७१ ॥

तात ! जैसे पूर्णिमाके दिन महाप्रचण्ड वायुके वेगसे समुद्र उथलित होता है, वैसेही सव्यसाची अर्जुन कौरवोंकी सेनाको अपने बाणोंसे पीडित करके तितर बितर कर रहे हैं ॥७१॥

रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह ।
सैन्यं राजःसमुद्धूतमेतत्संपरिवर्तते ॥ ७२ ॥

रथ, घोडे और पैदल सेनाके योद्धाओंके इधर उधर दौडनेसे धूलि उड रही है; और उस धूलिने आच्छादित होकर यह सारी सेना इधर उधर घूम रही है ॥ ७२ ॥

संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः ।
अत्यन्तापचितैः शूरैः फल्गुनः परवीरहा ॥ ७३ ॥

शत्रुवीरनाशन अर्जुन अस्त्र-शस्त्र और प्रास चलानेवाले एकत्र हुए अनेक सिन्धु और सौवीर देशीय शूरवीरोंके बीचमें घिर गये हैं ॥ ७३ ॥

नैतद्बलमसंवार्य शक्यो हन्तुं जयद्रथः ।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे संत्यक्तजीविताः ॥ ७४ ॥

ये सब लोग सिन्धुराज जयद्रथके लिये प्राण देनेको तैयार हैं, उन लोगोंको विना पराजित किये अर्जुन जयद्रथका वध न कर सकेंगे ॥ ७४ ॥

शरशक्तिध्वजवनं हयनागसमाकुलम् ।
पश्यैतद्धार्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७५ ॥

बाण, शक्ति, ध्वजा, घोडे और हाथियोंसे युक्त यह सम्पूर्ण कौरवोंकी सेना अत्यन्त दुर्गम्य है, देखो ॥ ७५ ॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान् ।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७६ ॥

यह सुनो, नगाडे और शङ्खोंके शब्द, शूरवीरोंके सिंहनाद और रथोंके पहियोंकी घरघराहट ॥ ७६ ॥

नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः ।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७७ ॥

हाथियोंकी चिङ्घाड, सहस्रों पैदल सेनाके शूरवीरों और पृथ्वीको कंपित करते हुए दौडनेवाले घुडसवारोंके शब्द सुनो ॥ ७७ ॥

पुरस्तात्सैन्धवानीकं द्रोणानीकस्य पृष्ठतः ।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७८ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! अर्जुनके आगे सिन्धुराजकी और पीछे द्रोणाचार्यकी सेना है; इसकी संख्या इतनी अधिक है कि यह देवराज इन्द्रको भी पीडित कर सकती है ॥ ७८ ॥

अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम् ।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ।
सर्वथाहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं बत जीवितम् ॥ ७९ ॥

इस अपरम्पार सेनाके बीचमें घिर कर अर्जुन प्राणत्याग भी करेंगे, युद्धमें उनके मारे जानेपर मेरे समान पुरुष कैसे जीवित रह सकेगा ? मैं सब प्रकारसे बडे संकटमें पड गया हूं । धिक् जीवित है ॥ ७९ ॥

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् ॥ ८० ॥

तात ! पाण्डुपुत्र अर्जुन श्यामवर्ण, युवा, सुन्दर, हस्तलाघवके सहित अस्त्रोंके चलानेवाले और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले हैं; वे कौरवोंकी सेनाके बीचमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ ८० ॥

सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्तते ।
तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा ।
कुरूणां चापि तत्सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८१ ॥

उस महाबाहु वीरने सूर्योदयके समय कौरवी सेनामें प्रवेश किया था और इस समय अपराह्ण समय हो गया है; वार्ष्णेय ! वह जीवित हैं, या नहीं कुछ मालूम नहीं कर सकता हूं । कौरवोंकी सेना सागरके समान अगाध है ॥ ८१ ॥

एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महामृधे ॥ ८२ ॥
तात ! महायुद्धमें देवताओंके लिये भी यह सेना असह्य है; उस कौरवी सेनामें महाबाहु अर्जुनने अकेलेही प्रवेश किया है ॥ ८२ ॥

न च मे वर्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन ।
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ।
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः ॥ ८३ ॥
आज युद्धमें किसी प्रकार भी मेरी बुद्धि प्रविष्ट नहीं होती है । इधर द्रोणाचार्य भी युद्धमें अत्यन्त वेगके सहित आक्रमण करके मेरी सेनाके योद्धाओंको पीडित कर रहे हैं । महाबाहो ! यह द्विजसत्तम द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें जिस भांतिसे कार्य कर रहे हैं, उसे तुम अपनी आंखोंसे देख रहे हो ॥ ८३ ॥

युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ।
महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि माधव ॥ ८४ ॥
मानद ! एकही समयमें उपस्थित हुए अनेक कार्योंमेंसे कौनसा बडा और कौनसा छोटा, इसका निर्णय करनेमें तुम कुशल हो; अत्यंत महान् कार्यको ही तुम्हें शीघ्रतापूर्वक पहले संपन्न करना चाहिये ॥ ८४ ॥

तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं सदा ।
अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे ॥ ८५ ॥
मेरे विचारमें सम्पूर्ण कार्योंके बीच यही सदा श्रेष्ठ बोध होता है, कि युद्धमें सब भांतिसे अर्जुनकी रक्षा करना प्रथम कर्तव्य कार्य है ॥ ८५ ॥

नाहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः प्रभुम् ।
स हि शक्तो रणे तात त्रीँल्लोकानपि संगतान् ॥ ८६ ॥
तात ! मैं दाशार्ह श्रीकृष्णके निमित्त चिन्ता नहीं करता, क्योंकि वे तो संपूर्ण जगत्के स्वामी और संरक्षक हैं; युद्धमें श्रीकृष्ण तीनों लोक इकट्ठे होकर आ जाय तो भी ॥ ८६ ॥

विजेतुं पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
किं पुनर्धार्तराष्ट्रस्य बलमेतत्सुदुर्बलम् ॥ ८७ ॥
उन्हें पराजित कर सकते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है; पुरुषव्याघ्र ! यह मैं सत्य वचन कहता हूं, तब दुर्योधनकी इस अत्यन्त दुर्बल सेनाको जीतना उनके लिये कौन बडी बात है ? ॥ ८७ ॥

अर्जुनस्त्वेव वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ।
प्रजह्यात्समरे प्राणांस्तस्माद्विन्दामि कश्मलम् ॥ ८८ ॥

परन्तु हे सात्यकि ! अर्जुन युद्धभूमिमें बहुतेरे योद्धाओंके अस्त्रोंसे पीडित होकर युद्धमें प्राणत्याग करेंगे, उसही निमित्त मैं दुःखसे मोहित हो रहा हूं ॥ ८८ ॥

तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ।
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभिचोदितः ॥ ८९ ॥

इसलिये मेरे जैसे मनुष्यसे प्रेरित हो तुम ऐसे संकटके समय अर्जुनकी सहायताके लिये उनके समीप जाओ, तुम्हारे जैसे वीर ऐसाही करते हैं ॥ ८९ ॥

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः ॥ ९० ॥

सात्यकि ! यदुवंशीय श्रेष्ठ शूरवीरोंके बीच युद्धमें महाबाहु प्रद्युम्न और सुविख्यात तुम ये दो ही अतिरथी माने गये हैं ॥ ९० ॥

अस्त्रे नारायणसमः संकर्षणसमो बले ।
वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि ॥ ९१ ॥

नरव्याघ्र ! तुम अस्त्रोंके चलानेमें श्रीकृष्ण, बलमें बलराम और वीरतामें अर्जुनके समान हो ॥ ९१ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ।
त्वामद्य पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते ॥ ९२ ॥

इस संसारमें भीष्म और द्रोणाचार्यके अनन्तर पुरुषसिंह तुमही युद्धके संपूर्ण कार्योंमें निपुण हो, ऐसा श्रेष्ठ पुरुष कहते हैं ॥ ९२ ॥

नासाध्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ।
तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत्कुरुष्व महाबल ॥ ९३ ॥

माधव ! महात्मा लोग कहते हैं कि 'जगत्में सात्यकिके लिये कोई असाध्य कार्य नहीं हैं।' हे महाबलवान् ! इस समय मैं जो कुछ वचन तुमसे कहता हूं, उसे तुम पालन करो ॥ ९३ ॥

संभावना हि लोकस्य तव पार्थस्य चोभयोः ।
नान्यथा तां महाबाहो संप्रकर्तुमिहार्हसि ॥ ९४ ॥

महाबाहो ! सब लोगोंकी और अर्जुनकी तुम्हारे विषयमें उत्तम भावना है, इस उपस्थित युद्धमें उस आशाको व्यर्थ करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ९४ ॥

परित्यज्य प्रियान्प्राणान्रणे विचर वीरवत् ।
न हि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ॥ ९५ ॥

तुम प्रिय प्राणोंकी आशा छोड शूरवीरके समान युद्धभूमिके बीच भ्रमण करो । हे सात्यकि ! यदुवंशीय शूरवीर पुरुष युद्धमें अपने प्राण रक्षण करनेके लिये चेष्टा नहीं करते ॥ ९५ ॥

अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ।
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः ॥ ९६ ॥

और युद्धभूमिके बीच जाकर युद्ध न करना, सम्मुखमें खडा न होना और रणभूमिसे भागना; ये तीनों कायरों और अधमोंके कार्य हैं, उनका अनुसरण यदुवंशीय योद्धा लोग नहीं करते ॥ ९६ ॥

तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुंगव ।
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ॥ ९७ ॥

हे तात ! शिनिश्रेष्ठ ! धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारे गुरु हैं, और श्रीकृष्ण तुम्हारे और बुद्धिमान् अर्जुनके भी गुरु हैं ॥ ९७ ॥

कारणद्वयमेतद्धि जानानस्त्वाहमब्रुवम् ।
मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् ॥ ९८ ॥

इन दोनों बातोंको जान कर मैं तुमसे यह वचन कहता हूं मैं तुम्हारे गुरुका भी गुरु हूं; तुम मेरे वचनोंकी अवमानना मत करना ॥ ९८ ॥

वासुदेवमतं चैतन्मम चैवार्जुनस्य च ।
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनञ्जयः ॥ ९९ ॥

मैंने जिस अभिप्रायसे तुमसे ऐसा वचन कहा है, वह श्रीकृष्ण, मैं और अर्जुन हीको भी प्रिय है, यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं ! इसलिये जहां अर्जुन हैं वहां जाओ ॥ ९९ ॥

एतद्वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ।
प्रविशैतद्बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १०० ॥

हे सत्य-पराक्रमी ! मेरी इस ही आज्ञाके अनुसार तुम अर्जुनके समीप गमन करो; नीच बुद्धिवाले दुर्योधनकी सेनाके बीच प्रवेश करो ॥ १०० ॥

प्रविश्य च यथान्यायं संगम्य च महारथैः ।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥ १०१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ३५२९ ॥

सात्यकि ! इसमें प्रवेश करके महारथियोंके संग मिलकर न्यायके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त होकर अपनी सामर्थ्यके अनुसार पराक्रम दिखाओ ॥ १०१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें पचासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ ३५२९ ॥

: ८६ :

सञ्जय उवाच

प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च स्वतया चाभिभाषितम् ॥ १ ॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥

संजय बोले— हे भरतर्षभ ! शिनिश्रेष्ठ सात्यकि धर्मराज युधिष्ठिरके प्रीतिसे भरे, मनोहर, मधुर अक्षरोंसे युक्त, समयके अनुसार, युक्तिसे पूरित, मीठे और विचित्र वचनोंको सुनकर युधिष्ठिरसे यह वचन बोले ॥ १–२ ॥

श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥

हे पापरहित ! आपने जो अर्जुनकी सहायताके निमित्त यश बढानेवाले, न्यायसे युक्त और विचित्र वचनोंको मुझसे कहा हैं; वह तुम्हारे सब वचन मैंने सुने हैं ॥ ३ ॥

एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य संमतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ॥ ४ ॥

हे राजेन्द्र ! ऐसे समयमें जिस प्रकार आप अर्जुनको आज्ञा दे सकते हैं, वैसे ही इस समय मेरे समान प्रिय पुरुषको आज्ञा करना आपके लिये योग्य ही है ॥ ४ ॥

न मे धनंजयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथंचन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे ॥ ५ ॥

अर्जुनके हितके लिये किसी प्रकार मुझे अपनी प्राणरक्षा करना उचित नहीं है; विशेष करके मैं इस महासंग्रामके समय तुम्हारी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता हूं ? ॥ ५ ॥

लोकत्रयं योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत्सुदुर्बलम् ॥ ६ ॥

नरेन्द्र ! देवता, असुर और मनुष्यों सहित तीनों लोकोंके साथ भी आपकी आज्ञा होनेपर मैं युद्ध कर सकता हूं, फिर यहां इस अत्यन्त दुर्बल कुरुसेनाके संग युद्ध करूंगा इसमें बडी बात ही क्या है ? ॥ ६ ॥

सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

महाराज ! मैं तुम्हारे निकट यह सत्य वचन कहता हूं, कि आज समरमें दुर्योधनकी संपूर्ण सेनाके संग चारों ओरसे युद्ध करके मैं विजय प्राप्त करूंगा ॥ ७ ॥

कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनंजयम् ।
हते जयद्रथे राजन्पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ८ ॥

मैं कुशलपूर्वक सकुशल अर्जुनके पास जाकर, जयद्रथके मारे जाने पर उनके साथ ही फिर मैं तुम्हारे समीप आऊंगा ॥ ८ ॥

अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद्वाक्यं फल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥

परन्तु राजन् ! श्रीकृष्ण और बुद्धिमान् अर्जुनने मुझसे जो वचन कहा है, वह संपूर्ण तुम्हें सुना देना मेरे लिये आवश्यक और उचित है ॥ ९ ॥

दृढं त्वस्मिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥

संपूर्ण सेनाके बीचमें श्रीकृष्णके सुनते हुए अर्जुनने बार बार मुझे कहकर यह दृढ आज्ञा दी है– ॥ १० ॥

अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥ ११ ॥

' हे माधव ! आज जब तक मैं जयद्रथका वध करके न लौटूं, तब तक तुम प्रमादरहित और युद्धमें श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर सावधान होकर महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना ॥ ११ ॥

त्वयि वाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥

हे महाबाहो ! महारथी प्रद्युम्न अथवा तुम्हारे समीप धर्मराज युधिष्ठिरको समर्पण करके आज मैं निश्चिन्त होकर सिन्धुराज जयद्रथके वधके लिये गमन कर सकता हूं ॥ १२ ॥

जानीषे हि रणे द्रोणं रभसं श्रेष्ठसंमतम् ।
प्रतिज्ञा चापि ते नित्यं श्रुता द्रोणस्य माधव ॥ १३ ॥

माधव ! युद्धमें श्रेष्ठ योद्धाओंसे सम्मानित द्रोणाचार्य जैसे वेगशील और पराक्रमी हैं, उसे तुम जानते हो, उन्होंने जो प्रतिज्ञा की है उसे भी तुमने सदा सुना है ॥ १३ ॥

ग्रहणं धर्मराजस्य भारद्वाजोऽनुगृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निगृहीतुं युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्य धर्मराज युधिष्ठिरके ग्रहण करनेके अभिलाषी हुए हैं, और युद्धमें राजा युधिष्ठिरको कैद करनेमें वे समर्थ भी हैं ॥ १४ ॥

एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥

इसलिये पुरुषोंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर समर्पण करके सिन्धुराज जयद्रथके वध करनेके लिये मैं आज गमन करता हूं ॥ १५ ॥

जयद्रथमहं हत्वा ध्रुवमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं यथा द्रोणो निगृह्णीयाद्रणे बलात् ॥ १६ ॥

माधव ! यदि द्रोणाचार्य रणभूमिमें धर्मराज युधिष्ठिरको बलपूर्वक न ग्रहण करे; तो मैं अवश्य ही जयद्रथका वध करके उनके समीप आऊंगा ॥ १६ ॥

निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥

यदि द्रोणाचार्यने नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको ग्रहण कर लिया तो सिन्धुराज जयद्रथका वध नहीं होगा और मेरे मनमें सन्तोष भी न हो सकेगा ॥ १७ ॥

एवं गते नरश्रेष्ठ पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत्पुनः ॥ १८ ॥

यदि सत्यवादी नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर इस प्रकार बंदी बनाये जायंगे तो फिर भी अवश्य ही हम लोगोंको वनवासी होना पडेगा ॥ १८ ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति ।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद्युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥

यदि द्रोणाचार्य युद्धमें क्रुद्ध होकर महाराज युधिष्ठिरको ग्रहण कर लेंगे, तो युद्धमें हम लोगोंकी विजय होनेपर भी वह व्यर्थ होगी ॥ १९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोऽर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥

हे महाबाहो ! इसलिये तुम युद्धमें जय, यश और मेरे सन्तोषके निमित्त युद्धभूमिमें महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना " ॥ २० ॥

स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना ।
भारद्वाजाद्भयं नित्यं पश्यमानेन ते प्रभो ॥ २१ ॥

हे प्रभो ! सव्यसाची अर्जुन तुम्हारे निमित्त सदा सर्वदा द्रोणाचार्यके भयसे शङ्कित रहते हैं, इसहीसे उन्होंने तुम्हें थाती रूपसे मुझे समर्पण किया है ॥ २१ ॥

तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यति संयुगे ।
नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ।
मां वापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ॥ २२ ॥

महाबाहो ! मैं रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके सिवा प्रतिदिन युद्धमें दूसरे किसी भी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो द्रोणाचार्यके समीप खडा हो सके। अर्जुन द्रोणाचार्यके संग युद्ध करने योग्य मुझे वा रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्नको छोडके और किसी भी इस कार्यके योग्य नहीं समझते हैं ॥ २२ ॥

सोऽहं संभावनां चैतामाचार्यवचनं च तत्।
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ॥ २३ ॥

महीपते ! ऐसे अवसरमें इस उपस्थित संभावनाको छोड कर तथा गुरु अर्जुनके वचनोंको बदल कर कोई दूसरे कार्यके करनेका मुझे उत्साह नहीं होता है और आपको भी नहीं त्याग सकता हूं ॥ २३ ॥

आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ।
उपलभ्य रणे क्रीडेद्यथा शकुनिना शिशुः ॥ २४ ॥

जैसे बालक पक्षीके साथ खेलता है, वैसे ही अभेद्य कवचधारी द्रोणाचार्य अस्त्रयुद्धमें हस्त-लाघवके सहित रणभूमिमें तुम्हारे संग क्रीडा कर रहे हैं ॥ २४ ॥

यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ।
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथार्जुनः ॥ २५ ॥

यदि श्रीकृष्ण–पुत्र प्रद्युम्न हाथमें धनुष लेकर यहां उपस्थित होते, तो मैं उनके निकट तुम्हें समर्पण कर सकता; वह अर्जुनकी भांति तुम्हारी रक्षा कर सकते थे ॥ २५ ॥

कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ।
यः प्रतीयाद्रणे द्रोणं यावद्गच्छामि पाण्डवम् ॥ २६ ॥

इससे आप पहले अपनी रक्षाकी व्यवस्था कीजिये; मेरे गमन करनेके अनन्तर जो आपका संरक्षण कर सके; जब तक मैं अर्जुनके समीपसे न लौट आऊं, तब तक तुम्हारी रक्षा करनेके लिये युद्धमें द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध कर सके ॥ २६ ॥

मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसंभवम् ।
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ॥ २७ ॥

महाराज ! आप अर्जुनके निमित्त कुछ भय आज अपने मनमें न कीजिये; वे महाबाहु अर्जुन कोई भार ग्रहण करके कदापि दुःखित नहीं होते ॥ २७ ॥

ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ।
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ॥ २८ ॥
सौवीर, सिन्धु, पौरव, उदीच्य, दक्षिणी और दूसरे देशोंके सम्पूर्ण महारथी योद्धा ॥ २८ ॥

ये च कर्णमुखा राजन्रथोदाराः प्रकीर्तिताः ।
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २९ ॥
तथा कर्ण आदि विख्यात रथी योद्धा लोग कौरवोंकी सेनामें उपस्थित हैं, वे सब कोई क्रुद्ध हुए अर्जुनके सोलहवें अंशके एक अंश भी नहीं हो सकते ॥ २९ ॥

उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ।
सराक्षसगणा राजन्सकिंनरमहोरगा ॥ ३० ॥
राजन् ! देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर, महान् सर्प गणों सहित यह पृथ्वी ॥ ३० ॥

जङ्गमाः स्थावरैः सार्धं नालं पार्थस्य संयुगे ।
एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनंजये ॥ ३१ ॥
तथा स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण प्राणी युद्धके लिये खडे हो जांय, तोभी युद्धमें अर्जुनका सामना करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । महाराज ! आप यही समझके अर्जुनके विषयमें भयकी आशङ्का न कीजिये ॥ ३१ ॥

यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ।
न तत्र कर्मणो व्यापत्कथंचिदपि विद्यते ॥ ३२ ॥
जहां महाबली सत्यपराक्रमी महाधनुर्धारी वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक ही स्थानपर विराजमान हैं; वहां किसी प्रकारकी कोई आपदाकी सम्भावना नहीं हो सकती ॥ ३२ ॥

दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ।
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ॥ ३३ ॥
तुम्हारे भाई अर्जुनमें जो दैवी शक्ति, अस्त्रोंकी कुशलता, योग, युद्धमेंता अमर्ष, कृतज्ञता और दया आदि सद्गुण विद्यमान हैं, उनका आप विचार कर देखिये ॥ ३३ ॥

मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ।
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ॥ ३४ ॥
राजन् ! मैं जब अर्जुनके समीप गमन करूंगा, तब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले द्रोणाचार्य जिन विचित्र अस्त्रोंको प्रकाशित करेंगे, उसका भी आप विचार कर लीजिये ॥ ३४ ॥

आचार्यो हि भृशं राजन्निग्रहे तव गृध्यति ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्यां कर्तुं च भारत ॥ ३५ ॥

भारत ! द्रोणाचार्य अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके उसे सत्य कर दिखानेके लिये तुम्हें ग्रहण करनेकी अत्यन्त अभिलाष कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

कुरुष्वाद्यात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ।
यस्याहं प्रत्ययात्पार्थ गच्छेयं फल्गुनं प्रति ॥ ३६ ॥

इससे आप अपनी रक्षाका उपाय कीजिये। पार्थ ! मेरे यहांसे चले जानेपर तुम्हारा कौन रक्षक होगा, जिसके ऊपर विश्वास करके मैं अर्जुनके समीप जा सकूं ? ॥ ३६ ॥

न ह्यहं त्वा महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ।
कचिद्यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

महाराज ! कौरव्य ! मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं कि इस महाघोर संग्राममें विना किसी पराक्रमी पुरुषके निकट तुम्हें समर्पण किये, कहीं भी न जा सकूंगा ॥ ३७ ॥

एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ।
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन्प्रशाधि माम् ॥ ३८ ॥

हे महाबुद्धिमान् राजन् ! तुम इस विषयको अपनी बुद्धिसे भली भांति विचार लो, फिर जैसा आपको उचित बोध होवे वैसी मुझे आज्ञा कीजिये ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
न तु मे शुध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ३९ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे यदुकुल श्रेष्ठ महाबाहु सात्यकि ! तुमने जो कुछ वचन कहे, वे सब यथार्थ ही हैं; परन्तु अर्जुनके लिये मेरे चित्तमें शान्ति नहीं होती है ॥ ३९ ॥

करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणं प्रति ।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनञ्जयः ॥ ४० ॥

इससे मैं अपनी रक्षाके लिये अत्यन्त ही प्रयत्न करूंगा, तुम मेरी आज्ञाके अनुसार अर्जुनके समीप जाओ ॥ ४० ॥

आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति ।
विचार्यैतद्द्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचये ॥ ४१ ॥

युद्धमें मुझे मेरी रक्षा करनी और अर्जुनके समीप तुम्हें भेजना ये दो कार्य उपस्थित हैं; इन दोनों बातोंपर अपनी बुद्धिसे विचार करके मैं तुम्हारा अर्जुनके निकट जाना ही उत्तम समझता हूं ॥ ४१ ॥

स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनञ्जयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४२ ॥

इसलिये जहां अर्जुन गये हैं, तुम उसही स्थानमें गमन करो। महाबलवान् भीमसेन मेरी भी रक्षा करेंगे ॥ ४२ ॥

पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४३ ॥

तात ! सहोदर भाइयोंके सहित धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र और दूसरे बहुतेरे महाबलवान् राजा मेरी रक्षा करेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४४ ॥

केकयराज पांचों भाई, घटोत्कच राक्षस, विराट, द्रुपद, महारथ शिखण्डी ॥ ४४ ॥

धृष्टकेतुश्च बलवान्कुन्तिभोजश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४५ ॥

मारिष ! धृष्टकेतु, बलवान् कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव, पाञ्चाल तथा सृञ्जय देशीय सम्पूर्ण सेनाके योद्धालोग ये सब मिलकर सावधान होकर मेरी रक्षा करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥

न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ।
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति ॥ ४६ ॥

सेनाके सहित द्रोणाचार्य और कृतवर्मा युद्धभूमिमें सहसा मेरे समीप पहुंच सकें अथवा मुझे पीडित करें, ऐसी संभावना भी नहीं हो सकती ॥ ४६ ॥

धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परंतपः ।
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ॥ ४७ ॥

जैसे तट समुद्रके वेगको आगे बढनेसे रोकता है, वैसे ही क्रुद्ध द्रोणाचार्यको शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्न युद्धभूमिमें पराक्रम करके निवारण करेंगे ॥ ४७ ॥

यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ।
न द्रोणसैन्यं बलवत्क्रामेत्तत्र कथञ्चन ॥ ४८ ॥

युद्धभूमिमें जहां शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न स्थित होंगे, उस स्थानकी मेरी बलवती सेनापर द्रोणाचार्य किसी प्रकारसे भी न आक्रमण कर सकेंगे ॥ ४८ ॥

एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ।
कवची स शरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः ॥ ४९ ॥

यह धृष्टद्युम्न तो द्रोणाचार्यके वध करनेहीके निमित्त अग्निसे तलवार, ढाल, धनुषबाण और कवचसे भूषित होकर उत्पन्न हुए हैं ॥ ४९ ॥

विश्रब्धो गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि संभ्रमम् ।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ३५७९ ॥

शैनेय ! इसलिये तुम मेरे निमित्त कुछ भी सन्देह न करके अर्जुनकी ओर निश्चिन्त होकर गमन करो । रणभूमिमें धृष्टद्युम्न क्रुद्ध द्रोणाचार्यको युद्धसे निवारण करेंगे ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें छिआसीवां अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ ३५७९ ॥

: ८७ :

सञ्जय उवाच

धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
पार्थाच्च भयमाशङ्कन्परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिरके उन वचनोंको सुनकर शिनिश्रेष्ठ सात्यकिके मनमें राजा युधिष्ठिरको त्यागके जानेपर अर्जुनके निकट अपराधी होनेकी शङ्का निर्माण हुई ॥ १ ॥

अपवादं ह्यात्मनश्च लोकाद्रक्षन्विशेषतः ।
न मां भीत इति ब्रूयुरायान्तं फल्गुनं प्रति ॥ २ ॥

विशेष करके उन्हें अपने लिये लोकापवादका डर दिखाई देने लगा । यदि मैं अर्जुनके समीप न जाऊंगा, तो सब कोई मुझे डरपोक समझेंगे ॥ २ ॥

निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥

पुरुषर्षभ ! युद्धदुर्मद सात्यकिने इसी प्रकार अनेक भांतिसे विचार करके धर्मराजसे यह वचन कहा– ॥ ३ ॥

कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशां पते ।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ ४ ॥

हे प्रजानाथ ! यदि तुम यह समझते हो, कि तुम्हारी रक्षा हो सकेगी, तो तुम्हारा मङ्गल होवे; मैं अर्जुनके समीप जाऊंगा और आपकी आज्ञाका पालन करूंगा ॥ ४ ॥

न हि मे पाण्डवात्कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यो वै प्रियतरो राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥

राजन् ! मैं तुम्हारे समीप यह सत्य ही कहता हूं कि, तीनों लोकोंमें पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बढकर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है ॥ ५ ॥

तस्याहं पदवीं यास्ये संदेशात्तव मानद ।
त्वत्कृते न च मे किञ्चिदकर्तव्यं कथञ्चन ॥ ६ ॥

मानद ! उसपर भी तुम्हारी आज्ञासे अर्जुनकी सहायताके लिये मैं उनके मार्गका अनुसरण करूंगा । तुम्हारे निमित्त मैं किसी कर्मके करनेमें अवहेलना करना नहीं चाहता ॥ ६ ॥

यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥

मनुष्य श्रेष्ठ ! जैसे मुझे मेरे गुरु अर्जुनके वचन मानने योग्य हैं, उससे भी बढके तुम्हारे वचनोंको मान्य करना उचित है ॥ ७ ॥

प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुंगव ॥ ८ ॥

राजश्रेष्ठ ! तुम्हारे दोनों भाई श्रीकृष्ण और अर्जुन जैसे तुम्हारे प्रिय कार्यमें रत हैं, वैसे ही मुझे भी तुम उन लोगोंके प्रिय कार्य करनेमें रत हुआ ही समझो ॥ ८ ॥

तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरसत्तम ॥ ९ ॥

नरोत्तम ! मैं तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य करके अर्जुनके लिये इस दुःखसे भेद होनेवाली कुरु-सेनाको भेदन करके उनके पास गमन करूंगा ॥ ९ ॥

द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवार्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्रासौ राजन्राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

राजन् ! राजा जयद्रथ जिस स्थानमें स्थित है, मैं क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यकी सेनाके बीच प्रवेश करके उस स्थानपर इस भांति उपस्थित होऊंगा, जैसे मछली समुद्रमें प्रवेश करके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमन करती है ॥ १० ॥

यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥

अर्जुनके भयसे डरे हुए राजा जयद्रथ सम्पूर्ण सेनाके अवलम्ब और अश्वत्थामा, कर्ण तथा कृपाचार्य आदि महारथियोंसे रक्षित होकर जिस स्थानमें खडे हैं, वही मुझे पहुंचना है ॥ ११ ॥

इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशां पते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥ १२ ॥

पृथ्वीपते ! मैं अनुमान करता हूं, कि जहां जयद्रथ वधकी इच्छा करके अर्जुन उपस्थित हुए हैं, वह स्थान यहांसे तीन योजन दूर है ॥ १२ ॥

त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम् ।
आसैन्धववधाद्राजन्सुदृढेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥

राजन् ! अर्जुनके तीन योजन दूर चले जानेपर भी मैं अत्यन्त दृढता और पराक्रमके सहित जयद्रथ वधके पहिलेही अर्जुनके समीप उपस्थित होऊंगा ॥ १३ ॥

अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु त्वया राजन्को न युध्येत मादृशः
अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ॥ १४ ॥

जिससे युद्धके लिये गुरुने आज्ञा नहीं की है ऐसा कौन पुरुष युद्ध करेगा ? और मेरे समान मनुष्य भला आप गुरुकी आज्ञा पाकर युद्ध क्यों न करेगा ? प्रभो ! मुझे जिस स्थान पर जाना है, उसे मैं जानता हूं ॥ १४ ॥

हुडशक्तिगदाप्रासखड्गचर्मर्ष्टितोमरम् ।
इष्वस्त्रवरसंबाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ॥ १५ ॥

और वहां पर जानेके लिये सब हुड, शक्ति, गदा, प्रास, तलवार, ढाल, ऋष्टि, तोमर और श्रेष्ठ धनुष बाण इत्यादि अस्त्रोंसे युक्त समुद्रके समान शत्रुसेनाको मुझे क्षुभित करना पडेगा ॥ १५ ॥

यदेतत्कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ।
कुलमञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ॥ १६ ॥

महाराज ! यह जो सहस्रों हाथियोंकी सेना आप देखते हैं, इसका नाम अन्जनककुल है, इसमें पराक्रमी हाथी हैं ॥ १६ ॥

आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ।
नागा मेघनिभा राजन्क्षरन्त इव तोयदाः ॥ १७ ॥

उन हाथियों पर बहुतेरे प्रहार करनेमें श्रेष्ठ और युद्धमें महापराक्रमी म्लेच्छ योद्धा चढके युद्ध करनेके वास्ते तैयार हैं; राजन् ! ये हाथी बादलोंके समान दिखायी देते हैं और वर्षा करनेवाले बादलोंके समान इन मतवाले हाथियोंके शरीरसे मद चू रहा है ॥ १७ ॥

नैते जातु निवर्तेरन्प्रेषिता हस्तिसादिभिः ।
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन्पराजयः ॥ १८ ॥

ये संपूर्ण हाथी गजारोही योद्धाओंके चलाने पर युद्धभूमिसे कभी विमुख नहीं होते; राजन्! इससे विना उन हाथियोंके वध किये, और किसी उपायसे इनकी पराजय नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

अथ यान्रथिनो राजन्समन्तादनुपश्यसि ।
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ॥ १९ ॥

अनन्तर यह जो रथियोंका समूह चारों ओर आप देख रहे हैं, वे सब योद्धा लोग रुक्मरथ नामसे विख्यात महारथी राजपुत्र हैं ॥ १९ ॥

रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशां पते ।
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ॥ २० ॥

विशाम्पते! सबही महारथी रथ, अस्त्र और हाथियोंके चलानेमें निपुण हैं; ये सब धनुर्वेदके जाननेवाले और मुष्टियुद्ध विशारद हैं ॥ २० ॥

गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ।
खड्गप्रहरणे युक्ताः संपाते चासिचर्मणोः ॥ २१ ॥

गदायुद्धके विशेषज्ञ और मल्लयुद्धमें कुशल हैं; तलवार चलानेमें और ढाल—तलवार लेकर घूमनेमें समर्थ हैं ॥ २१ ॥

शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ।
नित्यं च समरे राजन्विजिगीषन्ति मानवान् ॥ २२ ॥

शूर और अस्त्र—शस्त्रोंके ज्ञाता, तथा परस्पर ईर्षा करते हैं; ये सम्पूर्ण योद्धा लोग युद्धमें पुरुषोंको जीतनेके लिये सदा ही इच्छुक रहते हैं ॥ २२ ॥

कर्णेन विजिता राजन्दुःशासनमनुव्रताः ।
एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान्प्रशंसति । ॥ २३ ॥

कर्णने इन राजपुत्रोंको नियुक्त किया है, और ये लोग इस स्थलमें दुःशासनके वशमें होकर स्थित हैं। श्रीकृष्ण सदा इन राजपुत्रोंको महारथी कहके उनकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ २३ ॥

सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ।
तस्यैव वचनाद्राजन्निवृत्ताः श्वेतवाहनात् ॥ २४ ॥

सम्पूर्ण राजपुत्र सदा कर्णके वशमें रहकर उनके प्रियकार्योंके करनेकी अभिलाषा करते रहते हैं और कर्णके ही वचनसे ये अर्जुनकी ओरसे इधर लौट आये हैं॥ २४ ॥

ते न क्षता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ।
मदर्थं विष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥ २५ ॥

उनके कवच और धनुष दृढ हैं, वे युद्धमें न थकते और न घायल ही होते हैं। मुझे निश्चय होता है, कि वे सब दुर्योधनकी आज्ञासे मेरे सङ्ग युद्ध करनेके लिये युद्धभूमिमें स्थित हैं ॥ २५ ॥

एतान्प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ।
प्रयास्यामि ततः पश्चात्पदवीं सव्यसाचिनः ॥ २६ ॥

परन्तु मैं तुम्हारी आज्ञासे तुम्हारा प्रिय करनेके लिये सबको युद्धमें पीडित करके सव्यसाची अर्जुनकी सहायताके लिये आगे बढूंगा ॥ २६ ॥

यांस्त्वेतानपरान्राजन्नागान्सप्तशतानि च ।
प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान्किरातैः समधिष्ठितान् ॥ २७ ॥

महाराज ! उनके अतिरिक्त ये जो कवचसे आच्छादित हुए सात सौ हाथी दीख पडते हैं, जिनके ऊपर किरात लोग चढे हुए हैं ॥ २७ ॥

किरातराजो यान्प्रादादुगृहीतः सव्यसाचिना ।
स्वलंकृतांस्तथा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः ॥ २८ ॥

पहिले किरातराजने अर्जुनसे ग्रहित होजाने पर अपने जीवनकी रक्षाके लिये इनको भूषणोंसे अलंकृत करके सेकक रूपसे अर्जुनके हाथमें समर्पण किया था ॥ २८ ॥

आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ।
त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ २९ ॥

राजन् ! ये सम्पूर्ण हाथी पहिले तुम्हारे आज्ञाकारी दास थे; देखिये कालकी कैसी उलटी गति है । इस समय वेही सब तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं ॥ २९ ॥

तेषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ।
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाग्नियोनयः ॥ ३० ॥

ये रणदुर्मद किरात इन हाथियोंके महावत और हाथियोंको शिक्षा देनेमें निपुण हैं, ये सब ही अग्निसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३० ॥

एते विनिर्जिताः सर्वे संग्रामे सव्यसाचिना ।
मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ॥ ३१ ॥

इन सम्पूर्ण किरातोंको पहिले सव्यसाची अर्जुनने युद्धमें पराजित किया था, इस समय दुर्योधनके वशवर्त्ती होकर मेरे सङ्ग युद्ध करनेके लिये तैयार खडे हैं ॥ ३१ ॥

एतान्निहत्य शरै राजन्किरातान्युद्धदुर्मदान् ।
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ॥ ३२ ॥

इन सम्पूर्ण युद्धदुर्मद किरातोंको मैं अपने बाणोंसे नष्ट करके, सिन्धुराज जयद्रथके वधका प्रयत्न करनेवाले अर्जुनका अनुगामी होऊंगा ॥ ३२ ॥

ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ।
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ॥ ३३ ॥

ये जो महान् हाथी दीखते हैं, वे अञ्जन हस्तीके वंशमें उत्पन्न हुए हैं; इन हाथियोंका स्वभाव अत्यन्त क्रूर है, ये सब शिक्षित हैं और इनके गण्डस्थल और मुखसे मदकी धारा बहती है ॥ ३३ ॥

जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्मभिः सुविभूषिताः ।
लब्धलक्ष्या रणे राजन्नैरावणसमा युधि ॥ ३४ ॥

ये सब सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित हैं । राजन् ! ये सब लब्धलक्ष्य हैं और युद्धमें ऐरावत हाथीके समान पराक्रम करते हैं ॥ ३४ ॥

उत्तरात्पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ।
कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः ॥ ३५ ॥

उत्तर पर्वतसे आये हुए काले और लाल वर्णवाले वर्मको पहने हुए, क्रूर स्वभाववाले निर्दयी डाकू लोग, जो श्रेष्ठ योद्धा हैं उन हाथियों पर सवार हैं ॥ ३५ ॥

सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः ।
अनेकयोनयश्चान्ये तथा मानुषयोनयः ॥ ३६ ॥

उनमेंसे कितने ही गोयोनिसे उत्पन्न हुए हैं, कितने ही वानर योनिसे, कितने ही मनुष्योनि और कितनेही दूसरी बहुतेरी योनियोंसे पैदा हुए हैं ॥ ३६ ॥

अनीकमसतामेतद्धूमवर्णमुदीर्यते ।
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमवद्दुर्गवासिनाम् ॥ ३७ ॥

हिमालय पर्वतके समान दुर्गम स्थानोंमें निवास करनेवाले इन पापी म्लेच्छोंसे पापपूरित होकर वह सम्पूर्ण सेना धुएंके समान काली प्रतीत होरही है ॥ ३७ ॥

एतद्दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं नागमण्डलम् ।
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् ॥ ३८ ॥

दुर्योधन इन सम्पूर्ण हाथियोंके समूहको और रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य, सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा और द्रोणाचार्य ॥ ३८ ॥

सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ।
कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ ३९ ॥
सिन्धुराज जयद्रथ और कर्णको पाकर कालसे प्रेरित होकर अपनेको कृतार्थ समझ कर पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ३९ ॥

ते च सर्वेऽनुसंप्राप्ता मम नाराचगोचरम् ।
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः ॥ ४० ॥
हे कुन्तीपुत्र ! परन्तु वे सब कोई मनके समान वेगवाले होवें, तोभी मेरे नाराच बाणोंके लक्ष्य बने हुए वे आज मेरे हाथसे मुक्त न हो सकेंगे ॥ ४० ॥

तेन संभाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ।
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः ॥ ४१ ॥
दुर्योधन उन लोगोंके बल पराक्रमके अभिमानसे उन्मत्त होकर सदा उन लोगोंकी पूजा और सत्कार किया करता है, परन्तु आज वे लोग मेरे बाणोंसे पीडित होकर नष्ट हो जांयगे ॥ ४१ ॥

ये त्वेते रथिनो राजन्दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः ।
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः ॥ ४२ ॥
महाराज ! ये जो सब सुवर्ण ध्वज भूषित रथी दीख पडते हैं; उन लोगोंका नाम आपने सुना होगा, वे सब काम्बोज देशीय दुर्वारण नामक सैनिक हैं ॥ ४२ ॥

शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ।
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः ॥ ४३ ॥
वे सब कोई शूर, विद्वान् और सम्पूर्ण धनुर्वेदके जाननेवाले तथा आपसमें एक दूसरेकी सहायता करनेके लिये युद्धभूमिमें इकट्ठे होकर स्थित हैं ॥ ४३ ॥

अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत ।
यत्ता मदर्थं तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः ॥ ४४ ॥
भारत ! दुर्योधनकी यह कई अक्षौहिणी सेना कुरुश्रेष्ठ वीरोंसे रक्षित और क्रुद्ध होकर मेरे सङ्ग युद्ध करनेके लिये तैयार है ॥ ४४ ॥

अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ।
तांस्त्वहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ॥ ४५ ॥
महाराज ! ये सब सावधान होकर मुझपरही आक्रमण करनेवाली हैं; परन्तु जैसे अग्नि सूखे तृण–फूसको भस्म करती है, वैसेही उन सम्पूर्ण योद्धाओंको मैं मथ डालूंगा ॥ ४५ ॥

तस्मात्सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ।
रथे कुर्वन्तु मे राजन्यथावद्रथकल्पकाः ॥ ४६ ॥
हे महाराज ! इसलिये रथसज्जा करनेवाले पुरुष मेरे रथमें सब अस्त्र शस्त्र, धनुष, तूणीर आदि युद्धके उपयोगी, सम्पूर्ण वस्तुओंको उचित रीतिसे लाकर इकट्ठी करें ॥ ४६ ॥

अस्मिंस्तु खलु संग्रामे ग्राह्यं विविधमायुधम् ।
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ॥ ४७ ॥
इस संग्राममें नाना भांतिके अस्त्रशस्त्रोंको संग्रामके निमित्त रखना और आचार्यके उपदेशके अनुसार रथको पंचगुणोंसे युक्त करना उचित है ॥ ४७ ॥

काम्बोजैर्हि समेष्यामि क्रुद्धैराशीविषोपमैः ।
नानाशस्त्रसमावापैर्विविधायुधयोधिभिः ॥ ४८ ॥
मुझे नाना भांतिके अस्त्रशस्त्र धारण करनेवाले और अनेकविध आयुधोंसे युद्ध करनेमें कुशल, विषधारी सर्पके समान क्रोधी काम्बोज देशीय योद्धाओंके संग रणभूमिमें युद्ध करना होगा ॥ ४८ ॥

किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ।
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः ॥ ४९ ॥
राजा दुर्योधनसे सदा सत्कार पानेवाले, उनके हितैषी, प्रहार करनेमें निपुण और विषधर सर्पके समान महाक्रूर किरातोंके संग मुझे युद्ध करना पडेगा ॥ ४९ ॥

शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः ॥ ५० ॥
इन्द्रके समान पराक्रमी, जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी, दुर्धर्ष, महाबली शकदेशीय योद्धाओंके साथ मैं युद्ध करूंगा ॥ ५० ॥

तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ।
समेष्यामि रणे राजन्बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ॥ ५१ ॥
और अनेक प्रकारके दूसरे भी महापराक्रमी, कालके समान अत्यन्त भयङ्कर, नाना भांतिसे युद्ध करनेवाले दुर्जय योद्धाओंके संग समरमें मुझे युद्ध करना होगा ॥ ५१ ॥

तस्माद्वै वाजिनो मुख्या विश्रान्ताः शुभलक्षणाः ।
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ॥ ५२ ॥
इसलिये उत्तम लक्षणयुक्त श्रेष्ठ घोडे, जो विश्राम कर चुके हों, जिन्हें टहलायाकर पानी भी पिलाया गया हो, फिर मेरे रथमें जोते जांय ॥ ५२ ॥

तस्य सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च
रथे प्रास्थापयद्राजा शस्त्राणि विविधानि च ॥ ५३ ॥

इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथमें तूणीर और युद्धके योग्य समस्त वस्तु तथा अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको रखवा दिया ॥ ५३ ॥

ततस्तान्सर्वतो मुक्त्वा सदश्वांश्चतुरो जनाः ।
रसवत्पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ॥ ५४ ॥

फिर सेवकोंने सात्यकिके रथसे उन सब प्रकारसे उत्तम चारों घोडोंको खोल कर, उन्हें उत्तम पीने योग्य मदमत्त बना देनेवाला पेय पिलाया ॥ ५४ ॥

पीतोपवृत्तान्स्नातांश्च जग्धान्नान्समलंकृतान् ।
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः ॥ ५५ ॥

जब वे पेय पी चुके तो उन्हें टहलाया और स्नान कराया गया; दाना और चारा खिलाया गया; उनके अङ्गोंमें गडे हुए शल्यको निकाल कर, उन्हें उत्तम रीतिसे सुंदर आभूषणोंसे अलंकृत करके, उन चारों घोडोंको सोनेकी मालाओंसे विभूषित किया गया ॥ ५५ ॥

तान्युक्तान्रुक्मवर्णाभान्विनीताञ्शीघ्रगामिनः ।
संहृष्टमनसोऽव्यग्रान्विधिवत्कल्पिते रथे ॥ ५६ ॥

अनन्तर उन सब सुवर्णके समान कांतिवाले, उत्तम शिक्षासे युक्त, शीघ्रगामी और सावधान, हर्षित चित्त, अव्यग्र और यथाविधि भूषित घोडोंको रथमें जोताया गया ॥ ५६ ॥

महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ।
संवृते केतनैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५७ ॥

वह रथ सुवर्णमय केशरोंसे भूषित सिंह चिन्हयुक्त ध्वजासे युक्त था; वह सुवर्णयुक्त मणि-रत्नोंसे चित्रित छोटी छोटी और सोनेकी मालासे युक्त श्वेत वर्णवाली पताकाओंसे अलंकृत किया था ॥ ५७ ॥

हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥ ५८ ॥

उस रथके ऊपर सुवर्ण दण्डसे युक्त छत्र शोभित होता था और रथमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य उपयोगी सामग्री रक्खी गयी थी ॥ ५८ ॥

दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद्रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ५९ ॥

अनन्तर दारुकका छोटा भाई सात्यकिका सारथि और प्यारा मित्र, इन्द्रके सारथि मातालिकी भाँति, सात्यकिके रथको सज्जित करके, उनके निकट जाकर उसने रथके सज्जित होनेकी उनको सूचना दी ॥ ५९ ॥

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानदापयत् ।
आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ॥ ६० ॥

अनन्तर श्रीमान् पुरुषोंमें अग्रगण्य माननीय सात्यकिने स्नान करके पवित्र हो, युद्धके लिये गमन करनेके समय करने योग्य मंगल कृत्य करके, एक सहस्र स्नातकोंको स्वर्णमुद्राएं दान की; ब्राह्मणोंने सात्यकिको आशीर्वाद दिया ॥ ६० ॥

ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलावतं मधु ।
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ॥ ६१ ॥

अनन्तर मधुपर्कके अधिकारी सात्यकि कैलावत मधुका पान करके, मदसे मतवाले और चंचल लाल नेत्रसे युक्त हो गये ॥ ६१ ॥

आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महतान्वितः ।
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६२ ॥

फिर उन्होंने हर्षित होकर कल्याणदायक वीरकांस्यपात्रको स्पर्श किया। फिर प्रज्वलित अग्निके समान सात्यकिका तेज दूना हो गया। अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने बाणसहित धनुषको गोदमें लिया ॥ ६२ ॥

कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिनन्दितः ॥ ६३ ॥

ब्राह्मणोंने उनका स्वस्तिवाचनका कार्य किया और कुमारी कन्याओंने लावा, गन्ध, सुगन्धित फूल तथा पुष्पमालाओंसे उनका पूजन—अभिनन्दन किया । फिर वे कवच तथा सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे भूषित हुए ॥ ६३ ॥

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६४ ॥

फिर सात्यकिने हाथ जोडकर राजा युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया; युधिष्ठिरने उनका मस्तक सूंघा, तब सात्यकि अपने उत्तम महान् रथ पर आरूढ हो गये ॥ ६४ ॥

ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टा वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वन्तः स्म सैन्धवाः ॥ ६५ ॥

अनन्तर वायुके समान वेगगामी सिन्धुदेशीय हृष्टपुष्ट अजेय वे घोडे हिनहिनाते हुए सात्यकिके विजयी रथको लेकर बढे ॥ ६५ ॥

अथ हर्षपरीताङ्गः सात्यकिर्भीममब्रवीत् ।
त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि ते ॥ ६६ ॥

तब सात्यकि हर्षके सहित पुलकित शरीर होकर भीमसेनसे हर्षजनक यह वचन बोले, हे भीमसेन ! इस समय तुम महाराज धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करो । क्योंकि यही तुम्हारा सबसे श्रेष्ठ कार्य है ॥ ६६ ॥

अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ।
आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ॥ ६७ ॥

मैं इस कालके वश होकर पक्व हुए कुरुसेनाको तितर बितर करके इस महासेनाके बीच प्रवेश करूंगा । राजाकी रक्षा करना वर्तमान और भविष्य दोनों कालमें श्रेष्ठ तथा मङ्गलका कार्य है ॥ ६७ ॥

जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाहमरिन्दम ।
तस्माद्भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ६८ ॥

हे शत्रुदमन भीम ! इससे यदि तुम मेरे प्यारे कार्यको करनेकी इच्छा करते हो, तो यहांसे ही लौट जाओ; तुम मेरे बल पराक्रमको जानते हो और मैं भी तुम्हारे बलको जानता हूं ॥ ६८ ॥

तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ।
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ॥ ६९ ॥

भीमसेन सात्यकिके ऐसे वचन सुनके उनसे यह वचन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम अपने कार्यको सिद्ध करनेके लिये गमन करो, मैं महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करूंगा ॥ ६९ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ।
गच्छ गच्छ द्रुतं पार्थ ध्रुवोऽद्य विजयो मम ॥ ७० ॥

मधुकुलश्रेष्ठ सात्यकि भीमकी बात सुनकर उनसे फिर बोले, "हे पार्थ ! जाओ, तुम शीघ्र लौट जाओ, आज मेरी अवश्य विजय होगी ॥ ७० ॥

यन्मे स्निग्धोऽनुरक्तश्च त्वमद्य वशगः स्थितः ।
निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति मे ॥ ७१ ॥

क्योंकि तुम मेरे प्रीतिके पात्र, अनुरक्त और वशवर्ती हुए हो अर्थात् तुमने मेरे अभिप्रायके विरुद्ध कार्य नहीं किया है, यह एक शुभ शकुन है, और दूसरे भी जो सब शुभ शकुन दीख पडते हैं, वे मुझे बता रहे हैं ॥ ७१ ॥

निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ।
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं न संशयः ॥ ७२ ॥

पापी सिन्धुराज जयद्रथ जब महात्मा अर्जुनके अस्त्रोंसे मारा जायेगा, तब मैं वहांसे लौट कर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका आलिङ्गन करूंगा, इसमें सन्देह नहीं है " ॥ ७२ ॥

एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महामनाः ।
संप्रैक्षत्तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ॥ ७३ ॥

भीमसेनसे ऐसा वचन कह कर उन्हें विदा करके महात्मा सात्यकि तुम्हारी सेनाकी ओर इस प्रकार देखने लगे, जैसे हरिणोंके झुण्डकी ओर सिंह देखता है ॥ ७३ ॥

तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ।
भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पत ॥ ७४ ॥

राजन् ! तुम्हारी सेनाके योद्धालोग सात्यकिको उस महासेनाके बीच प्रवेश करनेका इच्छुक जान, फिर मोहित होकर अत्यंत कांपने लगे ॥ ७४ ॥

ततः प्रयातः सहसा सैन्यं तव स सात्यकिः ।
दिदृक्षुरर्जुनं राजन्धर्मराजस्य शासनात् ॥ ७५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ३६५४ ॥

राजन् ! अनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनके देखनेकी इच्छा करनेवाले सात्यकि सहसा तुम्हारी सेनाकी ओर बढे ॥ ७५ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें सतासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥ ३६५४ ॥

---

८८ :

संजय उवाच

प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः
प्रायाद्द्रोणरथप्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः । ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! जब सात्यकि युद्धकी इच्छासे तुम्हारी सेनाकी ओर बढे, तब धर्मराज युधिष्ठिर अपनी सेनाके बीचमें घिरकर द्रोणाचार्यके रथके समीप जानेकी इच्छासे सात्यकिके पीछे गमन करने लगे ॥ १ ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ।
प्राक्रोशत्पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ॥ २ ॥

अनन्तर युद्धदुर्मद पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न और राजा वसुदान पाण्डवोंकी सेनामें ऊंचे स्वरसे पुकारके यह वचन कहने लगे ॥ २ ॥

आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३ ॥

हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग जल्दी आओ, शस्त्र चलाओ, द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर शीघ्रतासे दौडो, जिससे पराक्रमी सात्यकि सुखपूर्वक आगे जा सकें ॥ ३ ॥

महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ।
इति ब्रुवन्तो वेगेन समापेतुर्बलं तव ॥ ४ ॥

क्योंकि बहुतेरे महारथी योद्धा सात्यकिको पराजित करनेके लिये यत्न करेंगे । पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धालोग इसी प्रकार वचन कहते हुए वेगपूर्वक तुम्हारी सेनाकी ओर दौडने लगे ॥ ४ ॥

वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान्समभिद्रुताः ।
ततः शब्दो महानासीद्युयुधानरथं प्रति ॥ ५ ॥

हम लोग भी उन लोगोंको जीतनेकी इच्छा करके उनकी ओर दौडे । दोनों ओरकी सेनाके दौडने पर सात्यकिके रथके समीपमें महाघोर शब्द होने लगा ॥ ५ ॥

प्रकम्प्यमाना महती तव पुत्रस्य वाहिनी ।
सात्वतेन महाराज शतधाभिव्यदीर्यत ॥ ६ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्रकी महासेना सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर सैंकडों टुकडियोंमें बंटकर तितर बितर होने लगी ॥ ६ ॥

तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पौत्रो महारथः ।
सप्त वीरान्महेष्वासानग्रानीके व्यपोथयत् ॥ ७ ॥

उस सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंके तितर बितर होनेपर शिनिपौत्र महारथी सात्यकिने शत्रु सेनाके अगाडी स्थित महाधनुर्धारी सात वीरोंका वध किया ॥ ७ ॥

ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानुषम् ॥ ८ ॥

महाबाहु सात्यकिने अपने बाणोंसे कुचलकर तुम्हारे सारे सैनिकोंको मथ डाला; वे वीर योद्धा अतिमानुष बलपराक्रमवाले सात्यकिको देखतेही युद्धभूमिसे पृथक् होने लगे ॥ ८ ॥

रथैर्विमथिताक्षैश्च भग्ननीडैश्च मारिष ।
चक्रैर्विमथितैश्छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ९ ॥

मारिष ! वहां अनेक रथ अक्ष, बैठकें, चक्र, छत्र और ध्वज छिन्नभिन्न होकर पृथ्वीपर पडे थे ॥ ९ ॥

अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ।
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशां पते ॥ १० ॥

पृथ्वीपते ! अनुकर्ष, पताका, मनुष्योंके सुवर्णभूषित शिरस्त्राण, अंगदयुक्त चन्दनचर्चित भुजाएं ॥ १० ॥

हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजगाभोगसंनिभैः ।
ऊरुभिः पृथिवी छन्ना मनुजानां नरोत्तम ॥ ११ ॥

सर्पोंके शरीरके समान और हाथियोंके सूण्डसमान शूरवीरोंके कटे हुए जङ्घोंसे वह रणभूमि परिपूरित हो गई ॥ ११ ॥

शशाङ्कसंनिकाशैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ।
पतितैर्ऋषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ॥ १२ ॥

भारत ! वृषभ और हरिणके समान नेत्रवाले सुन्दर और मनोहर कुण्डलोंसे शोभित शूरवीरोंके कटे हुए चन्द्रमा जैसे मुखोंसे परिपूर्ण होके वह रणभूमि शोभित होने लगी ॥ १२ ॥

गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ।
रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ १३ ॥

जैसे टूटे फूटे पर्वतोंके समूहसे पृथ्वी शोभित होती है, वैसे ही पर्वतके समान पृथ्वीमें पडे मरे हुए हाथियोंके समूहसे वह रणभूमि प्रकाशित होने लगी ॥ १३ ॥

तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ।
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।
गतसत्वा महीं प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ १४ ॥

सुवर्णकी माला और मोतियोंकी झालरसे विभूषित विचित्र आच्छादनवस्त्रोंसे युक्त कितने ही उत्तम घोडे महाबाहु सात्यकिके बाणोंसे मर युद्धभूमिमें गिर कर शोभित होने लगे ॥ १४॥

नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥ १५ ॥

सात्यकिने इसी भांति सेनाके अनेक योद्धाओंका वध करके और बहुतसे योद्धाओंको भगा कर तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ १५ ॥

ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनंजयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ १६ ॥

अनन्तर जिस मार्गसे अर्जुन गये, उस ही मार्गसे गमन करनेकी सात्यकिने अभिलाषा की, परन्तु द्रोणाचार्यने उसे निवारण किया ॥ १६ ॥

भारद्वाजं समासाद्य युयुधानस्तु मारिष ।
नाभ्यवर्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ १७ ॥

मारिष ! अत्यंत क्रुद्ध हुए सात्यकि द्रोणाचार्यके समीप पहुंच कर रुक गये, परंतु पीछे नहीं लौटे, जैसे समुद्रका वेग उटसे रुक कर फिर पीछे लौटता ॥ १७ ॥

निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १८ ॥

द्रोणाचार्यने युद्धमें महारथी सात्यकिको रोक कर उसे पांच तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे विद्ध किया ॥ १८ ॥

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन्विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ १९ ॥

राजन् ! सात्यकिने भी समरमें अत्यंत तेज सुवर्ण पंखयुक्त कङ्क पंखवाले सात बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ १९ ॥

तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २० ॥

फिर द्रोणाचार्यने छः बाणोंसे उसके रथके चारों घोडे और सारथि सहित सात्यकिको विद्ध किया । महारथी सात्यकि द्रोणाचार्यके हस्तलाघवको न सह सके ॥ २० ॥

सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चान्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २१ ॥

उन्होंने सिंहनाद करके पहिले दस, फिर छ और उसके बाद आठ बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ २१ ॥

युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ॥ २२ ॥

मारिष ! फिर युयुधानने दस बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया । अनन्तर सात्यकिने एक बाणसे द्रोणाचार्यके सारथि, चार बाणोंसे उनके चारों घोडे और एक बाणसे उनके रथकी ध्वजाको युद्धमें विद्ध किया ॥ २२ ॥

तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ।
त्वरन्प्राच्छादयद्बाणैः शलभानामिव व्रजैः ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित शलभसमूहके समान अपने बाणोंके समूहसे सात्यकिको घोडे, सारथि, रथ और ध्वजाके सहित छिपा दिया ॥ २३ ॥

तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ।
प्राच्छादयदसंभ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ॥ २४ ॥

सात्यकिने भी निर्भयतापूर्वक उस ही भांति अपने अनेक शीघ्रगामी बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको छिपा दिया । अनन्तर द्रोणाचार्य सात्यकिसे बोले ॥ २४ ॥

तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ।
युध्यमानं हि मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्तत ॥ २५ ॥

हे सात्यकि ! तुम्हारा गुरु कायरकी भांति युद्धभूमिमें मेरे संमुखसे हटके चला गया है; मैं युद्ध करता ही था, तो भी वह मुझे त्याग कर मेरी प्रदक्षिण करके चला गया है ॥ २५ ॥

त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन्मोक्ष्यसि माधव ।
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद्द्रुतम् ॥ २६ ॥

परन्तु तुम यदि अपने गुरुकी भांति शीघ्रही मुझे त्यागके नहीं जाओगे, तो आज मेरे सङ्ग युद्ध करके तुम जीते जी मेरे संमुखसे मुक्त न हो सकोगे ॥ २६ ॥

सात्यकिरुवाच

धनंजयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ।
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन्न मे कालात्ययो भवेत् ॥ २७ ॥

सात्यकि बोले— हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी स्वस्ति होवे, मैं धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनका अनुसरण कर रहा हूं; आप मुझे विलंब न करें ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच

एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ।
प्रयातः सहसा राजन्सारथिं चेदमब्रवीत् ॥ २८ ॥

सञ्जय बोले— हे राजेन्द्र ! सात्यकिने ऐसा कहकर सहसा द्रोणाचार्यको त्यागके गमन किया। अनन्तर सात्यकि अपने सारथिसे यह वचन बोले ॥ २८ ॥

द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ।
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ॥ २९ ॥

सूत ! द्रोणाचार्य मुझे सब भांतिसे निवारण करनेके लिये यत्न करेंगे । तुम यत्नवान् होकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें आगे बढो; और मेरी यह बात भी सुनो ॥ २९ ॥

एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ।
अस्यानन्तरतस्त्वेतद्दाक्षिणात्यं महाबलम् ॥ ३० ॥

यह देखो, यह महातेजस्वी अवन्ती नगरीकी सेना है, उसके बाद दक्षिण देशीय बडी सेना दीख पडती है ॥ ३० ॥

तदनन्तरमेतच्च बाह्लिकानां बलं महत् ।
बाह्लिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्यापि महद्बलम् ॥ ३१ ॥

और उसके पश्चात् यह बाह्लिकोंकी विशाल सेना है; बाह्लिकोंके पासही कर्णकी महासेना युद्धके निमित्त रणभूमिमें स्थित है ॥ ३१ ॥

अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ।
अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम् ॥ ३२ ॥

सारथे ! ये सब सेनाएं अलग अलग युद्धमें स्थित हैं, परन्तु ये सम्पूर्ण सेनाएं एक दूसरीके आसरेसे युद्धभूमिसे न हटेंगी ॥ ३२ ॥

एतदन्तरमासाद्य चोदयाश्वान्प्रहृष्टवत् ।
मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ॥ ३३ ॥

तुम उन सेनाओंके बीचमें होकर प्रसन्नतापूर्वक मध्यम वेगके सहित घोडोंको चलाओ ॥ ३३ ॥

बाह्लिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ।
दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ॥ ३४ ॥

जिस स्थानमें नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके युद्धके लिये तैयार हुए बाह्लिक देशीय सैनिक और सूतपुत्र कर्णको आगे करके अनेक दक्षिणी योद्धा खडे हैं ॥ ३४ ॥

हस्त्यश्वरथसंबाधं यच्चानीकं विलोक्यते ।
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ॥ ३५ ॥

हाथी, घोडे, रथोंके समूह और नाना देशीय पैदल सेनाके योद्धा लोग स्थित हैं; तुम उस ही स्थान पर मेरे रथको ले चलो ॥ ३५ ॥

एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ।
स व्यतीयाय यत्रोग्रं कर्णस्य सुमहद्बलम् ॥ ३६ ॥

सारथिसे ऐसा वचन कहके द्विजसत्तम द्रोणाचार्यको त्यागके सबको लांघकर सात्यकि जहां कर्णकी बडी और घोर सेना खडी थी, वहां जा पहुंचे ॥ ३६ ॥

तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन्विशिखान्बहून् ।
युयुधानं महाबाहुं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ॥ ३७ ॥

जब महाबाहु सात्यकि युद्धभूमिमें निवृत्त न होकर दूसरी ओरसे सेनाके बीच गमन करने लगे, तब द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर अनेक बाणोंको चलाते हुए सात्यकिके पीछे पीछे दौडे ॥ ३७ ॥

कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ।
प्राविशद्भारतीं सेनामपर्यन्तां स सात्यकिः ॥ ३८ ॥

सात्यकिने अपने तीक्ष्ण-बाणोंसे कर्णकी महासेनाके योद्धाओंको विद्ध करते तथा कुरुसेनाके योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करते हुए उस अपार भारती महासेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ३८ ॥

प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ।
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ॥ ३९ ॥

जब सात्यकिने इस प्रकारसे कुरुसेनाके बीच प्रवेश किया, और उनके अस्त्रोंसे पीडित होकर सेनाके योद्धा इधर उधर भागने लगे, तब महारथी कृतवर्माने अत्यन्त क्रुद्ध होके सात्यकिको घेर लिया ॥ ३९ ॥

तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ।
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान् ॥ ४० ॥

महापराक्रमी सात्यकिने कृतवर्माको संमुख आये हुए देख, छः बाणोंसे उनके ऊपर प्रहार किया, फिर चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको शीघ्रही विद्ध किया ॥ ४० ॥

ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ।
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ४१ ॥
अनन्तर फिर नतपर्व सोलह बाणोंसे सात्यकिने कृतवर्माके हृदयमें प्रहार किया ॥ ४१ ॥

स तुद्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ।
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ॥ ४२ ॥
महाराज ! कृतवर्मा सात्यकिके महातेजस्वी अनेक बाणोंसे विद्ध होकर उसे नहीं सहन कर सके ॥ ४२ ॥

स वत्सदन्तं संधाय जिह्मगानलसंनिभम् ।
आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्यकिम् ॥ ४३ ॥
उन्होंने वक्रगतिसे चलनेवाले अग्निके समान तेजस्वी वत्सदन्त नामक एक बाण धनुषपर रखकर उसे कानतक खींचके सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ४३ ॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ।
सपत्रपुङ्खः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ॥ ४४ ॥
वह बाण सात्यकिके कवच और शरीरको भेद कर रुधिरसे भरकर पङ्ख और पत्रसहित पृथ्वीमें घुस गया ॥ ४४ ॥

अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत्परमास्त्रवित् ।
समार्गणगुणं राजन्कृतवर्मा शरासनम् ॥ ४५ ॥
सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले कृतवर्माने उसके बाद सात्यकिके धनुषको रोदा और बाणके सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट कर गिरा दिया ॥ ४५ ॥

विव्याध च रणे राजन्सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ॥ ४६ ॥
फिर अत्यंत क्रुद्ध हुए कृतवर्माने दस तीक्ष्ण बाणोंसे सत्यपराक्रमी सात्यकिके हृदयमें प्रहार किया ॥ ४६ ॥

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ।
अभ्यहन्दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ॥ ४७ ॥
बलवान् वीरोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने अपना धनुष कट जानेपर एक शक्तिसे कृतवर्माकी दाहिनी भुजामें प्रहार किया ॥ ४७ ॥

ततोऽन्यत्सुदृढं वीरो धनुरादाय सात्यकिः ।
व्यसृजद्विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८ ॥
अनन्तर एक दृढ धनुष ग्रहण करके वीर सात्यकिने शीघ्रही कृतवर्मा पर सैकडों, सहस्रों बाणोंकी वर्षा की ॥ ४८ ॥

सरथं कृतवर्माणं समन्तात्पर्यवाकिरत् ।
छादयित्वा रणेऽरथं हार्दिक्यं तु स सात्यकिः ॥ ४९ ॥
और रथके सहित कृतवर्माको सब ओरसे छिपा दिया । सात्यकिने इसप्रकार कृतवर्माको अपने बाणोंसे अत्यंत आच्छादित किया ॥ ४९ ॥

अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ।
स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तरि हते प्राद्रवंस्तुरगा भृशम् ॥ ५० ॥
फिर एक भल्लसे उनके सारथिका सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया; जब सारथि मरके उस महारथके उपरसे नीचे गिरा, तब कृतवर्माके रथके घोडे सारथिसे रहित होकर जोरसे दौडने लगे ॥ ५० ॥

अथ भोजस्त्वसम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान्स्वयम् ।
तस्थौ शरधनुष्पाणिस्तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ५१ ॥
अनन्तर भोजराज कृतवर्मा निर्भय चित्तसे स्वयंही घोडोंको रोक कर, धनुष बाण ले स्थित हुए । सेनाके सम्पूर्ण योद्धा कृतवर्माके इस कार्यको देख कर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५१ ॥

स मुहूर्तमिवाश्वस्य सदश्वान्समचोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत्सुमहद्भयम् ।
सात्यकिश्चाभ्यगात्तस्मात्स तु भीममुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥
वह मुहूर्त्तभरमें फिर आश्वस्त होकर तथा अपने उत्तम घोडोंको आगे बढा कर स्वयं निर्भय होकर शत्रुओंको भयभीत करने लगे; परन्तु सात्यकिने वहांसे आगे प्रस्थान किया और कृतवर्मा भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ५२ ॥

युयुधानोऽपि राजेन्द्र द्रोणानीकाद्विनिःसृतः ।
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ॥ ५३ ॥
हे राजेन्द्र ! सात्यकि भी भोजसेनासे निकल कर शीघ्रही काम्बोज देशीय महासेनाके पास आ पहुंचे ॥ ५३ ॥

स तत्र बहुभिः शूरैः संनिरुद्धो महारथैः ।
न चचाल तदा राजन्सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५४ ॥
राजन् ! वहां पर अनेक शूरवीर योद्धा और महारथियोंने उन्हें आगे बढनेसे रोका, राजन् ! तो भी सत्यपराक्रमी सात्यकि विचलित नहीं हुए ॥ ५४ ॥

संधाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ।
अन्वधावद्रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ॥ ६५ ॥

उधर द्रोणाचार्य अपनी बिखरी हुई सेनाको यथायोग्य स्थानोंमें स्थित कर और भोजराज कृतवर्माके ऊपर संपूर्ण सेनाका भार समर्पण करके सात्यकिके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ ६५ ॥

तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ।
न्यवारयन्त संक्रुद्धाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार उन्हें सात्यकिके पीछे पीछे युद्ध करनेके वास्ते गमन करते देख पाण्डव सेनाके प्रमुख शूरवीर योद्धा क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६६ ॥

समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ।
पाञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।
विक्रम्य वारिता राजन्वीरेण कृतवर्मणा ॥ ६७ ॥

परन्तु रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माके समीप पहुंचकर भीमसेनको आगे करके आक्रमण करनेवाले पाञ्चाल उत्साह रहित हो गये । महावीर कृतवर्माने अपने पराक्रमको प्रकाशित करके उन सम्पूर्ण योद्धाओंको रोक दिया ॥ ६७ ॥

यतमानांस्तु तान्सर्वानीषद्विगतचेतसः ।
अभितस्ताञ्शरौघेण क्लान्तवाहानवारयत् ॥ ६८ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण वाहन थके हुए थे; और उनकी सेनाके योद्धा बाणोंकी चोटसे पीडित होकर अचेतसे हो गये थे; तो भी विजयके लिये अत्यन्त प्रयत्न कर रहे थे, परंतु कृतवर्माने चारों ओरसे उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उनको रोका ॥ ६८ ॥

निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे ।
अतिष्ठन्नार्यवद्वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ३७१३ ॥

परन्तु वे सम्पूर्ण योद्धा भोजराज कृतवर्माके अस्त्रोंसे निवारित होकर भी महान् यशकी अभिलाषा करके भोजसेनाके योद्धाओं पर आक्रमण करनेकी इच्छासे क्षत्रिय धर्मको स्मरण करके युद्धभूमिमें डटकर खडे हो गये ॥ ६९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें अठासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥ ३७१३ ॥

: ८९ :

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुविधं सैन्यमेवं प्रविचितं वरम्।
व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च सञ्जय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले-- हे संजय ! हमारी सम्पूर्ण सेना अनेक प्रकारसे युक्त है, और युद्धके सब कार्योंको जानती है, उसका यथारीतिसे उत्तम व्यूह भी बनाया जाता है और वह गिनतीमें भी थोडी नहीं है ॥ १ ॥

नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद्दृढविक्रमम् ॥ २ ॥

हम लोग उस सेनाका सदा संमान करते रहते हैं; और मेरी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भी हम लोगोंके प्रिय कार्यके करनेकी अभिलाष किया करते हैं। वे सब योद्धा हृष्ट-पुष्ट, अद्भुत रूपवाले, युद्ध करनेमें निपुण और दृढ पराक्रमी हैं ॥ २ ॥

नातिवृद्धमबालं च न कृशं नातिपीवरम्।
लघुवृत्तायतप्राणं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥

मेरी सेनाके योद्धा लोग न बहुत बूढे और बाल हैं, न शरीरसे दुबले और न बहुत मोटे हैं। उन संपूर्ण योद्धाओंका मध्यम शरीर है। वे सब ही पराक्रमी और शीघ्र गमन करनेवाले हैं, सब ही सावधान और रोगरहित हैं ॥ ३ ॥

आत्तसंनाहसंपन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम्।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥

वे सब कवचसे आच्छादित हैं, वे सब कोई अनेक अस्त्रशस्त्रोंसे संपन्न हैं; ये सब अनेक शस्त्रग्रहण विद्याओंमें कुशल हैं ॥ ४ ॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ५ ॥

वाहनोंसे शीघ्रताके सहित चढने, उतरने, फैलने, कूदकर चलने, उत्तम रीतिसे प्रहार करने, शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करने और उससे अवसर देखकर बाहर निकलनेमें निपुण हैं ॥ ५ ॥

नागेष्वश्वेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम्।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥

हाथी, घोडे और रथोंपर चढकर युद्ध करनेकी विद्यामें इन योद्धाओंकी यथारीतिसे परीक्षा करके ही उनको यथा योग्य वेतन नियत किया गया है ॥ ६ ॥

न गोष्ठ्या नोपचारेण न संबन्धनिमित्ततः ।
नानाहूतो न ह्यभृतो मम सैन्ये बभूव ह ॥ ७ ॥

हमने बातचीत करके, सेवाके कारण तथा मित्रता और सम्बधके कारणसे उन्हें सेनामें नहीं नियुक्त किया है । वे सब बिना बुलाये, वा अपनी प्रार्थनाके अनुसार तथा नवीन रीतिसे मेरी सेनाके बीच नहीं नियुक्त हुए हैं ॥ ॥ ७ ॥

कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम् ।
कृतमानोपकारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥ ८ ॥

विशेष करके वे सब श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए, श्रेष्ठ कुलके योग्य श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, सन्तोषी, हृष्ट पुष्ट, विनयशील, यशस्वी और मनस्वी हैं, उन लोगोंका संमान और उपकार भी किया जाता है ॥ ८ ॥

सचिवैश्चापरैर्मुख्यैर्बहुभिर्मुख्यकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥

तात ! वे सब योद्धालोग मन्त्रियों तथा लोकपालोंके समान पराक्रमी, मुख्य मुख्य श्रेष्ठ सेनापतियोंसे परिपालित होते रहते हैं ॥ ९ ॥

बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः ।
अस्मानभिसृतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १० ॥

और मेरे प्रिय कार्यके करनेकी अभिलाषा करनेवाले और सेना और अपने अनुयायियोंके सहित स्वेच्छासे हमारे पक्षमें आये हुए अनेक राजा लोग उन योद्धाओंकी रणभूमिमें रक्षा करते हैं ॥ १० ॥

महोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसंकाशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥

चारों ओरसे आई हुई नदियोंके समूहोंसे परिपूर्ण हुए महासागरके समान मेरी यह सेना अपार हुई है । यह सब सेना पक्षरहित और पक्षियोंके समान शीघ्रगामी रथ और घोडोंसे परिपूरित है ॥ ११ ॥

योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १२ ॥

शूरवीर योद्धारूपी अक्षय्य जल वाहन रूपी लहर, रथरूपी नौका, क्षेपणीय, तलवार, गदा, शक्ति, प्रास, परशु और बाण आदि अस्त्रशस्त्र रूपी मछलियोंसे युक्त ॥ १२ ॥

ध्वजभूषणसंबाधं रत्नपट्टेन संचितम् ।
वाहनैरपि धावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १३ ॥

ध्वजा, आभूषण, रत्नोंसे भरे हुए मुकुट और वस्त्ररूपी कमलपुष्पोंसे शोभित, दौडते हुए सम्पूर्ण वाहनरूपी वायुसे उछलित ॥ १३ ॥

द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसंधमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्यरूपी आधार और कृतवर्मारूपी महाहृदसे शोभित; जलसन्ध आदि मकर घडियालसे युक्त और कर्ण रूपी चन्द्रके उदय होनेपर अत्यंत भयंकर लहरसे युक्त होनेवाले समुद्रके समान मेरी महाभयङ्कर सेना है ॥ १४ ॥

गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
संजयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १५ ॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ १६ ॥

संजय ! ऐसे मेरे सैन्यरूपी महासागरका शीघ्रताके सहित भेदन करके पाण्डव श्रेष्ठ सव्यसाची अर्जुन और सात्वतवंशी महारथी सात्यकि एकमात्र रथकी सहायतासे जब मेरी महासेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं; तब मेरी सेनाके शेष रहनेकी आशा मैं नहीं देखता हूं ॥ १५–१६ ॥

तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वाभीतौ तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु संप्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १७ ॥

उन दोनों निर्भय अत्यंत वेगवान् शूरवीरोंको सबका अतिक्रमण करके सेनामें प्रवेश करते देख तथा सिन्धुराज जयद्रथो गाण्डीवधनुषके बाणोंकी सीमामें स्थित देखकर ॥ १७ ॥

किं तदा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणैकायने काले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥

कालके वशमें हुए कौरवोंने उस समय कौनसा कार्य किया ? उस महाघोर मृत्युरूपी संग्रामके समय उन लोगोंने किस प्रकार अपना कर्तव्य किया ? ॥ १८ ॥

ग्रस्तान्हि कौरवान्मन्ये मृत्युना तात संगतान् ।
विक्रमो हि रणे तेषां न तथा दृश्यतेऽद्य वै ॥ १९ ॥

हे तात ! मैं मानता हूं, वे सब युद्धभूमिमें एकत्र हुए कौरव कालके वशमें हो गये हैं; इस समय युद्धभूमिमें उनका पहिलेके समान पराक्रम भी नहीं दीख पडता है ॥ १९ ॥

अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च वारयिता कश्चित्तयोरस्तीह सञ्जय ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धमें घाव रहित शरीरसे मेरी सेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं, उन लोगोंको युद्धभूमिसे निवारण करे, ऐसा कोई भी पुरुष मेरी इस सम्पूर्ण सेनाके बीच नहीं निकला ॥ २० ॥

भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोग्यं प्रियवादेन चापरे ॥ २१ ॥

मेरी सेनाके सैनिक महारथियोंको परीक्षा करके यथायोग्य वेतनके अनुसार और दूसरे बहुतेरे महारथी वीरोंको मीठे वचनोंसे संमानित करके सेनाके बीच नियुक्त किया गया है ॥२१॥

अकारणभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥ २२ ॥

उन लोगोंके बीच कोई अकारण मेरी सेनाके बीच नहीं नियुक्त किया गया है; मेरी सेनाके सब पुरुष अपनी योग्यताके अनुसार अन्न और वेतन पाते हैं ॥ २२ ॥

न च योधोऽभवत्कश्चिन्मम सैन्ये तु संजय ।
अल्पदानभृतस्तात न कुप्यभृतको नरः ॥ २३ ॥

तात संजय ! मेरी सेनामें ऐसा कोई भी वीर योद्धा नहीं है जिसे थोडे वेतन पर नियुक्त किया गया है अथवा जिसे हीनरीतिसे रक्खा गया है ॥ २३ ॥

पूजिता हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २४ ॥

तात ! मैंने, मेरे पुत्रोंने, जातिजनोंने और बन्धु-बान्धवोंने दान, मान और आदरसे उन सम्पूर्ण सैनिक पुरुषोंको अपनी शक्तिके अनुसार संमानित किया है ॥ २४ ॥

ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद्भागधेयतः ॥ २५ ॥

परन्तु ऐसे योद्धालोगोंको भी जब सव्यसाची अर्जुनने युद्धभूमिमें पहुंचतेही पराजित किया है और सात्यकिने भी उनको मर्दित किया है, तब उसका कारण भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २५ ॥

रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च सञ्जय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २६ ॥

संजय ! युद्धमें जिसकी रक्षा की जाती है और जो लोग रक्षक हैं, उन रक्षकों सहित रक्षणीय पुरुषके लिये एकही साधारण मार्ग रहा है ॥ २६ ॥

अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २७ ॥

युद्धमें सिन्धुराजके सामने अर्जुनको स्थित देखकर मेरे अत्यंत मूर्ख पुत्रने कौनसा कर्तव्य निश्चित किया ? ॥ २७ ॥

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् ।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ २८ ॥

और सात्यकिको भी युद्धमें अपनी सेनाके बीच निर्भय चित्तसे प्रवेश करते देख, दुर्योधनने उस समयके अनुसार किस कार्यका निश्चय किया ? ॥ २८ ॥

सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथसत्तमौ ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ २९ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकिको सब शस्त्रधारीयोंको अतिक्रम करते हुए सेनाके बीच प्रवेश करते देख, मेरे पुत्रोंने युद्धमें किस भांतिसे धीरज धारण किया ? ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् ।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३० ॥

मुझे बोध होता है, कि अर्जुनके लिये रथमें स्थित दशार्ह पुत्र श्रीकृष्णको और शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको देखकर मेरे सम्पूर्ण पुत्र शोकसे आर्त्त हुए होंगे ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनार्जुनेन च ।
पलायमानांश्च कुरून्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥

सात्यकि और अर्जुनको सेना लांघकर जाते और कौरव वीरोंको युद्धसे भागते देख मैं समझता हूं कि मेरे पुत्र अत्यंत शोक वश हुए होंगे ॥ ३१ ॥

विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान्द्विषज्जये ।
पलायने कृतोत्साहान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥

अपने रथियोंको शत्रुओंपर विजय पानेमें उत्साहरहित होकर भागते और भागनेमेंही तत्पर रहते हुए देख, मेरे पुत्र अत्यन्त शोकित हुए होंगे ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३२ ॥

शून्यान्कृतान्रथोपस्थान्सात्वतेनार्जुनेन च ।
हतांश्च योधान्संदृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥

उनको विमुख होते देख, मेरे पुत्र अत्यन्त शोकित हुए होंगे। अर्जुन और सात्यकिको अपनी ओरकी रथोंकी बैठकें योद्धाओंसे रहित करते और सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंका नाश करते देख, मैं सोचता हूं कि मेरे पुत्र शोकसे आर्त्त होगये होंगे ॥ ३३ ॥

×

व्यश्वनागरथान्दृष्ट्वा तत्र वीरान्सहस्रशः ।
धावमानान्रणे व्यग्रान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३४ ॥

हजारों वीरोंको वहां युद्धमें घोडे, रथ और हाथियोंसे रहित और व्याकुल होके इधर उधर दौडते देख, मेरे पुत्र शोकसे व्याकुल हुए होंगे ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३४ ॥

विवीरांश्च कृतानश्वान्विरथांश्च कृतान्नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३५ ॥

अर्जुन और सात्यकिने घोडोंको वीर सवारोंसे रहित और विरथ किये हुए रथियोंको देखकर, मुझे निश्चय होता है, कि मेरे पुत्र शोकसे आर्त होगये होंगे ॥ ३५ ॥

पत्तिसंघान्रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥

झुण्डके झुण्ड पैदल सेनाके योद्धाओंको युद्धमें इधर उधर सब ओर दौडते और भागते देख मैं मानता हूं मेरे सब पुत्र विजयकी आशासे निराश होके शोकित हुए होंगे ॥ ३६ ॥

द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३७ ॥

अपराजित दोनों वीर अर्जुन और सात्यकिको थोडे ही समयके बीच द्रोणाचार्यकी सेनासे पार होते देख, मेरे पुत्र लोग शोकित हुए होंगे ऐसा मेरा मानना है ॥ ३७ ॥

संमूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाच्युतौ ॥ ३८ ॥

हे तात ! अच्युत श्रीकृष्ण और अर्जुनने सात्यकिके सहित ही मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया है, यह वृत्तान्त सुनकर मैं अत्यन्त मोहित हो रहा हूं ॥ ३८ ॥

तस्मिन्प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते कथमासन्हि कौरवाः ॥ ३९ ॥

शिनिश्रेष्ठ महारथी सात्यकिने जब भोजराज कृतवर्माकी सेना अतिक्रम करके मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया तब कौरवोंकी मनःस्थिति कैसी थी ? ॥ ३९ ॥

तथा द्रोणेन समरे निगृह्णीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत्तत्र तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ४० ॥

संजय ! जब द्रोणाचार्यने समरमें पाण्डवोंको रोक दिया, तब वहां किस प्रकार युद्ध हुआ ? वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ४० ॥

द्रोणो हि बलवाञ्छूरः कृतास्त्रो दृढविक्रमः ।
पाञ्चालास्तं महेष्वासं प्रत्ययुध्यन्कथं रणे ॥ ४१ ॥

द्रोणाचार्य बलवान्, शूरवीर, अस्त्रविद्याके जाननेवाले और दृढ पराक्रमी हैं; पाञ्चालोंने उस समय युद्धमें महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ४१ ॥

बद्धवैरास्तथा द्रोणे धर्मराजजयैषिणः ।
भारद्वाजस्तथा तेषु कृतवैरो महारथः ॥ ४२ ॥

पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यसे वैर बांधकर धर्मराज युधिष्ठिरकी विजयकी अभिलाषा करते हैं; और भरद्वाजपुत्र महारथी द्रोणाचार्य भी उनसे शत्रुता करते हैं ॥ ४२ ॥

अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ३७५६ ॥

हे सञ्जय ! तुम वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हो; इससे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त और अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधके निमित्त जैसा कार्य किया था, वह सम्पूर्ण समाचार तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ४३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ ३७५६ ॥

: ९० :

सञ्जय उवाच

आत्मापराधात्संभूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद्वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! तुम्हें अपने किये हुए अपराधसे ही ऐसे व्यसनमें फंसना हुआ है; इसलिये आपको साधारण पुरुषोंके समान शोक करना उचित नहीं है ॥ १ ॥

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ।
आर्तप्रलापांश्च बहून्मनुजाधिपसत्तम ॥ २ ॥

राजन् ! तुम्हारी सद्गुणहीनता, अपने पुत्रोंके निमित्त पक्षपात, धर्मके विषयमें अनिश्चय और दुविधा, पाण्डवोंके प्रति द्वेषभाव–मत्सरता, और बहुत व्यर्थ आर्त प्रलाप जान कर ॥ २ ॥

सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकगुरुः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ३ ॥

सर्व लोक तत्त्वज्ञ, सब लोकोंके गुरु, वासुदेव प्रभु श्रीकृष्णने इस समय कौरव–पाण्डवोंके इस महान् युद्धका उद्योग किया ॥ ३ ॥

आत्मापराधात्सुमहान्प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः ।
न हि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत ।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ४ ॥

तुम्हारी दुष्टनीतिके कारणसे ही तुम्हारे सामने बन्धु–बान्धव और स्वजनोंका महान् नाश हो रहा है; भारत ! आपने पहिले वा मध्य समयमें भी कुछ अच्छा कर्म नहीं किया, तथा पीछे भी कुछ अच्छा नहीं किया है, इससे तुम ही इस पराजयके मूल हो ॥ ४ ॥

तस्मादद्य स्थिरो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम्
शृणु युद्धं यथा वृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५ ॥

इसलिये स्थिर चित्त होकर और सम्पूर्ण लौकिक व्यवहारोंको जान कर देवासुर युद्धके समान इस कुरु–पाण्डवोंके भयङ्कर युद्धका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक सुनिये ॥ ५ ॥

प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥ ६ ॥

जब सत्यपराक्रमी सात्यकिने तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया, तब भीमसेन आदि पाण्डवोंकी ओरके योद्धा लोग तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे ॥ ६ ॥

आगच्छतस्तान्सहसा क्रुद्धरूपान्सहानुगान् ।
दधारैको रणे पाण्डून्कृतवर्मा महारथः ॥ ७ ॥

पाण्डवोंको क्रोधपूर्वक अनुयायियोंके सहित अपनी सेनाकी ओर सहसा आक्रमणके लिये आते देख, महारथी कृतवर्माने अकेले ही उन सम्पूर्ण योद्धाओंको रोका ॥ ७ ॥

यथोद्वृत्तं धारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ८ ॥

जिस प्रकार उछलते हुए समुद्रको तट निवारण करता है, उसी प्रकार युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाका निवारण अकेले कृतवर्मा ही करने लगे ॥ ८ ॥

तत्राद्भुतममन्यन्त हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नातिचक्रमुराहवे ॥ ९ ॥

उस समय कृतवर्माका यह अद्भुत पराक्रम हुआ, ऐसा मानते हैं, कि पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा सब मिलकर भी युद्धमें उन्हें अतिक्रम करके आगे न बढ सके ॥ ९ ॥

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमायसैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥

अनन्तर महाबाहु भीमसेनने तीन बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके अपनी ओरके योद्धाओंको आनन्दित करते हुए अपना शंख बजाया ॥ १० ॥

सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ११ ॥

अनन्तर सहदेवने बीस, धर्मराज युधिष्ठिरने पांच और नकुलने एक सौ बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया ॥ ११ ॥

द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ।
विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ॥ १२ ॥

द्रौपदीके पांचों पुत्रोंने तिहत्तर, घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया; विराट, राजा द्रुपद और उनके पुत्र धृष्टद्युम्नने भी पांच पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया ॥ १२ ॥

शिखण्डी चापि हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ॥ १३ ॥

शिखण्डीने पांच बाणोंसे पहले कृतवर्माको विद्ध करके, फिर हंसकर बीस बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ १३ ॥

कृतवर्मा ततो राजन्सर्वतस्तान्महारथान् ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तो रथाद्भूमावपातयत् ॥ १४ ॥

राजन् ! तब कृतवर्माने उन सम्पूर्ण महारथियोंको चारों ओर बाण चलाकर प्रत्येकको पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया; फिर सात बाणोंसे भीमको विद्ध किया; तथा उनके धनुष और ध्वजाको काटके रथसे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ १५ ॥

उसके बाद उनका धनुष कट जानेपर महारथी कृतवर्माने क्रुद्ध होकर शीघ्रतासे भीमसेनके हृदयमें सत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया ॥ १५ ॥

स गाढविद्धो बलवान्हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ १६ ॥

जैसे भूकम्प होनेसे पहाड कम्पित होता है, वैसे ही बलवान भीमसेन हृदिकपुत्र कृतवर्माके उत्तम बाणोंकी चोटसे अत्यन्त विद्ध होकर रथमें बैठे हुए ही कांपने लगे ॥ १६ ॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान्राजन्कृतवर्माणमार्दयन् ॥ १७ ॥

राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिर और उनके अनुयायी सम्पूर्ण योद्धालोग भीमसेनकी वैसी दशा देख अपने बाणोंको कृतवर्माके ऊपर बरसाते हुए उन्हें पीडित करने लगे ॥ १७ ॥

तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥ १८ ॥

मारिष ! वे सब योद्धा हर्षपूर्वक भीमसेनकी रक्षा करनेके लिये कृतवर्माको अपने रथोंके समूहसे घेरकर तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें युद्धमें विद्ध करने लगे ॥ १८ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ।
चिक्षेप च रथात्तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ॥ १९ ॥

महाबलवान् भीमसेन थोडी देरके बाद सावधान हुए और समरमें सुवर्णदण्डभूषित एक लोहमयी शक्ति ग्रहण करके, शीघ्रताके सहित उसे अपने रथसे कृतवर्माके रथ पर चलाया ॥ १९ ॥

सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा ।
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ॥ २० ॥

भीमसेनके हाथसे छूटी हुई केंचुलीसे निकले हुए सर्पके समान वह भयङ्कर शक्ति जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित होती हुई कृतवर्माके संमुख चली ॥ २० ॥

तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निचकर्त द्विधा तदा ॥ २१ ॥

परन्तु हृदिकनन्दन कृतवर्माने प्रलय कालकी अग्नि समान उस प्रकाशमान शक्तिको संमुख आती देख, दो बाणोंसे दो खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २१ ॥

सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ।
द्योतयन्ती दिशो राजन्महोल्केव दिवश्च्युता ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥ २२ ॥

जैसे महाउल्क आकाशसे गिरते हुए दसों दिशामें प्रकाशित होते हैं, वैसे ही सब दिशाओंको प्रकाशित करती हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति कृतवर्माके बाणोंसे कटके पृथ्वीमें गिर पडी । अपनी शक्तिको कटी हुई देख, भीमसेन अत्यंत क्रुद्ध हो गये ॥ २२ ॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्सुमहास्वनम् ।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ २३ ॥

उन्होंने अत्यन्त भयङ्कर शब्द करनेवाले दूसरे एक वेगशील धनुषको ग्रहण करके क्रुद्ध होकर युद्धमें कृतवर्माका निवारण किया ॥ २३ ॥

अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन ह ॥ २४ ॥

फिर अत्यन्त बलवान् भीमने पांच बाणोंसे कृतवर्माके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार किया। महाराज ! यह सम्पूर्ण युद्धका कार्य तुम्हारे अविचारसे ही उपस्थित हुआ है ॥ २४ ॥

भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥ २५ ॥

मारिष ! भोजराज कृतवर्माका सर्वांग भीमसेनके बाणोंसे क्षतविक्षत हो गया था; वे समरमें रुधिरसे भरकर फूले हुए रक्त अशोक वृक्षके समान शोभित हुए ॥ २५ ॥

ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान्सर्वान्प्रत्यविध्यत ॥ २६ ॥

अनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर हंसते हंसते तीन बाणोंसे भीमको अत्यंत विद्ध करके, फिर पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण धनुर्धारीयोंको अत्यन्त विद्ध किया ॥ २६ ॥

त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान्महारथान् ।
तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥ २७ ॥

महारथी कृतवर्माने तीन तीन बाणोंसे उन यत्नवान् पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण महारथियोंको विद्ध किया, और उन लोगोंने भी सात सात बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया ॥ २७ ॥

शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव भारत ॥ २८ ॥

भारत ! अनन्तर क्रुद्ध महारथी कृतवर्माने हंसते हुए एक क्षुरप्रसे शिखण्डीका धनुष काट दिया ॥ २८ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरम् ।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥ २९ ॥

धनुष कटने पर शिखण्डीने क्रुद्ध होकर शीघ्रतासे समरमें एक सौ चन्द्र प्रतिमासे युक्त प्रकाशमान सुवर्ण भूषित ढाल और तलवार ग्रहण किया ॥ २९ ॥

आमयित्वा महाचर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ३० ॥

फिर उस सुवर्णभूषित महान् ढालको घुमा कर कृतवर्माके रथके ऊपर वह तलवार फेंक दी ॥ ३० ॥

स तस्य सशरं चापं छित्त्वा संख्ये महानसिः ।
अभ्यगाद्धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ३१ ॥

युद्धमें वह बडी तलवार बाणके सहित कृतवर्माके धनुषको काटकर आकाशसे गिरे हुए ज्योतिवाले तारेके समान प्रकाशित होकर पृथ्वीमें गिरी ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणा महारथाः ।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥ ३२ ॥

तब अवसर पाकर युद्धमें शीघ्रता करनेवाले अनेक महारथी लोग कृतवर्माको अपने बाणोंसे अत्यन्त विद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

अथान्यद्धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद्धनुः ।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर शत्रुओंके वीरोंका नाश करनेवाले कृतवर्माने कटे हुए उस बडे धनुषको त्यागके दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ ३३ ॥

विव्याध पाण्डवान्युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ ३४ ॥

और युद्धमें पाण्डवोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके, शिखण्डीको पहिले तीन फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३४ ॥

धनुरन्यत्समादाय शिखण्डी तु महायशाः ।
अवारयत्कूर्मनखैराशुगैर्हृदिकात्मजम् ॥ ३५ ॥

फिर महायशस्वी शिखण्डी भी दूसरा धनुष ग्रहण कर कूर्मनखके समान धारवाले बाणोंसे कृतवर्माको निवारण करने लगे ॥ ३५ ॥

ततः क्रुद्धो रणे राजन्हृदिकस्यात्मसंभवः ।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ३६ ॥
भीष्मस्य समरे राजन्मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन्बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ३७ ॥

राजन् ! अनन्तर शूरवीर हृदिकपुत्र कृतवर्मा युद्धमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर समरमें महात्मा भीष्मकी मृत्युका कारण हुए महारथी शिखण्डीकी ओर अपने बलको दिखाते हुए इस प्रकारसे जोरसे दौडे जैसे हाथीकी ओर शार्दूल दौडता है ॥ ३६–३७

तौ दिशागजसंकाशौ ज्वलिताविव पावकौ ।
समासेदतुरन्योन्यं शरसंघैररिंदमौ ॥ ३८ ॥

अनन्तर दो दिग्गजोंके समान तथा जलती हुई अग्निकी भांति वे दोनों पराक्रमी वीर अपने बाणोंसे एक दूसरेको विद्ध करते हुए रणभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥

विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे संदधानौ च सायकान् ।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्करौ ॥ ३९ ॥

वे दोनों ही महारथी अपने श्रेष्ठ धनुषको फेरते हुए सूर्य किरणोंके समान अपने सैकडों प्रकाशमान बाणोंका संधान करके चलाने लगे ॥ ३९ ॥

तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥ ४० ॥

वे दोनों वीर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेको पीडित करते हुए प्रलयकालके दो सूर्योंके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४० ॥

कृतवर्मा तु रभसं याज्ञसेनिं महारथम् ।
विद्ध्वेषूणां त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ४१ ॥

कृतवर्माने युद्धमें पहिले महारथी शिखण्डीको तिहत्तर बाणोंसे विद्ध करके, फिर सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४१ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृजन्सशरं चापं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥ ४२ ॥

शिखण्डी कृतवर्माके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध, पीडित और मूर्छित होकर धनुष बाण त्याग कर रथका दण्ड पकडके बैठे गये ॥ ४२ ॥

तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्याधुधुवुश्च ह ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! शिखण्डीको रणभूमिमें खिन्न देख तुम्हारी ओरके योद्धालोग हर्षित होके वस्त्रोंको फहराते हुए कृतवर्माकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ ४३ ॥

शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम् ।
अपोवाह रणाद्यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥ ४४ ॥

महारथी शिखण्डीको कृतवर्माके बाणोंसे पीडित जान उनका सारथि शीघ्रताके सहित उनको युद्धभूमिसे बाहर ले गया ॥ ४४ ॥

सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम् ।
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ४५ ॥

पाण्डवोंने शिखण्डीको रथमें मूर्छित होकर बैठा देख चारों ओरसे तुरंतही समरमें अपने रथोंके समूहसे कृतवर्माको घेर लिया ॥ ४५ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः ।
यदेकः समरे पार्थान्वारयामास सानुगान् ॥ ४६ ॥

उस युद्धभूमिमें महारथी कृतवर्माका यह आश्चर्यमय पराक्रम दीख पडा कि उन्होंने अकेले ही अनुयायियोंके सहित सब पाण्डवोंका समरमें सामना किया ॥ ४६ ॥

पार्थाञ्जित्वाजयच्चेदीन्पाञ्चालान्सृञ्जयानपि ।
केकयांश्च महावीर्यान्कृतवर्मा महारथः ॥ ४७ ॥

महारथी कृतवर्माने पाण्डवोंको जीत कर, महाबलवान् पराक्रमी चेदी, पाञ्चाल, सृञ्जय और केकय देशीय शूरवीरोंको भी पराजित किया ॥ ४७ ॥

ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः ।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥ ४८ ॥

समरमें कृतवर्माके बाणोंसे पीडित होकर पाण्डव सैनिक धीरज न धर सके; सब कोई इधर उधर दौडते हुए उनके संमुखसे भागने लगे ॥ ४८ ॥

जित्वा पाण्डुसुतान्युद्धे भीमसेनपुरोगमान् ।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद्विधूम इव पावकः ॥ ४९ ॥

युद्धमें कृतवर्मा भीमसेन आदि पाण्डवोंको अनुयायियोंके सहित जीत कर धूएंसे रहित अग्निके समान प्रकाशित होकर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ ४९ ॥

ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः ।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरर्दिताः ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ३८०६ ॥

वे सम्पूर्ण महारथी योद्धा समरमें कृतवर्माके बाणोंकी वर्षासे पीडित होकर इधर उधर दौडते हुए युद्धसे विमुख हुए ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें नव्वेवां अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ ३८०६ ॥

: ९१ :

संजय उवाच

श्रृणुष्वैकमना राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन्हार्दिक्येन महात्मना ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! आप जो वृत्तान्त मुझसे पूछ रहे हैं उसे चित्त लगा कर सुनिये । पाण्डव सेनाको महात्मा हृदिक नन्दन कृतवर्माने रणभूमिसे भगाया ॥ १ ॥

लज्जयावनते चापि प्रहृष्टैश्चैव तावकैः ।
द्वीपो य आसीत्पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २ ॥

तब वह लज्जासे नतमस्तक हो गयी और तुम्हारी सेना हर्षित हो गयी, उस समय अगाध सेना समुद्रमें सहारा पानेकी इच्छा करनेवाले उन शूरवीरोंकी रक्षा करनेके लिये द्वीप स्वरूप होकर ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन्कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

शीघ्रताके सहित उस महायुद्धमें सात्यकिने तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका भयङ्कर सिंहनाद सुनकर कृतवर्मापर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत्सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुध्यत सात्यकिः ॥ ४ ॥

परन्तु हृदिकपुत्र कृतवर्माने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सात्यकि पर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की; इस कारण सात्यकि अत्यंत क्रुद्ध हो गये ॥ ४ ॥

ततः सुनिशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणे ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ५ ॥

सात्यकिने कृतवर्मापर एक अत्यंत तीक्ष्ण भल्लसे समरमें प्रहार किया; फिर चार बाण और मारे ॥ ५ ॥

ते तस्य जघ्निरे वाहान्भल्लेनास्याच्छिनद्धनुः ।
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

उन चारों बाणोंने कृतवर्माके रथके चारों घोडोंको मार डाला; फिर भल्लसे उनका धनुष काट दिया; अनन्तर सात्यकिने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे कृतवर्माके पृष्ठरक्षक और सारथिको भी विद्ध किया ॥ ६ ॥

ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्यार्दयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ७ ॥

फिर सत्यपराक्रमी सात्यकिने कृतवर्माको रथरहित करके अपने तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंसे उनकी सेनाको पीडित कर दिया ॥ ७ ॥

सा भज्यताथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायाद्‌द्रुतं त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ८ ॥
सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर कृतवर्माकी सेना भागने लगी; तब सत्यविक्रम सात्यकिने शीघ्रताके सहित वहांसे प्रस्थान किया ॥ ८ ॥

शृणु राजन्यदकरोत्तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ ९ ॥
महाराज ! उसके अनन्तर पराक्रमी सात्यकिने द्रोणाचार्यके सेना समुद्रको लांघकर तुम्हारी सेनाके बीच जैसा कार्य किया, आप उसका वृत्तान्त सुनिये ॥ ९ ॥

पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसंभ्रमम् ॥ १० ॥
युद्धभूमिमें कृतवर्माको पराजित करके प्रसन्न होकर शूरवीर सात्यकि अपने सारथिसे निर्भय चित्तसे बोले, सुत ! तुम धीरे धीरे रथ आगे चलाओ ॥ १० ॥

दृष्ट्वा तु तव तत्सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसंपूर्णमब्रवीत्सारथिं पुनः ॥ ११ ॥
रथ, घोडे, हाथी और पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंसे युक्त तुम्हारी महासेनाको देखकर सात्यकि फिर अपने सारथिसे बोले ॥ ११ ॥

यदेतन्मेघसंकाशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत्कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १२ ॥
यह जो द्रोणाचार्यकी सेनासे बांयी ओर बादलोंके समान बडे बडे हाथियोंकी सेना और उसके आगे रुक्मरथ स्थित दिखायी देता है ॥ १२ ॥

एते हि बहवः सूत दुर्निवार्याश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः ॥ १३ ॥
वे सब ही दुर्निवार्य, महाधनुर्धर, महापराक्रमी राजपुत्र योद्धा हैं, और दुर्योधनकी आज्ञासे प्राणोंकी आशा छोडकर मेरे सङ्ग युद्ध करनेके लिये तैयार हैं ॥ १३ ॥

त्रिगर्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
मामेवाभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ॥ १४ ॥
ये जो त्रिगर्त्त देशीय सुवर्णभूषित ध्वजाके सहित राजपुत्र युद्धभूमिमें स्थित हैं, वे सब भी महारथी योद्धा हैं, ये सब वीर मेरी ओर मुंह करके मेरे सङ्ग युद्ध करनेके लिये तैयार हैं ॥ १४ ॥

अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे।
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ १५ ॥

सारथि! तुम उसही स्थान पर मेरे घोडोंको हांककर शीघ्रताके सहित ले चलो। वहां पहुंचके मैं त्रिगर्त्त देशीय योद्धाओंके सङ्ग द्रोणाचार्यके देखते देखते युद्ध करूंगा ॥ १५ ॥

ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः।
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर सारथि सात्यकिकी आज्ञानुसार सूर्यके समान तेजस्वी और पताकाओंसे विभूषित रथसे धीरे धीरे गमन करने लगा ॥ १६ ॥

तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः।
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ॥ १७ ॥

वायुके समान शीघ्रगामी, कुन्द, इन्दु और रूपेके समान श्वेत वर्णवाले, सारथिके वशमें रहने वाले उत्तम घोडे युद्धमें कूदते हुए तथा रथको खींचते हुए गमन करने लगे ॥ १७ ॥

आपतन्तं रथं तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः।
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान्सायकाँल्लघुवेधिनः ॥ १८ ॥

अनन्तर शीघ्रतापूर्वक शस्त्र चलानेवाले त्रिगर्तदेशीय शूरवीर योद्धाओंने शङ्खके समान श्वेत वर्णवाले उत्तम घोडोंसे युक्त रथपर चढे हुए सात्यकिको रणभूमिमें आते देख अपने अनेक प्रकारके तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करते हुए हाथियोंकी सेना लेकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

सात्वतोऽपि शितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत्।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ १९ ॥

जैसे ग्रीष्म ऋतुके बीतने पर वर्षाकालमें महान् बादल पहाडोंके ऊपर जलकी वर्षा करता है, वैसे ही सात्यकि भी हाथियोंकी सेनाके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः।
प्राद्रवन्रणमुत्सृज्य शिनिवीर्यसमीरितैः ॥ २० ॥

हाथियोंके समूह सात्यकिके धनुषसे छूटे हुए वज्र और बिजलीके समान बाणोंसे पीडित होकर रणको छोडकर चारों ओर दौडने लगे ॥ २० ॥

शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २१ ॥
उन हाथियोंके दांत टूट गये, सारे शरीर रुधिरसे परिपूरित होगये, कुम्भस्थल और गण्डस्थल फट गये; कान, मुख और सूण्ड कट गये, ध्वजाएं कट गई और महावत मरके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २१ ॥

संभिन्नवर्मघण्टाश्च संनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन्भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २२ ॥
उनके वर्म कट गये, हौदेसे घण्टा टूटके गिर पडे, बडे ध्वज कटकर गिर पडे, सवार मर जानेसे उनके ऊपरका कम्बल भ्रष्ट हुआ और वे दसों--दिशाओंमें दौडने लगे ॥ २२ ॥

रुवन्तो विविधान्नावाञ्जलदोपमनिस्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च सात्वतेन विदारिताः ॥ २३ ॥
उनके चिंघाडनेके अनेक प्रकारके शब्द बादलोंकी गर्जनाके समान सुनायी देते थे; बहुतेरे हाथी सात्यकिके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण नाराच और वत्सदन्त बाणोंसे विद्ध होगये ॥२३॥

तस्मिन्द्रुते गजानीके जलसंधो महारथः ।
यत्तः संप्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ॥ २४ ॥
महाराज ! जब इस प्रकार गजसेना भाग गयी, तब महारथी जलसन्धने युद्धके लिये प्रयत्नशील होकर रजत समान अश्वयुक्त रथवाले सात्यकिके रथकी ओर अपना हाथी बढाया ॥ २४ ॥

रुक्मवर्णकरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ।
कुण्डली मुकुटी शङ्खी रक्तचन्दनरूषितः ॥ २५ ॥
सुवर्णके समान वर्णवाले शूर और पवित्र जलसंधने अपनी भुजाओंमें सोनेके बाजूबंद धारण किये थे; वे कुण्डल, किरीट और शंखधारी थे; लाल चन्दनचर्चित शरीरसे युक्त थे ॥२५॥

शिरसा धारयन्दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ।
उरसा धारयन्निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ॥ २६ ॥
उन्होंने अपने मस्तकपर सुवर्ण माला और वक्षस्थलपर प्रकाशमान पदक तथा कण्ठा पहन कर रक्खा था ॥ २६ ॥

चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन्गजमूर्धनि ।
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ॥ २७ ॥
महाराज ! हाथीके पीठपर बैठकर सुवर्णभूषित धनुष फेरते हुए जलसंध बिजलीसे युक्त बादलके समान शोभित हुए ॥ २७ ॥

तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ।
सात्यकिर्वारयामास वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २८ ॥

सात्यकिने मगधराज जलसन्धके श्रेष्ठ हाथीको सहसा अपनी ओर आते देख उसे इस प्रकार निवारण किया, जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है ॥ २८ ॥

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
अक्रुध्यत रणे राजञ्जलसंधो महाबलः ॥ २९ ॥

राजन् ! महाबलवान् जलसन्ध हाथीको सात्यकिके उत्तम बाणोंसे निवारित हुआ देख कर समरमें अत्यन्त क्रुद्ध होगये ॥ २९ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासो मार्गणैर्भारसाधनैः ।
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसंधो महोरसि ॥ ३० ॥

क्रोधित हुए महाधनुर्धर जलसन्धने तीक्ष्ण बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिका महान् वक्षस्थल विद्ध किया ॥ ३० ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ॥ ३१ ॥

अनन्तर जलसन्धने दूसरे तीक्ष्ण धारवाले एक भल्लसे बाण चलाते हुए वृष्णिवीर सात्यकिका धनुष काट दिया ॥ ३१ ॥

सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ।
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

भारत ! जब सात्यकि धनुषसे रहित हुए, तब मगधराज वीर जलसन्धने हंसके पांच तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें फिर विद्ध किया ॥ ३२ ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान् ।
नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३३ ॥

पराक्रमी महाबाहु सात्यकि जलसन्धके बहुतेरे बाणोंसे विद्ध होकर भी युद्धभूमिमें विचलित नहीं हुए; उस समय सात्यकिका अनोखा पराक्रम दीख पडा ॥ ३३ ॥

अचिन्तयन्वै स शरान्नात्यर्थं संभ्रमाद्बली ।
धनुरन्यत्समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह ॥ ३४ ॥

बलवान् सात्यकिने जलसन्धके बाणोंकी कुछ पर्वाह न करके निर्भयतासे दूसरा धनुष ग्रहण किया; और खडा रह, खडा रह कहा ॥ ३४ ॥

एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसंधं महोरसि ।
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ॥ ३५ ॥
ऐसा कहकर सात्यकिने हंसते हुए जलसन्धके विशाल वक्षस्थलमें साठ बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३५ ॥

क्षुरप्रेण च पीतेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
जलसंधस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ॥ ३६ ॥
फिर उत्तम तीक्ष्ण एक क्षुरप्र बाणसे जलसंधके धनुषकी मुट्ठी काट कर, तीन बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ३६ ॥

जलसंधस्तु तत्त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ।
तोमरं व्यसृजत्तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ॥ ३७ ॥
मारिष ! अनन्तर जलसन्धने उस कटे हुए धनुष बाणको त्यागकर तुरंतही सात्यकिकी ओर एक तोमर चलाया ॥ ३७ ॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ।
अभ्यगाद्धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ॥ ३८ ॥
फुफकारते हुए बडे सर्पके समान वह भयङ्कर तोमर, उस महायुद्धमें सात्यकिकी बायीं भुजा भेदकर पृथ्वीमें घुस गया ॥ ३८ ॥

निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसंधमताडयत् ॥ ३९ ॥
बायीं भुजा विद्ध होने पर भी सत्यपराक्रमी सात्यकिने तीस तीक्ष्ण बाणोंसे जलसन्धके ऊपर प्रहार किया ॥ ३९ ॥

प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसंधो महाबलः ।
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रमलंकृतम् ।
तत आविध्य तं खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४० ॥
अनन्तर महाबलवान् जलसन्धने एक सौ चन्द्रप्रतिमा भूषित वृषभ चर्मकी बनी हुई विशाल ढाल और प्रकाशमान तलवार ग्रहण किया; उन्होंने उस प्रकाशमान तलवारको घुमा कर सात्यकिके ओर चलाया ॥ ४० ॥

शैनेयस्य धनुश्छित्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४१ ॥
वह तलवार सात्यकिके धनुषको काटके पृथ्वीपर गिर पडी; पृथ्वीपर पडकर वह अलात चक्रके समान प्रकाशित होने लगी ॥ ४१ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम्
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसंधं शरेण ह ॥ ४२ ॥

अनन्तर सात्यकिने क्रुद्ध होकर शालस्तम्भ सदृश, इन्द्रके वज्रके समान शब्द करनेवाले और सबके शरीरको विदीर्ण करनेवाले दूसरे एक धनुषको ग्रहण करके, उसे कानतक खींचकर एक बाणसे जलसन्धको विद्ध किया ॥ ४२ ॥

ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ।
साङ्गदौ जलसंधस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ ४३ ॥

अनन्तर यदुकुलश्रेष्ठ सात्यकिने हंसते हंसते दो क्षुरप्रसे जलसन्धकी आभूषणोंसे अलंकृत दोनों भुजाओंको काटके गिरा दिया ॥ ४३ ॥

तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ।
वसुंधराधराद्भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ ४४ ॥

परिघतुल्य वे दोनों भुजाएं पहाडके ऊपरसे गिरनेवाले पांच सिरवाले दो सर्पोंके समान, हाथीके ऊपरसे गिरती हुई दीख पडी ॥ ४४ ॥

ततः सुदंष्ट्रं सुहनु चारुकुण्डलमुन्नसम् ।
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ॥ ४५ ॥

अनन्तर सात्यकिने तीसरे क्षुरप्र बाणसे जलसन्धके सुन्दर मनोहर नासिका, दांत और कुण्डलोंसे शोभित सिरको काटके पृथ्वीमें गिराया ॥ ४५ ॥

तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ।
द्विरदं जलसंधस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ॥ ४६ ॥

राजा जलसन्धके शरीरसे दोनों भुजाएं और सिरके कटके गिर जानेसे अत्यंत भयंकर दिखायी देनेवाले उस धडने अपने रुधिरसे उस हाथीको परिपूरित किया ॥ ४६ ॥

जलसंधं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ।
नैषादिं पातयामास गजस्कन्धाद्विशां पते ॥ ४७ ॥

हे पृथ्वीपते ! सात्यकिने राजा जलसन्धका युद्धभूमिमें वध करके शीघ्रताके सहित हाथीकी पीठ पर स्थित हौदेको भी गिरा दिया ॥ ४७ ॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गो जलसंधस्य कुञ्जरः ।
विलम्बमानमवहत्संश्लिष्टं परमासनम् ॥ ४८ ॥

जलसन्धका बडा हाथी रुधिरसे परिपूरित होकर अपनी पीठसे सटकर लटकते हुए उत्तम हौदेको ले जा रहा था ॥ ४८ ॥

शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ।
घोरमार्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ॥ ४९ ॥

सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर वह महान् गजराज महाभयङ्कर आर्त्तनाद करके दौडता हुआ अपनीही सेनाके योद्धाओंको मर्दन करते हुए भागने लगा ॥ ४९ ॥

हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ।
जलसंधं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण ह ॥ ५० ॥

मारिष ! राजा जलसन्धको वृष्णिश्रेष्ठ सात्यकिके अस्त्रोंसे मारा गया देख तुम्हारी सेनाके बीच महा भयङ्कर हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ५० ॥

विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ।
पलायने कृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ५१ ॥

और तुम्हारी ओरके योद्धा लोग शत्रुओं पर विजय पानेके लिये उत्साह रहित होकर, भागनेमें उत्साह दिखाकर युद्धसे विमुख होकर चारों ओर इधर उधर भागने लगे ॥५१॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ॥ ५२ ॥

महाराज ! उस ही समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने वेगगामी घोडोंसे युक्त उत्तम रथपर चढे हुए महारथी सात्यकिके समीप सामना करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ ५२ ॥

तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं कुरुपुङ्गवाः ।
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ५३ ॥

कौरवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग सात्यकिको आगे बढते देख क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके सहित दौड कर उस पर टूट पडे ॥ ५३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन्घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ३८६० ॥

राजन् ! अनन्तर समरभूमिमें सात्यकिके सङ्ग द्रोणाचार्य और कौरव योद्धाओंका देवासुर युद्धके समान महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ५४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें इक्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ ३८६० ॥

: ९२ :

संजय उवाच

ते किरन्तः शरव्रातान्सर्वे यत्ताः प्रहारिणः ।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! शस्त्र चलानेमें निपुण सब कौरव योद्धा लोग सावधान होकर शीघ्रताके सहित बाण समूहोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः ।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥ २ ॥

द्रोणाचार्यने उत्तम पानीसे बुझे हुए सतहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको विद्ध कर दिया; फिर दुर्मर्षणने बारह, और दुःसहने दस बाणोंसे उन्हें घायल किया ॥ २ ॥

विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः ।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ॥ ३ ॥

और विकर्णने कङ्कपत्र युक्त तीस तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको बाईं ओर तथा स्तनोंके बीच विद्ध किया ॥ ३ ॥

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः ।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥ ४ ॥

मारिष ! अनन्तर दुर्मुखने दस, दुःशासनने आठ और चित्रसेनने दो बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ ४ ॥

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम् ।
अपीडयद्रणे राजञ्शूराश्चान्ये महारथाः ॥ ५ ॥

राजन् ! युद्धमें दुर्योधन तथा दूसरे शूर महारथी योद्धा लोग अनेक बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको पीडित करने लगे ॥ ५ ॥

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः ।
तान्प्रत्यविध्यच्छैनेयः पृथक्पृथगजिह्मगैः ॥ ६ ॥

सात्यकिने भी तुम्हारे महारथी पुत्रोंसे अत्यन्त विद्ध होकर उन हर एक वीरोंको पृथक् पृथक् अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ ६ ॥

भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिस्तथा ।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्यको तीन, दुःसहको नौ, विकर्णको पचीस, चित्रसेनको सात ॥ ७ ॥

दुर्मर्षणं द्वादशभिश्चतुर्भिश्च विविंशतिम् ।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥

दुर्मर्षणको बारह, विविंशतिको आठ, सत्यव्रतको नौ और विजयको दस बाणोंसे उन्होंने विद्ध किया ॥ ८ ॥

ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः ।
अभ्ययात्सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥ ९ ॥

अनन्तर महारथी सात्यकिने सुवर्ण भूषित धनुष फेरते हुए शीघ्रताके सहित तुम्हारे महारथी पुत्र राजा दुर्योधन पर धावा किया ॥ ९ ॥

राजानं सर्वलोकस्य सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
शरैरभ्याहनद्गाढं ततो युद्धमभूत्तयोः ॥ १० ॥

सब लोगोंके राजा और सब शस्त्रधारीयोंमें श्रेष्ठ दुर्योधनको उन्होंने अपने बाणोंसे अत्यंत विद्ध किया; अनन्तर उन दोनों पुरुष सिंहोंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ १० ॥

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान्संदधानौ च सायकान् ।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ११ ॥

वे दोनों महारथी धनुष चढाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे रणभूमिके बीच एक दूसरेको अदृश्य करने लगे ॥ ११ ॥

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत ।
अस्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥

जैसे चन्दनके वृक्षसे रस टपकता है, वैसेही कुरुराज दुर्योधनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर सात्यकिके शरीरसे बहुत रुधिर बहने लगा; जब सात्यकिके शरीरसे रुधिर बहने लगा, उस समय सात्यकि रुधिर पूरित शरीरसे अत्यन्त शोभित हुए ॥ १२ ॥

सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १३ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन भी सात्यकिके बाणोंसे विद्ध होकर सुवर्णभूषित खडे किये हुए यज्ञ-स्तम्भके समान युद्धभूमिमें अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ १३ ॥

माधवस्तु रणे राजन्कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ।
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत् ॥ १४ ॥

राजन् ! युद्धमें सात्यकिने हंसते हंसते एक क्षुरप्र बाणसे धनुर्धर दुर्योधनके धनुषको काट दिया; धनुष कट जानेपर उन्होंने अनेक बाणोंसे दुर्योधनको विद्ध किया ॥ १४ ॥

निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ।
नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ १५ ॥

तब कुरुराज दुर्योधनने हस्तलाघवसे शस्त्र चलानेवाले शत्रु सात्यकिके बाणोंसे विद्ध होकर युद्धमें शत्रुविजयके लक्षणको सहन नहीं किया ॥ १५ ॥

अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह ॥ १६ ॥

उन्होंने सुवर्णभूषित दूसरे एक दृढ धनुषको ग्रहण करके सात्यकिको एकसौ बाणोंसे शीघ्रताके सहित विद्ध किया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता पुत्रेण तव धन्विना ।
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत् ॥ १७ ॥

सात्यकि महाबलवान् धनुर्धारी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और क्रुद्ध होकर उन्हें अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ १७ ॥

पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ।
सात्वतं शरवर्षेण छादयामासुरञ्जसा ॥ १८ ॥

तुम्हारे दूसरे महारथी पुत्रोंने राजा दुर्योधनको पीडित देख शीघ्रतासे अपने बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया ॥ १८ ॥

स छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १९ ॥

सात्यकिने तुम्हारे अनेक महारथी पुत्रोंके बाणोंकी जालसे छिपकर उनमेंसे हर एकको पहले पांच पांच बाणोंसे विद्ध करके, फिर सात सात बाणोंसे घायाल किया ॥ १९ ॥

दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः ।
प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ॥ २० ॥

अनन्तर सात्यकिने शीघ्रताके सहित दुर्योधनको आठ बाणोंसे विद्ध करके, फिर उनके शत्रुभीषण धनुषको हंसकर काट दिया ॥ २० ॥

नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ।
हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २१ ॥

और फिर उनके रत्नजटित सुवर्ण भूषित नाग चिह्नित ध्वजाको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । अनन्तर चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंका बध करके, महायशस्वी सात्यकिने एक क्षुरप्र बाणसे उनके सारथिका बध किया ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् ।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २२ ॥

और इन सम्पूर्ण कार्योंके करनेके समयमें ही हर्षके सहित महारथी कुरुराज दुर्योधन पर भी मर्मभेदी अनेक बाणोंकी वर्षा की ॥ २२ ॥

स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
प्राद्रवत्सहसा राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः ॥ २३ ॥

राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन युद्धमें शिनिपौत्र सात्यकिके उत्तम बाणोंसे पीडित होकर सहसा भागे और धनुर्धर चित्रसेनके रथ पर जा चढे ॥ २३ ॥

हाहाभूतं जगच्चासीद्दृष्ट्वा राजानमाहवे ।
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा ॥ २४ ॥

आकाशमें राहुसे चन्द्रमाके ग्रसित होनेके समान सात्यकिके अस्त्रोंसे राजा दुर्योधनको ग्रस्त होते देख तुम्हारी सेनाके बीच चारों ओरसे महा भयङ्कर हाहाकार शब्द होने लगा ॥ २४ ॥

तं तु शब्दं महच्छ्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ।
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्रास्ते माधवः प्रभुः ॥ २५ ॥

अनन्तर महारथी कृतवर्मा उस हाहाकार शब्दको सुनकर सहसा वहीं आ पहुंचा, जहां शक्तिमान् सात्यकि स्थित थे ॥ २५ ॥

विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ।
भर्त्सयन्सारथिं चोग्रं याहि याहीति सत्वरः ॥ २६ ॥

वह अपने श्रेष्ठ धनुषको हिलाता, घोडोंको चलाता और आगे चलो, जल्दी चलो कहकर सारथिको दूषण देता हुआ वहां आया ॥ २६ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

महाराज ! कृतवर्माको मुख पसारे हुए कालके समान अपनी ओर आते देख सात्यकिने सारथिसे कहा ॥ २७ ॥

कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ।
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ २८ ॥

सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ कृतवर्मा बाण लेकर रथसे वेगपूर्वक आरहे हैं, तुम कृतवर्माके संमुख मेरा रथ ले चलो ॥ २८ ॥

ततः प्रजविताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर सात्यकि वेगवान् घोड़ोंसे युक्त भली भान्तिसे सज्जित उत्तम रथसे धनुर्धारियोंमें मुख्य भोजराज कृतवर्माके पास उपस्थित हुए ॥ २९ ॥

ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलन्ताविव पावकौ ।
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ३० ॥

अनन्तर जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी और वेगगामी दो व्याघ्रोंके समान वे दोनों पुरुषसिंह अत्यंत क्रुद्ध होकर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ।
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चास्य सप्तभिः ॥ ३१ ॥

कृतवर्माने उत्तम पानीसे बुझे हुए छब्बीस तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको और सात बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३१ ॥

चतुरश्च हयोदारांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ।
अविध्यत्साधुदान्तान्वै सैन्धवान्सात्वतस्य ह ॥ ३२ ॥

फिर चार तीक्ष्ण उत्तम बाणोंसे उनके रथके उत्तम शिक्षासे युक्त और श्रेष्ठ सिन्धुदेशीय चारों घोड़ोंको विद्ध किया ॥ ३२ ॥

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खानवाकिरत् ॥ ३३ ॥

फिर सुवर्ण भूषित ध्वजासे युक्त, सुवर्णके बाहुभूषण और सुवर्णके ही कवच धारण करनेवाले कृतवर्माने सुवर्णकी पीठवाले अपने महान् धनुषकी टंकार करके सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया ॥ ३३ ॥

ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान्कृतवर्मणे ।
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनंजयम् ॥ ३४ ॥

अनन्तर अर्जुनके दर्शनके अभिलाषी शिनिपौत्र सात्यकिने शीघ्रतासे कृतवर्माके ऊपर अस्सी बाण चलाये ॥ ३४ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ ३५ ॥

जैसे भूकम्प होने पर पर्वत हिलने लगता है, वैसे शत्रुतापन दुर्धर्ष कृतवर्मा बलवान् शत्रु सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर कम्पित होने लगे ॥ ३५ ॥

त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याश्वान्सप्तभिः सारथिं शरैः ।
विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः कृतवर्मणः ॥ ३६ ॥
कवचधारी सात्यकिने उनके रथके चारों घोडोंको तिरसठ बाणोंसे विद्ध करके, शीघ्रही उनके सारथिको भी सात तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३६ ॥

सुवर्णपुङ्खं विशिखं समाधाय च सात्यकिः ।
व्यसृजत्तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ॥ ३७ ॥
अनन्तर सुवर्णमय पंखयुक्त क्रोधी सर्पके समान दीखनेवाले भयङ्कर एक अत्यंत तेजस्वी बाण धनुष पर चढा कर, सात्यकिने कृतवर्माकी ओर चलाया ॥ ३७ ॥

सोऽविशत्कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ।
जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अभ्यगाद्धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ३८ ॥
वह यमदण्डके समान भयंकर बाण कृतवर्माके सुवर्ण भूषित प्रकाशमान वर्मको भेदकर शरीरमें घुस गया और फिर शरीरको छेद कर रुधिरसे लिपटे हुए पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ३८ ॥

संजातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिरर्दितः ।
प्रचलन्धनुरुत्सृज्य न्यपतत्स्यन्दनोत्तमे ॥ ३९ ॥
युद्धमें कृतवर्मा सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीडित और रुधिर पूरित शरीरसे युक्त मोहित होकर धनुष बाण त्याग कर उस उत्तम रथमें गिर पडे ॥ ३९ ॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यामापन्नोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४० ॥
सिंहके समान दांतोंवाला अमित पराक्रमी नरश्रेष्ठ कृतवर्मा सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर दोनों घुटनोंके बलसे रथमें बैठ गया ॥ ४० ॥

सहस्रबाहोः सदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥ ४१ ॥
शिनिपौत्र सात्यकि सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यके समान पराक्रमी तथा अगाध समुद्रके समान अक्षोभ्य कृतवर्माको इस प्रकार युद्धमें पराजित करके फिर आगे बढे ॥ ४१ ॥

खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४२ ॥
उस कौरव सेनामें सैकडों क्षत्रिय श्रेष्ठोंने रुधिरकी उग्र धारा बहा दी थी; वहां तलवार, शक्ति और धनुष, बाण तथा हाथी, घोडे और रथ सब ओर व्याप्त थे ॥ ४२ ॥

प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुंगवः ।
अभ्यगाद्वाहिनीं भित्त्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम् ॥ ४३ ॥

शिनिश्रेष्ठ सात्यकि सब सेनाओंके देखते देखते उनके बीचसे आगे बढे, जैसे वृत्रासुरका नाश करनेवाले इन्द्र असुरोंकी सेनाके बीचसे आगे बढे थे ॥ ४३ ॥

समाश्वास्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद्धनुः ।
तस्थौ तत्रैव बलवान्वारयन्युधि पाण्डवान् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ३१०४ ॥

उधर महाबली कृतवर्मा सावधान होकर दूसरा प्रचंड धनुष ग्रहण कर युद्धमें पाण्डवोंको युद्धसे निवारण करते हुए उस ही स्थान पर स्थित हुए ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें बानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ ३१०४ ॥

: ९३ :

सञ्जय उवाच

काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! शिनिपौत्र सात्यकि जब इधर उधर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करने लगे; तब भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने वहां गमन करके उन पर अपने बाणोंकी वर्षा की ॥ १ ॥

स संप्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २ ॥

जैसे इन्द्र और राजा बलिका युद्ध हुआ था; वैसे ही सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते देखते द्रोणाचार्य और सात्यकिका वह महाघोर संग्राम होने लगा ॥ २ ॥

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यने संपूर्ण लोहमय विचित्र और विषधर सर्पके समान भयंकर तीन बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिका ललाट विद्ध किया ॥ ३ ॥

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानः स्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥

महाराज ! मस्तकमें धंसे हुए उन तीनों बाणोंसे सात्यकि तीन शृङ्गोंवाले पर्वतके समान शोभित हुए ॥ ४ ॥

ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥

छिद्र देखनेवाले द्रोणाचार्यने उसके अनन्तर इन्द्रके वज्र समान शब्दसे युक्त कितने ही बाण युद्धमें सात्यकिके ऊपर चलाये ॥ ५ ॥

तान्द्रोणचापनिर्मुक्तान्दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६ ॥

अस्त्र–शस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले यदुकुल श्रेष्ठ सात्यकिने द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको संमुख आते देख, मनोहर पंखवाले अपने दो दो बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६ ॥

तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशां पते ।
प्रहस्य सहसाविध्यद्विंशत्या शिनिपुंगवम् ॥ ७ ॥

पृथ्वीपते ! द्रोणाचार्यने सात्यकिका ऐसा हस्तलाघव देख हंस कर शीघ्रताके सहित उसे बीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ ७ ॥

पुनः पञ्चाशतेषूणां शतेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥

और अस्त्रोंके चलानेमें अपना हस्त लाघव प्रकाशित करके सात्यकिके हस्तलाघवको तुच्छ करते हुए उसे फिर पचास तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ८ ॥

समुत्पतन्ति वल्मीकाद्यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद्राजन्नुत्पतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥

राजन् ! जैसे महा सर्प बिलसे निकलके क्रोधपूर्वक दौडते हुए दीख पडते हैं, वैसे ही शरीरको भेदनेवाले बाण द्रोणाचार्यके रथसे प्रकट होकर सब ओर गिरने लगे ॥ ९ ॥

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन्द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥

और वैसेही सात्यकिके चलाये हुए सैकडों तथा सहस्रों रुधिर पीनेवाले बाण द्रोणाचार्यके रथको छिपाने लगे ॥ १० ॥

लाघवाद्द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥

मारिष ! द्विज–सत्तम द्रोणाचार्य और यदुकुलभूषण सात्यकि, उस समयमें इन दोनों शूरवीरोंके बीच कोई भी हस्तलाघवमें एक दूसरेसे अधिक न हो सके; वे दोनों पुरुषसिंह समान रूपसे युद्धमें अपना पराक्रम प्रकाशित कर रहे थे ॥ ११ ॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ।
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ १२ ॥

अनन्तर सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नौ नतपर्व बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके, तीक्ष्ण बाणोंसे उनके ध्वजको भी छेद डाला। फिर द्रोणाचार्यके देखते देखते उनके सारथिको भी सौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ १२ ॥

लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ।
सप्तत्या सात्यकिं विद्ध्वा तुरगांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १३ ॥

महारथी द्रोणाचार्यने सात्यकिका हस्तलाघव देख, उनको सत्तर बाणोंसे विद्ध करके, फिर तीन तीन बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया। फिर उनके रथके ध्वजको भी एक बाणसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥

अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यने समरमें सुवर्णमय पंखवाले दूसरे भल्ल बाणसे महात्मा सात्यकिका धनुष भी काट डाला ॥ १४ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १५ ॥

अनन्तर महारथी सात्यकिने क्रोधित होकर कटा हुआ धनुष त्याग कर एक बहुत बडी गदा ग्रहण कर उसे द्रोणाचार्यकी ओर चलायी ॥ १५ ॥

तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यने उस लोहमयी रेशमी वस्त्रसे युक्त गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख, बहुरूपी अनेक बाणोंसे उसका निवारण किया ॥ १६ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १७ ॥

सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरा धनुष ग्रहण कर शिलापर घिसकर तेज किये हुए अनेक बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ १७ ॥

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादमथामुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १८ ॥

इस प्रकार समरमें द्रोणाचार्यको घायल करके सात्यकिने सिंहनाद किया; उसे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य न सह सके ॥ १८ ॥

ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥

उन्होंने शीघ्रताके सहित एक स्वर्णदण्डवाली लोहमयी शक्ति उठा कर उनके रथपर उसे बडे जोरसे चलाया ॥ १९ ॥

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा ।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २० ॥

कालके समान वह प्रचण्ड शक्ति सात्यकिके समीप न पहुंच कर उनके रथहीको भेद करके भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीमें गिर पडी ॥ २० ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन्भरतर्षभ ॥ २१ ॥

भरतर्षभ ! अनन्तर शिनिपौत्र सात्यकिने एक बाणसे द्रोणाचार्यकी दहिनी भुजाको विद्ध करके उन्हें पीडित किया ॥ २१ ॥

द्रोणोऽपि समरे राजन्माधवस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २२ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यने भी युद्धमें सात्यकिके महान् धनुषको अर्धचन्द्र बाणसे काटकर, रथशक्तिके प्रहारसे सारथिको भी अत्यन्त विद्ध किया ॥ २२ ॥

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २३ ॥

सात्यकिका सारथि द्रोणाचार्यकी रथशक्तिके प्रहारसे मूर्च्छित हो गया; और मुहूर्त्त भर तक रथके ऊपर व्याकुल होकर बैठा रहा ॥ २३ ॥

चकार सात्यकी राजंस्तत्र कर्मातिमानुषम् ।
अयोधयच्च यद्द्रोणं रश्मींश्चग्राह च स्वयम् ॥ २४ ॥

मराराज ! उसही समय सात्यकिने यह अलौकिक कर्म किया कि उन्होंने द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध भी किया, और स्वयंही अपने घोडोंकी बागडोर भी ग्रहण किया ॥ २४ ॥

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद्ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशां पते ॥ २५ ॥

प्रजापते ! अनन्तर युद्धमें महारथी सात्यकिने आनन्दित होकर एक सौ बाणोंसे द्विजसत्तम द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ २५ ॥

तस्य द्रोणः शरान्पञ्च प्रेषयामास भारत ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २६ ॥

भारत ! तब द्रोणाचार्यने सात्यकिके ऊपर पांच बाण चलाये । वे बाण युद्धमें सात्यकिके वर्मको तोडके उनके शरीरमें घुसकर रुधिर पीने लगे ॥ २६ ॥

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुध्यत्सात्यकिर्भृशम् ।
सायकान्व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २७ ॥

वीर सात्यकि उन घोर बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए; उन्होंने सुवर्णयुक्त रथ पर चढे हुए द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा की ॥ २७ ॥

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वान्व्यद्रावयद्बाणैर्हतसूतान्महात्मनः ॥ २८ ॥

और एक बाणसे महात्मा द्रोणाचार्यके सारथिको पृथ्वीमें गिरा दिया; फिर सारथिसे रहित घोडोंको अपने बाणोंसे इधर उधर मार भगाया ॥ २८ ॥

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
चकार राजतो राजन्भ्राजमान इवांशुमान् ॥ २९ ॥

सूर्यके समान प्रकाशमान वह चांदीका बना हुआ रथ युद्धमें मंडलाकार गतिसे सहस्रों वार युद्धभूमिके बीच चक्कर काटता रहा ॥ २९ ॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान्द्रोणस्य धावत ।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३० ॥

अनन्तर वहां पर तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण राजा और राजपुत्र लोग बलपूर्वक सेनाके पुरुषोंको पुकारके कहने लगे, " दौडो, द्रोणाचार्यके घोडोंको रोको " ॥ ३० ॥

ते सात्यकिमपास्याशु राजन्युधि महारथाः ।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३१ ॥

वे सम्पूर्ण योद्धालोग युद्धमें शीघ्रही सात्यकिको त्याग कर, जहां पर द्रोणाचार्य थे, उस ही ओर सहसा भाग गये ॥ ३१ ॥

तान्दृष्ट्वा प्रद्रुतान्सर्वान्सात्वतेन शरार्दितान् ।
प्रभग्नं पुनरेवासीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३२ ॥

अपनी ओरके उन शूरवीरोंको सात्यकिके बाणोंसे पीडित और उनके समीपसे भागते देख व्याकुल होकर तुम्हारी संगठित हुई सब सेना फिर युद्धभूमिमें भागने लगी ॥ ३२ ॥

व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर्हृतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३३ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर वायुके समान गमन करनेवाले घोडोंके सहित द्रोणाचार्य व्यूहके दरवाजेपर आके फिर स्थित हुए ॥ ३३ ॥

पाण्डुपाञ्चालसंभग्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् ।
शैनेये नाकरोद्यत्नं व्यूहस्यैवाभिरक्षणे ॥ ३४ ॥

बलवान् द्रोणाचार्यने पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंके पराक्रमसे अपने व्यूहको भिन्न हुए देखकर फिर सात्यकिको निवारण करनेके लिये यत्न नहीं किया, उस समय द्रोणाचार्य अपने व्यूह बद्ध सेनाकी रक्षा करनेमें ही प्रवृत्त हुए ॥ ३४ ॥

निवार्य पाण्डुपाञ्चालान्द्रोणाग्निः प्रदहन्निव ।
तस्थौ क्रोधाग्निसंदीप्तः कालसूर्य इवोदितः ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ३९३९ ॥

वे क्रुद्ध होकर अग्निके समान प्रज्वलित हो गये; अनन्तर पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको युद्धसे निवारण करके प्रलयकालके सूर्य समान प्रकाशित होकर द्रोणाचार्य अपनी सेनाके व्यूहद्वार पर स्थित हुए ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें तिरानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ ३९३९ ॥

: ९४ :

सञ्जय उवाच

द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीरस्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान् ।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे शिनिप्रवीरः कुरुपुंगवाग्र्य ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे कुरुश्रेष्ठ राजेन्द्र ! पुरुषसिंह शिनिपौत्र बलवान् सात्यकि द्रोणाचार्य और कृतवर्मा आदि तुम्हारी ओरके योद्धाओंको पराजित करके अपने सारथिसे हंसते हुए बोले ॥ १ ॥

निमित्तमात्रं वयमत्र सूत दग्धारयः केशवफल्गुनाभ्याम् ।
हतान्निहन्मेह नरर्षभेण वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥

हे सारथि ! यहाँ हम लोग विजयमें केवल निमित्तमात्र हुए हैं; क्योंकि हम लोगोंके शत्रु श्रीकृष्ण और अर्जुनके पराक्रमसे पहिलेसे ही भस्म हो चुके हैं । इन्द्रपुत्र पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने इन सब योद्धाओंको पहिलेसे ही मार रक्खा है। हम लोग उन मरे हुए योद्धाओंका ही बध कर रहे हैं ॥ २ ॥

तमेवमुक्त्वा शिनिपुंगवस्तदा महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा ।
किरन्समन्तात्सहसा शरान्बली समापतच्छ्येन इवामिषं यथा ॥ ३ ॥

शत्रुनाशन, धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी, बलवान् शिनिश्रेष्ठ सात्यकि उस महायुद्धमें सारथिसे ऐसा वचन कहकर, चारों ओर सहसा बाण चलाते हुए, मानों मांसकी इच्छासे भक्ष्यकी ओर दौडते हुए बाज पक्षीकी भांति तुम्हारी सेनाके योद्धाओंके सम्मुख आके उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णैर्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं समन्तादादित्यरश्मिप्रतिमं नराग्र्यम् ॥ ४ ॥

सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी, अत्यन्त पराक्रमी नरश्रेष्ठ उस पुरुषसिंह सात्यकिको चन्द्रमा और शङ्खवर्णके समान सफेद घोडोंसे युक्त उत्तम रथ पर चढके तुम्हारी सेनामें घुसकर आगे बढते देख, सम्पूर्ण सेनाके बीचसे किसी ओरसे कोई योद्धा उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ४ ॥

असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं सर्वे गणा भारत दुर्विषह्यम् ।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥

भारत ! असह्य पराक्रमी, महान् धैर्यवान् और बलवान्, इन्द्रके समान प्रभावी और आकाशमें प्रकाशित होनेवाले शरत्कालीन सूर्यके समान प्रकाशमान और दुर्विषह्य सात्यकि थे; तुम्हारे सब सैनिक उन्हें रोक न सके ॥ ५ ॥

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥

परन्तु अत्यन्त विचित्र योद्धा, सुवर्ण वर्म धारण करनेवाले, धनुर्धारी, राजश्रेष्ठ सुदर्शनने सात्यकिको अकस्मात् अपनी ओर आते हुए देखकर क्रुद्ध होकर उनको बलपूर्वक रोका ॥ ६ ॥

तयोरभूद्भारत संप्रहारः सुदारुणस्तं समभिप्रशंसन् ।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७ ॥

भारत ! उन दोनों वीरोंमें महाघोर संग्राम होने लगा । जैसे देवताओंने इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धकी प्रशंसा की थी, वैसे ही तुम्हारी ओरके योद्धा तथा सोमक शूरवीर उन दोनोंके उस युद्धकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥

शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ ।
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद बाणैः शिनिपुंगवोऽपि ॥ ८ ॥

युद्धमें सुदर्शनने अत्यन्त तीक्ष्ण सैकड़ों बाण सात्वतश्रेष्ठ सात्यकिकी ओर चलाये; परन्तु शिनिप्रवर सात्यकि उनके सम्पूर्ण बाणोंको समीप न आते ही आते अपने बाणोंसे मार्गहीमें काट काट गिराने लगे ॥ ८ ॥

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः सुदर्शने यान्क्षिपति स्म सायकान् ।
द्विधा त्रिधा तानकरोत्सुदर्शनः शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९ ॥

वैसे ही इन्द्रके समान पराक्रमी सात्यकिने भी जितने बाण सुदर्शनपर चलाये, श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए सुदर्शनने भी अपने चोखे बाणोंसे उन सम्पूर्ण बाणोंके दो-दो-तीन तीन टुकडे टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ९ ॥

संप्रेक्ष्य बाणान्निहतांस्तदानीं सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः शरानमुञ्चत्तपनीयचित्रान् ॥ १० ॥

महातेजस्वी राजा सुदर्शन उस समय अपने चलाये हुए बाणोंको सात्यकिके वेगवान् बाणोंसे नष्ट हुआ देख अत्यन्त क्रुद्ध हुए; और क्रोधसे उन्हें दग्ध करनेकी इच्छा करते हुएसे उन्होंने सुवर्ण चित्रित कितने ही बाण सात्यकिकी ओर चलाये ॥ १० ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विभिद्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥

फिर उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी और कानतक खींचकर छोडे हुए सुंदर पंखवाले तीन तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया । वे तीनों बाण सात्यकिके वर्मको भेद कर उनके शरीरमें घुस गये ॥ ११ ॥

तथैव तस्यावनिपालपुत्रः संधाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशांश्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥

अनन्तर राजपुत्र सुदर्शनने दूसरे चार तेजस्वी बाणोंका संधान करके सात्यकिके रजतवर्ण प्रकाशमान् चारों घोडोंको भी बलपूर्वक विद्ध किया ॥ १२ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णैर्हयान्निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥
सुदर्शनके बाणोंसे पीडित होनेपर इन्द्रके समान पराक्रमी शिनिपौत्र बलवान् वेगवान् सात्यकि ने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे सुदर्शनके रथके घोड़ोंका शीघ्रही वध करके सिंहनाद किया ॥ १३ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन वज्राशनिसंनिभेन ।
सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः क्षुरेण चिच्छेद शिरः प्रसह्य ॥ १४ ॥
अनन्तर इन्द्रके वज्र समान एक भल्ल बाणसे उनके सारथिका सिर काट कर, फिर शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने एक तीक्ष्ण क्षुर बाणसे सुदर्शनका भी सिर बलपूर्वक काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १४ ॥

सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥ १५ ॥
राजन् ! पहिले समयमें जैसे वज्रधारी इन्द्रने महा बलवान् बलासुरका सिर युद्धमें काटा था, वैसे ही सात्यकिने सुदर्शनके कुण्डलभूषित पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान शोभायमान सिरको धडसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १५ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा रराज राजन्सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥
राजन् ! यदुकुलभूषण पुरुषसिंह वेगशाली महात्मा सात्यकि राजपौत्र और राजपुत्र सुदर्शनका युद्धभूमिमें वध करके अत्यन्त हर्षित होकर देवराज इन्द्रके समान प्रकाशित होने लगे ॥ १६ ॥

ततो ययावर्जुनमेव येन निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन निर्याँल्लोकान्विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥
इसके अनन्तर अर्जुनने जिस मार्गसे गमन किया था, लोगोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छा-वाले नरवीर सात्यकि भी उत्तम घोड़ोंसे युक्त रथ पर चढके बाण समूहोंसे तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको निवारित करते हुए उस ही मार्गसे गमन करने लगे ॥ १७ ॥

तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्यमपूजयन्योधवरा समेताः ।
यद्वर्तमानानिषुगोचरेऽरीन्ददाह बाणैर्हुतभुग्यथैव ॥ १८ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ३९५७ ॥
बाण चलानेके मार्गमें स्थित शत्रुओंको जब सात्यकि अपने बाणोंसे अग्निकी भांति भस्म कर रहे थे, तब वहां एकत्र हुए सम्पूर्ण योद्धालोग उनके उस आश्चर्यरूपी श्रेष्ठ और कठिन कर्मकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ १८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें चौरानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ ३९५७ ॥

: ९५ :

सञ्जय उवाच

ततः स सात्यकिर्धीमान्महात्मा वृष्णिपुंगवः ।
सुदर्शनं निहत्याजौ यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! तदनन्तर यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् महात्मा सात्यकि युद्धमें सुदर्शनका वध करके सारथिसे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥

रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम् ।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २ ॥

हे प्यारे मित्र ! द्रोणाचार्यकी सेना महासागरके समान थी; वह रथ, घोडे और हाथियोंके समूहसे युक्त; धनुष, बाण और शक्तिरूपी तरंगमाला, तलवाररूपी मत्स्य, गदारूपी ग्राह, शूरवीरोंके आयुधोंके प्रहार रूपी महासागरके गर्जनसे युक्त थी ॥ २ ॥

प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम् ।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥

जुझाऊ बाजोंके और वीरोंके सिंहनाद उस गर्जनका भयंकर स्वरूप था; योद्धाओंके लिये उसका स्पर्श अत्यन्त दुःखदायक था; विजयकी इच्छा न रखनेवालोंको वह प्राणनाशक भयंकर दुर्धर्ष सैन्य समुद्र था ॥ ३ ॥

तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम् ।
जलसंधबलेनाजौ पुरुषादैरिवावृतम् ॥ ४ ॥

युद्धभूमिमें जलसंधकी सेनाने उसे राक्षसोंके समान घेर रक्खा था; उस दुस्तर महाभयंकर अगाध समुद्ररूपी द्रोणाचार्यकी सेनासे हम लोग पार हो गये हैं ॥ ४ ॥

अतोऽन्यं पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव ।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाश्वानसंभ्रमम् ॥ ५ ॥

उससे दूसरी जो शेष सेना है, उसे थोडे जलसे युक्त छोटी नदीके समान सुगमतासे लांघने योग्य मैं मानता हूं, इसलिये तुम निर्भय चित्तसे घोडोंको आगे बढाओ ॥ ५ ॥

हस्तप्राप्तमहं मन्ये सांप्रतं सव्यसाचिनम् ।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६ ॥

दुर्धर्ष पराक्रमी द्रोणाचार्यको उनके अनुयाइयोंके सहित युद्धमें पराजित करके इस समय मैं अपनेको सव्यसाची अर्जुनके समीप पहुंचा हुआ ही समझ रहा हूं ॥ ६ ॥

हार्दिक्यं योधवर्यं च प्राप्तं मन्ये धनंजयम् ।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ।
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य ग्रीष्मे शुष्कं तृणोलपम् ॥ ७ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माको पराजित करके मुझे धनंजय मिल गये ऐसा मैं समझता हूं; इन अनेक सेनाओंको देखकर मुझे तनिक भी भय नहीं होता है; बल्कि ग्रीष्म ऋतुके समय जैसे जलती हुई अग्नि सूखे तृण काष्ठको भस्म कर देती है, वैसे ही मैं इस सेनाके संपूर्ण योद्धाओंको अपने बाणोंसे भस्म कर दूंगा ॥ ७ ॥

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ।
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् ॥ ८ ॥

पाण्डव श्रेष्ठ किरिटधारी अर्जुन जिस मार्गसे गये, वहांकी भूमि, हे सारथि ! यह देखो, हाथी, घोडे, रथ और मरे हुए पैदल सेनाके पुरुषोंके शरीरसे परिपूर्ण होकर विषम और जानेके लिये कठिन हो गई है ॥ ८ ॥

अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः ॥ ९ ॥

यह सुनो, महाप्रचण्ड अमित शक्तिशाली गाण्डीव धनुषका शब्द सुन पडता है; इससे मुझे बोध होता है कि श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन हमारे समीप ही में स्थित हैं ॥ ९ ॥

यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै ।
अनस्तंगत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥ १० ॥

मेरे समीप जो सब शुभ शकुन दीख पडते हैं, उनसे बोध होता है कि अर्जुन सूर्य अस्त होनेके पहिले ही सिन्धुराज जयद्रथका वध करेंगे ॥ १० ॥

शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान्याहि यत्तोऽरिवाहिनीम् ।
यत्रैते सतनुत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ ११ ॥

तुम सावधान होके घोडोंको श्रमरहित करते हुए उस ही ओर धीरे धीरे गमन करो, जहां शत्रुसेना स्थित है; जहां ये तनुत्राण धारण किये दुर्योधन आदि योद्धा हैं ॥ ११ ॥

दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १२ ॥

जहां पर वर्म धारण किये हुए कठोर कर्मोंको करनेवाले रणदुर्मद काम्बोज, धनुष–बाण धारण किये प्रहार कुशल यवन ॥ १२ ॥

शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ।
मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥ १३ ॥

शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक और हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको धारण करनेवाले अनेक म्लेच्छ– ये सब मेरी ओर मुंह करके युद्धके निमित्त रणभूमिमें स्थित है ॥ १३ ॥

एतान्सरथनागाश्वान्निहत्याजौ सपत्तिनः ।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १४ ॥

इन सम्पूर्ण लोगोंका रथ, हाथी, घोडे और पैदल सेनाके योद्धाओं सहित वध करने पर अपनेको इस अत्यन्त भयङ्कर दुर्ग (किला) से पार हुए ही समझ लो ॥ १४ ॥

सूत उवाच

न संभ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम ।
यद्यपि स्यात्सुसंक्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥ १५ ॥

सारथि बोला– हे सत्यपराक्रमी वृष्णिनन्दन सात्यकि ! यदि अत्यंत क्रोधित हुए जमदग्नि-पुत्र परशुराम भी सामने उपस्थित हो जांय, तो भी मुझे भय नहीं होगा ॥ १५ ॥

द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा ।
तथापि संभ्रमो न स्यात्त्वामाश्रित्य महाभुज ॥ १६ ॥

हे महाभुज ! रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अथवा मद्रराजशल्य भी यदि युद्धभूमिमें मेरे आगे स्थित होवे तोभी आपके आश्रित रहकर मैं भयभीत नहीं हो सकूंगा ॥ १६ ॥

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन ।
न च मे संभ्रमः कश्चिद्भूतपूर्वः कदाचन ।
किमु चैतत्समासाद्य वीर संयुगगोष्पदम् ॥ १७ ॥

हे शत्रुनाशन ! तुमने पूर्वकालमें बहुतेरे योद्धाओंको युद्धभूमिमें पराजित किया है, उस समय भी मुझे तनिक भय नहीं बोध हुआ था; वीर ! इस समय जो आपके सङ्ग गायकी खुर तुल्य छोटा युद्ध होगा उसमें मुझे क्यों भय लगेगा ? ॥ १७ ॥

आयुष्मन्कतरेण त्वा प्रापयामि धनंजयम् ।
केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः ।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ १८ ॥

हे आयुष्मन् ! तुम्हें किस मार्गसे अर्जुनके निकट ले चलें ? तुम किनके ऊपर क्रुद्ध हुए हो ? किनकी मृत्यु आ गयी है ? किनका मन आज यमपुरीमें जानेके लिये उत्सुक हो रहा है ? ॥ १८ ॥

के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम् ।
दृष्ट्वा विक्रमसंपन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ।
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज ॥ १९ ॥

कौनसे योद्धा युद्धमें बल-पराक्रमसे युक्त साक्षात् काल, अन्तक और यमराजके समान पराक्रम दिखानेवाले तुम्हें देखकर युद्धभूमिसे भागनेमें तत्पर होंगे ? महाबाहो ! आज यमराज किनका स्मरण कर रहे हैं ? ॥ १९ ॥

सात्यकिरुवाच

मुण्डानेतान्हनिष्यामि दानवानिव वासवः ।
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मा वह ।
अद्यैषां कदनं कृत्वा क्षिप्रं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २० ॥

सात्यकि बोले, हे सारथि ! जैसे इन्द्रने दानवोंका वध किया था, वैसे ही आज मैं मुण्डित सिरके काम्बोज सेनाका ही संहार करूंगा; और मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा । इसलिये तुम उन योद्धाओंके समीप मुझे ले चलो। आज मैं इन कम्बोजोंका नाश करके शीघ्र ही मेरे प्रिय सखा अर्जुनके समीप गमन करूंगा ॥ २० ॥

अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः ।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत् ॥ २१ ॥

सूत ! आज दुर्योधनके सहित संपूर्ण कौरव लोग मेरे बलपराक्रमको देखेंगे । आज मुण्डित सिरवाली सम्पूर्ण सेनाके शूरवीरोंके संहार होनेपर तथा दूसरी सेनाके पुरुषोंके बार बार नाश होने पर ॥ २१ ॥

अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ २२ ॥

और युद्धमें क्षतविक्षत होती हुई कौरव सेनाके अनेक प्रकारके आर्तनाद सुनकर दुर्योधन अत्यंत संतप्त होगा ॥ २२ ॥

अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः ।
आचार्यककृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ २३ ॥

आज मैं संग्रामभूमिमें मेरे आचार्य पाण्डवोंमें मुख्य श्वेतवाहन महात्मा अर्जुनकी सिखाई हुई संपूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या समस्त योद्धाओंको दिखाऊंगा ॥ २३ ॥

अद्य मद्बाणनिहतान्योधमुख्यान्सहस्रशः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ २४ ॥

आज राजा दुर्योधन सहस्रों मुख्य शूरवीरोंको मेरे बाणोंसे मारा गया देख पश्चात्ताप करेंगे ॥ २४ ॥

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् ।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ २५ ॥

आज मैं हस्तलाघवके सहित झुण्डके झुण्ड बाण चलाऊंगा । कौरव लोग आज मेरे धनुषको मण्डलाकार गतियुक्त कुम्हारके चाकके समान चारों ओर भ्रमण करते हुए अवलोकन करेंगे ॥ २५ ॥

मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां बहु ।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ २६ ॥

आज सेनाके योद्धा लोगोंको मेरे बाणोंसे रुधिरपूरित शरीरसे युक्त होकर प्राणत्याग करते देख, दुर्योधन संतप्त होवेगा ॥ २६ ॥

अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान्वरान् ।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यते स सुयोधनः ॥ २७ ॥

आज जब मैं क्रुद्ध होकर मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध करने लगूंगा, तब दुर्योधन समझेगा कि, इस पृथ्वीपर दो अर्जुन उपस्थित हैं ॥ २७ ॥

अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा संतप्स्यति महामृधे ॥ २८ ॥

आज रणभूमिमें सहस्रों राजाओंको मेरे अस्त्रोंकी चोटसे मरते देख राजा दुर्योधन पश्चात्ताप करेगा ॥ २७ ॥

अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ २९ ॥

आज मैं सहस्रों राजाओंका वध करके महात्मा पाण्डवोंके ऊपर अपने प्रेम और भक्तिको सम्पूर्ण राजाओंके समीप प्रकाशित करूंगा ॥ २९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान्साधुवाहिनः ।
शशाङ्कसंनिकाशान्वै वाजिनोऽचूचुदद्भृशम् ॥ ३० ॥

सञ्जय बोले– सारथीने सात्यकिके ऐसे वचन सुनकर उत्तम शिक्षासे युक्त और अच्छी प्रकार सवारीका काम देनेवाले चन्द्रमाके समान सफेद वर्णवाले घोडोंको शीघ्रताके सहित आगे बढाया ॥ ३० ॥

ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ।
प्रापयन्यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः ॥ ३१ ॥

मन और वायुके समान शीघ्र गमन करनेवाले उन उत्तम घोडोंने मानो आकाश मार्गसे गमन करते हुए शीघ्रही यवन योद्धाओंके समीप सात्यकिको लाकर उपस्थित किया ॥ ३१ ॥

सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ।
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३२ ॥

युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले सात्यकिको अपनी सेनाके बीच आया देखकर बहुतेरे यवन योद्धाओंने हस्तलाघवके सहित अपने बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको छिपा दिया ॥ ३२ ॥

तेषामिषूनथास्त्राणि वेगवन्नतपर्वभिः ।
अच्छिनत्सात्यकी राजन्नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः ॥ ३३ ॥

राजन् ! वेगवान् सात्यकि शीघ्रताके सहित अपने नतपर्व बाणोंसे उन योद्धाओंके बाण और दूसरे अस्त्र काट काट पृथ्वीमें गिराने लगे । उन योद्धाओंके चलाये हुए बाण सात्यकिके निकट पर्यन्त भी पहुंच न सके ॥ ३३ ॥

रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि । ॥ ३४ ॥

उस समय सात्यकि प्रचण्ड रूपसे युक्त होकर स्वर्णपुंख तथा गिद्ध पंखसे युक्त अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन यवन योद्धाओंकी भुजाएं और सिरको काट काट गिराने लगे ॥ ३४ ॥

शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ।
भित्त्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् ॥ ३५ ॥

सात्यकिके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण बाण सब योद्धाओंके लोहे और कांसेके बने हुए वर्मको भेद करते हुए शरीरमें घुसकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३५ ॥

ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ।
शतशो न्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ॥ ३६ ॥

सैकडों म्लेच्छ योद्धा वीर सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर प्राणत्याग करते हुए पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३६ ॥

सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः ॥ ३७ ॥

वह कान पर्यन्त धनुष खींच कर और अविछिन्न गतिसे झुण्डके झुण्ड बाण चलाते हुए एकबारमें पांच, छः, सात तथा आठ यवन योद्धाओंका वध करने लगे ॥ ३७ ॥

काम्बोजानां सहस्रैस्तु शकानां च विशां पते ।
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ॥ ३८ ॥

पुरुषसिंह सात्यकिके बाणोंसे मरके पृथ्वीमें गिरे हुए सहस्रों काम्बोज, शक, शबर, बर्बर और किरात सेनाके योद्धाओंसे वह रणभूमि परिपूरित होगई ॥ ३८ ॥

अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ।
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् ॥ ३९ ॥

यदुकुल श्रेष्ठ सात्यकि इसी प्रकार सेनाके योद्धाओंको पीडित करते तथा उनका वध करते तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे । सेनाके योद्धाओंके रुधिर और मांससे वह रणभूमि कीचडसे युक्त होकर भयङ्कर दीखने लगी ॥ ३९ ॥

दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ।
तत्र तत्र मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ॥ ४० ॥

डाकु म्लेच्छोंके शिरस्त्राण सहित उस रणभूमिमें इधर उधर गिर कर पंखरहित पक्षीके समान उनके मुण्डित सिरोंसे वह युद्धभूमि परिपूरित होगई ॥ ४० ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ।
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम् ॥ ४१ ॥

जैसे लालवर्णवाले बादलोंसे आकाश परिपूरित होकर शोभित होता है, वैसेही रुधिर पूरित कबन्धोंके समूहसे वह भूमि प्रकाशित होने लगी ॥ ४१ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ।
ते साश्वयाना निहताः समावव्रुर्वसुंधराम् ॥ ४२ ॥

अनन्तर वज्र और बिजलीके समान स्पर्शवाले सुंदर पर्वयुक्त बाणोंसे सात्यकिसे घोडे और रथों सहित मारे गये यवनोंने पृथ्वीको परिपूर्ण कर दिया ॥ ४२ ॥

अल्पावशिष्टाः संभग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ।
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ॥ ४३ ॥

महाराज ! तुम्हारे उन वर्म धारण करनेवाले योद्धाओंके बीच जो थोडे बहुत कठिनाईसे मरनेसे बाकी बचे थे, वे भग्न होकर अचेतसे हो रहे थे, उन योद्धाओंको सात्यकिने युद्धमें जीता था ॥ ४३ ॥

पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ।
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन्भयात् ॥ ४४ ॥

उन लोगोंका प्राण सङ्कटमें पडा; इसीसे वे सब भयभीत और मोहित होकर रणभूमिमें कोडे और पांवके सहारेसे घोडोंको जोरसे दौडा कर, वे सम्पूर्ण योद्धा चारों ओर भागने लगे ॥ ४४ ॥

काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ।
यवनानां च तत्सैन्यं शकानां च महद्बलम् ॥ ४५ ॥

भारत ! उस रणभूमिमें दुर्जय काम्बोज सेनाको, यवन सेनाको और शकदेशीय बहुत बडी सेनाको तितर बितर करके ॥ ४५ ॥

स ततः पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
प्रहृष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ॥ ४६ ॥

सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह सात्यकि तुम्हारी ओरके दूसरे और बहुतेरे योद्धाओंको पराजित करके प्रसन्न चित्त हो, आगे बढो ऐसा आदेश देकर फिर सारथिको उत्तेजित करने लगे ॥ ४६ ॥

तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशां पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाप्यपूजयन् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ४००४ ॥

पृथ्वीनाथ ! अर्जुनके पृष्ठरक्षक सात्यकिको गमन करते देख, उस समय चारण बहुत हर्षित हुए और तुम्हारे सैनिकोंने भी उनकी प्रशंसा की ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें पंचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥ ४००४ ॥

: ९६ :

संजय उवाच

जित्वा यवनकाम्बोजान्युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि यवन और काम्बोज सेनाके योद्धाओंको पराजित कर तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश करके अर्जुनके समीप जानेके लिये अगाडी बढने लगे ॥ १ ॥

शरदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचच्छविः ।
मृगान्व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥

जैसे व्याघ्र हरिणोंके झुण्डकी गन्ध पाकर भयंकर रूपसे गमन करता है, वैसे ही विचित्र कवच ध्वजा और बाणरूपी भयानक दांतोंसे युक्त पुरुषसिंह सात्यकि तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करते हुए आगे गमन करने लगे ॥ २ ॥

स रथेन चरन्मार्गान्धनुरभ्रामयद्भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥

वह रथसे अनेक मार्गोंसे गमन करते हुए सुवर्ण चित्रित और सुवर्णमय चन्द्रिकाओंसे युक्त महावेगशील धनुषको हाथमें लेकर जोरसे फेरने लगे ॥ ३ ॥

रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजवरः शूरो मेरुशृङ्ग इवाबभौ ॥ ४ ॥

उनके भुजबंद, शिरस्त्राण, कवच, धनुष और ध्वजा ये सम्पूर्ण वस्तु सुवर्णमय थीं, इससे मेरुशृङ्गके समान महारथी सात्यकि प्रकाशित होने लगे ॥ ४ ॥

सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्वररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥

रणभूमिमें मण्डलाकार धनुष धारण किये अपने तेज रूपी किरणोंसे प्रकाशित मानव सूर्य सात्यकि शरद्ऋतुमें उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ५ ॥

वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥

वृषभके तुल्य वृषभस्कन्ध, बडे नेत्रवाले, पराक्रमी नरश्रेष्ठ सात्यकि तुम्हारी सेनाके बीचमें इस भांति शोभित होते दिखाई देने लगे, जैसे गौवोंके बीचमें वृषभ ॥ ६ ॥

मत्तद्विरदसंकाशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ।
व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाभ्यद्रवन्रणे ॥ ७ ॥

जैसे बहुतेरे व्याघ्र क्रुद्ध होकर एक मतवाले हाथीकी ओर दौडते हैं, वैसे ही तुम्हारी ओरके योद्धा लोग मत्त हाथीके समान पराक्रमी, मतवाले हाथीके समान गमन करनेवाले और मदस्रावी हाथीके समान निर्भय सात्यकि जब कौरव सैनिकोंके बीच स्थित हुए, तब उन्हें मार डालनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ ७ ॥

द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ।
जलसंधार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम् ॥ ८ ॥

सात्यकि द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको अतिक्रम करके, जलसंधरूपी समुद्रको पार करके काम्बोजोंकी सेनाका संहार करके ॥ ८ ॥

हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ।
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः ॥ ९ ॥

हार्दिक्यरूपी ग्राहसे छूटकर, तुम्हारी अपरम्पार सेनासे पार हो गये, तब तुम्हारी ओरके रथी लोगोंने क्रुद्ध होकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९ ॥

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ।
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्मर्षणः क्रथः ॥ १० ॥

दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, तरुण दुर्मर्षण, क्रथ ॥ १० ॥

अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ।
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिताः ॥ ११ ॥

और बहुतेरे शस्त्रधारी दुर्जय शूरवीर रथी योद्धालोग क्रुद्ध होकर वहां आगे बढते हुए सात्यकिके पीछे पीछे दौडे ॥ ११ ॥

अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १२ ॥

उससे तुम्हारी सेनाके बीच मानों पर्वके दिन वायुके वेगसे ऊपर उडनेवाले समुद्रके समान महा भयंकर शब्द होने लगा ॥ १२ ॥

तानभिद्रवतः सर्वान्समीक्ष्य शिनिपुंगवः ।
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥ १३ ॥

शिनिश्रेष्ठ सात्यकि उन संपूर्ण योद्धाओंको अपनी ओर आक्रमणके लिये आते देख हंस कर सारथीसे यह वचन बोले, हे सारथी ! धीरे धीरे रथ चलाओ ॥ १३ ॥

इदमेति समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद्बलम् ।
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ॥ १४ ॥

यह हाथी, घोडे, रथ और पैदल चलनेवाले शूरवीर पुरुषोंसे परिपूर्ण जो दुर्योधनकी सेना युद्धके लिये उद्यत हो मेरी ही ओर शीघ्रतासे आ रही है ॥ १४ ॥

नादयन्वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च कम्पयन्सागरानपि ॥ १५ ॥

मैं अपने रथके शब्दसे संपूर्ण दिशाओंको निनादित करता, तथा पृथ्वी, आकाश और सागरोंको भी कंपित करता हुआ ॥ १५ ॥

एतद्बलार्णवं तात वारयिष्ये महारणे ।
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव सलिलाशयम् ॥ १६ ॥

हे तात ! जैसे पूर्णमासीके दिन भयङ्कर तरङ्गसे युक्त समुद्रकी लहरको तट निवारण करता है, वैसे ही मैं इस समुद्रके समान महासेनाको इस महायुद्धमें आगे बढनेसे निवारण करूंगा ॥ १६ ॥

पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ।
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ॥ १७ ॥

सूत ! इस महा संग्राममें तुम मेरा इन्द्रके समान पराक्रम देखो, मैं अपने चोखे बाणोंसे इस सम्पूर्ण शत्रुसेनाओंको भस्म कर दूंगा ॥ १७ ॥

निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ।
मच्छरैरग्निसंकाशैर्विदेहासून्सहस्रशः ॥ १८ ॥

तुम इस युद्धमें मेरे अग्नि–समान बाणोंसे सहस्रों पैदल चलने वाले योद्धा, घुडसवार, हाथी और रथियोंको क्षतविक्षत शरीरसे युक्त होते और अनेकोंको मरते हुए पृथ्वीमें गिरते हुए देखोगे ॥ १८ ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ।
समीपं सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ १९ ॥

अमित तेजस्वी सात्यकि ऐसे कह रहे थे, उसही समय युद्धके लिये उत्सुक हुए तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग हर्ष पूर्वक शीघ्रही सात्यकिके समीप आ पहुंचे। वे सम्पूर्ण योद्धा लोग आपसमें कहने लगे, मारो ! दौडो ! खडा रह ! मेरी ओर देखो ॥ १९ ॥

तानेवं ब्रुवतो वीरान्सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान्कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २० ॥

जब सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकार बचन कहने लगे, उस ही समय सात्यकिने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस सेनाके तीन सौ घुडसवार योद्धाओं और चार सौ हाथियोंका वध किया ॥२०॥

स संप्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः ॥ २१ ॥

उन सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्ग देवासुर युद्धके समान सात्यकिका महाघोर नरसंहारकारी भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ २१ ॥

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २२ ॥

मारिष ! शिनिपौत्र सात्यकिने बादलकी घटाके समान तुम्हारे पुत्रकी उस महासेनाका अपने विषधर सर्पके समान भयंकर तीक्ष्ण बाणोंसे सामना किया ॥ २२ ॥

प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असंभ्रमं महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥ २३ ॥

महाराज ! समरमें वीर्यवान् सात्यकि बाणोंके जालसे आच्छादित हो गये थे, तो भी निर्भयतासे उन्होंने उस समय तुम्हारी ओरके कितने ही योद्धाओंका बध किया ॥ २३ ॥

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद्दृष्टवानहम् ।
न मोघः सायकः कश्चित्सात्यकेरभवत्प्रभो ॥ २४ ॥

राजेन्द्र ! उस समय सबसे महान् आश्चर्यमय बात मैंने यह देखी कि सात्यकिके धनुषसे छुटा हुआ कोई भी बाण निष्फल नहीं गया ॥ २४ ॥

रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः ।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २५ ॥

रथ, घोडे और हाथी रूपी जलसे युक्त, पदाति तरङ्गसे पूरित समुद्र समान तुम्हारी वह महासेना सात्यकि रूपी तटके समीप आकर रुक गयी ॥ २५ ॥

संभ्रान्तनरनागाश्वमावर्तत मुहुर्मुहुः ।
तत्सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ।
बभ्राम तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ॥ २६ ॥

पैदल, हाथी और घोडोंसे युक्त वह महासेना सात्यकिके बाणोंसे सब ओरसे पीडित और भयभीत होके बार बार युद्धभूमिमें भ्रमण करती हुई उनके संमुख उपस्थित होने लगी। सर्दीसे पीडित हुई गायोंके समान सारी सेना वहीं चक्कर लगा रही थी ॥ २६ ॥

पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ।
अविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः ॥ २७ ॥

उस रणभूमिके बीच पैदल, रथी, हाथी और सवार सहित घोडोंके बीच मैंने ऐसे किसीको भी नहीं देखा, जो सात्यकिके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो ॥ २७ ॥

न तादृक्कदनं राजन्कृतवांस्तत्र फल्गुनः ।
यादृक्क्षयमनीकानामकरोत्सात्यकिर्नृप ।
अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते भरतर्षभ ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! सात्यकिने जिस प्रकार सेनाका नाश किया था, वैसा वहां अर्जुनने भी नहीं किया था। भरतश्रेष्ठ ! शिनिपौत्र सात्यकि अर्जुनसे भी बढके पराक्रम प्रकाशित करके युद्ध कर रहे थे ॥ २८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ।
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे सात्यकिके सारथिको और चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ २९ ॥

सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सोऽष्टभिः ।
दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुंगवम् ॥ ३० ॥

और सात्यकिको पहले तीन बाणोंसे विद्ध करके फिर आठ बाणोंसे बिद्ध किया। अनन्तर दुःशासनने सोलह बाणोंसे शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको विद्ध किया ॥ ३० ॥

शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः
दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम् ॥ ३१ ॥

शकुनिने पचीस, चित्रसेनने पांच और दुःसहने पंद्रह बाणोंसे सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ३१ ॥

उत्स्मयन्वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः।
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३२ ॥

महाराज ! वृष्णिवंशीय पुरुषसिंह सात्यकिने इसी भांति उन महारथियोंके बाणोंसे विद्ध होकर हंसते हुए उन सब लोगोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३२ ॥

गाढविद्धानरीन्कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः।
शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ॥ ३३ ॥

युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाले शिनिवंशी सात्यकिने शत्रुओंको अत्यन्त तेज चोखे बाणोंसे अत्यंत विद्ध करके बाजपक्षीकी भांति रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥

सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ३४ ॥

उन्होंने सुबलपुत्र शकुनिके धनुष और अंगुलित्राणको काट कर, तीन बाणोंसे दुर्योधनके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार किया ॥ ३४ ॥

चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा।
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ॥ ३५ ॥

और शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने चित्रसेनको एक सौ, दुःसहको दस और दुःशासनको बीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३५ ॥

अथान्यद्धनुरादाय स्यालस्तव विशां पते।
अष्टभिः सात्यकिं विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ ३६ ॥

पृथ्वीपते ! तुम्हारे साले शकुनिने दूसरा धनुष ग्रहण कर सात्यकिको आठ बाणोंसे विद्ध करके, फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३६ ॥

दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः।
दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन्विव्याध सात्यकिम् ॥ ३७ ॥

राजन् ! अनन्तर दुःशासनने दस, दुःसहने तीन और दुर्मुखने बारह बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ ३७ ॥

दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम् ।
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ॥ ३८ ॥

भारत ! फिर दुर्योधनने तिहत्तर बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके फिर तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उनके सारथीको भी विद्ध किया ॥ ३८ ॥

तान्सर्वान्सहितान्शूरान्यतमानान्महारथान् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः । ॥ ३९ ॥

इसके अनन्तर सात्यकिने विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन इकट्ठे हुए सम्पूर्ण शूरवीर महारथियोंको पांच पांच बाणोंसे फिर विद्ध कर दिया ॥ ३९ ॥

ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ।
आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥ ४० ॥

फिर रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने शीघ्रही तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके सारथीका एक भल्लसे वध करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४० ॥

पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ।
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत संगरात् ॥ ४१ ॥

प्रभो ! जब वह सारथि मारा गया तब वायुके समान गमन करनेवाले घोडे तुम्हारे पुत्रके रथको खींचते हुए रणभूमिसे पृथक् हुए ॥ ४१ ॥

ततस्तव सुता राजन्सैनिकाश्च विशां पते ।
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन् ॥ ४२ ॥

राजन् ! तब तुम्हारे पुत्र और सैनिक राजा दुर्योधनके रथकी वैसी दशा देख सैकडोंकी संख्यामें भागने लगे ॥ ४२ ॥

विद्रुतं तत्र तत्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ।
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४३ ॥

भारत ! सात्यकिने उस महासेनाको भागती देखकर शिलापर घिस कर तेज किये हुए रुक्म पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको छिपा दिया ॥ ४३ ॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि समन्ततः
प्रययौ सात्यकि राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति ॥ ४४ ॥

राजन् ! अनन्तर इस प्रकार तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको ओर तितर बितर करके भगा कर सात्यकिने श्वेतवाहन अर्जुनके रथके समीप जानेके लिये वहांसे प्रस्थान किया ॥ ४४ ॥

तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम् ।
आत्मानं मोचयन्तं च तावकाः समपूजयन् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ४०४९ ॥

तुम्हारी ओरके योद्धाओंने सारथीकी रक्षा, बाण ग्रहण करके शत्रुओंकी ओर चलाना और अपनेको संकटसे मुक्त करना आदि कठिन कर्मोंको देखकर सात्यकिकी अत्यन्त प्रशंसा किया ॥ ४५ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें छानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९६ ॥ ४०४९ ॥

: ९७ :

धृतराष्ट्र उवाच

संप्रमृद्य महत्सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे संजय ! उस मेरी बडी सेनाको रौंदकर तितर बितर करके गमन करते हुए सात्यकि और अर्जुनको देख मेरे निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया ॥ १ ॥

कथं चैषां तथा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम् ।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा सदृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥

अर्जुनके समान पराक्रमी सात्यकिको युद्धभूमिमें पाकर उस समय उन मरनेकी इच्छावाले लोगोंने किस प्रकारसे धीरज धारण किया ? ॥ २ ॥

किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः ।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥

मेरे पुत्र और दूसरे क्षत्रिय योद्धाओंने युद्धभूमिमें सात्यकिके संमुखसे पराजित होके उस समय कौनसा कार्य किया ? महायशस्वी सात्यकि भी किस भांतिसे उस युद्धभूमिमें मेरी सेनाको अतिक्रम करके आगे बढे ? ॥ ३ ॥

कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र संजय ।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ४ ॥

संजय ! युद्धमें मेरे पुत्रोंके जीवित रहनेपर शिनिपुत्र सात्यकि किस तरह आगे जा सके ? यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप तुम विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ ४ ॥

अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम् ।
एकस्य बहुभिर्युद्धं शत्रुभिर्वै महारथैः ॥ ५ ॥

हे तात ! मैं तुम्हारे मुखसे अत्यन्त आश्चर्यमय वृत्तान्त सुन रहा हूं कि शत्रुओंके अनेक महारथियोंके संग एक ही पुरुषका युद्ध हुआ ॥ ५ ॥

विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यान्सुतान्प्रति ।
यत्रावध्यन्त समरे सात्वतेन महात्मना ॥ ६ ॥

और उस युद्धमें जो महात्मा सात्यकिने अकेलेही योद्धाओंका वध किया है, इसे मैं अपने भाग्यहीन पुत्रोंके लिये विपरीत समझता हूं ॥ ६ ॥

एकस्य हि न पर्याप्तं मत्सैन्यं तस्य सञ्जय ।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

हे संजय ! सम्पूर्ण पाण्डवोंकी बात तो दूर रही, मेरी सम्पूर्ण सेना क्रोधित हुए अकेले सात्यकिके लिये भी पर्याप्त नहीं है ॥ ७ ॥

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं युद्धदुर्मदम् ।
यथा पशुगणान्सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान्मम ॥ ८ ॥

सात्यकि युद्धदुर्मद संपूर्ण अस्त्रशस्त्रके जाननेवाले द्रोणाचार्यको पराजित करके मेरे पुत्रोंका इस प्रकार वध कर डालेंगे, जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है ॥ ८ ॥

कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यः पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥

कृतवर्मा आदि अनेक शूरवीर यत्नवान् होकर भी युद्धभूमिमें पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिको मारे नहीं सके ॥ ९ ॥

नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फल्गुनः ।
यादृशं कृतवान्युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥

महायशस्वी शिनिपौत्र सात्यकिने जैसे वहां युद्ध किया है, वैसा संग्राम अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच

तव दुर्मन्त्रिते राजन्दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥

संजय बोले— हे राजेन्द्र ! दुर्योधनकी दुष्ट नीति और तुम्हारी मंत्रणासे यह सब कुछ हुआ है; उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम सावधानचित्त होकर सुनो ॥ ११ ॥

ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तकान्मिथः ।
परां युद्धे मतिं कृत्वा पुत्रस्य तव शासनात् ॥ १२ ॥

तुम्हारी सेना युद्धके लिये दृढता और कठोर बुद्धिका अवलम्बन कर तथा आपसमें प्रतिज्ञा करके तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे फिर सात्यकिकी ओर लौटी ॥ १२ ॥

×

त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शकाः काम्बोजबाल्हीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥

तीन हजार घुडसवार दुर्योधनको आगे करके चले; उनके साथ शक, काम्बोज, बाल्हीक, यवन, पारद ॥ १३ ॥

कुणिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च समन्दराः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ॥ १४ ॥

कुणिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पैशाच और मन्दर योद्धा थे, वे सब इस प्रकार सात्यकिकी ओर दौडे जैसे फतिङ्गोंका समूह अग्निकी ओर दौडता है ॥ १४ ॥

युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ।
शूराः पञ्चशता राजञ्शैनेयं समुपाद्रवन् ॥ १५ ॥

राजन् ! पत्थरोंसे युद्ध करनेवाले पर्वतीयोंके पांच सौ शूर रथी योद्धाओंने युद्धके लिये सज्ज हो सात्यकिपर धावा किया ॥ १५ ॥

ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ।
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ॥ १६ ॥

एक हजार रथी, एक सौ महारथी, एक हजार हाथी और दो हजार घुडसवारोंके साथ ॥ १६ ॥

शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ॥ १७ ॥

महारथी योद्धालोग और असंख्य पैदल चलनेवाले योद्धाओंने अपने नाना भांतिके बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिपर आक्रमण किया ॥ १७ ॥

तांश्च संचोदयन्सर्वान्घ्नतैनमिति भारत ।
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ॥ १८ ॥

भारत ! दुःशासनने " इस सात्यकिका वध करो, " ऐसे ही वचनोंको कहके अपनी सेनाके पुरुषोंको उत्तेजित करते हुए सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ।
यदेको बहुभिः सार्धमसंभ्रान्तमयुध्यत ॥ १९ ॥

उस स्थलमें हमने सात्यकिका अद्भुत कार्य देखा, कि वे अकेलेही बहुत योद्धाओंके संग निर्भयतासे युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥

अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद्बलम्।
सादिनश्चैव तान्सर्वान्दस्यूनपि च सर्वशः ॥ २० ॥

ऐसा कथा, सात्यकिने रथ सेना, गजसवार, घुडसवार, सम्पूर्ण डाकुओंकी सेना और पैदल सेनाके योद्धाओंमेंसे बहुत पुरुषोंका सब प्रकारसे वध किया ॥ २० ॥

तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः।
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ २१ ॥

वहां टुटे हुए रथके चक्र, उत्तम अस्त्र-शस्त्र आदि आयुध, रथकी धुरी, रथके ईषा दण्ड और बन्धुर ॥ २१ ॥

कूबरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्चापि निपातितैः।
वर्मभिश्चामरैश्चैव व्यवकीर्णा वसुन्धरा ॥ २२ ॥

मथित किये गये हाथी, गिराये हुए ध्वज, छिन्नभिन्न कवच और चामरोंसे वहांकी पृथ्वी परिपूरित होगयी ॥ २२ ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष।
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ॥ २३ ॥

भारत ! योद्धाओंकी माला, आभूषण, वस्त्र और रथके नीचेके काठ आदि वस्तुओंसे पृथ्वी मानो तारोंसे युक्त आकाशकी भांति परिपूरित होकर प्रकाशित होने लगी ॥ २३ ॥

गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः।
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २४ ॥

अञ्जन, वामन, सुप्रतीक और महापद्म हाथियोंके वंशमें उत्पन्न हुए बहुतेरे पर्वतके समान आकारवाले मतवाले हाथी मर कर पृथ्वीमें शयन करने लगे ॥ २४ ॥

ऐरावणकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च।
जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २५ ॥

राजन् ! ऐरावत तथा अन्य हाथियोंके कुलोंमें उत्पन्न हुए अनेक दंतार हाथी वहां धरतीपर पडे रहे थे ॥ २५ ॥

वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजारट्टबाल्हिकान्।
तथा हयवरान्राजन्निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २६ ॥

वहां सात्यकिने वनायुज, पार्वतीय, काम्बोज, आरट्ट और बाह्लीक देशीय उत्तम घोडोंका वध किया ॥ २६ ॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजात्यांश्च पत्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥

और अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए नाना जातिके सैंकडों सहस्रों पदातियोंका सात्यकिने वहां संहार किया ॥ २७ ॥

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून्दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २८ ॥

योद्धाओंको तितर बितर होके इधर उधर भागते देख लूट पाट करनेवाले दस्यु डाकु योद्धाओंसे तुम्हारे पुत्र दुःशासन बोले, " हे अधार्मिक पुरुषो ! भागनेकी क्या आवश्यकता है, लौटकर युद्ध करो " ॥ २८ ॥

तांश्चापि सर्वान्संप्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान्पार्वतीयानचोदयत् ॥ २९ ॥

अनन्तर उन सब डाकु योद्धाओंको देखके तुम्हारे पुत्र दुःशासन पाषाणोंसे युद्ध करनेवाले शूरवीर पर्वतीय योद्धाओंको बोले ॥ २९ ॥

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं घ्नतैनं युद्धकामुकम् ॥ ३० ॥

तुम लोग पत्थरोंसे युद्ध करनेमें कुशल हो, सात्यकिको इस कलाका ज्ञान नहीं है, पत्थर युद्धको न जानते हुए भी युद्धकी इच्छा करनेवाले इस शत्रु सात्यकिका वध करो ॥ ३० ॥

तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः ॥ ३१ ॥

सम्पूर्ण कौरव लोग भी पाषाण युद्धमें प्रवीण नहीं हैं, इसलिये तुम कुछ भी भय मत करो, उसकी ओर दौडो, सात्यकि तुम्हें नहीं प्राप्त कर सकेगा ॥ ३१ ॥

ततो गजशिशुप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य स्थिता मरणकाङ्क्षिणः ॥ ३२ ॥

वे पर्वत निवासी सम्पूर्ण योद्धा लोग हाथियोंके शिरके समान बडे पत्थरोंके टूकडोंको उठा कर मरणकी इच्छा करके सात्यकिके संमुख रणभूमिमें खडे हुए ॥ ३२ ॥

क्षेपणीयैस्तथाप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण रुरुधुः सर्वतोदिशम् ॥ ३३ ॥

तुम्हारे पुत्र दुःशासनसे प्रेरित होकर सात्यकिके वध करनेकी इच्छा करके दूसरे अनेक सैनिकोंने भी क्षेपणीयास्त्र उठाकर चारों ओरसे सात्यकिको रोक दिया ॥ ३३ ॥

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसंधाय त्रिंशतं प्राहिणोच्छरान् ॥ ३४ ॥
शिलायुद्धकी इच्छा करनेवाले उन लोगोंको आक्रमणके लिये उपस्थित होते देख, सात्यकिने उनकी ओर तीन सौ तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ ३४ ॥

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् ।
बिभेदोरगसंकाशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३५ ॥
शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने अपने सर्पके समान तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे उन पर्वतीय योद्धाओंकी भयंकर पाषाण वर्षाको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ३५ ॥

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यवध्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३६ ॥
मारिष ! उन योद्धाओंके चलाये हुए शिलाखण्ड सात्यकिके बाणोंसे टुकडे टुकडे होकर खद्योत समूहके समान प्रकाशित होकर उन्हीं लोगोंकी सेनाके पुरुषोंका नाश करने लगे; उससे सेनाके बीच महा हाहाकार शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥

ततः पञ्चशताः शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन्निपेतुर्धरणीतले ॥ ३७ ॥
राजन् ! योद्धाओंके बीच पांच सौ योद्धाओंकी भुजाएं पत्थरोंकी शिलाके सहित सात्यकिके बाणोंसे कटके पृथ्वीमें गिर पडीं; और वे योद्धा लोग भी मरके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३७ ॥

पाषाणयोधिनः शूरान्यतमानानवस्थितान् ।
अवधीद्बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३८ ॥
इसी प्रकार पाषाणोंसे युद्ध करनेवाले शूर यत्नवान् होकर युद्धभूमिमें डटे हुए थे; सात्यकिने उन कई हजार पाषाणधारी योद्धाओंका वध किया, वह सात्यकिका कार्य अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ ३८ ॥

ततः पुनर्बस्तमुखैरश्मवृष्टिं समन्ततः ।
अयोहस्तैः शूलहस्तैर्दरदैः खशतङ्गणैः ॥ ३९ ॥
फिर वे सम्पूर्ण दरद, खश, तङ्गण, अम्बष्ठ और कुणिन्द देशके अजमुखवाले योद्धा लोग हाथमें लोहेके गोले और त्रिशूल लेकर युद्धभूमिमें फिर स्थित हुए, और चारों ओरसे सात्यकिके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३९ ॥

अम्बष्ठैश्च कुणिन्दैश्च क्षिप्तां क्षिप्तां स सात्यकिः ।
नाराचैः प्रतिविव्याध प्रेक्षमाणो महाबलः ॥ ४० ॥
परंतु वह देख महाबलवान् सात्यकिने अपने तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे उन सबको क्षत विक्षत कर दिया ॥ ४० ॥

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः ।
शब्देन प्राद्रवन्राजन्गजाश्वरथपत्तयः ॥ ४१ ॥

उन योद्धाओंके चलाये हुए पत्थरोंके टुकडे सात्यकिके बाणोंसे आकाश मार्गहीमें कट कर पृथ्वीमें गिरते हुए दिखाई देने लगे। उन गिरते हुए पत्थरोंके शब्दसे हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेनाके योद्धा लोग इधर उधर दौडने लगे ॥ ४१ ॥

अश्मचूर्णैः समाकीर्णा मनुष्याश्च वयांसि च ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४२ ॥

पत्थरके चूर्णोंसे सब ओरसे व्याप्त हुए मनुष्य और पक्षी वहां ठहर न सके, जैसे उन्हें भ्रमरोंने डस लिया हो ॥ ४ ॥

हतशिष्टा विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
कुञ्जराः संन्यवर्तन्त युयुधानरथं प्रति ॥ ४३ ॥

कितने ही मरनेसे बचे हुए हाथी क्षत विक्षत शरीरसे युक्त रुधिरसे परिपूरित हो गये थे; उनके कुम्भस्थल फट गये थे; वे उस समय सात्यकिके रथके निकटसे भागने लगे ॥४३॥

ततः शब्दः समभवत्तव सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव दारुणः ॥ ४४ ॥

मारिष ! जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्रकी लहरका भयंकर शब्द होता है; सात्यकिके बाणोंसे पीडित तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वैसा ही महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ ४४ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् ।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४५ ॥

हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य उस तुमुल शब्दको सुनकर अपने सारथीसे बोले— सूत ! यह यदुवंशियोंमें महारथी सात्यकि युद्धभूमिमें क्रुद्ध होकर ॥ ४५ ॥

दारयन्बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४६ ॥

कौरव सेनाके पुरुषोंको नाना प्रकारसे तितर बितर करते हुए कालकी भांति भ्रमण कर रहा है; जहां पर यह तुमुल शब्द हो रहा है तुम उस ही स्थानमें मेरे रथको ले चलो ॥४६॥

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः ।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ४७ ॥

मुझे निश्चय होता है सात्यकि पाषाण योद्धाओंके सङ्ग युद्ध कर रहा है। इसलिये सब रथियोंके रथको ये घोडे इधर उधर खींचते हुए भ्रमण कर रहे हैं ॥ ४७ ॥

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ४८ ॥

रथी लोग शस्त्र और कवचसे रहित और सात्यकिके अस्त्रोंसे पीडित होकर इधर उधर गिर रहे हैं, इस तुमुल युद्धमें सारथी लोग रथके घोडोंको स्थिर नहीं कर सकते हैं ॥ ४८ ॥

इत्येवं ब्रुवतो राजन्भारद्वाजस्य धीमतः।
प्रत्युवाच ततो यन्ता द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४९ ॥

बुद्धिमान् द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर उनका सारथी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे बोला ॥ ४९ ॥

आयुष्मन्द्रवते सैन्यं कौरवेयं समन्ततः।
पश्य योधान्रणे भिन्नान्धावमानांस्ततस्ततः ॥ ५० ॥

हे आयुष्मन् ! देखिये, इधर कौरवोंकी सेना चारों ओर भाग रही है, योद्धा लोग युद्धभूमिमें बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर दौड रहे हैं ॥ ५० ॥

एते च सहिताः शूराः पाञ्चालाः पाण्डवैः सह।
त्वामेव हि जिघांसन्तः प्राद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५१ ॥

और दूसरी ओर पाण्डव तथा पाञ्चाल शूरवीर योद्धा लोग मिलकर तुम्हारे वधकी अभिलाष करके चारों ओरसे आक्रमण कर रहे हैं ॥ ५१ ॥

अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिंदम।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५२ ॥

हे शत्रुनाशन ! इससे तुम्हें इस स्थानपर रहना वा अन्यत्र जाना उचित है; उसे आप अच्छी भांति विचार करके निश्चय कीजिये; सात्यकि तो बहुत दूर तक चले गये हैं ॥ ५२ ॥

तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य मारिष।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन्बहुविधान्रथान् ॥ ५३ ॥

मारिष ! द्रोणाचार्यकी सारथीके संग जब इस प्रकार बात चीत हो रही थी, उस ही समय सात्यकि तुम्हारी ओरके अनेक रथियोंका वध करते दिखायी दिये ॥ ५३ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५४ ॥

कितने ही रथी समरमें सात्यकिके बाणोंसे क्षत विक्षत हो उनके रथको त्याग कर द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर भाग गये ॥ ५४ ॥

यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्तत ।
ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ४१०४ ॥

और पहिले दुःशासन जिन रथियोंको सङ्ग लेकर सात्यकिके समीप उपस्थित हुए थे; वे सम्पूर्ण रथी लोग भयभीत होकर द्रोणाचार्यके रथकी ओर भाग गये ॥ ५९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें सतानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥ ४१०४ ॥

: ९८ :

सञ्जय उवाच

दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य अपने समीपमें दुःशासनके रथको स्थित देख, उनसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

दुःशासन रथाः सर्वे कस्मादेते प्रविद्रुताः ।
कच्चित्क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥

हे दुःशासन ! ये सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग कहांसे भागे आ रहे हैं ? राजा दुर्योधनके विषयमें मङ्गल तो है ? सिन्धुराज जयद्रथ तो जीवित हैं न ? ॥ २ ॥

राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवसे युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥

तुम राजाके भाई, महारथी और राजपुत्र हो; युवराज होकर तुम क्यों युद्धसे भागते हो ? ॥ ३ ॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ४ ॥

तुमने स्वयं पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग महान् वैर धारण किया है, इस समय अकेले सात्यकिके सङ्ग युद्ध करके क्यों भयभीत हो रहे हो ? ॥ ४ ॥

न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान्दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ५ ॥

पहिले जूएकी खेलके समयमें पासेको ग्रहण करके तुम नहीं जान सके थे, कि ये ही पासे भविष्यमें भयङ्कर विषधर सर्पोंके समान बाण रूपसे दीख पड़ेंगे ॥ ५ ॥

अप्रियाणां च वचनं पाण्डवेषु विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशास्त्वन्मूलो ह्यभवत्पुरा ॥ ६ ॥

पहिले तुमहीने विशेषतः पाण्डवोंको अनेक अप्रिय और कठोर वचन कहे थे और द्रौपदीको क्लेश पहुंचाये थे, इन सबका तुम्हीं मूल हुए हो ॥ ६ ॥

क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व च तद्वीर गर्जितम् ।
आशीविषसमान्पार्थान्कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ७ ॥

हे वीर ! इस समय तुम्हारा वह मान और घमण्ड कहां गया ? और तुम्हारा उस समयका गर्जन क्या हुआ ? तुम विषैले सर्पके समान क्रोधी पाण्डवोंको कोपित करके इस समय कहां भागे जा रहे हो ? ॥ ७ ॥

शोच्येयं भारती सेना राजा चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ ८ ॥

जब तुम राजा दुर्योधनके भाई होके उसके ऊपर दयारहित होकर युद्धसे भाग रहे हो, तब यह सम्पूर्ण कुरुसेना और राजा दुर्योधन शोकके विषय हुए हैं; इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ।
स त्वमद्य रणं त्यक्त्वा भीतो हर्षयसे परान् ॥ ९ ॥

वीर ! इस भयभीत और आतुर होकर भागती हुई सेनाको तुम्हें तो अपने बाहुबलका आश्रय लेकर रक्षा करनी चाहिये; उसे न करके तुम आज भयभीत हो युद्धभूमिसे भाग कर शत्रुओंके हर्षको बढा रहे हो ॥ ९ ॥

विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ।
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ॥ १० ॥

हे शत्रुनाशन ! तुम सेनापति होकर जब भयभीत होकर युद्धभूमिसे भाग रहे हो, तब तुम्हारी सेनाके संपूर्ण योद्धालोग भयभीत हो जावेंगे, इससे कौन पुरुष तुम्हारे भागने पर युद्धभूमिमें स्थित रह सकेगा ? ॥ १० ॥

एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य चानघ ।
पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्तते ॥ ११ ॥

हे अनघ ! आज अकेले सात्यकिके साथ युद्ध करते समय ही तुम्हारी बुद्धि युद्धभूमिसे भागनेमें तत्पर हुई है ॥ ११ ॥

यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ।
यमौ च युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि ॥ १२ ॥

परन्तु कौरव ! जब तुम गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेवको युद्धभूमिमें देखोगे, तब उस समय तुम क्या करोगे ? ॥ १२ ॥

युधि फल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमतेजसाम् ।
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे ॥ १३ ॥

उस सात्यकिके जिन सम्पूर्ण बाणोंको देखकर तुम युद्धभूमिसे भाग रहे हो, वे सब बाण अर्जुनके बाण समान तेजस्वी नहीं हैं, अर्जुनके बाण सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं ॥ १३ ॥

यदि तावत्कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ।
पृथिवी धर्मराजस्य शमेनैव प्रदीयताम् ॥ १४ ॥

इससे यदि तुम्हारी भागनेहीमें प्रवृत्ति हुई है, तो धर्मराज युधिष्ठिरके सङ्गमें सन्धि करके तुम उन्हें पृथ्वीका राज्य प्रदान करो ॥ १४ ॥

यावत्फल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसंनिभाः ।
नाविशन्ति शरीरं ते तावत्संशाम्य पाण्डवैः ॥ १५ ॥

जब तक अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए केचुल छोडकर निकले हुए सर्पोंके समान बाण तुम्हारे शरीरमें प्रवेश नहीं करते हैं; उस ही समयके बीच तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि कर लो ॥१५॥

यावत्ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ।
नाक्षिपन्ति महात्मानस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः ॥ १६ ॥

जब तक महात्मा पाण्डवलोग तुम्हारे सौ भाईयोंको समरमें मार कर यह सारी पृथ्वी तुमसे छीन नहीं लेते हैं, तभी तक तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो ॥ १६ ॥

यावन्न क्रुध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत्संशाम्य पाण्डवैः ॥ १७ ॥

जब तक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर और युद्धकी प्रशंसा करनेवाले श्रीकृष्ण क्रुद्ध नहीं होते हैं, तभी तक पाण्डवोंके संग सन्धि होनी उचित है ॥ १७ ॥

यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ।
सोदरांस्ते न मृद्नाति तावत्संशाम्य पाण्डवैः ॥ १८ ॥

जब तक महाबाहु भीम तुम्हारी सेनामें घुसकर तुम्हारे सब भाइयोंको मथित नहीं करते हैं; तभी तक तुम पाण्डवोंके संग सन्धि कर लो ॥ १८ ॥

पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेण स सुयोधनः ।
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य पाण्डवैः ।
न च तत्कृतवान्मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः ॥ १९ ॥
पहिले भीष्मने तुम्हारे भाई सुयोधनसे कहा था, कि सौम्य! पाण्डव लोग युद्धमें अजेय हैं, इसलिये तुम पाण्डवोंके संग सन्धि करो। तुम्हारे भाई मूर्ख दुर्योधनने भीष्मके इन वचनोंको नहीं माना और वह कार्य नहीं किया ॥ १९ ॥

स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।
गच्छ तूर्णं रथेनैव तत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २० ॥
इससे तुम रणभूमिके बीच धीरज धारण कर यत्नपूर्वक पाण्डवोंके साथ युद्ध करो। जहां सात्यकि खडे रहे हैं, उस ही स्थानपर रथपर चढके शीघ्रताके सहित गमन करो ॥ २० ॥

त्वया हीनं बलं ह्येतद्विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २१ ॥
भारत! यह संपूर्ण सेना तुम्हें न देखकर युद्धभूमिसे भाग जाएगी। तुम अपनी मान रक्षाके लिये भी सत्यपराक्रमी सात्यकिके संगमें युद्ध करो ॥ २१ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो नाब्रवीत्किंचिदप्यसौ ।
श्रुतं चाश्रुतवत्कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः ॥ २२ ॥
जब द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्र दुःशासनसे यह बचन बोले, तब उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, द्रोणाचार्यकी बातोंको सुनके भी न सुननेके समान दिखाकर सात्यकि जिस ओर गमन कर रहे थे उस ही ओर गमन करने लगे ॥ २२ ॥

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥ २३ ॥
वह युद्धभूमिमें पीछे न हटनेवाली म्लेच्छोंकी बडी सेना सङ्ग लेकर युद्धभूमिमें सात्यकिके समीप पहुंचके उनके सङ्ग प्रयत्नपूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पाञ्चालान्पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २४ ॥
रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी क्रुद्ध होकर मध्यम वेगके सहित पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंकी ओर दौडे ॥ २४ ॥

प्रविश्य च रणे द्रोणः पाञ्चालानां वरूथिनीम् ।
द्रावयामास योधान्वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥
समरमें द्रोणाचार्यने पाञ्चाल सेनाके बीच प्रवेश करके सैकडों सहस्रों योद्धाओंको तितर बितर कर दिया ॥ २५ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ २६ ॥

महाराज ! अनन्तर द्रोणाचार्य अपना नाम सुनाकर रणभूमिके बीच पाण्डव, पाञ्चाल और मत्स्य देशीय योद्धाओंका महान् वध करने लगे ॥ २६ ॥

तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान्वीरकेतुः समभ्ययात् ॥ २७ ॥

द्रोणाचार्यको इधर उधर सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको पराजित करते देख पाञ्चाल राजके तेजस्वी पुत्र वीरकेतुने उनपर आक्रमण किया ॥ २७ ॥

स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ २८ ॥

उन्होंने पांच नतपर्व बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा और सात बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥ २८ ॥

तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद्द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्तत ॥ २९ ॥

उस युद्धमें मैंने वीरकेतुका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि द्रोणाचार्य वेगशील पाञ्चाल वीर-केतुके आगे न खडे हो सके ॥ २९ ॥

संनिरुद्धं रणे द्रोणं पाञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन्धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३० ॥

मारिष ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके विजयकी इच्छा करनेवाले पाञ्चाल योद्धाओंने द्रोणाचार्यको युद्धमें रुके हुए देख उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

ते शरैरग्निसंकाशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन्द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३१ ॥

अनन्तर उन सब योद्धाओंने अकेले द्रोणाचार्यको अग्निके समान तेजस्वी अनेक बाण, बहुमूल्य तोमर और नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे छिपा दिया ॥ ३१ ॥

निहत्य तान्बाणगणान्द्रोणो राजन्समन्ततः ।
महाजलधरान्व्योम्नि मातरिश्वा वियानिव ॥ ३२ ॥

अनन्तर जैसे प्रचण्ड वायु आकाशमें महान् बादलोंको तितर बितर करनेके बाद प्रवाहित होती है, वैसे ही द्रोणाचार्य उन सम्पूर्ण योद्धाओंके चलाये हुए बाणसमूहोंको अपने बाणोंसे काटकर युद्धभूमिमें प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥

ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसंनिभम् ।
संदधे परवीरघ्नो वीरकेतुरथं प्रति ॥ ३३ ॥

अनन्तर शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने सूर्य तथा अग्निके समान अत्यंत भयंकर एक बाण धनुष पर चढा कर वीरकेतुके रथकी ओर चलाया ॥ ३३ ॥

स भित्त्वा तु शरो राजन्पाञ्चाल्यं कुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहिताद्रों ज्वलन्निव ॥ ३४ ॥

हे भारत ! जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान वह भयङ्कर बाण पाञ्चालराजपुत्र वीरकेतुको भेदकर रुधिर पीता हुआ शीघ्रताके सहित पृथ्वीमें घुस गया ॥ ३४ ॥

ततोऽपतद्रथात्तूर्णं पाञ्चाल्यः कुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥ ३५ ॥

उसी बाणकी चोटसे पाञ्चालराजपुत्र वीरकेतु मरके इस प्रकार अपने रथसे पृथ्वीपर गिरे जैसे पर्वतके शृङ्गपरसे वायुके झोकसे टूटके चम्पाका वृक्ष गिर पडता है ॥ ३५ ॥

तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पाञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ३६ ॥

महाधनुर्धारी महाबलवान् पाञ्चालराजपुत्रके मारे जानेपर पाञ्चालयोद्धाओंने शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३६ ॥

चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ३७ ॥

भारत ! चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ ये चारों वीर अपने भाईकी मृत्युसे दुःखित होकर ॥ ३७ ॥

अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः ।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥ ३८ ॥

युद्धकी इच्छा करके सब मिलकर द्रोणाचार्यपर टूट पडे, और जैसे वर्षाकालमें बादल पानी बरसाते हैं, वैसेही वे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३८ ॥

स बध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः ।
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान्कुपितो रणे ॥ ३९ ॥

उन महारथी राजपुत्रोंसे अत्यंत विद्ध हो जानेपर, युद्धमें क्रुद्ध होकर उन राजकुमारोंको उन्होंने घोडे, सारथि और रथसे रहित कर दिया ॥ ३९ ॥

तथापरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ।
पुष्पाणीव विचिन्वन्हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत् ॥ ४० ॥
अनन्तर अपने दूसरे तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे उन लोगोंके सिरोंको इस प्रकारसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिये, जैसे माली फूले हुए वृक्षसे फूल चुनकर तोड गिराता है ॥ ४० ॥

ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन्सुवर्चसः ।
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः ॥ ४१ ॥
राजन् ! पहले जैसे देवासुर युद्धमें दैत्य और दानव मरके रणभूमिमें गिरे थे, वैसे ही वे तेजस्वी राजपुत्र मरकर अपने रथोंके ऊपरसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ४१ ॥

तान्निहत्य रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कार्मुकं भ्रमयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ ४२ ॥
महाराज ! प्रतापवान् भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य रणभूमिमें उन राजपुत्रोंका वध करके अपने सुवर्ण भूषित प्रचण्ड दुर्जय धनुषको घुमाने लगे ॥ ४२ ॥

पाञ्चालान्निहतान्दृष्ट्वा देवकल्पान्महारथान् ।
धृष्टद्युम्नो भृशं क्रुद्धो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ४३ ॥
देवताओंके समान पराक्रमी पाञ्चालराजपुत्र महारथियोंको मारा गया देख धृष्टद्युम्न दोनों आंखोंसे आंसूकी धारा बहाते हुए अत्यंत उद्विग्न हो गये, और क्रुद्ध होकर युद्धमें द्रोणाचार्यके रथकी ओर बढे ॥ ४३ ॥

ततो हा हेति सहसा नादः समभवन्नृप ।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ४४ ॥
अनन्तर युद्धमें द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नके बाणोंसे छिपे हुए देख तुम्हारी सेनाके बीच महा हाहाकार शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ४५ ॥

संछाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना ।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥ ४५ ॥
परन्तु द्रोणाचार्य महात्मा धृष्टद्युम्नके अनेक बाणोंसे छिपकर भी पिडीत नहीं हुए, परंतु हंसकर उनके सङ्ग युद्ध ही करने लगे ॥ ४५ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्छितः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥
महाराज ! पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर नब्बे नतपर्व बाणोंसे द्रोणाचार्यका वक्षस्थल विद्ध किया ॥ ४६ ॥

स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ४७ ॥

महायशस्वी द्रोणाचार्य बलवान् धृष्टद्युम्नके उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गये ॥ ४७ ॥

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी ।
समुत्सृज्य धनुस्तूर्णमसिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

महापराक्रमी बलवान् धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको मूर्च्छित देख शीघ्र ही धनुष त्याग कर हाथमें तलवार ग्रहण कर ली ॥ ४८ ॥

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ।
हर्तुमैच्छच्छिरः कायात्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ४९ ॥

मारिष ! और क्रोधसे लाल नेत्र कर द्रोणाचार्यके सिरको काटनेकी इच्छासे शीघ्र ही अपने रथसे कूद कर द्रोणाचार्यके रथ पर चढ गये ॥ ४९ ॥

प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महाबलः ।
शरैर्वैतस्तिकै राजन्नित्यमासन्नयोधिभिः ।
योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ॥ ५० ॥

अनन्तर महाबलवान् द्रोणाचार्यने सावधान होकर जिन बाणोंसे समीपहीमें स्थित शत्रुओंके संग सदा सर्वदा युद्ध किया जा सकता है, बारह अंगुलके परिमाणवाले उन ही बाणोंसे महारथी धृष्टद्युम्नको विद्ध करके समरमें उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५९ ॥

ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ।
द्रोणस्य विदिता राजन्धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ५१ ॥

वितस्तिक नामक निकटवेधी वे संपूर्ण बारह अंगुलके परिमाणवाले बाण द्रोणाचार्यको विदित थे; उन्हीं बाणोंसे वह धृष्टद्युम्नको पीडित करने लगे ॥ ५१ ॥

स बध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ॥ ५२ ॥

महाबलवान् पराक्रमी धृष्टद्युम्न उन अनेक वितस्तिक बाणोंसे पीडित होकर अपना वेग भङ्ग हो जानेके कारण शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्यके रथसे कूद पडे ॥ ५२ ॥

आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद्धनुः ।
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ५३ ॥

और फिर अपने रथ पर जा चढे; फिर महान् धनुष ग्रहण करके वीर महारथी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ५३ ॥

तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसंघा ह्यपूजयन्।
क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तत्र सैनिकाः ॥ ५४ ॥

महारथ द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्नको अपने अनेक बाणोंसे विद्ध करने लगे। वहां पर स्थित सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धालोग तथा युद्ध देखनेवाले सम्पूर्ण प्राणी और सेनाके पुरुष उनके अद्भुत संग्रामको देखकर उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५४ ॥

अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन संगतः।
वशमेष्यति नो राज्ञः पाञ्चाला इति चुक्रुशुः ॥ ५५ ॥

पाञ्चाल योद्धालोग आपसमें कहने लगे, जब समरमें धृष्टद्युम्नके संग द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे हैं, तब अवश्य ही हम लोगोंके वशमें हो जायेंगे। ऐसे वचनोंको कहते हुए पाञ्चाल योद्धा ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ५५ ॥

द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः।
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव।
ततस्ते प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ५६ ॥

परन्तु द्रोणाचार्यने युद्धमें शीघ्रताके सहित पके फल तोडनेकी भांति धृष्टद्युम्नके सारथीका सिर धडसे काटके उसे पृथ्वीमें गिरा दिया। महाराज! इसके अनन्तर महात्मा धृष्टद्युम्नके रथके घोडे सारथीसे रहित होकर उनके रथको लेकर वहांसे भाग चले ॥ ५६ ॥

तेषु प्रद्रवमाणेषु पाञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा।
व्यद्रावयद्रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ५७ ॥

उनके भाग जानेपर महापराक्रमी द्रोणाचार्य पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धाओंको इधर उधर सब ओर तितर बितर करने लगे ॥ ५७ ॥

विजित्य पाण्डुपाञ्चालान्भारद्वाजः प्रतापवान्।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिंदमः।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सहिरे प्रभो ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ ४१६२ ॥

महाप्रतापी शत्रुदमन द्रोणाचार्य इसी प्रकार पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको पराजित करके फिर अपने व्यूहकी रक्षा करते हुए उस व्यूहके दरवाजे पर स्थित हुए। हे प्रभो! तब उन्हें जीतनेमें पाण्डव लोग उत्साहित नहीं हुए ॥ ६८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें अट्ठानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥ ४१६२ ॥

: ९९ :

संजय उवाच

ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत् ।
किरञ्शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! अनन्तर दुःशासन बरसनेवाले बादलके समान सैकडों सहस्रों बाणोंको चलाते हुए सात्यकिकी ओर दौडे ॥ १ ॥

स विद्ध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः ।
नाकम्पयत्स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥

रणभूमिमें मैनाक पर्वतके समान अविचल भावसे स्थित सात्यकिको पहले साठ, फिर सोलह बाणोंसे विद्ध करके भी दुःशासन उन्हें तनिक भी कंपित नहीं कर सके ॥ २ ॥

स तु दुःशासनं वीरः सायकैरावृणोद्भृशम् ।
मशकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ ३ ॥

जैसे मकडी समीप आये हुए मच्छरको अपने जालसे छिपाती है, ठीक उस तरह पराक्रमी वीर सात्यकिने शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे दुःशासनको छिपा दिया ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ।
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ ४ ॥

राजा दुर्योधनने दुःशासनको सात्यकिके सैकडों बाणोंसे आच्छादित हुआ देखकर त्रिगर्त्त-देशीय सेनाको उनके रथ पर आक्रमण करनेके लिये भेज दिया ॥ ४ ॥

तेऽगच्छन्युयुधानस्य समीपं क्रूरकारिणः ।
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः ॥ ५ ॥

कठोर कर्म करनेवाले युद्धविशारद तीन हजार त्रिगर्त्तदेशीय रथियोंने सात्यकिके समीप गमन किया ॥ ५ ॥

ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः ॥ ६ ॥

उन लोगोंने युद्धमें स्थिर–बुद्धि तथा पीछे न हटनेकी आपसमें प्रतिज्ञा करके चारों ओरसे अपने रथोंके समूहसे सात्यकिको घेर लिया ॥ ६ ॥

×

तेषां प्रयततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
योधान्पञ्चशतान्मुख्यानग्रानीके व्यपोथयत् ॥ ७ ॥

वे सम्पूर्ण योद्धा लोग सात्यकिके रथपर अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण कर रहे थे; उसही समयके बीच पराक्रमी सात्यकिने सेनाके अगाडी स्थित मुख्य मुख्य पांच सौ योद्धाओंका वध किया ॥ ७ ॥

तेऽपतन्त हतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ।
महामारुतवेगेन रुग्णा इव महाद्रुमाः ॥ ८ ॥

जैसे महा प्रचण्ड वायुके वेगसे बडे वृक्षोंके समूह टूट टूटकर गिर पडते हैं, वैसे ही वे योद्धा शिनिश्रेष्ठ सात्यकिके बाणोंसे शीघ्रताके सहित मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ८ ॥

रथैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशां पते ।
हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी ॥ ९ ॥
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ॥ १० ॥

पृथ्वीपते ! बहुतेरे छिन्न भिन्न रथ, कटी हुई ध्वजाएं और सुवर्ण भूषित घोडे आदिसे, जो सात्यकिके बाणोंसे क्षत विक्षत होकर रुधिरसे परिपूरित हो गये थे, आच्छादित हुई वह रणभूमि फूले हुए पलाश वृक्षोंके समान शोभित होने लगी ॥ ९–१० ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ ११ ॥

युद्धमें सात्यकिसे मारे जाते हुए तुम्हारी सेनाके योद्धाओंने कीचडमें फंसे हुए हाथियोंके समान किसीको भी अपना रक्षक नहीं पाया ॥ ११ ॥

ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ।
भयात्पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ॥ १२ ॥

जैसे बडे बडे सर्प गरुडके भयसे बिलके भीतर घुस जाते हैं, वैसे ही वे योद्धा द्रोणाचार्यके रथके निकट आके स्थित हुए ॥ १२ ॥

हत्वा पञ्चशतान्योधाञ्शरैराशीविषोपमैः ।
प्रायात्स शनकैर्वीरो धनंजयरथं प्रति ॥ १३ ॥

पराक्रमी सात्यकि विषधारी सर्पके समान भयंकर बाणोंसे पांच सौ योद्धाओंका वध करके अर्जुनके निकट जानेकी अभिलाषासे धीरे धीरे गमन करने लगे ॥ १२ ॥

तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः ॥ १४ ॥

पुरुषसिंह सात्यकि जब इस प्रकारसे आगे बढने लगे तब तुम्हारे पुत्र दुःशासनने शीघ्रताके सहित नौ तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ १४ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ १५ ॥

महाधनुर्धर सात्यकिने भी सुवर्णमय गिद्ध पङ्खवाले पांच तीक्ष्ण सीधे जानेवाले बाणोंसे दुःशासनको विद्ध किया ॥ १५ ॥

सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ।
दुःशासनस्त्रिभिर्विद्‌ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ १६ ॥

भारत ! अनन्तर दुःशासनने हंसते हंसते तीन बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ १६ ॥

शैनेयस्तव पुत्रं तु विद्‌ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
धनुश्चास्य रणे छित्त्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ॥ १७ ॥

अनन्तर सात्यकिने तुम्हारे पुत्र दुःशासनको पांच बाणोंसे विद्ध करके युद्धमें उनके धनुषको काटके गिरा दिया; और फिर हंसते हुए अर्जुनकी ओर गमन करने लगे ॥ १७ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ।
सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ॥ १८ ॥

जब वृष्णिवीर सात्यकि आगे बढने लगे तब दुःशासनने क्रुद्ध होकर उनके वधकी इच्छा करके एक संपूर्ण लोहमयी शक्ति सात्यकिकी ओर चलायी ॥ १८ ॥

तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ।
चिच्छेद शतधा राजन्निशितैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १९ ॥

राजन् ! सात्यकिने तुम्हारे पुत्र दुःशासनकी उस भयङ्कर शक्तिको कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे सौ टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १९ ॥

अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ।
सात्यकिं दशभिर्विद्‌ध्वा सिंहनादं ननाद ह ॥ २० ॥

जनेश्वर ! अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुःशासनने दूसरा धनुष ग्रहण कर सात्यकिको बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया ॥ २० ॥

सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ।
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।
सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैरष्टाभिर्विव्यधे पुनः ॥ २१ ॥

परन्तु सात्यकिने समरमें क्रुद्ध होकर तुम्हारे पुत्रको मोहित करते हुए अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे दुःशासनके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार कर दिया । फिर सात्यकिने लोह मय आठ तीक्ष्ण बाणोंसे दुःशासनको विद्ध किया ॥ २१ ॥

दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ।
सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महावेगैः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २२ ॥

परन्तु दुःशासनने सावधान होकर बीस बाणोंसे सात्यकिको फिर विद्ध किया । महाराज ! इसके अनन्तर महाभाग सात्यकिने दुःशासनके दोनों स्तनोंके बीच तीन नतपर्व बाणोंसे प्रहार किया ॥ २२ ॥

ततोऽस्य वाहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ।
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २३ ॥

अनन्तर महारथी सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके रथके घोडोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारके पृथ्वीमें गिराया, और नतपर्व बाणोंसे सारथिको भी मार डाला ॥ २३ ॥

धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ।
ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित् ।
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २४ ॥

फिर महान् अस्त्रवेत्ता सात्यकिने एक भल्लसे उनका धनुष, पांचसे उनके अंगुलित्राणको और दो भल्लोंसे उनकी ध्वजा और रथशक्तिके टुकडे कर दिये; फिर चोखे बाणोंसे उनके दोनों पृष्ठरक्षकोंका भी वध किया ॥ २४ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः ॥ २५ ॥

धनुष कट जानेपर रथ, घोडे तथा सारथीसे रहित हुए दुःशासनको त्रिगर्त सेनाके सेनापतिने अपने रथपर चढाकर युद्धभूमिसे पृथक् किया ॥ २५ ॥

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत ।
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ॥ २६ ॥

भारत ! शनिपौत्र महाबाहु सात्यकिने क्षणभर तक दुःशासनका पीछा किया; फिर भीमसेनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके उनका वध नहीं किया ॥ २६ ॥

भीमसेनेन हि वधः सुतानां तव भारत ।
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ॥ २७ ॥

भारत ! क्योंकि भीमसेनने युद्धमें तुम्हारे संपूर्ण पुत्रोंके वध करनेके लिये सभाके बीच सबके सामने प्रतिज्ञा की थी ॥ २७ ॥

ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो ।
जगाम त्वरितो राजन्येन यातो धनंजयः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ४१९० ॥

राजन् ! सात्यकि इसी भांति युद्धमें दुःशासनको पराजित करके शीघ्रताके सहित अर्जुन जिस मार्गसे गये थे उस ही मार्गसे आगे बढने लगे ॥ २८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥ ४१९० ॥

: १०० :

धृतराष्ट्र उवाच

किं तस्यां मम सेनायां नासन्केचिन्महारथाः ।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाघ्नन्नाप्यवारयन् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे संजय ! मेरी उस सेनाके बीच क्या ऐसे कोई भी महारथी नहीं थे, जो सात्यकिके उस भांतिसे गमन करनेके समय उनका वध करते तथा उन्हें निवारण कर सकते ? ॥ १ ॥

एको हि समरे कर्म कृतवान्सत्यविक्रमः ।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥

दैत्योंके संगमें इन्द्रने जैसे संग्राम किया था, वैसे इन्द्रके समान बलवान् सत्यपराक्रमी सात्यकिने अकेले ही अपने पराक्रमको प्रकाशित करके कठिन कार्य किया है ॥ २ ॥

अथ वा शून्यमासीत्तद्येन यातः स सात्यकिः ।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रमृद्नन्पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥

अथवा जिस मार्गसे पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि अकेले ही बहुतसी सेनाओंका वध करके आगे बढे थे, क्या उस मार्गमें कोई भी महारथी योद्धा नहीं थे ? ॥ ३ ॥

कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम् ।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

संजय ! अकेले ही सात्यकि युद्ध करनेवाले बहुतसे उन महात्मा योद्धाओंको अतिक्रम करके कैसे आगे बढे ? वह संपूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच

राजन्सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान् ।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ५ ॥

संजय बोले— महाराज तुम्हारी ओर हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेनाके सहित शूरवीर पुरुषोंका महान् समूह एकत्रित हुआ था । तुम्हारे सैनिकोंका समूह प्रलयकालके समान भयंकर दीखता था ॥ ५ ॥

आह्निकेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नास्ति लोके समः कश्चित्समूह इति मे मतिः ॥ ६ ॥

मानद ! तुम्हारी ओर जैसी सेना इकट्ठी हुई है, मैं मानता हूं इस पृथ्वीके बीच उसके समान दूसरा कोई भी सेना समूह कभी भी इकट्ठा नहीं हुआ था ॥ ६ ॥

तत्र देवाः स्म भाषन्ते चारणाश्च समागताः ।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ ७ ॥

वहांपर युद्ध देखनेकी इच्छासे आये हुए देवता और चारणोंने कहा था, पृथ्वीके बीच इस प्रकारसे एक ही स्थानपर इकट्ठी हुई यह सेना इसी स्थलपर देखी गई है, फिर कभी ऐसी सेना इकट्ठी नहीं हो सकेगी । यही अन्तिम सीमा है ॥ ७ ॥

न चैव तादृशः कश्चिद्व्यूह आसीद्विशां पते ।
यादृग्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ८ ॥

हे प्रजानाथ ! जयद्रथ वधके समय द्रोणाचार्यने जैसा व्यूह बनाया था, वैसा दूसरा व्यूह भी कभी देखनेमें नहीं आया था ॥ ८ ॥

चण्डवाताभिपन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
रणेऽभवद्बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ ९ ॥

रणक्षेत्रमें परस्पर धावा करनेवाले उन सम्पूर्ण सेना समूहोंका, अत्यन्त प्रबल वायुसे उथलते हुए समुद्रोंके समान महाभयङ्कर शब्द होने लगा ॥ ९ ॥

पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन्नरोत्तम ।
त्वद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥ १० ॥

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें अनेक देशोंसे आये हुए राजाओंके सैकडों और सहस्रों दल थे ॥ १० ॥

संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्रासीत्सुमहाञ्शब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ११ ॥

वे सब ही प्रमुखवीर युद्धमें दृढ पराक्रमी थे; वे सब ही अत्यन्त क्रुद्ध थे । युद्धके समय उनके महान् और भयङ्कर शब्दको सुनकर सम्पूर्ण पुरुषोंके रोएं खडे होने लगे ॥ ११ ॥

अथाक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १२ ॥

मारिष ! अनन्तर भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर ऊंचे स्वरसे पुकारके अपनी सेनाके पुरुषोंसे कहने लगे ॥ १२ ॥

आगच्छत प्रहरत बलवत्परिधावत।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १३ ॥

हे शूरवीर पुरुषो ! आगे बढो, जोरसे दौडो, कुरुसेनाके योद्धाओंके ऊपर प्रहार करो, कारण वीर सात्यकि और अर्जुन शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश कर चुके हैं ॥ १३ ॥

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयत्।
तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ॥ १४ ॥

वे दोनों जयद्रथ वधके लिये जैसे विना परिश्रम ही शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करके गमन कर सकें, उसी प्रकार तुम लोग शीघ्र वैसेही कार्योंका विधान करो ! इसी तरह उन्होंने सब सैनिकोंको आज्ञा की। उन दोनोंके न होनेपर कौरव लोग कृतकार्य हो जायेंगे और हम पराजित हो जायंगे ॥ १४ ॥

ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम्।
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनाः सागरं यथा ॥ १५ ॥

इससे तुम लोग सब कोई मिलकर शीघ्रताके सहित, जैसे प्रचण्ड वायु समुद्रको उथलित करती है, वैसे ही शत्रुसेनाके पुरुषोंको तितर बितर करके आगे बढो ॥ १५ ॥

भीमसेनेन ते राजन्पाञ्चाल्येन च चोदिताः।
आजघ्नुः कौरवान्संख्ये त्यक्त्वासूनात्मनः प्रियान् ॥ १६ ॥

राजन् ! जब भीमसेन और धृष्टद्युम्नने उनको इस प्रकार प्रेरित किया तब सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अपने प्रिय प्राणोंका मोह छोडकर युद्धमें कौरवोंकी सेनाके योद्धाओंका नाश करने लगे ॥ १६ ॥

इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः।
स्वर्गार्थे मित्रकार्यार्थे नाभ्यरक्षन्त जीवितम् ॥ १७ ॥

स्वर्गकी इच्छा करनेवाले राजा लोग युद्धमें शस्त्रोंसे मृत्युकी इच्छा करते थे; इसलिये उन्होंने मित्रका कार्य यशस्वी करनेके लिये अपने प्राणोंकी रक्षा करना भी नहीं चाहा ॥ १७ ॥

तथैव तावका राजन्प्रार्थयन्तो महद्यशः ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवोपतस्थिरे ॥ १८ ॥

राजन् ! तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भी महान् यशकी इच्छा करके, युद्धमें ही अपनी बुद्धि स्थिर करके पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छासे डटे रहे ॥ १८ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ।
हत्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात्सात्यकिरर्जुनम् ॥ १९ ॥

जब इस प्रकारसे महाभयानक तुमुल संग्राम हो रहा था, तब सात्यकिने सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको पराजित करके अर्जुनके समीप गमन किया ॥ १९ ॥

कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविचित्रिताः ।
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः ॥ २० ॥

सेनाके योद्धाओंके प्रकाशमान कवचोंके ऊपर सूर्य-किरण पडनेसे युद्धमें सब ओर खडे हुए सेनाके पुरुषोंकी नजरें तिरमिरा गईं ॥ २० ॥

तथा प्रयतमानेषु पाण्डवेयेषु निर्भयः ।
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद्बलम् ॥ २१ ॥

महाराज ! जब पाण्डव लोग यत्नवान् होके इस प्रकार युद्ध कर रहे थे, तब दुर्योधनने पाण्डवोंकी महा सेनाके बीच निर्भय चित्तसे प्रवेश किया ॥ २१ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ।
अभवत्सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ २२ ॥

भारत ! पाण्डव योद्धा और दुर्योधनका वह तुमुल युद्ध सब प्राणियोंके लिये महान् नाश करनेवाला होने लगा ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथा गतेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ।
कच्चिद्दुर्योधनः सूत नाकार्षीत्पृष्ठतो रणम् ॥ २३ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले- हे सूत ! इस प्रकारसे युद्धके निमित्त तैयार शत्रुसेनाके बीच दुर्योधनने अकेले ही प्रवेश करके और स्वयं भी संकटमें पडकर भी क्या युद्धभूमिमें पीठ नहीं दिखाई ? ॥ २३ ॥

एकस्य च बहूनां च संनिपातो महाहवे ।
विशेषतो नृपतिना विषमः प्रतिभाति मे ॥ २४ ॥

उस महायुद्धमें अनेक योद्धाओंके साथ एक वीरका विशेषकर राजा दुर्योधनका क्रुद्ध होना मेरे विचारमें उत्तम नहीं बोध होता है ॥ २४ ॥

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ।
एको बहून्समासाद्य कच्चिन्नासीत्पराङ्मुखः ॥ २५ ॥

अत्यन्त सुखी, लक्ष्मीवान् और सम्पूर्ण पृथ्वीका स्वामी दुर्योधन अकेले ही बहुतेरे योद्धाओंके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होकर रणभूमिसे विमुख तो नहीं हुआ ? ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच

राजन्संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ।
एकस्य च बहूनां च शृणुष्व गदतोऽद्भुतम् ॥ २६ ॥

संजय बोले— महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अकेले ही शत्रुओंके बहुतेरे योद्धाओंके संगमें आश्चर्यमय युद्ध किया था, उस अद्भुत वृत्तान्तको मैं वर्णन करता हूं; आप सुनिये ॥ २६ ॥

दुर्योधनेन सहसा पाण्डवी पृतना रणे ।
नलिनी द्विरदेनेव समन्ताद्विप्रलोडिता ॥ २७ ॥

जैसे मतवाला हाथी कमलोंसे युक्त तालाबको मथ डालता है, वैसे ही राजा दुर्योधनने उस रणभूमिमें पाण्डवोंकी सेनाको सहसा मथ डाला ॥ २७ ॥

तथा सेनां कृतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण कौरव ।
भीमसेनपुरोगास्तं पाञ्चालाः समुपाद्रवन् ॥ २८ ॥

हे कौरवश्रेष्ठ ! भीमसेन आदि पाञ्चाल योद्धाओंने दुर्योधनके हाथसे पाण्डव तथा पाञ्चाल सेनाके शूरवीरोंको मथित होते देख उन पर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ।
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ २९ ॥

तब दुर्योधनने भीमसेनको दस, माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवको तीन तीन, राजा विराट और द्रुपदको छः छः, शिखण्डीको सौ ॥ २९ ॥

धृष्टद्युम्नं च विंशत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ।
केकयान्दशभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्नको बीस, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सात, केकय वीरोंको दस दस और द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३० ॥

शतशश्चापरान्योधान्सद्विपांश्च रथान्रणे ।
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ ३१ ॥

फिर समरमें दुर्योधनने अपने भङ्कर बाणोंसे और भी बहुतेरे योद्धाओं, हाथियों और रथोंको काट डाला, जैसे क्रुद्ध हुए यमराज प्रजाओंका नाश करते हैं ॥ ३१ ॥

×

न संदधन्विमुञ्चन्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ।
अदृश्यत रिपून्निघ्नञ्शिक्षयास्त्रबलेन च ॥ ३२ ॥

वह अस्त्र–शस्त्र शिक्षाकी निपुणता और अपने पराक्रमसे इस प्रकार शत्रुसेनाका नाश करने लगे, कि उन्हें धनुष पर बाण रखते अथवा चलाते हुए कोई पुरुष भी देख न सके। उस समय केवल मण्डलाकार गतिसे फिरता हुआ दुर्योधनका धनुष ही दीख पडता था ॥ ३२॥

तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्हेमपृष्ठं महद्धनुः ।
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ॥ ३३ ॥

मारिष ! शत्रुओंका नाश करनेवाले दुर्योधनके सुवर्णभूषित धनुषके पाण्डवज्येष्ठ राजा युधिष्ठिरने दो भल्ल बाणोंसे तीन टुकडे कर दिये ॥ ३३ ॥

विव्याध चैनं बहुभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ।
वर्माण्याशु समासाद्य ते भग्नाः क्षितिमाविशन् ॥ ३४ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने विधिपूर्वक छोडे हुए अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे राजा दुर्योधनको विद्ध किया; परन्तु वे बाण दुर्योधनके मर्म स्थानोंपर तुरंत ही जा लगे और उनको भग्न करके पृथ्वीमें घुस गये ॥ ३४ ॥

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ।
यथा वृत्रवधे देवा मुदा शक्रं महर्षिभिः ॥ ३५ ॥

अनन्तर महर्षि और देवता लोग जैसे पहिले वृत्रासुरके वधके समयमें आनन्दित होकर इन्द्रको घेर कर खडे हुए थे, वैसे ही पाण्डव लोग हर्षित होकर युधिष्ठिरको घेर कर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ ३५ ॥

अथ दुर्योधनो राजा दृढमादाय कार्मुकम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३६ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधनने एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके, खडा रह ! खडा रह ! कहते हुए पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

तं तथा वादिनं राजंस्तव पुत्रं महारथम् ।
प्रत्युद्ययुः प्रमुदिताः पाञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ३७ ॥

विजयकी इच्छा करनेवाले पाञ्चाल योद्धा तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनको वैसा कहकर युधिष्ठिरकी ओर आते देख, हर्षपूर्वक उनके संमुख सामना करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥

तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्युधि पाण्डवम् ।
चण्डवातोद्धुतान्मेघान्सजलानचलो यथा ॥ ३८ ॥

परन्तु पर्वत जैसे प्रचण्ड वायुसे उडाये गये जलधारा बर्षानेवाले मेघोंको ग्रहण करता है, वैसे ही द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें युधिष्ठिरको पकडनेकी अभिलाषासे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको रोक दिया ॥ ३८ ॥

तत्र राजन्महानासीत्संग्रामो भूरिवर्धनः ।
रुद्रस्याक्रीडसंकाशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ४२२९ ॥

महाराज ! तब वहांपर पाण्डवोंकी सेनाके सहित तुम्हारी ओरके योद्धाओंका रुद्रकी क्रीडाभूमि– स्मशानभूमिके समान सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाला महाभयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ ३९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें सौवां अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥ ४२२९ ॥

: १०१ :

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अपराह्ण समयमें बादलके गर्जन समान शब्दसे युक्त फिर सोमकोंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ १ ॥

शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत्पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥

नरवीर द्रोणाचार्यने सावधानीके सहित लालवर्णवाले घोडोंसे युक्त अपने रथ पर चढके मध्यम वेगके सहित समरमें पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसंभवः ॥ ३ ॥

तुम्हारे प्रिय और हितके कार्यमें रत हुए महाधनुर्धारी महाबलवान् उत्तम कलशजन्मा द्रोणाचार्य विचित्र पंखयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे योद्धाओंका नाश करने लगे ॥ ३ ॥

वरान्वरानिह योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
अक्रीडत रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४ ॥

भारत ! प्रतापी द्रोणाचार्य युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाके बीचसे मुख्य मुख्य योद्धाओंको चुन चुनकर काटते हुए, रणभूमिमें क्रीडा करने लगे ॥ ४ ॥

तमभ्ययाद्बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां वीरपञ्चानां ज्येष्ठः समरकर्कशः ॥ ५ ॥

पांचों भाइयोंके बीच बडे भाई रणकर्कश केकय महारथी बृहत्क्षत्रने द्रोणाचार्यके समीप युद्ध करनेके लिये गमन किया ॥ ५ ॥

विमुञ्चन्विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं छादयन्भृशम् ।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन्गन्धमादने ॥ ६ ॥

जैसे गन्धमादनपर्वत पर बडे बादल जलकी वर्षा करते हैं, उस ही प्रकारसे वह अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको अच्छादित करने लगे ॥ ६ ॥

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्दश सप्त च ॥ ७ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए स्वर्ण पुङ्खवाले तेज सत्रह बाण बृहत्क्षत्रकी ओर चलाये ॥ ७ ॥

तांस्तु द्रोणधनुर्मुक्तान्घोरानाशीविषोपमान् ।
एकैकं दशभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥

बृहत्क्षत्रने हर्षित होकर द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए क्रुद्ध हुए विषैले सर्पोंके समान उन बाणोंमेंसे प्रत्येकको युद्धमें अपने दस दस बाणोंसे काट दिया ॥ ८ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा प्रहसन्द्विजसत्तमः ।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ संनतपर्वणः ॥ ९ ॥

द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्रका हस्तलाघव देख, फिर हंसकर आठ नतपर्व बाण उनकी ओर चलाये ॥ ९ ॥

तान्दृष्ट्वा पततः शीघ्रं द्रोणचापच्युताञ्शरान् ।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्दृढैः ॥ १० ॥

बृहत्क्षत्रने द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको शीघ्रही अपनी ओर आते देख, उतनेही तीक्ष्ण दृढ बाणोंसे उन बाणोंका निवारण किया ॥ १० ॥

ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
बृहत्क्षत्रेण तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११ ॥

महाराज ! बृहत्क्षत्रको ऐसा कठिन कर्म करते देख तुम्हारी ओरके योद्धाओंके चित्तमें विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

ततो द्रोणो महाराज केकयं वै विशेषयन् ।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं महातपाः ॥ १२ ॥

तब महातपस्वी द्रोणाचार्यने युद्धमें केकयराजसे अधिक पराक्रम प्रकाशित करनेकी इच्छासे दिव्य ब्राह्म अस्त्र प्रकट किया ॥ १२ ॥

तदस्य राजन्कैकेयः प्रत्यवारयदच्युतः ।
ब्राह्मेणैव महाबाहुराहवे समुदीरितम् ॥ १३ ॥

महाराज ! महाबाहु अच्युत केकयराज बृहत्क्षत्रने द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्राह्म अस्त्रको ब्रह्मास्त्रसेही निवारण किया ॥ १३ ॥

प्रतिहन्य तदस्त्रं तु भारद्वाजस्य संयुगे ।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १४ ॥

उन्होंने युद्धमें द्रोणाचार्यके ब्रह्मास्त्रका निवारण करके, फिर शिलापर घिसे हुए सुवर्ण पंख-युक्त साठ तीक्ष्ण बाणोंसे ब्राह्मणश्रेठको विद्ध किया ॥ १४ ॥

तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समर्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम् ॥ १५ ॥

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्रकी ओर एक तीक्ष्ण नाराच बाण चलाया; वह बाण बृहत्क्षत्रके कवचको काटके पृथ्वीमें घुस गया ॥ १५ ॥

कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।
तथाभ्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥

जैसे काला सांप बिलमें प्रवेश करता है, वैसेही वह बाण युद्धमें केकयराज बृहत्क्षत्रके शरीरको भेदकर पृथ्वीमें घुस गया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज द्रोणेनास्त्रविदा भृशम् ।
क्रोधेन महताविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥ १७ ॥

महाराज ! केकयराज अस्त्र विद्या जाननेवाले द्रोणाचार्यके बाणसे अत्यन्त विद्ध होकर महाक्रुद्ध हुए और क्रोधसे अपने दोनों सुंदर नेत्र लाल करके देखने लगे ॥ १७ ॥

द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ १८ ॥

फिर उन्होंने शिलापर घिसे हुए स्वर्ण पंखवाले सत्तर बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया, फिर भल्लसे द्रोणाचार्यके सारथीकी भुजा और छातीमें प्रहार किया ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु बहुधा विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
अस्रजद्विशिखांस्तीक्ष्णान्केकयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥

मारिष ! द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्रके बाणोंसे अत्यंत विद्ध होके अत्यन्त चोखे बाणोंकी बृहत्क्षत्रके रथपर वर्षा शुरू कर दी ॥ १९ ॥

व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।
व्यसृजत्सायकं तीक्ष्णं केकयं प्रति भारत ॥ २० ॥

भारत ! द्रोणाचार्यने महारथी बृहत्क्षत्रको व्याकुल करके फिर केकय राजपर अपने तीक्ष्ण सायकोंकी वर्षा की ॥ २० ॥

स गाढविद्धस्तेनाशु महाराज स्तनान्तरे ।
रथात्पुरुषशार्दूलः संभिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २१ ॥

महाराज ! दोनों स्तनोंके बीच अत्यन्त विद्ध हो जानेके कारण, पुरुषसिंह बृहत्क्षेत्र वक्षः-स्थल विदीर्ण होकर रथसे नीचे गिर पडे ॥ २१ ॥

बृहत्क्षत्रे हते राजन्केकयानां महारथे ।
शैशुपालिः सुसंक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र ! केकय महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर शिशुपालपुत्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने सारथीसे बोले ॥ २२ ॥

सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।
विनिघ्नन्केकयान्सर्वान्पाञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ २३ ॥

हे सारथी ! जहांपर ये द्रोणाचार्य कवच धारण करके सब पाञ्चाल और केकयदेशीय योद्धाओंका वध कर रहे हैं; तुम उस ही स्थानमें मेरे रथको ले चलो ॥ २३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् ।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २४ ॥

सारथी उनका बचन सुन काम्बोज देशीय वेगशील घोडोंसे रथियोंमें श्रेष्ठ उनको द्रोणाचार्यके समीप ले गया ॥ २४ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
सहसा प्रापतद्द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २५ ॥

महाबलवान् चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्यकी ओर सहसा इस प्रकार दौडे जैसे पतंग अग्निकी ओर दौडता है ॥ २५ ॥

सोऽभ्यविध्यत्ततो द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम् ।
पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २६ ॥
अनन्तर उन्होंने साठ बाणोंसे द्रोणाचार्यको घोडे, ध्वजा और रथके सहित विद्ध किया, तथा निद्रित व्याघ्रको पीडित करते हुएसे धृष्टकेतुने फिर द्रोणाचार्यको अन्य तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २६ ॥

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन ह ।
चिच्छेद राज्ञो बलिनो यतमानस्य संयुगे ॥ २७ ॥
तब द्रोणाचार्यने तीक्ष्ण क्षुरप्रसे प्रयत्नशील बलवान् राजा धृष्टकेतुके धनुषको बीचसे युद्धमें काट दिया ॥ २७ ॥

अथान्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं पुनः सुनिशितैर्दृढैः ॥ २८ ॥
महारथी शिशुपाल पुत्रने दूसरा धनुष ग्रहण करके द्रोणाचार्यको फिर अपने दृढ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २८ ॥

तस्य द्रोणो हयान्हत्वा सारथिं च महाबलः ।
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २९ ॥
तब महाबलवान् द्रोणाचार्यने उनके घोडोंको मारकर, सारथिको भी मार डाला और पचीस बाण धृष्टकेतुकी ओर चलाये ॥ २९ ॥

विरथो विधनुष्कश्च चेदिराजोऽपि संयुगे ।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धो भारद्वाजरथं प्रति ॥ ३० ॥
चेदिराज धृष्टकेतु युद्धमें धनुष और रथसे रहित हो गये; तो भी उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक गदा ग्रहण करके उसे द्रोणाचार्यके रथकी ओर चलायी ॥ ३० ॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां भयावहाम् ।
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजो न्यपातयत् ॥ ३१ ॥
भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यने उस सुवर्णभूषित, भयावह, भारी, लोहेकी महाघोर गदाको सहसा संमुख आती देख अनेक सहस्र तीक्ष्ण बाणोंसे काटके उसे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३१ ॥

सा पपात गदा भूमौ भारद्वाजेन सादिता ।
रक्त माल्याम्बरधरा तारेव नभसस्तलात् ॥ ३२ ॥
भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यने छिन्न भिन्न की हुई वह गदा भूमिपर इस तरह गिर पडी, जैसे आकाशमेंसे लाल माला धारण किया हुआ तारा टूटकर नीचे गिरता है ॥ ३२ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः।
तोमरं न्यसृजत्तूर्णं शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥ ३३ ॥
अपनी गदाको नष्ट हुई देख क्रोधित धृष्टकेतुने तोमर और सुवर्णभूषित प्रकाशमान शक्तिको शीघ्र ही द्रोणाचार्यकी ओर चलाया ॥ ३३ ॥

तोमरं तु त्रिभिर्बाणैर्द्रोणश्छित्त्वा महामृधे
शक्तिं चिच्छेद सहसा कृतहस्तो महाबलः ॥ ३४ ॥
परंतु महायुद्धमें सिद्धहस्त महाबलवान् द्रोणाचार्यने तीन बाणोंसे तोमरको छिन्नभिन्न करके, सहसा शक्तिके भी टुकडे कर दिये ॥ ३४ ॥

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधार्थं वधकाङ्क्षिणः।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३५ ॥
अनन्तर प्रतापी द्रोणाचार्यने युद्धमें मारनेके लिये आये हुए चेदिराज धृष्टकेतुके वधकी इच्छा करके एक तीक्ष्ण बाण उनकी ओर चलाया ॥ ३५ ॥

स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः।
अभ्यगाद्धरणीं बाणो हंसः पद्मसरो यथा ॥ ३६ ॥
वह बाण अत्यन्त तेजस्वी धृष्टकेतुके कवच और हृदयको भेदकर जैसे पद्मवनमें हंस प्रवेश करता है, वैसे पृथ्वीमें समा गया ॥ ३६ ॥

पतंगं हि ग्रसेच्चाषो यथा राजन्बुभुक्षितः।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महामृधे ॥ ३७ ॥
जैसे भूखा हुआ चाप पक्षी कीट पतंगोंको ग्रास करता है, वैसे ही शूर द्रोणाचार्यने उस महाघोर युद्धमें धृष्टकेतुका वध किया ॥ ३७ ॥

निहते चेदिराजे तु तत्खण्डं पित्र्यमाविशत्।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ३८ ॥
चेदिराज धृष्टकेतुका पुत्र अस्त्रविद्यामें अत्यन्त निपुण था, वह अपने पिताके मारे जानेपर उनकी सेनाके विभागका अधिपति बन गया और क्रोधके वशवर्ती होकर द्रोणाचार्यसे युद्ध करने लगा ॥ ३८ ॥

तमपि प्रहसन्द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ३९ ॥
द्रोणाचार्यने हंसते हंसते अपने बाणोंसे इस प्रकार उसका वध करके उसे यमपुरीमें भेज दिया, जैसे बलवान् महाव्याघ्र बडे अरण्यमें हरिणके बच्चेको मारता है ॥ ३९ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
जरासंधसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४० ॥

हे भरतर्षभ ! जब पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका इस प्रकार नाश होने लगा, तब जरासन्धके वीर पुत्रने स्वयं ही द्रोणाचार्य पर धावा किया ॥ ४० ॥

स तु द्रोणं महाराज छादयन्सायकैः शितैः ।
अदृश्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४१ ॥

महाराज ! जैसे बादल सूर्यको छिपा देता है, वैसे ही उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे शीघ्र ही द्रोणाचार्यको छिपा दिया ॥ ४१ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४२ ॥

उसके वैसे हस्तलाघवको देख क्षत्रियोंके नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने शीघ्र ही उसके ऊपर सैकडों और सहस्रों बाणोंकी वर्षा की ॥ ४२ ॥

छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासंधिमथो जघ्ने मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार युद्धमें सब धनुर्द्धारियोंके देखते देखते द्रोणाचार्यने रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ जरासन्धपुत्रको अपने बाणोंसे छिपाकर उसका वध किया ॥ ४३ ॥

यो यः स्म लीयते द्रोणं तं तं द्रोणोऽन्तकोपमः ।
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथान्तकः ॥ ४४ ॥

जो जो पुरुष उस समय कालके समान द्रोणाचार्यके संमुख उपस्थित हुए, उनको उन्होंने नष्ट कर दिया, जैसे काल आनेपर यमराज सब प्राणियोंको ग्रस कर लेता है ॥ ४४ ॥

ततो द्रोणो महेष्वासो नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान्व्यमोहयत् ॥ ४५ ॥

अनन्तर महाधनुर्धर द्रोणाचार्य रणभूमिके बीच अपना नाम सुनाकर अनेक सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके पाण्डवोंको मोहित करने लगे ॥ ४५ ॥

ततो द्रोणाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
नरान्नागान्हयांश्चैव निजघ्नुः सर्वतो रणे ॥ ४६ ॥

स्वर्णपङ्खवाले शिलापर घिसे हुए द्रोण नामसे अङ्कित अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उस समय द्रोणाचार्यने युद्धमें घोडे, हाथी और मनुष्योंका सब ओर संहार कर डाला ॥ ४६ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पाञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४७ ॥

जैसे महाबलवान् असुर इन्द्रके अस्त्रोंसे पीडित होकर कम्पित होते हैं, और शीतसे जकडी हुई गौएं ठिठुरके कांपने लगती हैं, उसी प्रकार पाञ्चाल योद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे विद्ध होकर कांप उठे ॥ ४७ ॥

ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ४८ ॥

हे भारत ! उस समय पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर महाघोर आर्त्तनाद करने लगी ॥ ४८ ॥

मोहिताः शरवर्षेण भारद्वाजस्य संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीता हि पाञ्चालानां महारथाः ॥ ४९ ॥

युद्धमें वे पाञ्चाल महारथी योद्धा भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके बाणोंसे मोहित हो गये; पाण्डवोंके महारथ योद्धाओंके पांव मानों मकरोंसे पकडे जानेके समान उनको आगे बढनेसे रोकने लगे ॥ ४९ ॥

चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः सोमकास्तथा ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५० ॥

महाराज ! इसके बाद चेदी, सृञ्जय और सोमक योद्धा लोग हर्षित होकर युद्धकी इच्छासे द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ५० ॥

हत द्रोणं हत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ।
यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषन्तो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५१ ॥

' द्रोणाचार्यका वध करो, द्रोणाचार्यको मारो ! ' ऐसे ही वचन कहते हुए उन्होंने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया । वे पुरुषश्रेष्ठ योद्धा लोग महातेजस्वी द्रोणाचार्यको यमलोकमें भेजनेकी इच्छासे अपनी सारी शक्तिसे यत्नवान होकर युद्ध करने लगे ॥ ५१ ॥

यतमानांस्तु तान्वीरान्भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान्विशेषतः ॥ ५२ ॥

परन्तु भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उन यत्नवान् योद्धाओंमें विशेष करके चेदीदेशीय सेनाके मुख्य मुख्य शूरवीरोंका वध करके यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ५२ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु भारत ।
पाञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५३ ॥
भारत ! जब चेदी देशीय सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंका नाश होने लगा, तब पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर कांपने लगे ॥ ५३ ॥

प्राक्रोशन्भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५४ ॥
वे सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्यके ऐसे कठिन कर्मको देखकर धृष्टद्युम्नके रथके पास स्थित भीमसेनको पुकारने लगे ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि विक्रान्तो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५५ ॥
और परस्पर कहने लगे— इस ब्राह्मणने अवश्यही अत्यन्त कठिन तप किया है, उसही तपके प्रभावसे पराक्रमपूर्वक ये श्रेष्ठ क्षत्रिय योद्धाओंको भस्म कर रहे हैं ॥ ५५ ॥

धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् ॥ ५६ ॥
क्षत्रियोंका धर्म युद्ध करना है और ब्राह्मणोंका श्रेष्ठ धर्म तपस्या है । यह अस्त्रविद्याका ज्ञाता और तपस्वी ब्राह्मण अपनी दृष्टिसेही भस्म कर सकते हैं ॥ ५६ ॥

द्रोणास्त्रमग्निसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ५७ ॥
उसही कारणसे बहुतेरे मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धा अग्निके समान स्पर्श करनेवाले दुस्तर द्रोणाचार्यके महाघोर तीक्ष्ण अस्त्रोंसे पीडित होकर भस्म हो रहे हैं ॥ ५७ ॥

यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन्सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ५८ ॥
महातेजस्वी द्रोणाचार्य अपने बल, पराक्रम, उत्साह और सामर्थ्यके अनुसार सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करके हमारी सेनाके समस्त योद्धाओंका वध कर रहे हैं ॥ ५८ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद द्रोणस्य सशरं धनुः ॥ ५९ ॥
महाबली क्षत्रधर्मा उन योद्धाओंके ऐसे वचनको सुनकर युद्धके लिये द्रोणाचार्यके सामने उपस्थित हुआ; और उसने अर्धचन्द्राकार बाणसे द्रोणके धनुषको बाणके सहित काट दिया ॥ ५९ ॥

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ॥ ६० ॥
अनन्तर क्षत्रियोंका नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने अत्यंत क्रुद्ध होकर महावेगशील प्रकाशमान दृढ दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ ६० ॥

तत्राधाय शरं तीक्ष्णं भारघ्नं विमलं दृढम् ।
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ॥ ६१ ॥
और उस पर एक शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ विमल दृढ बाणको रखके, बलवान् आचार्यने कानतक धनुषको खींचकर क्षत्रधर्माकी ओर चलाया ॥ ६१ ॥

स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ।
स भिन्नहृदयो वाहादपतन्मेदिनीतले ॥ ६२ ॥
वह बाण क्षत्रधर्माका वध करके पृथ्वीमें गिरा । क्षत्रधर्मा हृदय विदीर्ण होकर अपने रथके उपरसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ६२ ॥

ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ।
अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महारथः ॥ ६३ ॥
इस प्रकार धृष्टद्युम्न पुत्रके मारे जानेपर सब सेनाएं भयसे कांपने लगीं । अनन्तर महारथी चेकितानने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ६३ ॥

स द्रोणं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
चतुर्भिः सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ६४ ॥
उन्होंने अपने दस बाणोंसे द्रोणके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार किया, और उनके सारथिको चार बाणोंसे विद्ध कर, फिर उनके रथके चारों घोडोंको चार बाणोंसे विद्ध किया ॥६४॥

तस्याचार्यः षोडशभिरविध्यद्दक्षिणं भुजम् ।
ध्वजं षोडशभिर्बाणैर्यन्तारं चास्य सप्तभिः ॥ ६५ ॥
तब द्रोणाचार्यने सोलह बाणोंसे चेकितानकी दाहिनी भुजामें प्रहार करके, सोलह बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा काट दी; और सात बाणोंसे उनके सारथीका वध किया ॥ ६५ ॥

तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ।
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ॥ ६६ ॥
उनके सारथीके मारे जानेपर वे घोडे उनके रथको लेकर दौडते हुए दूसरी ओर भाग गये । मारिष ! युद्धमें भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे उनके शरीरोंको परिपूर्ण किया था ॥ ६६ ॥

चेकितानरथं दृष्ट्वा विद्रुतं हतसारथिम् ।
पाञ्चालान्पाण्डवांश्चैव महद्भयमथाविशत् ॥ ६७ ॥

चेकितानके रथको सारथीसे रहित भागते हुए देख, वहांपर इकट्ठे हुए पांचाल और पाण्डवोंके मनमें महान् भय उत्पन्न हुआ ॥ ६७ ॥

तान्समेतान्रणे शूरांश्चेदिपाञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद्द्रावयन्द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ६८ ॥

मारिष ! रणभूमिमें एकत्रित हुए चेदी, पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धाओंको चारों ओर तितर बितर करके द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ ६८ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिकात्परः ।
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ६९ ॥

जिनके कानतकके बाल पक गये थे, श्याम वर्ण और अस्सी वर्षकी अवस्था पार किये हुए वृद्ध द्रोणाचार्य उस समय सोलह वर्षवाले युवा पुरुषकी भांति युद्धभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ ६९ ॥

अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७० ॥

महाराज ! उस समय शत्रुनाशन द्रोणाचार्यको शत्रुओंको नाश करते हुए युद्धभूमिमें निर्भय चित्तसे घूमते देख शत्रु सेनाके योद्धा लोग उन्हें वज्रधारी इन्द्रके समान बोध करने लगे ॥ ७० ॥

ततोऽब्रवीन्महाराज द्रुपदो बुद्धिमान्नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान्हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७१ ॥

उस समय बुद्धिमान् महाबाहु राजा द्रुपद कहने लगे, जैसे बाघ छोटे मृगको मारता है, वैसेही यह लुब्ध ब्राह्मण मुख्य मुख्य क्षत्रियोंका युद्धभूमिमें वध कर रहा है ॥ ७१ ॥

कृच्छ्रान्दुर्योधनो लोकान्पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद्विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७२ ॥

नीच बुद्धिवाले पापी दुर्योधन अत्यन्त कष्टजनक लोकोंमें जायगा; कारण उसके लोभहीके कारण अनेक क्षत्रिय श्रेष्ठ पुरुषोंका समरमें वध हो गया ॥ ७२ ॥

शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वसृगालादनीकृताः ॥ ७३ ॥

सैकडों योद्धा कटकर गाय बैलोंके समान पृथ्वी पर सो रहे हैं; वे सब रुधिर लिपटे हुए शरीरसे युक्त हो कुत्तों और सियारोंके भक्ष्य हो गये हैं ॥ ७३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान्द्रोणमभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ४३०३ ॥

महाराज ! ऐसा कहके एक अक्षौहिणी सेनाके नायक राजा द्रुपदने युद्धमें शीघ्रताके सहित पाण्डवोंको आगे करके द्रोणाचार्यके निकट युद्ध करनेके लिये गमन किया ॥ ७४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ एकवां अध्याय समाप्त ॥ १०१ ॥ ४३०३ ॥

: १०२ :

सञ्जय उवाच

व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पाञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥

संजय बोले— हे भारत ! जब पाण्डवोंकी सेनाओंके व्यूह इसी प्रकार चारों ओरसे तितर बितर होने लगे, तब सोमकोंके सहित पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके समीपसे बहुत दूर हट गये ॥ १ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
प्रक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २ ॥

वह प्रलयकालके समय होनेवाले जगत्के भयंकर विनाशके समान रोमांचकारी महाघोर संग्राम हो रहा था ॥ २ ॥

द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पाञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥

युद्धमें द्रोणाचार्य विक्रम करके बार बार सिंहनाद कर रहे थे; और उनके बाणोंसे पाञ्चाल योद्धाओंका नाश और पाण्डव सैनिकोंका वध हो रहा था ॥ ३ ॥

नापश्यच्छरणं किंचिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! उस समय धर्मराज युधिष्ठिर किसीको भी अपना परित्राण करनेवाला और रक्षक न देख कर चिन्ता करने लगे " इस समय अब क्या होगा ? " ॥ ४ ॥

तत्रावेक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥ ५ ॥

अनन्तर युधिष्ठिर सव्यसाची अर्जुनको देखनेकी इच्छासे चारों ओर दृष्टि करके, अर्जुन और सात्यकि किसीको भी न देख सके ॥ ५ ॥

सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमश्रृण्वन्व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमानके चिन्हवाली ध्वजासे युक्त पुरुषसिंह अर्जुनको न देख, और उनके गाण्डीव धनुषके शब्दको न सुन कर राजा युधिष्ठिर दुःखित हुए ॥ ६ ॥

अपश्यन्सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
चिन्तयाभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नाध्यगच्छत्तदा शान्तिं तावपश्यन्नरर्षभौ ॥ ७ ॥

और वृष्णिवंशीय श्रेष्ठ महारथी सात्यकिको भी न देखकर धर्मराज राजा युधिष्ठिर अत्यन्त ही व्याकुल हो गये। पुरुषसिंह अर्जुन और सात्यकिकी उपस्थिति न देखकर किसी प्रकार भी वह धीरज न धर सके, उनको शान्ति नहीं मिली ॥ ७ ॥

लोकोपक्रोशभीरुत्वाद्धर्मराजो महायशाः ।
अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ८ ॥

विशेष करके लोकनिन्दाके भयसे महायशस्वी धर्मराज बहुत डरते थे। महाबाहु युधिष्ठिर सात्यकिके रथके लिये चिन्ता करने लगे ॥ ८ ॥

पदवीं प्रेषितश्चैव फल्गुनस्य मया रणे ।
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयंकरः ॥ ९ ॥

मैंने इस तुमुल युद्धमें मित्रोंको अभय देनेवाले सत्यप्रिय सात्यकिको अर्जुनके मार्गपर जानेके लिये भेजा है ॥ ९ ॥

तदिदं ह्येकमेवासीद्द्विधा जातं ममाद्य वै ।
सात्यकिश्च हि मे ज्ञेयः पाण्डवश्च धनंजयः ॥ १० ॥

इससे पहिले मेरा मन अकेले अर्जुनहीके लिये व्याकुल था, अब इस समयमें दोनोंके लिये मेरा मन अत्यंत ही व्याकुल हो रहा है। अब सात्यकिका और धनंजयका भी पता लगाना चाहिये ॥ १० ॥

सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ।
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् ॥ ११ ॥

मैंने सात्यकिको अर्जुनके पीछे भेज दिया था, अब सात्यकिके पीछे किसको युद्धमें भेजूंगा? ॥ ११ ॥

करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ।
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ॥ १२ ॥

यदि मैं सात्यकिकी खोज न करके प्रयत्नपूर्वक अपने भाई अर्जुनकी ही खोज करूंगा तो सब कोई मेरी निन्दा करेंगे ॥ १२ ॥

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ १३ ॥

सब कहेंगे कि ' धर्मराज युधिष्ठिरने वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी वीर सात्यकिकी उपेक्षा करके अपने भाईकी खोज की ' ॥ १३ ॥

लोकापवादभीरुत्वात्सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ।
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

इस लोकापवादके भयसे महात्मा सात्यकिकी खोजके लिये मैं अपने भाई भीमसेनको भेजूंगा ॥ १४ ॥

यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ।
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ॥ १५ ॥

शत्रुनाशन अर्जुनके ऊपर मेरा जैसा प्रेम है, यदुकुलभूषण पुरुषसिंह रणदुर्मद सात्यकिके ऊपर भी मेरा वैसाही प्रेम और प्रीति है ॥ १५ ॥

अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ।
स तु मित्रोपरोधेन गौरवाच्च महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १६ ॥

शिनिपौत्र सात्यकिके ऊपर मैंने बहुत बडे भारको अर्पित किया है; उन महाबलवान् पराक्रमी सात्यकिने मित्रकी सहायता और मेरी गौरव रक्षाके लिये इस प्रकारसे भारती सेनाके बीच प्रवेश किया है, जैसे मकर घडियाल समुद्रके बीच प्रवेश करता है ॥ १६ ॥

असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् पराक्रमी सात्यकिके सङ्ग युद्धभूमिमें परस्पर संग्राम करनेवाले तथा युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर पुरुषोंका शब्द सुनाई दे रहा है ॥ १७ ॥

प्राप्तकालं सुबलवांन्निश्चित्य बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ।
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ॥ १८ ॥

अब जो कर्तव्य करना उचित है, उसपर मैंने अनेक भांतिसे विचार कर लिया है, इस सङ्कटमें जिस स्थानपर वे दो महारथी गये हैं, उस ही स्थानपर धनुर्धर वीर भ्राता भीमसेनका गमन करना ही उचित बोध होता है ॥ १८ ॥

न चाप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन ।
शक्तो ह्येष रणे यत्तान्पृथिव्यां सर्वधन्विनः ।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ १९ ॥

पृथ्वीके बीच भीमसेनसे कोई कार्य असाध्य नहीं है । वह अपने बाहुबलके आसरेसे युद्धमें यत्नवान् होकर पृथ्वीके सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके व्यूहके विरुद्ध अकेले ही शत्रुसेनाके सङ्ग युद्ध कर सकते हैं ॥ १९ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २० ॥

इसी महात्माके बाहुबलके आसरे हम लोग वनवासके सम्पूर्ण दुःखोंसे पार हुए हैं; और किसीके सङ्ग कभी युद्धोंमें पराजित नहीं हुए हैं ॥ २० ॥

इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।
सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफल्गुनौ ॥ २१ ॥

जब मेरे भाई भीमसेन यहांसे गमन करके सात्यकिके समीप उपस्थित हो जायंगे, तब युद्धमें सात्यकि और अर्जुन सनाथ हो जायेंगे ॥ २१ ॥

कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफल्गुनौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं चास्त्रविशारदौ ॥ २२ ॥

समरमें अर्जुन और सात्यकि चिन्ताके विषय नहीं हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण उनकी रक्षा कर रहे हैं, और वे दोनों स्वयं भी सब अस्त्रशस्त्रोंकी विद्याके जाननेवाले हैं ॥ २२ ॥

अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ।
ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ॥ २३ ॥

परंतु मेरे चित्तमें जो चिन्ता उपस्थित हुई है, उसे निवारण करनेके लिये अवश्य ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। इससे मैं भीमसेनको सात्यकिके मार्गका अनुगामी नियुक्त करूंगा; ऐसा करके ही सात्यकिके लिये यथा उचित कार्यका विधान किया है, ऐसा मैं मानूंगा ॥ २३ ॥

×

एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यन्तारमब्रवीद्राजन्भीमं प्रति नयस्व माम् ॥ २४ ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने मनही मन ऐसा निश्चय करके सारथीसे बोले, हे सारथी ! तुम मुझे भीमसेनके समीप ले चलो ॥ २४ ॥

धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ।
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ॥ २५ ॥

घोडोंके चलानेमें निपुण सारथी धर्मपुत्र युधिष्ठिरके वचनको सुनकर उनके सुवर्णभूषित रथको भीमसेनके पास ले गया ॥ २५ ॥

भीमसेनमनुप्राप्य प्राप्तकालमनुस्मरन् ।
कश्मलं प्राविशद्राजा बहु तत्र समादिशन् ॥ २६ ॥

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर भीमसेनके समीप पहुंच कर, उस समयके उपस्थित विषयको—कार्यको फिर स्मरण करके वहां बहुत कुछ कहते हुए वे मूर्च्छितसे हो गये ॥ २६ ॥

यः सदेवान्सगन्धर्वान्दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते ॥ २७ ॥

हे भीमसेन ! जिन्होंने केवल रथकी सहायतासे अकेले ही देवताओं सहित गन्धर्व और असुरोंको पराजित किया है, मैं तुम्हारे उन ही छोटे भ्राता अर्जुनका कुछ संवाद नहीं पाता हूं ॥ २७ ॥

ततोऽब्रवीद्धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ।
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ॥ २८ ॥

अनन्तर भीमसेन धर्मराज युधिष्ठिरको इस प्रकार मोहित देखकर उनसे यह वचन बोले, हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ऐसी कातरता मैंने पहिले न कभी देखी थी और न सुनी ही थी ॥ २८ ॥

पुरा हि दुःखदीर्णानां भवान्गतिरभूद्धि नः ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते ॥ २९ ॥

पहिले जब हम लोग अत्यन्त दुःखित होते थे, तब तुम ही हम लोगोंके दुःखको दूर करके धीरज धारण कराते थे । राजेन्द्र ! आप उठिये ! सावधान होईये; मुझे आज्ञा दीजिये, मैं तुम्हारे निमित्त कौनसा कार्य करूं ? ॥ २९ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ।
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ३० ॥

हे मानद महाराज ! मुझसे कोई कार्य भी असाध्य और अकार्य नहीं है । हे कुरुश्रेष्ठ ! आप अपने चित्तसे शोक दूर कीजिये; कहिये मुझे कौनसा कार्य करना होगा ? ॥ ३० ॥

तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ।
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ॥ ३१ ॥

राजा युधिष्ठिर आंखोंमें आंसू भरके अत्यन्त दुःखित होकर काले सांपके समान लम्बी सांस छोडते हुए भीमसेनसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ३१ ॥

यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ।
प्रेरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनंजयः ॥ ३२ ॥

हे भीमसेन ! यशस्वी श्रीकृष्णके पाञ्चजन्य शंखका शब्द इस समय जिस प्रकारसे सुन पडता है, इससे बोध होता है, वह क्रुद्ध होकर अत्यन्त बलपूर्वक अपने शंखको बजा रहे हैं । मुझे बोध होता है, तुम्हारे भाई अर्जुन अवश्य ही मारे जाकर युद्धभूमिमें सो रहे हैं ॥ ३२ ॥

तस्मिन्विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यमुपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३३ ॥

उनके मारे जानेसे श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध कर रहे हैं, जिस महातेजस्वी पुरुषसिंह वीरके बल, पराक्रमका आसरा करके हम सब पाण्डव लोग जीवित हैं ॥ ३३ ॥

यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद्भारतीं चमूम् ॥ ३४ ॥

जैसे कोई भय उपस्थित होनेसे देवता लोग देवराज इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, वैसे ही कुछ बिपद उपस्थित होने पर पाण्डव लोग उनकी शरण चाहते हैं, उन पराक्रमी अर्जुनने सिन्धु-राज जयद्रथके बधकी अभिलाष करके भारती सेनाके बीच प्रवेश किया है ॥ ३४ ॥

तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महाभुजः ॥ ३५ ॥

भीम ! हमें उनके जानेका ही पता है, फिर वापस लौटनेका नहीं । अर्जुन श्यामवर्ण, युवा, जितेन्द्रिय, देखनेमें सुंदर और महाबाहु हैं ॥ ३५ ॥

व्यूढोरस्को महास्कन्धो मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्राक्षो द्विषतामघवर्धनः ॥ ३६ ॥

वे विशाल वक्षस्थलसे युक्त, मोटे कंधोंवाले, मतवाले हाथीके समान पराक्रमी, चकोरलोचन, लाल नेत्रोंवाले और शत्रुओंको पीडित करनेवाले हैं ॥ ३६ ॥

तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिंदम ।
अर्जुनार्थं महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ३७ ॥

हे शत्रुदमन महाबाहु ! तुम्हारा कल्याण हो ! यही मेरे शोकका मुख्य कारण है । अर्जुन और सात्यकिके कारण ही मैं दुःखित हूं ॥ ३७ ॥

वर्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ॥ ३८ ॥

अर्जुन और सात्यकिके लिये मेरी शोकाग्नि मानो बारंबार घृतके पडनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ रही है। उस अर्जुनके रथचिन्हको न देखकर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं ॥ ३८॥

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ।
तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ॥ ३९ ॥

पुरुषसिंह महारथी सात्यकिका भी तुम पता लगाओ; वे तुम्हारे महारथी भाईके पीछे गये हैं; इससे उन महाबाहु सात्यकिको भी न देखकर मैं शोकित हुआ हूं ॥ ३९ ॥

तस्मात्कृष्णो रणे नूनं युध्यते युद्धकोविदः ।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ४० ॥

जिनके बल पराक्रमके आसरेसे हम पाण्डव लोग जीवित हैं, वे महाबलवान् पराक्रमी युद्ध-कोविद श्रीकृष्ण अवश्य अकेले ही समरमें शत्रुओंके संग युद्ध कर रहे हैं ॥ ४० ॥

स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनंजयः ।
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ ज्येष्ठो भ्राता भवामि ते ॥ ४१ ॥

हे कौन्तेय ! जहां अर्जुन और महापराक्रमी सात्यकि गये हैं, वहीं तुम जाओ; हे धर्म जानने-वाले ! मैं तुम्हारा बडा भाई हूं, मेरे वचनोंको मानना यदि तुम तुम्हारा कर्तव्य कार्य समझते हो तो तुम ऐसा ही करो ॥ ४१ ॥

न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ प्रयातः सव्यसाचिनः ।
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ॥ ४२ ॥

सात्यकिने मेरे प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे अर्जुनके महाभयंकर, दुर्गम और अजितात्मा पुरुषोंके लिये अगम्य मार्गका अनुसरण किया है, इससे अर्जुनसे भी अधिक सात्यकिके समाचारको मालूम करना तुम्हारा कर्तव्य कार्य है ॥ ४२ ॥

भीमसेन उवाच

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ ४३ ॥

भीमसेन बोले— महाराज ! जिस रथ पर पहिले ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और वरुणने गमन किया था; श्रीकृष्ण और अर्जुन उसी रथ पर चढके शत्रुसेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं; इससे किसीसे भी उन्हें भय नहीं हो सकता ॥ ४३ ॥

आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः ।
समेत्य तान्नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥ ४४ ॥

तब तुम्हारी आज्ञाको माथे पर चढा कर मैं उन लोगोंकी सहायताके वास्ते गमन करता हूं; आप शोक न कीजिये; मैं उन पुरुषसिंहोंके समीपमें पहुंचके आपको संवाद दूंगा ॥ ४४ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम् ।
धृष्टद्युम्नाय बलवान्सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ।
धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः ॥ ४५ ॥

संजय बोले— हे राजन् ! महाबली पराक्रमी भीमसेन ऐसा वचन कहके, धृष्टद्युम्न और दूसरे सहृद् पुरुषोंके निकट राजा युधिष्ठिरको समर्पण करके वहांसे चल दिये । जाते समय वे धृष्टद्युम्नसे यह वचन बोले ॥ ४५ ॥

विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ।
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते ॥ ४६ ॥

हे महाबाहो ! महारथी द्रोणाचार्य किस प्रकारसे सब उपाय रचकर धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण करनेके लिये युद्धभूमिमें स्थित है, वह तुम्हें विदित है ॥ ४६ ॥

न च मे गमने कृत्यं तादृक्पार्षत विद्यते ।
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः ॥ ४७ ॥

हे पार्षत ! मेरे लिये श्रीकृष्ण–अर्जुनके समीप गमन करना उतना आवश्यक कार्य नहीं है, जितना द्रोणाचार्यके समीपसे धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना प्रयोजनीय कार्य है । हम लोगोंके लिये यही सबसे अत्यंत महान् कार्य है ॥ ४७ ॥

एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं स्म नोत्सहे ।
प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः ।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशङ्कया ॥ ४८ ॥

परन्तु युधिष्ठिर महाराजने मुझे अर्जुनके समीप जानेके लिये आज्ञा दे दी है, मैं उनकी आज्ञा भङ्ग करनेका उत्साह नहीं कर सकता; क्योंकि धर्मराजकी आज्ञाको सम्पूर्ण शङ्काओंको त्यागके पालन करना ही उचित है । इससे जहांपर मरणाधीन जयद्रथ स्थित है, मैं उस ही स्थान पर जाऊंगा ॥ ४८ ॥

सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम् ।
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे ॥ ४९ ॥

आप युद्धभूमिमें यत्नवान् होकर सब प्रकारसे महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना । इस युद्धमें सम्पूर्ण कार्योंके बीच राजाकी रक्षा करना ही हमारा मुख्य कार्य है ॥ ४९ ॥

तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ।
ईप्सितेन महाबाहो गच्छ पार्थाविचारयन् ॥ ५० ॥

महाराज ! यह सुनकर धृष्टद्युम्न भीमसेनसे बोले, हे महाबाहो ! पार्थ ! मैं तुम्हारे अभिलषित कार्यको पूर्ण करूंगा । तुम कुछ भी विचार न करके अर्जुनके समीप जाओ; तुम कुछ भी चिन्ता मत करो ॥ ५० ॥

नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथंचन ।
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ॥ ५१ ॥

द्रोणाचार्य इस महायुद्धमें धृष्टद्युम्नका विना वध किये, किसी प्रकारसे भी धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण न कर सकेंगे ॥ ५१ ॥

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्नाय पाण्डवः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ यत्र फल्गुनः ॥ ५२ ॥

अनन्तर पाण्डुपुत्र भीमसेनने महाराज युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्नके निकट समर्पण करके जेठे भाई धर्मराजको प्रणाम किया और जिस मार्गसे अर्जुन गये थे, उसीसे चल दिये ॥ ५२ ॥

परिष्वक्तस्तु कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ।
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः ॥ ५३ ॥

भारत ! धर्मराजने उन्हें आलिङ्गन करके उनका मस्तक सूंघा और शुभ आशीर्वाद प्रदान किये ॥ ५३ ॥

भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ।
साङ्गदः सतनुत्राणः सशरी रथिनां वरः ॥ ५४ ॥

महारथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीमसेनके कानमें सुन्दर कुण्डल, भुजामें उत्तम आभूषण, हाथमें तलत्राण तथा धनुषबाण, और कवच धारण किया था ॥ ५४ ॥

तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्द्धिमत् ।
विबभौ पर्वतश्लिष्टः सविद्युदिव तोयदः ॥ ५५ ॥

जैसे बिजलीसे युक्त बादल पर्वतपर स्थित होके शोभित होता है, उनका वह काले लोहेका बना हुआ सुवर्णभूषित महामूल्यवान् कवच उनके सारे शरीरमें लिपटा हुआ वैसे ही शोभित होने लगा ॥ ५५ ॥

पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ।
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ॥ ५६ ॥

इन्द्रधनुषके सहित जैसे आकाशमें बादल शोभित होता है वैसे ही लाल, पीले, काले और श्वेत वर्णके वस्त्रों तथा कण्ठत्राण पहरनेसे भीमसेन शोभित होने लगे ॥ ५६ ॥

प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ।
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशां पते ॥ ५७ ॥

प्रजापते ! युद्ध करनेकी अभिलाषसे जब भीमसेन तुम्हारी सेनाकी ओर प्रस्थान करनेके लिये तैयार हुए, तब फिर पाञ्चजन्य शङ्खका घोर शब्द सुनाई पडा ॥ ५७ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ।
पुनर्भीमं महाबाहुर्धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर तीनो लोकोंको भयभीत करनेवाले उस भयङ्कर पाञ्चजन्य शङ्खके महान् शब्दको सुनके फिर महाबाहु भीमसेनसे बोले ॥ ५९ ॥

एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ॥ ५९ ॥

हे भीमसेन ! सुनते हो ! यह यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण पाञ्चजन्य शङ्ख बजा रहे हैं; उस ही शङ्खराजके शब्दसे पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण दिशाएं अनुनादित हो रही हैं ॥ ५९ ॥

नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत्सव्यसाचिनि ।
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ॥ ६० ॥

सव्यसाचि अर्जुन बडे भारी व्यसनमें निश्चयही पडे होंगे, उसही कारण चक्र और गदा धारी श्रीकृष्ण स्वयं सम्पूर्ण कौरवोंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं ॥ ६० ॥

नूनमार्या महत्कुन्ती पापमद्य निदर्शनम् ।
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्ति सह बन्धुभिः ॥ ६१ ॥

अवश्य ही आज बन्धुओं सहित माता कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा कोई दुःखद अपशकुन देख रही होंगी ॥ ६१ ॥

स भीमस्त्वरया युक्तो याहि यत्र धनंजयः ।
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनंजयदिदृक्षया ।
दिशः सप्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ ६२ ॥

हे भीम ! तुम शीघ्रही जहां अर्जुन हैं वहां गमन करो । मैं अर्जुनको देखनेकी इच्छासे और सात्यकिके निमित्त बुद्धिरहित होरहा हूं; मुझे सब दिशाएं सूनी बोध हो रही हैं ॥६२॥

गच्छ गच्छेति च पुनर्भीमसेनमभाषत ।
भृशं स प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियंकरः ।
आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माय चासकृत् ॥ ६३ ॥

फिर युधिष्ठिरने ' जाओ, जाओ ' ऐसा भीमसेनसे कहा । भीमसेन भाईका प्रिय करनेवाले और बडे भाईके अत्यंत आग्रहपूर्वक भेजनेसे ही वहां जानेको तैयार हुए थे । उन्होंने दुंदुभि बजवाया और अनेकबार शंख बजाया ॥ ६३ ॥

विनद्य सिंहनादं च ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
दर्शयन्घोरमात्मानममित्रान्सहसाभ्ययात् ॥ ६४ ॥

बारबार धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचकर भयंकर सिंहनाद किया; अपना भयङ्कर रूप दिखाकर शत्रुओंको भयभीत करते हुए उनकी ओर सहसा धावा किया ॥ ६४ ॥

तमूहुर्जवना दान्ता विकुर्वाणा हयोत्तमाः ।
विशोकेनाभिसंयत्ता मनोमारुतरंहसः ॥ ६५ ॥

मन और वायुके समान शीघ्रगामी उनके रथके उत्तम घोडे विशोक सारथीके चलाने पर हर्षपूर्वक हिनहिनाते और भीमसेनके रथको खींचते हुए गमन करने लगे ॥ ६५ ॥

आरुजन्विरुजन्पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना ।
सोऽवकर्षन्विकर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ६६ ॥

पृथापुत्र भीम अपने हाथसे धनुषटङ्कार करके सेनाके आगे स्थित योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे नाना प्रकार पीडित करके सेनाको विडारते हुए गमन करने लगे ॥ ६६ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं पाञ्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ६७ ॥

तब देवराज इन्द्रके पीछे जानेवाले देवोंके समान, सोमक और पाञ्चाल वीर भी इस प्रकार गमन करते हुए महाबाहु भीमके अनुगामी हुए ॥ ६७ ॥

तं ससेना महाराज सोदर्याः पर्यवारयन् ।
दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ६८ ॥

महाराज ! उस समय दुर्योधनके सब भाईयोंने सेनासहित उनको रोक दिया । दुःशल, चित्रसेन, कुंडभेदी, विविंशति ॥ ६८ ॥

दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ६९ ॥

दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन ॥ ६९ ॥

वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ७० ॥

वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन ॥ ७० ॥

विविधै रथिनां श्रेष्ठाः सह सैन्यैः सहानुगैः ।
संयत्ताः समरे शूरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ७१ ॥

इन रथियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी वीरोंने अपने सैनिकों और नाना प्रकारके अनुयायी योद्धाओंके सहित प्रयत्नशील होकर भीमसेन पर युद्धभूमिमें आक्रमण किया ॥ ७१ ॥

तान्समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७२ ॥
कुन्तीपुत्र पराक्रमी भीमसेन उन लोगोंको अपनी ओर आते देखके इस प्रकार वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे, जैसे सिंह क्षुद्र हरिणोंकी ओर दौडता है ॥ ७२ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् ।
वारयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ७३ ॥
जैसे बादलोंका समूह उदय हुए सूर्यको छिपा देता है, वैसे ही वे वीर योद्धा लोग अपने बाणोंसे भीमसेनको छिपाकर दिव्य महा अस्त्रोंको प्रकाशित करने लगे ॥ ७३ ॥

स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ७४ ॥
परन्तु वे वेगपूर्वक उन योद्धाओंको अतिक्रम करके द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे, और सम्मुखमें स्थित गज सेनाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७४ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत्पवनात्मजः ॥ ७५ ॥
वायुपुत्र भीमसेनने मुहूर्तभरके बीचही उस गजसेनाको सब दिशाओंमें अपने बाणोंकी वर्षासे तितर बितर कर दिया ॥ ७५ ॥

त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन्द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ७६ ॥
जैसे वनके बीच शरभके शब्दको सुनकर भयभीत हो हरिणोंका समूह भाग जाता है, वैसे ही वे सम्पूर्ण हाथी भीमसेनसे डरकर भयङ्कर शब्दसे आर्तनाद करते हुए वहांसे भाग गये ॥ ७६ ॥

पुनश्चातीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ ७७ ॥
अनन्तर भीमसेनने बडे वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनापर आक्रमण किया । जैसे उत्कट लहरोंके साथ उठे हुए समुद्रके वेगको तट रोकता है, वैसे ही द्रोणाचार्यने भीमसेनको आगे बढनेसे रोका ॥ ७७ ॥

ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवादित्यो विबभौ तत्र पाण्डवः ॥ ७८ ॥
द्रोणाचार्यने हंसके भीमसेनके ललाटमें नाराच बाणसे विद्ध किया । उससे पाण्डुपुत्र भीमसेन किरणधारी सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ७८ ॥

×

स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥ ७९ ॥
जैसे अर्जुन मेरी मानरक्षा करके पूजा करके गये हैं, वैसे ही भीमसेन भी करेंगे, यही विचार कर द्रोणाचार्य उनसे यह वचन बोले ॥ ७९ ॥

भीमसेन न ते शक्यं प्रवेष्टुमरिवाहिनीम् ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमध्ये महाबल ॥ ८० ॥
हे महाबलवान् भीमसेन ! मैं शत्रु हूं, तुम आज युद्धभूमिमें मुझे विना पराजित किये शत्रु-सेनामें आगे प्रवेश नहीं कर सकोगे ॥ ८० ॥

यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं भोः प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ ८१ ॥
यद्यपि तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन मेरी अनुमतिके अनुसार सेनामें प्रविष्ट हुए हैं, परन्तु तुम मेरे इस सैन्यव्यूहमें प्रवेश नहीं कर सकोगे ॥ ८१ ॥

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणः श्वसन् ॥ ८२ ॥
निडर चित्त भीमसेन गुरु द्रोणाचार्यके वचनको सुन, क्रोधसे नेत्र लाल करके गर्म सांस छोडते हुए उनसे बोले ॥ ८२ ॥

तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद्बलम् ॥ ८३ ॥
हे ब्रह्मबन्धो ! पराक्रमी अर्जुन तुम्हारी अनुमतिसे सेनाके बीच नहीं प्रविष्ट हुए हैं, क्योंकि वे तो दुर्जय हैं और इन्द्रकी सेनाके बीचमें भी प्रवेश कर सकते हैं ॥ ८३ ॥

येन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥ ८४ ॥
अर्जुनने तुम्हारी बडी पूजा करके तुम्हें सम्मान दिया है, परंतु मैं वह दयालु अर्जुन नहीं हूं । मैं तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूं ॥ ८४ ॥

पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रा हि ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ८५ ॥
तुम हमारे पिता, गुरु तथा बन्धु हो और हम तुम्हारे पुत्रके समान हैं; हम सब यही मानकर तुम्हारा मान किया करते हैं, और तुम्हारे समीप विनीत भावसे स्थित रहते हैं ॥ ८५ ॥

अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते ।
यदि शत्रुं त्वमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह ।
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम् ॥ ८६ ॥

परन्तु तुमने आज जैसा बचन कहा, उससे हम लोगोंके विषयमें तुम्हारा उलटा भाव बोध होता है। यदि तुम अपनेको हम लोगोंका शत्रु समझते हो, तो वही होवे; यह भीम भी तुम्हारे शत्रुके अनुरूप ही भयङ्कर कर्म करता रहेगा ॥ ८६ ॥

अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः ।
द्रोणायावसृजद्राजन्स रथादवपुप्लुवे ॥ ८७ ॥

राजन् ! ऐसा कहके भीमसेनने यमराजके कालदण्डके समान अपनी भयङ्करी गदा उठा कर उसको द्रोणाचार्यके ऊपर चलाया। द्रोणाचार्य उसी समय अपने रथसे कूदके पृथक् होगये ॥ ८७ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयत्तदा ।
प्रामृद्नाच्च बहून्योधान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ॥ ८८ ॥

परन्तु घोडे, सारथी और ध्वजाके सहित उनका रथ चूर्ण होगया और जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे वृक्ष टूट टूट गिर पडते हैं, वैसे ही बहुतेरे योद्धा भी उस गदाकी चोटसे नष्ट होगये ॥ ८८ ॥

तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ।
अन्यं च रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः ॥ ८९ ॥

अनन्तर तुम्हारे पुत्रोंने फिर श्रेष्ठ महारथी वीर भीमसेनको घेर लिया। इधर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य दूसरे रथपर आरूढ हो गये ॥ ८९ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी ।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ९० ॥

महाराज ! अनन्तर क्रुद्ध हुए पराक्रमी भीमसेन अपने संमुख स्थित रथसेनाको तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे छिपाने लगे ॥ ९० ॥

ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः ।
भीमं भीमबलं युद्धेऽयोधयंस्तु जयैषिणः ॥ ९१ ॥

परन्तु युद्धमें तुम्हारे महारथी पुत्र भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर भी विजयकी इच्छा करके महा बलवान् भीमसेनके साथ युद्ध करते रहे ॥ ९१ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत् ।
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ९२ ॥

दुःशासनने क्रुद्ध होकर पाण्डुपुत्र भीमसेनके वधकी इच्छा करके उनके ऊपर एक संपूर्ण लोहेकी बनी हुई तीक्ष्ण रथशक्ति चलायी ॥ ९२ ॥

आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रचोदिताम् ।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९३ ॥

भीमने दुःशासनके हाथसे छूटी हुई उस महा शक्तिको अपनी ओर आती देख, उसे दो खण्ड करके गिरा दिया; वह भीमका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ ९३ ॥

अथान्यैर्निशितैर्बाणैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम् ।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ ९४ ॥

अनन्तर बलवान् भीमसेनने अत्यंत क्रोधित होकर अपने दूसरे तीन तीक्ष्ण बाणोंसे कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घनेत्र इन तीनों भाइयोंका वध किया ॥ ९४ ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत्पुनः ॥ ९५ ॥

तुम्हारे वीर पुत्र पराक्रम प्रकाशित करते हुए युद्ध कर ही रहे थे, उस ही समयमें भीमसेनने फिर उन लोगोंके बीचसे कुरुकुलकी कीर्त्ति बढाने वाले वीर वृन्दारकका वध कर दिया ॥ ९५ ॥

अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
त्रिभिस्त्रीनवधीद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ९६ ॥

फिर अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन तुम्हारे इन तीन वीर पुत्रोंका तीन बाणोंसे भीमसेनने वध किया ॥ ९६ ॥

वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ९७ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्रोंने बलवान् भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर भी फिर योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९७ ॥

विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम् ।
प्रहसन्निव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ९८ ॥

कुन्तीपुत्र भीमसेनने हंसते हुए मिलकर आये हुए दोनों भाई विन्द और अनुविन्दको, और तुम्हारे पुत्र सुवर्माको अपने बाणोंसे यमलोक भेज दिया ॥ ९८ ॥

ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ९९ ॥

भरतर्षभ ! अनन्तर युद्धमें तुम्हारे वीर पुत्र सुदर्शनको भीमसेनने विद्ध किया, तब वह शीघ्रही गिर पडा और मर गया ॥ ९९ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत्पाण्डुनन्दनः ॥ १०० ॥

अनन्तर पाण्डुपुत्र भीमसेनने चारों ओर देखकर शीघ्र ही उन सम्पूर्ण रथियोंकी सेनाको अपने बाणोंसे थोडेही समयमें नष्ट कर दिया ॥ १०० ॥

ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
वध्यमानाश्च समरे पुत्रास्तव विशां पते ।
प्राद्रवन्सरथाः सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ॥ १०१ ॥

अनन्तर वहांपर बाकी बचे हुए तुम्हारे पुत्र भीमसेनके बाणोंसे पीडित हो उनके रथकी घरघराहट और गर्जनासे समरमें मृगोंके समूहकी भांति भयसे व्याकुल होके सब रथोंसहित भागने लगे ॥ १०१ ॥

अनुयाय तु कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ।
विव्याध समरे राजन्कौरवेयान्समन्ततः ॥ १०२ ॥

कुन्तीपुत्र भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंकी बडी सेनाका पीछा करके, युद्धमें चारों ओर कुरुसेनाके शूरवीर पुरुषोंको अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ १०२ ॥

वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ।
त्यक्त्वा भीमं रणे यान्ति चोदयन्तो हयोत्तमान् ॥ १०३ ॥

महाराज ! तुम्हारे सब पुत्र भीमसेनके अस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर होकर उन्हें त्याग कर अपने अपने उत्तम घोडोंको दौडाकर रणभूमिसे दूर चले गये ॥ १०३ ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ।
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ॥ १०४ ॥

महाबली भीमसेनने उन सबको युद्धभूमिमें पराजित करके उंचे स्वरसे सिंहनाद और बाहु शब्द किया ॥ १०४ ॥

तलशब्दं च सुमहत्कृत्वा भीमो महाबलः ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १०५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ४४०८ ॥

फिर महाबलवान् भीमसेनने तालत्राणका महान् शब्द किया; अनन्तर सम्पूर्ण रथियोंको अतिक्रम करके द्रोणाचार्यकी सेनापर आक्रमण किया ॥ १०५ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ दोवां अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥ ४४०८ ॥

१०३

सञ्जय उवाच

तमुत्तीर्णं रथानीकात्तमसो भास्करं यथा ।
दिधारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– जैसे सूर्य अंधकारको नष्ट करके उदित होते हैं, वैसे ही भीमसेन जब उस रथ सेनाको पार करके बाहर निकले, तब द्रोणाचार्य उन्हें निवारण करनेकी इच्छासे उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १ ॥

पिबन्निव शरौघांस्तान्द्रोणचापवरातिगान् ।
सोऽभ्यवर्तत सोदर्यान्मायया मोहयन्बलम् ॥ २ ॥

परन्तु भीमसेन द्रोणाचार्यके श्रेष्ठ धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंके प्रवाहको मानो पान करते हुए सब कौरव बन्धुओंको मायासे मोहित करके उस सेनापर टूट पडे ॥ २ ॥

तं मृधे वेगमास्थाय परं परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

तब तुम्हारे पुत्रोंकी आज्ञासे सेनाके महाधनुर्धर योद्धाओंने महान् वेगसे युद्धमें भीमसेनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३ ॥

स तथा संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उदयच्छद्गदां तेभ्यो घोरां तां सिंहवन्नदन् ।
अवासृजच्च वेगेन तेषु तान्प्रमथद्बली ॥ ४ ॥

भारत ! भीमसेनने इस भांतिसे उनसे घिरे जाकर हंसते हुए एक भयंकर गदा ऊपर उठायी और सिंहनाद किया; फिर उस गदाको बडे वेगसे उनपर फेंका, इस तरह उन बलवान्ने उनको मथित किया ॥ ४ ॥

सेन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
घोषेण महता राजन्पूरयित्वेव मेदिनीम् ।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ५ ॥

राजन् ! जितेंद्रिय इंद्रके वज्रके समान चलाई हुई उस भयंकर गदाने तेजसे प्रज्वलित होकर अपने महान् शब्दसे पृथ्वीको परिपूरित करके तुम्हारे पुत्रोंको भयभीत कर दिया ॥ ५ ॥

तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोभिसंवृताम् ।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ६ ॥

तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग उस प्रकाशमान गदाको वेगपूर्वक अपनी ओर आती देख महाघोर शब्द करते हुए वहांसे भाग गये ॥ ६ ॥

तं च शब्दमसंसह्यं तस्याः संलक्ष्य मारिष ।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ७ ॥

मारिष ! कितनेही मनुष्य उस गदाके असह्य शब्दको सुनकर पृथ्वीमें गिर पडे और बहुतेरे रथी भी अपने रथसे पृथ्वीमें गिरे ॥ ७ ॥

स तान्विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान्दुरासदः
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ ८ ॥

दुर्जय कुन्तीपुत्र भीमसेन युद्धमें उन शत्रुओंको भगाकर पक्षिराज गरुडके समान वेगसे उस सेनाको लांघ गये ॥ ८ ॥

तथा तं विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ९ ॥

महाराज ! रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको इस प्रकार सेनाका नाश करते देख भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य सामना करनेके लिये उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ ९ ॥

द्रोणस्तु समरे भीमं वारयित्वा शरोर्मिभिः ।
अकरोत्सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १० ॥

युद्धमें द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे भीमसेनको रोक कर सहसा अपने भयङ्कर सिंहनादसे पाण्डवोंको भयभीत किया ॥ १० ॥

तद्युद्धमासीत्सुमहद्घोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ ११ ॥

महाराज ! महात्मा भीमसेन और द्रोणाचार्यका देवासुर संग्रामके समान वह महा घोर युद्ध होने लगा ॥ ११ ॥

यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥

जब इस प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धमें सैकडों और सहस्रों वीर मारे जाने लगे ॥ १२ ॥

ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः ।
निमील्य नयने राजन्पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १३ ॥

तब पाण्डुपुत्र भीम बडे वेगसे रथसे कूद पडे और दोनों नेत्र मूंदकर पैदलही द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ १३ ॥

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १४ ॥

जैसे वृषभ लीलाके अनुसार जलवर्षाका वेग अपने शरीरपर ग्रहण करता है, वैसे ही पुरुष श्रेष्ठ भीमसेनने द्रोणाचार्यकी बाणवर्षाको अनायासही सहन किया ॥ १४ ॥

स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥ १५ ॥

मारिष ! महाबली भीमसेनने युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके बाणोंसे आहत होते हुए भी उनके रथके ईषादण्डको हाथसे पकडकर संपूर्ण रथको उठा कर दूर फेंक दिया ॥ १५ ॥

द्रोणस्तु सत्वरो राजन्क्षिप्तो भीमेन संयुगे।
रथमन्यं समास्थाय व्यूहद्वारमुपाययौ ॥ १६ ॥

हे कुरुराज ! युद्धमें द्रोणाचार्यका रथ जब भीमसेनके फेंकनेसे दूर गिरा तब द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित दूसरे रथ पर चढके फिर व्यूहके दरवाजे पर स्थित हुए ॥ १६ ॥

तस्मिन्क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत्।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १७ ॥

इसी समय भीमसेनका सारथी भी शीघ्रताके सहित उनके घोडोंको हांककर वहां ले आया; वह एक अद्भुतसा दृश्य हुआ ॥ १७ ॥

ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः।
अभ्यवर्तत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम्। ॥ १८ ॥

अनन्तर महाबली भीमसेनने फिर अपने रथपर चढके शीघ्रताके सहित तुम्हारे पुत्रकी सेना पर बडे वेगसे आक्रमण किया ॥ १८ ॥

स मृद्नन्क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः।
अगच्छद्दारयन्सेनां सिन्धुवेगो नगानिव ॥ १९ ॥

जैसे उठी हुई प्रचण्ड वायु वृक्षोंको उखाडके दूर फेंकती है, वैसे ही भीमसेन युद्धमें क्षत्रिय योद्धाओंका मर्दन करते हुए तथा नदियोंका वेग जैसे पर्वतोंको विदीर्ण करता हुआ आगे बढता है, उसी तरह आपकी सेनाको विदीर्ण करते हुए वेगपूर्वक गमन करने लगे ॥ १९ ॥

भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम्।
प्रमथ्य बहुधा राजन्भीमसेनः समभ्ययात् ॥ २० ॥

राजन् ! अनन्तर भीमसेन हृदिकपुत्र कृतवर्मासे सुरक्षित भोजवंशियोंकी सेनाके पास पहुंचकर उसे मथित करते हुए आगे बढे ॥ २० ॥

संत्रासयन्ननीकानि तलशब्देन मारिष ।
अजयत्सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥ २१ ॥

शार्दूल जैसे गौवोंके और बैलोंके समूहको जीत लेता है, वैसे ही भीमसेनने अपने तलत्राण शब्दसे शत्रुसेनाओंको भयभीत करते हुए सब सैनिकोंपर विजय प्राप्त की ॥ २१ ॥

भोजानीकमतिक्रम्य काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणांश्चान्यान्बहून्युद्धविशारदान् ॥ २२ ॥

इसी प्रकार भोजसेनाको लांघकर, काम्बोजोंकी सेनाको पार कर गये, और म्लेच्छ सेना और दूसरी युद्धविद्यामें निपुण बहुतेरी सेनाको परास्त करके ॥ २२ ॥

सात्यकिं चापि संप्रेक्ष्य युध्यमानं नरर्षभम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २३ ॥

नरश्रेष्ठ सात्यकिको शत्रुओंके साथ युद्ध करते देख सावधान होकर रथसे वेगपूर्वक आगे बढे ॥ २३ ॥

भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनंजयम् ।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान्पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥

महाराज ! अनन्तर अर्जुनको देखनेकी अभिलाषसे पाण्डुपुत्र भीमसेन समरमें तुम्हारे योद्धाओंको अतिक्रम करके वहां पहुंच गये ॥ २४ ॥

सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं नरर्षभम् ।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ २५ ॥

अनन्तर कुछ दूर जाके सिन्धुराज जयद्रथके वधकी इच्छासे पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले नरश्रेष्ठ अर्जुनको पराक्रमी भीमसेनने अवलोकन किया ॥ २५ ॥

अर्जुनं तत्र दृष्ट्वाथ चुक्रोश महतो रवान् ।
तं तु तस्य महानादं पार्थः शुश्राव नर्दतः ॥ २६ ॥

इस प्रकार वहां अर्जुनके देखतेही भीमने बडे जोरसे सिंहनाद किया; गरजते हुए भीमसेनके उस महान् सिंहनादको अर्जुनने सुना ॥ २६ ॥

ततः पार्थो महानादं मुञ्चन्वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥ २७ ॥

महाराज ! अर्जुन और श्रीकृष्ण गरजते हुए दो वृषभोंके समान महान् सिंहनाद करते हुए आगे बढने लगे ॥ २७ ॥

×

वासुदेवार्जुनौ श्रुत्वा निनादं तस्य शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्रणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ २८ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनने तेजस्वी वीर भीमसेनके सिंहनादको सुनकर उन्होंने उनको देखनेकी इच्छासे बार बार गर्जना की ॥ २८ ॥

भीमसेनरवं श्रुत्वा फल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥

महाराज! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भीमसेन और धनुर्धर अर्जुनकी गर्जना सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥

विशोकश्चाभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं महत् ।
धनंजयस्य च रणे जयमाशास्तवान्विभुः ॥ ३० ॥

उस महान् सिंहनादको सुनकर राजाका दुःख दूर हो गया; राजा युधिष्ठिर समरमें अर्जुनकी विजयके लिए शुभेच्छा करने लगे ॥ ३० ॥

तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने रणोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३१ ॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।
दत्ता भीम त्वया संवित्कृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३२ ॥

जब युद्धप्रिय भीमसेन उस प्रकारसे सिंहनाद कर रहे थे, तब धर्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी धर्मपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर उस शब्दको सुनकर हंसे और अपने हृदयके भावको विचार कर मन ही मन कहने लगे । हे भीमसेन ! तुमने अर्जुन आदिके संवादको प्रदान करके गुरुकी आज्ञाका पालन किया है ॥ ३१–३२ ॥

न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टासि पाण्डव ।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनंजयः ॥ ३३ ॥

इससे तुम युद्धमें जिनके द्वेषी होंगे, उनकी विजय न हो सकेगी । युद्धभूमिमें प्रारब्धहीसे सव्यसाची अर्जुन जीवित है ॥ ३३ ॥

दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ३४ ॥

प्रारब्धहीसे सत्य पराक्रमी सात्यकि कुशलपूर्वक युद्धभूमिमें स्थित हैं । भाग्यहीसे मैंने श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिंहनाद शब्दको सुना है ॥ ३४ ॥

येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः ।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ॥ ३५ ॥

जिन्होंने संग्राममें इन्द्रको पराजित करके अग्निको तृप्त किया था, वह शत्रुनाशन अर्जुन युद्धमें प्रारब्धहीसे जीवित है ॥ ३५ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविनः ।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ॥ ३६ ॥

जिनके बाहुबलके सहारे हम सब लोग जीवन धारण करते हैं, वह शत्रुओंके नाश करनेवाले अर्जुन प्रारब्धसे जीवित हैं ॥ ३६ ॥

निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः ।
निर्जिता रथिनैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ३७ ॥

देवताओंके लिये भी अपराजित निवातकवच दानवोंको जिन रथिने अकेले ही पराजित किया था वह कुन्तीपुत्र अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ ३७ ॥

कौरवान्सहितान्सर्वान्गोग्रहार्थे समागतान् ।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ३८ ॥

जिन्होंने मत्स्यदेशकी राजधानीके पास विराटकी गौवोंका हरण करनेके लिये मिलकर आये हुए सम्पूर्ण कौरवोंको पराजित किया था, वह अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ ३८ ॥

कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे ।
योऽवधीद्भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ३९ ॥

जिन्होंने अपने बाहुबलसे चौदह हजार कालकेय असुरोंका महासंग्राममें वध किया था, वह अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ ३९ ॥

गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृतेन वै ।
जितवान्योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४० ॥

जिन्होंने दुर्योधनके लिये बलवान् गन्धर्वराजको स्वयं पराजित किया था; वह अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ ४० ॥

किरीटमाली बलवाञ्श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ॥ ४१ ॥

वह किरीटधारी, पराक्रमी, श्वेताश्ववाहन, सदा मेरा प्यारा भाई अर्जुन श्रीकृष्ण सारथीके सहित प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ ४१ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवानिह यः ।
कच्चित्स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनंजयः ॥ ४२ ॥

जिन्होंने पुत्रशोकसे कातर होके, अत्यन्त कठिन कर्मको करनेकी इच्छासे, जयद्रथके बधकी अभिलाषासे प्रतिज्ञा की है; क्या वह अर्जुन युद्धमें सिंधुराज जयद्रथका वध कर सकेंगे ? ॥४२॥

कच्चित्तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ।
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् ॥ ४३ ॥

क्या सूर्य अस्तके पहिले अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके आये हुए, श्रीकृष्णसे रक्षित अर्जुनसे मैं मिल सकूंगा ? ॥ ४३ ॥

कच्चित्सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ।
नन्दयिष्यत्यमित्राणि फल्गुनेन निपातितः ॥ ४४ ॥

दुर्योधनके हितकी अभिलाष करनेवाला सिन्धुराज जयद्रथ क्या अर्जुनके बाणोंसे मरकर अपने शत्रुओंको आनन्दित करेगा ? ॥ ४४ ॥

कच्चिद्दुर्योधनो राजा फल्गुनेन निपातितम् ।
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति ॥ ४५ ॥

राजा दुर्योधन क्या सिन्धुराज जयद्रथको अर्जुनके बाणोंसे मरा हुआ देखकर हम लोगोंके संग सन्धि स्थापित करेगा ? ॥ ४५ ॥

दृष्ट्वा विनिहतान्भ्रातॄन्भीमसेनेन संयुगे ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति ॥ ४६ ॥

युद्धभूमिमें अपने भाइयोंको भीमसेनके हाथसे मारा गया देख क्या वह मन्द बुद्धिवाला दुर्योधन हम लोगोंके सङ्ग सन्धि करेगा ? ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा चान्यान्बहून्योधान्पातितान्धरणीतले ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं करिष्यति ॥ ४७ ॥

नीच बुद्धिवाला दुर्योधन क्या दूसरे अनेक योद्धाओंको मरके पृथ्वीमें गिरे देख, पश्चात्ताप करेगा ? ॥ ४७ ॥

कच्चिद्भीष्मेण नो वैरमेकेनैव प्रशाम्यति ।
शेषस्य रक्षणार्थं च संधास्यति सुयोधनः ॥ ४८ ॥

अकेले भीष्मके बधसे ही क्या वह हम लोगोंकी शत्रुता शान्त हो जायगी ? बाकी बचे हुए पुरुषोंके जीवन रक्षाके लिये क्या दुर्योधन हम लोगोंके सङ्ग सन्धि स्थापित करेगा ? ॥४८॥

एवं बहुविधं तस्य चिन्तयानस्य पार्थिव ।
कृपयाभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ४४५७ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय दयालु राजा युधिष्ठिर इसी भांति अनेक बातोंपर चिन्ता करने लगे, तब दूसरी ओर घोर संग्राम हो रहा था ॥ ४९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तीनवां अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥ ४४५७ ॥

: १०४ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! इस प्रकार बादलके गर्जन समान गंभीर स्वरसे सिंहनाद करनेवाले महाबलवान् भीमसेनको किन किन वीर योद्धाओंने युद्धसे निवारण किया ? ॥ १ ॥

न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु संजय ।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे ॥ २ ॥

संजय ! मैं तीनों लोकोंमें ऐसे किसी पुरुषको भी नहीं देखता हूं, जो क्रोधी भीमसेनके सम्मुख युद्धभूमिमें खडा हो सके ॥ २ ॥

गदामुद्यच्छमानस्य कालस्येव महामृधे ।
न हि पश्याम्यहं तात यस्तिष्ठेत रणाजिरे ॥ ३ ॥

तात ! भीमसेनको महायुद्धमें कालकी भांति गदा लेकर खडे होनेपर, मैं ऐसे किसी वीर पुरुषको नहीं देखता हूं, जो युद्धभूमिमें उनके सम्मुख खडा हो सके ॥ ३ ॥

रथं रथेन यो हन्यात्कुञ्जरं कुञ्जरेण च ।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४ ॥

जो रथसे रथको और हाथीसे हाथीको नष्ट करता है, उस वीरके सामने साक्षात् इन्द्र भी क्यों न हो, कौन पुरुष युद्धके लिये खडा होगा ? ॥ ४ ॥

क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्राञ्जिघांसतः ।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः ॥ ५ ॥

भीमसेन क्रुद्ध होकर जब मेरे पुत्रोंका वध कर रहा था, तब दुर्योधनके हितकी इच्छा करनेवाले कौन कौन शूरवीर योद्धा उसके सम्मुख युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए थे ? ॥५॥

भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रतृणोलपम् ।
प्रधक्ष्यतो रणमुखे के वीराः प्रमुखे स्थिताः ॥ ६ ॥

जब भीमसेन दावाग्निरूपी होकर तृणकाष्ठरूपी मेरे पुत्रोंको भस्म करनेके निमित्त उद्यत हुआ, तब कौन कौन क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी पुरुष युद्ध करनेके लिये उसके सम्मुख खडे हुए थे ? ॥ ६ ॥

काल्यमानानिह मे पुत्रान्भीमेनावेक्ष्य संयुगे ।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन् ॥ ७ ॥

यमराज जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना ग्रास बना लेते हैं, वैसे ही युद्धभूमिमें भीमसेनको भी मेरे पुत्रोंको अपना ग्रास बनाते देख कौन कौन योद्धा उसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए थे ? ॥ ७ ॥

भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान्दिधक्षतः ।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८ ॥

संजय ! मेरे पुत्रोंको भस्म करनेकी इच्छासे प्रज्वलित हुए भीमरूपी अग्निके सामने कौन कौन वीर योद्धा युद्ध करनेके लिये उसके आगे खडे हुए थे; वह वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ ८ ॥

संजय उवाच

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महारथम् ।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यपतद्बली ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! जब महाबली भीमसेन उस प्रकार गर्जना कर रहे थे, तब बलवान् कर्णने तुमुल शब्द करके उनपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

व्याक्षिपन्बलवच्चापमतिमात्रममर्षणः ।
कर्णस्तु युद्धमाकाङ्क्षन्दर्शयिष्यन्बलं बली ॥ १० ॥

महाबली कर्णने अत्यन्त क्रोधित होके अपना दृढ धनुष चढाकर निज पराक्रम प्रकाशित करते हुए युद्धकी इच्छा करके उनको रोका ॥ १० ॥

प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे ।
रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम् ॥ ११ ॥

युद्धमें भीमसेनके सङ्ग कर्णका संघर्ष देख और उन दोनोंके तलत्राण शब्द सुनकर रथी, घुडसवार और दूसरे सम्पूर्ण योद्धाओंके शरीर भयसे कांपने लगे ॥ ११ ॥

भीमसेनस्य निनदं घोरं श्रुत्वा रणाजिरे ।
खं च भूमिं च संबद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः ॥ १२ ॥

युद्धभूमिमें भीमसेनके भयङ्कर शब्दको सुनकर श्रेष्ठ क्षत्रियोंने उससे आकाश और पृथ्वीको अवरुद्ध हुई समझा ॥ १२ ॥

पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ।
समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन्क्षितौ ॥ १३ ॥

महात्मा भीमसेनके बार बार गर्जन शब्दको सुनकर कितने ही योद्धाओंके हाथोंसे धनुष छूटकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १३ ॥

वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
वाहनानि महाराज बभूवुर्विमनांसि च ॥ १४ ॥

महाराज ! घोडे, हाथी आदि सेनाके वाहन भयभीत होकर मलमूत्र त्याग करने लगे । उस समय वे खिन्न मनके होगये ॥ १४ ॥

प्रादुरासन्निमित्तानि घोराणि च बहूनि च ।
तस्मिंस्तु तुमुले राजन्भीमकर्णसमागमे ॥ १५ ॥

राजन् ! भीम और कर्णके उस भयंकर युद्धमें उस समय महा भयङ्कर अनेक उत्पात और अशकुन प्रकट होने लगे ॥ १५ ॥

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ।
विव्याध चास्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः ॥ १६ ॥

अनन्तर कर्णने वीस बाणोंसे भीमसेनको पीडित करके, फिर शीघ्रताके सहित पांच बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥ १६ ॥

प्रहस्य भीमसेनस्तु कर्णं प्रत्यर्पयद्रणे ।
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महाबलः ॥ १७ ॥

शीघ्रतापूर्वक प्रहार करनेवाले महाबलवान् भीमसेनने हंसकर युद्धमें चौसठ बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ १७ ॥

तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ।
असंप्राप्तांस्तु तान्भीमः सायकैर्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ १८ ॥

अनन्तर महा धनुर्धर कर्णने भीमकी ओर चार बाण चलाये । परंतु भीमसेनने अपना हस्तलाघव दिखाते हुए कर्णके चलाये उन बाणोंको अपने समीप आनेके पहलेही नतपर्व बाणोंसे मार्ग ही में काटके गिरा दिया ॥ १८ ॥

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः ।
संछाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ १९ ॥

अनन्तर कर्णने अनगिनत बाण समूहोंकी वर्षा करके भीमसेनको छिपा दिया । कर्णके बाण जालसे बार बार आच्छादित होते हुए पाण्डुपुत्र महारथी भीमने ॥ १९ ॥

चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः ।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥

कर्णके धनुषकी मुट्ठी काट दिया; और बहुतसे नतपर्व बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ २० ॥

अथान्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः ।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २१ ॥

भयङ्कर कर्मोंके करनेवाले महारथी सूतपुत्र कर्णने दूसरा धनुष ग्रहण करके उसपर डोरी चढाकर समरमें भीमसेनको विद्ध किया ॥ २१ ॥

तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान्नतपर्वणः ।
निचखानोरसि तदा सूतपुत्रस्य वेगितः ॥ २२ ॥

तब भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेगपूर्वक सूतपुत्र कर्णके वक्षस्थलमें तीन नतपर्व बाणोंसे प्रहार किया ॥ २२ ॥

तैः कर्णोऽभ्राजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा ।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन तीनों छातीके बीचमें लगे हुए बाणोंसे कर्ण उस समय तीन ऊंचे शृङ्गवाले पर्वतके समान शोभित होने लगे ॥ २३ ॥

सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः ।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकराजयः ॥ २४ ॥

जैसे धातुकी धारा बहानेवाले पर्वतके ऊपरसे गेरुकी धारा बहती है, वैसेही भीमसेनके उत्तम बाणोंसे विद्ध होकर कर्णके शरीरसे रुधिर धारा बहने लगी ॥ २४ ॥

किंचिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः ।
ससायकं धनुः कृत्वा भीमं विव्याध मारिष ।
चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥

उन बाणोंके गहरे प्रहारसे पीडित होकर कर्ण कुछ विचलित होगये और उन्होंने धनुषपर बाण चढाकर भीमसेनको विद्ध किया । फिर कर्णने सैकडों और हजारों बाण भीमसेनकी ओर चलाये ॥ २५ ॥

स छाद्यमानः सहसा कर्णेन दृढधन्विना ।
धनुर्ज्यामच्छिनत्तूर्णमुत्स्मयन्पाण्डुनन्दनः ॥ २६ ॥

दृढ धनुर्द्धारी कर्णके बाणोंसे सहसा छिपकर पाण्डुपुत्र भीमने स्मित करके तुरंतही कर्णके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी ॥ २६ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन प्राहिणोद्यमसादनम् ।
वाहांश्च चतुरः संख्ये व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ २७ ॥

और एक भल्लसे उनके सारथीका वध करके उसे यमपुरीमें भेज दिया; अनन्तर महारथी भीमसेनने युद्धमें कर्णके रथके चारों घोडोंको मार डाला ॥ २७ ॥

हताश्वात्तु रथात्कर्णः समाप्लुत्य विशां पते ।
स्यन्दनं वृषसेनस्य समारोहन्महारथः ॥ २८ ॥

प्रजापते ! महारथी कर्ण घोडोंसे रहित रथसे कूदके वृषसेनके रथपर जा चढे ॥ २८ ॥

निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद सुमहानादं पर्जन्यनिनदोपमम् । ॥ २९ ॥

महाप्रतापी भीमसेनने इसी प्रकार युद्धभूमिमें कर्णको पराजित करके बादलके गर्जनाके समान महाभयङ्कर सिंहनाद किया ॥ २९ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
कर्णं च निर्जितं मत्वा भीमसेनेन भारत ॥ ३० ॥

भारत ! भीमसेनके उस सिंहनादको सुनकर उन्होंने कर्णको पराजित किया हुआ मानकर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त ही आनन्दित हुए ॥ ३० ॥

समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाकरोत्तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यपि नानदन् ।
गाण्डीवं प्राक्षिपत्पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत् ॥ ३१ ॥

उस समय पाण्डवोंकी सेना चारों ओरसे शंखनाद करने लगी; तुम्हारी ओरके योद्धाओंने भी शत्रुसेनाकी शंखध्वनि सुनकर महाघोर शब्द किया । अर्जुनने गाण्डीव धनुष चढाके धनुषकी टङ्कार की और श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ ३१ ॥

तमन्तर्धाय निनदं ध्वनिर्भीमस्य नर्दतः ।
अश्रूयत महाराज सर्वसैन्येषु भारत ॥ ३२ ॥

परन्तु गर्जन करते हुए भीमसेनका सिंहनाद उस ध्वनिको अतिक्रम करके संपूर्ण सेनाओंमें सुनाई देने लगा ॥ ३२ ॥

×

ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक्पृथगरिंदमौ ।
मृदुपूर्वं च राधेयो दृढपूर्वं च पाण्डवः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ४४९० ॥

अनन्तर वे दोनों शत्रुदमन वीर परस्पर पृथक् पृथक् अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे; राधापुत्र कर्ण कोमल रीतिसे और पाण्डुपुत्र भीमसेन पूर्ण दृढताके सहित बाण चलाते थे ॥ ३३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ चारवां अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥ ४४९० ॥

: १०५ :

सञ्जय उवाच

तस्मिन्विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ।
त्वरन्नेकरथेनैव बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! इस प्रकार जब तुम्हारी सम्पूर्ण सेना व्याकुल होके तितर बितर होकर भाग चली, सिन्धुराज जयद्रथके वधके निमित्त अर्जुन आगे बढे, और सात्यकि और भीमसेन भी वहां उपस्थित हुए, तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने विशेष प्रयोजनीय कार्यकी चिन्ता करके शीघ्रताके सहित रथपर चढकर द्रोणाचार्यके निकट जानेकी इच्छासे प्रस्थान किया ॥ १ ॥

स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परया युतः ।
तूर्णमभ्यपतद्द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ॥ २ ॥

वायु तथा मनके समान वेगशील तुम्हारे पुत्र दुर्योधनका वह रथ शीघ्र ही द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुआ ॥ २ ॥

उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ।
अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ ३ ॥

उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधन क्रोधसे नेत्र लाल करके द्रोणाचार्यसे बोले- हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अर्जुन, अपराजित वीर सात्यकि और भीमसेन ॥ ३ ॥

विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः ।
संप्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमरिकर्शनाः ।
व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः ॥ ४ ॥

ये तीनों शत्रुनाशन महारथी सम्पूर्ण बडी सेनाओंको पराजित करके सिन्धुराज जयद्रथके समीप पहुंच गये हैं । और वहां भी ये तीनों ही अपराजित होकर सेनापर आक्रमण कर रहे हैं ॥ ४ ॥

यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ।
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद ॥ ५ ॥

यदि मान लें, कि महारथी पराक्रमी अर्जुनने युद्धमें तुम्हें अतिक्रम करके गमन किया है; परन्तु मानद ! सात्यकि और भीमसेनने किस प्रकार तुम्हें अतिक्रम करके मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया है ? ॥ ५ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्समुद्रस्येव शोषणम् ।
निर्जयं तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च ॥ ६ ॥
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ।
कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ७ ॥

हे विप्रश्रेष्ठ ! सात्यकि, अर्जुन और भीमसेनसे आपकी पराजय तो समुद्रके सूखानेके समान इस लोकमें एक आश्चर्ययुक्त बात है । लोग इस बातकी बहुत चर्चा कर रहे हैं । सम्पूर्ण योद्धा तुम्हारे विषयमें यह वचन कह रहे हैं, कि धनुर्वेद जाननेवाले द्रोणाचार्य किस प्रकार युद्धभूमिमें पराजित हुए हैं ? ॥ ६–७ ॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे ।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रमतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ ८ ॥

जो आप जैसे पुरुषसिंहको इन तीनों महारथियोंने अतिक्रम करके आगे गमन किया है, तब मेरा प्रारब्ध ही खोटा है; मैं ऐसा ही समझ रहा हूं । इससे युद्धभूमिमें अवश्य ही मेरा नाश होगा ॥ ८ ॥

एवं गते तु कृत्येऽस्मिन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
यद्गतं गतमेवेह शेषं चिन्तय मानद ॥ ९ ॥

इस उपस्थित कार्यके विषयमें जो कर्तव्य है, उसके संबंधमें आपका विचार क्या है, वह मुझसे कहिये । मानद ! जो हो गया, वह तो हो ही गया । अब जो शेषकार्य है, उसका विचार कीजिये ॥ ९ ॥

यत्कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम् ।
तद्ब्रवीतु भवान्क्षिप्रं साधु तत्संविधीयताम् ॥ १० ॥

इस समय सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य कार्य शीघ्रही करना हो, वह कहिये और आप उसका अच्छी तरह विधान कीजिये ॥ १० ॥

द्रोण उवाच

चिन्त्यं बहु महाराज कृत्यं यत्तत्र मे शृणु ।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ।
यावदेवं भयं पश्चात्तावदेषां पुरःसरम् ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे राजन् ! चिन्ताके बहुतसे विषय हुए हैं परन्तु इस समय जो कुछ कर्त्तव्य कार्य करना होगा, उसे मुझसे सुनिये । पाण्डवोंकी ओरके तीन महारथी हमारी सेनाको लांघकर आगे बढे हैं; पीछे उनका जितना भय है, उतनाही आगे भी है ॥ ११ ॥

तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनंजयौ ।
सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः ॥ १२ ॥

परन्तु इन दोनों स्थानोंके बीच जहां पर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहीं अधिक भय है ऐसा मैं मानता हूं । इस समय कुरुसेनाके आगे और पीछेका हिस्सा शत्रुओंसे आक्रान्त हुआ है ॥ १२ ॥

तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ।
स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनंजयात् ॥ १३ ॥

इसलिये सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करना ही सबको मुख्य कार्य है ऐसा मैं मानता हूं; क्योंकि सिन्धुराज जयद्रथ क्रोधित हुए अर्जुनसे ही भयभीत हुए हैं; अतः वह हमारे लिये सबसे रक्षणीय है ॥ १३ ॥

गतौ हि सैन्धवं वीरौ युयुधानवृकोदरौ ।
संप्राप्तं तदिदं द्यूतं यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ॥ १४ ॥

उसपर भी वीर सात्यकि और भीमसेन भी जयद्रथको लक्ष्य करके गये हैं; शकुनिके बुद्धिसे जो सभामें जूएका खेल हुआ था, उसका फल इस समय उपस्थित हुआ है ॥ १४ ॥

न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ।
इह नो ग्लहमानानामद्य तात जयाजयौ ॥ १५ ॥

उस दिन सभामें जूएके खेलमें किसी पक्षकी जीत या हार नहीं हुई थी; यहां आज हम लोग प्राणोंकी बाजी रखके जूएके खेलमें प्रवृत्त हुए हैं, इसी जूएके खेलमें हार जीत होनेवाली है ॥ १५ ॥

यान्स्म तान्ग्लहते घोराञ्शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान्संमन्यमानः स प्राक्शरास्ते दुरासदाः ॥ १६ ॥

शकुनिने कुरुसभामें पहले पणकर जिन भयङ्कर पासोंको ग्रहण करके जूआ खेला था, उन्हें वह तो पासेही समझता था, परंतु वास्तवमें वे हम लोगोंके शरीरको भेदनेवाले दुर्धर्ष बाण थे ॥ १६ ॥

यत्र ते बहवस्तात कुरवः पर्यवस्थिताः ।
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान्विशां पते ॥ १७ ॥
तात ! आज इस युद्धको तुम जूएका खेल ही समझो, यह जो तुम्हारे बहुतसे सैनिक खडे हैं, इस सेनाको ही तुम जुआरी समझो और बाणोंको ही अक्ष (पासे) समझो ॥ १७ ॥

ग्लहं च सैन्धवं राजन्नत्र द्यूतस्य निश्चयः ।
सैन्धवे हि महाद्यूतं समासक्तं परैः सह ॥ १८ ॥
राजन् ! इस जूएके खेलमें तुम सिन्धुराज जयद्रथको पण (बाजी) रूपी जानो, क्योंकि उसहीको लेकर आज महाघोर युद्ध हो रहा है और उसीपर जुएकी हारजीतका निर्णय होगा । शत्रुओंके साथ सिन्धुराजके जीवनकी बाजी लगाकर ही हमारा महान् द्यूतका खेल चल रहा है ॥ १८ ॥

अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत्कर्तुमर्हथ ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ तात जयाजयौ ॥ १९ ॥
इससे इस समय सब कोई अपने प्राणोंकी आशा त्यागकर रणभूमिमें विधिपूर्वक सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये तत्पर हो जाओ । तात ! निश्चयही उसीपर हम द्यूतका खेल खेलनेवालोंकी हारजीत अवलंबित है ॥ १९ ॥

यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम् ।
तत्र याहि स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः ॥ २० ॥
जहां पर वे सम्पूर्ण महाधनुर्धर योद्धा लोग यत्नवान् होकर सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं, तुम स्वयं उस ही स्थानमें शीघ्र जाकर उन सिंधुराजके रक्षकोंकी रक्षा करो ॥ २० ॥

इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान् ।
निरोत्स्यामि च पाञ्चालान्सहितान्पाण्डुसृञ्जयैः ॥ २१ ॥
मैं यहीं रहूंगा और वहांपर तुम्हारी सहायताके लिये बहुतेरे शूरवीर पुरुषोंको यहांसे भेजूंगा । मैं यहां स्थित होकर पाण्डवों और सृञ्जयों सहित आये हुए पाञ्चाल योद्धाओंको निवारण करूंगा ॥ २१ ॥

ततो दुर्योधनः प्रायात्तूर्णमाचार्यशासनात् ।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २२ ॥
अनन्तर राजा दुर्योधनने द्रोणाचार्यकी आज्ञाके अनुसार अपने आपको अत्यन्त कठिन कर्म करनेके लिये तैयार करके अपने अनुयायी योद्धाओंके सहित शीघ्रही युद्ध करनेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ २२ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् ॥ २३ ॥

अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चाल राजपुत्र युधामन्यु और उत्तमौजा सेनाके बाहरके भागसे होकर सव्यसाची अर्जुनके समीप गमन करने लगे ॥ २३ ॥

तौ हि पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा ।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया ॥ २४ ॥

महाराज ! पहले जिस समय अर्जुनने युद्ध करनेकी इच्छासे तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया था, उस समय उन दोनोंको कृतवर्माने रोक दिया था ॥ २४ ॥

ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमगच्छद्युद्धमुत्तमम् ।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली ॥ २५ ॥

तब भरतवंशी बलवान् राजा दुर्योधनने उन दोनों भाईयोंको बडी उतावलीके साथ सेनाके बगलसे अपनी सेनामें घुसते देख, शीघ्रताके सहित उन लोगोंके संघ घोर युद्ध शुरू किया ॥ २५ ॥

तावभिद्रवतामेनमुभावुद्यतकार्मुकौ ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥ २६ ॥

उन दोनों क्षत्रिय श्रेष्ठ प्रख्यात महारथी वीरोंने युद्धमें धनुष चढाकर दुर्योधनपर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

युधामन्युस्तु संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमायसान् ।
व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे ॥ २७ ॥

अनन्तर युधामन्युने अत्यन्त कुपित होकर लोहेके बने हुए तीक्ष्ण तीस बाणोंसे अत्यंत शीघ्रताके सहित तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके हृदयमें प्रहार किया ॥ २७ ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः ।
जघान चतुरश्चाश्वानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! तब दुर्योधनने भी पाञ्चालराज उत्तमौजाके चारों घोडों और दोनों पृष्ठ रक्षक योद्धाओंका सारथि सहित वध किया ॥ २८ ॥

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे ।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन् ॥ २९ ॥

रणभूमिमें जब उत्तमौजाके रथके घोडे और सारथी मारे गये; तब वह शीघ्रतासे अपने भाई युधामन्युके रथपर चढ गये ॥ २९ ॥

स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयान्शरैः ।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्भुवि ॥ ३० ॥

उन्होंने अपने भाईके रथपर चढके अनेक बाणोंसे राजा दुर्योधनके रथके घोडोंके ऊपर प्रहार किया, अनेक बाणोंकी चोटसे दुर्योधनके घोडे प्राणरहित होकर उस ही समय पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३० ॥

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा ।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे ॥ ३१ ॥

दुर्योधनके रथके घोडोंको मरते देखकर युधामन्युने युद्धमें अपने उत्तम बाणसे शीघ्र ही दुर्योधनके धनुष और बाणोंके भातेको काट दिया ॥ ३१ ॥

हताश्वसूतात्स रथादवप्लुत्य महारथः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ३२ ॥

तुम्हारे पुत्र महारथी दुर्योधन घोडे और सारथीके मारे जानेपर उस रथको त्यागके हाथमें गदा लेकर दोनों पाञ्चालराजपुत्रोंकी ओर दौडे ॥ ३२ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य क्रुद्धं परपुरंजयम् ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद्युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३३ ॥

युद्धामन्यु और उत्तमौजा शत्रुओंके नगरोंपर विजय पानेवाले दुर्योधनको क्रुद्ध होकर अपनी ओर आते देख रथसे कूदकर पृथ्वीपर स्थित हुए ॥ ३३ ॥

ततः स हेमचित्रं तं स्यन्दनप्रवरं गदी ।
गदया पोथयामास साश्वसूतध्वजं रणे ॥ ३४ ॥

अनन्तर गदाधारी दुर्योधनने सुवर्ण चित्रित उस उत्तम रथको घोडे, सारथी और ध्वजाके सहित अपनी गदाके प्रहारसे रणभूमिमें चूरचूर कर दिया ॥ ३४ ॥

हत्वा चैनं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ३५ ॥

तुम्हारे शत्रुतापन पुत्र दुर्योधनने इस प्रकार उस रथको चूर चूर करके, स्वयं घोडों और सारथिसे रहित हुए वे शीघ्रताके सहित मद्रराज शल्यके रथपर जा चढे ॥ ३५ ॥

पाञ्चालानां तु मुख्यौ तौ राजपुत्रौ महाबलौ ।
रथमन्यं समारुह्य धनंजयमभीयतुः ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ४५२६ ॥

अनन्तर वे दोनों पाञ्चाल सेनाके प्रमुख महाबलवान् राजपुत्र दूसरे रथपर चढके अर्जुनके समीप चले गये ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ ४५२६ ॥

१०६

धृतराष्ट्र उवाच

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च संप्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! युद्ध करनेके लिये एक दूसरेके सम्मुख होनेवाले कर्ण और भीमसेन दोनों ही महाबलवान् हैं; इससे अर्जुनके रथके निकट उन दोनोंका किस प्रकार युद्ध हुआ, उसे मेरे समीप तुम विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १ ॥

पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयस्तु राधेयो भीममागान्महारथः ॥ २ ॥

राधापुत्र महारथी कर्णको पहिले ही भीमसेनने युद्धमें पराजित किया था, तब वह फिर किस प्रकारसे उनके समीप युद्ध करनेके लिये आये ? ॥ २ ॥

भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथंसमाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ३ ॥

अथवा जो महारथी सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच रथियोंमें श्रेष्ठ कहके विख्यात है, सूतपुत्र कर्णसे समरमें युद्ध करनेके लिये भीमसेन कैसे उद्यत हुए ? ॥ ३ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नान्यतो भयमादत्त विना कर्णं धनुर्धरम् ॥ ४ ॥

भीष्म और द्रोणाचार्यसे पार होकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको अब महारथी कर्णके सिवा दूसरे किसीसे भय नहीं रहा है ॥ ४ ॥

भयान्न शेते सततं चिन्तयन्वै महारथम् ।
तं कथं सूतपुत्रं हि भीमोऽयुध्यत संयुगे ॥ ५ ॥

जिस महारथी कर्णके पराक्रमका सदा चिन्तन करते हुए युधिष्ठिर उसके भयके कारण नींद नहीं ले सकते थे, उसी सूतपुत्र कर्णके साथ भीमने युद्धभूमिमें किस तरह युद्ध किया ? ॥५॥

ब्रह्मण्यं वीर्यसंपन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं भीमोऽयुध्यत संयुगे ॥ ६ ॥

सञ्जय ! जो कर्ण ब्राह्मणोंमें निष्ठावान्, अत्यन्त पराक्रमी, युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाला और सम्पूर्ण योद्धाओंके बीच श्रेष्ठ है, उसके सङ्ग भीमने किस प्रकारसे युद्ध किया ? ॥ ६ ॥

यौ तौ समीयतुर्वीरावर्जुनस्य रथं प्रति ।
कथं नु तावयुध्येतां सूतपुत्रवृकोदरौ ॥ ७ ॥

जो हो, उन दोनों वीर सूतपुत्र कर्ण और भीमसेनका अर्जुनके रथके निकट जैसा युद्ध हुआ था, वह तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ७ ॥

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ ८ ॥

सूतपुत्र कर्णने कुन्तीके समीप पहिले अर्जुनके सिवा अन्य पाण्डवोंके ऊपर अपना भ्रातृभाव दिखाया था, और कर्ण स्वयं भी दयालु हैं; उन्होंने कुन्तीके वचनको स्मरण करके किस प्रकार भीमसेनके सङ्ग युद्ध किया ? ॥ ८ ॥

भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन्वैरं पुरा कृतम् ।
सोऽयुध्यत कथं वीरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ९ ॥

अथवा वीर भीमसेनने पहिलेकी शत्रुताका स्मरण करके सूतपुत्र कर्णके साथ उस समरमें कैसा युद्ध किया ? ॥ ९ ॥

आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे सहितान्पाण्डवानिति ॥ १० ॥

हे सूत ! मेरा पुत्र दुर्योधन सदा यह आशा करता है, कि कर्ण युद्धमें एकत्रित हुए सम्पूर्ण पाण्डवोंको पराजित करेंगे ॥ १० ॥

जयाशा यत्र मन्दस्य पुत्रस्य मम संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयुध्यत ॥ ११ ॥

युद्धमें मेरे मूर्ख पुत्रकी विजयकी आशा जिस कर्ण पर निर्भर है, उस कर्णने भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके साथ कैसा संग्राम किया ? ॥ ११ ॥

यं समाश्रित्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १२ ॥

हे तात ! जिस कर्णके आसरेसे मेरे पुत्रोंने महारथी पाण्डवोंके साथ शत्रुता की है, उस सूतपुत्र कर्णके साथ भीमने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १२ ॥

अनेकान्विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १३ ॥

और भीमसेन भी जिस सूतपुत्र कर्णके किये हुए नाना प्रकारके अनिष्टोंको सदा स्मरण करता रहता है, ऐसे भीमने कर्णके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १३ ॥

योऽजयत्पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥

जिस पराक्रमी पुरुषने एक ही रथके सहायतासे अकेले ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था, उस सूतपुत्रके साथ समरमें भीमने किस तरह युद्ध किया ? ॥ १४ ॥

यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १५ ॥

जो जन्मसे ही कवच और कुण्डलोंके सहित उत्पन्न हुआ है, ऐसे पराक्रमी सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनका कैसा संग्राम हुआ ? ॥ १५ ॥

यथा तयोर्युद्धमभूद्यश्चासीद्विजयी तयोः ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ १६ ॥

हे सञ्जय ! उन दोनों वीरोंका जैसा संग्राम हुआ था और उनमेंसे जिसको विजय प्राप्त हुई, उसे तुम मेरे समीप विस्तारपूर्वक वर्णन करो; क्योंकि तुम बोलनेवालोंमें निपुण हो ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच

भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरं कृष्णधनंजयौ ॥ १७ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! भीमसेनने रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णको त्यागके जहां पर श्रीकृष्ण और अर्जुन थे, उस ही स्थान पर जानेकी इच्छा की ॥ १७ ॥

तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ १८ ॥

जब भीमसेन श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर जाने लगे, त्योंही राधापुत्र कर्णने धावा करके उनके ऊपर कङ्कपत्र युक्त अपने तीक्ष्ण बाणोंकी ऐसी वर्षा की, जैसे बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करता है ॥ १८ ॥

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेणाभ्युत्स्मयन्बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥ १९ ॥

बलवान् अधिरथ पुत्रने विकसित कमलके समान वदनसे हंसकर जाते हुए भीमसेनको युद्धके लिये पुकारा ॥ १९ ॥

भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद्युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २० ॥

युद्धभूमिमें भीमसेन कर्णके उस आवाहनको न सह सके; वे अर्धमण्डल गतिसे घुमकर सूतपुत्रके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २० ॥

अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायसैः ।
द्वैरथे दंशितं यत्तं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २१ ॥

भीमसेन सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, कवचधारी कर्णको द्वैरथ युद्धके लिये संमुख आया देख, उनके ऊपर लोहेके बने हुए सीधे जानेवाले तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २१ ॥

विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमक्षिणोत् ।
तं च हत्वेतरान्सर्वान्हन्तुकामो महाबलः ॥ २२ ॥

महाबली भीमसेन कलहका अन्त करनेकी इच्छासे कर्णको मार डालना चाहते थे, इसलिये उन्हें अपने बाणोंसे पीडित करने लगे। वे कर्णको मारकर, सेनाके दूसरे सब योद्धाओंका भी वध करनेकी इच्छा करते थे ॥ २२ ॥

तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परंतपः ।
अमर्षी पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥ २३ ॥

मारिष! शत्रुतापन अमर्षी भीमसेन कुपित होकर कर्णके ऊपर अनेक प्रकारके भयङ्कर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २३ ॥

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत्सुमहायशाः ॥ २४ ॥

महायशस्वी परम अस्त्रज्ञ सूतपुत्र कर्णने मतवाले हाथीके समान भीमसेनकी बाणवर्षाको अपनी अस्त्रमायाके प्रभावसे ग्रस लिया ॥ २४ ॥

स यथावन्महाराज विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्रणे ॥ २५ ॥

महाराज! महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्ण अपनी विद्यासे आचार्यके समान यथावत् पूजित हो रणमें घूमने लगे ॥ २५ ॥

संरम्भेण तु युध्यन्तं भीमसेनं स्मयन्निव ।
अभ्यपद्यत राधेयस्तममर्षी वृकोदरम् ॥ २६ ॥

क्रुद्ध होकर युद्ध करनेवाले भीमसेनकी हंसी उडाता हुआसा अमर्षी राधापुत्र कर्ण उनके संमुख जा पहुंचा ॥ २६ ॥

तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ २७ ॥

उस रणभूमिमें चारों ओर युद्ध करते हुए सब वीरोंके देखते देखते कर्णने जो भीमसेनकी ऐसी हंसी करी वह भीमसेनसे नहीं सही गई ॥ २७ ॥

तं भीमसेनः संप्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान्क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ २८ ॥

बलवान् भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने सामने आये हुए कर्णके हृदयमें वत्सदन्त बाणोंसे इस प्रकार प्रहार किया, जैसे महावत मतवाले हाथीको अंकुशसे पीडित करता है ॥ २८ ॥

सूतं तु सूतपुत्रस्य सुपुङ्खैर्निशितैः शरैः ।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ २९ ॥

अनन्तर विचित्र कवच धारण करनेवाले सूतपुत्रके सारथिको उत्तम पानीसे बुझे हुए उत्तम पंखयुक्त इक्कीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २९ ॥

कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः संछन्नान्वातरंहसः ।
विव्याध तुरगान्वीरः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३० ॥

कर्णने भी पांच पांच बाणोंसे सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित वायुके समान वेगगामी भीमके रथके घोडोंको विद्ध किया ॥ ३० ॥

ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन्निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३१ ॥

राजन् ! इसके अनन्तर अर्द्धनिमेष भरके बीच भीमसेनपर कर्णने बाणोंका जालसा बिछाया दिखायी दिया ॥ ३१ ॥

सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३२ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे सारथी, ध्वजा और रथके सहित पाण्डुपुत्र भीमसेन आच्छादित होगये ॥ ३२ ॥

तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत्कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाप्यहनत्पार्श्वे नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३३ ॥

सूतपुत्र कर्णने क्रुद्ध होकर चौंसठ बाणोंसे भीमसेनके दृढ कवचको विदीर्ण किया और फिर भीमसेनको मर्मभेदी नाराच बाणोंसे कोखमें विद्ध किया ॥ ३३ ॥

ततोऽचिन्त्य महावेगान्कर्णकार्मुकनिःसृतान् ।
समाश्लिष्यदसंभ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३४ ॥

अनन्तर भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए अत्यंत वेगशाली बाणोंकी कुछ भी पर्वाह न करके निर्भयचित्तसे सूतपुत्रके समीप पहुंच गये ॥ ३४ ॥

स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद्भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३५ ॥

महाराज ! भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान बाणोंको अपने शरीरपर धारण करते हुए समरमें दुःखित नहीं हुए ॥ ३५ ॥

ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥

फिर पराक्रमके सहित अत्यंत तेज बत्तीस तीक्ष्ण भल्लोंसे प्रतापी भीमसेनने युद्धमें कर्णको विद्ध किया ॥ ३६ ॥

अयत्नेनैव तं कर्णः शरैरुप समाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ३७ ॥

कर्णने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी इच्छा करनेवाले महाबाहु भीमसेनपर अनायास ही अपने बाणोंकी बडी वर्षा की ॥ ३७ ॥

मृदुपूर्वं च राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३८ ॥

परन्तु राधापुत्र कर्ण रणभूमिमें भीमसेनके साथ कोमल युद्ध करते थे और भीमसेन पहिलेकी शत्रुताका स्मरण करके क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥

तं भीमसेनो नामृष्यदवमानममर्षणः ।
स तस्मै व्यसृजत्तूर्णं शरवर्षममित्रजित् ॥ ३९ ॥

शत्रुओंको जीतनेवाले अमर्षी भीमने कर्णके अनादरको सहन नहीं किया; और वे शीघ्रताके सहित उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३९ ॥

ते शराः प्रेषिता राजन्भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो भीमाः कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४० ॥

भीमसेनके छोडे हुए वे भयंकर बाण शब्द करनेवाले पक्षियोंके समान रणभूमिमें चारों ओर गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ ४० ॥

हेमपुङ्खा महाराज भीमसेनधनुश्च्युताः ।
अभ्यद्रवंस्ते राधेयं वृकाः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४१ ॥

हे महाराज ! भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए वे सब सुवर्ण पंख भूषित बाण इस प्रकार राधा-पुत्र कर्णके उपर गिरने लगे, जैसे सियार क्षुद्र मृगकी ओर वेगपूर्वक दौडते हैं ॥ ४१ ॥

कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन्व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि संयुगे ॥ ४२ ॥

रणभूमिमें चारों ओरसे भीमसेनके बाणजालसे छिप कर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने उनके ऊपर अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४२ ॥

तस्य तानशनिप्रख्यानिषून्समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसंप्राप्तान्वृकोदरः ॥ ४३ ॥
भीमसेनने युद्धमें शोभायमान होनेवाले कर्णके वज्रके समान बाणोंको अपने निकट आनेसे पहलेही अनेक भल्लोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४३ ॥

पुनश्च शरवर्षेण छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनं महारथम् ॥ ४४ ॥
भारत ! परन्तु सूर्यपुत्र कर्णने युद्धमें अपने बाणोंकी वर्षासे फिर महारथी भीमसेनको छिपा दिया ॥ ४४ ॥

तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४५ ॥
हे भारत ! उस समय युद्धमें कर्णके बाणोंसे भीमसेनकी सम्पूर्ण शरीर बाणमय हो गया था, इस कारण वे कंटकोंसे युक्त साहीके समान दीखते थे ॥ ४५ ॥

हेमपुङ्खाञ्शिलाधौतान्कर्णचापच्युताञ्शरान् ।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव भास्करः ॥ ४६ ॥
वीर भीमसेनने कर्णके धनुषसे छूटे हुए, शिलापर तेज किये हुए सुवर्ण पंखयुक्त बाणोंको युद्धमें अपने शरीरपर इस प्रकार धारण किया, जैसे सूर्य अपने किरणोंको धारण करते हैं ॥ ४६ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यरोचत ।
तपनीयनिभैः पुष्पैः पलाश इव कानने ॥ ४७ ॥
उस समय भीमसेनका सब शरीर रुधिरसे परिपूर्ण हो गया था, उससे अरण्यमें सुवर्णके समान वर्णवाले फूले हुए पुष्पोंसे सम्पन्न पलाश वृक्षके समान वे शोभित हो रहे थे ॥४७॥

तत्तु भीमो महाराज कर्णस्य चरितं रणे ।
नामृष्यत महेष्वासः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ४८ ॥
परन्तु महाधनुर्द्धर भीमसेनने युद्धभूमिमें सूतपुत्र कर्णके वैसे पराक्रमको सहन नहीं किया । उन्होंने क्रोधसे दोनों नेत्र लाल किये ॥ ४८ ॥

स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समर्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ४९ ॥
उन्होंने पचीस नाराच बाणोंसे कर्णको विद्ध किया । तब कर्ण विषधर सर्पोंसे युक्त श्वेत पर्वतके समान दीखते थे ॥ ४९ ॥

एवं विव्याध पुनर्भीमः चतुर्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं महारणे ॥ ५० ॥

फिर देवोंके समान पराक्रमी भीमसेनने उस रणभूमिमें चौदह बाणोंसे सूतपुत्र कर्णके मर्मस्थलोंमें प्रहार किया ॥ ५० ॥

ततः कर्णस्य संक्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं सर्वोपकरणानि च ॥ ५१ ॥

अनन्तर कर्णपर अत्यंत क्रुद्ध हुए प्रतापी भीमसेनने शीघ्रताके सहित कर्णका धनुष और सब सामग्री भी काट डाली ॥ ५१ ॥

जघान चतुरश्चाश्वान्सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५२ ॥

और शीघ्रतापूर्वक अनेक बाणोंसे उनके रथके चारों घोडे और सारथीका भी वध किया; फिर सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान नाराच बाणोंसे कर्णके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ५२ ॥

ते जग्मुर्धरणीं सर्वे कर्णं निर्भिद्य मारिष ।
यथा हि जलदं भित्त्वा राजन्सूर्यस्य रश्मयः ॥ ५३ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें बादलोंको भेदकर सब ओर फैलती हैं, वैसे ही भीमसेनके बाण कर्णके शरीरको भेद कर पृथ्वीमें घुस गये ॥ ५३ ॥

स वैकल्यं महत्प्राप्य छिन्नधन्वा शरार्दितः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ५४ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ ४५८० ॥

अधिरथ पुत्र कर्ण अपने पराक्रमका अभिमानी होनेपर भी धनुषके कटने पर भीमके बाणोंसे पीडित हो अत्यंत व्याकुल हो गया; और दूसरे रथ पर बैठनेके लिये वहांसे भाग गया ॥ ५४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ छवां अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ ४५८० ॥

: १०७ :

धृतराष्ट्र उवाच

यस्मिञ्जयाशा सततं पुत्राणां मम सञ्जय ।
तं दृष्ट्वा विमुखं संख्ये किं नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीदतः परम् ॥ १ ॥

संजय ! जिस पर मेरे पुत्रोंकी विजयकी आशा सतत लगाई हुई थी, उस ही सूतपुत्र कर्णको युद्धमें विमुख हुआ देखकर दुर्योधनने क्या कहा ? और कर्णने उस समय समरमें किस कार्यका अनुष्ठान किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ।
रथमन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी भीमसेनको युद्धभूमिमें देखकर वायुके वेगसे उछलते समुद्रके समान कर्णने भली भांतिसे सज्जित हुए दूसरे उत्तम रथ पर चढके शीघ्रताके सहित फिर पाण्डुपुत्र भीमसेन पर आक्रमण किया ॥ २ ॥

क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशां पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैवस्वतमुखे हुतम् ॥ ३ ॥

पृथ्वीपते ! तुम्हारे पुत्रलोग अधिरथ पुत्र कर्णको क्रुद्ध हुए देखकर भीमसेनको मानो अग्निके कराल मुखमें पडे हुएके समान ही बोध करने लगे ॥ ३ ॥

चापशब्दं महत्कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥

अनन्तर राधापुत्र कर्ण धनुषकी टङ्कार और तलत्राणके भयंकर शब्दके सहित भीमसेनके रथके समीप उपस्थित हुए ॥ ४ ॥

पुनरेव ततो राजन्महानासीत्सुदारुणः ।
विमर्दः सूतपुत्रस्य भीमस्य च विशां पते ॥ ५ ॥

राजन् ! तब फिर भीमसेन और सूतपुत्र कर्णका महान् अत्यंत घोर संग्राम होने लगा ॥५॥

संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षांचक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ६ ॥

एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों महाबाहु वीर क्रुद्ध होकर आपसमें एक दूसरेकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानों नेत्रसे देखकर ही एक दूसरेको भस्म कर देंगे ॥ ६ ॥

क्रोधरक्तेक्षणौ क्रुद्धौ निःश्वसन्तौ महारथौ ।
युद्धेऽन्योन्यं समासाद्य ततक्षतुररिंदमौ ॥ ७ ॥

उन दोनोंकी आंखें क्रोधसे लाल हो गयी थीं; दोनों ही महारथी क्रुद्ध होकर लंबी सांस ले रहे थे; उन दोनों शत्रुनाशन वीरोंने युद्धभूमिमें परस्पर भिडकर अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको क्षत विक्षत कर दिया ॥ ७ ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ८ ॥

वे दोनों शीघ्रतासे गमन करनेमें बाजपक्षी और क्रोधमें व्याघ्र और शरभोंके समान क्रुद्ध होकर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

ततो भीमः स्मरन्क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव प्राप्तं दुःखमरिंदमः ॥ ९ ॥

शत्रुदमन भीमसेनने जूएके खेलके समय, वनवास कालमें और विराट नगरमें छिपकर निवास करनेमें जो कुछ क्लेश पाया था ॥ ९ ॥

राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवात्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान्सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥ १० ॥

और तुम्हारे पुत्रोंने जो उनके राज्यों तथा उज्ज्वल रत्नोंका हरण किया था, तुमने जो अपने पुत्रोंके सहित उन लोगोंको नाना प्रकारके दुःख सतत दिये थे ॥ १० ॥

दग्धुमैच्छश्च यत्कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ ११ ॥

विशेष करके तुमने जो निरपराधिनी कुन्तिको पुत्रोंके सहित भस्म करनेकी इच्छा की थी, सभामें जो तुम्हारे दुरात्मा पुत्रोंने द्रौपदीको अत्यंत क्लेश पहुंचाये थे; ॥ ११ ॥

पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
नरके पतिताः पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥ १२ ॥

कर्णने कहा था, कि 'हे द्रौपदी ! तुम्हारे ये पति अब नहीं रहे हैं, थोथे तिलोंके समान इस समय कुन्तीके सब पुत्र निर्वीर्य होकर नरकमें पतित हुए हैं, इससे तुम और किसीको अपना पति बना लो' ॥ १२ ॥

समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कुरवस्तदा ।
दासीभोगेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १३ ॥

तुम्हारे सामने ही कौरवोंने जो उस समय द्रौपदीसे कहा था और तुम्हारे पुत्र द्रौपदीको दासी बनाकर उसका उपभोग करना चाहते थे ॥ १३ ॥

×

यच्चापि तान्प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान्कर्णः सभायां संनिधौ तव ॥ १४ ॥

पाण्डव लोग जिस समय काले हरिनके चमडे धारण करके वनको जाने लगे; उस समय कर्णने तुम्हारे संमुखमें ही सभाके बीच उन लोगोंको जो सब कठोर वचन कहे थे; ॥ १४ ॥

तृणीकृत्य च यत्पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान्समस्थो हि संरम्भाद्गतचेतसः ॥ १५ ॥

तुम्हारा पुत्र दुर्योधन जो उस समय पाण्डवोंको तृणवत् समझकर अभिमानमें फूल कर आनन्दसे नृत्य करता था, तथा स्वयं उत्तम स्थितीमें रहकर संकटमें पडे हुए पाण्डवोंके प्रति क्रोध करके जो अचेतसा हुआ था ॥ १५ ॥

बाल्यात्प्रभृति चारिघ्नस्तानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ १६ ॥

इन सब बातोंको तथा बालक अवस्थासे अबतक तुम्हारे कारण जो कुछ क्लेश पाये थे, उन सब दुःखोंको याद करके शत्रुनाशन धर्मात्मा भीमसेन अपने जीवनसे उदासीन हो गये ॥ १६ ॥

ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ १७ ॥

तब भरतवंशी पुरुषसिंह भीमने अपने प्राणोंकी आशा त्याग कर सुवर्णचित्रित दुर्धर्ष महाधनुषको चलाकर कर्णपर आक्रमण किया ॥ १७ ॥

स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्रच्छादयत्प्रभाम् ॥ १८ ॥

भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके रथ पर शिला पर घिसे हुए प्रकाशमान तेजस्वी बाणोंका जालसा बिछा दिया और सूर्यकी प्रभाको आच्छादित किया ॥ १८ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्यञ्शिताञ्शरान् ।
व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ १९ ॥

अनन्तर अधिरथ पुत्र कर्णने हंसकर अपने तीक्ष्ण पंखयुक्त बाणोंसे भीमसेनके उन बाणोंको शीघ्रही काट दिया ॥ १९ ॥

महारथो महाबाहुर्महावेगैर्महाबलः ।
विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैः शरैः ॥ २० ॥

महारथी महाबाहु महाबलवान् अधिरथ पुत्र कर्णने भीमको नौ अत्यंत वेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २० ॥

स तोत्त्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसंभ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २१ ॥
भीमसेन कर्णके पंखयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे निवारित होकर मानो अंकुशसे पीडित मतवाले हाथी तुल्य क्रुद्ध होकर निर्भय चित्तसे सूतपुत्र कर्णकी ओर दौडे ॥ २१ ॥

तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ योद्धुं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २२ ॥
पाण्डवश्रेष्ठ वेगशाली भीमको अत्यन्त वेगके सहित अपनी ओर युद्धकी इच्छासे आते देख, कर्ण इस प्रकार वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीकी ओर दौडता है ॥ २२ ॥

ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतनिनादितम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २३ ॥
अनन्तर कर्णने प्रसन्न होकर सौ नगारोंके समान शब्दवाले अपने शंखको बजाया; इस कारण पाण्डवोंकी सेनामें उछलित समुद्रके समान हलचल मच गयी ॥ २३ ॥

तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा रथनागाश्वपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य छादयामास सायकैः ॥ २४ ॥
भीमसेनने रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंसे युक्त सेनाको अशांत हुई देख, कर्णके पास जाकर बाणोंकी वर्षासे कर्णको छिपा दिया ॥ २४ ॥

अश्वानृक्षसवर्णांस्तु हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥ २५ ॥
युद्धमें कर्णने भीमसेनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपाकर रीछके समान वर्णवाले अपने घोडोंको भीमसेनके हंसवर्णके उत्तम घोडोंसे मिला दिया ॥ २५ ॥

ऋक्षवर्णान्हयान्कर्कैर्मिश्रान्मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद्बलम् ॥ २६ ॥
उन हंस वर्णवाले घोडोंके सङ्ग वायुके समान वेगशील रीछ वर्णवाले घोडोंका मिलन देखकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके बीच अत्यन्त ही हाहाकार शब्द होने लगा ॥ २६ ॥

ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ २७ ॥
महाराज ! वे हंसवर्ण और रीछ वर्णवाले वायुके समान वेगवाले घोडे आपसमें मिलकर, जैसे आकाशमें सफेद और काले बादल शोभित होते हैं वैसेही अधिक शोभित होने लगे ॥ २७ ॥

संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
संत्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ २८ ॥

क्रोधसे लालनेत्र किये हुए कर्ण और भीमसेनको अत्यन्त क्रुद्ध हुए देख तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा भी भयसे कांपने लगे ॥ २८ ॥

यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनोंका संग्राम यमराजके राज्यके समान भयंकर और प्रेतराजके पुरीके समान महाघोर दीख पडने लगा ॥ २९ ॥

समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः ।
नालक्षयञ्जयं व्यक्तमेकैकस्य निवारणे ॥ ३० ॥

महारथियोंने उन पुरुषसिंहोंके अद्भुत संग्रामको देखकर उन दोनोंमेंसे किसकी विजय होगी उसका निश्चय नहीं किया ॥ ३० ॥

तयोः प्रैक्षन्त संमर्दं संनिकृष्टमहास्त्रयोः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्सपुत्रस्य विशां पते ॥ ३१ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पुत्रोंसहित तुम्हारी अनितिके कारण उन महाअस्त्र चलानेवाले दोनों पुरुष-सिंहोंका अत्यंत निकटसे होनेवाला भयंकर संग्राम सब लोग देखने लगे ॥ ३१ ॥

छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः ।
शरजालावृतं व्योम चक्राते शरवृष्टिभिः ॥ ३२ ॥

वे दोनों शत्रुनाशन कर्ण और भीमसेन आपसमें एक दूसरेको अपने बाणोंके जालसे छिपाते हुए, आकाशमण्डलको बाण वर्षासे भरने लगे ॥ ३२ ॥

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३३ ॥

अपने तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों ही महारथी वीर जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान अत्यंत प्रेक्षणीय हो रहे थे ॥ ३३ ॥

सुवर्णविकृतान्बाणान्प्रमुञ्चन्तावरिंदमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते वह्न्युल्काभिरिव प्रभो ॥ ३४ ॥

हे राजेन्द्र ! उन दोनों शत्रुनाशन वीरोंने सुवर्णमय बाणोंकी वर्षा करके आकाशको प्रकाशमय कर दिया, जैसे प्रज्वलित उल्काओंके गिरनेसे वह प्रकाशित होता है ॥ ३४ ॥

ताभ्यां मुक्ता व्यकाशन्त कङ्कबर्हिणवाससः ।
पङ्क्त्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ ३५ ॥
उन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए कंक और गीध पंखयुक्त बाण शरत् ऋतुके आकाशमें मतवाले सारसोंकी पांतिके समान शोभित होकर दिखायी देने लगे ॥ ३५ ॥

संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिंदमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनंजयौ ॥ ३६ ॥
श्रीकृष्ण और अर्जुनने शत्रुदमन भीमसेनको अधिरथपुत्र कर्णके सङ्ग युद्ध करते हुए देख उनके ऊपर अत्यन्त कठिन भार पडा है ऐसे समझा ॥ ३६ ॥

तत्राधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढाहताः ।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ३७ ॥
वहां कर्ण और भीमके छोडे हुए बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए घोडे, मनुष्य और हाथी बाणोंके गिरनेके स्थानको अतिक्रम करके दूर जाकर गिरते थे ॥ ३७ ॥

पतद्भिः पतितैश्चान्यैर्गतासुभिरनेकशः ।
कृतो महान्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ३८ ॥
राजन् ! कितने ही सेनाके पुरुष गिर रहे थे, कितने ही गिर चुके थे और दूसरे कितने ही योद्धा प्राणरहित हो गये थे, इसी प्रकार तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके योद्धाओंका बहुत ही नाश हो गया ॥ ३८ ॥

मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः ।
क्षणेन भूमिः संजज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ३९ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ४६१२ ॥
भरतश्रेष्ठ ! मनुष्य, घोडे और हाथियोंके मृत शरीरोंसे रणभूमि मुहूर्त्त भरके बीचमें परिपूरित हो गई ॥ ३९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥ ४६१२ ॥

: १०८ :

धृतराष्ट्र उवाच
अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत्कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥
राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! भीमसेनके पराक्रमको मैं अत्यंत आश्चर्यमय समझता हूं; क्योंकि उसने समरमें अत्यन्त पराक्रमी कर्णके सङ्ग भी युद्ध किया ॥ १ ॥

त्रिदशानपि चोद्युक्तान्सर्वशस्त्रभृतां वरान्युधि ।
वारयेद्यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानवान् ॥ २ ॥

जो कर्ण युद्धके लिये सर्व शस्त्रोंको ग्रहण करके तैयार हुए, यक्ष, असुर और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण देवताओंको भी युद्धभूमिमें निवारण कर सकते हैं ॥ २ ॥

स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत्संयुगे तात तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

तब वह किस कारणसे विजय लक्ष्मीसे प्रकाशित तेजस्वी पाण्डुपुत्रके समीप युद्धमें कृतकार्य न हो सके ? संजय ! इसका कारण मुझे कहो ॥ ३ ॥

कथं च युद्धं भूयोऽभूत्तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाजय एव वा ॥ ४ ॥

उन दोनोंमें प्राणोंका पण लगाकर किस प्रकार युद्ध हुआ ? इसमें ही जय अथवा पराजय अवलंबित है, ऐसा मैं समझता हूं ॥ ४ ॥

कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सगोविन्दान्ससात्वतान् ॥ ५ ॥

हे सूत ! मेरा पुत्र दुर्योधन कर्णको पाकर ही युद्धभूमिमें श्रीकृष्ण और सात्यकि आदि यादवोंके सहित कुन्तीपुत्रोंको जीतनेका उत्साह किया करता है ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद्भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६ ॥

परन्तु युद्धमें भयङ्कर कर्म करनेवाले भीमसेनके समीप कर्णके बार बार पराजित होनेका वृत्तान्त सुनकर मैं मोहित हो रहा हूं; ॥ ६ ॥

विनष्टान्कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
न हि कर्णो महेष्वासान्पार्थाञ्जेष्यति संजय ॥ ७ ॥

मैं अपने पुत्रकी दुष्टनीतिसे सम्पूर्ण कौरवोंको नष्ट हुआ ही समझ रहा हूं, क्योंकि संजय ! कर्ण कभी महाधनुर्द्धर कुन्तीपुत्रोंको पराजित नहीं कर सकेंगे ॥ ७ ॥

कृतवान्यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥

कर्णने पाण्डवोंके सङ्ग जो जो युद्ध किये हैं, उन सबमें पाण्डवोंने ही युद्धभूमिमें कर्णको जीता है ॥ ८ ॥

अजय्याः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः ।
न च तद्बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥
हे तात ! मनुष्योंकी बात तो दूर है, पाण्डव लोग इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवताओंसे भी अजेय हैं, परन्तु इस बातको मेरा मूर्ख पुत्र दुर्योधन नहीं समझता है ॥ ९ ॥

धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते ॥ १० ॥
जैसे मधुका लोभी मूर्ख पुरुष पहाड पर चढके अपने गिरनेका विषय मालूम नहीं कर सकता, वैसे ही मेरा पुत्र कुबेरके समान कुन्तीके पुत्रके धनसम्पत्तिको हरण करके मूर्खताके कारण अपनी मृत्युका विषय नहीं समझ सकता है ॥ १० ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।
जितानित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥
वह छली दुर्योधन शठतासे महात्मा पाण्डवोंका राज्य हरण कर, उन्हें पराजित समझके उनका अनादर किया करता है ॥ ११ ॥

पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः ॥ १२ ॥
अकृतात्मा मैंने भी पुत्र स्नेहके वशमें होकर सदा धर्मात्मा पाण्डुपुत्रोंको उनके ऐश्वर्यसे वञ्चित किया है ॥ १२ ॥

शमकामः सदा पार्थो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मन्वानैः पुत्रैर्मम निराकृतः ॥ १३ ॥
दीर्घदर्शी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने अपने भाईयोंके सहित सदा शान्तिकी इच्छा की थी, परन्तु मेरे पुत्रोंने उन्हें असमर्थ समझके उनका तिरस्कार किया है ॥ १३ ॥

तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥
महाबाहु भीमसेन दिये हुए नाना प्रकारके क्लेश और सम्पूर्ण ठगहारीयोंको स्मरण करके सूतपुत्र कर्णके सङ्ग युद्ध करता है ॥ १४ ॥

तस्मान्मे संजय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५ ॥
अतः संजय ! योद्धाओंमें श्रेष्ठ उन दोनों पुरुषसिंह कर्ण और भीमने एक दूसरेके वधकी इच्छासे युद्धभूमिमें जिस प्रकार युद्ध किया, वह वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच

शृणु राजन्यथा वृत्तः संग्रामः कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वने कुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥

सञ्जय बोले-- महाराज ! जैसे वनमें दो मतवाले हाथी एक दूसरेके वधकी इच्छासे परस्पर लडते हैं, वैसेही कर्ण और भीमसेनका जो महाघोर संग्राम हुआ था, उसे तुम चित्त लगाकर सुनो ॥ १६ ॥

राजन्वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिंदमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥

राजन् ! पराक्रमी कर्णने क्रुद्ध होकर शत्रुनाशन क्रोधी पराक्रम करनेवाले भीमसेनको तीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १७ ॥

महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः ।
आहनद्भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णने महान् वेगवान्, सुवर्णमय प्रकाशमान् अग्रभागवाले बाणोंसे भीमपर प्रहार किया ॥ १८ ॥

तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत्क्षितौ ॥ १९ ॥

परन्तु भीमसेनने बाण चलानेके समय कर्णका धनुष तीन तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया और एक भल्ल मारकर उनके सारथीको रथसे नीचे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १९ ॥

स काङ्क्षन्भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो वृषः ।
शक्तिं कनकवैडूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २० ॥

अनन्तर भीमसेनके वधकी इच्छा करके सूर्यपुत्र कर्णने सुवर्ण और वैडूर्यमणिसे चित्रित डंडेवाली विचित्र शक्ति वेगपूर्वक हाथमें ले ली ॥ २० ॥

प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयः संधाय च महाबलः ।
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव ॥ २१ ॥

अनन्तर महाबलवान् राधापुत्र कर्णने उस महा भयङ्कर दूसरी कालकी शक्तिके समान दीखनेवाली, जीवितका नाश करनेवाली महा शक्तिको ऊपर उठाकर भीमसेनकी ओर चलाया ॥ २१ ॥

शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम् ।
ननाद सुमहानादं बलवान्सूतनन्दनः ।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हृषिताभवन् ॥ २२ ॥

इन्द्रके वज्रके समान उस शक्तिको छोडकर बलवान् सुतपुत्र कर्णने बडे जोरसे सिंहनाद किया; तब तुम्हारे पुत्र कर्णके सिंहनादको सुनकर आनन्दित हुए ॥ २२ ॥

तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २३ ॥

भीमसेनने कर्णके हाथसे छूटी हुई सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान उस शक्तिको सात बाणोंसे आकाशमें ही काटके गिरा दिया ॥ २३ ॥

छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसंनिभाम् ।
मार्गमाण इव प्राणान्सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २४ ॥

मारिष ! उस समय केंचुलीसे छूटे हुए सर्पके समान भयङ्करी उस शक्तिको काटकर भीमसेनने सूतपुत्र कर्णका वध करनेकी इच्छासे ॥ २४ ॥

प्राहिणोन्नव संरब्धः शरान्बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाधौतान्यमदण्डोपमान्मृधे ॥ २५ ॥

युद्धमें क्रोधपूर्वक सुवर्णपंख चित्रित, मोरपंखवाले शिलापर घिसे हुए, यमदण्डके समान भयंकर नौ तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ २५ ॥

कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विकृष्य च महातेजा व्यसृजत्सायकान्नव ॥ २६ ॥

कर्णने भी दूसरा सुवर्णमय दुर्धर्ष महातेजस्वी धनुष ग्रहण करके उसको खींचकर भीमसेनके ऊपर नौ बाणोंकी वर्षा की ॥ २६ ॥

तान्पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणेन निर्मुक्तान्नव राजन्महाशरान् ।
छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत् ॥ २७ ॥

पाण्डुपुत्र भीमसेनने कर्णके चलाये हुए नौ तीक्ष्ण महान् बाणोंको नतपर्व नौ बाणोंसे काटके गिरा दिया । महाराज ! भीमसेन कर्णके बाणोंको काटकर सिंहकी भांति गर्जने लगे ॥२७॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वाशितान्तरे ।
शार्दूलाविव चान्योन्यमत्यर्थं च ह्यगर्जताम् ॥ २८ ॥

जैसे गौके लिये दो वृषभ हंकडते हैं और मांसके लिये दो शार्दूल परस्पर अत्यंत जूझकर गर्जते हैं, वैसे ही वे दोनों बलवान् वीर युद्धभूमिमें गर्जने लगे ॥ २८ ॥

अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ ॥ २९ ॥
जैसे गोशालाओंमें दो बडे वृषभ आपसमें प्रहार करनेकी इच्छासे एक दूसरेकी ओर देखते हैं, वैसे ही परस्पर चोट करनेकी अभिलाषा रखकर दूसरेके छिद्रको अवलोकन करनेके लिये एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ २९ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३० ॥
जैसे दो मतवाले हाथी आपसमें एक दूसरेको दांतोंके अग्रभागोंसे पीडित करते हैं, वैसे ही वे दोनों कानपर्यन्त धनुष खींचकर बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ३० ॥

निर्दहन्तौ महाराज शरवृष्ट्या परस्परम् ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ । ॥ ३१ ॥
महाराज ! वे दोनों क्रोधसे नेत्र लाल करके परस्पर आंखें फाडकर देखते अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको दग्धसे करने लगे ॥ ३१ ॥

प्रहसन्तौ तथान्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ।
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ॥ ३२ ॥
उस समय वे दोनों कभी ऊंचे स्वरसे हंसते, कभी बारबार एक दूसरेकी निन्दा करते और शंख बजाते हुए परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ।
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान्बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३३ ॥
महाराज ! भीमसेनने फिर सूतपुत्र कर्णके धनुषकी मूठ काट दिया और फिर उनके शंख वर्ण सफेद घोडोंको अपने बाणोंसे यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३३ ॥

तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ।
वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाथ दुर्जयम् ॥ ३४ ॥
तब राजा दुर्योधन कर्णको इस प्रकार आपद्ग्रस्त देखकर क्रोधसे कम्पितसे होकर, दुर्जयको आदेश देते हुए बोले ॥ ३४ ॥

गच्छ दुर्जय राधेयं पुरा ग्रसति पाण्डवः ।
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ॥ ३५ ॥
हे दुर्जय ! शीघ्र ही गमन करो, यह देखो पाण्डुपुत्र भीम राधापुत्र कर्णको सामने ही नाश करनेकी इच्छा करता है, इससे तुम कर्णके सहायक होकर उस बिना दाढी-मूंछवाले भीमसेनका शीघ्र संहार करो ॥ ३५ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रस्तवात्मजम् ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्याक्षक्तं विकिरञ्शरान् ॥ ३६ ॥

ऐसा आदेश मिलनेपर तुम्हारे पुत्र दुर्जय तुम्हारे दूसरे पुत्र दुर्योधनको ऐसा ही होगा कहकर अपने बाणोंको चलाते हुए कर्णके सङ्ग युद्ध करनेवाले भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥

स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरर्दयत् ।
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ॥ ३७ ॥

उन्होंने नौ बाणोंसे भीमसेनको, आठ बाणोंसे उनके रथके घोडेको और छः बाणोंसे सारथी और तीन बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा विद्ध करके, फिर सात बाणोंसे भीमसेन पर प्रहार किया ॥ ३७ ॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् ॥ ३८ ॥

अनन्तर भीमसेनने भी अत्यंत क्रुद्ध होकर अपने वेगवान् बाणोंसे दुर्जयके मर्मस्थलको विदीर्ण करके उसे सारथी और घोडोंके सहित यमलोकमें भेज दिया ॥ ३८ ॥

स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ।
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ ३९ ॥

सुन्दर आभूषणोंसे शोभित तुम्हारे पुत्रको चेष्टायुक्त सर्पके समान पृथ्वीमें गिरते देख, कर्णने शोकार्त होकर रुदन करते उनकी प्रदक्षिणा की ॥ ३९ ॥

स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ।
समाचिनोद्बाणगणैः शतघ्नीमिव शङ्कुभिः ॥ ४० ॥

परन्तु भीमसेन पहिलेसे ही अत्यन्त वैर करनेवाले कर्णको रथरहित करके हंसकर उन्हें अपने शतघ्नीके समान शंकुबाणोंके समूहोंसे विद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

तथाप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानः स्म सायकैः ।
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ४६६० ॥

महाराज ! शत्रुतापन अतिरथी कर्ण भीमसेनके बाणोंसे इस प्रकार विद्ध होकर भी उस क्रोधमूर्त्तिवाले भीमसेनको युद्धभूमिमें छोडकर भाग नहीं गया ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ ४६६० ॥

: १०९ :

संजय उवाच

स तथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय सद्यो विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले- हे महाराज ! इस प्रकार कर्ण रथरहित और भीमसेनसे फिर पराजित होकर, फिर दूसरे रथ पर चढकर पाण्डुपुत्र भीमसेनको शीघ्रतासे विद्ध करने लगे ॥ १ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

जैसे दो मतवाले हाथी परस्पर भिडकर अपने दांतोंके अग्र भागोंसे एक दूसरेपर प्रहार करते हैं, वैसे ही वे दोनों अपने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोडे गये बाणोंसे एक दूसरेको विद्ध करने लगे ॥ २॥

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमं बलवदर्दयत् ।
ननाद बलवन्नादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥

अनन्तर कर्णने भीमसेनको अपने बाण समूहोंसे बलपूर्वक पीडित किया; उसने जोरसे सिंहनाद किया और फिर उनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ३ ॥

तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥

तब भीमसेनने भी सीधे जानेवाले बाणोंसे कर्णको प्रहार करके फिर उन्हें बीस नतपर्व बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४ ॥

कर्णस्तु नवभिर्भीमं विद्ध्वा राजन्स्तनान्तरे ।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥

राजन् ! कर्णने भीमसेनकी वक्षस्थलमें नौ बाणोंसे प्रहार करके, एक तीक्ष्ण बाणसे उनकी ध्वजाको भी विद्ध किया ॥ ५ ॥

सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत ।
तोत्त्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥

इसके अनन्तर भीमसेनने तिरसठ बाणोंसे कर्णको इस प्रकार विद्ध किया जैसे अंकुश देकर बडे हाथीको और घोडेको कोडोंसे पीटकर उत्तेजित करते हैं ॥ ६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सृक्किणी लेलिहन्वीरः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥

वीर कर्ण यशस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर क्रोधसे नेत्र लाल कर ओंठ चाटने लगे ॥ ७ ॥

ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ८ ॥

अनन्तर जैसे इन्द्रने बलासुरके ऊपर वज्र चलाया था, वैसे ही सम्पूर्ण शरीरको विदारनेमें समर्थ एक भयङ्कर बाण ग्रहण करके भीमसेनकी ओर चलाया ॥ ८ ॥

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः ।
अगच्छद्दारयन्भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥ ९ ॥

समरमें सूतपुत्र कर्णके धनुषसे छूटा हुआ वह विचित्र पंखयुक्त बाण भीमसेनके शरीरको भेदकर पृथ्वीको विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें घुस गया ॥ ९ ॥

सर्वशैक्यां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन् ॥ १० ॥

फिर भीमने चार हाथके परिमाणवाली, लोहमय, छः कोणोंवाली, सुवर्णभूषित एक भयंकरी गदा उठाकर कुछ भी विचार न करके कर्णपर चलायी ॥ १० ॥

तया जघानाधिरथेः सदश्वान्साधुवाहिनः ।
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥ ११ ॥

जैसे इन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रसे असुरोंका नाश किया था, वैसे ही क्रुद्ध भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके रथमें जुते उत्तम घोड़ोंको गदाके प्रहारसे मार डाला ॥ ११ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ।
ध्वजमाधिरथेश्छित्त्वा सूतमभ्यहनत्तदा ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर महाबाहु भीमसेनने दो तेज क्षुरोंसे राधापुत्र कर्णके रथकी ध्वजा काटकर, फिर सारथीका भी वध किया ॥ १२ ॥

हताश्वसूतमुत्सृज्य रथं स पतितध्वजम् ।
विस्फारयन्धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः ॥ १३ ॥

घोड़े और सारथीके मारे जाने और ध्वजाके गिर जानेपर कर्ण उस रथको त्यागके धनुषकी टंकार करता हुआ खिन्न मन होकर पृथ्वी पर स्थित हुए ॥ १३ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ।
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद्रिपुम् ॥ १४ ॥

परन्तु उस स्थल पर हम लोगोंने राधापुत्र कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा कि रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने रथरहित होकर भी अपने शत्रु भीमसेनको आगे बढनेसे रोका ॥ १४ ॥

विरथं तं रथश्रेष्ठं दृष्ट्वाधिरथिमाहवे ।
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् ॥ १५ ॥

राजन् ! अनन्तर राजा दुर्योधन नरश्रेष्ठ कर्णको युद्धमें रथरहित खडे देखकर अपने भाई दुर्मुखसे बोले ॥ १५ ॥

एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ।
तं रथेन नरश्रेष्ठं संपादय महारथम् ॥ १६ ॥

हे दुर्मुख ! देखो, यह राधापुत्र कर्ण भीमने रथरहित कर दिये हैं; इससे तुम महारथी नरश्रेष्ठ कर्णको शीघ्र ही रथयुक्त करो ॥ १६ ॥

दुर्योधनवचः श्रुत्वा ततो भारत दुर्मुखः ।
त्वरमाणोऽभ्ययात्कर्णं भीमं चावारयच्छरैः ॥ १७ ॥

दुर्योधनके वचनको सुनकर दुर्मुख शीघ्रताके सहित रथ लेकर कर्णके समीप उपस्थित हुए और भीमसेनको भी अपने बाणोंसे निवारण करने लगे ॥ १७ ॥

दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ।
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत्सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ १८ ॥

वायुपुत्र भीमसेन युद्धभूमिमें दुर्मुखको सूतपुत्र कर्णका अनुगामी होते देख, अत्यंत हर्षित हुए और अपने ओंठ चाटने लगे ॥ १८ ॥

ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ।
दुर्मुखाय रथं शीघ्रं प्रेषयामास पाण्डवः ॥ १९ ॥

फिर कर्णको अपने बाणोंसे रोक करके, पाण्डुपुत्र भीम शीघ्रतासे अपना रथ बढाकर दुर्मुखके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ १९ ॥

तस्मिन्क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
सुपुङ्खैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २० ॥

और उन्होंने उस ही समय नौ सुंदर पंखयुक्त बाणोंसे प्रहार करके दुर्मुखको यमलोकमें भेज दिया ॥ २० ॥

ततस्तमेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ।
आस्थितः प्रबभौ राजन्दीप्यमान इवांशुमान् ॥ २१ ॥

दुर्मुखके मारे जानेपर कर्ण उस ही रथपर बैठके प्रकाशमान सूर्यकी भांति शोभित होने लगे ॥ २१ ॥

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ।
दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत ॥ २२ ॥

परन्तु वह भीमसेनके बाणोंसे दुर्मुखको मर्मस्थान विदीर्ण होकर, रुधिरसे परिपूरित हो मरके पृथ्वीमें शयन करते देख आंखोंमें आंसू भरके मुहूर्त भर चिन्तित रहे और शत्रुका सासन न कर सके ॥ २२ ॥

तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ।
दीर्घमुष्णं श्वसन्वीरो न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥ २३ ॥

अनन्तर कर्णने दुर्मुखके मृत शरीरके समीप जाकर उनकी प्रदक्षिणा की; उस समय वह केवल लम्बी और गर्म सांस छोडकर, किसी कर्तव्यका निश्चय नहीं कर सकें ॥ २३ ॥

तस्मिंस्तु विवरे राजन्नाराचान्गार्ध्रवाससः ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश । ॥ २४ ॥

महाराज ! भीमसेनने इसी अवसरमें सूतपुत्र कर्णकी ओर गीधपंख युक्त चौदह नाराच बाण चलाये ॥ २४ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णपुङ्खा महौजसः ।
हेमचित्रा महाराज द्योतयन्तो दिशो दश ॥ २५ ॥

वे सुवर्ण पंखयुक्त सुवर्णजटित महातेजस्वी बाण उनके कवचको भेदकर दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगे ॥ २५ ॥

अपिबन्सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ।
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजगाः कालचोदिताः ॥ २६ ॥

हे नरेन्द्र ! वे रुधिर भोजी बाण क्रोधित काल प्रेरित भुजंगोंके समान सूतपुत्र कर्णका रुधिर पीने लगे ॥ २६ ॥

प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ।
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ॥ २७ ॥

जैसे बिलमें अर्ध प्रविष्ट क्रोधित महान् सर्प दीखते हैं, वैसे ही वे बाण पृथ्वीमें घुसते हुए शोभित हो रहे थे ॥ २७ ॥

तं प्रत्यविध्यद्राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ।
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् । ॥ २८ ॥

तब राधापुत्र कर्णने कुछ भी विचार न करके सुवर्ण चित्रित अत्यन्त भयङ्कर चौदह नाराच बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ २८ ॥

ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ।
प्राविशन्मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ॥ २९ ॥

वे सब पंखयुक्त महा भयङ्कर बाण भीमसेनके बांये हाथको भेदकर इस प्रकार पृथ्वीमें घुस गये जैसे पक्षी क्रौञ्च पर्वतमें प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम् ।
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांशवः ॥ ३० ॥

जैसे सूर्यके अस्ताचल पर्वत पर गमन करनेके समय उनकी प्रज्वलित किरणें प्रकाशित होती हैं, वैसे ही वे नाराच बाण पृथ्वीमें प्रवेश करनेके समय शोभित होने लगे ॥ ३० ॥

स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ।
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ॥ ३१ ॥

जैसे पर्वतसे जल बहता है, वैसे ही कर्णके मर्मभेदी नाराच बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर युद्धमें भीमसेनके शरीरसे बहुत रुधिर बहने लगा ॥ ३१ ॥

स भीमस्त्रिभिरायस्तः सूतपुत्रं पतत्रिभिः ।
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३२ ॥

अनन्तर भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गरुडके समान वेगशील तीन बाणोंसे सूतपुत्र कर्णको और सात बाणोंसे उनके सारथीको भी विद्ध किया ॥ ३२ ॥

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमबलार्दितः ।
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महायशाः ॥ ३३ ॥

महाराज ! महायशस्वी कर्ण भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर विह्वल हो गये और युद्ध त्यागके वेगगामी घोडोंसे युक्त रथपर चढकर वहांसे भाग निकले ॥ ३३ ॥

भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ।
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ४६९४ ॥

परन्तु अतिरथी भीमसेन सुवर्ण खचित अपना धनुष फेरते हुए जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित होकर युद्धभूमिमें ही खडे रहे ॥ ३४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ नवां अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥ ४६९४ ॥

: 110 :

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ।
यत्राधिरथिरायत्तो नातरत्पाण्डवं रणे ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले-- हे सञ्जय ! जब अधिरथनन्दन कर्ण भी सब प्रकारसे प्रयत्न करके भी युद्धमें भीमसेनको पराजित न कर सके, वरन स्वयं भीमके संमुखसे पराजित हुए, तब पुरुषार्थको धिक्कार है, पुरुषार्थ अत्यन्त तुच्छ बोध होता है । दैव ही मेरे विचारमें श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

कर्णः पार्थान्सगोविन्दाञ्जेतुमुत्सहते रणे ।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कंचन ।
इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः ॥ २ ॥

दुर्योधनके मुखसे मैंने बार बार सुना है कि कर्ण अकेले ही युद्धमें श्रीकृष्णके सहित पाण्डवोंको पराजित करनेका उत्साह कर सकते हैं, इस पृथ्वीके बीच मैं कर्णके समान योद्धा दूसरे किसीको भी नहीं समझता हूं ॥ २ ॥

कर्णो हि बलवाञ्शूरो दृढधन्वा जितक्लमः ।
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा । ॥ ३ ॥

उस मूढ दुर्योधनने मुझसे पहले यह भी कहा था कि कर्ण दृढ धनुषधारी, परिश्रम रहित, पराक्रमसे युक्त और बलवान् है ! ॥ ३ ॥

वसुषेणसहायं मां नालं देवापि संयुगे ।
किमु पाण्डुसुता राजन्गतसत्त्वा विचेतसः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! इससे कर्ण यदि युद्धभूमिमें मेरी सहायता करेंगे तो अल्प पराक्रमी बुद्धिहीन पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है, देवता लोग भी मुझे पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ४ ॥

तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजंगमिव निर्विषम् ।
युद्धात्कर्णमपक्रान्तं किं स्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

इस समय युद्धमें कर्णको विषरहित सर्पके समान पराजित और युद्धसे भागे हुए देख दुर्योधनने क्या कहा था ? ॥ ५ ॥

अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ।
प्रावेशयद्हुतवहं पतंगमिव मोहितः ॥ ६ ॥

अहो ! जलती हुई अग्निके समान भीमसेनके निकट युद्धकी कलामें अनभिज्ञ पतङ्गरूपी दुर्मुखको अकेले ही मोहके वशमें होकर दुर्योधनने भेजा था ॥ ६ ॥

अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च संगताः ।
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय ॥ ७ ॥

संजय ! अश्वत्थामा, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य और कर्ण– ये सब कोई मिलकर भी निश्चय ही भीमके संमुख खडे नहीं हो सकते हैं ॥ ७ ॥

तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ।
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः ॥ ८ ॥

लोग भी वायुके समान तेजस्वी भीमसेनके दस हजार हाथियोंके समान अत्यंत घोर बलको और क्रूर निश्चयको जानते हैं ॥ ८ ॥

किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ।
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे ॥ ९ ॥

उनके बल, क्रोध और पराक्रमके विषयमें अज्ञानी नहीं हैं और साक्षात् यम, काल और अन्तकके समान कठोर कर्मोंको करनेवाले भीमको युद्धमें कैसे क्रुद्ध करेंगे ? ॥ ९ ॥

कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलमाश्रितः ।
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः ॥ १० ॥

अकेले सूतपुत्र महाबाहु कर्णने अपने बाहुबल पराक्रमके आसरेसे भीमसेनका अनादर करके उनके सङ्ग समरमें युद्ध किया ॥ १० ॥

योऽजयत्समरे कर्णं पुरंदर इवासुरम् ।
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे ॥ ११ ॥

परन्तु इन्द्रने जैसे असुरोंको जीत लिया था भीमने उसी भांति कर्णको युद्धमें पराजित किया है । कोई पुरुष भी ऐसा नहीं है जो रणभूमिमें पाण्डुपुत्र भीमसेनको पराजित कर सके ॥ ११ ॥

द्रोणं यः संप्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ।
भीमो धनंजयान्वेषी कस्तमर्छेज्जिजीविषुः ॥ १२ ॥

विशेष करके अकेले ही भीमसेनने जब अर्जुनकी खोजके लिये द्रोणाचार्यको मथकर मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया है, तब प्राणकी आशा करके कौन पुरुष उसे पीडित कर सकता है ? ॥ १२ ॥

को हि सञ्जय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ।
उद्यताशनिवज्रस्य महेन्द्रस्येव दानवः ॥ १३ ॥

हे सञ्जय ! जैसे हाथमें वज्र ग्रहण करके युद्धभूमिमें खडे हुए देवराज इन्द्रके संमुख ठहरनेमें कोई दानव उत्साह नहीं कर सकता, वैसे ही युद्धभूमिमें खडे हुए भीमसेनके संमुख भी कौन ठहर सकता है ? ॥ १३ ॥

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेतापि मानवः ।
न भीमसेनं संप्राप्य निवर्तेत कदाचन ॥ १४ ॥

कोई पुरुष प्रेतोंके स्वामी यमराजके नगरमें जाकर भी जीता लौट सकता है, परन्तु युद्धभूमिमें भीमसेनके संमुखसे कभी भी नहीं लौट सकता ! ॥ १४ ॥

पतंगा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ।
ये भीमसेनं संक्रुद्धमभ्यधावन्विमोहिताः ॥ १५ ॥

जो मन्द बुद्धिवाले मेरे पुत्र अज्ञानके वशमें होकर क्रोधी भीमसेनके सम्मुख युद्धके निमित्त दौडे थे, वे मानो जलती हुई अग्निमें प्रवेश करनेवाले पतङ्गकी भांति भीमसेन रूपी अग्निमें कूद पडे थे ॥ १५ ॥

यत्तत्सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ।
शप्तं संरम्भिणोग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ॥ १६ ॥

क्रोधी और कठोर स्वभाववाले भीमसेनने जूएके खेलके समय सभाके बीचमें पहले सब कौरवोंके सुनते हुए मेरे पुत्रोंके वधके लिये जो प्रतिज्ञा की थी ॥ १६ ॥

तन्नूनमभिसंचिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ।
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद्भीमादुपारमत् ॥ १७ ॥

उसहीकी चिन्ता करके तथा कर्णको भी भीमसेनके निकटमें पराजित देख, दुःशासन अवश्य ही दुर्योधनके सहित भयके कारण भीमसेनसे दूर गया होगा ॥ १७ ॥

यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिरब्रवीत्समितौ मुहुः ।
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान् ॥ १८ ॥

संजय ! नीच बुद्धिवाले दुर्योधनने पहले सभामें बार बार कहा था, कि मैं, कर्ण और दुःशासन यही तीन पुरुष मिलकर युद्धभूमिमें पाण्डवोंको पराजित करेंगे ॥ १८ ॥

स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ।
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति संजय ॥ १९ ॥

परन्तु इस समय वह कर्णको रथ–भ्रष्ट और भीमसेनसे पराजित हुआ देखकर, श्रीकृष्णके वचनको न माननेके कारण अवश्य ही अत्यंत पश्चाताप करता होगा; इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄन्हतान्युद्धे भीमसेनेन दंशितान् ।
आत्मापराधात्सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ॥ २० ॥

अपने कवचधारी भाइयोंको भीमसेनके हाथसे मारे गये देख, अवश्य ही मेरा पुत्र दुर्योधन अपने अपराधके कारण अत्यन्त ही शोक करता होगा ॥ २० ॥

को हि जीवितमन्विच्छन्प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ।
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात्कालमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

साक्षात् कालके समान युद्धभूमिमें स्थित, भयङ्कर अस्त्रोंके ग्रहण करनेवाले क्रोधी भीमसेनके निकट अपने जीवनकी इच्छा करनेवाला कौन पुरुष युद्धके निमित्त गमन करेगा ? ॥२१॥

बडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ।
न भीममुखसंप्राप्तो मुच्येतेति मतिर्मम ॥ २२ ॥

मेरा तो ऐसा विचार है कि बडवानलके मुखमें पडा हुआ मनुष्य कदाचित् बच सकता है, परन्तु युद्धभूमिमें भीमसेनके सामने लडनेके लिये आया हुआ कोई मनुष्य भी नहीं जीवित बच सकता ॥ २२ ॥

न पाण्डवा न पाञ्चाला न च केशवसात्यकी ।
जानन्ति युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ॥ २३ ॥

युद्धमें क्रुद्ध होनेपर सब ही पाण्डव, पाञ्चालयोद्धा, श्रीकृष्ण, सात्यकि ये कोई भी जीवनकी रक्षा करना नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥

संजय उवाच

यत्संशोचसि कौरव्य वर्तमाने जनक्षये ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २४ ॥

सञ्जय बोले– हे कुरुश्रेष्ठ महाराज ! इस समय इस उपस्थित जनसंहारके निमित्त आप शोक कर रहे हैं, परन्तु निःसन्देह इस जगत्के विनाशका मूल कारण आप ही हैं ॥ २४ ॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २५ ॥

क्योंकि उस समय आप पुत्रोंके मतमें सहमत होकर जैसे मृत्युके समीप पहुंचा हुआ पुरुष औषधी और पथ्यकी इच्छा नहीं करता, वैसे ही हितैषी पुरुषोंके बार बार निवारण करने पर भी आपने किसीके वचनको न मानकर स्वयं ही इस महाघोर शत्रुताको उत्पन्न किया है ॥ २५ ॥

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! तुमने स्वयं ही कालकूट विष पी लिया है वह विष तो सहजहीमें जीर्ण होनेवाला नहीं है, इससे इस समय उसका सम्पूर्ण फल आप ही भोग कीजिये ॥ २६ ॥

यत्तु कुत्सयसे योधान्युध्यमानान्यथाबलम् ।
अत्र ते वर्णयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २७ ॥

शूरवीर योद्धा लोग अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे हैं तो भी आप उनकी निन्दा कर रहे हैं । जो हो जिस प्रकारसे युद्ध हुआ था वह समस्त वृत्तान्त मैं वर्णन करता हूं; आप सुनिये ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च मारिष ॥ २८ ॥

तुम्हारे महाधनुर्धारी पांच पुत्र जो सगे भाई थे, कर्णको भीमसेनके समीपसे पराजित हुए देखकर सह नहीं सके ॥ २८ ॥

दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसंनाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ २९ ॥

विचित्र कवच धारण किये हुए दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर और जय इन पांचों भाईयोंने क्रुद्ध होकर अपने विरोधी भीमसेनपर धावा किया ॥ २९ ॥

ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥ ३० ॥

उन्होंने चारों ओरसे महाबाहु भीमसेनको घेर लिया और शलभ समूहकी भांति अपने बाणोंकी वर्षासे सब दिशाओंको परिपूरित कर दिया ॥ ३० ॥

आगच्छतस्तान्सहसा कुमारान्देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३१ ॥

भीमसेनने उन देवताओंके समान राजपुत्रोंको सहसा अपनी ओर समरमें आते देख, हंसकर उन लोगोंका आघात सहन किया ॥ ३१ ॥

तव दृष्ट्वा तु तनयान्भीमसेनसमीपगान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३२ ॥

राधापुत्र कर्ण तुम्हारे पुत्रोंको भीमसेनके सम्मुख युद्धके निमित्त स्थित देखकर, फिर महा बलवान् भीमसेनका सामना करनेके लिये आये ॥ ३२ ॥

विसृजन्विशिखान्राजन्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात्तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३३ ॥

राजन् ! कर्ण शिलापर घिसकर तेज किये हुए सुवर्णभूषित पंखोंसे युक्त बाणोंकी वर्षा करते थे; उस समय भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंसे रोके जानेपर भी शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर दौडे ॥ ३३ ॥

कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन्भीमसेनं शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥

अनन्तर कौरवोंने कर्णको चारों ओरसे घेरकर भीमसेनके ऊपर अपने नतपर्व बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी ॥ ३४ ॥

तान्बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान्राजन्नरर्षभान् ।
ससूतान्भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३५ ॥

महाराज ! भीमसेनने भयङ्कर धनुष ग्रहण करनेवाले तुम्हारे उन पांचों नरश्रेष्ठ राजपुत्रोंको पचीस बाणोंसे घोडे और सारथियोंके सहित यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३५ ॥

प्रापतन्स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३६ ॥

जैसे नानावर्णके फूलोंसे युक्त महान् वृक्षोंको अपने वायु वेगसे उखाडकर फेंक देती है, वे लोग उसी भांति भीमसेनके बाणोंसे प्राणरहित होकर सारथियोंके सहित रथोंसे नीचे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३६ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवात्मजान् ॥ ३७ ॥

उस स्थानमें हमने भीमसेनका यह आश्चर्यमय पराक्रम देखा कि उन्होंने अपने बाणोंसे कर्णको निवारण करनेके सङ्ग ही तुम्हारे पुत्रोंका वध किया ॥ ३७ ॥

स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३८ ॥

सूतपुत्र कर्ण चारों ओरसे भीमसेनके तीक्ष्ण बाणोंसे निवारित होकर भी उनकी ओर क्रोधपूर्वक देखने लगे ॥ ३८ ॥

तं भीमसेनः संरम्भात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ४७३२ ॥

और भीमसेन भी अभिमानके सहित क्रोधसे नेत्र लालकर अपना प्रचण्ड धनुष फेरते हुए बार बार कर्णकी ओर देखने लगे ॥ ३९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ दसवां अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥ ४७३२ ॥

१११

सञ्जय उवाच

तवात्मजांस्तु पतितान्दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताविष्टो निर्विण्णोऽभूत्स जीवितात् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! प्रतापी कर्णने तुम्हारे पुत्रोंको मरे हुए पृथ्वीपर पडे देख, अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर अपने जीवनसे विरक्त हो उठे ॥ १ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा ।
भीमसेनं ततः क्रुद्धः समाद्रवत संभ्रमात् ॥ २ ॥

विशेष करके उस समय अधिरथपुत्र कर्णने अपनेको अपराधी समझा और उन्होंने क्रुद्ध होकर भीमसेनपर शीघ्रतासे आक्रमण किया ॥ २ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ३ ॥

राधापुत्र कर्णने हंसकर पांच बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया, फिर शिलापर घिसे हुए सुवर्णमय पंखयुक्त सत्तर बाणोंसे उन्हें पुनर्बार विद्ध किया ॥ ३ ॥

अवहासं तु तं पार्थो नामृष्यत वृकोदरः ।
ततो विव्याध राधेयं शतेन नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥

भीमसेन कर्णका वह उपहास सहन न कर सके, उन्होंने अपने सौ तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंसे राधानन्दन कर्णको विद्ध किया ॥ ४ ॥

पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ५ ॥

मारिष ! फिर पांच चोखे वेगवान् बाणोंसे कर्णको विद्ध करके, फिर एक भल्ल बाणसे उनका धनुष काट दिया ॥ ५ ॥

अथान्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं समन्ततः ॥ ६ ॥

धनुष कट जानेपर कर्णने खिन्न होकर दूसरा धनुष ग्रहण करके भीमसेनको अपने बाणोंसे चारों ओरसे छिपा दिया ॥ ६ ॥

तस्य भीमो हयान्हत्वा विनिहत्य च सारथिम् ।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृतं पुनः ॥ ७ ॥

परन्तु भीमसेनने उनके घोडे और सारथीको मारकर उसके प्रहारका बदला लेकर फिर बलपूर्वक सिंहनाद करके हंसने लगे ॥ ७ ॥

इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत्पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ८ ॥

अनन्तर उसही समय पुरुषश्रेष्ठ भीमसेनने अपने बाणोंसे कर्णके धनुषको फिर काट दिया। महाराज ! वह सुवर्णभूषित घोर टङ्कार करनेवाला कर्णका धनुष पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ८ ॥

अवारोहद्रथात्तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमसेनाय चाक्षिपत् ॥ ९ ॥

तब महारथी कर्णने उस रथसे नीचे उतरकर गदा ग्रहण की अनन्तर समरमें उस गदाको कर्णने भीमकी ओर चलाया ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा वृकोदरः ।
शरैरवारयद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १० ॥

उस गदाको सहसा अपनी ओर आती देख भीमसेनने सम्पूर्ण सेनाओंके देखते देखतेही बाणोंसे उसका निवारण किया ॥ १० ॥

ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर महा पराक्रमी भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके वधकी इच्छा करके शीघ्रताके सहित सहस्र बाण उनकी ओर चलाये ॥ ११ ॥

तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पातयामास सायकैः ॥ १२ ॥

कर्णने महायुद्धमें भीमसेनके चलाये हुए उन सब बाणोंका अपने बाणोंसे निवारण किया; अनन्तर अपने बाणोंसे भीमसेनका कवच काटकर पृथ्वीमें गिराया ॥ १२ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३ ॥

फिर उन्होंने सब लोगोंके देखते पचीस क्षुद्रक बाणोंसे भीमसेनको पीडित किया, वह कर्णका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ १३ ॥

ततो भीमो महाराज नवभिर्नतपर्वणाम् ।
रणेऽप्रेषयत क्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १४ ॥

महाराज ! अनन्तर भीमसेनने क्रुद्ध होकर युद्धमें कर्णकी ओर नौ नतपर्व बाण चलाये ॥ १४ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १५ ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही भीमसेनकी धनुषसे छूटे हुए वे तीक्ष्ण बाण कर्णके कवच और दक्षिण भुजाको भेदकर पृथ्वीमें घुस गये ॥ १५ ॥

राधेयं तु रणे दृष्ट्वा पदातिनमवस्थितम् ।
भीमसेनेन संरब्धं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ॥ १६ ॥

कर्णको जमीनपर रणमें खडा हुआ देखकर युद्धमें राधापुत्र कर्णको भीमसेनसे पराजित और पैदल ही स्थित देखकर राजा दुर्योधन अपने सैनिकोंसे बोले— हे पुरुषसिंहो ! तुम लोग सब भांतिसे यत्नवान् होकर शीघ्रताके सहित राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो ॥ १६ ॥

ततस्तव सुता राजञ्श्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ।
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिताञ्शरान् ॥ १७ ॥

राजन् ! तब ज्येष्ठ भाईकी यह आज्ञा सुनकर तुम्हारे पुत्र शीघ्रताके सहित युद्धमें भीमपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौडे ॥ १७ ॥

चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ।
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ॥ १८ ॥

चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा तुम्हारे ये सब पुत्र समरभूमिमें विचित्र पद्धतिसे युद्ध करनेवाले थे ॥ १८ ॥

आगच्छतस्तान्सहसा भीमो राजन्महारथः ।
साश्वसूतध्वजान्यत्तान्पातयामास संयुगे ।
ते हता न्यपतन्भूमौ वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ १९ ॥

महारथी भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंको सहसा प्रयत्नपूर्वक युद्धके लिये रणभूमिमें संमुख आये देख; उन सबको घोडे, सारथि और ध्वजाओंके सहित मार डाला; वे सब प्रचण्ड वायुके वेगसे टूटे हुए वृक्षोंकी भांति मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा विनिहतान्पुत्रांस्तव राजन्महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः कश्मलं समपद्यत ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुम्हारे उन महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मारा गया देख कर्णके मुखपर आसुओंकी धारा बह चली और वह मूर्च्छितसे हो गये ॥ २० ॥

*

रथमन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २१ ॥
अनन्तर पराक्रमी कर्णने भली भांति सजाये दूसरे रथपर चढकर युद्धमें शीघ्रताके सहित भीमपर धावा किया ॥ २१ ॥

तावन्योन्यं शरैर्विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
व्यभ्राजेतां महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २२ ॥
वे दोनों आपसमें एक दूसरेको अपने शिलापर घिसकर तेज किए हुए सुवर्णपंखयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके, मानो फूलोंसे भरे हुए दो पलाश वृक्षोंके समान शोभित होने लगे ॥ २२ ॥

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत्कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २३ ॥
पाण्डुपुत्र भीमसेनने क्रुद्ध होकर अत्यंत तेजस्वी तीक्ष्ण छत्तीस भल्ल बाणोंसे सूतपुत्र कर्णका कवच छिन्नभिन्न कर दिया ॥ २३ ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां कालसूर्याविवोदितौ ॥ २४ ॥
शरीरमें लाल चन्दन लगाये हुए वे दोनों बाणोंके प्रहारसे क्षत विक्षत शरीर होकर रुधिरसे परिपूरित हो उदयकालीन चन्द्र और सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २४ ॥

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
विवर्माणौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २५ ॥
बाणोंसे कवच कट जानेसे और सारा शरीर रुधिरसे भींग जानेके कारण दोनों ही उस युद्ध भूमिमें ऐसे शोभित होते थे, जैसे केंचुलीके त्यागनेसे सर्प शोभायमान लगते हैं ॥ २५ ॥

व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरदंष्ट्रा विधुन्वानौ ततक्षतुररिंदमौ ॥ २६ ॥
जैसे दो व्याघ्र अपने तीक्ष्ण दांतरूपी अस्त्रोंसे एक दूसरके ऊपर प्रहार करते हैं, वैसे ही वे दोनों शत्रुदमन पुरुषसिंह एक दूसरेके ऊपर बाणों रूपी दांतोंसे प्रहार करके, परस्पर क्षत विक्षत करने लगे ॥ २६ ॥

वारणाविव संसक्तौ रङ्गमध्ये विरेजतुः ।
तुदन्तौ विशिखैस्तीक्ष्णैर्मत्तवारणविक्रमौ ॥ २७ ॥
जैसे दो मतवाले हाथी परस्पर भिडकर आपसमें युद्ध करते हैं, वैसे ही वे दोनों मतवाले दो हाथियोंके समान पराक्रमी वीर अपने बाणोंसे एक दूसरेको विद्ध करके रुधिर पूरित शरीरसे युद्धभूमिमें अत्यन्त ही शोभित हुए ॥ २७ ॥

प्रच्छादयन्तौ समरे शरजालैः परस्परम् ।
रथाभ्यां नादयन्तौ च दिशः सर्वा विचेरतुः ॥ २८ ॥

वे दोनों परस्पर बाणोंके समूहोंसे आच्छादित करने लगे; चारों दिशाओंको रथोंकी घरघराहटसे निनादित करते हुए रणभूमिमें घूमने लगे ॥ २८ ॥

तौ रथाभ्यां महाराज मण्डलावर्तनादिषु ।
व्यरोचेतां महात्मानौ वृत्रवज्रधराविव ॥ २९ ॥

वे दोनों महात्मा वीर रथोंसे मण्डलाकार आदि गतिसे विचरते हुए वृत्र और वज्रधारी इन्द्रके समान शोभित होने लगे ॥ २९ ॥

सहस्ताभरणाभ्यां तु भुजाभ्यां विक्षिपन्धनुः ।
व्यरोचत रणे भीमः सविद्युदिव तोयदः ॥ ३० ॥

उस समयमें भीमसेन हजारों आभूषणोंसे विभूषित अपनी भुजाओंसे धनुषकी टंकार करते हुए बिजलीसे युक्त बादलकी भांति शोभायमान हो रहे थे ॥ ३० ॥

स चापघोषस्तनितः शरधाराम्बुदो महान् ।
भीममेघो महाराज कर्णपर्वतमभ्ययात् ॥ ३१ ॥

उनके धनुषकी टंकार बादल गर्जनेके समान सुनाई देने लगी और उनके बाणोंकी वर्षा जलधाराओंकी वर्षा करनेवाले महान् मेघके समान दीख पडती थी। भीमसेन मेघरूपी होकर अपने बाणोंरूपी जलकी वर्षासे कर्णरूपी पर्वत पर आक्रमण करने लगे ॥ ३१ ॥

ततः शरसहस्रेण धनुर्मुक्तेन भारत ।
पाण्डवो व्यकिरत्कर्णं घनोऽद्रिमिव वृष्टिभिः ॥ ३२ ॥

हे भारत ! जैसे बादल अपनी जलधाराओंकी वृष्टिसे पर्वतको आच्छादित करता है, उसी प्रकार अनंतर पाण्डुपुत्र भीमसेनने अपने धनुषसे छोडे हुए सहस्रों बाणोंसे कर्णको छिपा दिया ॥ ३२ ॥

तत्रावैक्षन्त पुत्रास्ते भीमसेनस्य विक्रमम् ।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत्कर्णं छादयच्छरैः ॥ ३३ ॥

भीमसेनने कंकपत्रयुक्त सुंदर पंखोंवाले बाणोंसे कर्णको आच्छादित कर दिया है, यह उनका अद्भुत पराक्रम तुम्हारे पुत्रोंने देखा ॥ ३३ ॥

स नन्दयन्रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३४ ॥

भीमसेन यशस्वी श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि और अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चाल देशीय दोनों राजकुमारोंको आनन्दित करते हुए युद्धभूमिमें कर्णके साथ युद्ध करते थे ॥ ३४ ॥

विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज ददृशुः पाण्डवस्य ह ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ४७६८ ॥

महाराज ! तुम्हारे सम्पूर्ण पुत्रोंने प्रख्यात पाण्डुपुत्र भीमसेनके पराक्रम, धीरज और बाहुबलको देखा ॥ ३५ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ ४७६८ ॥

११२

सञ्जय उवाच

भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिस्वनम् ।
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे विरोधी मतवाले हाथीकी गर्जना नहीं सह सकता; उसी प्रकार राधापुत्र कर्णने भी भीमसेनके धनुषकी टंकार और तलत्राण शब्दको सहन नहीं किया ॥ १ ॥

अपक्रम्य स भीमस्य मुहूर्तं शरगोचरात् ।
तव चाधिरथिर्दृष्ट्वा स्यन्दनेभ्यश्च्युतान्सुतान् ॥ २ ॥

अधिरथपुत्र कर्णने थोडी देरतक भीमसेनके बाणोंके मार्गसे दूर हटकर तुम्हारे पुत्रोंको रथोंसे नीचे गिरते हुए देखा ॥ २ ॥

भीमसेनेन निहतान्विमना दुःखितोऽभवत् ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥

भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंको मारा हुआ देख कर्ण अत्यंत दुःखित और उदास चित्त हो गये; वे गरम लम्बी सांस छोडते हुए भीमसेनकी ओर फिर दौडे ॥ ३ ॥

स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन्रश्मिवानिव भास्करः ॥ ४ ॥

वध क्रोधसे लालनेत्र करके बडे सर्पके समान श्वास छोडते और अपने बाणोंको चलाते हुए किरणोंसे युक्त सूर्यके समान अत्यन्त शोभित हुए ॥ ४ ॥

रश्मिजालैरिवार्कस्य विततैर्भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥

हे भारत ! जैसे सूर्य अपने किरणसमूहोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी जालमें एकबारगी छिप गए ॥ ५ ॥

कर्णचापच्युताश्चित्राः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम् ॥ ६ ॥

जैसे पक्षियोंका समूह बसतिके लिये एकबारगी वृक्षके ऊपर आके गिरता है, वैसे ही कर्णके धनुषसे छूटे हुए वे मयूरपंखयुक्त विचित्र बाण सब ओरसे आकर भीमसेनके सम्पूर्ण शरीरमें घुस गये ॥ ६ ॥

कर्णचापच्युता बाणाः संपतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥

कर्णके धनुषसे छूटकर इधर उधर सब ओर पडनेवाले सुवर्ण पंखयुक्त बाण उडते हुए श्रेणीबद्ध हंसोंके समान शोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥

चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखायुगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥

महाराज ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णके बाण धनुष, उनके रथकी ध्वजा, रथके अन्य सामान, छत्र, ईषादण्ड आदि और रथके जुएसे भी छूटते हुए दिखाई देने लगे ॥ ८ ॥

खं पूरयन्महावेगान्खगमान्खगवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान्मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥

अधिरथपुत्र कर्णने आकाशमण्डलको परिपूर्ण करते हुए आकाशचारी पक्षियोंके पंखोंसे युक्त सुवर्ण–दण्डभूषित अत्यंत वेगवान् विचित्र बाणोंको चलाया ॥ ९ ॥

तमन्तकमिवायस्तमापतन्तं वृकोदरः ।
त्यक्त्वा प्राणानभिक्रुध्य विव्याध नवभिः शरैः ॥ १० ॥

भीमसेनने कर्णको साक्षात् कालके समान क्रुद्ध होकर सम्मुख आते देखकर अपने प्राणोंका मोह छोडके अत्यंत क्रोधित होकर उनको नौ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ १० ॥

तस्य वेगमसंसह्यं दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान्नैवाव्यथत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

कर्णके अत्यंत असह्य वेगको देख और उनके चलाये हुए भयङ्कर बाणजालसे विद्ध होकर भी वीर्यवान् भीमसेन तनिक भी पीडित न हुए ॥ ११ ॥

ततो विधम्याधिरथेः शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शितैः शरैः ॥ १२ ॥

वरन भीमने अधिरथपुत्रके बाणसमूहोंका निवारण करके अन्य बीस तीक्ष्ण बाणोंसे फिर कर्णको विद्ध किया ॥ १२ ॥

यथैव हि शरैः पार्थः सूतपुत्रेण छादितः ।
तथैव कर्णं समरे छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥

भीमसेनको जिस प्रकार सूतपुत्र कर्णने अपने बाणोंसे छिपा दिया था, वैसे ही पाण्डुपुत्र भीमने भी अपने बाणोंकी वर्षासे युद्धमें कर्णको छिपा दिया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च संप्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥

महाराज ! रणभूमिमें भीमसेनका ऐसा पराक्रम देखकर चारण और तुम्हारी ओरके योद्धाओंने आनन्दित होके उन्हें धन्यवाद दिया ॥ १४ ॥

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन— ॥ १५ ॥

कुरुपाण्डवानां प्रवरा दश राजन्महारथाः ।
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथानदन् ॥ १६ ॥

ये कौरव तथा पाण्डवोंकी ओरके मुख्य मुख्य दस श्रेष्ठ महारथी योद्धा धन्य धन्य कहकर वेगपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ १६ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे प्रवृत्ते लोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रांस्ते राजन्दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः ।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥

उस रोएंको खड़ा करनेवाले तुमुल शब्दके प्रकट होनेपर राजा दुर्योधन शीघ्रताके सहित तुम्हारे पुत्रों बहुतेरे राजा,. राजपुत्र और विशेषतः अपने सहोदर भाइयोंसे यह वचन बोले, हे शूरवीर पुरुषों ! आप लोगोंका मङ्गल होवे, तुम सब लोग भीमसेनसे कर्णकी रक्षाके निमित्त गमन करो ॥ १७–१८ ॥

पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः ।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥

हे महाधनुर्द्धर वीर पुरुषों ! जबतक भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णका नाश नहीं करते हैं, उससे पहले ही तुम लोग सूतपुत्र कर्णकी रक्षाके निमित्त यत्नवान् होके प्रयत्न करो ॥ १९ ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त मारिष ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २० ॥
मारिष ! अपने भाई दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार उनके सात भाईयोंने क्रुद्ध हो भीमसेन पर आक्रमण करके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ॥ २० ॥

ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः । ॥ २१ ॥
जैसे वर्षा ऋतुमें बादलोंके समूह पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके समीप जाकर अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छा दिया ॥ २१ ॥

तेऽपीडयन्भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ।
प्रजासंहरणे राजन्सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥
जैसे प्रजाओंके विनाशकालमें सात ग्रह एक चन्द्रमाको पीडित करते हैं, वैसे ही वे सात महारथी क्रुद्ध होकर भीमसेनको पीडित करने लगे ॥ २२ ॥

ततो वामेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् ।
मुष्टिना पाण्डवो राजन्दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥
राजन् ! अनन्तर भीमसेनने अत्यंत सुंदर भूषित धनुषको सुदृढ बायें मुट्ठीसे खींचकर ॥ २३ ॥

मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त संधाय सायकान् ।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान्प्रभुः ॥ २४ ॥
उन सातों भाइयोंको साधारण मनुष्योंके समान मानकर उनके लिये सात बाणोंको धनुषपर चढाया; सूर्य किरणोंके समान उन प्रकाशमान बाणोंको बलवान् भीमने उनपर चलाया ॥ २४ ॥

निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥
महाराज ! उस समय पहलेके वैरका स्मरण करके भीमने तुम्हारे पुत्रोंके प्राणोंको उनके शरीरोंसे निकालते हुएसे उन बाणोंको छोडा था ॥ २५ ॥

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
भारत ! भीमसेनके चलाये हुए, स्वर्णपंखोंसे युक्त और शिलापर घिसकर तेज किए हुए वे बाण भरतवंशी राजकुमारोंके शरीरोंको विदारण करके आकाश मण्डलमें उडते हुए दिखाई देने लगे ॥ २६ ॥

तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः ।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७ ॥

महाराज ! सुवर्ण दण्डभूषित वे सम्पूर्ण बाण तुम्हारे पुत्रोंके हृदयको विदीर्ण करके मानो आकाशचारी गरुड पक्षियोंके समूहकी भांति शोभित होने लगे ॥ २७ ॥

शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः ।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥

राजेन्द्र ! वे सुवर्णभूषित सातों बाण तुम्हारे पुत्रोंका रुधिर पीकर लाल होकर ऊपरको चले गये थे; उनके पंख और अग्रभाग रुधिरपूरित हो गये थे ॥ २८ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन्क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥ २९ ॥

जैसे पर्वतके शिखर पर उत्पन्न हुए बडे बडे वृक्षोंको किसी मतवाले हाथीने तोडकर पृथ्वी पर गिरा दिया हो, वैसे ही तुम्हारे सातों पुत्र भीमसेनके बाणोंसे मर्मस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण रथोंसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥

शत्रुंजयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥

शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ, चित्रसेन और विकर्ण इन तुम्हारे सात पुत्रोंको भीमसेनने मार गिराया ॥ ३० ॥

तान्निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः ।
सिंहनादरवं घोरमसृजत्पाण्डुनन्दनः ॥ ३१ ॥

महाबाहु पाण्डुपुत्र भीमसेनने राधानन्दन कर्णके देखते ही तुम्हारे पुत्रोंका वध करके भयङ्कर सिंहनाद किया ॥ ३१ ॥

स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत ।
आचख्याविव तद्युद्धं विजयं चात्मनो महत् ॥ ३२ ॥

भारत ! उस सिंहनादने धर्मराज युधिष्ठिरको शूरवीर भीमसेनके उस युद्धकी और अपनी महान् विजयकी सूचना दे दी ॥ ३२ ॥

तं श्रुत्वा सुमहानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य संयुगे ॥ ३३ ॥

युद्धमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर धनुर्द्धारी भीमसेनके उस महान् सिंहनादको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥

ततो हृष्टो महाराज वादित्राणां महास्वनैः ।
भीमसेनरवं पार्थः प्रतिजग्राह सर्वशः ॥ ३४ ॥

महाराज ! तब युधिष्ठिरने प्रसन्नतापूर्वक नाना प्रकारके युद्धके बाजोंको बजवाकर भीमसेनके सिंहनादको सब ओरसे प्रतिग्रहण किया ॥ ३४ ॥

अभ्ययाच्चैव समरे द्रोणमस्त्रभृतां वरम् ।
हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञे वृकोदरे ॥ ३५ ॥

और भीमसेनके सिंहनादसे जयसूचक संवाद पाकर अत्यन्त ही हर्षके सहित सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके संग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढे ॥ ३५ ॥

एकत्रिंशान्महाराज पुत्रांस्तव महारथान् ।
हतान्दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ ३६ ॥

इधर राजा दुर्योधनने तुम्हारे इकतीस महारथी पुत्रोंको भीमसेनके हाथसे मारा गया देखकर विदुरके पहिले कहे हुए सम्पूर्ण वचनोंको स्मरण किया ॥ ३६ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्हितकरं वचः ।
इति संचिन्त्य राजासौ नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥

उस समय विदुरने जो हितकारी वचन कहा था, उसके अनुसार ही यह दुःख प्राप्त हुआ है; राजा दुर्योधनने इसी प्रकार चिन्ता करके कुछ उत्तर न दिया ॥ ३७ ॥

यद्द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव ।
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ॥ ३८ ॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशां पते ।
कौरवाणां च सर्वेषामाचार्यस्य च संनिधौ ॥ ३९ ॥

तुम्हारे पुत्र दुष्टबुद्धि नीच दुर्योधनने जुएकी खेलके समय जो कुछ दुर्वचन कहा था और पृथ्वीपते ! पाण्डवों और तुम्हारे सामने सब कौरवोंके और आचार्यके पास रहते हुए जो यह कठोर वचन कर्णने सभामें द्रौपदीसे कहा था ॥ ३८–३९ ॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ।
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् ॥ ४० ॥

'हे कृष्णे ! पाण्डव नष्ट हो गये, सदाके लिये नरकमें पड गये; तू दूसरा पति कर ले,' उसहीका फल इस समय उपस्थित हुआ है ॥ ४० ॥

×

यत्स्म तां परुषाण्याहुः सभामानाय्य द्रौपदीम् ।
पाण्डवानुग्रधनुषः क्रोधयन्तस्तवात्मजाः ॥ ४१ ॥

उस द्रौपदीको सभामें लाकर, तुम्हारे पुत्रोंने उग्र धनुषधारी पाण्डवोंको क्रोधित करनेके लिये जो कठोर वचन कहे थे ॥ ४१ ॥

तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम् ।
विसृजंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति कौरव ॥ ४२ ॥

कौरव ! उसहीसे भीमसेन तेरह वर्ष पर्यन्त उस दबी हुई क्रोधाग्निको इस समय प्रकाशित करके तुम्हारे पुत्रोंका वध कर रहे हैं ॥ ४२ ॥

विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुङ्क्ष्व फलोदयम् ।
हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ४३ ॥

महाराज ! पहिले विदुरने शान्तिकी अभिलाष करके तुम्हारे समीप अनेक प्रकारसे विलाप किया था, परन्तु आपने उनके वचनोंको तनिक भी न सुना, इस ही कारणसे इस उपस्थित विपदरूपी फलको आप पुत्रोंके सहित भोग कीजिये। राजेन्द्र ! देखिये, विकर्ण और पराक्रमी चित्रसेन आदि तुम्हारे पुत्र मारे गये ॥ ४३ ॥

प्रवरानात्मजानां ते सुतांश्चान्यान्महारथान् ।
यान्यांश्च ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाबाहो त्वरया ताञ्जघान ह ॥ ४४ ॥

तुम्हारे पुत्रोंमें जो मुख्य मुख्य थे, वे और अन्य महारथियोंको भी उन्होंने मार डाला; महाराज ! भीमसेनने अपनी आंखोंके सामने आये हुए तुम्हारे जिन पुत्रोंको देखा, उन सबका शीघ्रतासे वध किया ॥ ४४ ॥

त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ ४८१३ ॥

जो हो, तुम्हारे ही कारणसे मैंने विशाल सेनाके योद्धा लोग भीमसेन और कर्णके लगातार सहस्रों बाणरूपी अग्निसे भस्म होते देखे हैं ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥ ४८१३ ॥

: ११३ :

धृतराष्ट्र उवाच

महानपनयः सूत ममैवात्र विशेषतः ।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये संजय शोचतः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सूत ! इसमें विशेष करके मेरी ही दुर्नीतिके कारण है, यह मैं मानता हूं; दुःखित हुए मुझे उसी मेरे अपराधका फल अब प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥

यद्गतं तद्गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि संजय ॥ २ ॥

मैंने पहिले इसी प्रकार विचार किया था, कि जो होनहार था सो हुआ है; अभी उसपर विचार नहीं करना चाहिये । इस समय अब मुझे क्या करना आवश्यक है, वह कहो; मैं अवश्य करूंगा ॥ २ ॥

यथा त्वेष क्षयो वृत्तो ममापनयसंभवः ।
वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि संजय ॥ ३ ॥

जो हो, मैंने इस समय धीरज धारण किया है; तुम मेरी अनीतिसे उत्पन्न हुए सेनाके शूरवीरोंके नाश होनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाहवे ।
बाणवर्षाण्यवर्षेतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! महायुद्धमें पराक्रमी भीमसेन और कर्ण दोनों ही जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंकी भांति लगातार बाणवर्षा करते युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
विविशुः कर्णमासाद्य भिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥

भीमसेनके नामसे अङ्कित शिलापर घिसे हुए स्वर्ण पङ्खवाले चोखे बाण कर्णके पास पहुंचकर उनके प्राण हरण करनेकी इच्छासे उनके शरीरमें प्रवेश करने लगे ॥ ५ ॥

तथैव कर्णनिर्मुक्तैः सविषैरिव पन्नगैः ।
आकीर्यत रणे भीमः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥

उस ही प्रकार कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर सैकडों और सहस्रों बाणोंने युद्धमें भीमसेनको पीडित करने लगे ॥ ६ ॥

तयोः शरैर्महाराज संपतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तव सैन्यानां संक्षोभः सागरोपमः ॥ ७ ॥

महाराज ! उन दोनोंके चलाये हुए सम्पूर्ण बाण सेनाओंमें चारों ओर गिरने लगे; इस कारण वहांकी सेनाओंमें समुद्रके समान महान् क्षोभ होने लगा ॥ ७ ॥

भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिंदम ।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए विषधारी सर्पतुल्य भयङ्कर तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी सेनाके मध्य भागमें सैनिकोंका नाश हो रहा था ॥ ८ ॥

वारणैः पतितै राजन्वाजिभिश्च नरैः सह ।
अदृश्यत मही कीर्णा वातनुन्नैर्द्रुमैरिव ॥ ९ ॥

राजन् ! वह रणभूमि उस समय मरे हुए मनुष्य, हाथी और घोडोंके मृत शरीरोंसे इस प्रकार परिपूर्ण हो गई, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे वनके वृक्ष टूटकर पृथ्वीको परिपूरित कर देते हैं ॥ ९ ॥

ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ १० ॥

अनन्तर भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे युद्धभूमिमें मारे जाते हुए तुम्हारी ओरके योद्धालोग यह क्या है ! यह क्या है ! ऐसा वचन कहते हुए भागने लगे ॥ १० ॥

ततो व्युदस्तं तत्सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् ।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥

सिन्धु, सौवीर और कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग कर्ण और भीमसेनके अत्यंत वेगवान् बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके समीपसे दूर हटकर भाग गये ॥ ११ ॥

ते शरातुरभूयिष्ठा हताश्वनरवाहनाः ।
उत्सृज्य कर्णं भीमं च प्राद्रवन्सर्वतोदिशम् ॥ १२ ॥

वे बाणोंके प्रहारोंसे अत्यंत पीडित हो गये थे और उनके घोडे, मनुष्य और वाहन नष्ट हो गये थे, वे भीम और कर्णको छोडकर सब दिशाओंमें भाग गये ॥ १२ ॥

नूनं पार्थार्थमेवास्मान्मोहयन्ति दिवौकसः ।
यत्कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥ १३ ॥

निश्चय ही कुन्तीकुमारोंके हितके निमित्त ही देवता लोग हम लोगोंको मोहित कर रहे हैं, क्योंकि भीमसेन और कर्णके बाणोंसे केवल हमारे ही सेनाके शूरवीर योद्धाओंका वध करते हैं ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवन्तो योधास्ते तावका भयपीडिताः ।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥

ऐसा कहते हुए तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भयभीत होकर भीमसेन और कर्णको वाण गिरने तकके स्थानको छोडकर दूर खडे होके उन दोनों पुरुषसिंहोंका युद्ध देखने लगे ॥ १४ ॥

ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा महाहवे ।
बभूव च विशेषेण भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५ ॥

उस महायुद्ध रुधिरकी एक भयङ्करी नदी उत्पन्न हुई और वह विशेष करके कायरोंके भयको बढानेवाली थी ॥ १५ ॥

वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा ।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥

वह नदी हाथी, घोडे और मनुष्योंके रुधिरसे उत्पन्न हो गयी थी; और वह मृत मनुष्य, हाथी और घोडोंसे आवृत थी ॥ १६ ॥

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः ।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥ १७ ॥

उस समय अनुकर्ष, पताका, हाथी, घोडे, रथ, आभूषण, टूटकर बिखरे हुए रथ, टूटे हुए चक्र, धुरी और कूबर ॥ १७ ॥

जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहाधनैः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥

सुवर्णमय और सुदृढ धनुष, सुवर्णपंखयुक्त वाण, हजारों नाराच ॥ १८ ॥

कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥

केंचुलसे वाहर निकले हुए सर्पोंके समान कर्ण और भीमसेनके छोडे हुए प्रास, तोमर, खड्ग, फरसे ॥ १९ ॥

सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः ।
वज्रैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ।
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी ॥ २० ॥

सुवर्णमय गदा, मुसल, पट्टिश नाना प्रकारके वज्र, शक्ति, परिघ और विचित्ररूपवाली शतघ्नी, आदि सम्पूर्ण अस्त्रोंसे वह रणभूमि परिपूरित होकर अत्यन्त शोभित होने लगी ॥ २० ॥

कनकाङ्गदकेयूरैः कुण्डलैर्मणिभिः शुभैः ।
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत ॥ २१ ॥

भारत ! इसके अतिरिक्त सब ओर पडे हुए सोनेके अंगद, केयूर, कुण्डल, उत्तम मणि, कवच, दस्ताने, हार, निष्क ॥ २१ ॥

वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ।
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शस्त्रैः स्यन्दनभूषणैः ॥ २२ ॥

वस्त्र, छत्र, कटे हुए चंवर, व्यजन, छिन्नभिन्न हुए हाथी, घोडे, मनुष्य, शस्त्र रथोंके आभूषण ॥ २२ ॥

तैस्तैश्च विविधैर्भावैस्तत्र तत्र वसुंधरा ।
पतितैरपविद्धैश्च संबभौ द्यौरिव ग्रहैः ॥ २३ ॥

आदि नाना प्रकारकी पतित और फेंकी हुई वस्तुओंसे वहांकी भूमि ग्रहोंसे युक्त आकाश-मण्डलकी भांति प्रकाशित होने लगी ॥ २३ ॥

अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम् ।
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समपद्यत ॥ २४ ॥

उन दोनों अचिन्त्य अद्भुत और अलौकिक कर्मको देखकर सिद्ध और चारण आदि प्राणी विस्मित होने लगे ॥ २४ ॥

अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे ।
आसीद्भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।
निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २५ ॥
गजाभ्यां संप्रयुक्ताभ्यामासीन्नडवनं यथा ।
तथाभूतं महत्सैन्यमासीद्भारत संयुगे ।
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ४८३९ ॥

जैसे वायुकी सहायतासे सूखे तृण काष्ठोंको जलाती हुई अग्नि अत्यन्त ही प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार उस महायुद्धमें अधिरथपुत्र कर्णकी गति भीमसेनको पाकर भयङ्कर तेज हो गयी । उन दोनों पुरुषसिंहोंका इस प्रकार महाघोर संग्राम होने लगा, जैसे दो मतवाले हाथियोंके आपसमें युद्ध करते समय नडकुल वन नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारी बडी सेना उस युद्धमें दुरवस्थामें पड गयी । कितने ही रथोंकी ध्वजाएं टुकडे टुकडे हो गईं, कितने ही रथ शस्त्रोंकी चोटसे टूट गये, कितने हाथी, घोडे और मनुष्योंका नाश हो गया। कर्ण और भीमसेनने उस युद्धमें महान् विनाश कर दिया था ॥ २५-२६ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ ४८३९ ॥

११४

संजय उवाच

ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि चित्राणि च बहूनि च ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! इसके अनन्तर कर्ण भीमसेनको तीन बाणोंसे विद्ध करके, फिर उनके ऊपर अनेक विचित्र बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १ ॥

वध्यमानो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २ ॥

परन्तु भीमसेन सूतपुत्र कर्णके वैसे कठोर बाणोंसे भी विद्ध होकर दुःखित न हुए ! वरन अचल पर्वतके समान स्थिरताके सहित युद्धसे विचलित न हुए ॥ २ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध युधि राजेन्द्र भीमसेनः पतत्रिणा ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! भीमसेनने युद्धमें उत्तम पानीसे बुझे हुए तीक्ष्ण कर्णिनामक बाणसे कर्णके कानमें अत्यन्त विद्ध किया ॥ ३ ॥

स कुण्डलं महत्कर्णात्कर्णस्यापातयद्भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४ ॥

अनन्तर कर्णके कानसे सुवर्णमय बडे कुण्डलको आकाशसे ज्योतिवाले तारेके समान पृथ्वीपर काटकर गिरा दिया ॥ ४ ॥

अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं भीमः स्मयन्निव महाबलः ॥ ५ ॥

महाबलवान् भीम फिर हंसते हुए दूसरे एक भल्लसे सूतपुत्र कर्णके हृदयमें जोरसे प्रहार किया ॥ ५ ॥

पुनरस्य त्वरन्भीमो नाराचान्दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महावेगान्यमदण्डोपमांस्तथा ॥ ६ ॥

भारत ! उसके बाद भीमने शीघ्रताके सहित यमराजके कालदण्डके समान दस महावेगवान् नाराच बाणोंको ग्रहण करके युद्धमें सूतपुत्र कर्णकी ओर चलाया ॥ ६ ॥

ते ललाटं समासाद्य सूतपुत्रस्य मारिष ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥

महाराज ! जैसे सांप बिलमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही भीमसेनके चलाये हुए वे सम्पूर्ण बाण कर्णके ललाटको भेदकर मस्तकके भीतर प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥

ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन्स पुरा यथा ॥ ८ ॥

जैसे पहले नीलकमलकी माला मस्तक पर धारण करके कर्ण शोभित होते थे, वैसे ही ललाटमें स्थित हुए उन बाणोंसे कर्ण उस समय शोभित होने लगे ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनवधं प्रति ॥ ९ ॥

दृढ धनुर्धारी भीमसेनके बाणोंसे पीडीत हुए महावेगशाली कर्णने युद्धमें क्रुद्ध होकर भीमसेनका बध करनेकी इच्छासे उनकी ओर बडे वेगसे धावा किया ॥ ९ ॥

तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान्क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १० ॥

राजन्! फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर अमर्षी बलवान् कर्णने गिद्धपंख युक्त सौ बाण भीमसेनके ऊपर चलाये ॥ १० ॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
समरे तमनादृत्य नास्य वीर्यमचिन्तयत् ॥ ११ ॥

परन्तु समरमें पाण्डुपुत्र भीमसेनने कर्णके पराक्रमको कुछ भी न समझते हुए उनका अनादर करके उनके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी ॥ ११ ॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डवं निशितैः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ १२ ॥

तब शत्रुनाशन कर्णने अत्यन्त क्रोध करके अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे क्रोधी भीमसेनके वक्ष-स्थलमें प्रहार किया ॥ १२ ॥

जीमूताविव चान्योन्यं तौ ववर्षतुराहवे ।
तलशब्दरवैश्चैव त्रासयन्तौ परस्परम् ॥ १३ ॥

महाराज! वे दोनों पुरुषसिंह एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंको इस प्रकार वर्षाने लगे, जैसे दो बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं। वे अपने तलत्राणके शब्दसे एक दूसरेको डराते थे ॥ १३ ॥

शरजालैश्च विविधैश्छादयामासतुर्मृधे ।
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ १४ ॥

वे दोनोंही युद्धमें अपने बाणोंके जालसे एक दूसरेको छिपाने लगे। वे दोनों युद्धमें क्रुद्ध होकर एक दूसरेके किये हुए प्रहारका प्रतीकार करनेकी इच्छा करते थे ॥ १४ ॥

ततो भीमो महाबाहू राधेयस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा कर्णं विव्याध पत्रिणा ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर महाबाहु भीमसेनने एक तेज क्षुरप्रसे महात्मा राधापुत्र धनुषको काटकर फिर कर्णको बाणोंसे विद्ध किया ॥ १५ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महामनाः ।
अन्यत्कार्मुकमादत्त वेगघ्नं भारसाधनम् ॥ १६ ॥

महा मनस्वी सूतपुत्र कर्णने उस कटे हुए धनुषको त्याग कर वेग निवारण करनेमें समर्थ अत्यन्त दृढ दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा च कुरुसौवीरसैन्धवानां बलक्षयम् ।
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम् ॥ १७ ॥

कुरु, सौ वीर तथा सिंधुदेशके वीरोंकी सेनाका नाश, सब ओर गिरे हुए कवच, ध्वज और शस्त्रोंसे आच्छादित हुई पृथ्वी ॥ १७ ॥

हस्त्यश्वनरदेहांश्च गतासून्प्रेक्ष्य सर्वतः ।
सूतपुत्रस्य संरम्भाद्दीप्तं वपुरजायत ॥ १८ ॥

और प्राण रहित हाथी, घोडे और मनुष्योंके शरीरोंको सब ओर देखकर सूतपुत्र कर्णके शरीरमें अत्यंत क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
भीमं प्रैक्षत राधेयो राजन्घोरेण चक्षुषा ॥ १९ ॥

राधापुत्र कर्ण अपने सुवर्ण भूषित बडे धनुषको चढाकर भयंकर नेत्रोंसे भीमसेनकी ओर देखने लगे ॥ १९ ॥

ततः क्रुद्धः शरानस्यन्सूतपुत्रो व्यरोचत ।
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः ॥ २० ॥

और वह क्रुद्ध होकर भीमसेनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करने लगे, उस समय वह शरत्कालके किरणधारी दोपहरके तेजस्वी सूर्यके समान शोभित हुए ॥ २० ॥

मरीचिविकचस्येव राजन्भानुमतो वपुः ।
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशतार्चिषः ॥ २१ ॥

अधिरथ पुत्रका शरीर सैकडों बाणोंसे व्याप्त हो गया था, उससे वह किरणोंसे शोभित भगवान् सूर्यकी भांति प्रकाशित हुए ॥ २१ ॥

×

कराभ्यामाददानस्य संदधानस्य चाशुगान् ।
विकर्षतो मुञ्चतो वा नान्तरं ददृशू रणे ॥ २२ ॥

वह किस समय समरमें दोनों हाथोंसे तरकससे बाणोंको निकालते, साधते, कब धनुष पर खींचते और किस समय उन बाणोंको छोड़ते थे, उस विषयमें कोई भी अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ २२ ॥

अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ।
कर्णस्यासीन्महाराज सव्यदक्षिणमस्यतः ॥ २३ ॥

महाराज ! उस समय बाईं और दाहिनी ओर बाण चलाते हुए कर्णका मण्डलाकार धनुष अग्निचक्रके समान भयंकर दिखाई देने लगा ॥ २३ ॥

स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः ।
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाम् ॥ २४ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए स्वर्ण पंखवाले अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएं सूर्यकी प्रभा भी आच्छादित हो गयी ॥ २४ ॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ।
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ॥ २५ ॥

अनन्तर कर्णके धनुष्यसे छूटे हुए स्वर्णपुंखयुक्त तीक्ण नतपर्व बाणोंके जाल आकाशमण्डलमें नाना भांतिसे दिखाई देने लगे ॥ २५ ॥

शरासनादाधिरथेः प्रभवन्तः स्म सायकाः ।
श्रेणीकृता व्यराजन्त राजन्क्रौञ्चा इवाम्बरे ॥ २६ ॥

अधिरथपुत्र कर्णके धनुपसे छूटे हुए बाण श्रेणीबद्ध होकर आकाशमें क्रौंच पक्षियोंके समूहकी भांति शोभित होने लगे ॥ २६ ॥

गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान् ।
महावेगान्प्रदीप्ताग्रान्मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ २७ ॥

अधिरथपुत्र कर्ण गिद्धपंखयुक्त, शिला पर घिसे हुए, सुवर्णभूषित, अत्यन्त चोखे, महावेगवान् और प्रज्वलित अग्रभागवाले बाणोंको भीमसेनकी ओर छोड़ने लगे ॥ २७ ॥

ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ।
अजस्रमन्वकीर्यन्त शराः पार्थरथं प्रति ॥ २८ ॥

सुवर्णभूषित वे सम्पूर्ण बाण अत्यन्त वेगके सहित कर्णके धनुपसे छूटकर लगातार भीमसेनके रथपर गिरने लगे ॥ २८ ॥

ते व्योम्नि रत्नविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ।
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ॥ २९ ॥

कर्णके चलाये हुए वे सहस्रों रत्नखचित बाण आकाशमण्डलमें झुण्डके झुण्ड टीडीदलकी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ २९ ॥

चापादाधिरथेर्मुक्ताः प्रपतन्तः स्म सायकाः ।
एको दीर्घ इव प्रांशुः प्रभवन्दृश्यते शरः ॥ ३० ॥

वे सम्पूर्ण बाण अधिरथपुत्र कर्णके धनुषसे छूटकर मिलकर गिरते हुए ऐसे शोभित हुए कि मानो बहुत बडा एक ही बाण आकाशमण्डलमें दिखाई दे रहा है ॥ ३० ॥

पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ।
कर्णः प्राच्छादयत्क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥

जैसे जल वर्षानेवाला बादल जल वर्षाकर पर्वतको छिपा देता है, वैसे ही कर्णने क्रुद्ध होकर भीमसेनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया ॥ ३१ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलवीर्यपराक्रमम् ।
व्यवसायं च पुत्रास्ते प्रैक्षन्त कुरुभिः सह ॥ ३२ ॥

भारत ! उस स्थानपर तुम्हारे पुत्रलोग कौरव सैनिकोंके सहित भीमसेनके बल, शौर्ययुक्त पराक्रम और युद्धकार्यको देखकर चकित हो गये ॥ ३२ ॥

तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३३ ॥

भीमसेनने कर्णकी समुद्रके समान उछलित उस बाणवर्षाकी तनिक भी पर्वाह नहीं की, बल्कि क्रोधपूर्वक कर्णकी ओर आक्रमण किया ॥ ३३ ॥

रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद्विशां पते ।
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम् ।
तस्माच्छराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ३४ ॥

पृथ्वीपते ! भीमसेनका सुवर्णभूषित बडा धनुष प्रत्यञ्चा खींचनेसे मण्डलाकार हो दूसरे इन्द्र-धनुषके समान जान पडने लगा । और उससे बाणोंका जाल प्रकट होकर आकाशको परिपूरित करने लगा ॥ ३४ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यराजत ॥ ३५ ॥

उस समय भीमसेनने नतपर्व सुवर्णपुंख बाणोंसे आकाशमें सुवर्णकी मालासी बना दी, वह अत्यंत शोभित होती थी ॥ ३५ ॥

ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ३६ ॥
इसके अनन्तर भीमसेनके बाणोंसे आहत होकर आकाशमें स्थित वे बाणोंके जाल टुकडे टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३६ ॥

कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ।
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत्संवृता व्रजैः ॥ ३७ ॥
कर्ण और भीमसेन दोनोंके बाण समूह परस्पर स्पर्श करनेपर अग्निकी चिनगारियोंके समान दीखते थे; युद्धमें उनकी गति सब ओर थी; उन दोनोंके स्वर्णपंखयुक्त बाणोंके समूहसे आकाश परिपूरित हो गया ॥ ३७ ॥

स भीमं छादयन्बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ।
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ॥ ३८ ॥
अनन्तर सूतपुत्र कर्ण अनेक प्रकारके बाणोंसे भीमसेनको छिपाते हुए उन महात्मा वीरके पराक्रमका अनादर करके उनपर आक्रमण करने लगे ॥ ३८ ॥

तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ।
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ॥ ३९ ॥
मारिष ! उन दोनोंके छोडे हुए बाण जाल वहां परस्पर मिलकर अत्यंत वेगके कारण वायु स्वरूप दीखते थे ॥ ३९ ॥

तस्मै कर्णः शितान्बाणान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
सुवर्णविकृतान्क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकाङ्क्षया ॥ ४० ॥
कर्णने क्रुद्ध हो भीमसेनके वधकी इच्छासे कारीगरके उत्तम पानीसे बुझे हुए सुवर्णभूषित अनेक तीक्ष्ण बाण उनकी ओर चलाए ॥ ४० ॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन्सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४१ ॥
परन्तु भीमसेनने सूतपुत्र कर्णसे भी अधिक पराक्रम प्रकाशित करनेकी इच्छा कर उनके चलाये बाणोंको निज बाणोंसे तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया और कहा ॥ ४१ ॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
अमर्षी बलवान्क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ॥ ४२ ॥
फिर अमर्षी, बलवान् भीमसेनने क्रुद्ध होकर सबको जलानेकी इच्छावाले अग्निके समान अपने भयंकर बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी ॥ ४२ ॥

तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ।
युध्यतः पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ॥ ४३ ॥

परन्तु सम्पूर्ण अस्त्रोंको सूतपुत्र कर्णने निर्भय चित्तसे युद्ध करनेवाले पाण्डुपुत्र भीमसेनके अभिअस्त्रोंकी मायासे ग्रहण कर लिया ॥ ४३ ॥

तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः संनतपर्वभिः ।
रश्मीन्योक्त्राणि चाश्वानां कर्णो वैकर्तनोऽच्छिनत् ॥ ४४ ॥

कर्णने सन्नतपर्व बाणोंसे भीमसेनके तरकस, धनुषका रोदा, घोड़ोंकी बागडोर और जोतनेकी रस्सियोंको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४४ ॥

अथास्याश्वान्पुनर्हत्वा त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ।
सोऽवप्लुत्य द्रुतं सूतो युयुधानरथं ययौ ॥ ४५ ॥

फिर उनके रथके घोड़ोंको मारकर उनके सारथिको तीन बाणोंसे बिद्ध किया । भीमसेनका सारथी कर्णके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भीमके रथसे कूदकर शीघ्रतासे युयुधानके रथ पर चढ गया ॥ ४५ ॥

उत्स्मयन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलप्रभः ।
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकाश्च न्यपातयत् ॥ ४६ ॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने क्रोधसे प्रलयकालकी अग्नि समान प्रज्वलित होकर भीमसेनका उपहाससा करते हुए उनके रथकी ध्वजा और पताकाको भी काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४६ ॥

स विधन्वा महाराज रथशक्तिं परामृशत् ।
तामवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ॥ ४७ ॥

धनुष कट जानेपर भीमसेनने क्रुद्ध होकर रथशक्ति ग्रहण की और उसे घुमाकर कर्णके रथकी ओर चलाया ॥ ४७ ॥

तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं हेमपरिष्कृताम् ।
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ॥ ४८ ॥

कर्णने महान् उल्काके समान उस सुवर्णभूषित शक्तिको अपनी ओर आती देख, क्रोधके सहित दश बाणोंसे उस शक्तिको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४८ ॥

सापतद्दशधा राजन्निकृत्ता कर्णसायकैः ।
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ॥ ४९ ॥

कर्णने अपने मित्र दुर्योधनके प्रयोजन-सिद्धिके लिये अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करके निज बाणोंसे भीमसेनकी चलाई शक्तिको दश टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया ॥ ४९ ॥

स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ।
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।
तदस्य सहसा कर्णो व्यधमत्प्रहसन्निव ॥ ५० ॥

तब कुन्तीपुत्र भीमसेनने युद्धमें मरनेकी वा विजयकी इन दोनोंमेंसे एककी इच्छा कर सुवर्णभूषित ढाल और तलवार हाथमें ग्रहण कर ली। परन्तु सूतपुत्र कर्णने हंसते हुएसे उनकी उत्तम ढाल सहसा नष्ट कर दी ॥ ५० ॥

स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्छितः ।
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन्कर्णरथं प्रति । ॥ ५१ ॥

महाराज ! भीमसेन ढालके कटने और रथसे रहित होनेपर क्रोधसे मूर्च्छित हो गये। फिर शीघ्रताके सहित भीमसेनने उस बहुत बडी तलवारको घुमाकर कर्णके रथकी ओर चलायी ॥ ५१ ॥

स धनुः सूतपुत्रस्य छित्त्वा ज्यां च सुसंशितः ।
अपतद्भुवि निस्त्रिंशश्च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥ ५२ ॥

वह उत्तम तलवार सूतपुत्र कर्णके धनुष और प्रत्यञ्चाको काटकर मानो आकाशमण्डलसे च्युत सर्पके समान पृथ्वीपर गिरी ॥ ५२ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिरन्यदादत्त कार्मुकम् ।
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ॥ ५३ ॥

अनन्तर अधिरथपुत्र कर्णने हंसकर और समरमें क्रुद्ध होकर शत्रुओंका नाश करनेवाला सुदृढ प्रत्यञ्चावाला अत्यन्त वेगशील दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ ५३ ॥

स भीमसेनः कुपितो बलवान्सत्यविक्रमः ।
विहायसं प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ॥ ५४ ॥

तब क्रुद्ध बलवान् सत्यपराक्रमी भीमसेन कर्णके मनमें व्यथा उत्पन्न करते हुए रथपरसे आकाशकी ओर कूदे ॥ ५४ ॥

तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ।
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ॥ ५५ ॥

राधापुत्र कर्णने युद्धमें विजयकी अभिलाषा करनेवाले भीमसेनके उस अद्भुत कार्यको देख रथमें लीन होकर भीमसेनकी अभिलाषाको निष्फल किया ॥ ५५ ॥

तमदृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ।
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ स धरणीतले ॥ ५६ ॥

सारी इन्द्रियां व्यथित होकर रथमें लीन होकर बैठे हुए कर्णको भीमसेनने नहीं देखा; और कर्णके रथकी ध्वजाका दण्ड पकड़कर वे पृथ्वीपर खड़े हुए ॥ ५६ ॥

तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ।
यदियेष रथात्कर्णं हन्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ॥ ५७ ॥

जैसे पक्षिराज गरुड आकाशसे पृथ्वीपर सर्पको पकड लेते हैं, वैसे ही भीमसेनने कर्णको उनके रथसे पकडकर ले जानेकी जो अभिलाषा की थी, कौरवों और चारण आदियोंने भी उनके इस कार्यकी अत्यन्त प्रशंसा की ॥ ५७ ॥

स छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ।
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ॥ ५८ ॥

भीमसेन धनुष कट जानेपर और रथहीन होनेपर भी क्षत्रिय धर्मका पालन करते हुए अपने रथको पीछे छोडकर युद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर खडे हुए ॥ ५८ ॥

तद्विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ।
संरब्धः पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ५९ ॥

राधापुत्र कर्ण इस प्रकारसे भीमसेनके आक्रमणको निष्फल कर, उन्हें फिर समरमें युद्ध करनेके लिये खडा देख क्रोधपूर्वक उनकी ओर दौडे ॥ ५९ ॥

तौ समेतौ महारङ्गे स्पर्धमानौ महाबलौ ।
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नभस्तले ॥ ६० ॥

महाबलवान् आपसमें स्पर्धा करनेवाले वे दोनों परस्पर भिडकर वर्षाकालमें आकाशमें गर्जना करनेवाले दो मेघोंके समान गर्जने लगे ॥ ६० ॥

तयोरासीत्संप्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ।
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ॥ ६१ ॥

अनन्तर वे दोनों पुरुषसिंह क्रोधसे मतवाले होकर देवासुर युद्धके समान महाघोर संग्राम करने लगे ॥ ६१ ॥

क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ।
दृष्ट्वार्जुनहतान्नागान्पतितान्पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ६२ ॥

भीमसेन सब अस्त्रशस्त्रोंसे रहित होगये थे, और उनके पास एक भी आयुध नहीं रह गया था, इसीसे कर्ण उनपर पूर्ववत् आक्रमण कर रहा था; तब वे पहिले अर्जुनके मारे हुए पर्वतके समान हाथियोंके समूह पडे हुए थे उसे देख, इस स्थानपर अवश्य ही कर्णके रथकी गति न हो सकेगी यही विचार कर, उस ही मरे हुए हाथियोंके समूहमें घूस गये ॥ ६२ ॥

हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकाङ्क्षी राधेयं नाऽभ्यहारयत् ॥ ६३ ॥

पाण्डुपुत्र भीम केवल अपने प्राणरक्षाकी अभिलाष करके, कर्णके रथकी गति रोकनेवाले उन दुर्गके समान मरे हुए हाथियोंके समूहमें घुस गये; और फिर उन्होंने कर्णके ऊपर प्रहार करनेका साहस नहीं किया ॥ ६३ ॥

व्यवस्थानमथाकाङ्क्षन्धनंजयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरंजयः ॥ ६४ ॥

शत्रुओंके नगरीपर विजय पानेवाले भीम अपनेको कर्णके बाणोंसे छिपानेकी इच्छा कर, अर्जुनके बाणोंसे मरे हुए एक बडे हाथीको उठा कर खडे हो गये ॥ ६४ ॥

तमस्य विशिखैः कर्णो व्याधमत्कुञ्जरं पुनः ।
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत्पाण्डवो नदन् ॥ ६५ ॥

कर्णने उस हाथीके भी अपने बाणोंसे काट कर टुकडे टुकडे कर दिये, तब गर्जना करके भीमसेन उस हाथीके कटे हुए अङ्गोंको ही उठा कर कर्णकी ओर फेंकने लगे ॥ ६५ ॥

चक्राण्यश्वांस्तथा वाहान्यद्यत्पश्यति भूतले ।
तत्तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ॥ ६६ ॥

यही नहीं वरन उस समय भीमने रणभूमिमें रथके चक्के अथवा मरे हुए घोडे आदि वाहन और जिन जिन वस्तुओंको धरतीपर पडी हुई देखा, उन सम्पूर्ण वस्तुओंको क्रोधपूर्वक उठाकर कर्णकी ओर फेंकने लगे ॥ ६६ ॥

तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ।
व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ॥ ६७ ॥

परन्तु राधापुत्र कर्णने बार बार चलायी हुई भीमसेनकी सम्पूर्ण वस्तुओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे टुकडे टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया। परन्तु कर्णने पहिले समय कुन्तीको जो वर दिया था, उसे स्मरण करके शस्त्रहीन भीमसेनका वध नहीं किया ॥ ६७ ॥

धनुषोऽग्रेण तं कर्णस्त्वभिद्रुत्य परामृशत् ।
उत्स्मयन्निव राधेयो भीमसेनमुवाच ह ॥ ६८ ॥

परन्तु उनके निकट जाकर अपने धनुषके अग्रभागसे उनका स्पर्श किया; राधापुत्र कर्णने हंसते हुए भीमसेनसे यह बात कही– ॥ ६८ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ६९ ॥

अरे विना दाढी-मूंछके नपुंसक ! मूर्ख ! पेटू ! तू अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या कुछ भी नहीं जानता । अरे युद्धभीरु कायर ! तू बालक है, कभी भी मेरे समान पुरुषसे युद्धमें प्रवृत्त न होना ॥ ६९ ॥

यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्य न युद्धेषु कथंचन ॥ ७० ॥

रे दुर्मति पाण्डव ! जहांपर नानाप्रकारकी खाने और पीनेकी वस्तुएँ हों, तू उसी स्थान पर रहनेके योग्य है, तू कदापि युद्धभूमिमें खडे होने योग्य नहीं है ॥ ७० ॥

मुनिर्भूत्वाथ वा भीम फलान्यद्धि सुदुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ ७१ ॥

हे दुष्टबुद्धिवाले भीम ! अथवा तू मुनि होकर उनके व्रतके अनुसार फल मूल खा; वनमें चले जानाही तुम्हारे लिये उत्तम है, युद्धमें तुम्हारी कुछ भी निपुणता नहीं है ॥ ७१ ॥

फलमूलाशने युक्तस्त्वं तथातिथिभोजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥ ७२ ॥

हे भीम ! तू फल मूलके खाने और अतिथि भोजन करनेके योग्य है । तू अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें अत्यन्त ही अयोग्य है ऐसा मैं मानता हूं ॥ ७२ ॥

पुष्पमूलफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ७३ ॥

रे भीम ! फूल और फल-मूलका आहार करके नियमपूर्वक व्रत करते हुए वनवास करना ही तेरे लिये उत्तम है, क्योंकि तू युद्धके कार्योंमें महा मूर्ख है ॥ ७३ ॥

क युद्धं क मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भव ॥ ७४ ॥

हे वृकोदर ! तात ! युद्ध और मुनियोंके व्रतमें बहुत अन्तर है । इससे तुम वनमें चले जाओ; युद्ध करना तुहारे लिये किसी प्रकार भी अच्छा नहीं है । विशेष करके वनमें रहनेके प्रेमी बनो ॥ ७४ ॥

सूदान्भृत्यजनान्दासांस्त्वं गृहे त्वरयन्भृशम् ।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥ ७५ ॥

हे वृकोदर ! तूं तो रसोइयों, सेवक लोगों और दासोंको बहुत शीघ्रतासे भोजन पाक तैयार करनेके लिये कहते हुए उनके ऊपर क्रुद्ध होकर उन्हें ताडित करनेकी योग्यता रखता है ॥ ७५ ॥

कौमारे यानि चाप्यासन्नप्रियाणि विशां पते ।
पूर्ववृत्तानि चाप्येनं रूक्षाण्यश्रावयद्भृशम् ॥ ७६ ॥

महाराज ! कर्ण भीमसेनको इसी प्रकार और बालक अवस्थामें जो अनेक अप्रिय वृत्तान्त बने हुए थे, उन सबका निर्देश करते हुए अनेक कठोर वचन सुनाने लगे ॥ ७६ ॥

अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद्धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥ ७७ ॥

अनन्तर वहां छिपे हुए भीमको फिर कर्णने धनुषसे स्पर्श किया और उनका उपहास करते हुए फिर कहा– ॥ ७७ ॥

योद्धव्यमाविशान्यत्र न योद्धव्यं तु मादृशैः ।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥ ७८ ॥

रे राजपुत्र ! तू अब कभी भी मेरे समान पुरुषके साथ युद्ध मत करना । तू और लोगोंके सङ्ग युद्ध किया कर; मेरे समान पुरुषके सङ्ग युद्ध करनेसे इसी प्रकारकी दशा होती है तथा इससे बढकर भी दूसरी दशा हो सकती है ॥ ७८ ॥

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वा रक्षिष्यतो रणे ।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥ ७९ ॥

इससे जहांपर श्रीकृष्ण और अर्जुन स्थित हैं, तू उसी स्थानपर चला जा; क्योंकि वे लोग युद्धभूमिमें तुम्हारी रक्षा करेंगे; अथवा हे कुन्तीपुत्र ! बालक ! तुम्हें घर लौट जाना उत्तम है; युद्धभूमिमें तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ ७९ ॥

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन्व्यकत्थत ।
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ८० ॥

महाराज ! सूतपुत्र कर्णने भीमसेनको इसी प्रकार रथभ्रष्ट करके यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुनके सम्मुख ही बार बार अपनी बडाई की ॥ ८० ॥

ततो राजञ्शिलाधौतान्शराञ्शाखामृगध्वजः ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ॥ ८१ ॥

तब कपिध्वजावाले अर्जुनने श्रीकृष्णकी प्रेरणाके अनुसार सूतपुत्र कर्णके ऊपर शिलापर स्वच्छ किये हुए अनेक तीक्ष्ण बाणोंको चलाया ॥ ८१ ॥

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः काञ्चनभूषणाः ।
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन् ॥ ८२ ॥

वे सब सुवर्णभूषित बाण अर्जुनके भुजबल तथा गाण्डीव धनुषसे छूटकर इस प्रकार कर्णके शरीरमें घुस गये, जैसे हंस पक्षी क्रौञ्च पर्वतके बीच प्रवेश करते हैं ॥ ८२ ॥

स भुजंगैरिवायस्तैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
भीमसेनादपासेधत्सूतपुत्रं धनंजयः ॥ ८३ ॥

अपने गाण्डीवधनुषसे छोडे गये क्रुद्ध सर्पोंके समान बाणोंके प्रभावसे भीमके समीपसे अर्जुनने सूतपुत्र कर्णको दूर हटा दिया ॥ ८३ ॥

स छिन्नधन्वा भीमेन धनंजयशराहतः ।
कर्णो भीमादपायासीद्रथेन महता द्रुतम् ॥ ८४ ॥

भीमने पहले ही कर्णका धनुष काट डाला था, अब वह अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होकर भीमको छोडकर अपने बडे रथपर चढके वहांसे शीघ्रही चले गये ॥ ८४ ॥

भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ।
अन्वयाद्भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ॥ ८५ ॥

और नरश्रेष्ठ भीमसेन भी सात्यकिके रथपर चढकर युद्धमें सव्यसाची भाई अर्जुनके पास पहुंच गये ॥ ८५ ॥

ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनंजयः ।
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः ॥ ८६ ॥

अनन्तर अर्जुनने क्रोधसे लाल नेत्र करके शीघ्रताके सहित कर्णको लक्ष्य करके यमराजके मृत्युदण्डके समान एक नाराच बाण चलाया ॥ ८६ ॥

स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन्भुजगोत्तमम् ।
नाराचोऽभ्यपतत्कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ॥ ८७ ॥

जैसे पक्षिराज गरुड उत्तम सर्प ग्रहण करनेकी इच्छासे वेगपूर्वक आकाशसे पृथ्वीपर उतरते हैं, वैसे ही अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह नाराच बाण वेगपूर्वक कर्णकी ओर गमन करने लगा ॥ ८७ ॥

तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ।
धनंजयभयात्कर्णमुज्जिहीर्षुर्महारथः ॥ ८८ ॥

परन्तु द्रोणाचार्य पुत्र महारथी अश्वत्थामाने अर्जुनके भयसे कर्णको मुक्त करनेकी इच्छासे उस बाणको आकाशमार्गहीमें अपने बाणसे काटकर गिरा दिया ॥ ८८ ॥

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः ।
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८९ ॥

महाराज ! बाणको निष्फल होते देख अश्वत्थामाके ऊपर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध हुए । ' भागना मत, खडे होके युद्ध करो, ' ऐसा कहके अर्जुनने अश्वत्थामाको चौंसठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ८९ ॥

स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ।
तूर्णमभ्याविशद्द्रौणिर्धनंजयशरार्दितः ॥ ९० ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर शीघ्रताके सहित मतवाले हाथियोंसे युक्त रथसेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ९० ॥

ततः सुवर्णपृष्ठानां धनुषां कूजतां रणे ।
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली ॥ ९१ ॥

अनन्तर कुन्तीपुत्र बलवान् अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषके शब्दसे रणभूमिमें स्थित सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके सुवर्ण पृष्ठ धनुषोंके शब्दोंको दबा दिया ॥ ९१ ॥

धनंजयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्ययात् ।
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः संत्रासयन्बलम् ॥ ९२ ॥

अनन्तर भागते हुए अश्वत्थामाके पीछे अपने बाणोंसे कौरव सेनाको भयभीत करते हुए अर्जुन थोडे दूरतक गये ॥ ९२ ॥

विदार्य देहान्नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ।
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ॥ ९३ ॥

और कङ्क और मयूर पंखयुक्त नाराच बाणोंसे हाथी, घोडे और मनुष्योंके शरीरोंको भेद करते हुए तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ ९३ ॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ।
पाकशासनिरायस्तः पार्थः संनिजघान ह ॥ ९४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४ ॥ ४९३३ ॥

महाराज ! उस समय इन्द्रपुत्र अर्जुन क्रोधपूर्वक हाथी, घोडे और पैंदल चलनेवाले योद्धाओंसे युक्त तुम्हारी सेनाका इसी प्रकार नाश करने लगे ॥ ९४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ ११४ ॥ ४९३३ ॥

: ११५ :

धृतराष्ट्र उवाच

अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति संजय ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! हररोज मेरा दीप्तिमान् यश क्षीण हो रहा है; हमारी ओरके बहुतेरे योद्धा मारे गये हैं; कालके बदलसे ही ऐसी घटना हो रही है ऐसा मैं मानता हूं ॥ १ ॥

धनंजयस्तु संक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् ।
रक्षितं द्रोणकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि ॥ २ ॥

द्रोण और कर्णसे रक्षित मेरी सेनामें जिसमें देवता लोग भी प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं थे; उस हीमें क्रुद्ध अर्जुनने प्रवेश किया ॥ २ ॥

ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः ।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च ॥ ३ ॥

उस पर भी अत्यन्त बलवान् पराक्रमी श्रीकृष्ण, भीमसेन और शिनी श्रेष्ठ सात्यकिकी सहायतासे उनके बल पराक्रमकी और भी बढती हुई है ॥ ३ ॥

तदा प्रभृति मा शोको दहत्यग्निरिवाशयम् ।
ग्रस्तान्हि प्रतिपश्यामि भूमिपालान्ससैन्धवान् ॥ ४ ॥

हे सञ्जय ! मैं क्या कहूं, उसही समयसे मेरी शोकाग्नि हर घडी मेरे हृदयको भस्म किये डालती है जैसे काष्ठको अग्नि; और सिन्धुराज जयद्रथ सहित इन सम्पूर्ण राजाओंको मैं मृत्युके अधीन हुए ही समझ रहा हूं ॥ ४ ॥

अप्रियं सुमहत्कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः ।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं मुच्येत जीवितः ॥ ५ ॥

विशेष करके सिन्धुराज जयद्रथने किरीटधारी अर्जुनका अत्यन्त अप्रिय कार्य किया है, इससे इस समय अर्जुनकी आंखके सामने स्थित रहकर, वे कैसे जीवित रह सकते हैं? ॥५॥

अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति संजय सैन्धवः ।
युद्धं तु तद्यथा वृत्तं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ६ ॥

हे सञ्जय ! मैं अनुमानसे ही यह देख रहा हूं कि सिन्धुराज अब जीवित नहीं हैं। जो हो, वह संग्राम जिस प्रकारसे हुआ था, तुम उसका यथार्थ वृत्तान्त मेरे समीप बर्णन करो ॥ ६ ॥

यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनां संलोड्य चासकृत् ।
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ ७ ॥
तस्य वृष्णिप्रवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् ।
धनंजयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि संजय ॥ ८ ॥

और जिसने अकेले ही कमल बनके नाश करनेवाले क्रुद्ध हाथीके समान अर्जुनकी सहायताके लिये प्रयत्नपूर्वक बार बार मेरी बडी सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करके महासेनाके बीच प्रवेश किया था, उस यदुकुल वीर सात्यकिके युद्धका वृत्तान्त भी मेरे समीप विस्तारपूर्वक वर्णन करो। हे सञ्जय! तुम कथन करनेमें अत्यन्त ही निपुण हो ॥ ७-८ ॥

संजय उवाच

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् ।

समीक्ष्य राजन्नरवीरमध्ये शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! पुरुषसिंह भीमसेनको कर्णके अस्त्रोंसे पीडित होकर उस भांतिसे गमन करते देख, शिनिपौत्र सात्यकिने राजाओंके समूहमें रथसे भीमसेनकी सहायताके लिये उनका अनुसरण किया ॥ ९ ॥

नदन्यथा वज्रधरस्तपान्ते ज्वलन्यथा जलदान्ते च सूर्यः ।

निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन संकम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १० ॥

जैसे शरत्कालमें तीक्ष्ण किरणवाले सूर्य प्रज्वलित होते हैं और वर्षाकालमें वज्रधारी इन्द्र बादलके रूपमें गर्जते हैं, वैसे ही गरजते और तेजसे प्रज्वलित होते हुए अपने दृढ धनुषके प्रभावसे तुम्हारे पुत्रकी सेनाको कंपाते और शत्रुओंका संहार करने लगे ॥ १० ॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैरायोधने नरवीरं चरन्तम् ।

नाशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम् ॥ ११ ॥

भारत ! रणभूमिमें जब यदुवंशीय श्रेष्ठ महावीर सात्यकि रजत वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथ पर चढके गमन करने लगे, तब तुम्हारी ओरके सब रथी उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ११ ॥

अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।

अलम्बुसः सात्यकिं माधवाग्र्यमवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥ १२ ॥

युद्धसे पीछे न हटनेवाले, राजाओंमें श्रेष्ठ सुवर्णमय वर्म धारण करनेवाले अलम्बुस अपने प्रचण्ड धनुषको घुमाके अत्यंत क्रुद्ध होकर सात्यकिको युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ १२ ॥

तयोरभूद्भारत संप्रहारस्तथागतो नैव बभूव कश्चित् ।

प्रैक्षन्त एवाहवशोभिनौ तौ योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३ ॥

उन दोनोंका जैसा संग्राम हुआ वैसा दूसरा युद्ध कभी भी देखनेमें नहीं आया था । उस समय तुम्हारी ओरके तथा शत्रुओंकी ओरके सम्पूर्ण योद्धा समरमें शोभित होनेवाले उन दोनों वीरोंका युद्ध देखने लगे ॥ १३ ॥

आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुसो राजवरः प्रसह्य ।

अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद बाणैः शिनिपुंगवोऽपि ॥ १४ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुसने सात्यकिको जोरसे दस बाणोंसे विद्ध किया; शिनिकुलमें श्रेष्ठ सात्यकिने भी अलम्बुसके उन बाणोंको अपने समीप आनेसे पहलेही अपने बाणोंसे मार्गहीमें काटके गिरा दिया ॥ १४ ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥
उन बाणोंको निष्फल होते देख, राजा अलम्बुसने धनुषको कानतक खींचकर अग्निके समान तेजस्वी, मनोहर पंखवाले तीन तीक्ष्ण बाणोंसे फिर सात्यकिको विद्ध किया, वे बाण सात्यकिके वर्मको भेदकर उनके शरीरमें घुस गये ॥ १५ ॥

तैः कायमस्याग्न्यनिलप्रभावैर्विदार्य बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥
राजा अलम्बुसने अग्नि और वायुके समान प्रभावशाली उन तेजस्वी तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिके शरीरको विद्ध करके, फिर उनके रजतभूषित चारों घोडोंको चार बाणोंसे बलपूर्वक पीडित किया ॥ १६ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुसस्योत्तमवेगवद्भिर्हयांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥
चक्रधारी श्रीकृष्णके समान पराक्रमी और वेगवान् वीर सात्यकिने अलम्बुसके बाणोंसे इस प्रकार विद्ध होकर, अपने उत्तम शीघ्रगामी चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके चारों घोडोंका बध किया ॥ १७ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन कालानलसंनिभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८ ॥
फिर उनके सारथिका भी शिर काटा और कालाग्निके समान भयङ्कर एक भल्लसे उनका कुण्डल शोभित चन्द्रमाके समान प्रकाशमान सिर भी धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १८ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं संख्ये मधूनामृषभः प्रमाथी ।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥ १९ ॥
महाराज ! शत्रुओंके नाश करनेवाले यदुकुल श्रेष्ठ वीर सात्यकि राजपुत्र और राजपौत्र अलम्बुसका इस प्रकार युद्धमें बध करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको निवारण करते हुए अर्जुनके समीप जानेकी इच्छासे गमन करने लगे ॥ १९ ॥

अन्वागतं वृष्णिवरं समीक्ष्य तथारिमध्ये परिवर्तमानम् ।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि पुनः पुनर्वायुरिवाभ्रपूगान् ॥ २० ॥
जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहको तितर बितर करती है, वैसे ही वृष्णिवीर सात्यकि कौरव सेनाका बार बार बाणोंसे नाश करते और शत्रुओंके बीच घूमते हुए वहां आये ॥ २० ॥

ततोऽवहन्सैन्धवाः साधु दान्ता गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावततताः सदश्वा यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥

उस समय गौके दूध, कुन्दकुसुम, चन्द्रमा वा बर्फके समान कान्तिवाले सिन्धु देशीय अत्यन्त शिक्षित सुवर्णमय जालीसे आवृत घोडे इस प्रकार सारथीके वशमें होकर चलने लगे, कि पुरुषसिंह सात्यकिने जिस स्थानपर जानेकी इच्छा की, उस ही स्थानपर उनका रथ उपस्थित होने लगा ॥ २१ ॥

अथात्मजास्ते सहिताभिपेतुरन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः ।
कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥

हे अजमीढ कुलभूषण ! इस प्रकार सात्यकिको आगे बढे आते देख, योद्धाओंमें श्रेष्ठ तुम्हारे पुत्र दुःशासनको आगे कर तुम्हारे दूसरे बहुतसे पुत्र और तुम्हारे अन्य योद्धा भी शीघ्रतापूर्वक उनके ऊपर आक्रमण करने लगे ॥ २२ ॥

ते सर्वतः संपरिवार्य संख्ये शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान्प्रवरः सात्वतानां न्यवारयद्बाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥

वे सब युद्धमें सात्यकिको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार करने लगे; सात्यकि उन सबका आक्रमण सहन करनेमें समर्थ थे; सात्वत श्रेष्ठ वीर सात्यकिने भी अपने बाणोंको चलाकर उन सम्पूर्ण योद्धाओंको रोक दिया ॥ २३ ॥

निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्यापि जघान वाहानुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ ४९५७ ॥

हे भारत ! उन सबको रोककर शत्रुनाशन शिनिपौत्र सात्यकिने शीघ्रतासे धनुष हाथमें लेकर अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे दुःशासनके चारों घोडोंका वध किया ॥ २४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ ४९५७ ॥

: ११६ :

संजय उवाच

तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनंजयहितैषिणम् ॥ १ ॥
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमानर्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! शीघ्रतासे करने योग्य कार्योंमें फुर्ति दिखानेवाले, अर्जुनके हितकी इच्छा करनेवाले महाबाहु सात्यकिको अगाध समुद्रके समान महासेनाके बीच प्रवेश करके दुःशासनके रथके समीप आक्रमणके लिये उपस्थित देखकर, सुवर्णमय ध्वजा धारण करनेवाले त्रिगर्त देशीय महाधनुर्धर योद्धाओंने उनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १–२ ॥

अथैनं रथवंशेन सर्वतः संनिवार्य ते ।
अवाकिरञ्शरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥

रथ सेनासे सब ओरसे सात्यकिको रोककर उन श्रेष्ठ धनुर्धारियोंने उनपर क्रुद्ध होकर अपने बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी ॥ ३ ॥

अजयद्राजपुत्रांस्तान्यतमानान्महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून्सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥

परंतु उस महायुद्धमें यत्नवान् उन शत्रुरूप पचास राजपुत्रोंको सत्यपराक्रमी सात्यकिने अकेले ही पराजित कर दिया ॥ ४ ॥

संप्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥ ५ ॥

कौरव सेनाका वह मध्यभाग तल घोषसे ध्वनित था; खड्ग, शक्ति और गदा आदि आयुधोंसे परिपूर्ण था; और नौकारहित अगाध समुद्रके समान दुस्तर दीखता था ॥ ५ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्याम लाघवात् ॥ ६ ॥

महाराज ! उस समय युद्धमें मैंने सात्यकिका अद्भुत पराक्रमका कार्य देखा, कि उन्हें पश्चिम दिशामें देखकर पूर्वदिशामें दृष्टि की तो उस ही समय उनको पूर्वदिशामें भी देखा; ॥ ६ ॥

उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं प्रसृतस्तथा ।
नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ७ ॥

तथा उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें भी सैकडों रथियोंके समान शूरवीर सात्यकि नाचते हुएसे घूमते थे ॥ ७ ॥

तद्दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त संतप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥

त्रिगर्त्त देशीय योद्धा लोग सिंहके समान पराक्रमी सात्यकिके ऐसे अद्भुत कार्यको देख अपने लोगोंके लिये दुःखित होकर युद्धसे निवृत्त हुए ॥ ८ ॥

तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः ॥ ९ ॥

जैसे मतवाले हाथीको वशमें करनेके निमित्त अंकुशोंसे पीडित करते हैं, वैसे ही शूरसेनदेशीय दूसरे पराक्रमी योद्धालोग सात्यकिको अपने वशमें करनेके लिये उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके रोकने लगे ॥ ९ ॥

तान्न्यवारयदायस्तान्मुहूर्तमिव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ १० ॥

अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी सात्यकिने क्षणभरके बीच उन क्रुद्ध सम्पूर्ण योद्धाओंका निवारण किया, फिर कलिङ्गसेनाओंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनंजयमुपासदत् ॥ ११ ॥

अनन्तर महाबाहु सात्यकि उस दुर्जय कलिङ्गसेनाको अतिक्रम करके अर्जुनके समीप पहुंच गये ॥ ११ ॥

तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥

जैसे कोई पुरुष जलमें तैरते हुए थककर किनारा पाके आनन्दित होता है, वैसे ही सात्यकि पुरुषव्याघ्र अर्जुनको देखकर प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण सात्यकिको आते हुए देख अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! यह देखो, तुम्हारे चरणोंका अनुगामी शिनिपौत्र सात्यकि तुम्हारे समीप आरहा है ॥ १३ ॥

एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान्योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥

यह सत्य पराक्रमी वीर तुम्हारा मित्र और शिष्य है; इस पुरुषसिंहने सम्पूर्ण योद्धाओंको तृणके समान समझकर उन्हें पराजित किया है ॥ १४ ॥

एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतरः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥

हे किरीटधारी अर्जुन ! वह तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, वही सात्यकि कौरवी सेनामें भयङ्कर उपद्रव मचाकर तुम्हारी ओर चला आता है ॥ १५ ॥

एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥

यह सात्यकि अपने बाणोंके प्रभावसे द्रोणाचार्य और भोजराज कृतवर्माका भी अनादर करके तुम्हारे पास आ रहा है ॥ १६ ॥

धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १७ ॥

अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्यामें निपुण इस शूरवीर सात्यकिने धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रिय कामनासे मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध किया है और वह यहां आ रहा है ॥ १७ ॥

कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन्पाण्डवाभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥

महाबलवान् सात्यकि कुरुसेनाके बीच प्रवेश करके अत्यन्त दुष्कर कर्म करके तुम्हें देखनेकी इच्छासे यहां आ रहा है ॥ १८ ॥

बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान्पार्थ आयात्येष हि सात्यकिः ॥ १९ ॥

सात्यकिने केवल एकमात्र रथकी सहायतासे ही द्रोणाचार्य आदि अनेक महारथियोंके सङ्ग समरमें युद्ध किया है और वह इधर आ रहा है ॥ १९ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मपुत्रेण पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥

देखो, धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञासे अपने बाहुबलके आसरेसे शत्रु सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करके सात्यकि इधर आ रहा है ॥ २० ॥

यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथंचन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ २१ ॥

इस समय सम्पूर्ण कौरवी सेनाके बीच भी जिसके समान कोई योद्धा नहीं मिल सकता, देखो वही यह सत्यपराक्रमी सात्यकि यहां आ रहा है ॥ २१ ॥

कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो मध्याद्गवामिव ।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २२ ॥

जैसे गौवोंके झुण्डमेंसे सिंह अनायास ही मुक्त होता है, वैसे ही सात्यकि अनेक योद्धाओंका वध करके कुरुसेनासे पार होकर इधर आरहा है ॥ २२ ॥

एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसंनिभैः ।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २३ ॥

वह अपने शस्त्रबलसे सहस्रों राजाओंके कमलपुष्पकी भांति सुन्दर सिरको काटके उनसे रणभूमिको परिपूर्ण करते हुए शीघ्रतापूर्वक तुम्हारे समीप आरहा है ॥ २३ ॥

एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे ।
निहत्य जलसंधं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २४ ॥

युद्धमें यह सात्यकि भाइयोंके सहित कुरुराज दुर्योधनको पराजित करके और राजा जलसंधका वध करके शीघ्र यहां आ रहा है ॥ २४ ॥

रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम् ।
तृणवन्न्यस्य कौरव्यानेष आयाति सात्यकिः ॥ २५ ॥

आज सात्यकि अपने शस्त्रके प्रभावसे कुरुसेनाके योद्धाओंको तृण समान समझकर उनके रुधिर और मांस रूपी कीचडसे युक्त रुधिरकी नदी रणभूमिके बीच उत्पन्न करके इधर आ रहा है ॥ २५ ॥

ततोऽप्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत् ।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः ॥ २६ ॥

अनन्तर कुन्तीपुत्र अर्जुन हर्षित होकर श्रीकृष्णसे बोले, हे महाबाहो केशव ! सात्यकिके आगमनसे मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूं ॥ २६ ॥

न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव ।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा ॥ २७ ॥

केशव ! धर्मराजकी कैसी दशा हुई है उसे मैं कुछ भी नहीं समझ सकता हूं; वे सात्यकिके विना जीवित हैं या नहीं मुझे इस विषयमें सन्देह है ॥ २७ ॥

एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः ।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥ २८ ॥

हे कृष्ण ! धर्मराजकी रक्षा करना ही उनका कर्तव्य कार्य था । उन्हें छोडकर ये मेरे समीप क्यों आरहे हैं ? ॥ २८ ॥

राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः ।
प्रत्युद्यातश्च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥
धर्मराजको द्रोणाचार्यके हाथमें समर्पण किया गया है; सिंधुराज जयद्रथ भी अभी तक नहीं मारा गया; और भूरिश्रवा इस समय युद्धमें सात्यकिकी ओर बढ रहे हैं ॥ २९ ॥

सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवान्मे समाहितः ।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः ॥ ३० ॥
इससे जयद्रथके वधके लिये मुझे अत्यन्त कठिन भारको उठाना पडा ! क्योंकि इस समय धर्मराजका कुशल समाचार जानना है और सात्यकिकी रक्षा भी करनी है; ॥ ३० ॥

जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः ।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च सांप्रतम् ॥ ३१ ॥
और सिन्धुराज जयद्रथका वध भी करना है; इधर सूर्य अस्त हुआ चाहता है, इधर महाबाहु सात्यकि भी थके हुए हैं, उनके अल्प प्राण हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता च माधव ।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥
तथा उनके रथके घोडे और सारथी सब ही थक गये हैं, परन्तु माधव ! भूरिश्रवा श्रमहीन और सहायतासे युक्त है ॥ ३२ ॥

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन्समागमे ।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुंगवः ॥ ३३ ॥
इस समय भूरिश्रवाके सङ्ग युद्ध करनेसे क्या सात्यकिका मङ्गल होवेगा ? सत्यपराक्रमी शिनिश्रेष्ठ महाबलवान् सात्यकि समुद्रके समान महासेनासे पार होकर इस समयमें क्या गोपद प्राप्त होकर उसके पार न हो सकेंगे ? ॥ ३३ ॥

अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ।
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान्सात्यकिर्भवेत् ॥ ३४ ॥
अस्त्रविद्याके जाननेवाले कौरवोंमें मुख्य महात्मा भूरिश्रवाके सङ्ग युद्ध करके क्या सात्यकि कुशलपूर्वक इस युद्धसे पार हो सकेंगे ? ॥ ३४ ॥

व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ।
आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रेषयति सात्यकिम् ॥ ३५ ॥
हे श्रीकृष्ण ! मेरे विचारमें धर्मराजने द्रोणाचार्यका भय छोडकर सात्यकिको मेरे समीप भेजकर बहुत ही विपरीत कार्य किया है ॥ ३५ ॥

ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम् ।
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित्स्यात्कुशली नृपः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ४९९३ ॥

जैसे आकाशचारी बाजपक्षी मांस ग्रहण करनेके लिये आक्रमण करता है, वैसे ही द्रोणाचार्य सदा ही युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छा कर रहे हैं, इससे धर्मराज कुशलसे हैं या नहीं इसमें मुझे सन्देह है ॥ ३६ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥ ४९९३ ॥

: ११७ :

सञ्जय उवाच

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधाद्भूरिश्रवा राजन्सहसा समुपाद्रवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! भूरिश्रवाने युद्धदुर्मद सात्यकिको इस प्रकार आते हुए देख क्रोधपूर्वक सहसा उनपर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तमब्रवीन्महाबाहुः कौरव्यः शिनिपुंगवम् ।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥ २ ॥

महाबाहु कुरुवंशी भूरिश्रवा शिनिश्रेष्ठ सात्यकिसे यह वचन बोले, हे दाशार्ह ! आज तुम प्रारब्धसे ही मेरी दृष्टिके संमुख उपस्थित हो ॥ २ ॥

चिराभिलषितं काममद्य प्राप्स्यामि संयुगे ।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥

आज मैं युद्धभूमिमें अपनी बहुत दिनोंकी मनोकामना पूर्ण करूंगा, यदि तुम युद्ध त्याग कर भाग न जाओगे, तो जीते जी मेरे निकटसे मुक्त न हो सकोगे ॥ ३ ॥

अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् ।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥

तुम सदा ही अपनेको शूरवीर समझकर अभिमान करते हो, परन्तु आज मैं युद्धमें तुम्हारा वध करके कुरुराज दुर्योधनको आनन्दित करूंगा ॥ ४ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले ।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥

आज तुम्हें मेरे बाणोंसे भस्म होकर पृथ्वीमें गिरा हुआ, महावीर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंही युद्धमें देखेंगे ॥ ५ ॥

अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया ।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥ ६ ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर जिन्होंने इस सेनामें तुम्हारा प्रवेश कराया है, आज तुमको मेरे हाथसे मारे जानेका समाचार सुन कर अत्यन्त लज्जित होंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनंजयः ।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥

तुम मेरे हाथसे मारे जाकर रुधिर पूरित शरीरसे युक्त होकर पृथ्वीमें शयन करोगे, तो पृथापुत्र अर्जुन भी आज मेरे पराक्रमको मालुम करेंगे ॥ ७ ॥

चिराभिलषितो ह्यद्य त्वया सह समागमः ।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८ ॥

पहिले राजा बलिके सङ्ग जैसे देवासुर संग्राममें इन्द्रका युद्ध हुआ था, मेरी सदासे ही इच्छा थी, कि तुम्हारे सङ्ग मेरा वैसा ही संग्राम उपस्थित होवे ॥ ८ ॥

अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत ।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९ ॥

हे सात्यकि ! इससे मैं आज तुम्हारे सङ्ग महाघोर युद्धमें प्रवृत्त होऊंगा; आज तुम मेरे बल, वीर्य तथा पराक्रमके विषयको विशेषरूपसे मालूम करोगे ॥ ९ ॥

अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे ।
यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन वै ॥ १० ॥

हे सात्यकि ! जैसे पहले लङ्कापति रावणका पुत्र इंद्रजित् श्रीरामचन्द्रके भाई लक्ष्मणके द्वारा युद्धमें मारा गया था, उसी प्रकार युद्धभूमिमें आज तुम भी मेरे द्वारा मारे जाकर यमलोकमें गमन करोगे ॥ १० ॥

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव ।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥

माधव ! आज तुम्हारे मारे जानेपर धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन उत्साहरहित होकर युद्ध त्यागके गमन करेंगे इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः ।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥ १२ ॥

हे सात्यकि ! आज मैं अपने चोखे बाणोंसे तुम्हारा वध करके, तुम्हारे अस्त्रोंसे युद्धमें मरे हुए शूरवीर पुरुषोंकी विधवा स्त्रियोंको आनन्दित करूंगा ॥ १२ ॥

चक्षुर्विषयसंप्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे ।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥

जब तुम मेरी दृष्टिके संमुख दिखाई पडे हो तो मेरे संमुखसे आज इस भांति जीवित नहीं छूट सकोगे, जैसे क्षुद्र हरिण सिंहकी दृष्टिमें पडकर जीवित नहीं रह सकता ॥ १३ ॥

युयुधानस्तु तं राजन्प्रत्युवाच हसन्निव ।
कौरवेय न संत्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥

राजन् ! भूरिश्रवाका वचन सुनकर सात्यकिने हंसकर उन्हें यह उत्तर दिया, हे कौरव्य ! युद्धमें मुझे कभी भय नहीं होता है ॥ १४ ॥

स मां निहन्यात्संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम् ।
समास्तु शाश्वतीर्हन्याद्यो मां हन्याद्धि संयुगे ॥ १५ ॥

जो पुरुष संग्राममें मुझे अस्त्र रहित कर सकेगा वही मेरा वध करनेमें समर्थ हो सकेगा। युद्धभूमिमें जो पुरुष मेरा वध करेगा, वह सदा सब जगह अपने अनेक शत्रुओंको मार सकेगा ॥ १५ ॥

किं मृषोक्तेन बहुना कर्मणा तु समाचर ।
शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते ॥ १६ ॥

जो हो, बहुतसी व्यर्थ बातें कहनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, तुमने जैसा वचन कहा है उसे सत्य करनेमें तत्पर हो जाओ। शरत् कालके बादलके समान तुम्हारे इस गर्जनका कुछ फल नहीं है ॥ १६ ॥

श्रुत्वैतद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ।
चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव ॥ १७ ॥

वीर ! तुम्हारी यह गर्जना सुनकर मुझे हंसी आती है । कौरव ! इस लोकमें तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेकी मुझे भी बहुत दिनोंसे अत्यन्त इच्छा थी वह आज पूर्ण हो जाय ॥ १७ ॥

त्वरते मे मतिस्तात त्वयि युद्धाभिकाङ्क्षिणि ।
नाहत्वा संनिवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम ॥ १८ ॥

तात ! तुम्हारे साथ युद्धकी इच्छा करनेवाली मेरी बुद्धि मुझे त्वरा करनेकी प्रेरणा देती है; हे अधम पुरुष ! आज मैं विना तुम्हारा वध किये कदापि युद्धसे निवृत्त न होऊंगा ॥ १८ ॥

अन्योन्यं तौ तदा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुंगवौ ।
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे । ॥ १९ ॥

इस प्रकार वे दोनों नरश्रेष्ठ परस्पर वाग्बाणोंसे विद्ध करते हुए, एक दूसरेको मार डालनेकी अभिलाषासे युद्धमें अत्यंत क्रुद्ध होकर बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥

समेतौ तौ नरव्याघ्रौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ।
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वाशितार्थे मदोत्कटौ ॥ २० ॥

वे दोनों तेजस्वी पुरुषसिंह एक दूसरेसे स्पर्धा करते हुए, हथिनीके लिये झगडनेवाले दो मतवाले हाथियोंके समान क्रुद्ध होकर एक दूसरेके ऊपर अस्त्रशस्त्रोंका प्रहार करने लगे; ॥ २० ॥

भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिंदमौ ।
शरवर्षाणि भीमानि मेघाविव परस्परम् ॥ २१ ॥

तथा भूरिश्रवा और सात्यकि दोनों शत्रुदमन वीर जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंकी भांति एक दूसरेके ऊपर अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २१ ॥

सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

महाराज ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने शिनिश्रेष्ठ सात्यकिका वध करनेकी अभिलाषा करके अपने शीघ्रगामी बाणोंसे उन्हें छिपा कर फिर तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २२ ॥

दशभिः सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान् ।
मुमोच निशितान्बाणाञ्जिघांसुः शिनिपुंगवम् ॥ २३ ॥

अनन्तर भूरिश्रवाने सात्यकिके नाश करनेकी इच्छासे उन्हें दश बाणोसे घायल करके फिर उनके ऊपर अगणित तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की ॥ २३ ॥

तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशां पते ।
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत्सात्यकिः प्रभो ॥ २४ ॥

पृथ्वीपते ! उन तीक्ष्ण बाणोंको समीप न आते ही आते सात्यकिने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे आकाशमें ही नष्ट कर दिये ॥ २४ ॥

तौ पृथक्शरवर्षाभ्यामवर्षतां परस्परम् ।
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २५ ॥

इसी प्रकारसे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वे दोनों वीर कुरुकुल श्रेष्ठ भूरिश्रवा और यदुकुलकी कीर्त्ति बढानेवाले सात्यकि परस्पर पृथक् शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ।
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम् ॥ २६ ॥

जैसे नखोंसे दो शार्दूल और दांतोंसे दो मतवाले हाथी आपसमें एक दूसरे पर प्रहार करत हैं, वैसे ही वे दोनों वीर रथ शक्ति और अनेक बाणोंको चलाकर आपसमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार करके क्षत–विक्षत करने लगे ॥ २६ ॥

निर्भिदन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ।
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ ॥ २७ ॥

बाणोंकी चोटसे दोनोंके शरीर क्षत विक्षत हो गये और उनके शरीरसे लगातार रुधिरकी धारा बहने लगी । प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धका जूआ खेलनेवाले वे दोनों परस्पर रोकने लगे ॥ २७ ॥

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ ॥ २८ ॥

कुरुकुल और वृष्णिकुलके यशको बढानेवाले वे दोनों वीर इस प्रकार परस्पर पीडित करके दो मतवाले यूथपति गजराजोंके समान युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ।
जिगीषन्तौ परं स्थानमन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २९ ॥

ब्रह्मलोकको सामने रखकर पुण्यलोकको प्राप्त करनेकी इच्छासे वे दोनों वीर प्रसन्न होके एक दूसरेको क्षतविक्षत करने लगे ॥ २९ ॥

सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ।
हृष्टवद्धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् ॥ ३० ॥

सात्यकि और भूरिश्रवा दोनों परस्पर अपने बाणोंकी वर्षा कर रहे थे और धृतराष्ट्रके पुत्र प्रसन्नचित्त होकर उनका युद्ध देख रहे थे ॥ ३० ॥

संप्रैक्षन्त जनास्तत्र युध्यमानौ युधां पती ।
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ । ॥ ३१ ॥

जैसे हथिनीको ग्रहण करनेकी इच्छावाले दो मतवाले यूथपति गजराज परस्पर घोर युद्ध करते हैं, वैसे ही वे योद्धाओंके अधिपति आपसमें लड रहे थे । उस समय सम्पूर्ण लोग उन दोनों वीरोंका युद्ध देखने लगे ॥ ३१ ॥

अन्योन्यस्य हयान्हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ।
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ॥ ३२ ॥

अनन्तर दोनोंने एक दूसरेके रथके घोडोंका वध करके तथा आपसमें एक दूसरेके धनुषको काट कर दोनों रथरहित होगये, तब वे दोनों वीर महायुद्धमें खड्ग युद्धके लिये परस्पर सामने आगये ॥ ३२ ॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ।
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ॥ ३३ ॥

बैलके चमडेकी दो विचित्र, मनोहर और बडी दो ढालें लेकर, तलवारोंको म्यानसे बाहर निकालकर वे दोनों युद्धभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥

चरन्तौ विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ।
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ॥ ३४ ॥

शत्रुनाशन क्रुद्ध वे दोनों वीर यथारीतिसे मण्डलाकार गतिसे पैंतराके सहित युद्ध विषयक नाना प्रकारके कौशल दिखाते हुए दोनोंही बार बार एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥

सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ।
रणे रणोत्कटौ राजन्नन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३५ ॥

उन दोनोंने हाथमें तलवारें ग्रहण की थीं; दोनोंके कवच विचित्र थे और वे निष्क और अंगद आदि अलंकारोंसे विभूषित थे । राजन् ! वे दोनों रणमस्त वीर परस्पर खींच रहे थे ॥ ३५ ॥

मुहूर्तमिव राजेन्द्र परिकृष्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! विश्राम करती हुई सम्पूर्ण सेनाके देखते देखते ही फिर वे दोनों वीर दो घडीतक परस्पर खींचते ही रहे ॥ ३६ ॥

असिभ्यां चर्मणी शुभ्रे विपुले च शरावरे ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ३७ ॥

अनन्तर दोनोंने अपने तलवारोंसे दोनोंकी चमडेकी मनोहर विशाल ढालें काट डालीं; फिर वे दोनों पुरुषसिंह बाहु युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ३८ ॥

चौडी छाती और लम्बी भुजावाले वे दोनों मल्लयुद्ध कुशल थे; वे अपनी लोहमयी परिघोंके समान भुजाओंसे आपसमें भिड गये थे ॥ ३८ ॥

तयोरासन्भुजाघाता निग्रहप्रग्रहौ तथा ।
शिक्षाबलसमुद्‌भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ३९ ॥

उन दोनों वीरोंकी युद्धनिपुणता, बल और शिक्षा, भुजाओंका आघात, बन्धन और फिर छुडाकर युद्ध करना देखकर सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग हर्षित होने लगे ॥ ३९ ॥

तयोर्नृवरयो राजन्समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४० ॥

जिस समय वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ उस प्रकार परस्पर आघात करके युद्ध करते थे, उस समय ऐसा भयङ्कर शब्द उत्पन्न होने लगा, जैसे वज्रकी चोटसे पर्वत टूटनेपर महाघोर शब्द प्रकट होता है ॥ ४० ॥

द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुंगवौ ॥ ४१ ॥

जैसे दांतोंके अग्रभागसे दो मतवाले हाथी और सींगोंसे दो बलवान् बैल युद्ध करते हैं, वैसे ही ये दोनों महात्मा कुरुवंशकी कीर्त्ति बढानेवाले भूरिश्रवा और यदुवंशियोंमें मुख्य सात्यकि युद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं रणे केतुं सर्वधनुर्धराणाम् ॥ ४२ ॥

अनन्तर अस्त्र शस्त्र नष्ट हो जानेपर सात्यकि इस प्रकार युद्ध कर रहे थे, तब श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! यह देखो, सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि रथरहित होकर समरमें युद्ध कर रहे हैं ॥ ४२ ॥

प्रविष्टो भारतीं सेनां तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ४३ ॥

भारत ! उन्होंने तुम्हारा अनुगमन करके कौरवी सेनामें घुसकर भरतवंशके सम्पूर्ण महापराक्रमी योद्धाओंके संग युद्ध किया है ॥ ४३ ॥

परिश्रान्तो युधां श्रेष्ठः संप्राप्तो भूरिदक्षिणम् ।
युद्धकाङ्क्षिणमायान्तं नैतत्सममिवार्जुन ॥ ४४ ॥

अर्जुन ! इस समय युद्ध करके थके हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि यज्ञोंमें बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, युद्ध करनेकी इच्छा करके आये हुए भूरिश्रवाके सामने उपस्थित हुए हैं; अभी ये युद्ध करनेकी योग्यताके नहीं है ॥ ४४ ॥

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
उद्यम्य न्यहनद्राजन्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ४५ ॥

महाराज ! श्रीकृष्ण इसी प्रकारसे कह रहे थे, उसी समय भूरिश्रवा अत्यन्य क्रुद्ध हुए और जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथी पर प्रहार करता है, वैसे ही उन्होंने युद्धदुर्मद सात्यकि पर उद्योग करके प्रकार किया ॥ ४५ ॥

रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन्समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ४६ ॥

राजन् ! समरमें सम्पूर्ण योद्धाओंमें अग्रणी, रथमें बैठे हुए, क्रुद्ध श्रीकृष्ण और अर्जुन वह युद्ध देख रहे थे ॥ ४६ ॥

अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ॥ ४७ ॥

तब महाबाहु श्रीकृष्ण सात्यकिकी ऐसी दशा देखकर फिर अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! देखो, यदुवंशी और अन्धकवंशियोंमें अग्रगी वीर सात्यकि भूरिश्रवाके हाथमें पडकर उनके वशमें होगया है ॥ ४७ ॥

परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवान्तेवासिनं वीरं पालयार्जुन सात्यकिम् ॥ ४८ ॥

हे अर्जुन ! वे अत्यंत दुष्कर कर्म करके थककर पृथ्वीपर गिर गये हैं । वीर सात्यकि तुम्हारे शिष्य हैं इससे तुम उनकी रक्षा करो ॥ ४८ ॥

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरारिहन् ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ४९ ॥

हे शत्रुनाशन पुरुषश्रेष्ठ ! जिससे तुम्हारी सहायता करनेके लिये सात्यकि यज्ञशील भूरिश्रवा के वश न हो जावें, तुम सावधान होकर शीघ्रताके सहित वही उपाय करो ॥ ४९ ॥

अथाब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनंजयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुंगवम् ।
महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् । ॥ ५० ॥

तब श्रीकृष्णके वचनको सुनकर अर्जुन प्रसन्न चित्तसे कहने लगे, हे भगवन् ! यह देखो देखो, जैसे वनमें कोई यूथपति सिंह महामतवाले हाथीके संग क्रीडा करे, वैसे ही कौरवोंमें श्रेष्ठ भूरिश्रवा वृष्णिवंशके श्रेष्ठवीर सात्यकिके साथ क्रीडा कर रहे हैं ॥ ५० ॥

हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ।
यदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद्भुवि ॥ ५१ ॥

महाबाहु भूरिश्रवाने सात्यकिको उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया । उसे देख सम्पूर्ण सेनाके बीच हाहाकार शब्दके सहित अत्यन्त कोलाहल होने लगा ॥ ५१ ॥

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन्भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठः सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५२ ॥

जैसे सिंह किसी मतवाले हाथीको खींचता है, वैसेही बहुतसी दक्षिणा देनेवाले कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा युद्धभूमिमें सात्वत श्रेष्ठ सात्यकिको खींचते हुए शोभित होने लगे ॥ ५२ ॥

अथ कोशाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।
मूर्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥ ५३ ॥

अनन्तर भूरिश्रवाने मियानसे तलवार बाहर निकाल कर एक हाथसे सात्यकिके बाल पकडे और उनकी छातीमें लात मारी ॥ ५३ ॥

तथा तु परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
वासुदेवस्ततो राजन्भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ५४ ॥

महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार युद्धमें केश खींचे जानेके कारण सात्यकिको भूरिश्रवाके वशमें पडे देख फिर अर्जुनसे बोले ॥ ५४ ॥

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ५५ ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! देखो, वृष्णि और अन्धकवंशियोंमें मुख्य सात्यकि इस समय सब भांतिसे भूरिश्रवाके वशमें पडे हैं, वह तुम्हारे शिष्य हैं और धनुर्विद्यामें भी तुमसे कम नहीं हैं ॥ ५५ ॥

असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे ।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ५६ ॥

पार्थ ! केवल पराक्रम व्यर्थ है, क्योंकि उसका आश्रय लेने पर भी वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकिसे युद्धमें भूरिश्रवा अधिक पराक्रम प्रकाशित कर रहे हैं ॥ ५६ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः ।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ५७ ॥

श्रीकृष्णके इसप्रकार कहे हुए वचनोंको सुनकर पाण्डुपुत्र महाबाहु अर्जुन मन ही मन युद्धमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५७ ॥

विकर्षन्सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे ।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ५८ ॥

कौरवोंकी कीर्ति बढानेवाले भूरिश्रवा जो यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको खेलवाडकी भांति ग्रहण करके क्रीडा कर रहे हैं, उससे मैं अत्यन्त आनन्दित हो रहा हूं ॥ ५८ ॥

प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम् ।
महाद्विपमिवारण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ५९ ॥

जैसे वनमें सिंह मतवाले महान् हाथीको खींचता है, वैसेही यह भूरिश्रवा वृष्णिवंश श्रेष्ठ वीर सात्यकिको खींच रहे हैं, उनको मार नहीं रहे हैं ॥ ५९ ॥

एवं तु मनसा राजन्पार्थः संपूज्य कौरवम् ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६० ॥

राजन् ! कुन्तीपुत्र महाबाहु अर्जुन इसी प्रकार कुरुवंशी भूरिश्रवाकी मन ही मन प्रशंसा करके श्रीकृष्णसे बोले ॥ ६० ॥

सैन्धवासक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधव ।
एष त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ६१ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मेरी दृष्टि सिन्धुराज जयद्रथकी ओर लगी हुई थी, इसीसे मैंने सात्यकिको नहीं देखा । जो हो, इस समय मैं यदुकुलभूषण सात्यकिकी रक्षाके लिये यह अत्यन्त कठिन कर्म करता हूं ॥ ६१ ॥

इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन्वासुदेवस्य पाण्डवः ।
सखड्गं यज्ञशीलस्य पत्रिणा बाहुमच्छिनत् ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ ५०५५ ॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनने ऐसा वचन कहकर श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करते हुए यज्ञशील भूरिश्रवाके भुजाको खड्ग सहित काट गिराया ॥ ६२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११७ ॥ ५०५५ ॥

: ११८ :

सञ्जय उवाच

स बाहुरपतद्भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः ।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमुत्तममुत्तमः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! भूरिश्रवाकी सुन्दर अंगद भूषित तलवारके सहित वह उत्तम भुजा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें दुःख पैदा करके पृथ्वीपर गिर पडी ॥ १ ॥

प्रहरिष्यन्हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना ।
वेगेनाभ्यपतद्भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥ २ ॥

अदृश्य अर्जुनके बाणसे कटकर वह प्रहारके लिये उद्यत भुजा पांच सिरवाले सर्पके समान जोरसे पृथ्वीपर गिर पडी ॥ २ ॥

स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः ।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद्गर्हयामास पाण्डवम् ॥ ३ ॥

अर्जुनने स्वयंको निष्फल किया हुआ देख भूरिश्रवा क्रुद्ध होकर सात्यकिको परित्यागकर पाण्डुपुत्र अर्जुनकी निन्दा करने लगे ॥ ३ ॥

नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि ।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः ॥ ४ ॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! तुम्हारा यह कार्य निन्दनीय हुआ है, क्योंकि मैं तुम्हें देखता नहीं था और दूसरेके सङ्ग युद्ध कर रहा था, उस ही समय तुमने मेरी भुजा काटी है ॥ ४ ॥

किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा इति ॥ ५ ॥

तुम धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे क्या कहोगे ? तुम यही उत्तर दोगे न कि भूरिश्रवा दूसरे कार्यमें मग्न थे, तब मैंने युद्धमें उनका वध किया है ॥ ५ ॥

इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना ।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा ॥ ६ ॥

जो हो, भला कहो तो सही, इस प्रकारसे अस्त्र चलानेका उपदेश तुमने महात्मा इन्द्र, रुद्र वा द्रोणाचार्य अथवा कृपाचार्यके निकट कहां सीखा था ? ॥ ६ ॥

ननु नाम स्वधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः ।
अयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥ ७ ॥

तुम इस पृथ्वीके बीच दूसरोंसे अधिक अस्त्र-शस्त्र धर्मके ज्ञाता होकर, रणभूमिमें अपने साथ युद्ध न करनेवाले पुरुषके ऊपर कैसे शस्त्र चलाया ? ॥ ७ ॥

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते ।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥

महात्मा लोग पागल, डरा हुआ, रथरहित, शरणागत और व्यसनमें फंसे हुए पुरुषके ऊपर कभी अस्त्र नहीं चलाते ॥ ८ ॥

इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम् ।
कथमाचरितं पार्थ त्वया कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

पार्थ ! तुमने किस प्रकार नीच प्रकृतिवाले लोगोंसे आचरित तथा असज्जनोंसे सेवित अत्यन्त दुष्कर पापमय कार्य कैसे किया ? ॥ ९ ॥

आर्येण सुकरं ह्याहुरार्यकर्म धनंजय ।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतरं भुवि ॥ १० ॥

धनंजय ! श्रेष्ठ पुरुषके लिये उत्तम कर्म ही सुकर कहा गया है; अनार्य कर्म तो उसके लिये इस जगतमें अत्यंत दुष्कर समझा गया है ॥ १० ॥

येषु येषु नरः पार्थ यत्र यत्र च वर्तते ।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥ ११ ॥

जो हो, मैंने जान लिया कि मनुष्य जैसी सङ्गतमें रहता है, थोडे ही समयके बीच उसके शरीरमें वैसे ही गुण उत्पन्न हो जाते हैं। तुम्हारे इस कार्यको देखनेहीसे मुझे यह वचन बोध हो रहा है ॥ ११ ॥

कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरव्यो विशेषतः ।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२ ॥

तुमने राजवंश विशेष करके कुरुकुलमें जन्म लेकर और स्वयं भी उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले होकर, किस प्रकार क्षत्रिय धर्मके विरुद्ध आचरण किया ? ॥ १२ ॥

इदं तु यदातिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया ।
वासुदेवमतं नूनं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ १३ ॥

मुझे मालूम होता है, कि श्रीकृष्णकी सम्मतिसे सात्यकिकी रक्षा करनेके लिये तुमने ऐसे अत्यंत निन्दित कर्मका अनुष्ठान किया है, क्योंकि यह संभव नहीं होता कि तुम ऐसे निन्दित कर्मको करोगे ॥ १३ ॥

को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखा भवेत् ॥ १४ ॥

कहो तो सही, श्रीकृष्णके वशमें चलने वाले उनके सुहृद् पुरुषको छोडकर और कौन पुरुष असावधान और दूसरेके सङ्ग युद्ध करनेवाले मनुष्यको इस प्रकार व्यसनमें फंसाता है ? ॥ १४ ॥

व्रात्याः संश्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव विगर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥

हे पार्थ ! वृष्णि और अन्धक वंशके सम्पूर्ण लोग संस्कारहीन हिंसा कर्म करनेवाले हैं और वे लोग स्वभावहीसे निन्दनीय हैं, परन्तु तुमने किस कारणसे उनको प्रमाण मान लिया ? ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं परित्यज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ १६ ॥

महायशस्वी महाबाहु यूपध्वज भूरिश्रवा अर्जुनसे ऐसे वचन कहकर सात्यकिको छोडकर युद्धभूमिमें प्रायोपवेशनके लिये बैठ गये ॥ १६ ॥

शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान्प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ १७ ॥

उन पुण्यात्मा राजा भूरिश्रवाने ब्रह्मलोकमें जानेकी अभिलाष करके बाये हाथसे बाणोंको बिछाकर प्राणोंमें प्राणोंका हवन करने लगे ॥ १७ ॥

×

सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ १८ ॥
और सूर्यकी ओर दृष्टि करके प्रसन्नताके सहित अपना चित्त जलमें लगाया और मौनव्रत धारण कर योगकी क्रियासे महोपनिषदमें कहे हुए ब्रह्मका ध्यान करने लगे ॥ १८ ॥

ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनंजयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥
अनन्तर उस व्यूहबद्ध सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा और पुरुषश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे ॥ १९ ॥

निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किंचिदप्रियम् ।
प्रशस्यमानश्च तथा नाहृष्यद्यूपकेतनः ॥ २० ॥
परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपनी निन्दा सुनकर भी कुछ अप्रिय वचन नहीं कहा और भूरिश्रवा भी अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न नहीं हुए ॥ २० ॥

तांस्तथा वादिनो राजन्पुत्रांस्तव धनंजयः ।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ २१ ॥
महाराज ! तुम्हारे पुत्र उसी भांति निन्दा करने लगे, तब उन लोगोंके और भूरिश्रवाके कहे हुए वचन मन ही मन अर्जुनसे न सहे गये ॥ २१ ॥

असंक्रुद्धमना वाचा स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फल्गुनः ॥ २२ ॥
भारत ! अक्रुद्ध मनसे अर्जुन उन लोगोंके पहिलेके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको स्मरण कराकर, उनपर आक्षेप करते हुए कहने लगे– ॥ २२ ॥

मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येतन्महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्बाणगोचरे ॥ २३ ॥
इस बातको सम्पूर्ण राजा लोग जानते हैं, कि युद्धभूमिमें मेरा यह एक विशेष नियम है, कि संग्राम करते हुए मेरी ओरका कोई पुरुष मेरे बाण पहुंचनेके मार्गमें स्थित रहेगा तो उसका कोई भी पुरुष वध न कर सकेगा ॥ २३ ॥

यूपकेतो समीक्ष्य त्वं न मां गर्हितुमर्हसि ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ २४ ॥
हे यूपध्वज भूरिश्रवा ! इस नियमको अच्छी भांति समझ कर मेरा तिरस्कार करना तुम्हें योग्य नहीं, क्योंकि यथार्थ धर्मको जाने कभी किसीकी निन्दा न करनी चाहिये ॥ २४ ॥

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ २५ ॥

तुम शस्त्रधारी होकर समरमें वृष्णिवीर सात्यकिका वध करनेको तैय्यार हुए थे, उस समय जो मैंने तुम्हारी भुजा काट डाली उसमें मेरा कौनसा धर्म-विरुद्ध कर्म हुआ है ? ॥ २५ ॥

न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को न पूजयेत् ॥ २६ ॥

तात ! परन्तु कहो तो सही, शस्त्र, रथ और वर्मसे रहित बालक अभिमन्युके बधके विषयमें कौन धर्मात्मा पुरुष प्रशंसा करेगा ? ॥ २६ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ २७ ॥

भूरिश्रवाने अर्जुनके ऐसा वचन कहनेपर अपने मस्तकसे पृथ्वीको स्पर्श करके, बांई भुजासे उस कटी हुई अपनी दाहिनी भुजाको उठाकर अर्जुनकी ओर फेंक दिया ॥ २७ ॥

एतत्पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ २८ ॥

महाराज ! अनन्तर यूपध्वजावाले महातेजस्वी भूरिश्रवाने अर्जुनके वचन सुनकर सिर नीचा कर मौनव्रत धारण कर लिया ॥ २८ ॥

अर्जुन उवाच

या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च वदतां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ २९ ॥

तब महात्मा अर्जुन यह वचन बोले, हे शलके बडे भाई भूरिश्रवा ! धर्मराज युधिष्ठिर और बोलनेवालोंमें अग्रणी भीमसेन, नकुल तथा सहदेवके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है, तुम्हारे ऊपर भी वैसा ही स्नेह है ॥ २९ ॥

मया तु समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृताँल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ३० ॥

इससे उशीनर तनय शिबिराजके समान पुण्यात्माओंके लोकोंमें तुम भी मेरी और महात्मा श्रीकृष्णकी अनुमतिसे गमन करो ॥ ३० ॥

सञ्जय उवाच

तत उत्थाय शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ३१ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! उस समय शिनिपौत्र सात्यकि भूरिश्रवाके हाथसे छूट जानेपर उठ कर खडे हो गये और उन्होंने महात्मा भूरिश्रवाका सिर काटनेकी इच्छासे तलवार ग्रहण किया ॥ ३१ ॥

निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रमत्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ३२ ॥

शलके बडे भाई, बहुतसी दक्षिणा देनेवाले अर्जुनके बाणसे भुजा कट जानेपर मरे हुएके समान, योगमें आसक्त, निष्पाप भूरिश्रवाको मार डालनेकी सात्यकिने इच्छा की ॥ ३२ ॥

निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ३३ ॥

उनकी भुजा कट जानेसे सूण्ड कटे हुए हाथीकी भांति वे बैठे थे, तोभी सात्यकिने उनका नाश करनेकी इच्छा की । उस समय सेनाके सम्पूर्ण लोग सात्यकिको ऐसे कार्यमें प्रवृत्त होते देख ऊंचे स्वरसे पुकार कर उसकी निन्दा करने लगे परंतु सात्यकि अत्यंत विपरीत मनोदशामें थे ॥ ३३ ॥

वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुन भी उन्हें रोक रहे थे; भीमसेन, चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य ॥ ३४ ॥

कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत्तं यतव्रतम् ॥ ३५ ॥

कर्ण, वृषसेन और सिन्धुराज जयद्रथ ये सब कोई सात्यकिको निवारण करते थे; परन्तु सम्पूर्ण सैनिकोंके चिल्लानेपर भी सात्यकिने किसीका भी वचन न सुनकर उस योगमें आसक्त भूरिश्रवाका बध कर ही डाला ॥ ३५ ॥

प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेन्द्राय खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ३६ ॥

युद्धभूमिमें अर्जुनके बाणोंसे भुजा कटे और आमरण उपवासका व्रत लेकर योगयुक्त चित्तसे पृथ्वीपर बैठे हुए, कौरवश्रेष्ठ भूरिश्रवापर सात्यकिने तलवारका प्रहार किया और उनका सिर काट दिया ॥ ३६ ॥

नाभ्यनन्दन्त तत्सैन्याः सात्यकिं तेन कर्मणा ।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ३७ ॥

तब उस समय सेनाके बीच किसी पुरुषने भी सात्यकिके इस निन्दित कर्मकी प्रशंसा नहीं की, क्योंकि उन्होंने अर्जुनके बाणोंसे पहले ही मरे हुएके समान कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाका वध किया था ॥ ३७ ॥

सहस्राक्षसमं तत्र सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ३८ ॥

युद्धमें प्रायोपवेशनके लिये बैठे, इन्द्रके समान भूरिश्रवाको मारा गया देख, सिद्ध, चारण, मनुष्य ॥ ३८ ॥

अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तस्य कर्मभिः ।
पक्षवादांश्च बहुशः प्रावदंस्तस्य सैनिकाः ॥ ३९ ॥

और देवताओंने उनके कर्मोंसे विस्मित होकर उनकी प्रशंसा की । अनन्तर तुम्हारी ओरके योद्धा लोगोंने भी सात्यकिके पक्ष और विपक्षमें अनेक वचन कहे ॥ ३९ ॥

न वार्ष्णेयस्यापराधो भवितव्यं हि तत्तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखकरो नृणाम् ॥ ४० ॥

जो होनेवाला था सो हुआ है, इसमें सात्यकिका कुछ अपराध नहीं है; इस विषयमें हम लोगोंको क्रोध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि क्रोध ही मनुष्यके दुःखका मूल है ॥ ४० ॥

हन्तव्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ४१ ॥

युद्धमें विधाताने वीर सात्यकिको ही भूरिश्रवाकी मृत्युरूपी किया था इससे उन्हींके हाथसे उनकी जरूर मृत्यु हुई; अब इस विषयमें कुछ भी शोक विचारकी जरूरत नहीं है ॥ ४१ ॥

सात्यकिरुवाच

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषथ ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमास्थिताः ॥ ४२ ॥

सात्यकि बोले— हे अधार्मिक कौरव लोगों ! जो धर्मका नाम लेकर 'भूरिश्रवाका नाश मत करो, भूरिश्रवाका नाश मत करो' ऐसा वचन कहकर मुझे धर्मका उपदेश कर रहे हो; उसका उत्तर सुनो ॥ ४२ ॥

यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविनाकृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ४३ ॥

कहो तो सही जब तुम सब लोगोंने मिलकर सुभद्रापुत्र बालक अभिमन्युको शस्त्ररहित करके युद्धमें मारा था, उस समय तुम्हारा धर्म कहा गया था ? ॥ ४३ ॥

मया त्वेतत्प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन्हन्यात्पदा रुषा ।
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रत ॥ ४४ ॥

परन्तु मैंने पहले समय प्रतिज्ञा की थी कि जो कभी भी मेरा अपमान करेगा अथवा जो संग्राममें कोई मुझे पटककर जीतेजी क्रोधसे लात मारेगा, वह शत्रु यदि मुनियोंका व्रत अवलम्बन करे तो भी मैं उसका वध करूंगा ॥ ४४ ॥

चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ।
मन्यध्वं मृतमित्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम् ।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुंगवाः ॥ ४५ ॥

तुम लोगोंने भुजाओंके सहित और अपने ऊपर किये आघातका बदला लेनेमें यत्नवान् मुझे देखकर भी मरा हुआ समझा था, वह तुम्हारी बुद्धिकी लघुता ही बोध हो रही है। हे कुरुसेनाके योद्धा लोगो ! मैंने भूरिश्रवाका वध करके बदला चुकाया है, वह मेरा उचित कार्य हुआ है ॥ ४५ ॥

यत्तु पार्थेन मत्स्नेहात्स्वां प्रतिज्ञां च रक्षता ।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः ॥ ४६ ॥

और अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये और मुझपरके प्रेमके कारण जो मुझे वैसी अवस्थामें देखकर भूरिश्रवाकी तलवारसहित भुजा काट डाली, उससे मैं ही भूरिश्रवाके मारनेके यशसे वंचित रह गया हूं; ॥ ४६ ॥

भवितव्यं च यद्भावि दैवं चेष्टयतीव च ।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन्किमत्राधर्मचेष्टितम् ॥ ४७ ॥

जो हो कोई होनहारका खण्डन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; उसे पूर्ण करनेके निमित्त दैव ही यत्नवान् होता है; इससे इस युद्धमें भूरिश्रवाका वध हुआ है; इसमें किसी प्रकार भी अधर्म नहीं है ॥ ४७ ॥

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि ।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥ ४८ ॥

इस पृथ्वीपर पहिले समय महर्षि वाल्मीकिने एक श्लोकका गान किया है, कि जिस प्रकार हो सके सब काल शत्रुको पीडा पहुंचाना योग्य है ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपाण्डवाः ।
न स्म किंचिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ४९ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! जब सात्यकिने ऐसा वचन कहा, तब कौरवोंकी ओरके सब श्रेष्ठ योद्धाओंने कुछ भी उत्तर न दिया, केवल मन ही मन सब उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४९ ॥

मन्त्रैर्हि पूतस्य महाध्वरेषु यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य ।
मुनेरिवारण्यगतस्य तस्य न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत् ॥ ५० ॥

वनवासी मुनियोंकी भांति वहां बैठे हुए, महान् यज्ञोंमें मन्त्रोंसे पवित्र हुए तथा सहस्रों स्वर्ण मुद्रा दान करनेवाले, महायशस्वी भूरिश्रवाके वधका किसीने भी अभिनन्दन नहीं किया ॥ ५० ॥

सुनीलकेशं वरदस्य तस्य शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् ।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं न्यस्तं हविर्धानमिवोत्तरेण ॥ ५१ ॥

वह पराक्रमी भूरिश्रवा याचकोंकी सम्पूर्ण कामनाएं पूरी करते थे । उस समय सुन्दर और नीले केशोंसे युक्त, पारावतके समान लालनेत्रके सहित कटा हुआ उनका सिर इस प्रकार शोभित होने लगा, जैसे आहुति देनेके निमित्त कटे हुए घोडेका सिर शोभित होता है ॥ ५१ ॥

स तेजसा शस्त्रहतेन पूतो महाहवे देहवरं विसृज्य ।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ५१०७ ॥

महाराज ! इसी प्रकार सम्पूर्ण याचकोंकी कामना पूरी करनेवाले सब पुरुषोंमें माननीय भूरिश्रवाने युद्धभूमिमें शस्त्रकी चोटसे मरकर पवित्र हो और अपने उत्तम शरीरको त्याग कर अपने तेजसे पृथ्वी आकाशको अतिक्रम करते हुए पुण्य और परम धर्मसे उपार्जित स्वर्गलोकमें गमन किया ॥ ५२ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥ ५१०७ ॥

: ११९ :

धृतराष्ट्र उवाच

अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः ।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जो महावीर सात्यकि युधिष्ठिरके निकट प्रतिज्ञा कर युद्धभूमिमें द्रोणाचार्य, कर्ण, विकर्ण और कृतवर्मा आदि महारथियोंसे अजित रहकर, समुद्रके समान कुरुसेनासे पार हुए ॥ १ ॥

स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः ।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः ॥ २ ॥

और जो युद्धमें सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंसे अजेय हैं, उनको कुरुवंशी भूरिश्रवा किस कारणसे बलपूर्वक पकडकर पृथ्वीमें गिरानेमें समर्थ हुए ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा ।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! शिनिपौत्र सात्यकि और भूरिश्रवाकी जिस भांतिसे उत्पत्ति हुई है और आपको जो सन्देह हुआ है, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं वर्णन करता हूं, आप सुनिये ॥ ३ ॥

अत्रेः पुत्रोऽभवत्सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः ।
बुधस्यासीन्महेन्द्राभः पुत्र एकः पुरूरवाः ॥ ४ ॥

अत्रि महर्षिके पुत्र सोम हुए, सोमके पुत्र बुध, बुधके एकही पुत्र इन्द्रके समान तेजस्वी राजा पुरूरवा उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः स्मृतः ।
नहुषस्य ययातिस्तु राजर्षिर्देवसंमितः ॥ ५ ॥

पुरूरवाके पुत्र आयु, आयुके पुत्र नहुष, नहुषके पुत्र देवताओंसे सम्मानित राजर्षि ययाति हुए ॥ ५ ॥

ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत्सुतः ।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति श्रुतः ॥ ६ ॥

और ययातिके ज्येष्ठ पुत्र देवयानीके गर्भसे यदु उत्पन्न हुए । उस ही यदुके वंशमें प्रसिद्ध देवमीढकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥

यादवस्तस्य च सुतः शूरस्त्रैलोक्यसंमतः ।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥

देवमीढके शूर नामक पुत्र तीनों लोकोंमें सम्मानित थे; शूरके पुत्र नरश्रेष्ठ शौरि हुए, वेही महायशस्वी वसुदेवके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ७ ॥

धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि ।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृपः ॥ ८ ॥

शूरसेन युद्धमें कार्त्तवीर्य अर्जुनके समान धनुर्विद्याके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ थे । उस ही वंशमें उन्हींके समान पराक्रमी शिनि नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः ।
दुहितुः स्वयंवरे राजन्सर्वक्षत्रसमागमे ॥ ९ ॥

राजन् ! उसी समयमें महात्मा राजा देवककी कन्याका स्वयंवर था, उस स्वयंवरमें पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रिय इकट्ठे हुए थे ॥ ९ ॥

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाप्तवान् ।
निर्जित्य पार्थिवान्सर्वान्रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥

उस स्वयंवरमें उन सम्पूर्ण राजाओंको जीतकर शिनिने वसुदेवके लिये देवकी देवीको हरके अपने रथमें बैठा लिया ॥ १० ॥

तां दृष्ट्वा देवकीं शौरे रथस्थां पुरुषर्षभः ।
नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥

महाराज ! महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ राजा सोमदत्तने देवकीको शूरपुत्र शिनिके रथपर बैठे हुए देख उनका वह पराक्रम सहन नहीं किया ॥ ११ ॥

तयोर्युद्धमभूद्राजन्दिनार्धं चित्रमद्भुतम् ।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ १२ ॥

उन दोनों महाबलवान् वीरोंका आधे दिन तक इन्द्र और प्रह्लादके समान अत्यन्त विचित्र और आश्चर्यमय बाहु युद्ध हुआ ॥ १२ ॥

शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः ।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १३ ॥

परन्तु शिनिने सोमदत्तको बलपूर्वक उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया और उनके केश पकड कर तलवार लिए हुए उनके छातीमें लात मारी ॥ १३ ॥

×

मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः ।
कृपया च पुनस्तेन जीवेति स विसर्जितः ॥ १४ ॥

चारों ओरसे सहस्रों राजा लोग यह देख रहे थे; फिर उनके बीचमें कृपा करके शिनिने तुम जीते रहो ऐसा कहके उन्हें छोड दिया ॥ १४ ॥

तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष ।
प्रसादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥ १५ ॥

महाराज ! सोमदत्त इस प्रकार उनसे अवमानित होकर क्रोधपूर्क वहांसे आकर तपस्या करने लगे; और अपनी तपस्यासे महादेवको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥

तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः ।
वरेण छन्दयामास स तु व्रवे वरं नृपः ॥ १६ ॥

भक्तोंको वरदान देनेवाले देवोंके देव प्रभु महादेवने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन्हें इच्छानुसार वर मांगनेके लिये कहा, तब राजा सोमदत्तने यह वरदान मांगा ॥ १६ ॥

पुत्रमिच्छामि भगवन्यो निहन्याच्छिनेः सुतम् ।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥

हे भगवान् ! मैं एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करता हूं, जो युद्ध भूमिमें सहस्रों राजाओंके सम्मुखमें शिनिके सन्तानको पृथ्वीपर पटकके लात मारे ॥ १७ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव ।
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥

राजन् ! महादेव सोमदत्तके इस वचनको सुनकर ऐसा ही होगा, यह वचन कहके वहां ही अन्तर्द्धान हो गये ॥ १८ ॥

स तेन वरदानेन लब्धवान्भूरिदक्षिणम् ।
न्यपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् ॥ १९ ॥

महाराज ! सोमदत्तने महादेवके उसही वरप्रभावसे अनेक दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा ऐसा पुत्र पाया था; और इस ही कारणसे भूरिश्रवाने समरमें शिनिपौत्र सात्यकिको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १९ ॥

एतत्ते कथितं राजन्यन्मां त्वां परिपृच्छसि ।
न हि शक्या रणे जेतुं सात्वता मनुजर्षभ ॥ २० ॥

नहीं तो पृथ्वीके बीच ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो समरमें सात्यकिको पराजित करे । महाराज ! तुमने जो विषय पूछा था; मैंने उस वृत्तान्तको तुम्हारे समीपमें वर्णन किया ॥२०॥

लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहवश्चित्रयोधिनः ।
देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः ।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २१ ॥

संग्राममें सम्पूर्ण वृष्णिवंशी लक्ष्यवेधनेवाले और चित्रयोधी हैं, युद्धभूमिमें वे लोग भयभीत नहीं होते, वे सब संग्राममें देवता, दानव और गन्धर्वोंको भी जीत सकते हैं; युद्धभूमिमें वे किसीकी सहायता नहीं चाहते, वे सब कोई अपने पराक्रमके अनुसार विजयकी इच्छा करते हैं ॥ २१ ॥

न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किंचन प्रभो ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥ २२ ॥

हे नरनाथ ! वृष्णिवंशियोंके सङ्ग दूसरे पुरुषकी उपमा दी जावे ऐसा मैं पृथ्वीके बीच किसीको नहीं देखता । उन लोगोंके समान पराक्रमी पहले भी कोई नहीं था, न भविष्यहीमें होगा और न इस ही समय कोई उपस्थित है ॥ २२ ॥

न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः ।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
जेतारो वृष्णिवीराणां न पुनर्मानुषा रणे ॥ २३ ॥

वे सब कोई वृद्ध पुरुषोंकी आज्ञामें चलनेवाले हैं, वे लोग कदापि अपने जातिके पुरुषोंका अपमान नहीं करते । युद्धभूमिमें मनुष्योंकी बात तो दूर रहे, उन लोगोंके देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षस आदि कोई भी पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिद्रव्येऽप्यहिंसकाः ।
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांचिदापदि ॥ २४ ॥

उन लोगोंके विषयमें ब्राह्मणोंका धन और गुरुधनकी बात तो दूर रहे, वे लोग अपने जाति-वालोंके भी धनपर इर्षा प्रकाश नहीं करते । और ब्राह्मण तथा जातिके पुरुष जब किसी प्रकारकी विपतमें फंसते हैं तब वे लोग सब भांतिसे उनकी रक्षा किया करते हैं ॥ २४ ॥

अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
समर्थान्नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च ॥ २५ ॥

वे लोग ऐश्वर्यवान् होकर भी गर्व नहीं करते, वे सब ही ब्राह्मणोंमें निष्ठा करनेवाले और सत्यवादी हैं । वे लोग समर्थ पुरुषोंका अपमान नहीं करते और दीन दुःखियोंको सदा विपतसे बचाते रहते हैं ॥ २५ ॥

नित्यं देवपरा दान्ता दातारश्चाविकत्थनाः ।
तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते ॥ २६ ॥

वे सदा देवताओंमें निष्ठावान् और जितेन्द्रिय हैं। वे लोग दानी हैं और अपने मुहसे अपनी बडाई नहीं करते; इस ही निमित्त पृथ्वीके बीच वृष्णिवंशियोंका प्रभाव कहीं निष्फल नहीं होता ॥ २६ ॥

अपि मेरुं वहेत्कश्चित्तरेद्वा मकरालयम् ।
न तु वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप ॥ २७ ॥

यदि कोई पुरुष कभी सुमेरु पर्वतके उठाने और अपार समुद्रको तरनेमें समर्थ हो सके, तो भी युद्धभूमिमें वृष्णिवंशि वीरोंका अन्त नहीं पा सकेगा ॥ २७ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयो विभो ।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव ह्यपनयो महान् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ५१३५ ॥

हे राजेन्द्र! आपने जिस विषयमें सन्देह किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने वर्णन किया परन्तु इन पुरुषोंके नाशका मूल कारण आपका महान् अन्याय ही है ॥ २८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥ ५१३५ ॥

: १२० :

धृतराष्ट्र उवाच

तदवस्थे हते तस्मिन्भूरिश्रवसि कौरवे ।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय! कुरुवंशीय भूरिश्रवा जब उस अवस्थामें मारे गये तब फिर जिस प्रकार युद्ध हुआ था, वह मेरे समीप वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– महाराज! जब भूरिश्रवाने परलोकमें गमन किया तब महाबाहु अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले ॥ २ ॥

चोदयाश्वान्भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! सिन्धुराज जयद्रथ जिस स्थानपर स्थित है, तुम शीघ्रताके सहित मेरे घोडोंको उसी स्थानपर ले चलो । हे महाबाहो ! यह देखो, सूर्य जल्दी जल्दी अस्ताचल पर्वतपर गमन कर रहा है ॥ ३ ॥

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ४ ॥

मैंने यह जयद्रथ वधरूपी बहुत बडे कार्यके लिये आरंभ किया है; परन्तु कौरवोंकी ओरके महारथी योद्धा लोग जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ४ ॥

नास्तमेति यथा सूर्यो यथा सत्यं भवेद्वचः ।
चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ५ ॥

हे श्रीकृष्ण ! इससे तुम इस प्रकार घोडोंको चलाओ, जिससे मैं आज सूर्य अस्त होनेके पहिले ही जयद्रथका वध करके सत्यप्रतिज्ञ हो सकूं ॥ ५ ॥

ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान्हयान् ।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथरथं प्रति ॥ ६ ॥

अनन्तर घोडेके हांकनेकी विद्या जाननेवाले महाबाहु श्रीकृष्णने चांदीके समान श्वेत घोडोंको जयद्रथके रथकी ओर चलाया ॥ ६ ॥

तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाव्रजन् ॥ ७ ॥

महाराज ! अमोघ बाणवाले अर्जुनको धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समान उडते हुएसे घोडोंसे जाते देख कौरवोंके मुख्य वीर जोरसे दौडे ॥ ७ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ८ ॥

राजा दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं सिंधुराज जयद्रथ -- ये सब युद्धके लिये तैयार होगये ॥ ८ ॥

समासाद्य तु बीभत्सुः सैन्धवं प्रमुखे स्थितम् ।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां संप्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥ ९ ॥

अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथको सम्मुख खडे देख इस प्रकार क्रोधपूर्ण आंखोंसे उनकी ओर देखने लगे मानो दृष्टिसे देखकर ही उन्हें भस्म कर देंगे ॥ ९ ॥

ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् ।
अर्जुनं वीक्ष्य संयान्तं जयद्रथरथं प्रति ॥ १० ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन अर्जुनको जयद्रथके रथकी ओर गमन करते देख शीघ्रताके सहित राधापुत्र कर्णसे बोले ॥ १० ॥

अयं स वैकर्तन युद्धकालो विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन् ।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ ११ ॥

हे महात्मा कर्ण ! यही अब तुम्हारे युद्धका समय उपस्थित हुआ है, इससे ऐसे समयमें सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको तुम अपना पराक्रम और प्रभाव दिखाओ, जिससे युद्धमें अर्जुन जयद्रथका वध न कर सके, तुम वैसे ही यत्न करो ॥ ११ ॥

अल्पावशिष्टं दिवसं नृवीर विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर ध्रुवं हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ १२ ॥

हे पुरुषसिंह ! दिन बीतनेमें अब थोडाही समय बाकी है, इस ही समय तुम अपने बाणोंकी वर्षा करके शत्रुको बिद्ध करके उसके कार्यमें विघ्न करो । दिन समाप्त होनेपर निश्चयही हमारी विजय हो जायगी ॥ १२ ॥

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमयं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १३ ॥

सूर्य अस्त होनेतक सिंधुराज जयद्रथकी रक्षा करनेसेही कुन्तीपुत्र अर्जुन मिथ्याप्रतिज्ञा करनेवाला होकर अवश्य ही अग्निमें प्रवेश करेगा ॥ १३ ॥

अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन्वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १४ ॥

मानद ! अर्जुनके न रहनेपर उनके भ्राता और उनके अनुयायी योद्धा लोग भी पृथ्वीपर दो घडीतक भी जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करेंगे ॥ १४ ॥

विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् ।
वसुंधरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ १५ ॥

कर्ण ! इसी प्रकार जब सम्पूर्ण पाण्डव नष्ट हो जावेंगे, तब हम लोग पर्वत, वन और काननों सहित इस सम्पूर्ण निष्कण्टक पृथ्वीको भोग करेंगे ॥ १५ ॥

दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानन्वै प्रतिज्ञां कृतवान्रणे ॥ १६ ॥

हे मानद ! अर्जुनने अभाग्यहीसे उलटी बुद्धिका अवलम्बन कर कार्य और अकार्यके ज्ञानसे रहित हो, रणभूमिमें जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा की है ॥ १६ ॥

नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १७ ॥

कर्ण ! किरीटधारी अर्जुनने निश्चयही अपनेही विनाशके लिये यह जयद्रथ–वधकी प्रतिज्ञा कर ली है ॥ १७ ॥

कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फल्गुनः।
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात्सैन्धवकं नृपम् ॥ १८ ॥

हे राधापुत्र ! तुम्हारे जैसे दुर्धर्ष वीरके जीवित रहतेही अर्जुन किस प्रकार सूर्यास्त होनेसे पहलेही सिंधुराज जयद्रथका वध कर सकेंगे ? ॥ १८ ॥

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनंजयः ॥ १९ ॥

विशेष करके मद्रराज शल्य और महात्मा कृपाचार्यसे रक्षित हुए जयद्रथको अर्जुन युद्धके अग्रभागमें कैसे मार सकेंगे ? ॥ १९ ॥

द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः ॥ २० ॥

अश्वत्थामा, दुःशासन और मैं, हम सब कोई मिलके उनकी रक्षा कर रहे हैं, तब सिंधुराज जयद्रथको अर्जुन कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? इससे जान पडता है कि कालसे प्रेरित हो गये हैं ॥ २० ॥

युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥ २१ ॥

मानद ! इधर बहुतसे योद्धा लोग उनके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं और सूर्य भी अस्त होने जा रहे हैं; अर्जुन जयद्रथको नहीं प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा संशय मेरे मनमें उत्पन्न होता है ॥ २१ ॥

स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः।
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे ॥ २२ ॥

हे कर्ण ! इससे तुम इस समय मेरे तथा दूसरे अनेक पराक्रमी महारथी योद्धाओंके साथ मिलकर युद्धभूमिमें विशेष यत्नपूर्वक अर्जुनके सङ्ग युद्ध करो ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष।
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम् ॥ २३ ॥

महाराज ! राधापुत्र कर्णने तुम्हारे पुत्र कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनके वचनको सुन कर यह उत्तर दिया ॥ २३ ॥

दृढलक्ष्येण शूरेण भीमसेनेन धन्विना ।
भृशमुद्वेजितः संख्ये शरजालैरनेकशः ॥ २४ ॥

हे राजन् ! दृढताके सहित लक्ष्य भेद करनेवाले धनुर्धारी महावीर भीमसेनने युद्धमें अपने बाणोंसे अनेक बार मेरे शरीरको अत्यंत क्षत विक्षत कर दिया है ॥ २४ ॥

स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे संप्रति मानद ।
नैवाङ्गमिङ्गति किंचिन्मे संतप्तस्य रणेषुभिः ॥ २५ ॥

इस समय युद्धभूमिमें ही रहना उचित है, इसही निमित्त मैं संग्रामभूमिमें स्थित हूं। मेरा कोई भी अंग कोई भी चेष्टा करनेमें असमर्थ है, मैं युद्धमें लगे हुए बाणोंकी आगसे संतप्त हूं ॥ २५ ॥

योत्स्यामि तु तथा राजञ्छक्त्याहं परया रणे ।
यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम् ॥ २६ ॥

तो भी मैं यथाशक्ति समरमें शत्रुके साथ युद्ध करूंगा; और वह पाण्डवोंमें मुख्य अर्जुन जिसमें सिन्धुराज जयद्रथका वध न कर सके ऐसा प्रयत्न करूंगा ॥ २६ ॥

न हि मे युध्यमानस्य सायकांश्चारयतः शितान् ।
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनंजयः ॥ २७ ॥

युद्धभूमिमें तत्परतासे यदि मैं अपने चोखे बाणोंको वर्षाता रहूंगा, तो सव्यासाची वीर अर्जुन किसी प्रकारसे भी जयद्रथके समीप न पहुंच सकेंगे ॥ २७ ॥

यत्तु शक्तिमता कार्यं सततं हितकारिणा ।
तत्करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ २८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! सदा हितैषी और भक्तिमान पुरुषको जैसा कर्त्तव्य कार्य करना उचित है मैं अवश्य ही वैसा कार्य करूंगा, परन्तु जीत तो दैवके आधीन है ॥ २८ ॥

अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः ।
त्वदर्थं पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ २९ ॥

हे पुरुषसिंह ! आज मैं तुम्हारे लिये अपने पराक्रमके आसरेसे अर्जुनके संग युद्ध करूंगा, विजयकी प्राप्ति तो दैवके आधीन है ॥ २९ ॥

अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ।
पश्यन्तु सर्वभूतानि दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ३० ॥

कुरुश्रेष्ठ ! आज ये सम्पूर्ण सेनाएं रोएंको खडा करनेवाला मेरा और अर्जुन--दोनोंका भयङ्कर युद्ध देखें ॥ ३० ॥

कर्णकौरवयोरेवं रणे संभाषमाणयोः ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम् ॥ ३१ ॥

युद्धमें जब कर्ण और दुर्योधन इसी प्रकार आपसमें बात चीत कर रहे थे, तब इधर अर्जुन अपने चोखे बाणोंसे तुम्हारी सेनाका नाश कर रहे थे ॥ ३१ ॥

चिच्छेद तीक्ष्णाग्रमुखैः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
भुजान्परिघसंकाशान्हस्तिहस्तोपमान्रणे ॥ ३२ ॥

उन्होंने अपने जिनके अग्रभाग तीक्ष्ण हैं ऐसे बाणोंसे युद्धमें पीछे न हटनेवाले शूरवीरोंकी परिघ और हाथीकी सूण्डके समान बडी भुजाओंको काट गिराया ॥ ३२ ॥

शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ।
हस्तिहस्तान्हयग्रीवा रथाक्षांश्च समन्ततः ॥ ३३ ॥

महाबाहु अर्जुनने सब ओर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंके सिर, हाथियोंकी सूण्ड, घोडोंके गर्दन और रथोंकी धुरोंको काट डाला ॥ ३३ ॥

शोणिताक्तान्हयारोहान्गृहीतप्रासतोमरान् ।
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ॥ ३४ ॥

अर्जुनने प्रास और तोमर ग्रहण करनेवाले रुधिरसे भरे हुए घुडसवारोंमेंसे प्रत्येकके अपने तीक्ष्ण क्षुरास्त्रोंसे दो दो तथा तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिराये ॥ ३४ ॥

हयवारणमुख्याश्च प्रापतन्त सहस्रशः ।
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार युद्धभूमिमें सहस्रों बडे बडे हाथी, घोडे, ध्वजा, छत्र, धनुष, चंवर और योद्धाओंके सिर कटकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३५

कक्षमग्निरिवोद्धूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ।
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ॥ ३६ ॥

जैसे प्रचण्ड अग्नि शीघ्र ही तृणफूसको भस्म करती है, वैसे ही अर्जुनने तुम्हारी सेनाके लोगोंको दग्ध करते हुए थोडेही समयमें पृथ्वीको रुधिरसे परिपूरित कर दिया ॥ ३४ ॥

हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ।
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ॥ ३७ ॥

महाबलवान् सत्यपराक्रमी दुर्धर्ष वीर अर्जुनने तुम्हारी सेनाके अनेक योद्धाओंका वध करके सिंधुराज जयद्रथ पर आक्रमण किया ॥ ३७ ॥

×

बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ।
स बभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! सात्यकि और भीमसेनसे रक्षित अर्जुन प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३८ ॥

तं तथावस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसंमताः ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः फल्गुनं पुरुषर्षभाः ॥ ३९ ॥

परन्तु तुम्हारी ओरके श्रेष्ठ पराक्रमी महाधनुर्धर वीरोंने युद्धभूमिमें अर्जुनको इस भांति बल पराक्रमसे युक्त होकर युद्ध करते देख सहन नहीं किया ॥ ३९ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट्
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ४० ॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं सिंधुराज जयद्रथ ॥ ४० ॥

संरब्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन्किरीटिनम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिस्वनैः ॥ ४१ ॥

इन सबने क्रुद्ध होकर धनुषकी टंकार करते हुए रथके मार्गोंपर नाचते किरीटधारी अर्जुनको जयद्रथकी रक्षाके लिये सब ओरसे घेर लिया ॥ ४१ ॥

संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ।
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ४२ ॥

उस समय युद्धप्रवीण अर्जुन मुंह फैलाये हुए यमराजके समान भयंकर दीखते थे; उन्हें सब युद्धविशारद कौरव योद्धाओंने निर्भयचित्त हो चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४२ ॥

सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽर्जुनाच्युतौ ।
सूर्यास्तमयमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ॥ ४३ ॥

वे श्रीकृष्ण और अर्जुनके बधकी इच्छा करके सिंधुराज जयद्रथको पीछे करके सूर्य अस्त होनेकी प्रतीक्षा और इच्छा करने लगे; उस समय सूर्य लाल हो गये थे ॥ ४३ ॥

ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यायम्य सायकान् ।
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्शतशः फल्गुनं प्रति ॥ ४४ ॥

और वे सर्पके शरीरके समान अपनी भुजाओंसे प्रचण्ड धनुषोंको खींचकर सूर्यकिरणोंके समान प्रकाशमान सैकड़ों बाण अर्जुनके ऊपर चलाने लगे ॥ ४४ ॥

तानस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ।
द्विधा त्रिधाष्टधैकैकं छित्त्वा विव्याध तान्रणे ॥ ४५ ॥

युद्धदुर्मद किरीटधारी अर्जुनने उन महारथियोंके छोडे गये बाणोंको अपने बाणोंसे दोन दोन, तीन तीन और आठ आठ खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया और उन महारथियोंको भी समरमें विद्ध किया ॥ ४५ ॥

सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः ।
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ॥ ४६ ॥

राजन् ! सिंह लांगूलवाली ध्वजासे शोभित शारद्वती पुत्र कृपाचार्यने अपना पराक्रम प्रकाशित करके अर्जुनको रोक दिया ॥ ४६ ॥

स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ।
अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ॥ ४७ ॥

उन्होंने अर्जुनको दस और श्रीकृष्णको सात बाणोंसे विद्ध किया; और वे रथके मार्गोंपर जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये खडे हुए ॥ ४७ ॥

अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ।
महता रथवंशेन सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ४८ ॥

अनन्तर कुरुसेनाके सम्पूर्ण श्रेष्ठ महारथियोंने विशाल रथ समूहसे कृपाचार्यको सब ओरसे घेर लिया ॥ ४८ ॥

विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ।
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात्तनयस्य ते ॥ ४९ ॥

वे तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे धनुष खींचते और बाण छोडते हुए जयद्रथकी रक्षा करने लगे ॥ ४९ ॥

तत्र पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ॥ ५० ॥

शूरवीर अर्जुनके भुजाओंका बल, उनके दोनों तूणीरोंका अमोघपन और प्रचण्ड गाण्डीव धनुषकी दृढता आश्चर्यरूपसे दिखाई देने लगी ॥ ५० ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
एकैकं नवभिर्बाणैः सर्वानेव समर्पयत् ॥ ५१ ॥

उन्होंने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे अश्वत्थामा और कृपाचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उनमेंसे प्रत्येकको नौ नौ बाणोंसे पीडित किया ॥ ५१ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ।
दुर्योधनश्च विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥

अनन्तर अर्जुनको अश्वत्थामाने पचीस, वृषसेनने सात, दुर्योधनने बीस तथा कर्ण और शल्यने तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५२ ॥

त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ।
विधुन्वन्तश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन् ॥ ५३ ॥

इसी भांति वे सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग बार बार सिंहनाद करके, धनुष फेरते हुए अर्जुनको अपने बाणोंसे बार बार विद्ध करने लगे; और सब ओरसे उन्हें रोकने लगे ॥५३॥

श्लिष्टं तु सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ।
सूर्यास्तमयमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः ॥ ५४ ॥

और उन महारथियोंने सूर्य अस्त होनेकी प्रतीक्षा करके अर्जुनको चारों ओरसे शीघ्रतासे अपने रथोंके समूहसे इस भांति घेर लिया कि अर्जुनको निकलनेके निमित्त इधर उधर तनिक भी मार्ग न रहा ॥ ५४ ॥

त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ।
सिषिचुर्मार्गणैर्घोरैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः ॥ ५५ ॥

महाराज ! वे कौरव महारथी योद्धा लोग सिंहनादके सहित धनुष चढाकर अर्जुनके ऊपर ऐसी तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे बादलोंका समूह पर्वतके ऊपर जलवर्षा करता है ॥ ५५ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन्व्यदर्शयन् ।
धनंजयस्य गात्रेषु शूराः परिघबाहवः ॥ ५६ ॥

राजन् ! परिघके समान भुजाओंवाले उन शूरवीरोंने अर्जुनके शरीरपर वहां महान् दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित किया ॥ ५६ ॥

हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ।
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ॥ ५७ ॥

परन्तु सत्य पराक्रमी बलवान् दुर्धर्ष अर्जुनने तुम्हारी सेनाके अनगिनत योद्धाओंको यमपुरीमें भेजकर सिंधुराज जयद्रथपर धावा किया ॥ ५७ ॥

तं कर्णः संयुगे राजन्प्रत्यवारयदाशुगैः ।
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ॥ ५८ ॥

भारत ! तब उस समय युद्धमें सूतपुत्र कर्णने सात्यकि और भीमसेनके देखते देखते अपने वेगवान् बाणोंसे अर्जुनको रोक दिया ॥ ५८ ॥

तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ।
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ५९ ॥

महाबाहु अर्जुनने भी समरमें सम्पूर्ण सेनाके देखते ही कर्णको दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५९ ॥

सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ।
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः ॥ ६० ॥

मारिष ! फिर सात्यकिने तीन, भीमसेनने भी तीन और अर्जुनने फिर सात बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ ६० ॥

तान्कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ।
तद्युद्धमभवद्राजन्कर्णस्य बहुभिः सह ॥ ६१ ॥

महारथी कर्णने उन हरएक वीरोंको साठ साठ बाणोंसे विद्ध किया । इसी भांति उन अनेक महारथियोंके साथ अकेले कर्णका युद्ध होने लगा ॥ ६१ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ।
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन्रथान्पर्यवारयत् ॥ ६२ ॥

महाराज ! उस समय सूतपुत्र कर्णका हमने यह आश्चर्यमय पराक्रम देखा कि, वह युद्धभूमिमें अकेलेही उन तीनों महारथियोंको क्रुद्ध होकर निवारित करने लगे ॥ ६२ ॥

फल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ।
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ६३ ॥

महाबाहु अर्जुनने युद्धमें सौ बाणोंसे सूर्यपुत्र कर्णके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंको पीडित किया ॥ ६३ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
शरैः पञ्चाशता वीरः फल्गुनं प्रत्यविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः ॥ ६४ ॥

उस महाप्रतापी सूतपुत्र वीर कर्णने रुधिर पूरित शरीरसे युक्त हो पचास बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया । रणमें कर्णका ऐसा अस्त्रलाघव देखकर अर्जुन उसे सहन न कर सके ॥ ६४ ॥

ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे ।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनंजयः ॥ ६५ ॥

कुन्तीपुत्र वीर धनंजयने कर्णके धनुषको काट कर शीघ्रही नौ बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ ६५ ॥

वधार्थं चास्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनंजयः ॥ ६६ ॥

फिर शीघ्रता करनेवाले अर्जुनने समरमें सूतपुत्र कर्णके वधके निमित्त सूर्यके समान एक तेजस्वी बाण उनके ऊपर चलाया ॥ ६६ ॥

तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स छिन्नः प्रापतद्भुवि ॥ ६७ ॥

उस बाणको वेगपूर्वक कर्णकी ओर आते देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपने तीक्ष्ण अर्धचन्द्रसे काट दिया; कटकर वह पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ६७ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फल्गुनम् ।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ६८ ॥

उसही समय प्रतापी शत्रुनाशन सूतपुत्र कर्णने दूसरा धनुष ग्रहण कर अर्जुनके किये हुए प्रहारका बदला लेनेकी इच्छासे अनेक सहस्र बाणोंसे फिर उनको छिपा दिया ॥ ६८ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकौघप्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ।
अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तावितरेतरम् ॥ ६९ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह महारथी दो मतवाले बैलोंकी भांति गर्जते हुए अपने बाणोंकी जालसे आकाशमण्डलको आच्छादित करने लगे, और दोनोंही एक दूसरेको विद्ध करते हुए स्वयं बाणोंकी जालसे अदृश्य हो गये ॥ ६९ ॥

पार्थोऽहमस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फल्गुन ।
इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तथा ॥ ७० ॥

उस समय वे दोनों पराक्रमी वीर ' हे कर्ण ! खडे रहो ! मैं अर्जुन हूं; हे अर्जुन ! खडा रह ! मैं कर्ण हूं; ' इसी प्रकार एक दूसरेको पुकारकर गर्जते हुए वे दोनों पुरुषसिंह अपने वचनरूपी शलाकासे एक दूसरेको दुःखित करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ७० ॥

युध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
प्रेक्षणीयौ चाभवतां सर्वयोधसमागमे ॥ ७१ ॥

वे दोनों पराक्रमी वीर अस्त्र लाघवके सहित अस्त्र चलाते और नाना प्रकारके युद्ध कौशल दिखाते हुए रणभूमिमें इस प्रकार युद्ध करने लगे कि वे दोनों वहां एकत्र हुए उन सब योद्धाओंमें प्रेक्षणीय हो गये ॥ ७१ ॥

प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणवार्तिकैः ।
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ॥ ७२ ॥

महाराज ! इसी भांति जब वे दोनों वीर एक दूसरेके वधकी इच्छा करके युद्ध कर रहे थे, उस समय सिद्ध, चारण और वार्तिक उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७२ ॥

ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ।
यत्ता रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान्नृपः ॥ ७३ ॥

राजन् ! अनन्तर राजा दुर्योधन अपनी सेनाके पुरुषोंसे यह वचन बोले, हे वीरपुरुषो ! आज कर्णने मेरे समीप इस प्रकार प्रतिज्ञा की है, कि युद्धभूमिमें अर्जुनको बिना मारे मैं युद्धसे निवृत्त न होऊंगा; इससे तुम सब कोई यत्नवान् होकर राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो ॥ ७३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ।
अनयन्मृत्युलोकाय चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ७४ ॥

राजन् ! राजा दुर्योधन अपनी सेनाके वीरोंसे ऐसा वचन कह रहे थे और इसी समय अर्जुनने कर्णका वह पराक्रम देखकर कानपर्यन्त खींचकर छोडे हुए उत्तम चार बाणोंसे कर्णके चारों घोडोंको प्रेतलोकको भेज दिया ॥ ७४ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ७५ ॥

फिर एक भल्लसे उनके सारथीको मारकर रथसे नीचे पृथ्वीमें गिराया और अनेक बाणोंको चलाकर दुर्योधनके देखते ही कर्णको छिपा दिया ॥ ७५ ॥

स छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ।
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ॥ ७६ ॥

इसी प्रकार कर्ण युद्धभूमिके बीच घोडे और सारथीके मारे जानेपर अर्जुनके बाणजालमें छिपकर मोहित होगये; तब वह अपने मनमें विचारने लगे, कि इस समय कौनसा कार्य करूं, परन्तु कुछ भी निश्चय न कर सके ॥ ७६ ॥

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य स्वं तदा ।
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ॥ ७७ ॥

महाराज ! उस ही समय द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने कर्णको इस प्रकार रथरहित हुआ देख उन्हें अपने रथमें चढा लिया, और वह फिर अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ७७ ॥

मद्रराजस्तु कौन्तेयमविध्यत्त्रिंशता शरैः ।
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनंजयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ७८ ॥

उस समय मद्रराज शल्यने कुन्तीपुत्र अर्जुनको तीस बाणोंसे विद्ध किया और कृपाचार्यने वीस बाणोंसे श्रीकृष्ण और बारह बाणोंसे अर्जुनके शरीरमें प्रहार किया ॥ ७८ ॥

चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक्पृथङ्महाराज कृष्णपार्थाववविध्यताम् ॥ ७९ ॥

महाराज ! अनन्तर सिन्धुराज जयद्रथने चार और वृषसेनने सात बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको पृथक पृथक विद्ध किया ॥ ७९ ॥

तथैव तान्प्रत्यविध्यत्कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८० ॥

इसी प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी उन्हें अपने बाणोंसे विद्ध किया; उन्होंने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चौसठ, मद्रराज शल्यको सौ ॥ ८० ॥

सैन्धवं दशभिर्भल्लैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थः समुन्नदत् ॥ ८१ ॥

सिंधुराज जयद्रथको दस भल्लोंसे, वृषसेनको तीन और कृपाचार्यको वीस बाणोंसे विद्ध करके अर्जुनने सिंहनाद किया ॥ ८१ ॥

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनंजयम् ॥ ८२ ॥

तब तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा लोग सव्यसाची अर्जुनकी प्रतिज्ञाको भङ्ग करनेकी इच्छासे सब कोई मिलकर शीघ्रतासे उनकी ओर दौडे ॥ ८२ ॥

अथार्जुनः सर्वतोधारमस्त्रं प्रादुश्चक्रे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुसूनुं रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ८३ ॥

तब अर्जुनने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको त्रस्त करते हुए सर्वतोधार अस्त्र प्रकट किया; परन्तु कौरव लोग भी अपने उत्तम रथोंपर चढके पाण्डुपुत्र अर्जुनके ऊपर बाण वर्षा करते हुए उनकी ओर दौडे ॥ ८३ ॥

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते सुदारुणे भारत मोहनीये ।
नामुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः किरीटमाली विसृजन्पृषत्कान् ॥ ८४ ॥

महाराज ! उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर तुमुल संग्राम उपस्थित होने पर भी किरीटधारी राजपुत्र अर्जुन मोहित न हुए, वरन लगातार वह अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८४ ॥

राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां स्मरन्क्लेशान्द्वादशवर्षवृत्तान् ।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयैः ॥ ८५ ॥

अत्यन्त पराक्रमी महात्मा अर्जुनने राज्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा कर और कौरवोंके दिये हुए तथा बारह वर्षोंतक भोगे हुए वनबासके क्लेशोंको स्मरण करके अपने गाण्डीव धनुषसे छोडे हुए अप्रमेय बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण कर दिया ॥ ८५ ॥

प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं देहेषु भूरीण्यपतन्वयांसि ।
यत्पिङ्गलज्येन किरीटमाली क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ८६ ॥

आकाश मण्डलमें अनेक उल्काएं प्रज्वलित हो दीखने लगीं और मांस खानेवाले पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड मनुष्योंके शरीरोंपर गिरने लगे। उस समय क्रुद्ध किरीटधारी अर्जुन पीली प्रत्यश्चावाले गाण्डीव धनुषसे छोडे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुका वध करने लगे ॥ ८६ ॥

किरीटमाली महता महायशाः शरासनेनास्य शराननीकजित् ।
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्गतान्कुरुप्रवीरानिषुभिर्न्यपातयत् ॥ ८७ ॥

शत्रुसेनाको जीतनेवाले महायशस्वी किरीटधारी अर्जुनने अपने महान् धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे उत्तम घोडों और हाथियों पर बैठे हुए श्रेष्ठ कौरव वीरोंका वध किया ॥ ८७ ॥

गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मयानसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः प्रगृह्य पार्थं सहसाभिदुद्रुवुः ॥ ८८ ॥

उस समरमें रौद्ररूपी राजा लोगोंने बडी गदाएं, लोहमय परिघ, तलवारें, शक्तियां और महान् अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करके अर्जुनपर सहसा आक्रमण किया ॥ ८८ ॥

स तानुदीर्णान्सरथाश्ववारणान्पदातिसंघांश्च महाधनुर्धरः ।
विपन्नसर्वायुधजीवितान्रणे चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ ५२२४ ॥

महाधनुर्धर वीर अर्जुनने रथ, हाथी और पैदल सैनिकोंके साथ उनको अत्यंत वेगसे आते देख उनके सब आयुधों और जीवनको भी नष्ट करके उन्हें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाले बना दिया ॥ ८९ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२० ॥ ५२२४ ॥

: १२१ :

सञ्जय उवाच

स रणे व्यचरत्पार्थः प्रेक्षणीयो धनंजयः ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु चित्राण्यस्त्राणि दर्शयन् ॥ १ ॥

उस समय युद्धभूमिमें कुन्तीपुत्र प्रेक्षणीय धनंजय एक साथ सब दिशाओंमें नानाप्रकारके विचित्र अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए भ्रमण कर रहे थे ॥ १ ॥

मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ २ ॥

उस समय आकाशमें तपते हुए मध्यन्दिनके सूर्य समान अर्जुन प्रकाशित होने लगे; तब पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर सम्पूर्ण प्राणी नहीं देख सकते थे ॥ २ ॥

प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः ।
संग्रामे समपश्याम हंसपङ्क्तीरिवाम्बरे ॥ ३ ॥

उन महात्मा अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समूह जब संग्राममें फैलने लगे, तब उन बाणोंको आकाशमें हंसोंकी पांतिके समान हम देखने लगे ॥ ३ ॥

विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वशः ।
दर्शयन्रौद्रमात्मानमुग्रे कर्माणि धिष्ठितः ॥ ४ ॥

अर्जुन उस समय अपने अस्त्रोंके प्रभावसे तुम्हारी ओरके योद्धाओंके अस्त्रजालको सब तरहसे निवारण कर, उग्र रूप धारण करके अपना भयङ्कर पराक्रम प्रकाशित करने लगे ॥ ४ ॥

स तान्रथवरान्राजन्नभ्यतिक्रामदर्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया ॥ ५ ॥

हे राजन् ! उस समय अर्जुनने जयद्रथ वधकी इच्छासे अपने नाराच बाणोंसे उन सम्पूर्ण महारथियोंको मोहित कर दिया; और वे उनको लांघ गये ॥ ५ ॥

विसृजन्दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ।
स रणे व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनंजयः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं वे धनंजय सब दिशाओंमें अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें घूमने लगे, उस समय वे प्रेक्षणीय थे ॥ ६ ॥

भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ।
अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७ ॥

उस समय हम लोग केवल शूरवीर महात्मा अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए सैकडों सहस्रों बाण आकाश मण्डलमें भ्रमण करते हुए देखने लगे ॥ ७ ॥

आददानं महेष्वासं संदधानं च पाण्डवम् ।
विसृजन्तं च कौन्तेयं नानुपश्यामहे तदा ॥ ८ ॥

महाधनुर्धारी कुन्तीपुत्र पाण्डव अर्जुन किस समय तूणीरसे बाण निकालते, धनुषपर चढाते और किस समय चलाते थे वह हम देख नहीं सकते थे ॥ ८ ॥

तथा सर्वा दिशो राजन्सर्वांश्च रथिनो रणे ।
आकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ।
विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९ ॥

राजन् ! इस प्रकार युद्धमें उन्होंने अपनी बाण–वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित तथा तुम्हारी ओरके रथियोंको पीडित करके, जयद्रथकी ओर दौडकर, चौंसठ तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंसे राजा जयद्रथको विद्ध किया ॥ ९ ॥

सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ॥ १० ॥

सिन्धुराज जयद्रथने गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होकर उनके पराक्रमको सहन नहीं किया, वरन अंकुशसे विद्ध हुए मतवाले हाथीकी भांति क्रुद्ध होगये ॥ १० ॥

स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान् ।
आशीविषसमप्रख्यान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
मुमोच निशितान्संख्ये सायकान्सव्यसाचिनि ॥ ११ ॥

वराहध्वजासे युक्त अपने सुन्दर रथपर चढे हुए उन्होंने शीघ्रतासे उत्तम पानीमें बुझे और क्रोधी विषधर सर्पके समान तेजस्वी, गिद्धपङ्ख युक्त, सोनारके मांजे हुए बहुतसे तीक्ष्ण बाण युद्धमें सव्यसाची अर्जुनकी ओर चलाये ॥ ११ ॥

त्रिभिस्तु विद्ध्वा गाण्डीवं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ।
अष्टाभिर्वाजिनोऽविध्यद्ध्वजं चैकेन पत्रिणा ॥ १२ ॥

राजा जयद्रथने प्रथम तीन बाणोंसे गांडीव धनुषधारीको विद्ध करके, फिर छः नाराच बाणोंसे अर्जुनको, आठ बाणोंसे उनके रथके घोडे और एक बाणसे उनकी ध्वजाको विद्ध किया ॥ १२ ॥

स विक्षिप्यार्जुनस्तीक्ष्णान्सैन्धवप्रेषिताञ्शरान् ।
युगपत्तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ।
सारथेश्च शिरः कायाद्ध्वजं च समलंकृतम् ॥ १३ ॥

उस समय अर्जुनने जयद्रथके चलाये हुए बाणोंको अपने बाणोंसे काट कर, एकही समय दो बाणोंसे उनके सारथीका सिर और जयद्रथकी अलंकारोंसे भूपित सुन्दर ध्वजाको काटकर गिरा दिया ॥ १३ ॥

स छिन्नयष्टिः सुमहान्कीर्यमाणः शराहतः ।
वराहः सिन्धुराजस्य पपाताग्निशिखोपमः ॥ १४ ॥

अग्निशिखाके समान प्रकाशमान वराह चिन्हयुक्त वह सिंधुराज जयद्रथकी बडी ध्वजा अर्जुनके बाणोंसे कट जानेपर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ १४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे ।
अब्रवीत्पाण्डवं तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ॥ १५ ॥

उस ही समय श्रीकृष्णजी सूर्यको शीघ्रताके सहित अस्ताचल पर्वतपर गमन करते देख, व्याकुल और उतावले होकर पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बोले ॥ १५ ॥

धनंजय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ।
अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।
शृणुष्वैव च मे वाक्यं जयद्रथवधं प्रति ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! तुम इसी समय पापी दुरात्मा सिंधुराज जयद्रथके सिरको काट डालो, कारण सूर्य अब पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचलपर जाना चाहते हैं; परन्तु जयद्रथके बधके विषयमें तुम मेरी यह बात ध्यानसे सुनो ॥ १६ ॥

वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान्सुतम् ॥ १७ ॥

सिंधुराज जयद्रथके पिता वृद्धक्षत्र इस पृथ्वीके बीचमें विख्यात हैं; उन्होंने इस सिंधुराज जयद्रथको बहुत काल बीतनेपर पुत्र रूपसे पाया है ॥ १७ ॥

जयद्रथममित्रघ्नं तं चोवाच ततो नृपम् ।
अन्तर्हिता तदा वाणी मेघदुन्दुभिनिस्वना ॥ १८ ॥

उस समय बादलके गर्जने तथा नगाडेके शब्द समान गम्भीर स्वरवाली अदृश्य आकाशवाणी हुई, उसने शत्रुनाशन जयद्रथके विषयमें राजाको इस प्रकार कहा— ॥ १८ ॥

तवात्मजोऽयं मर्त्येषु कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ।
क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ॥ १९ ॥

हे राजा वृद्धक्षत्र ! तुम्हारा यह पुत्र मानवोंमें कुल, शील और इन्द्रिय निग्रह आदि गुणोंसे दोनों वंशोंके अनुरूप होगा । शूरवीर पुरुष सदा इसका आदर करेंगे और इस लोकके क्षत्रियोंके बीच यह एक मुख्य महारथी योद्धा करके गिना जावेगा; ॥ १९ ॥

शत्रुभिर्युध्यमानस्य संग्रामे त्वस्य धन्विनः ।
शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुर्नालक्षितो भुवि ॥ २० ॥

परन्तु अनन्तर जब धनुर्धारी यह शत्रुओंके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होवेगा, उस समय एक क्षत्रिय योद्धा इसका शत्रु होकर क्रुद्ध होके युद्धभूमिके बीच इसका सिर काटेगा ॥ २० ॥

एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिंदम ।
ज्ञातीन्सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिपीडितः ॥ २१ ॥

हे शत्रुओंके नाश करनेवाले राजन् ! सिन्धुराज वृद्धक्षत्रने इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर बहुत देरतक विचार किया, फिर पुत्रस्नेहसे व्याकुल होकर वे अपनी जातिके सब बांधवोंसे यह वचन बोले– ॥ २१ ॥

संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ।
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्यापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ २२ ॥

समरमें युद्धतत्पर हो महान् भार धारण करते हुए मेरे इस वीर पुत्रका सिर जो काटके पृथ्वीमें गिरावेगा, उसका सिर भी सौ टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर पडेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २२ ॥

एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चेष्टं समास्थितः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर राजा वृद्धक्षत्र जयद्रथको राज्यपर स्थापित कर, स्वयं वनके बीच जाकर कठिन तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २३ ॥

सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥ २४ ॥

हे कपिध्वज अर्जुन ! वह तेजस्वी राजा इसी समन्तपञ्चकके बाहरी हिस्सेमें अत्यन्त कठोर और दुर्धर्ष तपस्या कर रहे हैं ॥ २४ ॥

तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनास्त्रेण रिपुहन्घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥ २५ ॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वाशु वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥ २६ ॥

अतः हे शत्रुनाशन अर्जुन ! तुम वायुपुत्र भीमसेनके छोटे भाई हो, इससे आज युद्धभूमिके बीच यह अद्भुत कार्य दिखाओ, सिन्धुराज जयद्रथके कुण्डलभूपित सिरको काटके किसी भयंकर दिव्यास्त्रसे तपस्या करनेवाले उनके पिता वृद्धक्षत्रके गोदमें गिरा दो ॥ २५–२६ ॥

अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ २७ ॥

यदि तुम मेरे वचनको न मानकर जयद्रथके सिरको काटके पृथ्वीमें गिराओगे तो तुम्हारे सिरके भी सौ टुकडे हो जायंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥

यथा चैतन्न जानीयात्स राजा पृथिवीपतिः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥ २८ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! इससे तुम दिव्य अस्त्रके प्रभावसे ऐसी गुप्त रीतिसे जयद्रथका सिर उनके पिताकी गोदमें रख दो, जिससे उन तपस्वी राजा वृद्धक्षत्रको इस बातका पता न लगे ॥ २८ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किंचन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥ २९ ॥

हे इन्द्रपुत्र अर्जुन ! संपूर्ण तीनों लोकोंके बीच कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो तुम्हारे लिये असाध्य हो अथवा जिसे तुम नहीं कर सकोगे ॥ २९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ ३० ॥

अर्जुनने श्रीकृष्णके इस उपदेशको सुनकर अपने मुखके कोनोंको चाटकर इन्द्रके वज्रके समान कठोर स्पर्शवाले, दिव्य मंत्रोंसे अभिमन्त्रित, ॥ ३० ॥

सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे वृतः ॥ ३१ ॥

सब भारोंको सहन करनेमें समर्थ और सर्वदा चन्दन और फूलमालासे पूजित सिंधुराज जयद्रथके वधके निमित्त उस बाणको शीघ्र ही छोड दिया ॥ ३१ ॥

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः ।
शकुन्तमिव वृक्षाग्रात्सैधवस्य शिरोऽहरत् ॥ ३२ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए उस बाणने वेगगामी बाजपक्षीकी भांति, वृक्षपरके पक्षीके समान सिंधुराज जयद्रथके सिरको उनके धडपरसे काट दिया ॥ ३२ ॥

अहरत्तत्पुनश्चैव शरैरूर्ध्वं धनंजयः ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥ ३३ ॥

फिर धनंजयने उस सिरको अनने बाणोंसे ऊपर ही ऊपर उठाया; इससे शत्रुओंको बडा दुःख और सुहृदोंको महान् हर्ष हुआ ॥ ३३ ॥

शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिरस्तच्चाहरत्ततः ॥ ३४ ॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनने अनेक बाणोंके प्रहारोंसे उस सिरको कदम्बके फूल जैसा बनाया; और अर्जुनका चलाया हुआ वह दिव्य अस्त्र कटे हुए जयद्रथके सिरको लेकर समन्त पंचकके बाहरी हिस्सेमें उपस्थित हुआ ॥ ३४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
संध्यामुपास्ते तेजस्वी संबन्धी तव मारिष ॥ ३५ ॥

महाराज ! इसी समय तुम्हारे महातेजस्वी सम्बन्धी राजा वृद्धक्षत्र संध्या उपासना कर रहे थे ॥ ३५ ॥

उपासीनस्य तस्याथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥ ३६ ॥

संध्योपासनामें बैठे हुए वृद्धक्षत्रके गोदमें उस बाणने काले केशोंसे युक्त सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित सिंधुराज जयद्रथका वह कटा हुआ सिर डाल दिया ॥ ३६ ॥

तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिंदम ॥ ३७ ॥

हे शत्रुदमन ! जयद्रथका वह सुंदर कुण्डलोंसे सुशोभित सिर राजा वृद्धक्षत्रकी गोदमें उनके बिना देखे ही गिर गया ॥ ३७ ॥

कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य धीमतः ।
उत्तिष्ठतस्तत्सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम् ॥ ३८ ॥

जब जप समाप्त करके बुद्धिमान् वृद्धक्षत्र सहसा उठके खडे होने लगे, तब उनकी गोदसे वह सिर पृथ्वीमें गिरा ॥ ३८ ॥

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतलम् ।
गते तस्यापि शतधा मूर्धागच्छदरिंदम ॥ ३९ ॥

शत्रुदमन राजन् ! पुत्रका सिर पृथ्वीमें गिरतेही राजा वृद्धक्षत्रका सिर भी सौ टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ३९ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवश्च बीभत्सुं प्रशशंस महारथम् ॥ ४० ॥

अनन्तर सम्पूर्ण सेनाएं अत्यंत विस्मित होगयीं; और श्रीकृष्ण महारथी अर्जुनकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ ४० ॥

ततो दृष्ट्वा विनिहतं सिन्धुराजं जयद्रथम् ।
पुत्राणां तव नेत्रेभ्यो दुःखाद्बाष्पमपतज्जलम् ॥ ४१ ॥

तदनंतर सिन्धुराज जयद्रथको मारा गया देख, तुम्हारे पुत्रोंकी आंखोंसे बहुत आंसू बहने लगे ॥ ४१ ॥

भीमसेनोऽपि संग्रामे बोधयन्निव पाण्डवम् ।
सिंहनादेन महता पूरयामास रोदसी ॥ ४२ ॥

भीमसेनने भी राजा युधिष्ठिरको युद्धभूमिमें जयद्रथके वधका वृत्तान्त सूचित करते हुए अत्यंत जोरसे सिंहनाद करके द्यावापृथिवीको पूरित कर दिया ॥ ४२ ॥

तं श्रुत्वा तु महानादं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फल्गुनेन महात्मना ॥ ४३ ॥

उस महान् सिंहनाद शब्दको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने जाना कि महात्मा अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ ४३ ॥

ततो वादित्रघोषेण स्वान्योधानभिहर्षयन् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ४४ ॥

अनन्तर युधिष्ठिर भी विजयके बाजे बजवाकर अपने योद्धाओंको हर्षित करने लगे, और युद्धकी इच्छासे युद्धभूमिमें भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यके संमुख उपस्थित हुए ॥ ४४ ॥

ततः प्रववृते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४५ ॥

राजन् ! सूर्य अस्त होनेके समय सोमकोंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर रोएंको खडा करनेवाला संग्राम होने लगा ॥ ४५ ॥

ते तु सर्वप्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ ४६ ॥

सिन्धुराज जयद्रथके मारे जाने पर वे सम्पूर्ण सोमक महारथी लोग द्रोणाचार्यके वध करनेकी इच्छासे यत्नपूर्वक उनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयंस्ततो द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥ ४७ ॥

उस समय पाण्डव लोग सिन्धुराज जयद्रथको मारकर विजयी हो गये थे; इसलिये वे विजयसे उन्मत्त हो आनन्दित हुए और सब ओरसे आकर द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ४७ ॥

अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान्रथसत्तमान् ।
अयोधयन्महाराज हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥ ४८ ॥

फिर महाबाहु अर्जुन श्री सिन्धुराजको मारकर तुम्हारे मुख्य मुख्य रथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ४८ ॥

स देवशत्रूनिव देवराजः किरीटमाली व्यधमत्समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः पूर्वां प्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ ५२७३ ॥
॥ समाप्तं जयद्रथ वधपर्व ॥

महाराज ! जैसे अन्धकारके नाश करनेवाला सूर्य उदित होकर अन्धकारको दूर कर देता है, और जैसे देवराज इन्द्र देवोंके शत्रु दानवोंका नाश करते हैं, वैसे ही किरीटधारी महावीर अर्जुनने जयद्रथ बधके विषयमें अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको अपने बाणोंसे छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ४९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥ ५२७३ ॥

: १२२ :

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना ।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! जब वीर सिन्धुराज जयद्रथ सव्यसाची अर्जुनके हाथोंसे मारे गये; उस समय मेरे पुत्रोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया ? वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन मारिष ।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्तदा ॥ २ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथको अर्जुनसे मारा गया देख शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य अत्यंत क्रुद्ध होकर ॥ २ ॥

महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ।
द्रौणिश्चाभ्यद्रवत्पार्थं रथमास्थाय फल्गुनम् ॥ ३ ॥

बाणोंकी अत्यंत महान् वर्षा करके पाण्डुपुत्र अर्जुनको छिपाने लगे । राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भी रथपर चढके अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

तावेनं रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमम् ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों श्रेष्ठ वीर दोनों ओरसे अपने रथोंपर चढकर रथिश्रेष्ठ अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः ।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद्रथिनां वरः ॥ ५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन इस प्रकार दो दिशाओंसे होनेवाली महान् बाण वर्षासे पीडित हो कर अत्यन्त कातर हुए ॥ ५ ॥

सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च ।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ६ ॥

युद्धमें अर्जुन गुरु और गुरुपुत्रका वध करनेकी इच्छा नहीं करते थे; वहां कुन्तीपुत्र धनंजयने आचार्यका सम्मान किया ॥ ६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत् ॥ ७ ॥

अनन्तर अर्जुनने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे कृपाचार्य और अश्वत्थामाके अस्त्रोंको निवारण कर उनके वधकी अभिलाष नहीं की; केवल धीरे धीरे उनके ऊपर अपने मन्दवेगवाले बाण चलाने लगे ॥ ७ ॥

ते नातिभृशमभ्यघ्नन्विशिखा जयचोदिताः ।
बहुत्वात्तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥ ८ ॥

परन्तु अर्जुनके मन्दगतिसे चलाये हुए बाण भी क्रमसे संख्यामें अधिक होनेसे उन दोनोंको अत्यन्त पीडित करने लगे ॥ ८ ॥

अथ शारद्वतो राजन्कौन्तेयशरपीडितः ।
अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥

राजन् ! कृपाचार्य अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर रथमें बैठ गये और चेष्टा रहित होकर मूर्च्छित हो गये ॥ ९ ॥

विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम् ।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥ १० ॥

उनका सारथी अपने स्वामी कृपाचार्यको बाणोंसे पीडित और विह्वल देख समझा कि 'ये प्राण रहित हो गये'; ऐसा विचार कर वह उनको रणभूमिसे दूर ले गया ॥ १० ॥

तस्मिन्सन्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि ।
अश्वत्थामाप्ययायासीत्पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥

महाराज ! कृपाचार्यको मूर्च्छित होकर रणभूमिसे पृथक् होते देख, अश्वत्थामा भी अर्जुनको छोडकर दूसरे रथीका सामना करनेके लिये चला गया ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्छितं शरपीडितम् ।
रथ एव महेष्वासः कृपणं पर्यदेवयत् ॥ १२ ॥

इधर कुन्तीपुत्र महाधनुर्धारी अर्जुन शरद्वतपुत्र कृपाचार्यको अपने बाणोंसे पीडित और मूर्च्छित देख दयाभावयुक्त हो रथमें बैठकर विलाप करने लगे ॥ १२ ॥

पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ।
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने ॥ १३ ॥

कुलनाश करनेवाले, महापापी, दुष्टात्मा दुर्योधनका जब जन्म हुआ था, तभी महाबुद्धिमान् विदुरने सम्पूर्ण भविष्य-घटनाओंको जानकर धृतराष्ट्रसे यह वचन कहा था ॥ १३ ॥

नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ।
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् ॥ १४ ॥

' हे महाराज धृतराष्ट्र ! इस कुलघाती पुत्रको इसी समय परलोक भेज दो, ऐसा करनेसे आपका कल्याण होगा; कारण कि इससे मुख्य मुख्य कुरुवंशियोंका नाश करनेवाला भय उपस्थित होगा ' ॥ १४ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ।
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं कृपम् ॥ १५ ॥

इस समय सत्यवादी विदुरका वह वचन सफल हो रहा है, और मैं अपने गुरु कृपाचार्यको दुर्योधनके कारणसेही आज शरशय्यापर शयन करते देख रहा हूं ॥ १५ ॥

धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ।
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः ॥ १६ ॥

क्षत्रियके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है ! क्योंकि संसारके बीच मेरे समान कौन पुरुष ब्राह्मण और गुरुसे द्रोह करेगा ? ॥ १६ ॥

ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य दयितः सखा ।
एष शेते रथोपस्थे मद्बाणैरभिपीडितः ॥ १७ ॥

ओहो ! ये ऋषिपुत्र, मेरे गुरु द्रोणाचार्यके परम मित्र मेरे बाणोंसे अत्यंत पीडित होकर रथपर शयन कर रहे हैं ॥ १७ ॥

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ।
अवसीदद्रथोपस्थे प्राणान्पीडयतीव मे ॥ १८ ॥

उन्हें पीडित करनेकी मुझे अभिलाष नहीं थी, तोभी वे मेरे बाणोंसे पीडित होकर रथमें मूर्च्छित होगये हैं; उससे मेरा चित्त अत्यन्त दुःखित हो रहा है ॥ १८ ॥

शरार्दितेन हि मया प्रेक्षणीयो महाद्युतिः ।
प्रत्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मंगतेन वै ॥ १९ ॥

मैंने बाणोंसे पीडित और अत्यंत दुरवस्थामें पड कर उन्मत्तके समान विचाररहित होकर अनेक बाणोंसे उन प्रेक्षणीय महातेजस्वी कृपाचार्यको पीडित किया है ॥ १९ ॥

शोचयत्येष निपतन्भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ।
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथा गतम् ॥ २० ॥

हे श्रीकृष्ण ! देखिये, वे अपने रथपर पीडित होकर कातरता सहित पडे हैं; उन्हें इस प्रकारसे पडे देख अभिमन्युके वधसे मुझे जो शोक उत्पन्न हुआ था उससे भी बढके कृपाचार्यको चेतरहित देखकर मैं दुःखित हो रहा हूं ॥ २० ॥

उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ।
प्रयच्छन्तीह ये कामान्देवत्वमुपयान्ति ते ॥ २१ ॥

इस संसारके बीच जो उत्तम पुरुष गुरुके समीप विद्या सीखकर उन्हें उनकी इच्छानुसार दक्षिणा-वस्तुएं देते हैं, वे देवलोकमें जाते हैं; ॥ २१ ॥

ये तु विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ।
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ २२ ॥

परन्तु जो नीच पुरुष गुरुसे विद्या सीखकर उनके नाश करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे गुरुघाती, अधम-पुरुष महा घोर नरकमें पतित होते हैं ॥ २२ ॥

तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ।
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम् ॥ २३ ॥

इससे मैंने आज आचार्य कृपको बाणोंकी वर्षासे रथपर सुला दिया है; निश्चयही मैंने आज यह कर्म करके नरकमें जानेका अनुष्ठान किया है ॥ २३ ॥

यत्तत्पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत्कृपः ।
न कथंचन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति ॥ २४ ॥

पहिले अस्त्रविद्या सिखानेके समय कृपाचार्यने जो मुझसे कहा था, हे तात ! तुम कभी गुरुके ऊपर प्रहार मत करना, ॥ २४ ॥

तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ।
नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता ॥ २५ ॥

परन्तु मैंने उन साधु महात्मा गुरुके ऊपर युद्धमें अपने बाणोंसे प्रहार करके उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है ॥ २५ ॥

नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ।
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यो ह्यस्मै प्रहराम्यहम् ॥ २६ ॥

अत्यन्त पूजनीय, युद्धमें पीछे न हटनेवाले महात्मा गौतमवंशी कृपाचार्यको मैं नमस्कार करता हूं । हे श्रीकृष्ण ! मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैंने गुरुके ऊपर प्रहार किया ॥ २६ ॥

तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत् ॥ २७ ॥

सव्यसाची अर्जुन कृपाचार्यके लिये इसी भांति विलाप कर रहे थे, उस ही समय राधापुत्र कर्ण सिंधुराज जयद्रथको मारा गया देख अर्जुनकी ओर दौडे; ॥ २७ ॥

उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ।
प्रहसन्देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

तब कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन राधापुत्र कर्णको अपने समीप आते देख हंसते हुए देवकी नन्दन श्रीकृष्णसे यह वचन बोले ॥ २८ ॥

एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ।
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे ॥ २९ ॥

देखो, अधिरथ पुत्र कर्ण सात्यकिके रथकी ओर दौड रहे हैं; निश्चय ही युद्धमें भूरिश्रवाका मारा जाना यह सहन नहीं कर सके हैं ॥ २९ ॥

यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वाञ्जनार्दन ।
मा सोमदत्तेः पदवीं गमयेत्सात्यकिं वृषः ॥ ३० ॥

जनार्दन ! वह जिस स्थान पर जारहे हैं, उसी स्थलपर आप भी अपने घोडोंको ले चलिये, जिससे कर्ण भूरिश्रवाके पथपर सात्यकिको न भेज सकें ॥ ३० ॥

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः ॥ ३१ ॥

महातेजस्वी महाबाहु श्रीकृष्ण सव्यसाची अर्जुनके वचनको सुनकर समयोचित यह वचन बोले ॥ ३१ ॥

अलमेष महाबाहुः कर्णायैको हि पाण्डव ।
किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! यह महाबाहु वृष्णिवंशीय श्रेष्ठ सात्यकि अकेले ही कर्णके संग युद्ध करनेमें समर्थ हैं। उस पर भी द्रुपदके दोनों पुत्र युद्धामन्यु और उत्तमौजा जब उनकी सहायता कर रहे हैं, तब सात्यकिके निमित्त कौनसी चिन्ता है ? ॥ ३२ ॥

न च तावत्क्षमः पार्थ कर्णेन तव संगरः ।
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३३ ॥

पार्थ ! विशेष करके कर्णके पास जब तक जलते हुए महालुकके समान इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्ति वर्त्तमान है तब तक कर्णके सङ्ग युद्धमें तुम्हें प्रवृत्त होना उचित नहीं है। क्योंकि हे शत्रुवीर नाशन ! कर्ण उसकी सदा पूजा अर्चा करके तुम्हारे ही लिये उसे सुरक्षित रखता है ॥ ३३ ॥

अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथा तथा ।
अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ॥ ३४ ॥

इससे कर्ण सात्यकिकी ओर जिस भांतिसे गमन कर रहा है उसे वैसे ही गमन करने दो। कौन्तेय ! इस दुष्टात्माके वधका समय मैं अच्छी प्रकार जानता हूं ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽसौ कर्णेन वीरेण वार्ष्णेयस्य समागमः ।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥ ३५ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! भूरिश्रवा और जयद्रथके मारे जानेपर शूरवीर कर्णके साथ वृष्णिवंशीय सात्यकिका कैसा संग्राम हुआ ? ॥ ३५ ॥

सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान्रथम् ।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३६ ॥

और रथरहित सात्यकि किस रथपर आरूढ हुए ? चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा इन दोनों पाञ्चालवीरोंने किसके साथ युद्ध किया ? यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ३६ ॥

संजय उवाच

हन्त ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३७ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! मैं उस महासंग्रामका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, आप चित्त लगाकर अपने दुराचारको सुनिये ॥ ३७ ॥

पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिर्यूपकेतुना ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! आज वीर सात्यकि यूपध्वज भूरिश्रवाके निकट पराजित होंगे; इसे श्रीकृष्णने पहिले ही मनही मन जान लिया था ॥ ३८ ॥

अतीतानागतं राजन्स हि वेत्ति जनार्दनः ।
अतः सूतं समाहूय दारुकं संदिदेश ह ।
रथो मे युज्यतां काल्यमिति राजन्महाबलः ॥ ३९ ॥

राजन् ! वे जनार्दन भूत और भविष्य दोनों कालोंका जानते हैं; इस ही कारण उन्होंने अपने सारथि दारुकको बुलाकर कल तुम मेरे रथको सज्जित करके तैयार रखना, ऐसी ही आज्ञा दे दी थी । राजन् ! श्रीकृष्ण महाबलवान् हैं ॥ ३९ ॥

न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
मानवा वा विजेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन ॥ ४० ॥

हे राजन् ! इससे देवता, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस और मनुष्य आदि कोई भी इस संसारके बीच ऐसे नहीं है, जो श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीत सकें ॥ ४० ॥

पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ।
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं च तद्यथा ॥ ४१ ॥

पितामह ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध लोग ही उन्हें यथार्थरूपसे जानते हैं । उन दोनोंके प्रभाव अतुलनीय हैं । जो हो उनका अतुल प्रभाव और जिस प्रकार युद्ध हुआ था, वह मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं ॥ ४१ ॥

सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतायुधम् ।
दध्मौ शङ्खं महावेगमार्षभेणाथ माधवः ॥ ४२ ॥

सात्यकिको रथ रहित और कर्णको युद्धके निमित्त उनकी ओर दौडते देख, श्रीकृष्ण भयङ्कर शब्दवाला अपना पाञ्चजन्य शङ्ख ऋषभ स्वरसे बजाने लगे ॥ ४२ ॥

दारुकोऽवेत्य संदेशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ।
रथमन्वानयत्तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ॥ ४३ ॥

दारुक सारथी श्रीकृष्णके शङ्खका शब्द सुन उनके संदेशको स्मरण करके शीघ्रही गरुड चिह्नसे युक्त ऊंची ध्वजावाले उनके रथको लेकर वहां उपस्थित हुआ ॥ ४३ ॥

स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ।
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसंनिभम् ॥ ४४ ॥

तब शिनिपौत्र सात्यकि श्रीकृष्णकी आज्ञासे दारुक द्वारा जोते हुए अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी उस रथपर आरूढ हुए ॥ ४४ ॥

कामगैः सैन्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ॥ ४५ ॥

उसमें इच्छानुसार चलनेवाले, अत्यंत वेगवान् और सुवर्णमय अलंकारोंसे विभूषित सैन्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले श्रेष्ठ घोडे जुते हुए थे ॥ ४५ ॥

युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ।
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन्सायकान्बहून् ॥ ४६ ॥

वे उस विमान तुल्य रथ पर चढके अपने असंख्य बाणोंको चलाते हुए राधापुत्र कर्णकी ओर दौडे ॥ ४६ ॥

चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ।
धनंजयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीययुः ॥ ४७ ॥

तब अर्जुनके चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी अर्जुनके रथको छोड कर कर्णकी ओर ही आक्रमण करनेके लिये दौडे ॥ ४७ ॥

राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ॥ ४८ ॥

महाराज! तब कर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्धमें अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए महा पराक्रमी सात्यकिकी ओर दौडे ॥ ४८ ॥

नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरोरगराक्षसम् ।
तादृशं भुवि वा युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ॥ ४९ ॥

हमने इस पृथ्वीपर वा स्वर्गलोकमें देवता, गन्धर्व, असुर, सर्प और राक्षसोंका भी वैसा संग्राम नहीं सुना था ॥ ४८ ॥

उपारमत तत्सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ।
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म संमूढचेतनम् ॥ ५० ॥
सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ।
तयोर्नृवरयो राजन्सारथ्यं दारुकस्य च ॥ ५१ ॥

अधिक क्या कहूं, उन दोनोंके युद्ध कार्यको देखकर गजसवार, घुडसवार, रथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग तथा तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेनाके योद्धा लोग चित्र लिखेके समान मोहितसे हो युद्धभूमिमें खडे हुए और युद्धसे निवृत्त होकर उन दोनों पुरुषसिंहोंका अलौकिक संग्राम और दारुकके रथ चलानेकी निपुणताई देखने लगे ॥ ५०–५१ ॥

गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः संनिवर्तनैः ।
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ॥ ५२ ॥
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ।
अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ॥ ५३ ॥

विशेष कर रथपर बैठे हुए कश्यपकुलनन्दन दारुक सारथीके रथ चलानेकी–नाना भांतिकी गतिसे आगे बढना, पीछे लौटना, मण्डलाकार रथ घुमाना, समीपमें रथको उपस्थित करना, इत्यादि रथ चलानेकी गतियोंसे आकाशमें स्थित देवता, दानव और गन्धर्व आदि सम्पूर्ण प्राणी विस्मित हुए और कर्ण और सात्यकिके युद्धको देखनेके लिये सावधान हो गये ॥ ५२–५३ ॥

मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ स्पर्धिनौ शुष्मिणौ रणे ।
कर्णश्चामरसंकाशो युयुधानश्च सात्यकिः ॥ ५४ ॥
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ।
प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ॥ ५५ ॥

महाराज ! उन दोनों महातेजस्वी और देवताओंके समान पराक्रमी बलवान् सात्यकि और कर्ण युद्धमें स्पर्धा करते हुए यत्नवान् होकर अपने मित्रोंके कार्य–सिद्धिके लिये आपसमें बाणोंकी वर्षा करने लगे । कर्णने शिनिपौत्रको बाणोंकी वर्षासे मथ डाला ॥ ५४–५५ ॥

अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसंधयोः ।
कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ॥ ५६ ॥

कर्ण कुरुवंशी भूरिश्रवा और जलसन्धके वधको सहन न करके और दोनोंकी मृत्युसे शोकित होकर विषधर महान् सर्पके समान लम्बी सांस छोड रहे थे ॥ ५६ ॥

स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ।
अभ्यद्रवत वेगेन पुनः पुनररिंदमः ॥ ५७ ॥

शत्रुदमन कर्ण बारबार सात्यकिकी ओर इस प्रकार देखकर वेगपूर्वक दौडने लगे, मानो वह दृष्टिसे देखकर ही उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे ॥ ५७ ॥

तं तु संप्रेक्ष्य संक्रुद्धं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ।
महता शरवर्षेण गजः प्रतिगजं यथा ॥ ५८ ॥

सात्यकि कर्णको अत्यन्त कोपित देख जैसे एक हाथी दूसरे हाथीसे युद्ध करता है, वैसे ही अनेक बाणोंकी वर्षा कर कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ५८ ॥

तौ समेत्य नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।
अन्योन्यं संततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ॥ ५९ ॥

महा पराक्रमी वे दोनों पुरुषसिंह आपसमें भिडकर युद्ध करते हुए अपने बाणोंसे एक दूसरेके शरीरको इस प्रकार छिन्न भिन्न करने लगे; जैसे दो वेगशाली व्याघ्र आपसमें युद्ध करते हैं ॥ ५९ ॥

ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारशवैः शरैः ।
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिंदमः ॥ ६० ॥

इसके अनन्तर शत्रुदमन शिनि-पौत्र सात्यकि संपूर्ण लोहमय बाणोंसे बार बार कर्णके संपूर्ण शरीरको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ ६० ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
अश्वांश्च चतुरः श्वेतान्निजघ्ने निशितैः शरैः ॥ ६१ ॥

फिर सात्यकिने एक भल्लसे उनके सारथीका वध करके रथसे पृथ्वीमें गिराया, और चोखे बाणोंसे उनके चारों श्वेत घोडोंको मार डाला ॥ ६१ ॥

छित्त्वा ध्वजं शतेनैव शतधा पुरुषर्षभः ।
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ६२ ॥

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिने कर्णके ध्वजाको सौ बाण मारकर सैकडों टुकडे करके, तुम्हारे पुत्रोंके सम्मुख ही में उन्हें रथरहित कर दिया ॥ ६२ ॥

ततो विमनसो राजंस्तावकाः पुरुषर्षभाः
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा ॥ ६३ ॥

उससे खिन्नमन होकर तुम्हारी ओरके पुरुषश्रेष्ठ योद्धा कर्णपुत्र वृषसेन, मद्राज शल्य ॥६३॥

द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ।
ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ६४ ॥

और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा— इन सबने मिल कर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया । उस समय सम्पूर्ण सेनाएं व्याकुल हो गयीं और किसीको कुछ भी नहीं सूझ पडता था ॥६४॥

तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ।
हाहाकारस्ततो राजन्सर्वसैन्येषु चाभवत् ॥ ६५ ॥

जब वीर सूतपुत्र कर्ण सात्यकिके अस्त्रोंसे रथरहित हुए, तब तुम्हारी सेनाके बीच महाघोर हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ६५ ॥

कर्णोऽपि विह्वलो राजन्सात्यतेनार्दितः शरैः ।
दुर्योधनरथं राजन्नारुरोह विनिःश्वसन् ॥ ६६ ॥

राजन् ! सात्यकिके बाणोंसे क्षतविक्षत होकर विह्वल हो गये हुए कर्ण भी लंबी सांस लेते हुए दुर्योधनके रथपर जा चढे ॥ ६६ ॥

मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात्प्रभृति सौहृदम् ।
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन् ॥ ६७ ॥

बालक अवस्थासे लेकर सदा ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके संग जो मित्रता हुई थी, उसका वह आदर करता था और दुर्योधनके समीप राज्य पानेके कारण जो पाण्डवोंको पराजित करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण करनेके निमित्त वह तत्पर थे ॥ ६७ ॥

तथा तु विरथे कर्णे पुत्रान्वै तव पार्थिव ।
दुःशासनमुखाञ्शूरान्नावधीत्सात्यकिर्वशी ॥ ६८ ॥

महाराज ! जितेन्द्रिय सात्यकिने इस ही भांति रथरहित हुए कर्ण और दुःशासन आदि तुम्हारे शूरवीर पुत्रोंका नाश नहीं किया ॥ ६८ ॥

रक्षन्प्रतिज्ञां च पुनर्भीमसेनकृतां पुरा ।
विरथान्विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत् ॥ ६९ ॥

उन्होंने भीमसेनकी पहलेसे की हुई प्रतिज्ञा की रक्षा करनेके लिये कर्ण और तुम्हारे पुत्रोंका नाश न करके उन्हें केवल रथ रहित करके अपने चोखे बाणोंके प्रहारसे विकल कर दिया ॥ ६९ ॥

भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ।
पुनर्द्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः ॥ ७० ॥

जब फिर दूसरी बार द्यूत हुआ था, उस समय भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंके बधकी और अर्जुनने कर्णको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की थी ॥ ७० ॥

वधे त्वकुर्वन्यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ।
नाशक्नुवंश्च तं हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः ॥ ७१ ॥

जो हो, कर्ण आदि श्रेष्ठ महारथी योद्धा लोग अत्यंत यत्नवान् होकर भी सात्यकिका वध न कर सके ॥ ७१ ॥

द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवान्ये महारथाः ।
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः ।
काङ्क्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ७२ ॥

सात्यकिने स्वर्गलोकमें गमन करनेकी अभिलाष और धर्मराज युधिष्ठिरके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे, अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा दूसरे सैकडों महारथी क्षत्रियोंको केवल एक धनुषसे ही पराजित किया ॥ ७२ ॥

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुकर्शनः ।
कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः ।
शैनेयो वा नरव्याघ्रश्चतुर्थो नोपलभ्यते ॥ ७३ ॥

महाराज ! शत्रुकर्शन सात्यकि श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी थे; ऐसे कार्य करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्, धनुर्द्धारी अर्जुन और पुरुषसिंह सात्यकिको छोडकर पृथ्वीके बीच चौथा कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है ॥ ७३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अजय्यं रथमास्थाय वासुदेवस्य सात्यकिः ।
विरथं कृतवान्कर्णं वासुदेवसमो युवा ॥ ७४ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! श्रीकृष्णके समान तरुण सात्यकिने श्रीकृष्णके अजेय रथपर चढकर कर्णको रथ रहित किया ॥ ७४ ॥

दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः ।
कच्चिदन्यं समारूढः स रथं सात्यकिः पुनः ॥ ७५ ॥

परन्तु दारुककी सहायतासे युक्त और अपने बाहुबलसे मतवाले सात्यकि श्रीकृष्ण ही के रथपर स्थित रहे वा फिर दूसरे रथपर भी चढे ? ॥ ७५ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम् ।
असह्यं तमहं मन्ये तन्समाचक्ष्व संजय ॥ ७६ ॥

मैं इस वृत्तान्तको सुननेकी इच्छा करता हूं, तुम वर्णन करनेमें कुशल हो, इसलिये समस्त वृत्तान्त मेरे समीप बिस्तारपूर्वक वर्णन करो । क्योंकि मैं अकेले सात्यकिको ही सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंसे अजेय समझता हूं ॥ ७६ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्यथा तस्य रथमन्यं महामतिः ।
दारुकस्यानुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ७७ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! तुमने जो वृत्तान्त मुझसे पूछा है, मैं उसे विस्तार पूर्वक कहता हूं; चित्त लगाकर सुनो । थोडे ही समयके अनन्तर महा बुद्धिमान दारुकका छोटा भाई भली भांति विधिपूर्वक सज्जित एक दूसरा रथ शीघ्रही लेकर आया ॥ ७७ ॥

आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैर्नद्धं सकूबरम् ।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ७८ ॥
लोहा और सुवर्णके पट्टोंसे भूषित कूबरयुक्त, वर्म और अस्त्रोंसे युक्त, सहस्रों तारा चिह्नसे खचित, सिंहचिन्हवाली पताकाके सहित वह रथ था ॥ ७८ ॥

अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
पाण्डुरैरिन्दुसंकाशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ७९ ॥
उस रथमें वायुके समान गमन करनेवाले, सुवर्ण मय अलंकारोंसे भूषित, सब शब्दोंको अतिक्रम करनेवाले, बडे शरीरवाले, चन्द्रमाके समान सफेद उत्तम घोडे जुते हुए थे ॥७९॥

चित्रकाञ्चनसंनाहैर्वाजिमुख्यैर्विशां पते ।
घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥ ८० ॥
उन श्रेष्ठ घोडोंको विचित्र सुवर्ण भूषित कवचोंसे सज्ज किया था; और उस रथमें घण्टियोंकी मधुर ध्वनि सुनाई देती थी; वह रथ शक्ति और तोमर आदि शस्त्र विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे ॥ ८० ॥

वृतं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
रथं संपादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ८१ ॥
उसमें अनेक भांतिके शस्त्र तथा युद्धके योग्य वस्तुओंको यथा स्थान रक्खा था; उस रथके चलते समय बादलकी भांति गम्भीर शब्द होता था; उस रथको दारुकका छोटा भाई सात्यकिके पास ले आया ॥ ८१ ॥

तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८२ ॥
शिनिपौत्र सात्यकि उस सुन्दर रथ पर चढ कर तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे और दारुकने अपनी इच्छानुसार श्रीकृष्णके समीप गमन किया ॥ ८२ ॥

कर्णस्यापि महाराज शङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसंनाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८३ ॥
महाराज ! कर्णके लिये भी एक रथ लाया गया, जिसमें शङ्ख और गायके दूधके समान सफेद वर्णवाले, विचित्र सुवर्णके वर्मसे शोभित और अत्यन्त वेगगामी उत्तम घोडे जुते हुए थे ॥ ८३ ॥

हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८४ ॥
नाना भांतिके यन्त्र और अस्त्रशस्त्र आदि वस्तुओंसे पूरित, सुवर्णभूषित ध्वजा पताकासे शोभित और निपुण सारथीसे चलता हुआ वह श्रेष्ठ रथ था ॥ ८४ ॥

उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽभ्यद्रवद्रिपून् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८५ ॥

कर्ण लाये हुए उस रथ पर चढके शत्रुओंका नाश करनेके लिये उनकी ओर दौडे। महाराज! तुमने जो कुछ पूछा था, उसे मैंने वर्णन किया ॥ ८५ ॥

भूयश्चापि निबोध त्वं तवापनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ८६ ॥

फिर इस समय तुम्हारी अनीतिसे जो प्राणियोंका नाश हुआ, उसे सुनिये। अबतक भीमसेनने तुम्हारे इकतीस पुत्रोंका वध किया है ॥ ८६ ॥

दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।
शतशो निहताः शूराः सात्वतेनार्जुनेन च ॥ ८७ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च मारिष ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ ५२६१ ॥

वे सदा विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले दुर्मुख आदि तुम्हारे पुत्र हैं; भीष्म, भगदत्त आदि सैकडों शूर बलवान् योद्धा अर्जुन और सात्यकिके हाथोंसे मारे गये; इससे सम्पूर्ण शूरवीर पुरुषोंका नाश तुम्हारे अविचार और दुष्ट-नीतिसे ही होरहा है ॥ ८७-८८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ १२२ ॥ ५२६१ ॥

: १२३ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च संजय ।
किं वै भीमस्तदाकार्षीत्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय! पाण्डव और कौरवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धा लोग जब इस प्रकार युद्धमें स्थित हुए, उस समय भीमसेनने किस कार्यका अनुष्ठान किया? यह मुझे कहो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

सञ्जय बोले— महाराज! रथरहित हुए भीमसेन वाक्बाणोंसे अत्यंत पीडित हो क्रुद्ध हो गये थे; वे अर्जुनसे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योधीर्बाल संग्रामकातर ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत्कर्णः पश्यतस्ते धनंजय ।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! कर्णने तुम्हारे सम्मुखहीमें मुझे बार बार कहा है कि, तू पेटू, मूर्ख और थोडे मूछवाला है, तू अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या नहीं जानता, तू बालक है और तू युद्धभीरु है। इसलिये तुम युद्ध मत करो। भारत ! जो ऐसा मुझे कहता है, वह मेरा वध्य होता है । इसी प्रकार कर्णने मुझे कहा है ॥ ३-४ ॥

एतदुक्तं महाबाहो त्वया सह कृतं मया ।
यथैतन्मम कौन्तेय तथा तव न संशयः ॥ ५ ॥

हे महाबाहु अर्जुन ! ऐसा कहनेवालेके वधकी यह प्रतिज्ञा मैंने तुम्हारे साथही की थी; कर्णका वध जैसा मेरा कार्य है, वैसेही तुम्हारा भी है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥

तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम ।
यथा भवति तत्सत्यं तथा कुरु धनंजय ॥ ६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय कर्णके वधके लिये मेरे इस वचनको स्मरण कर, जिससे मेरी प्रतिज्ञा सत्य होवे, उसे पूर्ण करनेके निमित्त यत्नवान् होइये ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः ।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत्कर्णं किंचिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥

तब अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन भीमसेनकी यह बात सुनकर युद्धस्थलमें कर्णके समीप जाकर उससे वह वचन बोले ॥ ७ ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्रात्मसंस्तुत ।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत्त्वा वक्ष्यामि सांप्रतम् ॥ ८ ॥

हे सूतपुत्र कर्ण ! तुम्हारी बुद्धि सदा अधर्ममें रत है इस ही कारण तुम सदा सर्वदा अपनी बडाई करते हो । जो हो इस समय जो कुछ मैं तुमसे कहता हूं, वह सुनो ॥ ८ ॥

द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ ।
तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः ॥ ९ ॥

राधेय ! युद्धभूमिमें शूरवीर पुरुषोंके दो प्रकारके कर्म जीत वा हार देखे जाते हैं; यदि देवराज इन्द्र भी युद्ध करें तो भी उनके लिये वे दोनों परिणाम अनिश्चित हैं ॥ ९ ॥

मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथोऽसि विसर्जितः।
यदृच्छया भीमसेनं विरथं कृतवानसि ॥ १० ॥

अभी क्षणभर समय व्यतीत हुआ कि सात्यकिने तुम्हें रथरहित करके मृत्युके समीप पहुंचा दिया था और तुझे जीवित छोड दिया। और तुमने केवल दैवी इच्छासे भीमसेनको रथ रहित किया था ॥ १० ॥

अधर्मस्त्वेष राधेय यत्त्वं भीममवोचथाः।
युद्धधर्मं विजानन्वै युध्यन्तमपलायिनम्।
पूरयन्तं यथाशक्ति शूरकर्माहवे तथा ॥ ११ ॥

राधेय ! युद्धधर्म जाननेवाले तुमने युद्धमें रत, युद्धसे पीछे न हटनेवाले और रणभूमिमें यथाशक्ति पराक्रम करनेवाले भीमसेनके प्रति जो कठोर बातें कही थीं, वह तेरा अधर्म है ॥ ११ ॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च।
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे।
न च त्वां परुषं किंचिदुक्तवान्पाण्डुनन्दनः ॥ १२ ॥

पाण्डुपुत्र भीमसेनने सम्पूर्ण सेनाओंके पुरुषों, श्रीकृष्ण तथा मेरे सम्मुख हीमें युद्धमें तुम्हें कई बार रथरहित किया है; परन्तु उन्होंने कुछ भी कठोर वचन तुम्हारे विषयमें नहीं कहा ॥ १२ ॥

यस्मात्तु बहु रूक्षं च श्राविततस्ते वृकोदरः।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १३ ॥

तुमने जो भीमसेनको अनेक कडवी बातें कही हैं और मेरे परोक्षमें तुम सब लोगोंने मिलकर अभिमन्युका वध किया है ॥ १३ ॥

तस्मादस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि।
त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १४ ॥

उस घमंडका फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा। रे नीच बुद्धिवाले कर्ण ! तूने अपने नाशहीके लिये अभिमन्युका धनुष काटा था ॥ १४ ॥

तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यबलवाहनः।
कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत्ते भयमागतम् ॥ १५ ॥

इस ही कारण मैं तुम्हारे सेवक और सैन्य तथा वाहनोंके सहित तुम्हारा वध करूंगा। तुम इस ही समय अपने कर्तव्य कार्यको पूरा करो; क्योंकि तुम्हें इस समय महाभय उपस्थित हुआ है ॥ १५ ॥

हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।
ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ।
तांश्च सर्वान्हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ १६ ॥

इसके अतिरिक्त मैं आयुधको स्पर्श करके सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि युद्धमें तुम्हारे सम्मुख हीमें तुम्हारे पुत्र वृषसेन, और दूसरे राजा लोग जो अपनी बुद्धिपर मोह छा जानेके कारण युद्धभूमिमें मेरे सम्मुख आयेंगे; उन सबका वध करूंगा ॥ १६ ॥

त्वां च मूढाकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् ॥ १७ ॥

रे मूढ ! तुझे तनिक भी बुद्धि नहीं है, तू केवल आत्माभिमानी ही है, इससे वह पापी दुर्योधन रणभूमिमें तुझे मरा हुआ देखकर बहुत पश्चात्ताप करेगा ॥ १७ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ।
महान्सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ॥ १८ ॥

जब अर्जुनने कर्णके पुत्र वृषसेनके वधके लिये इस प्रकार प्रतिज्ञा की, तब रथियोंकी सेनामें महाघोर तुमुल शब्द होने लगा ॥ १८ ॥

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ।
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपागमत् ॥ १९ ॥

उस महा भयङ्कर तुमुल संग्रामके समय भगवान् सूर्यने मन्दकिरण होकर अस्ताचल पर्वत पर गमन किया ॥ १९ ॥

ततो राजन्हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ।
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ २० ॥

राजन् ! अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र प्रतिज्ञासे पार हुए रणभूमिमें अग्रभागमें स्थित अर्जुनको आलिङ्गन करके यह वचन कहने लगे ॥ २० ॥

दिष्ट्या संपादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ।
दिष्ट्या च निहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! प्रारब्धहीसे तुमने इस बडी प्रतिज्ञाको पूर्ण किया; प्रारब्धहीसे पापी सिन्धुराज वृद्धक्षत्र पुत्रके सहित मारे गये हैं; ॥ २१ ॥

धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत ।
सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥ २२ ॥

नहीं तो दुर्योधनकी सेनामें पहुंचकर युद्धमें देवताओंकी सेना भी श्रान्त हो सकती है; अर्जुन ! इसमें दूसरा कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन्पुरुषं क्वचित् ।
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् ॥ २३ ॥

हे पुरुषसिंह ! मैं भलीभांति विचार कर तीनों लोकोंमें तुम्हें छोडके ऐसा किसी पुरुषको नहीं देखता जो इस कुरुसेनाके सङ्ग युद्ध करनेमें समर्थ हो सके ॥ २३ ॥

महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकापि वा ।
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।
ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धं नाभ्यवर्तन्त दंशिताः ॥ २४ ॥

देखो, इस रणभूमिमें तुम्हारे समान अथवा तुमसे भी अधिक प्रतापी अनेक राजा धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनके निमित्त यहां इकट्ठे हुए हैं, परन्तु ये सम्पूर्ण कवचधारी योद्धा लोग क्रोधित हुए तुम्हारे समीपमें आके युद्धभूमिमें कोई भी तुम्हारे सम्मुख खडे न हो सके ॥ २४ ॥

तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।
नेदृशं शक्नुयात्कश्चिद्रणे कर्तुं पराक्रमम् ।
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ॥ २५ ॥

तुम्हारा बल और पराक्रम रुद्र, इन्द्र और यमके समान है । आज शत्रुओंको संताप देनेवाले तुमने अकेले ही युद्धभूमिके बीच जैसा पराक्रम प्रकाशित किया है, कोई भी पुरुष ऐसा कार्य नहीं कर सकता ॥ २५ ॥

एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ।
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम् ॥ २६ ॥

इसी भांति पराक्रम प्रकाशित करके जब तुम पापी कर्णका अनुयायियोंके सहित नाश करोगे; तब तुम्हारी विजय और वैरीकी हार देखकर मैं तुम्हें फिर आनन्दित करूंगा ॥ २६ ॥

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात्तव माधव ।
प्रतिज्ञेयं मयोत्तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ॥ २७ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनके उनसे बोले, हे माधव ! मैं केवल तुम्हारी कृपासे ही देवताओंसे भी न पूर्ण होने योग्य प्रतिज्ञासे पार हुआ हूं ॥ २७ ॥

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि माधव ।
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां संप्राप्स्यति युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥

हे माधव ! तुम जिनके सहायक और रक्षक हैं, उनकी विजय होगी— इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । राजा युधिष्ठिर अवश्य ही तुम्हारी कृपासेही इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य फिर प्राप्त कर लेंगे ॥ २८ ॥

तवैव भारो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ।
वर्धनीयास्तव वयं प्रेष्याश्च मधुसूदन ॥ २९ ॥

हे श्रीकृष्ण ! प्रभो ! इस युद्धका समस्त भार तुम्हारे ऊपर अर्पित है; इससे आजकी जीत तुम्हारीही हुई है। मधुसूदन ! हम लोग तुम्हारी आज्ञामें चलनेवाले हैं, इससे हम लोगोंको उत्साहित करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य ही है ॥ २९ ॥

एवमुक्तः स्मयन्कृष्णः शनकैर्वाहयन्हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३० ॥

इसी भांति अर्जुनके कहनेपर श्रीकृष्णने हंसकर धीरे धीरे घोडोंको चलाकर अर्जुनको उस महान् और क्रूर संग्रामका दृश्य दिखाया ॥ ३० ॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद्यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण बोले— हे अर्जुन ! देखो, ये शूर राजा लोग युद्धमें विजय और महान् यशकी अभिलाष करके युद्धमें प्रवृत्त हुए थे ! वे तुम्हारे बाणोंके प्रतापसे अपना प्रिय प्राण गंवा कर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।
संछिन्नभिन्नवर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ३२ ॥

उनके अस्त्र-शस्त्र और आभूषण चारों ओर गिरे पडे दिखाई दे रहे हैं। हाथी, घोडे और रथ आदि वाहन नष्ट होगये हैं और मर्म स्थल कटके छिन्न भिन्न होनेसे वे लोग अत्यन्त शोचनीय दशामें पडे हुए हैं ॥ ३२ ॥

ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ३३ ॥

उन लोगोंके बीच कितने ही प्राण रहित और कोई इस समय तक जीवित हैं; परन्तु जो प्राण रहित होगये हैं वे भी अपने तेजसे प्रकाशित होकर जीवितके समान बोध होते हैं ॥ ३३ ॥

तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः ।
वाहनैरायुधैश्चैव संपूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ३४ ॥

देखो, सम्पूर्ण राजाओंके पंखवाले बाण, अनेक भांतिके तीक्ष्ण शस्त्र, आयुध और चढनेके वाहनोंसे पृथ्वी परिपूरित हो गई है ॥ ३४ ॥

वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ३५ ॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सुप्रभैः।
अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३६ ॥

और इधर उधर पडे हुए ढाल, तलवार, वर्म, हार, कुण्डलभूषित सिर, उष्णीष, मुकुट, माला, चूडामणि, वस्त्र, कण्ठा, प्रकाशमान बाहुभूषण और दूसरे विचित्र सुवर्णके आभूषणोंसे इस रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ ३५–३६ ॥

चामरैर्व्यजनैश्चित्रैर्ध्वजैश्चाश्वरथद्विपैः।
विविधैश्च परिस्तोमैरश्वानां च प्रकीर्णकैः ॥ ३७ ॥

बहुतसे चामर, व्यजन, चित्रविचित्र ध्वज, घोडे, रथ, हाथी, अनेक प्रकारकी झूल, घोडेकी पीठपर बिछाये जानेवाले आवरण, ॥ ३७ ॥

कुथाभिश्च विचित्राभिर्वरूथैश्च महाधनैः।
संस्तीर्णां वसुधां पश्य चित्रपट्टैरिवावृताम् ॥ ३८ ॥

विचित्र कुथ, अत्यंत मूल्यवान् कवच आदि वस्तुएं इधर उधर बिखरी हुई हैं; इन्हीं चित्र विचित्र रंगीन पट्टोंसे आवृत इस पृथ्वीको देखो ॥ ३८ ॥

नागेभ्यः पतितानन्यान्कल्पितेभ्यो द्विपैः सह।
सिंहान्वज्रप्रणुन्नेभ्यो गिर्यग्रेभ्य इव च्युतान् ॥ ३९ ॥

सुसज्जित हाथियोंकी पीठपरसे हाथियोंके सहित पृथ्वीपर मरकर पडे हुए इन शूरवीरोंको देखो, ये पर्वत शिखरपरसे वज्रकी चोटसे नीचे गिरे हुए सिंहोंके समान दीखते हैं ॥ ३९ ॥

संस्यूतान्वाजिभिः सार्धं धरण्यां पश्य चापरान्।
पदातिसादिसंघांश्च क्षतजौघपरिप्लुतान् ॥ ४० ॥

दूसरे कितने ही वीर जोते हुए घोडोंके सहित और पैदल योद्धाओंके समूह क्षतविक्षत शरीर होकर संपूर्ण अंगोंसे रुधिर बहाते हुए पृथ्वीपर मरकर पडे हैं ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच

एवं संदर्शयन्कृष्णो रणभूमिं किरीटिनः।
स्वैः समेतः स मुदितः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ ५४०२ ॥

संजय बोले– महाराज ! श्रीकृष्णने इसी भांति किरीटधारी अर्जुनको रणभूमिका दृश्य दिखाकर प्रसन्नचित्त होकर वहां एकत्रित हुए स्वजनों सहित पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ ४१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ ५४०२ ॥

: १२४

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ।
पर्यष्वजत्तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥ १ ॥

संजय बोले-- हे राजन् ! राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त हर्षके सहित रथसे उतरके, आनन्दके आंसू बहाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको आलिङ्गन किया ॥ १ ॥

प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ।
अब्रवीद्वासुदेवं च पाण्डवं च धनंजयम् ॥ २ ॥

फिर कमलके समान तेजस्वी मनोहर मुखपर हाथ फेरते हुए वे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र धनंजयसे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।
दिष्ट्या च निहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! युद्धमें मैं तुम दोनों महारथियोंको दैवहीसे इस प्रतिज्ञाके बडे कार्यभारसे उत्तीर्ण हुए देखता हूं । पुरुषाधम पापी सैन्धव जयद्रथ दैवहीसे मारा गया है ॥ ३ ॥

कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
दिष्ट्या शत्रुगणाश्चैव निमग्नाः शोकसागरे ॥ ४ ॥

हे श्रीकृष्ण ! अर्जुनने जयद्रथको मारकर जो मेरी बडी प्रीति सम्पादन की है, यह भी दैवहीसे ही हुआ है । विधिलिखितके अनुसार ही शत्रुलोग शोकसागरमें निमग्न हैं ॥ ४ ॥

न तेषां दुष्करं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ॥ ५ ॥

हे मधुसूदन ! सब लोकोंके गुरु आप जिनके रक्षक हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी कठिन कार्य नहीं है ॥ ५ ॥

तव प्रसादाद्गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ।
यथा पूर्वं प्रसादात्ते दानवान्पाकशासनः ॥ ६ ॥

हे गोविन्द ! हम आपकी कृपासे शत्रुओंपर विजय पायेंगे, जैसे पहिलेके समयमें आपकी कृपासेही दानवोंपर इन्द्रने विजय पायी थी ॥ ६ ॥

पृथिवीविजयो वापि त्रैलोक्यविजयोऽपि वा ।
ध्रुवो हि तेषां वार्ष्णेय येषां तुष्टोऽसि माधव ॥ ७ ॥

वार्ष्णेय माधव ! आप जिनपर संतुष्ट प्रसन्न हैं, उनके लिये पृथ्वी अथवा त्रैलोक्य पर भी विजय पाना निश्चित ही सुलभ है ॥ ७ ॥

न तेषां विद्यते पापं संग्रामे वा पराजयः ।
त्रिदशेश्वरनाथस्त्वं येषां तुष्टोऽसि माधव ॥ ८ ॥

माधव ! आप देवोंके देव हैं; आप जिनपर कृपा दृष्टिसे प्रसन्न होते हैं, उनके लिये युद्धमें पाप– अशुभ या पराजय नहीं रहता ॥ ८ ॥

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शक्रः सुरगणेश्वरः ।
त्रैलोक्यविजयं श्रीमान्प्राप्तवान्रणमूर्धनि ॥ ९ ॥

हे हृषिकेश ! आपकीही कृपाप्रसादसे देवताओंके अधिपति श्रीमान् इन्द्रने त्यैलोक्यपर युद्धके मुहानेपर विजय पायी थी ॥ ९ ॥

तव चैव प्रसादेन त्रिदशास्त्रिदशेश्वर ।
अमरत्वं गताः कृष्ण लोकांश्चाश्नुवतेऽक्षयान् ॥ १० ॥

हे देवेश्वर श्रीकृष्ण ! आपकी ही कृपासे देवताओंको अमरत्व और अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो गई ॥ १० ॥

त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ॥ ११ ॥

हे शत्रुनाशन श्रीकृष्ण ! इन्द्रने आपकी कृपासे प्राप्त हुए पराक्रमके आसरेसे सहस्रावधि दैत्योंका नाश कर देवोंका आधिपत्य पाया है ॥ ११ ॥

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १२ ॥

हे वीर हृषिकेश ! आपके प्रसादसे यह सब स्थावर जङ्गम जगत् अपनी मर्यादामें रहता है और जप होम आदि कर्मोंमें रत रहता है ॥ १२ ॥

एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादात्प्रकाशत्वं जगत्प्राप्तं नरोत्तम ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! पुरुषोत्तम ! यह दृश्यमान प्रपंच पूर्वकालमें एक समुद्रमय और अंधकारसे व्याप्त था, पीछे आपकी कृपासे वह इस जगत्के रूपमें प्रगट हुआ है ॥ १३ ॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमच्युतम् ।
ये प्रपन्ना हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १४ ॥

जो कोई सब लोकोंके उत्पादक, अच्युत, इन्द्रियोंके ईश परमात्मा हृषिकेश– आपकी शरणमें जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पडते ॥ १४ ॥

अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
त्वां भक्ता ये हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ १५ ॥
हे हृषिकेश ! आदि–अन्तरहित, लोककर्ता, अविनाशी, प्रकाशमान् आपको भजनेवाले भक्त लोग सब दुःखोंसे मुक्त होते हैं ॥ १५ ॥

परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ।
प्रपद्यतस्तं परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ १६ ॥
मायासे पर इसलिये नित्य सिद्ध, हिरण्यगर्भादि सरीखोंके बुद्धिको भी अगम्य, ऐसे परम उत्कृष्ट आत्माको प्राप्त होने वाले ज्ञानी पुरुष "एषाऽस्य परमा सम्पत्" इस श्रुतिवाक्यमें प्रसिद्ध परम ऐश्वर्य अर्थात् परमानन्दको पाते हैं ॥ १६ ॥

योऽगात चतुरो वेदान्यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १७ ॥
चारों वेदोंका जिसने गान किया है तथा संपूर्ण वेदोंमें सब जगह जिसकी स्तुति ही गायी है, मैं उस महात्मा श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर परम ऐश्वर्य अर्थात् परमानन्दको प्राप्त करूंगा ॥ १७ ॥

धनंजयसखा यश्च धनंजयहितश्च यः ।
तं धनंजयगोप्तारं प्रपद्य सुखमेधते ॥ १८ ॥
जो भगवान् अर्जुनका मित्र और नित्य अर्जुनका हित करनेवाला तथा अर्जुनका रक्षक है, उस भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जानेवाला पुरुष नित्य सुखको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

इत्युक्तौ तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ ।
तावब्रूतां तदा हृष्टौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ १९ ॥
उनके ऐसा कहनेपर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन आनन्दित होकर पृथ्वीपति राजा युधिष्ठिर से कहने लगे– ॥ १९ ॥

तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः ।
उदीर्णं चापि सुमहद्धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ २० ॥
महाराज ! पापी सिन्धुराज जयद्रथ तुम्हारी कोपरूपी अग्निमें भस्म हुआ है और समरमें धृतराष्ट्र पुत्रकी इस महा सेनासे उत्तीर्ण होना भी तुम्हारी कृपासे ही शक्य हुआ है ॥२०॥

हन्यते निहतं चैव विनङ्क्ष्यति च भारत ।
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ २१ ॥
हे शत्रुसूदन भारत ! ये सब कौरव तुम्हारे क्रोधसे ही नष्ट होकर मारे गये हैं, मारे जाते हैं और मारे जायेंगे; ये सम्पूर्ण कौरव तुम्हारे कोप ही से मर रहे हैं ॥ २१ ॥

त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः ।
सुमित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ २२ ॥

ऐसा ही आप समझ लीजिये, क्योंकि आप जिसकी ओर अपनी कोपदृष्टिसे एक बार देखें वह उसी समय नष्ट हो सकता है; आप वीर पुरुष हैं, इससे दुष्टबुद्धि दुर्योधनने जब आपको कोपित किया तब अवश्य ही मित्र-बन्धु-बान्धवोंके सहित वह युद्धमें प्राणोंका त्याग करेगा ॥ २२ ॥

तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २३ ॥

देखिये, कुरुकुलके पितामह भीष्म पहले देवताओंसे भी अजेय थे; परन्तु वे तुम्हारे क्रोधसे ही हत होकर शरशय्या पर शयन कर रहे हैं ॥ २३ ॥

दुर्लभो हि जयस्तेषां संग्रामे रिपुसूदन ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ २४ ॥

हे शत्रुनाशन महाराज ! इससे तुम जिनके ऊपर क्रुद्ध हैं, उनकी युद्धमें जीत होनी अत्यन्त ही कठिन है, विशेष करके निश्चय ही उन्हें मृत्युके कराल-ग्रासमें पडे हुए ही समझ लीजिये ॥ २४ ॥

राज्यं प्राणाः प्रियाः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च ।
अचिरात्तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥ २५ ॥

हे मानप्रद ! आप जिनके ऊपर क्रोध करें, अवश्यही थोडे समयके बीच उनका राज्य, प्राण, प्रिय पुत्र और नाना प्रकारके सुखका नाश हो जायगा ॥ २५ ॥

विनष्टान्कौरवान्मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे युधिष्ठिर ॥ २६ ॥

हे महाराज ! सदा राजधर्मके पालनमें तत्पर आपके अत्यन्त ही कोपित होने पर मैं कौरवोंको पुत्र, पशु और बन्धु-बान्धवोंके सहित मरा हुआ ही समझ रहा हूं ॥ २६ ॥

ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ।
स्थितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यैः परिवारितौ ॥ २७ ॥

तदनन्तर बाणोंसे क्षत विक्षत शरीरसे युक्त महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकिने अपने श्रेष्ठ गुरु धर्मराज युधिष्ठिरको प्रणाम किया और पाञ्चालोंसे घिर हुए वे दोनों महाधनुर्धर पृथ्वी पर खडे हुए ॥ २७ ॥

तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ ।
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी ॥ २८ ॥

उन दोनों वीरोंको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोडके सामने खडे देख कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने भीम और सात्यकिका अभिनन्दन किया ॥ २८ ॥

दिष्ट्या पश्यामि वां वीरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ।
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ।
दिष्ट्या च निर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ २९ ॥

प्रारब्धहीसे मैंने आज तुम दोनों शूरवीरोंको द्रोणाचार्य रूपी ग्राहसे दुर्धर्ष और हृदिक पुत्र कृतवर्मा रूपी मकरसे युक्त समुद्रके समान कौरवोंकी महासेनासे मुक्त हुए देखा है । प्रारब्धसे ही तुम दोनोंने पृथ्वीके सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया है ॥ २९ ॥

युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे ।
दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ३० ॥

प्रारब्धसे ही मैंने तुम दोनोंको युद्धमें जययुक्त होकर यहां पर आये हुए देखा है । प्रारब्धसे ही युद्धमें आचार्य द्रोण और महाबलवान् कृतवर्मा पराजित हो गये ॥ ३० ॥

सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि चानघौ ।
समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपलायिनौ ।
मम प्राणसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ३१ ॥

प्रारब्धसेही मैंने तुम दोनों निष्पाप वीरोंको सैन्यरूपी महाघोर समुद्रसे पार होते देखा है; तुम दोनों ही युद्धकी इच्छा रखनेवाले और युद्धसे न भागनेवाले वीर मुझे प्राणसमान प्रिय हो; इससे प्रारब्धसे ही मैं तुम दोनोंको फिर युद्धभूमिसे कुशलपूर्वक लौटे हुए देख रहा हूं ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजा युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर पुरुषसिंह भीमसेन और सात्यकिको आलिङ्गन करके आनन्दके सहित आंसूकी धारा बहाने लगे ॥ ३२ ॥

ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशां पते ।
पाण्डवानां जयं दृष्ट्वा युद्धाय च मनो दधे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ ५४३५ ॥

पृथ्वीपते ! अनन्तर पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग जय देखकर प्रफुल्लित चित्तसे हर्षपूर्वक युद्धके लिये फिर उद्योग करने लगे ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥ ५४३५ ॥

: १२५ :

संजय उवाच

सैन्धवे निहते राजन्पुत्रस्तव सुयोधनः ।
अश्रुक्लिन्नमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ।
अमन्यतार्जुनसमो योद्धा भुवि न विद्यते ॥ १ ॥

संजय बोले-- महाराज ! सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन दीन और आंसुओंसे व्याप्त मुख होकर शत्रुओंके जीतनमें उत्साहरहित हो गये; और वे अपने मनमें यह समझने लगे, कि इस पृथ्वीके बीच अर्जुनके समान कोई भी दूसरा योद्धा विद्यमान नहीं है ॥ १ ॥

न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ २ ॥

मारिष ! युद्धभूमिमें क्रोधी अर्जुनके संमुख द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य कोई भी खडे होनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २ ॥

निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान्मम महारथान् ।
अवधीत्सैन्धवं संख्ये नैनं कश्चिदवारयत् ॥ ३ ॥

जब युद्धमें अर्जुनने मेरी ओरके सम्पूर्ण महारथियोंको पराजित करके सिन्धुराज जयद्रथका बध किया है और कोई भी उसे निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ३ ॥

सर्वथा हतमेवैतत्कौरवाणां महद्बलम् ।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरंदरः ॥ ४ ॥

तब साक्षात् देवराज इन्द्र भी आकर मरी हुईके समान मेरी इस महान् कुरुसेनाकी रक्षा नहीं कर सकेंगे ॥ ४ ॥

यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ५ ॥

जिसके आसरेसे युद्ध करनेके लिये शस्त्रसंग्रहका उद्योग किया गया था, वही कर्ण इस समय युद्धमें पराजित हुए और जयद्रथ भी मारा ही गया ॥ ५ ॥

परुषाणि सभामध्ये प्रोक्तवान्यः स्म पाण्डवान् ।
स कर्णो निर्जितः संख्ये सैन्धवश्च निपातितः ॥ ६ ॥

कौरवोंकी सभामें जिस कर्णने पांडवोंको अत्यंत कठोर वचन कहे थे, वही कर्ण युद्धमें पराजित हो गए और सिंधुराज जयद्रथ मारा गया ॥ ६ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम् ।
तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ७ ॥

जिसके पराक्रमके आसरेसे मैंने शांतिके लिये संधिकी प्रार्थना करनेवाले श्रीकृष्णको तृणवत् समझकर उनका निरादर किया था, इस समय वह कर्ण युद्धमें पराजित हो गये ॥ ७ ॥

एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद्द्रोणमीक्षितुम् ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ ८ ॥

महाराज ! सम्पूर्ण जगत्का अपराध करनेवाले तुम्हारे पुत्र दुर्योधन इसी प्रकारसे विचार करके दुःखित होकर, द्रोणाचार्यसे भेट करनेकी इच्छासे उनके समीप उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ।
परान्विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान्निमज्जतः ॥ ९ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यके निकट शत्रुओंकी विजय, धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संकट-समुद्रमें डूबना तथा कुरुसेनाके शूरवीरोंके महान् नाशका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करने लगे ॥ ९ ॥

दुर्योधन उवाच

पश्य मूर्धावसिक्तानामाचार्य कदनं कृतम् ।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥ १० ॥

दुर्योधन बोले— हे आचार्य ! मेरे महा पराक्रमी भीष्म पितामह और राज्याभिषेक किये गये राजा लोगोंका यह महान् संहार देखिये ॥ १० ॥

तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः ।
पाञ्चालैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिकर्षति ॥ ११ ॥

दुष्ट स्वभाववाले शिखण्डीने भीष्म पितामहका वध करके अपना मनोरथ पूरा किया है; इस समय वही शिखण्डी पांचाल योद्धाओंके सहित सेनाके अगाडी स्थित हैं ॥ ११ ॥

अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १२ ॥

और भी देखिये, सव्यसाची अर्जुनने सात अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके तुम्हारे दूसरे शिष्य दुर्धर्ष सिन्धुराज जयद्रथका वध किया है ॥ १२ ॥

अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् ।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥ १३ ॥

जो हो, इस समय जो सब उपकारी सुहृद मित्र हम लोगोंके विजयकी अभिलाषा करके यमपुरीमें गये हैं, मैं किस भांतिसे उन लोगोंके ऋणसे मुक्त होऊंगा ? ॥ १३ ॥

ये मदर्थं परीप्सन्ति वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १४ ॥

हाय ! जिन सम्पूर्ण राजाओंने मेरे लिये इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यकी अभिलाषा की थी; इस समय वे सब कोई पृथ्वीके सम्पूर्ण ऐश्वर्य त्यागकर वीर शय्यापर शयन कर रहे हैं ॥ १४ ॥

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् ।
नाश्वमेधसहस्रेण पातुमात्मानमुत्सहे ॥ १५ ॥

मैं अत्यन्त ही कापुरुष हूं, मैं अपने मित्रोंका इस प्रकार नाश कराके सहस्र अश्वमेधोंसे भी अपनेको पवित्र नहीं कर सकूंगा ॥ १५ ॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः ।
व्यायच्छन्तो जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १६ ॥

मुझ अधर्मी, पापी तथा लोभीके लिये ही युद्ध करके विजयकी इच्छा करके सम्पूर्ण राजा लोग इस महाघोर संग्राममें मरकर यमलोकमें गये हैं ॥ १६ ॥

कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः ।
विवरं नाशकद्दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १७ ॥

राजाओंके बीच मुझ आचार भ्रष्ट और मित्रदोहीके लिये यह पृथ्वी भी क्यों नहीं फटकर स्थान प्रदान करती है ? ॥ १७ ॥

सोऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम् ।
शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण राजाओंके बीच युद्धमें मारे गये भीष्म पितामहने रुधिरपूरित शरीरसे शरशय्यापर शयन किया है, परंतु हम लोग किसी भांति उनकी रक्षा नहीं कर सके ॥ १८ ॥

तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् ।
किं स वक्ष्यति दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥ १९ ॥

विशेषकर परलोकको जीतनेवाले दुर्धर्ष भीष्म पितामह यदि मैं उनके पास जाऊं तो मेरे समान अधर्मी, मित्रद्रोही, अनार्य और नीच पुरुषको क्या कहेंगे ? ॥ १९ ॥

जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २० ॥

और भी देखो, महाधनुर्धर पराक्रमी महारथी राजा जलसन्ध युद्धभूमिमें मेरे लिये प्राणोंकी आशा त्यागके सात्यकिके सङ्ग युद्ध करके उनके हाथसे मारे गये हैं ॥ २० ॥

काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथालम्बुसमेव च ।
अन्यान्बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २१ ॥

सुदक्षिण, अलम्बुस तथा दूसरे बहुतेरे सुहृद् राजाओंको मारा गया देखकर भी अब मेरे जीवित रहनेकी कौनसी आवश्यकता है ? ॥ २१ ॥

व्यापच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः ।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान्मम ॥ २२ ॥

युद्धमें पीछे न हटनेवाले ये सम्पूर्ण राजा और शूरवीर योद्धा लोग शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करके रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ २२ ॥

तेषां गत्वाहमानृण्यमद्य शक्त्या परंतप ।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २३ ॥

हे शत्रुनाशन आचार्य ! इससे मैं भी अपनी शक्ति प्रकाशित करके इन सम्पूर्ण मरे हुए राजाओंके ऋणसे मुक्त होकर, पीछे यमुनाके जलसे उन लोगोंका तर्पण करूंगा ॥ २३ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २४ ॥

हे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य ! मैं इष्टापूर्त, बल, पराक्रम और पुत्रोंकी शपथ करके तुम्हारे समीप सत्य प्रतिज्ञा करता हूं ॥ २४ ॥

निहत्य तान्रणे सर्वान्पाञ्चालान्पाण्डवैः सह ।
शान्तिं लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥ २५ ॥

पाण्डवोंके सहित सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका युद्धमें वध करके शान्त होऊंगा; अथवा उन लोगोंके हाथसे मर कर वे मेरे राजालोग जिस श्रेष्ठ लोकमें गये हैं, उसीमें मैं भी गमन करूंगा ॥ २५ ॥

न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून्मन्यन्ते न तथाऽस्मान्महाभुज ॥ २६ ॥

हे महाबाहु आचार्य ! इस समय बचे हुए जो पुरुष मेरी सहायता करनेवाले हैं, वे अरक्षित हैं, इसलिये हमारी सहायता करना नहीं चाहते; वे लोग जिस प्रकार पाण्डवोंके कल्याणकी अभिलाषा करते हैं, वैसी हमारे कल्याणकी मङ्गलकामना नहीं करते ॥ २६ ॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसंधेन संयुगे ।
भवानुपेक्षां कुरुते सुशिष्यत्वाद्धनंजये ॥ २७ ॥

देखिये, सत्यसन्ध भीष्म पितामहने स्वयं ही अपनी मृत्युका वृत्तान्त युधिष्ठिरसे कह दिया; और आप भी अर्जुनके ऊपर प्रेम करके युद्धमें हमारी उपेक्षा करते रहते हैं ॥ २७ ॥

अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ।
कर्णमेव तु पश्यामि संप्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ २८ ॥

इससे मेरी ओरके विजयकी अभिलाषा करनेवाले सब लोग युद्धमें मारे गये हैं । इस समय केवल कर्ण ही मेरे विजयके निमित्त अभिलाष करते हुए दीख पडते हैं ॥ २८ ॥

यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ २९ ॥

जो बुद्धिहीन पुरुष मित्रको यथार्थ रूपमें न जानकर उसे मित्र समझके मित्रके करने योग्य अपने कार्योंमें नियुक्त करता है, अवश्य ही उसे निष्फल मनोरथ होना पडता है ॥ २९ ॥

तादृग्रूपमिदं कार्यं कृतं मम सुहृद्ब्रुवैः ।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्माचारैस्ततस्ततः ॥ ३० ॥

मैं भी बुद्धिहीन लोभी और पापी हूं, इसीसे कुटिल आचरण करनेवाले पुरुषोंको मित्र समझके विश्वास कर रहा हूं । भीतरी शत्रु और ऊपरसे मित्रता बताकर कुटिल पुरुषोंने सब भांतिसे मेरे कार्यकी हानि की है ॥ ३० ॥

हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३१ ॥

इस ही कारणसे पराक्रमी राजा जयद्रथ, भूरिश्रवा, अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देशीय शूरवीर पुरुष युद्धभूमिमें मारे गये ॥ ३१ ॥

सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थं संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३२ ॥

इन सम्पूर्ण पुरुष श्रेष्ठ शूरवीरोंने मेरे निमित्त युद्ध करके अर्जुनके हाथसे मारे जाकर, जिस स्थानमें गमन किया है, मैं भी उसही स्थानमें गमन करूंगा ॥ ३२ ॥

न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान् ।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ५४६८ ॥

इस समय उन पुरुषश्रेष्ठ सुहृदोंके बिना मेरे जीवित रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; आप हम पाण्डुपुत्रोंके आचार्य हैं, इसलिये मुझे अनुमति दीजिये ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥ ५४६८ ॥

: १२६ :

धृतराष्ट्र उवाच

सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना ।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– तात ! जब युद्धमें सिन्धुराज जयद्रथ सव्यसाची अर्जुनके हाथसे और भूरिश्रवा सात्यकिके हाथसे मारे गये, तब तुम लोगोंका मन कैसा हुआ था ? ॥ १ ॥

दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि ।
किमुक्तवान्परं तस्मात्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय ! दुर्योधनने जब कौरवोंके बीच द्रोणाचार्यके निकट इस भांतिसे दुःख प्रकाशित किया, तब उन्होंने उसे कैसा उत्तर दिया था; यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

निष्टानको महानासीत्सैन्यानां तव भारत ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले - महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवाको मारा गया देख तुम्हारी सेनाके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा ॥ ३ ॥

मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे ।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥

उन सम्पूर्ण योद्धाओंने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी मन्त्रणा (राय) का अनादर किया, क्योंकि दुर्योधनके अविचारहीके कारणसे सैकड़ों क्षत्रिय श्रेष्ठ वीरोंका नाश हुआ था ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु तद्वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः ।
मुहूर्तमिव तु ध्यात्वा भृशमार्त्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

परन्तु द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्रके वचनको सुनके दुःखित मन होके मुहूर्त्त भरतक चिन्ता करके फिर दुर्योधनसे अत्यन्त आर्तभावसे यह वचन बोले ॥ ५ ॥

दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरभिकृन्तसि ।
अजय्यं सततं नित्यं ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ६ ॥

हे दुर्योधन ! तुम किस कारणसे मुझे वचनरूपी बाणोंसे दुःखित कर रहे हो ? मैं तुमसे सदा ही यह वचन कहता चला आया हूं, कि सव्यसाची अर्जुन इस संसारके बीच अजेय हैं ॥ ६ ॥

एतेनैवार्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे ।
यच्छिखण्डयवधीद्भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७ ॥

हे कौरव ! अर्जुनसे रक्षित होकर शिखण्डीने जब युद्धभूमिमें भीष्मका वध किया, उस ही समयसे अर्जुनके पराक्रमका पूरा प्रमाण मिल चुका है ॥ ७ ॥

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवमानुषैः ।
तदैवाज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥

देवता और मनुष्योंसे भी अवध्य कुरुकुल शिरोमणि भीष्मदेवको युद्धमें मारा गया देख मैंने उस ही समयसे जान लिया है कि इस भारती सेनाके शूरवीरोंकी अब रक्षा नहीं हो सकती ॥ ८ ॥

यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि ।
तस्मिन्विनिहते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥

जिन्हें हम लोग तीनों लोकोंके बीच सबसे श्रेष्ठ शूरवीर समझते थे; उन वीरवर भीष्मके मारे जानेपर अब कौन ऐसा पुरुष है कि हमलोग जिसके आसरेसे युद्धभूमिमें स्थित रह सकेंगे ? ॥ ९ ॥

यान्स्म तान्ग्लहते तातः शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान्न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥

पहिले कुरुसभाके बीच शकुनिने जिन पासोंको ग्रहण करके जूआ खेला था, वे सब पासे नहीं थे, वे ही इस समय शत्रुओंको पीडित करनेवाले चोखे बाण हुए हैं ॥ १० ॥

त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखा जयचोदिताः ।
तांस्तदा ख्याप्यमानांस्त्वं विदुरेण न बुध्यसे ॥ ११ ॥

तात ! पहिले विदुरने बार बार निवारण किया था तो भी तुम्हें कुछ नहीं मालूम हुआ था, वे ही सम्पूर्ण पासे इस समय बाण रूपी होकर अर्जुनके धनुषसे छूटकर हम लोगोंका नाश कर रहे हैं ॥ ११ ॥

तास्ता विलपतश्चापि विदुरस्य महात्मनः ।
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥ १२ ॥

हे दुर्योधन ! धीर महात्मा विदुरने बार बार विलाप करके तुम्हारे कल्याणके लिये बहुतसे हितकर वचन कहे थे, तो भी तुमने उनके वचन नहीं सुने ॥ १२ ॥

तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत् ।
तस्यावमानाद्वाक्यस्य दुर्योधन कृते तव ॥ १३ ॥

दुर्योधन ! उन ही वचनोंकी अवमानना करनेके कारणसे तुम्हारे निमित्त यह सम्पूर्ण शूर वीरोंका घोर नाश हो रहा है ॥ १३ ॥

यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाययः सभाम् ।
अनर्हतीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १४ ॥
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं त्वया ।
नो चेत्पापं परे लोके त्वमवाप्स्यसि ततोऽधिकम् ॥ १५ ॥

हे गान्धारीपुत्र ! तुमने जो कौरवोंकी सभाके बीच न लाने योग्य, सब धर्मोंका सदा पालन करनेवाली, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई द्रौपदीको हम लोगोंके सम्मुखमें ही अन्यायसे बुलाकर अपमानित किया; उस ही तुम्हारे अधर्मका यह महान् विनाशरूपी फल तुम्हें मिल रहा है । परन्तु यदि इस लोकमें तुम्हारी ऐसी दशा न होती तो परलोकमें इससे बढके तुम्हें अपने पापोंके फल भोगने पडते ! ॥ १४–१५ ॥

यच्च तान्पाण्डवान्द्यूते विषमेण विजित्य ह ।
प्राव्राजयस्त्वदारण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १६ ॥

और भी तुमने पाण्डवोंको जूएके खेलमें अन्यायपूर्वक जीतकर, मृगचर्मके वस्त्र पहनाकर उन्हें वनवासके लिये भेजा ॥ १६ ॥

पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा ।
द्रुह्येत्को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १७ ॥

इस समय मुझे छोडके और दूसरा कौन ब्राह्मण नाम धारण करनेवाला पुरुष सदा सर्वदा धर्मके कार्य करनेवाले, पुत्रके समान प्रिय पाण्डुपुत्रोंसे द्रोह करनेमें प्रवृत्त हो सकता है ? ॥ १७ ॥

पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह ।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य संमते कुरुसंसदि ॥ १८ ॥

उस समय तुमने कुरुसभाके बीच शकुनिके सङ्ग मिलकर धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे पाण्डवोंका यह कोप मोल लिया है ॥ १८ ॥

दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः ।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ १९ ॥

दुःशासनने उसकी जड दृढ की, कर्णने उसे बढाया और तुमने विदुरके वचनकी अवगणना कर बार बार पाण्डवोंके क्रोधकी वृद्धि की है ॥ १९ ॥

यत्तत्सर्वे पराभूय पर्यवारयतार्जुनिम् ।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २० ॥

तुम सबने अर्जुनको घेर लिया था, फिर तुम सब कैसे पराजित हो गये ? सिंधुराज जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये तुमने उनको आश्रय दिया था, तो भी तुम्हारे बीचमें वह कैसे मारे गये ? ॥ २० ॥

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति ।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २१ ॥

हे कुरुराज दुर्योधन ! तुम, कर्ण, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा जीवित रहते हुए भी सिन्धुराज जयद्रथ किस कारणसे मारे गये ? ॥ २१ ॥

यद्धस्तत्सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते ।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २२ ॥

जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये सम्पूर्ण राजाओंने भी तो प्राणपणसे अपने पराक्रमको प्रकाशित करके युद्ध किया था, तो भी सिन्धुराज जयद्रथ तुम लोगोंके बीचमें रह कर किस प्रकारसे मारे गये ? ॥ २२ ॥

मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
आशंसत परित्राणमर्जुनात्स महीपतिः ॥ २३ ॥

दुर्योधन ! विशेष करके सिन्धुराज जयद्रथने तुम्हारे और मेरे ही आसरेसे अर्जुनके हाथमें बचनेकी आशा की थी ॥ २३ ॥

ततस्तस्मिन्परित्राणमलब्धवति फल्गुनात् ।
न किंचिदनुपश्यामि जीवितत्राणमात्मनः ॥ २४ ॥

परन्तु वह अर्जुनके हाथसे परित्राण न पा सके; इससे मैं अब इस समय अपने प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं देख सकता हूं ॥ २४ ॥

मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे ।
पश्याम्यहत्वा पाञ्चालान्सह तेन शिखण्डिना ॥ २५ ॥

मैं जबतक धृष्टद्युम्न और शिखण्डी सहित सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका संहार नहीं कर सकता हूं, तब तक धृष्टद्युम्नकी कुटिलतापूर्ण संकल्पमें अपने आपको निमग्न हुआ ही बोध कर रहा हूं ॥ २५ ॥

तन्मा किमभितप्यन्तं वाक्शरैरभिकृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २६ ॥

हे भारत ! इससे जब मैं सिन्धुराज जयद्रथको अर्जुनके हाथसे बचानेमें स्वयं असमर्थ होके दुःखित होरहा हूं, तब तुम क्यों मुझे वचन रूपी बाणोंसे विद्ध कर रहे हो ? ॥ २६ ॥

सौवर्णं सत्यसंधस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन्युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २७ ॥

और युद्धभूमिके बीच कठिन कर्मके करनेवाले सत्य पराक्रमी भीष्मकी सुवर्णमयी ध्वजाको भी न देखकर तुम किस प्रकारसे अपने विजयकी इच्छा कर रहे हो ? ॥ २७ ॥

मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २८ ॥

जिस स्थान पर कौरवोंमें मुख्य भूरिश्रवा और सिन्धुराज जयद्रथ सम्पूर्ण महारथियोंके बीचमें रहकर भी मारे गये हैं, उस स्थानपर अब तुम किसको जीवित समझ रहे हो ? ॥ २८ ॥

कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नागात्सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ २९ ॥

राजन् ! दुर्धर्ष पराक्रमी कृपाचार्य यदि सिन्धुराजके अनुगामी न होकर जीवित होंगे, तो मैं उनकी विशेष प्रशंसा करता हूं ॥ २९ ॥

यच्चापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ॥ ३० ॥

हे कौरव ! जबसे मैंने इन्द्र आदि देवताओंसे भी युद्धमें अवध्य, महाबली अत्यन्त पराक्रमी भीष्मको तुम्हारे छोटेभाई दुःशासनके संमुख ही में मारा गया देखा ॥ ३० ॥

न ते वसुंधरास्तीति तदहं चिन्तये नृप ।
इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य मारिष ॥ ३१ ॥

तभीसे मेरे हृदयमें यह विचार हुआ है, कि यह वसुन्धरा पृथ्वी तुमसे बिमुख हुई है, तुम्हारी नहीं रह सकती । मारिष ! यह देखो, पाण्डव और सृञ्जयोंकी सेनाएं इकट्ठी होकर मेरी ओर दौडी आरही हैं ॥ ३१ ॥

नाहत्वा सर्वपाञ्चालान्कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३२ ॥

दुर्योधन ! इससे आज मैं युद्धभूमिमें तुम्हारे हितके लिये अच्छी प्रकारसे अनुष्ठान करूंगा; मैं सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका बिना वध किये अपना कवच नहीं उतारूंगा ॥ ३२ ॥

राजन्ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामासे कहना कि वह युद्धमें अपने जीवनकी रक्षा करते हुए सोमकवंशी योद्धाओंको जीवित न छोडे ॥ ३३ ॥

यच्च पित्रानुशिष्टोऽसि तद्वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्ये आर्जवे च स्थिरो भव ॥ ३४ ॥

यह भी कहना कि हे अश्वत्थामन् ! तुमने अपने पिताके समीप जो सम्पूर्ण विद्या सीखी है, उसे पूर्णरीतिसे पालन करो; अर्थात् सरलता, दम, सत्य और अनुशंसतामें निष्ठा करो ॥ ३४ ॥

धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानः कार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

तुम धर्म, अर्थ और कामके कार्योंमें कुशल हो, इसलिये धर्म और अर्थके अविरोधी रहकर बारंबार धर्मके कार्योंका अनुष्ठान करना ॥ ३५ ॥

चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या विप्राः सेव्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणोंको नेत्र और वचनसे सम्मानित और सन्तोषित करके, अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूजा तथा सत्कार करना । कभी ब्राह्मणोंके अप्रिय कार्यके करनेमें प्रवृत्त न होना, क्योंकि ब्राह्मण अग्निशिखाके समान तेजस्वी हैं ॥ ३६ ॥

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शल्यपीडितः ॥ ३७ ॥

हे शत्रुनाशन दुर्योधन ! और अधिक तुमसे क्या कहूं ? इस समय मैं तुम्हारे वाग्बाणोंसे पीडित हुआ हूं; आज मैं महाघोर युद्ध करनेके लिये शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करता हूं ॥ ३७ ॥

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्नोषि धारय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ३८ ॥

दुर्योधन ! तुमभी यदि समर्थ हो तो इस सेनाके योद्धाओंकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त होजाओ; क्योंकि आज अत्यन्त क्रुद्ध हुए कौरव और सृञ्जय लोग रात्रिके समयमें भी युद्ध करेंगे ॥ ३८ ॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायाद्द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन्क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ५५०७ ॥

महाराज ! जैसे सूर्य नक्षत्रोंके तेजको हरण करते हैं, वैसे ही क्षत्रियोंके तेजको हरनेवाले द्रोणाचार्यने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कह कर पाण्डव और सृञ्जयोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ३९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥ ५५०७ ॥

: १२७ :

सञ्जय उवाच

तततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः ।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! अनन्तर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने द्रोणाचार्यसे इसी भांतिसे प्रेरित होकर क्रोधपूर्वक युद्धके निमित्त मनसे दृढ सङ्कल्प किया ॥ १ ॥

अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ।
आचार्यविहितं व्यूहं भिन्नं देवैः सुदुर्भिदम् ॥ २ ॥

और उस ही समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधन कर्णको कहने लगे, हे कर्ण ! देखो, श्रीकृष्णकी सहायतासे युक्त पाण्डुपुत्र अर्जुनने देवताओंसे भी न भेद होने योग्य द्रोणाचार्यके बनाये ऐसे कठिन व्यूहको खेलवाडकी भांति भेद किया ॥ २ ॥

तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः ॥ ३ ॥

और महात्मा द्रोणाचार्य, तुम तथा मुख्य मुख्य महारथी योद्धा लोग प्रयत्नपूर्वक युद्ध करते थे, तो भी सब लोगोंके देखते ही सिन्धुराज जयद्रथ अर्जुनके हाथोंसे मारे गये ॥ ३ ॥

पश्य राधेय राजानः पृथिव्यां प्रवरा युधि ।
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरा मृगाः ॥ ४ ॥

राधेय ! देखो, जैसे सिंह दूसरे पशुओंका बध करता है, वैसे ही अर्जुनने अकेले ही इस पृथ्वीके श्रेष्ठ राजाओंको युद्धमें मार गिराया हैं ॥ ४ ॥

मम व्यायच्छमानस्य समरे शत्रुसूदन ।
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ॥ ५ ॥

हे शत्रुनाशन कर्ण ! रणभूमिके बीच मैं स्वयं प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त था, तो भी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मेरी सेनाके पुरुषोंका नाश करके अब थोडीसी सेना बाकी रक्खी है ॥ ५ ॥

कथं ह्यनिच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फल्गुनः ।
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे ॥ ६ ॥

परन्तु यदि द्रोणाचार्य स्थिरचित्तसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त रहते, तो अर्जुन प्रयत्नशील होकर भी किस प्रकार युद्धमें इस दुर्भेद्य व्यूहको भेद कर सकते ? ॥ ६ ॥

प्रियो हि फल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः ।
ततोऽस्य दत्तवान्द्वारं नयुद्धेनारिमर्दन ॥ ७ ॥

शत्रुमर्दन ! अर्जुन महात्मा द्रोणाचार्यको अत्यन्त ही प्रिय हैं, इस ही कारणसे उन्होंने विना युद्धके ही उन्हें व्यूहके बीच प्रवेश करनेका मार्ग प्रदान किया था ॥ ७ ॥

अभयं सैन्धवस्याजौ दत्त्वा द्रोणः परंतपः ।
प्रादात्किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मम ॥ ८ ॥

देखो, मेरी भाग्यहीनतासे ही शत्रुतापन द्रोणाचार्यने सिंधुराज जयद्रथको अभयदान करके भी किरीटधारी अर्जुनको व्यूहके बीच प्रवेश करनेका मार्ग प्रदान किया ॥ ८ ॥

यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान्प्रति ।
सिन्धुराजस्य समरे नाभविष्यज्जनक्षयः ॥ ९ ॥

वे यदि पहिले ही सिन्धुराज जयद्रथको घर जानेके लिये अनुमति देते, तो इस प्रकार मेरी सेनाके पुरुषों और राजा जयद्रथका समरमें नाश न होता ॥ ९ ॥

जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान्प्रति ।
मयानार्येण संरुद्धो द्रोणात्प्राप्याभयं रणे ॥ १० ॥

ओहो ! जब सिन्धुराज राजा जयद्रथ अपने प्राणकी अभिलाषासे घर जानेके लिये उद्यत हुए थे, उस समय मैंने द्रोणाचार्यके समीप अभय पाकर अपनी मूर्खताके कारण उन्हें घर जानेके लिये निवारण किया था ॥ १० ॥

अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो युधि ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥ ११ ॥

हाय ! मैं कैसा निष्ठुर तथा दुष्टात्मा पुरुष हूं । देखो, आज युद्धभूमिमें मेरे चित्रसेन आदि सहोदर भाई हम लोगोंके सम्मुख ही में भीमसेनके हाथसे मारे गये ॥ ११ ॥

कर्ण उवाच

आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्या युध्यत्यसौ द्विजः ।
अजय्यान्पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे ॥ १२ ॥

कर्ण बोले– महाराज ! ब्राह्मण द्रोणाचार्य अपने बल, उत्साह और शक्तिके अनुसार ही युद्ध कर रहे हैं, इससे आप उनकी निन्दा न कीजिये । मेरा मानना है कि अस्त्र विद्या जाननेवाले होनेपर भी द्रोणाचार्य युद्धमें पाण्डवोंको अजेय समझते हैं ॥ १२ ॥

तथा स्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
दैवदृष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित् ॥ १३ ॥

इस ही कारण श्वेतवाहन अर्जुनने उन्हें अतिक्रम करके तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके बीच प्रवेश किया। हे राजन्! मेरे विचारमें अवश्य ही यह निश्चय होरहा है, कि दैव जिस विषयके अनुकूल रहता है, कोई भी पुरुष किसी प्रकारसे उस विषयके अन्यथा कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

ततो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ।
सैन्धवो निहतो राजन्दैवमत्र परं स्मृतम् ॥ १४ ॥

सुयोधन! क्योंकि हम लोग अपनी पूरी शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे थे, तोभी सिन्धुराज जयद्रथ मारे गये, इससे दैवको इस विषयमें प्रबल कहना पडेगा ॥ १४ ॥

परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे ।
हत्वास्माकं पौरुषं हि दैवं पश्चात्करोति नः ।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ १५ ॥

और भी देखिये, रणभूमिके बीच हम लोग तुम्हारे सङ्ग मिलकर सदाही कपटता और अपने पराक्रमसे तुम्हारे विजयकी अभिलाषासे महान् प्रयत्न करते हैं, तोभी दैव हम लोगोंके पुरुषार्थको नष्ट करके हमारे उपायको निष्फल कर रहा है ॥ १५ ॥

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत्कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं स्म तत्तस्य दैवेन विनिहन्यते ॥ १६ ॥

दैव या भाग्यहीन पुरुष किसी समय चाहे कितने ही यत्नसे कोई कार्य करे, परन्तु दैव यदि उससे विमुख रहता है तो उसके सम्पूर्ण अनुष्ठान बार बार नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

यत्कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सता ।
तत्कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥ १७ ॥

परन्तु कर्मोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषोंको शङ्कारहित होकर अवश्य करने योग्य कर्मोंको सदासर्वदा करना योग्य है; कभी कर्त्तव्य कर्मोंके अनुष्ठानसे पीछे हटना उचित नहीं है; तब कार्यका होना और न होना दैवके आधीन है ॥ १७ ॥

निकृत्या निकृताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥ १८ ॥

भारत! देखिये, हम लोगोंने कुन्तीपुत्रोंको कपट करके छला; उन्हें विष पिलाया; जतुगृहमें जलाया; और जूवेके खेलमें कपटताके सहित उन्हें ठगके नाना भांतिके क्लेश दिये ॥१८॥

राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं यत्ते दैवेन विनिपातितम् ॥ १९ ॥

और राजनीतिके अवलम्बसे उन्हें वनवासी भी बनाया । इस प्रकारसे जिन जिन कर्मोंके अनुष्ठान हम लोगोंने यत्नपूर्वक किये थे, दैवकी इच्छासे वे सम्पूर्ण कर्म निष्फल हुए ॥ १९ ॥

युध्यस्व यत्नमास्थाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ २० ॥

जो हो, इस समय आप यत्नवान् होकर प्राणपणसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त होइये । तुम्हारे और पाण्डवोंके अपनी विजयके लिये प्रयत्न करते रहनेपर दैव अपने मार्गकाही अवलंबन करेगा ॥ २० ॥

न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्धया हीनं कुरूद्वह ॥ २१ ॥

हे वीर ! क्योंकि पाण्डवोंने बुद्धिपूर्वक किसी सत्कार्यका अनुष्ठान किया है और अपने बुद्धिहीनताके कारण किसी असत् कार्यका अनुष्ठान किया है, ऐसा मुझे नहीं दीखता है ॥ २१ ॥

दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ २२ ॥

तब जो उन लोगोंके किये हुए सम्पूर्ण कार्य सद्रूपसे और तुम्हारे अनुष्ठित कार्य असद्रूपसे परिणत हुए हैं, भाग्य ही उस विषयमें प्रमाण स्वरूप है । अपना ही पूर्वकृत कर्म दैव है, क्योंकि भाग्य प्राणियोंके निद्राकालमें भी जागता रहता है ॥ २२ ॥

बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तथा ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ २३ ॥

जिस समय यह युद्ध उपस्थित हुआ, उस समय तुम्हारी ओर ही बहुतसी सेनाएं तथा अनगिनत योद्धा थे; पाण्डुपुत्रोंकी उतनी सेना नहीं थी, ॥ २३ ॥

तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत्कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ २४ ॥

परन्तु क्या ही आश्चर्यका विषय है, कि उनकी सेनाके पुरुषोंके थोडे होने पर भी तुम्हारे अनगिनत योद्धाओंका वध होता है, हम लोगोंका बल पुरुषार्थ जो नष्ट हो रहा है, वह सब दैवकी इच्छा ही समझनी चाहिये ॥ २४ ॥

संजय उवाच

एवं संभाषमाणानां बहु तत्तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ २५ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! राजा दुर्योधन और कर्ण आपसमें इसी प्रकार अनेक भांतिकी बात चीत कर रहे थे; उस समय युद्धभूमिमें पाण्डवोंकी सेना दिखाई देने लगी ॥ २५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैः सार्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ५५३२ ॥

राजन् ! अनन्तर तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके रथी रथीसे, गजपति गजपतिसे और पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा लोग पदाति सेनाके शूरवीरोंके सम्मुख होकर अपने समान पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करने लगे । महाराज ! तुम्हारा अविचारही इस महाघोर संग्रामका मूल है ॥ २६ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ १२७ ॥ ५५३२ ॥

: १२८ :

संजय उवाच

तदुदीर्णगजाश्वौघं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामभिद्रुत्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! तुम्हारी हाथी और घोडोंकी विशाल तैयार सेना पाण्डवोंकी सेना पर आक्रमण करके चारों ओरसे युद्ध करने लगी ॥ १ ॥

पाञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥

कौरव और पाञ्चाल योद्धालोग महान् यम राज्य और स्वर्गलोककी दीक्षा लेकर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥

एक पक्षके शूरवीर दुसरे पक्षके शूर वीरोंसे भिडकर बाण, तोमर और शक्ति आदि अस्त्रोंसे युद्धमें शीघ्रतासे परस्पर विद्ध करके यमलोक भेजने लगे ॥ ३ ॥

रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावि दारुणम् ।
प्रावर्तत महद्युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥

एक दूसरेके उपर शस्त्रोंसे प्रहार करनेवाले रथियोंका रथियोंके साथ रुधिरकी धारा बहानेवाला महाघोर दारुण युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम् ।
विषाणैर्दारयामासुः संक्रुद्धाश्च मदोत्कटाः ॥ ५ ॥

महाराज ! उस समय युद्धमें मतवाले हाथी क्रुद्ध होकर परस्पर भिडकर अपने दांतोंसे प्रहार करके एक दूसरेको विदीर्ण करने लगे ॥ ५ ॥

हयारोहान्हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६ ॥

उस महाघोर संग्राममें घुडसवार योद्धा लोग घुडसवारोंके संमुख उपस्थित होकर बडे यशकी इच्छासे अपने परश्वध, शक्ति और प्रास आदि अस्त्रोंसे एक दूसरेके शरीरको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ ६ ॥

पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यमार्दयन्राजन्नित्ययत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥

राजन् ! उस ही प्रकार सैकडों सहस्रों पैदल सेनाके योद्धा लोग नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके यत्नपूर्वक अपना पराक्रम प्रकाशित करते हुए एक दूसरेका नाश करने लगे ॥ ७ ॥

गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष ।
श्रवणाद्धि विजानीमः पाञ्चालान्कुरुभिः सह ॥ ८ ॥

महाराज ! जब पांचाल लोग कुरुसेनाके संमुख स्थित होकर युद्ध करने लगे उस समय यह नहीं मालूम हो सकता था, कि कौनसे कुरुसेनाके योद्धा हैं; और कौनसे पाञ्चाल सेनाके वीर हैं; केवल उन लोगोंके मुहसे उनके नाम, गोत्र और कुलका वृत्तान्त सुनकर हम लोग कुरुसेनाके और पाञ्चाल सेनाके पुरुषोंको मालूम करने लगे ॥ ८ ॥

अन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रेषयन्परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥

इसी भांतिसे दोनों ओरके योद्धा लोग निर्भय चित्तसे रणभूमिके बीच घूमते हुए बाण, शक्ति और फरशे आदि अस्त्रोंसे शत्रुसेनाके पुरुषोंका वध करके एक दूसरेको यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ९ ॥

शरैर्दश दिशो राजंस्तेषां मुक्तैः सहस्रशः ।
न भ्राजन्त यथापूर्वं भास्करेऽस्तं गतेऽपि च ॥ १० ॥

महाराज ! सूर्यके अस्त होनेके कारण उन लोगोंके धनुषसे छूटे हुए सहस्रों बाण दसों दिशाओंमें फैलकर पहलेके समान प्रकाशित नहीं होते थे ॥ १० ॥

तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु निर्भयः ।
दुर्योधनो महाराज व्यवगाहत तद्बलम् ॥ ११ ॥

भारत ! जब पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष इस प्रकारसे युद्ध कर रहे थे, उस ही समय कुरुराज दुर्योधनने शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ११ ॥

सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति संचिन्त्य प्राविशत्तु द्विषद्बलम् ॥ १२ ॥

उस समय राजा दुर्योधनने सिन्धुराज जयद्रथके मरनेसे अत्यन्त दुःखित होकर, अपने प्राणकी आशा छोडके मरनेकाही निश्चय करके पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ १२ ॥

नादयन्रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने शत्रुसेनाके वीरोंके संमुख जानेके समय रथकी घरघराहटसे पृथ्वीको कंपाते और दसों दिशाओंको अनुनादित करते हुए पाण्डवोंकी सेनाके बीच गमन किया ॥ १३ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत्सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥

भारत ! उस समय पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग राजा दुर्योधनका महाघोर संग्राम होने लगा, जो सब सेनाओंका महान् विनाश करनेवाला था ॥ १४ ॥

मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरोर्मिभिः ॥ १५ ॥

जब सेनाके मध्यभागमें खडे तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अपने बाणरूपी अग्निसे शत्रुसेनाके पुरुषोंको पीडित करने लगे, उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो दोपहरके सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणोंसे जगतके प्राणियोंको भस्म किये डालते हैं ॥ १५ ॥

न शेकुर्भारतं युद्धे पाण्डवाः समवेक्षितुम् ।
पलायने कृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥

उस समय पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष भरत कुल भूषण दुर्योधनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए। वे सम्पूर्ण योद्धा लोग शत्रुओंके जीतनेमें उत्साह रहित होकर रणभूमिमें दुर्योधनके संमुखसे भागनेमें तत्पर हुए ॥ १६ ॥

पर्यधावन्त पाञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ।
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन्पाण्डुसैनिकाः ॥ १७ ॥

महाराज ! पाञ्चाल योद्धा लोग धनुर्धारीयोंमें अग्रणी महात्मा दुर्योधनके सुवर्णमय पंख और चमकती हुई धारवाले चोखे बाणोंसे पीडित होके इधर उधर भागने लगे और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग भी राजा दुर्योधनके तीक्ष्ण बाणोंसे शीघ्रही मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १७ ॥

न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ।
यादृशं कृतवान्राजा पुत्रस्तव विशां पते ॥ १८ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने युद्धमें जैसा पराक्रम कर्म किया, तुम्हारी ओरके कोई पुरुष भी वैसे कर्मको करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ १८ ॥

पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ।
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्फुल्लपङ्कजा ॥ १९ ॥

जैसे मतवाला हाथी तालावमें फूले हुए कमलपुष्पोंके समूहको तोडके नष्ट कर देता है, वैसे ही तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन पाण्डवी सेनाके योद्धायोंको अपने बाणोंसे छिन्न भिन्न करके उनका नाश करने लगे ॥ १९ ॥

क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ।
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ॥ २० ॥

जैसे वायु और सूर्यके प्रभावसे मानो सूख जानेके कारण पद्मिनी कांतिसे रहित हो जाती है, वैसे ही पाण्डवोंकी सेना भी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके तेज तथा पराक्रमके प्रभावसे तेज रहित होगई ॥ २० ॥

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ।
भीमसेनपुरोगास्तु पाञ्चालाः समुपाद्रवन् ॥ २१ ॥

भारत ! भीमसेन और पाञ्चाल सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके अस्त्रोंसे अपनी सेनाके पुरुषोंका नाश होते देख, सब कोई मिलकर उनकी ओर दौडे ॥ २१ ॥

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ।
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ २२ ॥

उस समय दुर्योधनने भीमसेन आदि पाण्डवोंको अपनी ओर आते देखकर भीमसेनको दस, माद्रीपुत्र नकुल सहदेवको तीन तीन, विराट और द्रुपदको छः छः, शिखण्डीको सौ, ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ।
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ २३ ॥

धृष्टद्युम्नको सत्तर, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदी देशीय योद्धाओंको अनगिनत तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २३ ॥

सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
घटोत्कचं च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ २४ ॥

अनन्तर सात्यकिको पांच और द्रौपदीके पुत्रोंको तीन-तीन बाणोंसे विद्ध किया; फिर समरमें घटोत्कचको बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया ॥ २४ ॥

शतशश्चापरान्योधान्सद्विपाश्वरथान्रणे ।
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ २५ ॥

उस महावीर संग्रामके समय वह प्रजा समूहके नाश करनेवाले यमराजके समान क्रुद्ध होकर घोडे, हाथी और रथोंसहित सैंकडों दूसरे योद्धाओंको अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे खण्ड खण्ड करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ २५ ॥

तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ।
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ॥ २६ ॥

हे महाराज ! उस समय पाण्डवोंमें ज्येष्ठ राजा युधिष्ठिरने दोन भल्ल बाणोंसे शत्रुओंको विद्ध करनेवाले दुर्योधनका सुवर्णमय पृष्ठवाला विशाल धनुष तीन भागोंमें काट दिया ॥ २६ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ।
मर्माणि भित्त्वा ते सर्वे संभग्नाः क्षितिमाविशन् ॥ २७ ॥

और अच्छी तरह छोडे हुए अत्यन्त तीक्ष्ण दस बाणोंसे दुर्योधनको भी विद्ध किया । वे सब बाण दुर्योधनके मर्मोंको भेदकर पृथ्वीमें घुस गये ॥ २७ ॥

ततः प्रमुदिता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ।
वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरंदरम् ॥ २८ ॥

तब वृत्रासुरके हत्याके समय देवोंसे वेष्टित इन्द्रके समान राजा युधिष्ठिर भी अपने आनन्दित हुए योद्धाओंसे चारों ओरसे वेष्टित हुए ॥ २८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं परमदुर्वारं प्रेषयामास संयुगे ।
स तेन भृशसंविद्धो निषसाद रथोत्तमे ॥ २९ ॥

मारिष ! अनन्तर राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनपर युद्धमें एक अत्यन्त अनिवार्य बाण चलाया; उस बाणसे अत्यन्त विद्ध होकर वे अपने उत्तम रथमें बैठ गये ॥ २९ ॥

ततः पाञ्चालसैन्यानां भृशमासीद्रवो महान् ।
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ॥ ३० ॥

महाराज ! उस समय युद्धभूमिमें चारों ओरसे पाञ्चाल योद्धा लोग प्रसन्न होकर कहने लगे ' राजा दुर्योधन मारे गये ! ' इसी भांति चारों ओरसे तुमुल शब्द होने लगा ॥ ३० ॥

बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ।
अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ॥ ३१ ॥

और बाणोंके शब्दके सहित मिलकर महाघोर शब्द उत्पन्न हुआ । उस ही समय द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित युद्धभूमिमें वहांपर उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥

हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३२ ॥

और दुर्योधन भी सावधान होकर एक दृढ धनुष ग्रहण करके हर्ष पूर्वक पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरको ' खडा रह, खडा रह ! ' कहके उनकी ओर दौडे ॥ ३२ ॥

प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पाञ्चाला राजगृद्धिनः ।
तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्कुरुसत्तमम् ।
चण्डवातोद्धतान्मेघान्निघ्नन्रश्मिमुचो यथा ॥ ३३ ॥

तब पाञ्चाल योद्धालोग विजयकी इच्छासे शीघ्रताके सहित दुर्योधनकी ओर दौडे । जैसे प्रचण्ड वायुसे हिले हुए बादलोंको किरणधारी सूर्य वेगपूर्वक छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही द्रोणाचार्य कुरुराज दुर्योधनकी रक्षाके लिये यत्नवान् होकर दुर्योधनकी ओर आये हुए पाञ्चाल योद्धाओंको रोकके उनका वध करने लगे ॥ ३३ ॥

ततो राजन्महानासीत्संग्रामो भूरिवर्धनः ।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ५५६७ ॥

राजन् ! अनन्तर युद्धभूमिमें विजयकी इच्छा करनेवाले कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका महाघोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ३४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ॥ १२८ ॥ ५५६७ ॥

: १२९ :

धृतराष्ट्र उवाच

यत्तदा प्राविशत्पाण्डूनाचार्यः कुपितो वशी ।
उक्त्वा दुर्योधनं सम्यङ्मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! उस समय जब बलवान् द्रोणाचार्यने शासनको अतिक्रम करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनको योग्य बातें कहकर क्रुद्ध होकर पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश किया; ॥ १ ॥

प्रविश्य विचरन्तं च रणे शूरमवस्थितम् ।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २ ॥

और जब अत्यन्त पराक्रमी शूरवीर महाधनुर्धर द्रोणाचार्य शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करके रथमें बैठकर रणभूमिमें घूमने लगे, तब पाण्डवोंने किस भांतिसे उन्हें निवारण किया ? ॥ २ ॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महात्मनः ।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान्रणे ॥ ३ ॥

उस महा घोर संग्रामके समय जब महात्मा द्रोणाचार्य अनगिनत शत्रु सेनाके पुरुषोंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुए तब मेरी सेनाके किन किन योद्धाओंने उनके दहिने चक्र और कौनसे योद्धाओंने उनके बायें चक्रकी रक्षा की थी ? ॥ ३ ॥

नृत्यन्स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ४ ॥

संपूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य धूम्रकेतुके समान क्रुद्ध होकर रथके मार्गोंपर नृत्यसा करते हुए पाञ्चालोंकी सेनाको दग्ध करते थे, तो भी उनकी मृत्यु कैसी हुई ? ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच

सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च ।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ५ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! पृथापुत्र अर्जुन और महाधनुर्द्धर सात्यकि संध्याके समयमें जयद्रथका वध करनेके अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरसे भेट करके फिर युद्ध करनेके लिये द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पृथक्चमूभ्यां संसक्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ६ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र भीमसेन भी अलग अलग सेनाएं लेकर शीघ्रतासे द्रोणाचार्यकी ओर ही आक्रमणके लिये बढे ॥ ६ ॥

तथैव नकुलो धीमान्सहदेवश्च दुर्जयः ।
धृष्टद्युम्नः शतानीको विराटश्च सकेकयः ।
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि ॥ ७ ॥

इसी प्रकारसे द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्धकी इच्छा करके दुर्जय सहदेव, बुद्धिमान् नकुल, धृष्टद्युम्न, शतानीक और राजा विराट भी केकय, मत्स्य और शाल्व देशीय शूर वीरोंके सहित रणभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ७ ॥

द्रुपदश्च तथा राजा पाञ्चालैरभिरक्षितः ।
धृष्टद्युम्नपिता राजन्द्रोणमेवाभ्यवर्तत ॥ ८ ॥

राजन् ! इसके अतिरिक्त पाञ्चाल सेनासे रक्षित धृष्टद्युम्नके पिता पाञ्चालराज द्रुपदने भी द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ।
ससेनास्तेऽभ्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम् ॥ ९ ॥

द्रौपदीके महाधनुर्धर पांचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच ये सब कोई अपनी अपनी सेनाके सहित महा तेजस्वी द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

प्रभद्रकाश्च पाञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ १० ॥

प्रहार करनेकी विद्यामें निपुण छः हजार पाञ्चाल और प्रभद्रक योद्धालोग शिखण्डीको अगाडी करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ १० ॥

तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ।
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् ॥ ११ ॥

इससे अतिरिक्त पाण्डवोंकी सेनाके और भी दूसरे बहुतेरे महारथी योद्धालोग पुरुष शार्दूल ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके संमुख सामना करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ ११ ॥

तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ।
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जब वे सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकारसे युद्धभूमिमें इकट्ठे होकर संग्राम करनेमें प्रवृत्त हुए, तब कायरोंको भयभीत करनेवाली अत्यन्त भयङ्करी रात्रिका समय उपस्थित हुआ ॥ १२ ॥

योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ।
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ॥ १३ ॥

राजन् ! वह रात्रि सब योद्धाओंके लिये अकल्याणकारी, भयंकर, शूरवीरोंको यमराजके पास ले जानेवाली और अनगिनत हाथी, घोडे और मनुष्योंके प्राणोंका नाश करनेवाली थी ॥ १३ ॥

तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ।
न्यवेदयन्भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ॥ १४ ॥

उस महा भयङ्करी रात्रिके समय सियार अपने विकट मुखोंसे आग उगलते हुए चारों ओरसे डरावनी बोली बोलते हुए महाभयका विषय सूचित कराने लगे ॥ १४ ॥

उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ।
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणम् ॥ १५ ॥

विशेष करके कौरवोंकी सेनाके बीच नाना प्रकारके अपशकुन और आनेवाले महान् दारुण भयकी सूचना देनेवाले उल्लु आदि पक्षी भी दिखायी देते थे ॥ १५ ॥

ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ।
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! अनन्तर सेनाओंमें रणभेरीकी महान् आवाज, ढोल, मृदङ्ग और नगाडे आदि बाजोंके शब्द, ॥ १६ ॥

गजानां गर्जितैश्चापि तुरंगाणां च हेषितैः ।
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ १७ ॥

हाथियोंकी चिंघाड, घोडोंकी हिनहिनाहट और टापका शब्द भेरी आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंके सङ्ग मिलकर चारों ओर महाघोर तुमुल शब्द उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥

ततः समभवद्युद्धं संध्यायामतिदारुणम् ।
द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ १८ ॥

महाराज ! उस ही रात्रिके समय सब सृञ्जयोंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ १८ ॥

तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ।
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ॥ १९ ॥

उस समय महाघोर अन्धकारसे सम्पूर्ण दिशा छिप गयीं और वीरोंके पांवके ठोकरोंसे इतनी धूलि उडके आकाश मण्डलमें पूरित हो गयी कि उस समय किसीको कुछ भी न सूझ पडता था ॥ १९ ॥

×

नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ।
नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः ॥ २० ॥

परन्तु क्षणभरके अनन्तर हाथी, घोडे और मनुष्योंके रुधिर बहनेसे हम लोग मोहित होकर उस रणभूमिको धूलि रहित ही समझने लगे ॥ २० ॥

रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ।
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् ॥ २१ ॥

महाराज ! रात्रिके समय पर्वत पर बांसोंके जङ्गलोंके बीच अग्निके लगनेसे जैसा उन बांसोंके चटखनेका घोर शब्द उत्पन्न होता है, वैसे ही सेनाके शूरवीरोंके अस्त्रशस्त्रोंकी बार बार खटपटाहटसे रणभूमिके बीच महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ २१ ॥

नैव स्वे न परे राजन्प्राज्ञायन्त तमोवृते ।
उन्मत्तमिव तत्सर्वं बभूव रजनीमुखे ॥ २२ ॥

उस रात्रिके समय चारों ओर अन्धेरा छा रहा था इससे दोनों सेनाके पुरुष उन्मत्तके समान दिखाई देने लगे । अधिक क्या कहा जावे, उस समय अपनी सेना और शत्रुसेनाके कोई पुरुष भी नहीं चीन्ह पडते थे ॥ २२ ॥

भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रशामितम् ।
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ॥ २३ ॥

राजन् ! उसके अनन्तर जैसे रुधिर बहनेसे धूलिका उडना बन्द हो गया, वैसे ही शूरवीर पुरुषोंके सुवर्णभूषित वर्म और नाना प्रकारके आभूषणोंकी चमक दमकसे कुछ अन्धकार दूर हो गया ॥ २३ ॥

ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ।
द्यौरिवासीत्सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ॥ २४ ॥

भरतवर्षभ ! और उस समय रात्रिमें मणिरत्नोंसे और सुवर्णके अलंकारोंसे भूषित वह भारती सेना इस प्रकार शोभित होने लगी, जैसे नक्षत्रोंके समूहसे आकाश शोभायमान लगता है ॥ २४ ॥

गोमायुबडसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ।
दारुणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता ॥ २५ ॥

शक्ति आदि अस्त्र शस्त्र और ध्वजा पताकासे युक्त वह सेना कौवे कङ्क गिद्ध तथा सियारोंकी डरावनी बोली और हाथी घोडे शूरवीरोंके सिंहनाद और अस्त्र शस्त्रोंकी खटपटाहटके शब्दसे अत्यन्त ही भयानक मालूम होने लगी ॥ २५ ॥

ततोऽभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः।
समावृण्वन्दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिस्वनः ॥ २६ ॥

उस समय रोएंको खडा करनेवाला इस प्रकार महाघोर कोलाहल होने लगा, मानो सम्पूर्ण दिशाओंको स्तम्भित करके इन्द्रके वज्रका शब्द सुनाई दे रहा है ॥ २६ ॥

सा निशीथे महाराज सेनादृश्यत भारती।
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता ॥ २७ ॥

महाराज ! मध्य रात्रिके समयमें वह भारती सेना कवच, कुण्डल, स्वर्णमुद्रा तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रकाशित होकर अत्यन्त शोभित हुई ॥ २७ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः।
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ २८ ॥

और उस सेनाके बीच सुवर्णभूषित हाथियोंके समूह और रथ इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे बिजलीसे युक्त बादल शोभायमान लगते हैं ॥ २८ ॥

ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः।
संपतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः ॥ २९ ॥

शक्ति, ऋष्टि, गदा, बाण, मूशल, फरसे और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंके चलनेसे उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारों ओरसे अग्निकी वर्षा हो रही है ॥ २९ ॥

दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम्।
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ॥ ३० ॥
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम्।
शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ॥ ३१ ॥
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीविताच्छिदमप्लवाम्।
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ॥ ३२ ॥

महाराज ! अनन्तर सेनाके बीच द्रोणाचार्य और पाण्डवरूपी बादलोंका उदय हुआ; कुरुराज दुर्योधन उन बादलोंको अगाडी बढानेवाले वायुरूपी हुए; रथ और हाथी ही उस समय बादलरूपी बोध हुए, जुझाऊ बाजोंका शब्द ही उसमें बादल गर्जनके समान मालूम होने लगा, धनुष और ध्वजा बिजलीके समान दीख पडते थे। तलवार, शक्ति और गदा आदि अस्त्र उसमें वज्रके समान मालूम होते थे और लगातार बाणोंका चलाना ही उसमें जलवर्षाके समान बोध होने लगा। अस्त्र ही पवनके समान प्रतीत होते थे। सर्दी और गर्मीसे व्याप्त, अत्यन्त विस्मयमें डालनेवाली और प्राणोंका नाश करनेवाली वह उग्र सेना थी। युद्धकी अभिलाषा करनेवाले शूरवीर पुरुषोंने उस महाघोर भयङ्कर दुःखसे तरने योग्य भारती सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ३०-३२ ॥

तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिने ।
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ॥ ३३ ॥

शूरवीरोंका हर्ष और कायरोंका भय बढानेवाली महाघोर कोलाहल युक्त भयङ्कर रात्रिके समय दोनों सेनाके पुरुषोंका दारुण युद्ध होने लगा ॥ ३३ ॥

रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन्क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ॥ ३४ ॥

जब वह अत्यंत भयंकर और दारुण रात्रिका युद्ध चल रहा था तब पाण्डव और सृञ्जय लोग मिलकर क्रोधपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ३४ ॥

ये ये प्रमुखतो राजन्न्यवर्तन्त महात्मनः ।
तान्सर्वान्विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ ५६०२ ॥

राजन् ! परन्तु जो वीरपुरुष उस समय महात्मा द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित हुए, द्रोणाचार्यने उन सम्पूर्ण योद्धाओंको युद्धभूमिसे विमुख कर दिया और कितने ही शूरवीरोंका बध करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३५ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२९ ॥ ५६०२ ॥

: १३० :

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! युद्धभूमिमें महापराक्रमी, अत्यन्त बलवान धनुर्धारी द्रोणाचार्यने जब क्रोधपूर्वक सृञ्जयोंकी सेनामें प्रवेश किया, उस समय तुम लोगोंका चित्त कैसा हुआ था ? ॥ १ ॥

दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत्प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

और आज्ञाका अतिक्रम करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनसे योग्य बातें कहकर जब अमेयात्मा द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश किया, उस समय पृथापुत्र अर्जुनने किस कार्यका अनुष्ठान किया ? ॥ २ ॥

निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव हि ।
यदभ्यगान्महातेजाः पाञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥

क्योंकि युद्धमें अपराजित महातेजस्वी द्रोणाचार्य सिन्धुराज जयद्रथ और वीर भूरिश्रवाके मारे जानेपर क्रुद्ध होकर पाञ्चाल सेनाकी ओर दौड़े थे ॥ ३ ॥

किममन्यत दुर्धर्षः प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४ ॥

इससे जब उन पराक्रमी शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया, तब दुर्योधनने भी उस समयके अनुसार किस कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान किया था ? ॥ ४ ॥

के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन्वीराः शूरस्य युध्यतः ।
के पुरस्तादयुध्यन्त निघ्नतः शात्रवान्रणे ॥ ५ ॥

उन वरदायक वीर ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पीछे मेरी ओरके कौन कौन योद्धा गये थे ? और उन शूरवीरके युद्ध करनेके समय कौनसे योद्धा उनके पृष्ठरक्षामें नियुक्त हुए थे ? फिर रणभूमिके बीच जब वह शत्रुओंके संहार करनेमें प्रवृत्त हुए तब पाण्डवोंकी सेनाके कौन कौन वीर उनके संमुख उपस्थित हुए ? ॥ ५ ॥

मन्येऽहं पाण्डवान्सर्वान्भारद्वाजशरार्दितान् ।
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इवाभिभो ॥ ६ ॥

मुझे बोध होता है, जैसे शिशिर ऋतुमें शीतसे कांपते हुए दुबली गौवोंका समूह कम्पित होता है, वैसे ही भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर पाण्डव लोग भी कांपने लगे होंगे ॥ ६ ॥

प्रविश्य स महेष्वासः पाञ्चालानरिमर्दनः ।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ७ ॥

वह शत्रुओंका नाश करनेवाले, पुरुष शार्दूल, महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य पाञ्चाल सेनाके बीच प्रवेश करके किस प्रकार मारे गये ? ॥ ७ ॥

सर्वेषु सैन्येषु च संगतेषु रात्रौ समेतेषु महारथेषु ।
संलोड्यमानेषु पृथग्विधेषु के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥

उस रात्रिके समय जब युद्धके निमित्त रणभूमिमें अपनी सेना सहित इकट्ठे हुए महारथ योद्धा लोग इधर उधर अपने समान वीरोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होकर चारों ओर शत्रुसेनाको तितर बितर करने लगे, उस समय तुम बुद्धिमान् लोगोंके चित्तमें कैसा विचार उत्पन्न हुआ था ? ॥ ८ ॥

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥

तुम कहते हो कि मेरी ओरके योद्धा लोग उस रात्रिके समय बहुतेरे मारे गये, कितने ही युद्धभूमिसे भागे, कितने ही पराजित हुए और रथियोंकी सेनाके बीच कितने ही रथभ्रष्ट होगये थे ॥ ९ ॥

कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् ।
प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु संजय ॥ १० ॥

हे सञ्जय ! उस रात्रिके समय युद्धसे पीछे न हटनेवाले पाण्डवोंकी सेनामें और कौरवोंकी सेनामें भी कैसे प्रकाश हुआ, वह तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १० ॥

संजय उवाच

रात्रियुद्धे तदा राजन्वर्तमाने सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन्रात्रौ पाण्डवाः सहसैनिकाः ॥ ११ ॥

संजय बोले– महाराज ! जब उस रात्रिके समय भयङ्कर संग्राम होने लगा तब पाण्डव लोग अपनी सेनाओंके सहित मिलकर द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ११ ॥

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ।
प्रेषयन्मृत्युलोकाय सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १२ ॥

परन्तु द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके सब पुत्रों और केकय देशीय वीरोंको वेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे मार कर उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ १२ ॥

तस्य प्रमुखतो राजन्येऽवर्तन्त महारथाः ।
तान्सर्वान्प्रेषयामास परलोकाय भारत ॥ १३ ॥

भारत ! जब महारथी उनके सामने आये, उन सबको द्रोणने परलोकमें भेज दिया ॥ १३ ॥

प्रमथ्नन्तं तदा वीरं भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजन्प्रतापवान् ॥ १४ ॥

महाराज ! जब महारथी भरद्वाज पुत्र वीर द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंका इस प्रकार नाश करने लगे, तब प्रतापवान् शिबिराज क्रुद्ध होकर उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ १४ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् ।
विव्याध दशभिर्द्रोणः सर्वपारशवैः शरैः ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धा शिबिराजको अपने संमुख आते देख, संपूर्ण लोहमय दस बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ १५ ॥

तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥ १६ ॥

शिबिराजने भी तीस तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके, फिर स्मित पूर्वक उनके सारथीको एक भल्लसे मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १६ ॥

तस्य द्रोणो हयान्हत्वा सारथिं च महात्मनः ।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १७ ॥

तब द्रोणाचार्यने महात्मा शिबिराजके सारथी और घोडोंका बध करके फिर उनके शिरस्त्राण भूषित सिरको धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १७ ॥

कलिङ्गानां च सैन्येन कलिङ्गस्य सुतो रणे ।
पूर्वं पितृबधात्क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥

पहिले भीमसेनने कलिङ्गराजका बध किया था, इसही कारण इस समय कलिङ्गराजके पुत्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी सेनाके सहित भीमसेनकी ओर दौडे, ॥ १८ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विशोकं त्रिभिराजघ्ने ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ १९ ॥

कलिङ्गराजपुत्रने भीमसेनको पहिले पांच बाणोंसे विद्ध करके फिर सात बाणोंसे विद्ध किया। अनन्तर फिर उन्होंने तीन बाणोंसे भीमसेनके सारथी विशोकको और एक बाणसे उनके रथकी ध्वजाको विद्ध किया ॥ १९ ॥

कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाभिजघान ह ॥ २० ॥

तब भीमसेन क्रुद्ध होके अपने रथसे कूदके क्रोधी कलिङ्गराज पुत्रके रथ पर जा चढे और उस क्रोधी वीर राजपुत्रके शरीरमें मुष्टिकासे प्रहार किया ॥ २० ॥

तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा ।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन्वै पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥

युद्धमें बलवान् पाण्डुपुत्र भीमकी मुष्टिकाप्रहारसे कलिङ्गराजपुत्रकी सारी हड्डियां सहसा चूर चूर हो पृथक् पृथक् गिर गयीं ॥ २१ ॥

तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त महारथाः ।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २२ ॥

भीमसेनका वैसा कर्म देखकर कर्ण और उसके महारथी भाइयोंसे वह न सहा गया, वे सब कोई मिलकर विषधर सर्पोंके समान तीक्ष्ण नाराचोंसे भीमसेनके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २२ ॥

ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः ।
ध्रुवं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ।
स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिना निहतोऽपतत् ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर भीमसेन अपने शत्रु कलिङ्ग राजपुत्रके रथको त्यागकर दूसरे शत्रु ध्रुवके रथपर जा चढे; ध्रुव लगातार भीमके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, परन्तु बलवान् भीमसेनने एक मुष्टिकाके प्रहारसे उन्हें भी चेत रहित करके पृथ्वीमें गिराया; ॥ २३ ॥

तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ।
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत् ॥ २४ ॥

महाराज ! महाबली भीमसेन ध्रुवका वध करके जयरातके रथपर जा चढे और बार बार सिंहनाद शब्दके सहित गर्जने लगे ॥ २४ ॥

जयरातमथाक्षिप्य नदन्सव्येन पाणिना ।
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितम् ॥ २५ ॥

अनन्तर गर्जना करते हुए ही भीमसेनने जयरातको बायें हाथसे उठाकर एक ही थप्पडसे कर्णके संमुखहीमें उन्हें प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिराया ॥ २५ ॥

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ।
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन्पाण्डुनन्दनः ॥ २६ ॥

तब कर्णने एक सुवर्णभूषित शक्ति ग्रहण करके भीमसेनकी ओर चलायी; परंतु पाण्डुपुत्र भीमसेनने हंसते हुए ही उसे हाथसे पकड लिया ॥ २६ ॥

कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः ।
तामन्तरिक्षे चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना ॥ २७ ॥

दुर्धर्ष वीर भीमसेनने युद्धमें उस शक्तिको फिर कर्णहीकी ओर चलाया। शकुनिने उस शक्तिको सहसा कर्णकी ओर आती देख उत्तम पानीसे बुझे हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अन्तरिक्षमें ही काटके गिरा दिया ॥ २७ ॥

ततस्तव सुता राजन्भीमस्य रथमाव्रजन् ।
महता शरवर्षेण छादयन्तो वृकोदरम् ॥ २८ ॥

राजन् ! तब तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके रथको घेर लिया और अपने बाणोंकी भारी वर्षासे उन्हें छिपाने लगे ॥ २८ ॥

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे ।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावपुप्लुवे ॥ २९ ॥

अनन्तर भीमसेनने हंसकर युद्धकी भूमिमें दुर्मदके घोडे और सारथीका अपने बाणोंसे वध करके यमलोकमें भेजा । तब दुर्मद अपने भाई दुष्कर्णके रथपर चढ गये ॥ २९ ॥

तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ।
संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावभ्यधावताम् ।
यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ३० ॥

जैसे देवासुर संग्राममें मित्र और वरुण दैत्यसत्तम तारककी ओर दौडे थे, वैसे ही शत्रुनाशन वे दोनों भाई युद्धभूमिमें एक ही रथपर चढके भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ३० ॥

ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ३१ ॥

इसी भांतिसे एक ही रथपर चढे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्मद और दुष्कर्ण अपने बाणोंके समूहसे भीमसेनको विद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥

ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च ।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीकके सम्मुखहीमें शत्रुदमन पाण्डुपुत्र भीमसेनने ॥ ३२ ॥

दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम् ।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिंदमः ॥ ३३ ॥

वीर दुर्मद और दुष्कर्णके उस रथको अपने चरण प्रहारसे खण्ड खण्ड करके पृथ्वीमें धंसा दिया ॥ ३३ ॥

ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ ।
मुष्टिनाहत्य संक्रुद्धो ममर्द चरणेन च ॥ ३४ ॥

अनन्तर क्रुद्ध हुए भीमसेनने तुम्हारे बलवान्, पराक्रमी वीर पुत्र दुर्मद और दुष्कर्णको मुष्टिकाके प्रहारसे मारकर मसल डाला और वे सिंहनाद करने लगे ॥ ३४ ॥

ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाब्रुवन् ।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु गृध्यति ॥ ३५ ॥

सेनाके पुरुष भीमसेनके ऐसे कठिन कार्यको देखकर हाहाकार शब्दके सहित महाघोर कोलाहल करने लगे । राजा लोग कहने लगे, ये निश्चय ही साक्षात् रुद्र हैं, और भीमरूप धारण करके धृतराष्ट्र पुत्रोंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

×

एवमुक्त्वापलायन्त सर्वे भारत पार्थिवाः ।
विसंज्ञावाहयन्वाहान्न च द्वौ सह धावतः ॥ ३६ ॥
राजा लोग ऐसे ही वचन कहते हुए अचेत होके अपने वाहनोंको चलाकर युद्धभूमिसे भागने लगे । अधिक क्या कहा जावे, उस समय तुम्हारी सेनाके दो पुरुष एक सङ्ग मिलके गमन न कर सके ॥ ३६ ॥

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः ।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली ॥ ३७ ॥
उस रात्रिके समय जब तुम्हारी सेना अत्यन्त भयभीत हो इस प्रकारसे छिन्न भिन्न हो गई, तब कमलके समान प्रफुल्लित नेत्रवाले महाबलवान् भीमसेनने मुख्य मुख्य राजाओंमें प्रशंसित होकर अपनी सेनाके सहित धर्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित होके उन्हें प्रणाम किया ॥ ३७ ॥

ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः ।
वृकोदरं भृशमभिपूजयंश्च ते यथान्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ३८ ॥
धर्मपुत्र युधिष्ठिर नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट और केकय आदि देशोंके सम्पूर्ण राजा लोग भीमसेनका वैसा कठिन कार्य देखकर अत्यन्त हर्षित हुए और जैसे अन्धकासुरका नाश करनेपर देवताओंने महादेवकी पूजा की थी, वैसे ही उन सम्पूर्ण राजाओंने भीमसेनका अत्यन्त ही सम्मान किया ॥ ३८ ॥

ततः सुतास्तव वरुणात्मजोपमा रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना ।
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ३९ ॥
अनन्तर वरुणपुत्रके समान पराक्रमी तुम्हारे सब पुत्र लोग पाण्डवोंको हर्षित देखकर बहुत ही क्रोधित हुए और हाथी, घोडे, रथ तथा पैदल चलनेवाले योद्धाओंकी चतुराङ्गिणी सेनाके सहित महात्मा गुरु द्रोणाचार्यको अगाडी करके युद्धके लिये दृढताके साथ वेगपूर्वक चारों ओरसे भीमसेनको घेर कर खडे हो गये ॥ ३९ ॥

ततोऽभवत्तिमिरघनैरिवावृतं महाभये भयदमतीव दारुणम् ।
निशामुखे बडवृकगृध्रमोदनं महात्मनां नृपवरयुद्धमद्भुतम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ ५५४२ ॥

अनन्तर उस महाघोर अन्धकारसे युक्त रात्रिके समय कौवे, गिद्ध और भेडिये आदि मांसभक्षी जीवोंके हर्षको बढानेवाले महात्मा क्षत्रियोंका आपसमें महाघोर भयङ्कर अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ ४० ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३० ॥ ५६४२ ॥

: १२१ :

सञ्जय उवाच

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना ततः ।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! जयद्रथवधके समय प्रायोपवेशन करके युद्धभूमिके बीच पृथ्वीपर बैठे हुए सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा सात्यकिके हाथसे मारे गये थे; इस समय भूरिश्रवाके पिता सोमदत्त सात्यकिके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें यह बचन कहने लगे ॥ १ ॥

क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः ।
तं त्वं सात्वत संत्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः ॥ २ ॥

हे सात्यकि ! पहिले महात्माओं और देवताओंसे जिस प्रकार क्षत्रियोंका धर्म निश्चित किया गया है; तुम उस धर्मको छोडके क्यों डाकुओंके धर्ममें रत हुए ? ॥ २ ॥

पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय याचते ।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥ ३ ॥

क्षत्रियधर्ममें निष्ठावान् बुद्धिमान् पुरुष रणभूमिसे विमुख, दीन, याचक और अस्त्ररहित पुरुषके ऊपर समरमें कैसे शस्त्रसे प्रहार कर सकता है ? ॥ ३ ॥

द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत ॥ ४ ॥

विशेष करके वृष्णिवंशियोंके बीच तुम और महाबाहु प्रद्युम्न दो ही महारथी युद्धके लिये विख्यात हैं ॥ ४ ॥

कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे ।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि ॥ ५ ॥

तब तुमने किस भांति अर्जुनके बाणोंसे भुजा कटनेपर प्रायोपवेशनके लिये रणभूमिके बीच बैठे हुए मेरे पुत्र भूरिश्रवाके ऊपर नीच पुरुषोंकी भांति प्रहार करके नरकमें गमन करनेका कार्य किया है ? ॥ ५ ॥

शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च ।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम् ॥ ६ ॥

सात्वत् ! मैं अपने पुत्रोंकी और यज्ञ तथा उत्तम कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूं कि, यदि आज रात्रि बीतनेके पहले ही अपनेको वीर माननेवाले तुम्हें ॥ ६ ॥

अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् ।
न हन्यां निरये घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥ ७ ॥

अरे वृष्णिकुलकलङ्क पृथापुत्र अर्जुनसे अरक्षित रहनेपर पुत्रों और भाईयोंके सहित मार डालूंगा; यदि तुम्हारा वध न कर सकूं तो मैं अवश्य ही महाघोर नरकमें पतित होऊंगा ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः ।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च ॥ ८ ॥

महाबली सोमदत्तने ऐसा वचन कहके अत्यंत क्रोधपूर्वक जोरसे शंख बजाकर सिंहनाद किया ॥ ८ ॥

ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो महाबलः ।
सात्वतो भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥

अनन्तर कमल नेत्रवाले और सिंहके समान दांतवाले बलवान् सात्यकि अत्यन्त क्रुद्ध होकर सोमदत्तसे इस प्रकार बोले, ॥ ९ ॥

हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः ।
शलश्चैव तथा राजन्भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ १० ॥

राजन् ! जैसे तुम्हारे वीर महारथी पुत्र भूरिश्रवाके मरनेसे उनके भाई शलने भी भ्रातृ-शोकसे पीडित होकर यमलोकमें गमन किया है; ॥ १० ॥

त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सपुत्रपशुबान्धवम् ।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि विशेषतः ॥ ११ ॥

आज मैं तुम्हें भी पशुबान्धव और पुत्रोंके सहित मार डालूंगा; तुम कुरुकुलमें उत्पन्न हुए हो, विशेष करके महारथी योद्धा कहके विख्यात हो; इस समय यत्नवान् होकर युद्धभूमिमें स्थित रहो ॥ ११ ॥

यस्मिन्दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा ।
अनपायीनि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥ १२ ॥

जिन महाराज युधिष्ठिरमें दान, इन्द्रियनिग्रह, सदाचार, अहिंसा, लज्जा, धैर्य और क्षमा आदि सम्पूर्ण गुण सदा निवास करते हैं; ॥ १२ ॥

मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा ।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशं समुपेष्यसि ॥ १३ ॥

जिनके रथकी ध्वजा पर मृदङ्गके चिह्न लगे हैं; उन धर्मराज युधिष्ठिरके तेजसे ही तुम पहिले-सेही मृत-प्राय हो गये हो; इस समय कर्ण और शकुनिके सहित तुम संग्रामभूमिमें केवल मृत्युके मुखमें गमन करोगे ॥ १३ ॥

शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह ।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ।
अपयास्यसि चेत्त्यक्त्वा ततो मुक्तो भविष्यसि ॥ १४ ॥

यदि तुम युद्धमें हटके रणभूमिसे भाग जाओगे तभी मेरे हाथसे बच सकोगे, नहीं तो मैं युद्धभूमिमें क्रुद्ध होकर यदि पुत्रोंके सहित तुम्हारा नाश न करूं तो मैं श्रीकृष्णके चरण और अपने सुकृत आदि कर्मोंकी शपथ करके कहता हूं कि, ऐसा न करनेसे मुझे नरकमें जाना पडेगा ॥ १४ ॥

एवमाभाष्य चान्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
प्रवृत्तौ शरसंपातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ ॥ १५ ॥

पुरुषश्रेष्ठ सोमदत्त और सात्यकि आपसमें ऐसे ही वचन कहके क्रोधसे आंखें लाल करके उन्होंने एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा शूरू कर दी ॥ १५ ॥

ततो गजसहस्रेण रथानामयुतेन च ।
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य व्यवस्थितः ॥ १६ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन एक हजार हाथी और दस हजार रथी योद्धा लेकर सोमदत्तको घेर कर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ १६ ॥

शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः ।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ १७ ॥

सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें मुख्य, वज्रके समान शरीरवाले तुम्हारे साले महाबाहु युवा शकुनि भी अत्यन्त क्रुद्ध हो इन्द्रके समान पराक्रमी पुत्र पौत्र और भाइयोंके सहित उस ही स्थानपर स्थित हुए ॥ १७ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात्पर्यरक्षत ॥ १८ ॥

अनन्तर बुद्धिमान् शकुनिकी ओरसे एक लाख घुडसवार महाधनुर्द्धर सोमदत्तको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १८ ॥

रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम् ।
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा संनतपर्वभिः ।
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ॥ १९ ॥

इस प्रकार राजा सोमदत्त अनेक मुख्य मुख्य बलवान् शूरवीरोंके रक्षित होकर अपने बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपाने लगे । तब सात्यकिको सोमदत्तके नतपर्व तीक्ष्ण बाणोंसे आच्छादित होते देखकर धृष्टद्युम्न क्रोधपूर्वक अपनी बडी सेनाके सहित वहां पर उपस्थित हुए ॥ १९ ॥

चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ।
आसीद्राजन्बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ २० ॥

महाराज ! उस समय जब दोनों सेनाके योद्धा लोग आपसमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे; तब ऐसा शब्द सुनाई देने लगा; जैसे प्रचण्ड वायुके चलनेसे समुद्रोंकी प्रबल लहरोंका शब्द सुन पडता है ॥ २० ॥

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ।
सात्यकिर्दशभिश्चैनमवधीत्कुरुपुंगवम् ॥ २१ ॥

अनन्तर सोमदत्तने नौ बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया; सात्यकिने भी कौरवोंमें मुख्य सोमदत्तको दस बाणोंसे घायल किया ॥ २१ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्वना ।
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ॥ २२ ॥

सोमदत्त दृढ धनुर्धारी बलवान् सात्यकिके बाणोंसे युद्धमें अत्यन्त विद्ध हुए और मूर्च्छित होकर रथका दण्ड पकडके रथमें बैठ गये ॥ २२ ॥

तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरयान्वितः ।
अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महारथम् ॥ २३ ॥

तब उनके रथका सारथी अपने स्वामी महारथी वीर सोमदत्तको मूर्च्छित हुआ देखकर शीघ्रताके सहित उन्हें रणभूमिसे दूर ले गया ॥ २३ ॥

तं विसंज्ञं समालोक्य युयुधानशरार्दितम् ।
द्रौणिरभ्यद्रवत्क्रुद्धः सात्वतं रणमूर्धनि ॥ २४ ॥

सोमदत्तको सात्यकिके बाणोंसे पीडित तथा मूर्च्छित हुआ देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर युद्धमें सात्यकिके ऊपर आक्रमणके लिये दौडे ॥ २४ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ।
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २५ ॥

अत्यंत क्रुद्ध हुए भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने अश्वत्थामाको शिनिपौत्र सात्यकिकी ओर गमन करते देखकर, अपने शत्रुको रोका ॥ २५ ॥

कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मावृतं महत् ।
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वा गजैः ॥ २६ ॥

घटोत्कचका रथ लोहमय काले वर्मसे युक्त, काले ऋक्षके चमडेसे मढा हुआ भयंकर था; उसके उस बडे रथमें हाथीके आकारवाले विचित्र वाहन जुते हुए थे; परन्तु वे वाहन हाथी थे और न घोडे ही थे ॥ २६ ॥

विक्षिप्तमष्टचक्रेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रिततुण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ २७ ॥

उस रथकी ऊंची ध्वजा पर विशाल शरीरवाला एक बडा गिद्ध बैठकर आठ चक्र फैलाकर आंखें फाडकर देखता और कूजता हुआ शोभित होता था ॥ २७ ॥

लोहितार्द्रपताकं तमन्त्रमालाविभूषितम् ।
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् ॥ २८ ॥

घटोत्कच रुधिरमें भींगी हुई पताकासे युक्त और आंतोंकी मालासे वेष्टित उस ही आठ चक्रोंसे युक्त बडे रथपर बैठा हुआ था ॥ २८ ॥

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ।
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः ॥ २९ ॥

त्रिशूल, मुद्गर पत्थर और वृक्ष हाथोंमें ग्रहण करनेवाले भयानक स्वरूपसे युक्त एक अक्षौहिणी राक्षसी सेनासे घिरा हुआ था ॥ २९ ॥

तमुद्यतमहाचापं निशाम्य व्यथिता नृपाः ।
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥ ३० ॥

तुम्हारी ओरके राजा लोग घटोत्कचको हाथमें प्रचण्ड धनुष ग्रहण किये हुए प्रलयकालके दण्डधारी यमराजकी भांति देखकर व्यथित हो गये ॥ ३० ॥

भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ३१ ॥

तुम्हारे पुत्रकी सेना भयसे पीडित और क्षुब्ध हो गयी, जैसे वायुके वेगसे गंगामें भंवरें और ऊंची तरंगें उठी हों ॥ ३१ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ३२ ॥

उस समय घटोत्कचके सिंहनादसे हाथी, घोडे आदि सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होकर मलमूत्र त्याग करने लगे और मनुष्यलोग भी अत्यन्त ही पीडित हुए ॥ ३२ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः ।
संध्याकालाधिकबलैः प्रमुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ३३ ॥

अनन्तर रात्रिके कारण राक्षस लोग अधिक बलवान् होकर पराक्रम प्रकाशित करके चारों ओरसे पत्थरोंकी भारी वर्षा पृथ्वीपर करने लगे ॥ ३३ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्डयः प्रासतोमराः ।
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ३४ ॥

और लौहमय चक्र, भुशुण्डि, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र शस्त्र लगातार चारों ओरसे तुम्हारी सेनाके ऊपर पडने लगे ॥ ३४ ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥ ३५ ॥

उस अत्यन्त भयङ्कर उग्र संग्रामको देखकर सम्पूर्ण राजा तुम्हारे पुत्र लोग और कर्ण आदि सम्पूर्ण वीर कातर होकर चारों ओर दौडने लगे ॥ ३५ ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे ।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ३६ ॥

उस रणभूमिके बीच अपने अस्त्र बलमें अत्यन्त प्रशंसित और अभिमानी अकेले अश्वत्थामाने निर्भय चित्तसे स्थित होकर, घटोत्कचकी रची हुई सम्पूर्ण मायाको अपने बाणोंके प्रभावसे नष्ट किया ॥ ३६ ॥

निहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान्घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥ ३७ ॥

माया नष्ट होनेसे घटोत्कच क्रुद्ध होकर महाघोर बाणोंकी वर्षा करने लगा । वे सम्पूर्ण बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये ॥ ३७ ॥

भुजगा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्छिताः ।
ते शरा रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ।
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ३८ ॥

जैसे सर्प क्रोधसे मूर्च्छित होकर बिलके भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे ही घटोत्कचके चलाये शिलापर तेज किये स्वर्णपंखवाले शीघ्रगामी चोखे बाण अश्वत्थामाके शरीरको भेदकर रुधिर लिपटे हुए पृथ्वीमें घुस गये ॥ ३८ ॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ।
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः ॥ ३९ ॥

तब प्रतापी अश्वत्थामाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हस्तलाघवके सहित दस बाणोंसे क्रोधी घटोत्कचके शरीरको भेद किया ॥ ३९ ॥

घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ।
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ॥ ४० ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे मर्मस्थानोंमें गहरी चोट होनेके कारण घटोत्कच अत्यन्त व्यथित हुआ; अनन्तर उसने एक लाख एरवाला एक चक्र ग्रहण किया ॥ ४० ॥

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ।
अश्वत्थाम्नस्तु चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ॥ ४१ ॥

भीमसेनपुत्र घटोत्कचने क्रोधके वशमें होकर बालसूर्यके समान प्रकाशमान, मणि और हीरोंसे विभूषित, क्षुरधारवाले उस चक्रको उठाकर अश्वत्थामाका वध करनेकी इच्छासे उसके ऊपर चलाया ॥ ४१ ॥

वेगेन महता गच्छद्विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ।
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघं न्यपतद् भुवि ॥ ४२ ॥

जैसे भाग्यहीन मनुष्यका सङ्कल्प निष्फल हो जाता है, वैसे ही महावेगपूर्वक घटोत्कचके हाथसे छूटा हुआ वह चक्र द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंके प्रभावसे उलटके पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ४२ ॥

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ।
द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ४३ ॥

फिर अपने चक्रको पृथ्वीमें गिराया हुआ देख घटोत्कचने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको अपने बाणोंसे इस प्रकार छिपा दिया, जैसे राहु सूर्यको आच्छादित करता है ॥ ४३ ॥

घटोत्कचसुतः श्रीमान्भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥ ४४ ॥

जैसे गिरिराज हिमालय वायुकी गतिको रोक देता है, वैसे ही कज्जल–गिरि पर्वतके समान काले रूपवाले घटोत्कचपुत्र पराक्रमी अञ्जनपर्वाने अश्वत्थामाको संमुख आते देख निवारण किया ॥ ४४ ॥

पौत्रेण भीमसेनस्य शरैः सोऽञ्जनपर्वणा ।
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवार्दितः ॥ ४५ ॥

अश्वत्थामा भीमसेनके पौत्र अञ्जनपर्वाके बाणोंकी वर्षासे आच्छादित होकर इस प्रकार शोभित हुए, जैसे जलधाराकी वर्षासे सुमेरुगिरि शोभित होता है ॥ ४५ ॥

अश्वत्थामा त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ।
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः ॥ ४६ ॥

अनन्तर रुद्र, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी महावीर अश्वत्थामाने निर्भय चित्तसे एक तीक्ष्ण बाण छोडकर अञ्जनपर्वाके रथकी ध्वजाको काट दिया ॥ ४६ ॥

×

द्वाभ्यां तु रथयन्तारं त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४७ ॥

फिर अश्वत्थामाने दो बाणोंसे उसके सारथी, चार बाणोंसे उसके चारों घोडोंका वध करके तीन बाणोंसे उसके रथकी त्रिवेणु और एक बाणसे उसके हाथमें स्थित धनुषको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४७ ॥

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ।
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाकरोत् ॥ ४८ ॥

फिर रथहीन हुए राक्षसपुत्रके हाथसे उठे हुए सुवर्णभूषित तलवारको अश्वत्थामाने एक तेज बाणसे दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया ॥ ४८ ॥

गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बसूनुना ।
आम्येोत्क्षिप्ता शरैः सापि द्रौणिनाभ्याहताऽपतत् ॥ ४९ ॥

राजन् ! तलवार कटनेपर अञ्जनपर्वाने शीघ्रताके सहित सुवर्णतार खचित एक गदा उठायी और घुमाकर अश्वत्थामाकी ओर चलायी; वह गदा भी अश्वत्थामाके बाणोंसे निवारित होकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ ४९ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ।
ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ॥ ५० ॥

अनन्तर अञ्जनपर्वाने आकाशमें उछलकर प्रलयकालके बादलके समान गर्जते हुए अश्वत्थामाके ऊपर आकाशसे वृक्षोंकी वर्षा आरंभ कर दी ॥ ५० ॥

ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ।
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ॥ ५१ ॥

जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे बादलोंके समूहको भेद करता है, वैसे ही अश्वत्थामाने उस आकाश स्थित मायाधारी घटोत्कच पुत्रको अपने तेज बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५१ ॥

सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ।
महीधर इवात्युच्चः श्रीमानञ्जनपर्वतः ॥ ५२ ॥

कज्जलगिरिके समान भयंकर मूर्त्तिवाला तेजस्वी अञ्जनपर्वा आकाशसे उतरके फिर सुवर्ण-भूषित रथमें स्थित हुआ; ॥ ५२ ॥

तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ।
जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् ॥ ५३ ॥

तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने लोहमयी वर्म धारण करनेवाले उस भीमपौत्र अञ्जनपर्वाको इस भांतिसे प्राणरहित कर दिया, जैसे महादेवने अन्धकासुरका नाश किया था ॥ ५३ ॥

अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ।
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात्प्रचलिताङ्गदः ॥ ५४ ॥

उस समय अपने महाबलवान् पुत्र अञ्जनपर्वाको अश्वत्थामासे मारा गया देख, तेजस्वी बाहुभूषण धारण करनेवाला घटोत्कच अत्यंत क्रुद्ध होकर अश्वत्थामाके समीप आकर ॥ ५४ ॥

प्राह वाक्यमसंभ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ।
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोद्धतम् ॥ ५५ ॥

बढे हुए दावानलके समान पाण्डवसेनारूपी वनको भस्म करते हुए उस वीर कृपीपुत्रसे निर्भय चित्तसे यह वचन कहने लगा ॥ ५५ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ॥ ५६ ॥

हे द्रोणपुत्र ! खडे रहो ! आज तुम मेरे सम्मुखसे जीते जी किसी प्रकारसे भी मुक्त न हो सकोगे। जैसे अग्निपुत्र स्वामि कार्त्तिकने क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण किया था, आज मैं भी उस ही भांतिसे तुम्हारे शरीरको विदीर्ण करूंगा ॥ ५६ ॥

अश्वत्थामोवाच

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ।
न हि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यं प्रबाधितुम् ॥ ५७ ॥

अश्वत्थामा बोले— हे देवताओंके समान पराक्रमी तात ! हे हिडम्बापुत्र ! जाओ, दूसरोंके सङ्ग युद्ध करो; क्योंकि मैं तुम्हारे पिताके समान हूं, इससे पिताके सङ्ग पुत्रको युद्धमें प्रवृत्त होना उचित नहीं है ॥ ५७ ॥

कामं खलु न मे रोषो हैडिम्बे विद्यते त्वयि ।
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत ॥ ५८ ॥

मैं अपने अन्तःकरणसे निश्चय करके यह वचन कहता हूं, कि तुम्हारे ऊपर मुझे तनिक भी क्रोध नहीं है, परन्तु जब प्राणी क्रोधके वशमें होते हैं, तब अपने आत्मीय पुरुषोंके नाश करनेमें भी मुंह नहीं मोडते ॥ ५८ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वैतत्क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ।
अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ॥ ५९ ॥

सञ्जय बोले— पुत्रशोकसे कातर भीमसेनपुत्र घटोत्कचने अश्वत्थामाके ऐसे वचनोंको सुनकर क्रोधसे नेत्र लाल करके रोसपूर्वक उससे उत्तर दिया ॥ ५९ ॥

किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाहवे।
भीमात्खल्वहमुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ६० ॥

हे द्रोणपुत्र ! क्या मैं साधारण पुरुषोंकी भांति युद्धसे कातर हुआ हूं ? तुम इस बातको जानते हो, कि मैं इस विशाल कौरवकुलमें भीमसेनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ हूं; ॥ ६० ॥

पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम्।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ६१ ॥

विशेष करके मैं युद्धमें पीछे न हटनेवाले पाण्डवोंका पुत्र, रावणके समान बलवान् और राक्षसोंका राजा हूं ॥ ६१ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ६२ ॥

द्रोणपुत्र ! खडा रह; जो इस समय तुम क्षणभरतक युद्धभूमिके बीच खडे रहोगे तो मेरे हाथसे जीते जी किसी प्रकारसे भी न बच सकोगे। आज मैं रणभूमिके बीच तुम्हारी युद्धकी अभिलाषा पूरी कर दूंगा ॥ ६२ ॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः।
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६३ ॥

क्रुद्ध सिंह जैसे गजराजकी ओर दौडता है, वैसे ही बलवान् राक्षक घटोत्कच ऐसा वचन कहके क्रोधपूर्वक आंखे लाल करके अश्वत्थामाकी ओर दौडा; ॥ ६३ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ ६४ ॥

और रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाके ऊपर इस प्रकार रथके अक्षके समान अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा करने लगा जैसे बादल आकाशसे पृथ्वीके ऊपर जलकी वर्षा करता है ॥ ६४ ॥

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत्।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ ६५ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने घटोत्कचके धनुषसे छूटी हुई बाण-वर्षाको समीप न पहुंचते ही पहुंचते मार्गमें ही अपने बाणोंके प्रभावसे निवारण किया। तब आकाशमें दूसरा बाणोंका युद्ध होता हुआ दीखने लगा ॥ ६५ ॥

अथास्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समाबभौ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥ ६६ ॥

और उन दोनोंके अस्त्रोंके आपसमें रगड खानेसे अग्निकी चिनगारियां उत्पन्न होने लगीं; तथा उससे रात्रिके समयमें आकाशमण्डल खद्योतसमूहकी भांति प्रकाशित होने लगा ॥ ६६ ॥

निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥ ६७ ॥
जब युद्धविद्या जाननेवाले अश्वत्थामाके अस्त्रोंके प्रभावसे अपनी माया नष्ट हुई देख, घटोत्कचने अन्तर्द्धान होकर फिर दूसरी राक्षसी माया प्रकट की ॥ ६७ ॥

सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥ ६८ ॥
उसने त्रिशूल, तलवार, फरसे और मूसलरूपी जलके झरने बहानेवाला और वृक्षोंसे युक्त शिखरोंसे शोभित अत्यन्त ऊंचे एक बडे पर्वतका रूप धारण किया ॥ ६८ ॥

तमञ्जनचयप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम्।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसंघैर्न चुक्षुभे ॥ ६९ ॥
द्रोणपुत्र अश्वत्थामा घटोत्कचको अंजनगिरिके समान पर्वतका स्वरूप धारण करते और उससे अनेक भांतिके शस्त्रकी वर्षा होते देख तनिक भी कातर न हुए ॥ ६९ ॥

ततः स्मयन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदीरयत्।
स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रमनश्यत ॥ ७० ॥
और निर्भय चित्तसे हंसकर अपने दिव्य वज्रास्त्रको प्रकट किया। अश्वत्थामाके दिव्य अस्त्रके प्रभावसे वह मायामय पर्वतराज उस ही समय तत्काल नष्ट हो गया ॥ ७० ॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद्रणे ॥ ७१ ॥
तब घटोत्कच आकाशमें जाकर इन्द्रधनुष शोभित अत्यन्त भयङ्कर नील बादलका रूप धारण करके पत्थरोंकी वर्षासे युद्धमें अश्वत्थामाको छिपाने लगा ॥ ७१ ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः।
व्यधमद्द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥ ७२ ॥
शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महावीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने वायव्य अस्त्र चलाकर उस प्रकट हुए मायामय नील बादलका नाश किया ॥ ७२ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥ ७३ ॥
फिर मनुष्योंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने लगातार अपने तेज बाणोंको चलाकर दशों दिशाओंको परिपूरित करके एक लाख रथियोंका वध किया ॥ ७३ ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायतकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसंभ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ७४ ॥

अनन्तर अश्वत्थामाने देखा कि घटोत्कच फिर निर्भयचित्तसे रथ पर चढके धनुष फेरता हुआ बहुतसे राक्षसोंसे घिरा हुआ रणभूमिमें आ रहा है ॥ ७४ ॥

सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥ ७५ ॥

उसकी सेनाके राक्षसोंके बीच कितने ही सिंह और शार्दूलके समान रूपवाले थे; वे सम्पूर्ण राक्षस मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी थे; उन सम्पूर्ण राक्षसोंके बीच कितने ही हाथी, घोडे और रथोंपर बैठे हुए थे ॥ ७५ ॥

विवृतास्यशिरोग्रीवैर्हैडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चोग्रविक्रमैः ॥ ७६ ॥

परन्तु वे सब ही भयङ्कर शरीर, विकराल मुख, सिर और भयानक गर्दनवाले अनुयायी थे । उन सम्पूर्ण अनुयायियोंमें राक्षस, यातुधान और तामस जातिके लोग हैं; वे सब ही राक्षस अत्यंत पराक्रमी हैं ॥ ७६ ॥

नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥ ७७ ॥

नाना भांतिके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, अनेक प्रकारके कवच और आभूषणोंसे विभूषित, महाबलवान्, भयंकर गर्जना करनेवाले और क्रोधसे लालनेत्र किये हुए ॥ ७७ ॥

उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसंप्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥ ७८ ॥

उन सम्पूर्ण युद्धदुर्मद राक्षसोंके सहित रणभूमिमें घटोत्कचको आया हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अत्यन्त ही विषण्ण हो गये हैं; राजा दुर्योधनको दुःखित देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उन्हें इस भांतिसे धीरज धारण कराने लगे ॥ ७८ ॥

तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यः संभ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ७९ ॥

हे महाराज दुर्योधन ! तुम्हें भयभीत होना उचित नहीं है, आज तुम चुपचाप खडे रहो । इस समय तुम इन्द्रके समान पराक्रमी राजाओं और अपने महावीर भाइयोंके सहित रणभूमिमें स्थित हुए हो ॥ ७९ ॥

निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवास्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥ ८० ॥

तुम्हारी कदापि पराजय न हो सकेगी । मैं तुम्हारे समीप सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि युद्धभूमिमें अवश्य तुम्हारे शत्रुओंका बध करूंगा। तुम अपनी सेनाको आश्वासन दो ॥८०॥

दुर्योधन उवाच

न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥ ८१ ॥

दुर्योधन बोले– हे गौतमीनन्दन ! जब तुम्हारा चित्त ऐसा ऊंचा तथा विशाल है और हम लोगोंके ऊपर तुम्हारा अत्यंत प्रेम है, तब मुझे इस विषयमें कुछ आश्चर्य नहीं मालूम होता है ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच

अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत् ।
वृतः शतसहस्रेण रथानां रणशोभिनाम् ॥ ८२ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अश्वत्थामासे ऐसा वचन कहकर युद्धमें शोभा पानेवाले सौ हजार रथियोंकी सेनासे घिरे हुए दुर्योधन सुबलपुत्र शकुनिसे यह वचन बोले– ॥ ८२ ॥

षष्ट्या गजसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनंजयम् ।
कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥ ८३ ॥

हे मामा ! तुम साठ हजार हाथियोंकी सेना साथ लेकर अर्जुनपर आक्रमण करो । कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, नील, ॥ ८३ ॥

उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः श्रुतार्पणः ।
दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी उरुक्रमः ॥ ८४ ॥

उत्तर दिशाके सैनिक, कृतवर्मा, पुरुमित्र, श्रुतार्पण, दुःशासन, निकुम्भ, कुन्दभेदी, उरुक्रम, ॥ ८४ ॥

पुरंजयो दृढरथः पताकी हेमपङ्कजः ।
शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च संजयो विजयो जयः ॥ ८५ ॥

पुरञ्जय, दृढरथ, पताकी, हेमपंकज, शल्य, आरुणि, इन्द्रसेन, सञ्जय, विजय, जय, ॥८५॥

कमलाक्षः पुरुः क्राथी जयवर्मा सुदर्शनः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥ ८६ ॥

कमलाक्ष, पुरु, क्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन आदि महारथी योद्धा शूरवीर और साठ हजार पैदल गमन करनेवाले योद्धालोग तुम्हारे अनुगामी होंगे ॥ ८६ ॥

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल ।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता ॥ ८७ ॥

हे मामा ! मेरी सम्पूर्ण विजयकी आशा तुम्हारे ऊपर निर्भर है, इससे जैसे देवराज इन्द्रने असुरोंका संहार किया था, वैसे ही तुम भी भीमसेन, नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिरका नाश करो ॥ ८७ ॥

दारितान्द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ ८८ ॥

विशेष करके आचार्य पुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे कुन्तीपुत्र अत्यन्त ही पीडित होकर क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त हो रहे हैं, इस समयमें तुम उन लोगोंको इस भांतिसे नष्ट करो जैसे अग्निपुत्र स्कन्दने दानवोंका नाश किया था ॥ ८८ ॥

एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः ।
पिप्रीषुस्ते सुतान्राजन्दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥ ८९ ॥

महाराज ! सुबलपुत्र शकुनिने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके इस प्रकारके वचन सुनकर, तुम्हारे पुत्रोंकी इच्छा पूरी करके उन्हें प्रसन्न करनेके लिये पाण्डवोंको दग्ध कर डालनेकी अभिलाषा कर शीघ्रताके सहित युद्ध करनेके लिये उनकी ओर गमन किया ॥ ८९ ॥

अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ९० ॥

इधर उस महाघोर रात्रिके समय इन्द्र और प्रह्लादके समान द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और राक्षस घटोत्कचका आपसमें अत्यन्त भयङ्कर दारुण संग्राम होने लगा ॥ ९० ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥ ९१ ॥

तब घटोत्कचने अत्यन्त क्रुद्ध होके विष और अग्निके समान भयंकर दस तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ९१ ॥

स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ९२ ॥

शारद्वतीपुत्र अश्वत्थामा घटोत्कचके दृढ बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर इस प्रकार रथमें विचलित हुए, जैसे वायुके चलनेसे वृक्ष विचलित होने लगते हैं ॥ ९२ ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनास्य मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥ ९३ ॥

घटोत्कचने फिर एक अञ्जलिक नामक बाणसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके हाथमें स्थित अत्यन्त तेजस्वी धनुषको शीघ्रतापूर्वक काट दिया ॥ ९३ ॥

ततोऽन्यद्द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान्वारिधारा इवाम्बुदः ॥ ९४ ॥

तब अश्वत्थामा एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भांति तेज बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ९४ ॥

ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुङ्खाञ्शत्रुघ्नान्खचरान्खचरान्प्रति ॥ ९५ ॥

अनन्तर अश्वत्थामा आकाशचारी राक्षसोंके ऊपर सुवर्ण दण्डभूपित शत्रुओंके नाश करनेवाले आकाशगामी बाण चलाने लगे ॥ ९५ ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ९६ ॥

अनन्तर अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित होके चौडी छातीवाले राक्षसोंके समूह इस प्रकार विकल होगये, जैसे सिंहके आक्रमणसे मतवाले हाथियोंका समूह व्याकुल हो जाता है ॥ ९६ ॥

विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतरथान्विभुः ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ ९७ ॥

जैसे प्रलय कालके समय भगवान् अग्निदेव प्रज्वलित होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म कर देते हैं, वैसे ही प्रतापी अश्वत्थामा अपने तेज बाणरूपी अग्निसे राक्षसोंको जलाकर घोडे, हाथी और सारथियोंके सहित रथियोंको भस्म करने लगे ॥ ९७ ॥

स दग्ध्वाक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतान्रुरुचे भृशम् ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ९८ ॥

पहिले समयमें जैसे देवोंके देव महादेव आकाशमें स्थित त्रिपुरको जलाकर शोभित हुए थे, वैसे ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा एक अक्षौहिणी राक्षसी सेना भस्म करके रणभूमिके बीच शोभित होने लगे ॥ ९८ ॥

युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः ।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाहितान् ॥ ९९ ॥

विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे शत्रुओंका नाश करके प्रलयकालकी प्रचण्ड अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ ९९ ॥

×

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
नैनं निरीक्षितुं कश्चिच्छक्नोति द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद्वीराद्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥ १०० ॥

भारत ! अधिक कथा कहूं ? जिस समय युद्धमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामा राक्षसोंका वध कर रहे थे, उस समय महाबली राक्षसेन्द्र वीर घटोत्कचको छोडके पाण्डवोंकी ओरके सहस्रों राजाओंके बीच कोई भी अश्वत्थामाकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए ॥ १०० ॥

स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्रक्तान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ।
स्व सूतमब्रवीत्क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ॥ १०१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब घटोत्कच क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके हाथसे हाथ मलकर ओठ काटता हुआ अपने सारथीसे कुपित हो बोला, हे सारथी ! तुम मुझे अश्वत्थामाके समीप ले चलो ॥ १०१ ॥

स ययौ घोररूपेण तेन जैत्रपताकिना ।
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनररिनिसूदनः ॥ १०२ ॥

ऐसा कह कर शत्रुनाशन घटोत्कच अपने उस विजयसूचक पताकाओंसे शोभित भयानक रथ पर चढके फिर द्वैरथ युद्ध करनेके लिये अश्वत्थामाके समीप उपस्थित हुआ ॥ १०२ ॥

स चिक्षेप ततः क्रुद्धो द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महारौद्रामशनीं रुद्रनिर्मिताम् ॥ १०३ ॥

अनन्तर क्रुद्ध हुए राक्षस घटोत्कचने आठ चक्रोंसे युक्त रुद्रकी बनाई एक महाभयंकर शक्ति घुमाकर अश्वत्थामाकी ओर चलायी ॥ १०३ ॥

तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥ १०४ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपना धनुष रथपर रखके उछल कर उस शक्तिको ग्रहण करके, उसे घटोत्कचकी ओर चलाया । घटोत्कच उस रथसे कूद कर पृथ्वी पर स्थित हुआ ॥ १०४ ॥

साश्वसूतध्वजं वाहं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साशनिर्भृशदारुणा ॥ १०५ ॥

अनन्तर वह अत्यन्त प्रकाशमान महाघोर शक्ति घटोत्कचके घोडे, सारथी और ध्वजाके सहित रथको भस्म करके पृथ्वीको छेदकर उसमें घुस गई ॥ १०५ ॥

द्रौणेस्तत्कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शंकरनिर्मिताम् ॥ १०६ ॥

परन्तु द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने जो भगवान् शंकरसे निर्मित उस भयङ्करी शक्तिको कूदके ग्रहण किया, उसे देखकर सम्पूर्ण प्राणी उनके इस कार्यकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ १०६ ॥

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप।
मुमोच निशितान्बाणान्पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥ १०७ ॥

राजन्! उस समय भीमसेन पुत्र घटोत्कच धृष्टद्युम्नके रथ पर आरूढ हो गया; और फिर अपने चोखे बाणोंसे अश्वत्थामाके महान् वक्षस्थलमें प्रहार करने लगा ॥ १०७ ॥

धृष्टद्युम्नोऽप्यसंभ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान्।
सुवर्णपुङ्खान्विशिखान्द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥ १०८ ॥

उस ही समय धृष्टद्युम्न भी निर्भय चित्तसे विषधर सर्पोंके समान सुवर्णमय पंखवाले बहुतसे तेज बाणोंसे अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार करने लगे ॥ १०८ ॥

ततो मुमोच नाराचान्द्रौणिस्ताभ्यां सहस्रशः।
तावप्यग्निशिखाप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥ १०९ ॥

उस समय अश्वत्थामा उन दोनोंके ऊपर हजारों नाराच बाण चलाने लगे; अश्वत्थामाके चलाये नाराच बाणोंको सम्मुख न आते ही उन दोनों वीरोंने अग्निके समान तेजस्वी अपने तेज बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १०९ ॥

अतितीव्रमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ ११० ॥

भरतश्रेष्ठ! इसी भांति उन दोनों पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न और घटोत्कचके सङ्ग द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका शूरवीरोंके हर्षको बढानेवाला महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ११० ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमाव्रजत् ॥ १११ ॥

उस ही समय भीमसेन एक हजार रथ, तीन सौ हाथी और छः हजार घुडसवारोंकी सेना लेकर वहां उपस्थित हुए ॥ १११ ॥

ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम्।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टकर्मकृत् ॥ ११२ ॥

अनायास कर्म करनेवाले धर्मात्मा अश्वत्थामा निर्भय चित्तसे सम्पूर्ण योद्धाओंसे युक्त धृष्टद्युम्न और भीमपुत्र राक्षस घटोत्कचके संग युद्ध कर रहे थे ॥ ११२ ॥

तत्राद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम्।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ ११३ ॥

महाराज! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस समय जैसा अत्यन्त अद्भुत पराक्रम प्रकाशित किया, वैसा कर्म सम्पूर्ण प्राणियोंसे भी असाध्य है ॥ ११३ ॥

निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥ ११४ ॥

उन्होंने क्षणभरके बीच अपने अत्यन्त चोखे बाणोंके प्रभावसे घोडे, सारथी रथ, और हाथियोंसहित राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी ॥ ११४ ॥

मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥ ११५ ॥

भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, श्वेतवाहन अर्जुन और श्रीकृष्णके सम्मुखमें ही यह सब कुछ हुआ ॥ ११५ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ११६ ॥

उस समय हाथियोंके समूह अश्वत्थामाके वेगगामी नाराच बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर मानों शृङ्गसे युक्त पर्वतके समान मर कर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ११६ ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ ११७ ॥

बाणोंकी चोटसे कितने ही हाथियोंके सूण्ड कटकर इधर उधर रणभूमिमें चलते हुए सर्पोंके समान पडे हुए दिखाई देने लगे, पृथ्वी उनसे आच्छादित हुई ॥ ११७ ॥

क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्त्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥ ११८ ॥

राजाओंके सुवर्ण दण्डयुक्त सफेद छत्र रणभूमिमें इधर उधर गिर कर ऐसे प्रकाशित हो रहे थे, जैसे प्रलयकालके समय उदित हुए चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहोंसे युक्त आकाशमण्डल शोभित होता है ॥ ११८ ॥

प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्त्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥ ११९ ॥

इसी प्रकार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस युद्धभूमिके बीच रुधिरकी भयङ्करी नदी उत्पन्न कर दी । कटी हुई विशाल ध्वजाएं उस नदीमें मेढक, भेरी उसमें बडे शरीरवाले कछुवे और छत्र उसमें हंसोंकी पांतकी भांति बहते हुए दिखाई देते थे । चंवर उसमें फेनके समान दीख पडते थे ॥ ११९ ॥

कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ॥ १२० ॥

कौवे गिद्ध आदि पक्षी उसमें बडे ग्राहरूपी बोध होते थे । बहुतेरे अस्त्र शस्त्र उसमें मछलियोंके समान भरे थे; टूटे हुए रथ उसमें तीरके समान बहे जाते थे, उत्तम पताकाएं सुंदर वृक्षोंकी भांति दिखाई देती थीं ॥ १२० ॥

शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्युग्रडुण्डुभाम् ।
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ॥ १२१ ॥

बाण मीन थे; वह देखनेमें अत्यंत भयंकर थी; प्रास, शक्ति आदि अस्त्र उग्र डुण्डुभ सर्पके समान थे; मज्जा और मांस उस नदीमें महापङ्कके समान थे; तैरती हुई लाशें नौकाके समान दीखती थीं ॥ १२१ ॥

केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ।
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसंभवाम् ॥ १२२ ॥

केश उसमें काले रङ्गवाली शिवारकी भांति दिखाई देते थे; वह कायरोंको मूर्च्छित करनेवाली थीं; बडे हाथी, घोडे और योद्धाओंके शरीरोंका नाश होनेसे ही वह नदी उत्पन्न हुई थी ॥ १२२ ॥

शोणितौघमहावेगां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ।
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ॥ १२३ ॥

योद्धाओंका आर्त्त नाद ही उस नदीके हरहराहट शब्दके समान बोध होता था और योद्धाओंके कटे हुए शरीरसे जो रुधिर बह रहा था उसमें लहरें उठ रही थीं । अश्वत्थामाने शोणितके प्रवाहसे युक्त अत्यंत भयंकर नदी उत्पन्न की ॥ १२३ ॥

प्रायादतिमहाघोरं यमक्षयमहोदधिम् ।
निहत्य राक्षसान्बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमार्दयत् ॥ १२४ ॥

वह रुधिरकी नदी यमराज रूपी महा सागरसे मिलकर तथा मांसभक्षी पशु पक्षी और राक्षसोंसे सेवित होकर अत्यन्त ही भयङ्करी दीखने लगी । द्रोणपुत्र अश्वत्थामा बहुतेरे राक्षसोंका वध करके हिडम्बापुत्र घटोत्कचको अपने तेज बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १२४ ॥

पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ।
स नाराचगणैः पार्थान्द्रौणिर्विद्ध्वा महाबलः ॥ १२५ ॥

फिर उन महाबलवान् वीरने अत्यंत क्रुद्ध होकर नाराच बाणोंसे भीमसेन और धृष्टद्युम्न सहित कुन्ती पुत्रोंको विद्ध किया ॥ १२५ ॥

जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ।
पुनः श्रुतंजयं नाम सुरथस्यानुजं रणे । ॥ १२६ ॥

और उन बलवान्ने पाञ्चालराज द्रुपदके पुत्र सुरथका वध किया । अनन्तर उन्होंने समरमें सुरथके भ्राता श्रुतंजय, ॥ १२६ ॥

बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ।
श्रुताह्वयं च राजेन्द्र द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १२७ ॥

बलानीक, जयानीक और जयाश्वको भी यमपुरीमें भेज दिया, उस ही समय अश्वत्थामाने राजा श्रुताह्वयको भी यमलोक भेज दिया ॥ १२७ ॥

त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खै रुक्ममालिनम् ।
शत्रुंजयं च बलिनं शक्रलोकं निनाय ह ॥ १२८ ॥

फिर उन्होंने सुंदर पंखवाले अत्यन्त चोखे दूसरे तीन बाणोंसे रुक्ममाली और बलवान् शत्रुंजयका वध करके शक्रलोकमें भेज दिया ॥ १२८ ॥

जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मानिनम् ।
कुन्तिभोजसुतांश्चाजौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥ १२९ ॥

फिर अपने तेज बाणोंसे पृषध्र और महामानी चन्द्रसेनका भी वध किया । अनन्तर दस बाणोंसे कुन्तिभोज राजाके दस पुत्रोंका युद्धमें वध किया ॥ १२९ ॥

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः संधायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ १३० ॥

इसके अनन्तर अश्वत्थामा अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने सीधे जानेवाले एक घोर यमदण्डके समान भयङ्कर और उत्तम बाण धनुष पर चढाकर धनुषको कर्णपर्यंत खींचकर उसे शीघ्रही घटोत्कचकी ओर चलाया ॥ १३० ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ।
विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ १३१ ॥

पृथ्वीपते ! वह सुंदर पंखोंवाला महान् बाण उस राक्षस घटोत्कचके हृदयको भेद करके वेगपूर्वक पृथ्वीमें घुस गया ॥ १३१ ॥

तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रौणेः सकाशाद्राजेन्द्र अपनिन्ये रथान्तरम् ॥ १३२ ॥

राजेन्द्र ! उस भयङ्कर बाणकी चोटसे घटोत्कच पृथ्वीमें गिर पडा; महारथी धृष्टद्युम्न घटोत्कचको मरा हुआ समझके शीघ्रताके सहित अपने उत्तम रथको हांक कर अश्वत्थामाके समीपसे दूर गये ॥ १३२ ॥

तथा पराङ्मुखरथं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ।
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वभूतैश्च तव पुत्रैश्च भारत ॥ १३३ ॥

राजन् ! इसी भांति जब युधिष्ठिरकी सेनाके सम्पूर्ण महारथी नरेश युद्धभूमिसे विमुख हो गये, तब महावीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उस सम्पूर्ण सेनाको पराजित करके युद्धमें सिंहनाद करने लगे । उस समय तुम्हारे पुत्रोंके सहित सम्पूर्ण प्राणी अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३३ ॥

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहैर्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही कृताभूद्गिरिशिखरैरिव दुर्गमातिरौद्रा ॥ १३४ ॥

महाराज ! उस समय बहुतेरे राक्षस लोग जो अश्वत्थामाके सैकडों बाणोंसे शरीर छिन्न भिन्न हो जानेके कारण मरे, अधमरे और कटे हुए शरीरसे रणभूमिके बीच चारों ओर पडे थे, उससे वह रणभूमि पर्वत शिखरोंसे आच्छादित हुईसी अत्यन्त ही भयङ्कर और दुर्गम बोध होती थी ॥ १३४ ॥

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसंघा नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥ १३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ ५७७७ ॥

इस अद्भुत कर्मको देखकर देवता, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, भूत, पिशाच, पक्षी और सर्प आदि सम्पूर्ण प्राणी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३५ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३१ ॥ ५७७७ ॥

: १३२ :

संजय उवाच

द्रुपदस्यात्मजान्दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान्राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– द्रुपद और कुन्तिभोज राजाके पुत्रों और सहस्रों राक्षसोंको द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके द्वारा मारा गया देख ॥ १ ॥

युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २ ॥

महाराज ! धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न इन वीरोंने सावधान होकर युद्धमें ही मन लगाया ॥ २ ॥

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेण छादयामास सर्वतः ॥ ३ ॥

सात्यकिको युद्धभूमिमें देखकर सोमदत्त फिर क्रोधपूर्वक अपने बाणोंकी भारी वर्षासे उन्हें चारों ओरसे छिपाने लगे ॥ ३ ॥

ततः समभवद्युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकाङ्क्षिणाम् ॥ ४ ॥

अनन्तर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले तुम्हारे और शत्रुओंके सैनिकोंका आपसमें अत्यन्त भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥

दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध कौरवम् ।
सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ॥ ५ ॥

उसी समय भीमसेनने सोमदत्तको सात्यकिकी सहायता की इच्छासे दस बाणोंसे विद्ध किया । सोमदत्तने भी पराक्रमी भीमसेनको सौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५ ॥

सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
वृद्धमृद्धं गुणैः सर्वैर्ययातिमिव नाहुषम् ॥ ६ ॥

अनन्तर सात्यकिने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर नहुषपुत्र ययातिके समान वृद्धताके सब गुणोंसे युक्त, पुत्रशोकसे दुःखी बुढे सोमदत्तको ॥ ६ ॥

विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातिभिः ।
शक्त्या चैनमथाहत्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ७ ॥

वज्रको भी मार गिरानेवाले दस तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया। अनन्तर सात्यकिने एक शक्तिसे सोमदत्तके शरीरको भेद करके फिर उन्हें सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ ७ ॥

ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ॥ ८ ॥

उस ही समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायता करनेकी अभिलाषासे एक नूतन, सुदृढ और भयंकर परिघ चला कर सोमदत्तके सिरमें प्रहार किया ॥ ८ ॥

सात्यकिश्चाग्निसंकाशं मुमोच शरमुत्तमम् ।
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ॥ ९ ॥

तब सात्यकिने भी युद्धमें क्रुद्ध होकर मनोहर पंखवाले अग्निके समान तेजस्वी, उत्तम एक तीक्ष्ण बाण सोमदत्तकी छाती पर छोड दिया ॥ ९ ॥

युगपत्पेततुरथ घोरौ परिघमार्गणौ।
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ॥ १० ॥

उन दोनों वीरोंके चलाये हुए वे भयङ्कर परिघ और बाण एक ही समय महारथी सोमदत्तके शरीरपर गिरनेसे वह उसी समय मूर्च्छित होकर रथमें गिर पडे ॥ १० ॥

व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकः समुपाद्रवत्।
विसृजञ्शरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ॥ ११ ॥

अपने पुत्र सोमदत्तको मूर्च्छित देख कर राजा बाह्लिक लगातार अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिकी ओर ऐसे दौडे, जैसे वर्षाऋतुमें बादल आकाशसे इकबारगी जलकी वर्षा करते हैं ॥ ११ ॥

भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः।
पीडयन्वै महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ॥ १२ ॥

भीमसेनने सात्यकिकी रक्षाके लिये रणभूमिमें स्थित महात्मा बाह्लिकको पीडित करते हुए दृढताके सहित नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ १२ ॥

प्रातिपीयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि।
निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम् ॥ १३ ॥

तब महाबाहु प्रतीपनन्दन बाह्लिक अत्यन्त क्रुद्ध हुए और इन्द्र जैसे वज्र चलाते हैं, वैसे ही एक शक्ति ग्रहण करके भीमसेनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ १३ ॥

स तयाभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च।
प्राप्य चेतश्च बलवान्गदामस्मै ससर्ज ह ॥ १४ ॥

महाबली भीमसेन उस शक्तिके लगनेसे अत्यन्त पीडित होकर कांप उठे और मूर्च्छित हो गये; परन्तु फिर सावधान होकर भीमसेनने एक गदा ग्रहण करके बाह्लिककी ओर चलाया ॥ १४ ॥

सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत्।
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट् ॥ १५ ॥

वह भयानक गदा पाण्डुपुत्र भीमसेनके हाथसे छूटकर बाह्लिकके सिर पर गिरी और उस ही गदाने बाह्लिकका सिर काट दिया। राजा बाह्लिक उस समय प्राणरहित होकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिर पडे जैसे वज्रकी चोटसे पर्वतराज पृथ्वीपर गिर पडता है ॥ १५ ॥

तस्मिन्विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभे।
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन्भीमं दश दाशरथेः समाः ॥ १६ ॥

जब पुरुषश्रेष्ठ महावीर बाह्लिक मारे गये तब दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्रके समान पराक्रमी तुम्हारे दस पुत्र भीमसेनको पीडा देने लगे ॥ १६ ॥

नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान्निहत्य तवात्मजान् ।
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ॥ १७ ॥

तुम्हारे उन पुत्रोंको दस नाराच बाणोंसे मारकर भीमसेन अपने बाणोंसे कर्णके प्रिय पुत्र वृषसेनको छिपाने लगे ॥ १७ ॥

ततो वृषरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ।
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यस्यवधीद्बली ॥ १८ ॥

उस ही समय कर्णके प्रख्यात भाई वृषरथने अपने तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे भीमसेनके शरीरमें प्रहार किया; महाबली भीमसेनने उसी समय उसे मार डाला ॥ १८ ॥

ततः सप्त रथान्वीरः स्यालानां तव भारत ।
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ॥ १९ ॥

भारत ! अनन्तर पाण्डुपुत्र वीर भीमसेनने तुम्हारे सालोंमेंसे सात रथियोंका नाराचोंसे वध करके शतचन्द्रको भी मार डाला ॥ १९ ॥

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ।
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गजाक्षः शरभो विभुः ।
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ॥ २० ॥

महारथी शतचन्द्रके मारे जानेपर क्रुद्ध हुए शकुनिके वीर भाई गजाक्ष, शरभ और विभु ये भीमसेनकी ओर दौडे; और अपने तीक्ष्ण बाणोंके समूहसे भीमसेनको पीडित करने लगे ॥ २० ॥

स तुद्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवर्षभः ।
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिबलो रथान् ।
तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरान्विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २१ ॥

जैसे बलवान् वृषभ जलकी वर्षासे पीडित होता है, वैसे ही अत्यंत बलवान् भीमसेनने उन नाराच बाणोंकी चोटसे पीडित होकर, पांच बाणोंसे उन पांच महारथियोंका वध किया। सम्पूर्ण श्रेष्ठ राजा लोग उन शूरवीरोंको मारे गये देख भयभीत होगये ॥ २१ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेश्च पुत्राणां च तवानघ ॥ २२ ॥

अनघ ! उसी समय राजा युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य और तुम्हारे पुत्रोंके देखते देखते ही तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ २२ ॥

अम्बष्ठान्मालवाञ्शूरांस्त्रिगर्तान्सशिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान्युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥
उस युद्धमें युधिष्ठिरने अम्बष्ठ, मालव, शूरवीर त्रिगर्त और शिविदेशीय योद्धाओंका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ २३ ॥

अभीषाहाञ्शूरसेनान्बाह्लीकान्सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २४ ॥
उस समय राजा युधिष्ठिरने अभीषाह, शूरसेन, बाह्लिक और वसातिदेशीय वीरोंको अपने अस्त्रोंसे नष्ट करके उनके रुधिरसे रणभूमिको पूरित कर दिया ॥ २४ ॥

यौधेयारट्टराजन्यमद्रकाणां गणान्युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान्बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥
राजन् ! यौधेय, आरट्ट और मद्रदेशीय शूरवीर गणोंको अपने बाणोंके प्रहारसे प्राण रहित करके यमलोकमें भेजा ॥ २५ ॥

हताहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ २६ ॥
उस समय युधिष्ठिरके रथके निकट मारो, ले आओ, पकडो, काटो ! इसी प्रकार महाघोर तुमुल शब्द सुनाई देने लगा ॥ २६ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ २७ ॥
द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको अपनी सेनाको तितर बितर करते देख तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे उनपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ २८ ॥
अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वायव्यास्त्र चलाकर राजा युधिष्ठिको विद्ध किया; युधिष्ठिरने भी उनके दिव्यास्त्रको अपने दिव्यास्त्रसे नष्ट किया ॥ २८ ॥

तस्मिन्विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ।
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ २९ ॥
वायव्यास्त्रको निष्फल होते देख द्रोणाचार्यने अत्यंत कुपित होकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके वधकी अभिलाषा करके वारुणास्त्र, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र इत्यादि बहुतसे दिव्य अस्त्रोंको प्रकट किया ॥ २९ ॥

क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ।
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरविस्रसन् ॥ ३० ॥

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके चलाये गये और चलाये जानेवाले सब दिव्य अस्त्रोंको महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिर निर्भयताके सहित अपने दिव्य अस्त्रोंसे नष्ट करने लगे ॥ ३० ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसंभवः ।
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३१ ॥

भारत ! तब अपनी प्रतिज्ञाको सची करनेकी इच्छासे, तुम्हारे पुत्रके हितकी इच्छा करनेवाले द्रोणाचार्यने धर्मपुत्र युधिष्ठिरके वधकी इच्छा धारण करके उनके ऊपर प्राजापत्य और ऐन्द्र अस्त्र प्रकट किया ॥ ३१ ॥

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकारास्त्रमहीनतेजा माहेन्द्रमन्यत्स जघान तेऽस्त्रे ॥ ३२ ॥

मतवाले हाथी और सिंहके समान गतिवाले, विशाल वक्षस्थलवाले, बडे लाल नेत्रोंसे युक्त, महातेजस्वी कुरुपति युधिष्ठिरने अत्यन्त प्रचण्ड माहेन्द्रास्त्र प्रकट करके द्रोणाचार्यके चलाये हुए उन दिव्य अस्त्रोंको नष्ट किया ॥ ३२ ॥

विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधप्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३३ ॥

इसी भांति जब बार बार सम्पूर्ण अस्त्र निष्फल होने लगे, तब द्रोणाचार्यने महाकोप करके युधिष्ठिरके वधकी अभिलाषासे ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ ३३ ॥

ततो नाज्ञासिषं किंचिद्घोरेण तमसावृते ।
सर्वाभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ३४ ॥

महाराज ! ब्रह्मास्त्र छूटने पर सम्पूर्ण दिशाओंमें इस प्रकार महाघोर अन्धकार हो गया, कि उस समयमें हमलोगोंको कुछ भी मालूम नहीं होता था और सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ ३४ ॥

ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ३५ ॥

राजन् ! परन्तु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्र चलाकर ही द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको निवारण किया ॥ ३५ ॥

ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ३६ ॥

उससे सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग सम्पूर्ण युद्धविद्या जाननेवाले, धनुर्धारियोंमें अग्रणी, पुरुष श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३६ ॥

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमद्रोषताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥ ३७ ॥

भारत ! अनन्तर द्रोणाचार्य कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको त्यागके क्रोधसे नेत्र लाल करके वायव्यास्त्र चलाकर द्रुपदकी सेनाके योद्धाओंका नाश करने लगे ॥ ३७ ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पाञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ३८ ॥

पाञ्चाल योद्धा द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित होकर महात्मा भीमसेन और अर्जुनके संमुखमें ही भयभीत होकर रणभूमिसे भागने लगे ॥ ३८ ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तव ॥ ३९ ॥

अपनी ओरके योद्धाओंको भागते देख, पराक्रमी भीमसेन और किरीटमाली अर्जुन बडी रथ-सेना साथ लेकर अपनी सेनाकी रोकथाम करके सहसा तुम्हारी सेनाकी ओर लौटे ॥ ३९ ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४० ॥

अर्जुनने द्रोणाचार्यके दाहिने पार्श्वमें और भीमसेनने बायें पार्श्वमें महान् बाणसमूहोंकी वर्षा शुरू कर दी ॥ ४० ॥

तौ तदा सृञ्जयाश्चैव पाञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४१ ॥

महाराज ! उस ही समय केकय, सृञ्जय, महातेजस्वी पाञ्चाल और मत्स्यदेशीय सेनाके योद्धालोग सात्यकिकी सेनाके योद्धाओंके संग मिलकर भीमसेन और अर्जुनका अनुसरण करने लगे ॥ ४१ ॥

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ ५८१९ ॥

महाराज ! उस समय कुरुसेनाके योद्धालोग किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीडित होने लगे और भागने लगे । उस समय उन योद्धाओंको द्रोणाचार्य और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन स्वयं भागनेसे मना करने लगे परंतु किसी भांतिसे भी उन योद्धाओंको लौटानेमें समर्थ न हुए ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥ ५८१९ ॥

: १३३ :

सञ्जय उवाच

उदीर्यमाणं तद्दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! कुरुराज दुर्योधन पाण्डवोंकी महासेनाको वेगपूर्वक बढी आती देख तथा पाण्डवोंकी सेनाको निवारण करनेमें असमर्थ मानकर कर्णसे बोले ॥ १ ॥

अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान्योधान्महाबल ॥ २ ॥

हे मित्रवत्सल कर्ण ! मनुष्य जिस कार्यके लिये मित्रकी इच्छा करते हैं इस समय मित्रोंके मित्रता दिखानेका यही समय उपस्थित हुआ है । हे महाबल ! आज तुम मेरे सम्पूर्ण योद्धाओंकी समरमें रक्षा करो ॥ २ ॥

पाञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान्समन्तात्संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥

यह देखो, मेरी ओरके महारथी योद्धा लोग बार बार लम्बी सांस छोडनेवाले क्रोधी सर्पोंके समान भयंकर हो उठे पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और पाण्डवोंकी सेनाके महारथी योद्धाओंके बीचमें घिर गये हैं, इससे तुम उन लोगोंको इस विपतसे उबारो ॥ ३ ॥

एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पाञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥

इन्द्रके समान पराक्रमी सम्पूर्ण बहुतेरे पाञ्चाल देशीय रथी योद्धा और जयकी अभिलाष करनेवाले पाण्डव लोग अत्यन्त ही हर्षपूर्वक सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ४ ॥

कर्ण उवाच

परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरंदरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥

कर्ण बोले— महाराज ! पृथापुत्र अर्जुनकी सहायता करनेके लिये यदि इन्द्र स्वयं आके युद्धभूमिमें उपस्थित होंगे, तो मैं उन्हें भी शीघ्रही पराजित करके पाण्डुपुत्र अर्जुनका वध करूंगा ॥ ५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान्पाञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारे निकट सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि इस रणभूमिमें इकठे हुए पाण्डव और पाञ्चालसेनाके योद्धाओंका नाश करूंगा, इससे तुम धीरज धरो ॥ ६ ॥

जयं ते प्रतिजानामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥ ७ ॥

हे राजन्! जैसे अग्निपुत्र स्वामि कार्तिकेयने तारकासुरका नाश करके इन्द्रको विजय दिलायी थी, वैसे ही मैं भी आज तुम्हें विजय प्रदान करूंगा; अधिक क्या कहूं, मैं तुम्हारे प्रिय कार्यको पूर्ण करनेहीके लिये अब तक जीवित हूं ॥ ७ ॥

सर्वेषामेव पार्थानां फल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्यामोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८ ॥

कुन्तीके सभी पुत्रोंमें अर्जुन ही सबसे अधिक बलवान् हैं, इससे मैं इन्द्रकी अमोघशक्ति उन्हींके ऊपर छोडूंगा ॥ ८ ॥

तस्मिन्हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९ ॥

मानद! क्योंकि धनुर्धारियोंमें अग्रणी अर्जुनके मारे जानेपर उनके सब भ्राता लोग या तो तुम्हारे वशमें हो जायेंगे अथवा फिर वनमें चल जायेंगे ॥ ९ ॥

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान्सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥

हे कौरव! मेरे जीवित रहते आप कभी दुःखी न होइये; मैं अवश्य ही युद्धभूमिमें सम्पूर्ण सेनाके सहित इकट्ठे हुए पाण्डवोंको जीत लूंगा ॥ १० ॥

पाञ्चालान्केकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥

और मैं अपने बाणोंके समूहोंसे समरमें आये हुए पाञ्चाल, केकय तथा वृष्णिवंशियोंको खण्ड खण्ड करके यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हें प्रदान करूंगा ॥ ११ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥

सञ्जय बोले– महाराज! सूतपुत्र कर्णने जब ऐसे वचन कहे तब शरद्वानके पुत्र महाबाहु कृपाचार्य हंसते हुएसे कर्णसे यह वचन बोले ॥ १२ ॥

शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुंगवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥

हे कर्ण! वाह वाः! क्या कहना है! यदि वचनसे ही कार्य सिद्ध हो जावे तो अकेले तुम्हारी सहायतासे ही कुरुराज दुर्योधन सहाय सम्पन्न हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरव्यस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद्दृश्यते बलमेव वा ॥ १४ ॥
कर्ण ! तुम सदा ही कुरुराज दुर्योधनके समीप इसी भांति बहुत बढकर बातें किया करते हो; परन्तु किसी समय भी तुम्हारा वैसा पराक्रम या वचनके अनुसार कोई बल नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥

समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥
हे सूतपुत्र ! रणभूमिमें पाण्डुपुत्रोंके सङ्ग तुम्हारा कई बार युद्ध हुआ है, परन्तु तुम ही हर एक युद्धमें सर्वत्र पराजित हुए हो ॥ १५ ॥

ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकस्तु पलायथाः ॥ १६ ॥
हे कर्ण ! जिस समय धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनको गन्धर्वोंने हरण किया था, उस समय सम्पूर्ण सेनाके पुरुष युद्ध कर रहे थे तो भी अकेले तुम सबसे पहिले ही रणभूमिसे भागे थे ॥१६॥

विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥
कर्ण ! इसके अतिरिक्त विराटनगरमें सम्पूर्ण सेनाके सहित इकट्ठे हुए कौरव लोग और अपने भाईयोंके सहित तुम भी अर्जुनके सम्मुखसे पराजित हुए थे ॥ १७ ॥

एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान्सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥
युद्धभूमिमें जब तुम अकेले अर्जुनसे ही युद्ध करनेमें असमर्थ हो, तब श्रीकृष्णके सहित इकट्ठे हुए सम्पूर्ण सेनासमेत पाण्डवोंको जीत लेनेके निमित्त कैसे उत्साह कर रहे हो ? ॥ १८ ॥

अब्रुवन्कर्ण युध्यस्व बहु कत्थसि सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद्यस्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ १९ ॥
हे सूतपुत्र कर्ण ! तुम बार बार अपनी बढाई करते हो परन्तु जो मनुष्य कुछ भी न कहके केवल समय पर पराक्रम प्रकाशित करता है उसके वही कार्य सत्पुरुषोंके योग्य व्रत कहके गिने जाते हैं, इससे तुम वागाडम्बर त्यागके युद्ध करो ॥ १९ ॥

गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाजलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥
हे सूतपुत्र ! तुम शरद् कालके जलरहित बादलकी भांति वृथा गर्जन करके भी निष्फल ही दिखायी देते हो, परन्तु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझते हैं ॥ २० ॥

तावद्गर्जसि राधेय यावत्पार्थं न पश्यसि ।
पुरा पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं भवेत् ॥ २१ ॥

हे कर्ण ! जो हो, तुम जबतक अर्जुनको नहीं देखते हो तभीतक गर्जना कर लो; क्योंकि अर्जुनको समीपमें देखकर ऐसा गर्जना तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायेगा ॥ २१ ॥

त्वमनासाद्य तान्बाणान्फल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं भवेत् ॥ २२ ॥

जबतक तुम्हारा अर्जुनके बाणोंके सङ्ग सामना नहीं होता है तभीतक ऐसा गर्जना सुन पडता है, अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होने पर ऐसा गर्जना दुर्लभ हो जायेगा ॥ २२ ॥

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥

क्षत्रिय पुरुष अपने भुजाओंके बलसे शूर कहे जाते हैं, ब्राह्मण वाणीसे बोलनेमें वीर होते हैं और अर्जुन अपने धनुषके बलसे शूरवीर कहके विख्यात हैं, परन्तु कर्ण केवल एक मात्र मनोरथसे ही शूरवीर बनते हैं ॥ २३ ॥

एवं परुषितस्तेन तदा शारद्वतेन सः
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्णने शरद्वत पुत्र कृपाचार्यके ऐसे अप्रिय वचनोंको सुनके अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें यह उत्तर दिया ॥ २४ ॥

शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ।
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ॥ २५ ॥

शूरवीर पुरुष जैसे वर्षाकालके जलयुक्त बादलोंकी भांति सदा गर्जते हैं, वैसे ही यथा उचित समयमें रोपित हुए बीजकी भांति शीघ्रही फल भी प्रदान करते हैं ॥ २५ ॥

दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ।
तत्ताद्विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ॥ २६ ॥

युद्धभूमिमें महान् भार उठानेवाले शूरवीर पुरुष यदि युद्धके समय अपनी प्रशंसाकी भी बाते करते हैं, तो इसमें मुझे उनका कोई दोष नहीं दिखायी देता ॥ २६ ॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ।
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ॥ २७ ॥

वीर पुरुष अपने मनसे जिस भारको उठानेका निश्चय करता है, अवश्यही दैव उस विषयमें उसको सहायता करता है ॥ २७ ॥

व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥ २८ ॥

मनसे इस युद्धके भारको उठा रहा हूं, इसकी सिद्धिके लिये मेरा सहायक दृढ निश्चय ही है, यदि शत्रुओंके नाश करनेके लिये उत्साही होकर मैं गर्जन करता हूं तो उसमें तुम्हारी कौनसी नुकसानी है ? ॥ २८ ॥

वृथा शूरा न गर्जन्ति सजला इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ २९ ॥

और तुम यह भी समझ रक्खो कि शूरवीर पुरुष कभी भी शरद्कालके बादलकी भांति वृथा गर्जन नहीं करते; बुद्धिमान् पुरुष पहले अपनी सामर्थ्यका विचार करके ही गर्जना किया करते हैं ॥ २९ ॥

सोऽहमद्य रणे यत्तः सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे तरसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३० ॥

हे कृपाचार्य ! इससे मैं आज युद्धमें विजयके लिये यत्नपरायण श्रीकृष्ण और अर्जुनको शीघ्रतापूर्वक जीत लूंगा, ऐसा ही निश्चय करके उत्साहपूर्वक गर्ज रहा हूं ॥ ३० ॥

पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगः ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान्ससात्वतान् ।
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ॥ ३१ ॥

हे विप्र ! इस समय तुम मेरे गर्जनेका फल प्रत्यक्ष अनुयाइयोंके सहित देखो; आज मैं युद्ध-भूमिमें श्रीकृष्ण, सात्यकि और पाण्डुपुत्रोंको मारकर राजा दुर्योधनको निष्कण्टक पृथ्वीका राज्य प्रदान करूंगा ॥ ३१ ॥

कृप उवाच

मनोरथप्रलापो मे न ग्राह्यस्तव सूतज ।
यदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ॥ ३२ ॥

कृपाचार्य बोले— हे सूतपुत्र ! तुम जो पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन पर आक्षेप किया करते हो, उन तुम्हारे व्यर्थ मनोरथ तथा प्रतापयुक्त वचनोंको मैं नहीं मान सकता ॥ ३२ ॥

ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ।
देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३३ ॥

तुम इस बातको अपने चित्तमें भली भांतिसे जान रक्खो कि युद्धभूमिमें कवच बांधकर इकठ्ठे हुए देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प और राक्षसोंसे भी अजेय, सम्पूर्ण युद्धविद्या जाननेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन जिस सेनामें स्थित हैं उसी ओरकी निश्चित जय होगी ॥ ३३ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ।
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

विशेष करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणोंमें निष्ठावान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु और देवताओंकी पूजा करनेवाले, सदा ही धर्मके कार्योंमें रत, कृतास्त्र, बुद्धिमान् और कृतज्ञ हैं ॥ ३४ ॥

भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ।
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ॥ ३५ ॥

उनके सहोदर भाई भी कृतास्त्र, बलवान्, यशस्वी, गुरुकी आज्ञामें चलनेवाले, बुद्धिमान् और धर्मात्मा हैं ॥ ३५ ॥

संबन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ॥ ३६ ॥

इसके अतिरिक्त उन लोगोंके सम्बन्धी भी इन्द्रके समान पराक्रमी, उनमें अनुराग रखनेवाले और प्रहार करनेमें कुशल हैं– वे ये हैं– धृष्टद्युम्न, शिखण्डि, दुर्मुखपुत्र जनमेजय, ॥ ३६ ॥

चन्द्रसेनो भद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः ।
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुवेधनः ॥ ३७ ॥

चन्द्रसेन, भद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, धर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र, सुवेधन ॥ ३७ ॥

द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ।
येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुगः ॥ ३८ ॥

द्रुपदके पुत्र और महान् अस्त्रवेत्ता द्रुपद । जिनके लिये यत्नवान् होकर अपने अनुयायियोंके सहित मत्स्यराज विराट् युद्धके लिये तैयार हैं ॥ ३८ ॥

शतानीकः सुदर्शनः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ।
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः ॥ ३९ ॥

इसके अतिरिक्त शतानीक, सुदर्शन, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक, जयाश्व, रथवाहन, ॥ ३९ ॥

चन्द्रोदयः कामरथो विराटभ्रातरः शुभाः ।
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४० ॥

चन्द्रोदय और कामरथ ये विराटके श्रेष्ठ भाई और नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पांचों पुत्र तथा राक्षस घटोत्कच—ये वीर जिनके लिये युद्ध कर रहे हैं, उनका किसी प्रकारसे भी नाश नहीं हो सकता ॥ ४० ॥

कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानवम् ।
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम् ।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्यातां भीमफल्गुनौ ॥ ४१ ॥

अधिक क्या कहूं; देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, हाथी और सर्प आदि प्राणियोंसे युक्त इस सम्पूर्ण संसारको भीमसेन और अर्जुन अपने अस्त्रबलके प्रभावसे सर्वथा नष्ट कर सकते हैं ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ।
कथं तान्संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् ॥ ४२ ॥

राजा युधिष्ठिर भी अपनी कोप दृष्टिसे इस सम्पूर्ण जगत्को जलानेमें समर्थ हैं । हे कर्ण ! चाहे जो हो, अत्यन्त बलवान् यदुकुल शिरोमणि श्रीकृष्ण जिनकी रक्षाके लिये सज्जित होकर रणभूमिमें स्थित हैं, तुम वैसे पराक्रमी शत्रुओंको युद्धभूमिमें पराजित करनेके लिये कैसे उत्साह कर रहे हो ? ॥ ४२ ॥

महानपनयस्त्वेष तव नित्यं हि सूतज ।
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह । ॥ ४३ ॥

हे सूतपुत्र कर्ण ! तुम जो सदा सर्वदा श्रीकृष्णके सङ्ग युद्ध करनेका उत्साह किया करते हो, वह तुम्हारे लिये महा अनर्थका विषय मालूम होरहा है ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन्भरतर्षभ ।
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् ॥ ४४ ॥

सञ्जय बोले— भरतर्षभ ! राधापुत्र कर्णने शरद्वानके पुत्र गुरु कृपाचार्यके ऐसे वचनोंको सुन हंसकर उस समय यह उत्तर दिया ॥ ४४ ॥

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्पाण्डवान्प्रति यद्वचः ।
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ॥ ४५ ॥

हे ब्राह्मण ! पाण्डवोंके विषयमें तुमने जो कुछ वचन कहे, वह सम्पूर्ण सत्य हैं; ऐसा क्या, वे लोग तुम्हारे कहे हुए वचनोंके अतिरिक्त और अनेक गुणोंसे युक्त हैं ॥ ४५ ॥

अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ।
सदैत्ययक्षगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसैः ।
तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥ ४६ ॥

यद्यपि पृथापुत्र यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस, असुर और देवताओंके सहित इन्द्रसे भी अजेय हैं; तो भी मैं उन लोगोंको इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिसे रणभूमिमें जीत लूंगा ॥ ४६ ॥

ममाप्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज ।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ४७ ॥

हे विप्र ! मुझे इन्द्रने यह अमोघ शक्ति दी है; इससे मैं अवश्य ही युद्धमें सव्यसाची अर्जुनका वध करूंगा ॥ ४७ ॥

हते तु पाण्डवे कृष्णो भ्रातरश्चास्य सोदराः ।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथंचन ॥ ४८ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनके मारे जाने पर उनके सहोदर भाई किसी प्रकारसे भी अर्जुन रहित पृथ्वीका राज्य भोगनेमें समर्थ न हो सकेंगे ॥ ४८ ॥

तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा ।
अयत्नात्कौरवेयस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ४९ ॥

हे गौतमपुत्र ! उन सबके इसी भांतिसे नष्ट हो जानेपर तो विना यत्नके ही यह समुद्र सहित सम्पूर्ण पृथ्वी कुरुराज दुर्योधनके वशमें हो जायेगी ॥ ४९ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः ।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५० ॥

गौतम ! देखो, इस संसारमें सुनीतिके अवलम्बसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं हैं; मैं इस विषयको जानकर ही गर्जना कर रहा हूं ॥ ५० ॥

त्वं तु वृद्धश्च विप्रश्च अशक्तश्चापि संयुगे ।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५१ ॥

परन्तु तुम एक तो ब्राह्मण, उस पर भी बूढे हो; तुम युद्ध करनेमें असमर्थ हो और पाण्डवोंके ऊपर प्रीति भी करते हो । इससे मोहवश होनेके कारण तुम मुझे इस भांतिसे अवमानित कर रहे हो ॥ ५१ ॥

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज ।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ ५२ ॥

हे दुष्टबुद्धिवाले ब्राह्मण ! यदि यहां फिर मेरे समीप ऐसे अप्रिय वचनोंका प्रयोग करोगे, तो मैं अपनी इस तलवारसे तुम्हारी जीभ काट लूंगा ॥ ५२ ॥

यच्चापि पाण्डवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ।
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ।
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद्गदतो द्विज ॥ ५३ ॥

हे नीच बुद्धिवाले ब्राह्मण ! तुम जो युद्धभूमिमें इस सम्पूर्ण कुरुसेनको भय भीत करनेके लिये पाण्डवोंकी स्तुति कर रहे हो, उस विषयमें भी मैं जो कुछ योग्य वचन कहता हूं उसे सुनो ॥ ५३ ॥

दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ।
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च ।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥ ५४ ॥

कुरुराज दुर्योधन, द्रोणाचार्य, शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज शल्य, तुम स्वयं, सोमदत्त, भूरि, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और विविंशति ॥ ५४ ॥

तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ।
जयेदेतान्रणे को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ ५५ ॥

ये सब युद्धविद्या जाननेवाले शूरवीर जिस स्थान पर इकट्ठे होकर कवच बांधकर स्थित रहेंगे, वहां इन्द्रके समान पराक्रमी बलवान् शत्रु भी आवे तो क्या वह इन्हें जीत सकेगा ? ॥ ५५ ॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः ।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ५६ ॥

ये सब कोई शूर, कृतास्त्र, बलवान्, स्वर्ग प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाले, धर्मज्ञ और युद्ध करनेमें अत्यन्त निपुण हैं; ये सबकोई सम्पूर्ण देवताओंको भी युद्धमें मार सकते हैं ॥ ५६ ॥

एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः ।
जयमाकाङ्क्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥ ५७ ॥

इससे ये सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष कुरुराज दुर्योधनकी विजय चाहते हुए और पाण्डवोंके वधकी इच्छासे रणभूमिके बीच कवच बांधकर स्थित रहेंगे ॥ ५७ ॥

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि ।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥ ५८ ॥

मैं तो अत्यंत बलवानोंकी भी विजय दैवके अधीनही समझता हूं; इस ही कारण महाबाहु भीष्म पितामह सैंकडों बाणोंसे विद्ध होकर समरमें शरशय्या पर शयन कर रहे हैं ॥ ५८ ॥

विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसंधः सुदक्षिणः ॥ ५९ ॥

युद्धभूमिमें विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसन्ध, सुदक्षिण, ॥५९॥

शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ ६० ॥

रथियोंमें मुख्य शल और पराक्रमी भगदत्त आदि महारथी और दूसरे भी बहुतसे राजा देवताओंके लिये भी अत्यंत दुर्जय थे ॥ ६० ॥

निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ६१ ॥

परंतु उन अत्यंत बलवान् शूर राजाओंको भी पाण्डवोंने समरमें मार डाला; पुरुषाधम ! इसमें दैवकी प्रतिकूलताके अतिरिक्त और दूसरा कौनसा कारण तुम समझ रहे हो ? ॥ ६१ ॥

यांश्च तान्स्तौषि सततं दुर्योधनरिपून्द्विज ।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६२ ॥

हे विप्र ! तुम जो दुर्योधनके शत्रुओंकी सदा स्तुति करते रहते हो, इस समय देखो उन लोगोंके भी सैकडों तथा सहस्रों महाबलवान् शूरवीर मारे गये हैं ॥ ६२ ॥

क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह ।
प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथंचन ॥ ६३ ॥

कौरव और पाण्डव दोनों दलोंकी सारी सेनाएं हररोज नष्ट हो रही हैं, उसमें मुझे पाण्डुपुत्रों का कुछ भी विशेष प्रभाव नहीं दीख पडता है ॥ ६३ ॥

यांस्तान्बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे ।
दुर्योधनहितार्थाय जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ ५८८३ ॥

चाहे जो हो, हे अधम ब्राह्मण ! तुम जिन लोगोंको सदा सर्वदा बलवान् समझते रहते हो, मैं दुर्योधनके हितकी अभिलाषसे रणभूमिके बीच उन्हीं पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें अपनी शक्तिके अनुसार यत्न करूंगा; तब विजय होनी दैवके आधीन है ॥ ६४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥ ५८८३ ॥

: १३४ :

सञ्जय उवाच

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद्द्रुतम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने मामा कृपाचार्यको सूतपुत्र कर्णके वचनोंसे इस प्रकार अवमानित होते देख, बडे वेगसे तलवार उठाकर शीघ्रतापूर्वक कर्णकी ओर दौडे ॥ १ ॥

अश्वत्थामोवाच

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥ २ ॥

अश्वत्थामा बोले– हे नीच बुद्धिवाले कर्ण ! इस समय खडा रह, यह देखो, मैं तुम्हारा सिर इसी क्षण शरीरसे पृथक् किये देता हूं ॥ २ ॥

संजय उवाच

तमुत्पतन्तं वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
न्यवारयन्महाराज कृपश्च द्विपदां वरः ॥ ३ ॥

संजय बोले– महाराज ! इस प्रकार वेगपूर्वक अश्वत्थामाको कर्णकी ओर दौडते देख मनुष्योंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य और स्वयं राजा दुर्योधनने उन्हें निवारण किया ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः ।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ४ ॥

कर्ण बोले– हे कुरुसत्तम ! यह दुष्ट बुद्धि और नीच ब्राह्मण स्वयंको शूरवीर मानकर युद्धकी इच्छा करता है । आप इसे छोड दीजिये, यह मेरे पराक्रमको मालूम करे ॥ ४ ॥

अश्वत्थामोवाच

तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फल्गुनो नाशयिष्यति ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा बोले– रे नीच बुद्धिवाले सूतपुत्र ! हमने तेरा यह अपराध क्षमा किया, परन्तु अर्जुन तुम्हारे इस बढे हुए अभिमानका नाश करेंगे ॥ ५ ॥

दुर्योधन उवाच

अश्वत्थामन्प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रे कथंचन ॥ ६ ॥

दुर्योधन बोले– हे माननीय अश्वत्थामा ! आप प्रसन्न होईये, तुम्हें क्षमा करना चाहिये; सूतपुत्रके ऊपर किसी प्रकार भी क्रोध करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ६ ॥

त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले ।
महत्कार्यं समायत्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ ७ ॥

हे द्विजसत्तम ! देखिये आप, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, मद्रराज शल्य और सुबलपुत्र शकुनि– इन कई एक वीरोंके ऊपर मेरे बहुत बडे कार्यका भार अर्पित है, इससे आप प्रसन्न होईये ॥ ७ ॥

एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥ ८ ॥

हे ब्राह्मण ! यह देखो, सब पाण्डव सैनिक चारों ओरसे राधापुत्र कर्णको आवाहन करते हुए युद्ध करनेके लिये उनके संमुख आ रहे हैं ॥ ८ ॥

संजय उवाच

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ।
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! उन योद्धाओंको संमुख आते देखकर महापराक्रमी, अत्यन्त तेजस्वी, रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण भी अपने बाहुबलके आसरे और देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भांति मुख्य मुख्य कौरवोंके बीचमें स्थित होकर अपना धनुष चढाके युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ।
संरब्धस्य महाराज सिंहनादविनादितम् ॥ १० ॥

महाराज ! अनन्तर पाण्डवोंके सङ्ग क्रोधी कर्णका सिंहनाद शब्दके सहित महाघोर युद्ध होने लगा ॥ १० ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन्पाञ्चालाश्च यशस्विनः ।
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन् ॥ ११ ॥

राजन् ! पाण्डव लोग और यशस्वी पाञ्चाल योद्धा उस रणभूमिके बीच महाबाहु कर्णको देखकर उच्च स्वरसे इस प्रकार बोलने लगे– ॥ ११ ॥

अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ।
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन्पुरुषाधम ॥ १२ ॥

यही कर्ण है, कहां है कर्ण? अरे नीच दुष्ट कर्ण ! इस महायुद्धमें खडा रह और हमारे सङ्ग युद्ध कर ! ॥ १२ ॥

अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाब्रुवन् ।
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ॥ १३ ॥
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता ।
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ॥ १४ ॥

दूसरे कोई पुरुष राधापुत्र कर्णको देखते ही क्रोधसे नेत्र लाल करके यह बचन कहने लगे । सब श्रेष्ठ राजा मिलकर इस नीच तथा अभिमानी सूतपुत्रको शीघ्र ही मार डालें; इसके जीवित रहनेसे कोई लाभ नहीं है; यह पापी पुरुष सदा कुन्तीपुत्रोंके साथ अत्यन्त वैर रखता है ॥ १३–१४ ॥

एष मूलं ह्यनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ।
हतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रिया: समुपाद्रवन् ॥ १५ ॥
महता शरवर्षेण छादयन्तो महारथाः ।
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ॥ १६ ॥

यह पापी सदा ही दुर्योधनके मत पर चलता है, सब अनर्थोंकी – दुःखकी जड है, इससे इसका ही इस समय बध करना उचित है । यह बचन कहके सम्पूर्ण महारथी क्षत्रिय योद्धा लोग पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे अपने अनेक बाणोंकी भारी वर्षासे आच्छादित करते हुए कर्णके बधके निमित्त उनकी ओर दौडे ॥ १५–१६ ॥

तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महारथान् ।
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ॥ १७ ॥

युद्धमें सूतपुत्र कर्ण उन सम्पूर्ण महारथियोंको इस प्रकार अपनी ओर आते देख तनिक भी व्यथित नहीं हुए और उनके मनमें त्रासही नहीं हुआ ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा नगरकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ।
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ॥ १८ ॥

नगरोंके समान उस सैन्यसागरको उमडा हुआ देख संग्राममें अपराजित तुम्हारे पुत्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छा करके ॥ १८ ॥

सायकौघेन बलवान्क्षिप्रकारी महाबलः ।
वारयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ॥ १९ ॥

हे भरतर्षभ ! बलवान्, शीघ्रता करनेवाले और महान् शक्तिशाली कर्णने बाणोंकी वर्षासे सब ओरसे उस शत्रुसेनाको रोक दिया ॥ १९ ॥

ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ।
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥ २० ॥

अनन्तर वे सैकड़ों और सहस्रों राजा लोग अपने धनुषोंको फेरते हुए अपनी बाणोंकी वर्षासे कर्णको निवारण करते हुए, राधापुत्र कर्णके संग इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे दानवोंने इन्द्रके संग युद्ध किया था ॥ २० ॥

शरवर्षं तु तत्कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समन्ताद्व्यकिरत्प्रभो ॥ २१ ॥

राजन् ! राजाओंकी हुई उस बाणोंकी वर्षाको कर्णने अपने बाणोंकी महान् वृष्टि करके सब ओर बिखेर दिया ॥ २१ ॥

तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ २२ ॥

जैसे देवासुर युद्धके समय दानवोंके साथ देवराज इन्द्रका युद्ध हुआ था, वैसे ही आपसमें एक दूसरेके वधकी अभिलाष करनेवाले उन शूरबीरों और कर्णका वह महाघोर संग्राम होने लगा ॥ २२ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
यदेनं समरे यत्ता नाप्नुवन्त परे युधि ॥ २३ ॥

उस समय हम लोगोंने सूतपुत्र कर्णका अत्यन्त आश्चर्यमय हस्तलाघव और अस्त्र चलानेकी फुर्तीको अवलोकन किया कि शत्रुसेनाके योद्धा लोग युद्धमें अपनी शक्तिके अनुसार सब ओरसे पराक्रम प्रकाशित करके भी कर्णको अपने वशमें न कर सके ॥ २३ ॥

निवार्य च शरौघांस्तान्पार्थिवानां महारथः ।
युगेष्वीषासु छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ।
आत्मनामाङ्कितान्बाणान्राधेयः प्राहिणोच्छितान् ॥ २४ ॥

महारथी राधापुत्र कर्णने क्षण भरके बीच उन सम्पूर्ण राजाओंके चलाये हुए बाणजालको निवारण करके, अपने नामसे अङ्कित सैकड़ों बाणोंको उनके रथके जूए, ईषादण्ड, छत्र, ध्वजा और घोड़ोंके ऊपर चलाया ॥ २४ ॥

ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ।
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ॥ २५ ॥

अनन्तर वे सम्पूर्ण राजालोग कर्णके बाणोंसे पीडित और व्याकुल होकर शीतसे पीडित गौवोंकी भांति इधर उधर दौड़ने लगे ॥ २५ ॥

हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ।
तत तत्राभ्यवेक्षामः संघान्कर्णेन पातितान् ॥ २६ ॥

उस समयमें हाथी, घोडे और रथि मनुष्योंके समूह कर्णके बाणोंसे मरकर गिरते हुए हमने वहां देखे थे ॥ २६ ॥

शिरोभिः पतितै राजन्बाहुभिश्च समन्ततः ।
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ २७ ॥

महाराज ! युद्धमें पीछे न हटनेवाले उन शूरवीरोंके कटे हुए अनगिनत सिरों और भुजाओंसे वह रणभूमि एकबारगी परिपूर्ण हो गई ॥ २७ ॥

हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ।
बभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ॥ २८ ॥

कुछ लोग मारे गये थे, कुछ मारे जा रहे थे और कुछ सब ओर पीडासे आर्तनाद कर रहे थे; इस कारण वह रणभूमि साक्षात् यमपुरीके समान भयंकर दिखायी देने लगी ॥ २८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
अश्वत्थामानमासाद्य तदा वाक्यमुवाच ह ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन कर्णका ऐसा पराक्रम देखकर अश्वत्थामाके पास जाकर बार बार यह वचन बोले ॥ २९ ॥

युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ।
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।
कार्त्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥ ३० ॥

हे आचार्यपुत्र ! यह कवचधारी कर्ण अकेले ही युद्धभूमिमें स्थित होकर पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण राजाओंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं । यह देखो, जैसे असुरोंकी सेना पार्वतीपुत्र स्वामि कार्त्तिकके अस्त्रोंसे पीडित होकर इधर उधर भाग गई थी, वैसे ही कर्णके तेज बाणोंसे पीडित होकर यह पाण्डवोंकी सेना चारों ओर भागी जा रही है; ॥ ३० ॥

दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥ ३१ ॥

परन्तु अर्जुन बुद्धिमान् कर्णके बाणोंसे अपनी सेनाके पुरुषोंको युद्धमें पराजित होते देखकर, सूतपुत्रका वध करनेकी इच्छासे उसकी ओर आ रहे हैं ॥ ३१ ॥

तद्यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम् ।
न हन्यात्पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३२ ॥

इसलिये पाण्डुपुत्र अर्जुन जिससे हम लोगोंके देखते देखते ही युद्धमें महारथी सूतपुत्र कर्णका वध न कर सकें, आप वैसे ही उपायका विधान कीजिये ॥ ३२ ॥

ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ३३ ॥

अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और हृदिकपुत्र महारथी कृतवर्माने सूतपुत्र कर्णकी रक्षाके लिये अर्जुनके संमुख गमन किया ॥ ३३ ॥

आयान्तं दृश्य कौन्तेयं वृत्रं देवचमूमिव ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णो यथा शक्रः प्रतापवान् ॥ ३४ ॥

देवसेनापर आक्रमण करनेवाले वृत्रासुरके समान अर्जुनको कौरव सेनाकी ओर आते देख, वृत्रासुरपर चढाई करनेवाले इन्द्रके समान प्रतापी कर्णने भी अर्जुनपर धावा किया ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संरब्धं फल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत्किमुत्तरम् ॥ ३५ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! सूर्यपुत्र कर्णने क्रोधी कालान्तक यमराजके समान अर्जुनको संमुख आते देख उस समयके अनुसार किस कार्यका अनुष्ठान किया ? ॥ ३५ ॥

स ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ।
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणे ॥ ३६ ॥

वह महारथी सूतपुत्र कर्ण सदा ही अर्जुनके साथ स्पर्धा किया करता है और महायुद्धमें अत्यंत भयंकर अर्जुनके जीतनेकी आशा भी करता है ॥ ३६ ॥

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ।
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ॥ ३७ ॥

सूत ! इससे सदाके अत्यन्त वैरी अर्जुनको सहसा संमुख आया देख, सूर्यपूत्र कर्णने अपने कर्त्तव्य कर्मके विषयमें क्या निश्चय किया ? ॥ ३७ ॥

सञ्जय उवाच

आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजः प्रतिगजं यथा ।
असंभ्रान्ततरः कर्णः प्रत्युदीयाद्धनंजयम् ॥ ३८ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! जैसे एक मतवाले हाथीको देखकर दूसरा मतवाला हाथी उसकी ओर सामना करनेके लिये आगे दौडता है, वैसे ही राधापुत्र कर्ण अर्जुनको अपनी ओर आते देख निर्भयचित्तसे उनका सामना करनेके लिये उनकी ओर दौडे ॥ ३८ ॥

तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ।
वारयामास तेजस्वी पाण्डवः शत्रुतापनः ॥ ३९ ॥

वैकर्तन कर्णको वेगपूर्वक अपनी ओर आते देख तेजस्वी, शत्रुतापन पाण्डुपुत्र अर्जुन अपने तेज बाणोंसे उन्हें निवारण करने लगे ॥ ३९ ॥

तं कर्णः शरजालेन छादयामास मारिष ।
विव्याध च सुसंक्रुद्धः शरैस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ४० ॥

हे भारत ! तब राधापुत्र कर्णने अपने बाणोंके जालसे अर्जुनको छिपा दिया, फिर अत्यंत क्रुद्ध होकर तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ४० ॥

तस्य तल्लाघवं पार्थो नामृष्यत महाबलः ।
तस्मै बाणाञ्शिलाधौतान्प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ॥ ४१ ॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय त्रिंशतं शत्रुतापनः ।
विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

परन्तु महाबली शत्रुतापन पृथापुत्र अर्जुनसे कर्णका हस्तलाघव न सहा गया, उन्होंने सूतपुत्र कर्णके ऊपर शिलापर घिसे हुए तीन सौ तेज बाणोंको चलाया, और क्रुद्ध होकर प्रतापी अर्जुनने एक बाणसे उन्हें विद्ध किया ॥ ४१–४२ ॥

सव्ये भुजाग्रे बलवान्नाराचेन हसन्निव ।
तस्य विद्धस्य वेगेन कराच्चापं पपात ह ॥ ४३ ॥

फिर महाबली अर्जुनने हंसते हुए एक नाराच बाणसे कर्णके बायें हाथकी हथेलीको विद्ध किया । हथेली विद्ध होते ही कर्णके हाथसे धनुष छूटकर गिर पडा; ॥ ४३ ॥

पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ।
छादयामास बाणौघैः फल्गुनं कृतहस्तवत् ॥ ४४ ॥

परन्तु उस महाबलवान् कर्णने अर्धनिमेषमें फिर धनुष ग्रहण करके सिद्धहस्त योद्धाके समान बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको छिपा दिया ॥ ४४ ॥

शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ।
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनंजयः ॥ ४५ ॥

भारत ! परन्तु अर्जुनने हंसकर सूतपुत्रकी उस बाणवृष्टिको अपने बाणोंकी वृष्टिसे नष्ट किया ॥ ४५ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ।
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ ४६ ॥

महाराज ! इसी प्रकारके दोनों महाधनुर्धर वीर परस्पर आघात–प्रतिघात करनेकी इच्छासे अपने बाणोंकी वर्षा करके एक दूसरेको छिपाने लगे ॥ ४६ ॥

तदद्भुतमभूद्युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।
क्रुद्धयोर्वाशिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ॥ ४७ ॥

जैसे ऋतुमती हथिनीके लिये दो जंगली क्रोधी हाथियोंका आपसमें युद्ध होता है, वैसे ही उस रणभूमिमें कर्ण और अर्जुनका आपसमें अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ४७ ॥

ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः ॥ ४८ ॥
अनन्तर महाधनुर्द्धर अर्जुनने कर्णका पराक्रम देख शीघ्रताके सहित उनके धनुषकी मुठ्ठीको काट दिया ॥ ४८ ॥

अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम् ।
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ॥ ४९ ॥
अनन्तर भल्लोंसे उनके रथके चारों घोडोंका वध करके, फिर शत्रुतापन अर्जुनने उनके सारथिका शिर धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४९ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ।
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ॥ ५० ॥
अनन्तर धनुष कट जाने और घोडे और सारथिके मारे जानेपर कर्णको पाण्डुपुत्र अर्जुनने चार बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५० ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ।
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ॥ ५१ ॥
तब पुरुषश्रेष्ठ कर्ण अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर घोडोंसे रहित रथसे शीघ्रता पूर्वक कूदकर अपने जीवितकी रक्षाके लिये तुरंत ही कृपाचार्यके रथपर जा चढे ॥ ५१ ॥

राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ।
धनंजयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५२ ॥
हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ओरके शूरवीर अर्जुनके बाणोंसे क्षतविक्षत शरीरसे युक्त थे, उसपर भी राधापुत्र कर्णको पराजित हुआ देखकर चारों ओर भागने लगे ॥ ५२ ॥

द्रवतस्तान्समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ।
निवर्तयामास तदा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ५३ ॥
कुरुराज दुर्योधनने अपनी सेनाके योद्धाओंको भागते देख उन्हें लौटाया और उस समय यह बात कहने लगे– ॥ ५३ ॥

अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ।
एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान्हनिष्यामि सपाञ्चालान्ससोमकान् ॥ ५४ ॥
हे क्षत्रिय श्रेष्ठ शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग क्यों भागते हो ? लौटके युद्ध करो, मैं अर्जुनका वध करनेके निमित्त स्वयं युद्धभूमिमें उनके संमुख गमन करता हूं । मैं पाञ्चाल और सोमकों के सहित पाण्डवोंका नाश करूंगा ॥ ५४ ॥

अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥ ५५ ॥

आज गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनके संग युद्ध करते समय कुन्तीके सब पुत्र प्रलय-कालके यमराज समान मेरा पराक्रम देखेंगे ॥ ५५ ॥

अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवायतीः ॥ ५६ ॥

आज युद्धमें शूरवीर योद्धा लोग मेरे धनुषसे छूटे हुए सहस्रों बाणोंको शलभसमूहकी भांति देखेंगे ॥ ५६ ॥

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ५७ ॥

आज जब मैं युद्धभूमिके बीच अपना धनुष चढा कर लगातार बाणोंको बर्षाने लगूंगा, तब सेनाके पुरुष मुझे वर्षाकालमें जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भांति मालूम करेंगे ॥ ५७ ॥

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फल्गुनात् ॥ ५८ ॥

हे शूरवीर पुरुषो ! आज मैं अपने तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंसे अवश्य ही अर्जुनको युद्धमें जीत लूंगा, इससे तुम लोग अर्जुनसे भय त्यागके निर्भयताके सहित रणभूमिमें स्थित रहो ॥ ५८ ॥

न हि मद्वीर्यमासाद्य फल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ५९ ॥

जैसे समुद्र तटभूमितक पहुंचकर शान्त हो जाता है, वैसे ही अर्जुन भी मेरे समीप आकर मेरा पराक्रम नहीं सह सकेंगे ॥ ५९ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ ६० ॥

ऐसा वचन कह कर दुर्धर्ष राजा दुर्योधन क्रोधसे नेत्र लाल करके अपनी महासेनाके बीच घिर कर अर्जुनकी और दौडे ॥ ६० ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६१ ॥

तब शारद्वानके पुत्र कृपाचार्य महाबाहु राजा दुर्योधनको अर्जुनकी ओर गमन करते देख, अपने भानजे अश्वत्थामाके पास जाकर यह वचन बोले- ॥ ६१ ॥

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्छितः ।
पतंगवृत्तिमास्थाय फल्गुनं योद्धुमिच्छति ॥ ६२ ॥

देखो, क्रोधके वशमें होकर महाबाहु कुरुराज दुर्योधन अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे इस प्रकार गमन कर रहे हैं, जैसे पतङ्ग अग्निकी ओर दौडते हैं ॥ ६२ ॥

यावन्नः पश्यमानानां प्राणान्पार्थेन संगतः ।
न जह्यात्पुरुषव्याघ्रस्तावद्वारय कौरवम् ॥ ६३ ॥

इससे जबतक पुरुषसिंह राजा दुर्योधन अर्जुनके समीप पहुंच कर हमारे देखते देखते प्राण त्याग नहीं करते हैं, उससे पहिले ही तुम उन्हें अर्जुनकी ओर जानेसे निवृत्त करो ॥ ६३ ॥

यावत्फल्गुनबाणानां गोचरं नाधिगच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद्वारय तं द्रुतम् ॥ ६४ ॥

जब तक पराक्रमी कुरुराज दुर्योधन आज अर्जुनके बाणोंकी पहुंचके भीतर नहीं उपस्थित होते हैं, उससे पहिले ही तुम उन्हें युद्धभूमिमें शीघ्रतासे निवृत्त करो ॥ ६४ ॥

यावत्पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसंनिभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद्युद्धान्निवार्यताम् ॥ ६५ ॥

जब तक अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए केंचुलीसे रहित सर्पोंके समान तेजस्वी बाण कुरुराज दुर्योधनको भस्म नहीं करते हैं, उससे पहिले ही तुम उन्हें युद्धसे निवृत्त करो ॥ ६५ ॥

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥ ६६ ॥

हे प्यारे अश्वत्थामा ! मैं इस कार्यको अत्यन्त ही अनुचित समझ रहा हूं, कि हम सब लोगोंके रहते ही राजा दुर्योधन बिना किसी सहायकके स्वयं ही अर्जुनके साथ युद्धके लिये जाय ॥ ६६ ॥

दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ६७ ॥

विशेष करके कुरुराज दुर्योधन यदि किरीटधारी कुन्तीपुत्र अर्जुनके सङ्ग आज युद्ध करनेमें प्रवृत्त होंगे, तो शार्दूलके सङ्ग युद्ध करते हुए हाथीकी भांति उनका प्राण बचनेमें अत्यन्त ही कठिनता होवेगी ॥ ६७ ॥

मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितं समभाषत ॥ ६८ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने मामाकी आज्ञा सुनकर शीघ्रताके सहित दुर्योधनके समीप जाकर यह वचन बोले— ॥ ६८ ॥

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ६९ ॥

हे गान्धारी पुत्र ! देखो, तुम्हारे हितकी सदा अभिलाष करनेवाला मैं जीवित हूं, मेरा अनादर करके स्वयं युद्ध करनेके लिये अर्जुनके समीप जाना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ६९ ॥

न हि ते संभ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ७० ॥

सुयोधन ! अर्जुनको पराजित करनेके लिये तुम कुछ भी चिन्ता मत करो । तुम यहां ही स्थित रहो, मैं अर्जुनको युद्धसे निवारण करूंगा ॥ ७० ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यः पाण्डुपुत्रान्वै पुत्रवत्परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ७१ ॥

राजा दुर्योधन बोले— हे द्विजसत्तम ! देखिये, आचार्य रणभूमिमें पाण्डुपुत्रोंको अपने पुत्रकी भांति रक्षा करते रहते हैं, और तुम भी सदा उन लोगोंको युद्धभूमिमें देखकर उपेक्षा करते हो ॥ ७१ ॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ७२ ॥

इसके अतिरिक्त मेरे अभाग्यसे होवे अथवा धर्मराज युधिष्ठिर और द्रौपदीके प्रियकार्यको करनेके निमित्त ही होवे, युद्धभूमिमें जो आप लोगोंका पराक्रम पूर्णरूपसे प्रकाशित नहीं होता इसका कारण मुझे मालूम नहीं होता है ॥ ७२ ॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ७३ ॥

मुझे धिक्कार है ! मुझ लोभीके लिये ही ये सम्पूर्ण बन्धु बान्धव लोग अपराजित और सदा सुख भोग करनेके योग्य होकर भी महान् दुःख पारहे हैं ॥ ७३ ॥

को हि शस्त्रभृतां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रून्न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद्गौतमीसुतः ॥ ७४ ॥

सब शस्त्रधारियोंमें अग्रणी, युद्धमें महादेवके समान पराक्रमी और शक्तिमान् होकर भी कृपी-पुत्रके अतिरिक्त दूसरा कौन वीर पुरुष शत्रुओंका युद्धमें संहार नहीं करेगा ? ॥ ७५ ॥

अश्वत्थामन्प्रसीदस्व नाशयैतान्समाहितान् ।
त्वदास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवापि नानघ ॥ ७५ ॥

हे पापरहित अश्वत्थामा ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये । देखिये, तुम्हारे अस्त्रोंके मार्गमें देवता लोग भी नहीं ठहर सकते ! इससे आप मेरे इन शत्रुओंका नाश कीजिये ॥ ७५ ॥

पाञ्चालान्सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान्हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ७६ ॥

हे द्रोणपुत्र ! आप अनुयायियोंके सहित सोमकवंशी और पाञ्चाल योद्धाओंका नाश कीजिये; फिर हम लोग तुमसे ही रक्षित होकर बाकी बचे हुए शत्रुओंका वध-करेंगे ॥ ७६ ॥

एते हि सोमका विप्र पाञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धाः विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ७७ ॥

हे विप्र ! यह देखिये, ये यशस्वी पाञ्चाल और सोमकवंशीय योद्धा लोग क्रुद्ध होकर दावाग्निकी भांति मेरी सेनाओंमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ ७७ ॥

तान्वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ७८ ॥

हे महाबाहो द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ! इससे जब तक वे किरीटधारी अर्जुनसे रक्षित होकर मेरी सेनाका नाश नहीं करते हैं, उससे पहिले ही आप उन्हें रोको ॥ ७८ ॥

आदौ वा यदि वा पश्चात्तवेदं कर्म मारिष ।
त्वमुत्पन्नो महाबाहो पाञ्चालानां वधं प्रति ॥ ७९ ॥

हे मारिष ! पहले करो, चाहे पीछे करो; यह तुम्हारा ही कर्त्तव्य कर्म है । हे महाबाहो ! पाञ्चालोंका नाश करनेहीके लिये तुम उत्पन्न हुए हो ॥ ७९ ॥

करिष्यसि जगत्सर्वमपाञ्चालं किलाच्युत ।
एवं सिद्धाब्रुवन्वाचो भविष्यति च तत्तथा ॥ ८० ॥

अच्युत ! इससे तुम अवश्य ही इस जगत्को पाञ्चाल योद्धा लोगोंसे रहित करोगे । विशेष करके सिद्ध लोग भी जब तुम्हारे विषयमें ऐसा वचन कहा करते हैं तब यह कार्य अवश्य ही पूर्ण होगा ॥ ८० ॥

न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपाञ्चालाः सत्यमेतद्वचो मम ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुस्त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ ५९६४ ॥

मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं, कि पाञ्चाल और पाण्डवोंकी तो कुछ बातही नहीं है, इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारे अस्त्रोंके सम्मुख नहीं ठहर सकते ॥ ८१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३४ ॥ ५९६४ ॥

: १२५ :

सञ्जय उवाच

दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः ।
प्रत्युवाच महाबाहो यथा वदसि कौरव ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके ऐसे वचनोंको सुनकर युद्धदुर्मद महाबाहु द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उनसे यह वचन बोले, हे कुरुराज दुर्योधन ! तुम जैसा कहते है, वह ठीक है ॥ १ ॥

प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे ।
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ।
शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत् ॥ २ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! पाण्डव लोग जैसे मुझे और मेरे पिताको सदा बहुत प्रिय हैं; वैसे ही हम दोनों भी उन लोगोंके प्रीतिके पात्र हैं; परन्तु युद्धके समय यह बात नहीं रहती । हे तात ! युद्धके समय हम लोग निर्भयचित्तसे प्राणोंकी आशा छोडके शक्तिके अनुसार युद्ध किया करते हैं ॥ १ ॥

अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च ।
निमेषात्पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र ! मैं, कर्ण, शल्य, मेरे मामा कृपाचार्य और हृदीकपुत्र कृतवर्मा निमेषभरमें पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकते हैं ॥ ३ ॥

ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात्कुरूद्वह ।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ४ ॥

और महाबाहु कुरुश्रेष्ठ ! हम लोग यदि युद्धभूमिमें स्थित न रहें, तो पाण्डव लोग भी अर्ध-निमेष भरमें कौरव सेनाके पुरुषोंका नाश कर सकते हैं ॥ ४ ॥

युध्यतां पाण्डवाञ्शक्त्या तेषां चास्मान्युयुत्सताम् ।
तेजस्तु तेज आसाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ५ ॥

परन्तु पाण्डव लोग और हम लोग अपनी शक्तिके अनुसार परस्पर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हैं; भारत ! इसहीसे आपसमें एकके तेजका प्रभाव दूसरेके संमुखमें शान्त हो जाता है ॥ ५ ॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी ।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥

इससे मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं, कि पाण्डुपुत्रोंके जीवित रहते बलपूर्वक उनकी सेनाको जीतना असाध्य कर्म समझियेगा ॥ ६ ॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः ।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! पाण्डवलोग सब कोई सामर्थ्यवान् हैं, इससे वह लोग अपने प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त युद्ध कर रहे हैं; तब वे तुम्हारी सेनाओंका नाश क्यों न करेंगे ? ॥ ७ ॥

त्वं हि लुब्धतमो राजन्निकृतिज्ञश्च कौरव ।
सर्वातिशङ्की मानी च ततोऽस्मानतिशङ्कसे ॥ ८ ॥

हे कौरव ! आप अत्यन्त ही लोभी, अभिमानी, कपटबुद्धिसे युक्त और सम्पूर्ण विषयोंमें शङ्कित हैं, इस ही निमित्तसे आप हम लोगोंके विषयमें शङ्का किया करते हैं ॥ ८ ॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः ।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ९ ॥

हे कुरुनन्दन महाराज दुर्योधन ! चाहे जैसा ही होवे, तुम्हारे निमित्त मैं अपने प्राणोंकी आशा छोडके यत्नवान् होकर रणभूमिमें गमन करता हूं ॥ ९ ॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान्वरान् ।
पाञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम ॥ १० ॥

मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूंगा और उनके मुख्य मुख्य वीरोंपर विजय पाऊंगा । शत्रुदमन ! आज युद्धमें मैं तुम्हारे प्रिय कार्यको सिद्ध करनेके लिये पाञ्चाल, सोमक, केकय और पाण्डवोंके संग युद्ध करूंगा ॥ १० ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पाञ्चालाः सोमकास्तथा ।
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वतः ॥ ११ ॥

आज मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे दग्ध होकर पाञ्चाल तथा सोमकवंशी शूरवीर योद्धा सिंहसे भयभीत हुई गौवोंके समान चारों ओर भाग जायंगे ॥ ११ ॥

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ।
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः ॥ १२ ॥

आज सोमकोंके सहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरा पराक्रम देखकर इस सम्पूर्ण संसारको अश्वत्थामामय समझेंगे ॥ १२ ॥

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
दृष्ट्वा विनिहतान्संख्ये पाञ्चालान्सोमकैः सह ॥ १३ ॥

आज राजा युधिष्ठिर पाञ्चाल और सोमक वीरोंको युद्धमें मारे हुए देखकर अत्यन्त ही दुःखित हो जायेंगे ॥ १३ ॥

ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान्हनिष्यामि भारत ।
न हि ते वीर मुच्येरन्मद्बाह्वन्तरमागताः ॥ १४ ॥

हे वीर कुरुराज दुर्योधन ! मैं तुमसे अधिक क्या कहूं, आज जो पुरुष मेरे संमुख आके युद्ध करेंगे मैं अवश्यही उन्हें यमपुरीमें भेज दूंगा, क्योंकि मेरी भुजाके भीतर आके वे लोग किसी प्रकारसे भी जीते हुए न लौट सकेंगे ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ।
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन्सर्वधन्विनः ।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥ १५ ॥

महाबाहु, प्राणियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर तुम्हारे पुत्रोंके प्रियसाधनके लिये सब धनुर्धर योद्धाओंको त्रस्त करते हुए शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेके लिये प्रस्थान किया ॥ १५ ॥

ततोऽब्रवीत्सकैकेयान्पाञ्चालान्गौतमीसुतः ।
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ।
स्थिरीभूताश्च युध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ॥ १६ ॥

अनन्तर अपने संमुखमें पाञ्चाल और केकय योद्धाओंको स्थित देखकर गौतमीपुत्र अश्वत्थामा उनसे यह वचन बोले, हे महारथी शूरवीरो ! तुम लोग सब कोई मिलकर मेरे शरीरके ऊपर प्रहार करो; और अपना हस्तलाघव दिखाते हुए स्थित होके मेरे सङ्ग युद्ध करो ॥ १६ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टिमपातयन् ।
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ॥ १७ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाके ऐसे वचन सुनकर वे सभी योद्धा लोग उनके ऊपर इस प्रकार अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, जैसे बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं ॥ १७ ॥

तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य चाभिभो ॥ १८ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उनके उन बाणोंको नष्ट करके, पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके संमुखमें ही उन लोगोंके बीचसे दस पराक्रमी वीरोंका वध किया ॥ १८ ॥

ते हन्यमानाः समरे पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ॥ १९ ॥

युद्धमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको छोडकर दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ १९ ॥

तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरान्पाञ्चालान्सहसोमकान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्युधि ॥ २० ॥

महाराज ! शूरवीर पाञ्चाल और सोमकोंको आगते देख धृष्टद्युम्नने युद्धमें अश्वत्थामापर आक्रमण किया ॥ २० ॥

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ।
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ॥ २१ ॥

अनन्तर सुवर्णचित्रित, युद्धसे पीछे न हटनेवाले और सजल बादलकी भाँति गंभीर शब्दसे गर्जनेवाले सौ रथों और शूरवीरोंके सङ्गमें घिरे हुए ॥ २१ ॥

पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान्निपातितान् ॥ २२ ॥

पाञ्चाल राजपुत्र महारथी धृष्टद्युम्न अपनी सेनाके योद्धाओंका नाश होते देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे इस प्रकार बोले ॥ २२ ॥

आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ।
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वा निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः ॥ २३ ॥

हे दुर्बुद्धि द्रोणपुत्र ! सेनाके साधारण पुरुषोंका वध करके तुम कौनसा प्रशंसित पराक्रम प्रकाशित कर रहे हो ? यदि तुम शूरवीर पुरुष हो, तो मेरे संमुख खडे होकर युद्ध करो । इस समय मेरे सामने खडे हो जाओ, मैं अवश्य ही तुम्हें यमपुरीमें भेज दूंगा ॥ २३ ॥

ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा वचन कहके प्रतापी धृष्टद्युम्नने आचार्यपुत्र अश्वत्थामाको तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २४ ॥

ते तु पङ्क्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ।
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ॥ २५ ॥

जैसे मधुके लोभी उद्दाम भौंरोंके समूह चारों ओरसे घूमकर फूले हुए वृक्षके ऊपर वेगपूर्वक गिरते हैं, वैसे ही धृष्टद्युम्नके चलाये हुए सुवर्णमय पंख और तीक्ष्ण धारवाले, सबके शरीरोंको भेद करनेवाले वे शीघ्रगामी बाणोंके समूह अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये ॥२५॥

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः ।
मानी द्रौणिरसंभ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ॥ २६ ॥
महामानी अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर इस प्रकार क्रुद्ध हुए जैसे पांवसे पूछ दबनेपर सर्प क्रुद्ध होता है । अनन्तर अश्वत्थामा हाथमें एक बाण ग्रहण करके संभ्रम-रहित हो बोले ॥ २६ ॥

धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ।
यावत्त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ २७ ॥
हे धृष्टद्युम्न ! तुम क्षण भर मेरे संमुख युद्धभूमिमें रहो तो सही, मैं इस ही समय अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारा वध करके तुम्हें यमपुरीमें भेजता हूं ॥ २७ ॥

द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ॥ २८ ॥
शत्रुवीरनाशन अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नसे ऐसा वचन कहके अपना हस्तलाघव प्रकाशित करते हुए लगातार अपने बाणोंकी वर्षाकर चारों ओरसे धृष्टद्युम्नको छिपा दिया ॥ २८ ॥

स छाद्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ।
द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा ॥ २९ ॥
अनन्तर समरमें रणदुर्मद पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके बाणजालसे छिपकर उन्हें निवारण करते हुए डांटकर यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥

न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ।
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।
ततस्त्वाहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३० ॥
हे दुर्बुद्धि विप्र ! तुम मेरी उत्पत्ति और प्रतिज्ञाके विषयसे अज्ञात नहीं हो । मैं पहले द्रोणाचार्यका वध करके पीछे तेरा भी प्राण नाश करूंगा; इसलिये द्रोणाचार्यके जीवित रहते आज समरमें तुम्हारा वध नहीं करूंगा ॥ ३० ॥

इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ।
नेष्यामि मृत्युलोकायेत्येवं मे मनसि स्थितम् ॥ ३१ ॥
हे नीचबुद्धिवाले ब्राह्मण ! आज इस ही रात्रिके समय सवेरा होनेसे पहले ही युद्धभूमिमें तुम्हारे पिताका वध करके पीछे तुम्हें भी युद्धमें यमपुरीमें भेजूंगा, मैंने अपने मनमें ऐसा ही निश्चय किया है ॥ ३१ ॥

यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ।
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

कुन्तीपुत्रोंके ऊपर तुम्हारा जो द्वेष भाव और कौरवोंके ऊपर तुम्हारा जो भक्तिभाव है, युद्धभूमिमें स्थिर होके उसे दिखाओ; आज जीते जी तुम मेरे सम्मुखसे मुक्त न हो सकोगे ॥ ३२ ॥

यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ।
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधम ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मणाधम ! जो ब्राह्मण तेरी भांति ब्राह्मणका कर्म छोडके क्षत्रिय धर्ममें रत होता है, वह सम्पूर्ण पुरुषोंका ही वध्य होजाता है ॥ ३३ ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३४ ॥

द्विजसत्तम अश्वत्थामा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके ऐसे कडवे वचनोंको सुनकर अत्यन्तही क्रुद्ध होकर उनसे बोले— अरे ! खडा रह, खडा रह ! ॥ ३४ ॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ।
छादयामास च शरैर्निःश्वसन्पन्नगो यथा ॥ ३५ ॥

वे इस प्रकार धृष्टद्युम्नकी ओर देखने लगे मानो दृष्टिसे देखकर ही उन्हें भस्म कर देंगे । अनन्तर अश्वत्थामा सर्पके समान बार बार लम्बी और गर्म सांस छोडके अपने बाणोंकी वर्षासे धृष्टद्युम्नको छिपाने लगे ॥ ३५ ॥

स छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ।
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ॥ ३६ ॥
नाकम्पत महाबाहुः स्वधैर्यं समुपाश्रितः ।
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ॥ ३७ ॥

हे महाराज ! पाञ्चाल सेनाके बीच घिरे हुए रथियोंमें मुख्य महाबाहु धृष्टद्युम्न युद्धमें अश्वत्थामाके बाणोंसे छिपे जानेपर थोडा भी विचलित नहीं हुए और अपने वीर्य बलके आसरेसे अश्वत्थामाकी ओर अनेक प्रकारके तीक्ष्ण बाण चलाने लगे ॥ ३६–३७ ॥

तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपरे रणे ।
निवारयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ३८ ॥

इसी भांति वे दोनों महाधनुर्द्धारी वीर अत्यंत क्रुद्ध होकर प्राणपणसे रणभूमिके बीच स्थित होके, अपने बाणोंसे एक दूसरेके बाणोंको निवारण करते हुए, फिर जलधाराकी भांति चारों ओर लगातार अपने बाणोंको वर्षाने लगे ॥ ३८ ॥

×

द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा संपूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ३९ ॥

पृषत वंशीय धृष्टद्युम्न और द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके महाघोर भयङ्कर युद्धको देखकर सिद्ध, चारण और वायुमें गमन करनेवाले प्राणी उन दोनों वीरोंकी अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे ॥ ३९ ॥

शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं प्रदिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत्कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४० ॥

उन दोनों वीरोंने अपने बाणोंको चलाकर सब आकाशमण्डलको परिपूरित करके ऐसा अन्धकार उत्पन्न किया, कि दोनों ही अदृश्य हो कर युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ परस्परजयैषिणौ ॥ ४१ ॥

आपसमें एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले यत्नवान् और एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले वे दोनो वीर मण्डलकार गतिसे धनुष फेरते हुए युद्धमें नृत्यसा कर रहे थे ॥ ४१ ॥

अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
संपूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥ ४२ ॥

तथा वे महाबाहु वीर नाना भांतिके युद्ध कौशल दिखाते हुए श्रेष्ठ योद्धाओंसे हजारों बार प्रशंसित होकर शीघ्रतापूर्वक विचित्र युद्ध करने लगे ॥ ४२ ॥

तौ प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४३ ॥

उन दोनोंको वनके दो मतवाले जंगली हाथियोंकी भांति रणभूमिमें युद्ध करते देख दोनों सेनाओंमें अत्यंत जोरसे हर्षनाद होने लगा ॥ ४३ ॥

सिंहनादरवाश्चासन्दध्मुः शङ्खांश्च मारिष ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥

मारिष ! सब ओर सिंहनाद होने लगा; सैनिक शंखनाद और युद्धके सैकडों सहस्रों जुझाऊ बाते बजाने लगे ॥ ४४ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमिव तद्युद्धं समरूपं तदाभवत ॥ ४५ ॥

कायरोंके भयको बढानेवाले उस महाघोर तुमुल संग्रामके समय मुहूर्त भरतक उन दोनोंका समभावसे युद्ध होता रहा ॥ ४५ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः।
ध्वजं धनुस्तथा छत्त्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी।
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद्रणे ॥ ४६ ॥

अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने महात्मा धृष्टद्युम्नके रथकी ध्वजा, छत्र, चारों घोडे, सारथी, दोनों पृष्ठरक्षक योद्धाओं और उनके धनुषको काट दिया, फिर युद्धमें उनपर बडे वेगसे आक्रमण किया ॥ ४६ ॥

पाञ्चालांश्चैव तान्सर्वान्बाणैः संनतपर्वभिः।
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४७ ॥

उस समय अत्यन्त तेजस्वी अश्वत्थामाने पाञ्चाल योद्धाओंको अपने सैकडों सहस्रों नतपर्व बाणोंसे पीडित करके उन्हें युद्धभूमिसे भगा दिया ॥ ४७ ॥

ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ।
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत्कर्म वासवस्येव संयुगे ॥ ४८ ॥

हे राजन्! रणभूमिके बीच द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका इन्द्रके समान उस महान कर्मको देखकर पाण्डव सेना भयभीत होगयी ॥ ४८ ॥

शतेन च शतं हत्वा पाञ्चालानां महारथः।
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन्वै महारथान् ॥ ४९ ॥

महारथी अश्वत्थामाने पहले सौ बाणोंसे सौ पाञ्चाल योद्धाओंको मारकर फिर तीन चोखे बाणोंसे तीन महारथियोंका वध किया ॥ ४९ ॥

द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फल्गुनस्य च पश्यतः।
नाशयामास पाञ्चालान्भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ॥ ५० ॥

उस समय पाञ्चाल सेनाके जो अनेक योद्धा अश्वत्थामाके संमुख उपस्थित हुए, अश्वत्थामाने अर्जुनके देखते देखते उन सबका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ ५० ॥

ते वध्यमानाः पाञ्चालाः समरे सह सृञ्जयैः।
अगच्छन्द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः ॥ ५१ ॥

इसी भांति समरमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग अश्वत्थामाको छोडकर भाग गये; उनके रथ और ध्वज नष्ट होकर बिखर गये थे ॥ ५१ ॥

स जित्वा समरे शत्रून्द्रोणपुत्रो महारथः।
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ॥ ५२ ॥

उस समय महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रणभूमिके बीच शत्रुओंको जीत करके वर्षाकालके बादलकी भांति सिंहनाद करके गर्जने लगे ॥ ५२ ॥

स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ ५३ ॥

जैसे प्रलयकालकी अग्नि सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करके प्रकाशित होती है, वैसे ही अश्वत्थामा भी अनेक शत्रुओंका नाश करके युद्धभूमिके बीच शोभित हुए ॥ ५३ ॥

संपूज्यमानो युधि कौरवेयैर्विजित्य संख्येऽरिगणान्सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ ६०१८ ॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंकी सेनाका नाश करके शोभित हुए थे, वैसे ही प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी युद्धभूमिके बीच सहस्रों शत्रुओंको परास्त करके कौरवोंसे सम्मानित तथा प्रशंसित होकर शोभित होने लगे ॥ ५४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पैतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३५ ॥ ६०१८ ॥

: १३६ :

सञ्जय उवाच

ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १ ॥

संजय बोले– महाराज ! इसके अनन्तर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेनने चारों ओरसे अश्वत्थामाको घेर लिया ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात्पाण्डवान्संख्ये ततो युद्धमवर्तत ।
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २ ॥

वैसे ही समरमें कुरुराज दुर्योधन भी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी सेनासे घिरे हुए पाण्डवोंकी ओर दौडे । महाराज ! अनन्तर डरपोक पुरुषोंके भयको बढानेवाला उन शूरवीरोंका आपसमें महाघोर दारुण संग्राम होने लगा ॥ २ ॥

अम्बष्ठान्मालवान्वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान्क्रुद्धो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

उस समय क्रुद्ध भीमसेन अम्बष्ठ, मालव, वङ्ग, शिबि और त्रिगर्त देशीय योद्धाओंका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ३ ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान्क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ।
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ॥ ४ ॥

भीमसेनने युद्ध दुर्मद अभीषाह और शूरसेन देशीय क्षत्रियोंको खंड खंड करके उनके रुधिरसे पृथ्वीको कीचडमयी कर दिया ॥ ४ ॥

यौधेयारट्टराजन्यान्मद्रकांश्च गणान्युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ॥ ५ ॥

राजन् ! उस ही समय किरीटमाली अर्जुन भी यौधेय, आरट्ट और मद्रदेशीय वीरोंको अपने चोखे बाणोंसे प्राण विहीन करके यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ५ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिपीडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ६ ॥

सेनाके बीच बहुतेरे दो दांतोंवाले मतवाले हाथी अर्जुनके सहसा ही दूर तक जानेवाले नाराच बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दो शृङ्गवाले पर्वतकी भांति मरकर रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ६ ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च लुठमानैस्ततस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ ७ ॥

रणभूमिमें कटकर गिरे हुए कितने ही हाथियोंके सूण्ड इधर उधर तडपते हुए चलते हुए सर्पोंके समान दिखाई देते थे; उनसे आच्छादित हुई पृथ्वी शोभित हो रही थी ॥ ७ ॥

क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्त्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ॥ ८ ॥

राजाओंके सुवर्णचित्रित छत्र जो इधर उधर कटके पृथ्वीमें पडे थे उनसे वह रणभूमि इस प्रकार शोभित हो रही थी, जैसे प्रलयकालके समय सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंसे युक्त आकाशमण्डल शोभित होता है ॥ ८ ॥

हत प्रहरताभीता विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति ॥ ९ ॥

उस समय लाल घोडोंसे युक्त द्रोणाचार्यके रथके निकट "मारो, शस्त्र चलाओ, निर्भय होके प्रहार करो ! काटो" इत्यादि भयंकर शब्द सुनाई देने लगे ॥ ९ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ।
व्यधमत्तान्यथा वायुर्मेघानिव दुरत्ययः ॥ १० ॥

जैसे दुर्जय प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहको छिन्न भिन्न कर देती है, वैसे ही अत्यन्त क्रुद्ध द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रसे युद्धमें शत्रुओंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥ १० ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पाञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ११ ॥

वे पाञ्चाल सैनिक द्रोणाचार्यसे पीडित होकर भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते देखते ही भयभीत होकर भागने लगे ॥ ११ ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं तव ॥ १२ ॥

अनन्तर भीमसेन और अर्जुन रथियोंकी बडी सेना सङ्ग लेकर सहसा तुम्हारी सेनाकी ओर लौट पडे ॥ १२ ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ १३ ॥

अर्जुनने द्रोणाचार्य पर दक्षिण पार्श्वसे और भीमसेनने बायें पार्श्वसे अपने तीक्ष्ण बाणोंकी भारी वर्षा शुरू कर दी ॥ १३ ॥

तौ तथा सृञ्जयाश्चैव पाञ्चालाश्च महारथाः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सोमकैः ॥ १४ ॥

महाराज ! तब मत्स्य और सोमकवंशीय वीरोंके सहित सृंजय और महारथी पांचाल योद्धाओंने उन्हींका अनुसरण किया ॥ १४ ॥

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
महत्या सेनया सार्धं जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ॥ १५ ॥

वैसे ही प्रहार कुशल तुम्हारे पुत्रकी सेनाके भी मुख्य मुख्य रथी योद्धा लोग बडी सेनाके सहित द्रोणाचार्यके रथके पास उनकी सहायतामें उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ १६ ॥

परन्तु अन्धकार और निद्रासे पीडित हुई कुरुसेना किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर फिर छिन्न भिन्न होगयी ॥ १६ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ १७ ॥

महाराज ! उस समय उन योद्धाओंको भागते देख द्रोणाचार्य और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने स्वयं निवारण किया; परन्तु तो भी वे लोग भागनेसे निवृत्त नहीं हुए ॥ १७ ॥

सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दार्यमाणा महाचमूः ।
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत्सर्वतोमुखी ॥ १८ ॥

उस महाघोर अन्धकारके समय तुम्हारे पुत्रकी वह विशाल सेना पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होके चारों ओर दौडने लगी ॥ १८ ॥

उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ६०३७ ॥

महाराज ! सैंकडों राजा लोग अपने वाहनोंको वहीं त्याग करके भयभीत होकर चारों ओर भागने लगे ॥ १९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एक सौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ ६०३७ ॥

: १३७ :

सञ्जय उवाच

सोमदत्तं तु संप्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥

सञ्जय बोले-- महाराज ! इस ही समय सात्यकि सोमदत्तको धनुष फेरते देख, अपने सारथीसे बोले, हे सूत ! तुम मुझे सोमदत्तके समीप ले चलो ॥ १ ॥

न ह्यहत्वा रणे शत्रुं बाह्लीकं कौरवाधमम् ।
निवर्तिष्ये रणात्सूत सत्यमेतद्वचो मम ॥ २ ॥

सूत ! मैं सत्य वचन कहता हूं, कि आज मैं विना इस अपने शत्रु कुरुकुलाधम बाह्लीकको मारे युद्धसे निवृत्त न होऊंगा ॥ २ ॥

ततः संप्रेषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान् ।
तुरंगमाञ्शङ्खवर्णान्सर्वशब्दातिगान्रणे ॥ ३ ॥

तब सारथीने सात्यकिका वचन सुनकर संपूर्ण शब्दोंका अतिक्रमण करनेवाले, मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले, शङ्खके समान सफेद वर्णवाले, सिन्धु देशीय सुन्दर घोडोंको वेगपूर्वक रणभूमिमें आगे चलाया ॥ ३ ॥

तेऽवहन्युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन्पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥

राजन् ! जैसे पहले असुरोंके नाश करनेको उद्यत देवराज इन्द्रको उनके घोडे ले गये थे, वैसेही मन और वायुके समान शीघ्र गमन करनेवाले वे घोडे सात्यकिको ले जाने लगे ॥ ४ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसंभ्रान्तोऽभ्यवर्तत ॥ ५ ॥
महाबाहु सोमदत्त सात्यकिको वेगपूर्वक अपनी ओर आते देख निर्भय चित्तसे उनकी ओर लौटे ॥ ५ ॥

विसृजञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ ६ ॥
जैसे बादल सूर्यको छिपाता है, वैसेही सोमदत्तने सात्यकिको वर्षा करनेवाले मेघके समान अपने बाणोंकी वृष्टि करके छिपाया ॥ ६ ॥

असंभ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुंगवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ७ ॥
भरतर्षभ ! समरमें सात्यकि भी निर्भयचित्तसे अपने बाणोंकी वर्षा करके चारों ओरसे कौरवोंमें मुख्य सोमदत्तको छिपाने लगे ॥ ७ ॥

सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत्सायकैः शितैः ॥ ८ ॥
अनन्तर सोमदत्तने साठ बाणोंसे यदुवंशीय सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया और सात्यकिने भी अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे सोमदत्तको विद्ध किया ॥ ८ ॥

तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥
वे दोनों मनुष्य श्रेष्ठ एक दूसरेके बाणोंसे विद्ध होकर वसन्तऋतुमें सुंदर पुष्पोंसे फूले हुए पलाश वृक्षोंके समान शोभित हो रहे थे ॥ ९ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥
इसी भांति कौरव और वृष्णिवंशके यशको बढानेवाले उन दोनों वीर सोमदत्त और सात्यकि के सब अंग रुधिरपूरित हो गये थे; और इस भांति वे दोनों आपसमें एक दूसरेको देखने लगे, मानो देखकर ही एक दूसरेको भस्म कर देंगे ॥ १० ॥

रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ११ ॥
दोनों शत्रुनाशन वीर मण्डलाकार गतिसे रथके मार्गोंपर घूमते हुए इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगे जैसे बादल जलकी करते हैं। उस समय उनका रूप भयंकर दीखता था ॥११॥

शरसंभिन्नगात्रौ तौ सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र व्यदृश्येतां शरक्षतौ ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! उस समय वे दोनों वीर आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे इस प्रकार विद्ध हुए कि उन दोनोंके शरीर बाणपीडित पशुओंके समान दिखाई देने लगे ॥ १२ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यरोचताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन्प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥

और वे दोनों वीर सुवर्ण पंखवाले बाणोंसे परिपूरित शरीर होकर, मानो वर्षाकालके खद्योतसमूहसे युक्त दो वृक्षोंकी भांति शोभित होने लगे ॥ १३ ॥

संप्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तौ महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दोनों महारथी वीर आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे पीडित होकर, मानो रणभूमिमें लुकसे युक्त और क्रुद्ध दो हाथियोंकी भांति विराजमान हुए ॥ १४ ॥

ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः ॥ १५ ॥

महाराज ! अनन्तर युद्धमें महारथी सोमदत्तने अर्धचंद्र बाणसे यदुवीर सात्यकिके बडे धनुषको काट दिया ॥ १५ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥ १६ ॥

और पच्चीस बाणोंसे उन्हें विद्ध करके, शीघ्रताके सहित फिर दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ १६ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥

तब सात्यकिने एक दृढ वेगवान् दूसरा धनुष ग्रहण करके शीघ्रतासे पांच बाणोंसे सोमदत्तको विद्ध किया ॥ १७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
बाह्लीकस्य रणे राजन्सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ १८ ॥

सात्यकिने फिर हंसते हुए युद्धमें एक दूसरे भल्लसे बाह्लिक पुत्र सोमदत्तके सुवर्णदण्डभूषित ध्वजको काटके गिर दिया ॥ १८ ॥

सोमदत्तस्त्वसंभ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥

सोमदत्तने अपने ध्वजको गिराया हुआ देख निर्भयचित्तसे शिनिपौत्र सात्यकिके शरीरमें पचीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ १९ ॥

सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥

अनन्तर सात्यकिने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक तेज क्षुरप्रसे युद्धमें धनुर्धर सोमदत्तका धनुष काट दिया ॥ २० ॥

अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद्बहुधा राजन्भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २१ ॥

राजन् ! फिर दांत टूटे हुए हाथीकी भांति सोमदत्तको सुवर्णपंखवाले सौ नतपर्व तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २१ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥

अनन्तर महाबली सोमदत्त दूसरा धनुष ग्रहण करके अपने बाणोंकी वर्षाकर सात्यकिको छिपाने लगे ॥ २२ ॥

सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं चेषुजालेन सोमदत्तो अपीडयत् ॥ २३ ॥

क्रुद्ध हुए सात्यकिने युद्धमें सोमदत्तको अत्यन्त विद्ध किया और सोमदत्तने अपने बाणोंसे सात्यकिको पीडित कर दिया ॥ २३ ॥

दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन्बाह्लिकात्मजम् ।
सोमदत्तोऽप्यसंभ्रान्तः शैनेयमवधीच्छरैः ॥ २४ ॥

इस ही समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायता करनेके लिये दश बाणोंसे सोमदत्तके शरीरमें प्रहार किया; परन्तु सोमदत्त निर्भय चित्तसे केवल सात्यकिको ही अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ २४ ॥

ततस्तु सात्वतस्यार्थे भैमसेनिर्नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥

अनन्तर भीमसेनके पुत्रने सात्यकिकी सहायता करनेकी इच्छासे अत्यन्त दृढ एक घोर परिघ उठाकर सोमदत्तकी छातीमें चलाया ॥ २५ ॥

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥

कौरवोंमें मुख्य सोमदत्तने उस भयानक परिघको युद्धमें बडे वेगसे अपनी ओर आते देख हंसते हुए तीक्ष्ण बाणोंसे काटके दो खण्ड कर दिया ॥ २६ ॥

स पपात द्विधा छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥

वह लोहमय परिघ दो टुकडे होकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा, जैसे वज्रकी चोटसे महान् पर्वत शिखर टुकडे टुकडे हो गिर पडता है ॥ २७ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन्सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ २८ ॥

राजन् ! अनन्तर सात्यकिने युद्धमें शीघ्रताके सहित भल्लसे सोमदत्तका धनुष काटकर, पांच बाणोंसे उनके हस्तत्राण नष्ट कर दिये ॥ २८ ॥

चतुर्भिस्तु शरैस्तूर्णं चतुरस्तुरगोत्तमान् ।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥

फिर तत्काल ही चार बाणोंसे सात्यकिने उनके रथके चारों उत्तम घोडोंको प्रेतराजके पास भेज दिया ॥ २९ ॥

सारथेश्च शिरः कायाद्भल्लेन नतपर्वणा ।
जहार रथशार्दूलः प्रहसञ्शिनिपुंगवः ॥ ३० ॥

फिर हंसते हंसते पुरुषसिंह शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने एक तीक्ष्ण भल्लसे सोमदत्तके सारथीका सिर काटके धडसे अलग कर दिया ॥ ३० ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मुमोच सात्वतो राजन्स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर सात्यकिने शिलापर घिस कर तेज किया हुआ, प्रज्वलित अग्निके समान एक महाभयङ्कर सुवर्णमय पंखयुक्त बाण ग्रहण करके सोमदत्तकी ओर चलाया ॥ ३१ ॥

स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः ।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत ॥ ३२ ॥

महाराज ! शिनिपौत्र बलवान् सात्यकिने छोडा हुआ वह श्रेष्ठ, अत्यन्त भयंकर बाण शीघ्रही सोमदत्तके वक्षस्थल पर गिरा ॥ ३२ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता सात्वतेन महारथः ।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३ ॥

रथियोंमें मुख्य, महाबाहु सोमदत्त बलवान् सात्यकिके चलाये हुए उस बाणसे अत्यन्त विद्ध होके उसही समय पृथ्वीमें गिर पडे और मर गये ॥ ३३ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः ।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥

कुरुसेनाके महारथी योद्धा लोग सोमदत्तको मरते देख, महाघोर बाणोंकी महान् वर्षा करते हुए सात्यकिकी ओर दौडे ॥ ३४ ॥

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः ।
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर सात्यकिको तुम्हारी सेनाके वीरोंके बाणजालमें छिपे देख, अपनी बडी सेनाके सहित द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे ॥ ३५ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम् ।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके सम्मुखमें ही तुम्हारी महासेनाके योद्धा-ओंको अपने बाणोंकी वर्षासे रणभूमिमें तितर बितर करने लगे ॥ ३६ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥

तब द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको अपनी ओरके योद्धाओंको भगाते हुए देख क्रोधसे लाल नेत्र करके बडे वेगसे उनकी ओर दौडे ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३८ ॥

और सात तीक्ष्ण बाणोंसे उन्होंने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको विद्ध किया । महाबाहु द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हो, दांत पीसते हुए उनका धनुष और उनके रथकी ध्वजाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया ॥ ३८ ॥

स छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः ।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ३९ ॥

धनुष कटने पर नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित समरमें फिर दूसरे एक दृढ धनुषको वेगपूर्वक ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः ।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४० ॥

फिर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके राजा युधिष्ठिरने घोडे, सारथी, रथ और ध्वज सहित द्रोणाचार्यको विद्ध किया, उस समय युधिष्ठिरका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥४०॥

ततो मुहूर्तं व्यथितः शरघातप्रपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरके बाणोंके आघातसे अत्यंत पीडित और व्यथित होकर मुहूर्त्त भर तक रथमें बैठ रहे ॥ ४१ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद्द्विजसत्तमः ।
क्रोधेन महताविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥ ४२ ॥

राजन् ! थोडी देरके बाद ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने सावधान होकर अत्यंत क्रोधित होकर वायव्य अस्त्र चलाया ॥ ४२ ॥

असंभ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान् ।
तदस्त्रमस्त्रेण रणे स्तम्भयामास भारत ॥ ४३ ॥

महाराज ! फिर पराक्रमी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने निर्भयचित्तसे धनुष खींचकर अपने अस्त्रके प्रभावसे उनके वायव्य अस्त्रको रोक दिया ॥ ४३ ॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वा वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ४४ ॥

उस ही समय वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णजी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको पुकारके यह वचन बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूं उसे सुनो ॥ ४४ ॥

उपारमस्व युद्धाय द्रोणाद्भरतसत्तम ।
गृध्यते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ॥ ४५ ॥

हे भरतसत्तम ! आप द्रोणाचार्यसे युद्धमें अलग रहो । क्योंकि द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें तुम्हें पकडनेके लिये हर समय प्रयत्न करते रहते हैं ॥ ४५ ॥

नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ।
योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एनं श्वो हनिष्यति ॥ ४६ ॥

विशेष करके द्रोणाचार्यके सङ्ग तुम्हारा संग्राम होना मैं उचित नहीं मानता; जिन्होंने द्रोणाचार्यके वध करनेके लिये इस पृथ्वीपर जन्म लिया है, वही धृष्टद्युम्न कल भोरके समय द्रोणाचार्यका वध करेंगे ॥ ४६ ॥

परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ४७ ॥

आप अपने गुरु द्रोणाचार्यको त्यागके जहांपर राजा सुयोधन स्थित है उस ही स्थानमें गमन कीजिये; इस स्थलमें रथियोंमें पुरुषसिंह भीमसेन शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हैं ॥ ४७ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ४८ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनकर क्षणभर तक उस महाघोर संग्रामके विषयको विचारते रहे ॥ ४८ ॥

प्रायाद्द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान्योधान्व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ४९ ॥

फिर जिस स्थान पर शत्रुनाशन भीमसेन तुम्हारे योद्धाओंका बध करते हुए मुंह फैलाये यमराजके समान खडे थे, वहां तुरंत चले गये ॥ ४९ ॥

रथघोषेण महता नादयन्वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन्वै दिशो दश ॥ ५० ॥
भीमस्य निघ्नतः शत्रून्पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः ।
द्रोणोऽपि पाण्डुपाञ्चालान्व्यधमद्रजनीमुखे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ ६०८८ ॥

वर्षाकालके बादल गर्जनेकी भांति अपने रथके गम्भीर घरघराहटके शब्दसे दशों दिशा तथा पृथ्वीको अनुनादित करते हुए उस ही स्थान पर जाकर धर्मराज युधिष्ठिर शत्रुनाशन भीमसेनकी पृष्ठरक्षा करने लगे । उस महाघोर रात्रिके समय द्रोणाचार्य पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको अपने अस्त्ररूपी अग्निसे भस्म करने लगे ॥ ५०–५१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥ ६०८८ ॥

: १३८ :

सञ्जय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे ।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ।
नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! अन्धकार और धूलिसे सम्पूर्ण रणभूमि और आकाशमण्डल परिपूर्ण हो गया; उस ही समय दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका महाभयङ्कर संग्राम होने लगा। रणभूमिमें स्थित योद्धा लोग उस समय एक दूसरेको नहीं देख सकते थे ॥ १ ॥

अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्ववृते महत् ।
नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् ॥ २ ॥

उस समय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग केवल अपने नामको सुनाते हुए अनुमानसे ही हाथी, घोडे और मनुष्योंका नाश करते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। वह युद्ध अत्यन्त रोमांचकारी हो रहा था ॥ २ ॥

द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ।
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम ॥ ३ ॥

उस ही समय हम लोगोंकी ओरसे द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्य तथा शत्रुओंकी ओरसे भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकि, ये महारथी योद्धा लोग युद्धमें प्रवृत्त होकर आपसमें एक दूसरेकी सेनाको छिन्न भिन्न करने लगे ॥ ३ ॥

वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ।
तमसा रजसा चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥ ४ ॥

उन महारथियोंसे उस अन्धकार और धूलिसे युक्त रणभूमिमें सब ओरसे मारी जाती हुई सेनाएं चारों ओर भागने लगीं ॥ ४ ॥

ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा वित्रस्तचेतसः ।
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ॥ ५ ॥

महाराज ! वे शूरवीर योद्धा लोग जब भयभीत चित्त होकर इधर उधर दौड रहे थे; उस समय युद्धमें दौडते हुए भी कितने ही योद्धा बाणोंसे मारे जा कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥५॥

महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ।
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ॥ ६ ॥

उस महाघोर अन्धकारके समयमें तुम्हारे पुत्रकी अनीतिसे ही किंकर्तव्यमूढ सहस्रों महारथियोंने अपनी ओरके ही सहस्रों योद्धाओंका वध किया ॥ ६ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ।
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥

भारत ! जब चारों ओर अन्धेरा छा गया, तब सम्पूर्ण सेनाके योद्धा तथा सेनापति लोग भी मोहित हो गये ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्निहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत्का वो मतिस्तदा ॥ ८ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! उस समय जब तुम लोग अन्धकारसे व्याकुल हुए थे; और पाण्डव तुम्हारे बल–पराक्रमको नष्ट करके तुम्हें पीडित करते थे, उस समयमें तुम लोगोंकी मति किस प्रकारकी थी ? ॥ ८ ॥

कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्येषु वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा संजय संवृते ॥ ९ ॥

जब सारा जगत् अंधकारमय हुआ था, उस समय मेरी सेना तथा पाण्डवोंकी सेनामें किस भांति प्रकाश हुआ ? ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच

ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तृनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥

संजय बोले– महाराज ! अनन्तर मरनेसे बची हुई सेनाएं और सेनापतियोंको आज्ञा देकर दुर्योधनने उनको फिर व्यूहबद्ध करवाया ॥ १० ॥

द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः पार्श्वतः सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्राजाभ्ययाद्गोपयन्वै निशायाम् ॥ ११ ॥

उस रात्रिके समय तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके आगाडी द्रोणाचार्य और मध्यस्थानमें राजा शल्य स्थित हुए; अश्वत्थामा और सुबलपुत्र शकुनि पार्श्वभागमें स्थित हुए। राजा दुर्योधन अपनी सम्पूर्ण सेनाकी रक्षा करते हुए स्वयं शत्रुओंकी ओर गमन करने लगे ॥ ११ ॥

उवाच सर्वांश्च पदातिसंघान्दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान्प्रदीपान् ॥ १२ ॥

उस समय दुर्योधन सब पैदल योद्धाओंसे सान्त्वनापूर्ण यह वचन बोले, तुम सब लोग उत्तम शस्त्रोंको त्यागके अपने हाथोंमें जलती हुई मशालें ग्रहण करो ॥ १२ ॥

ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ॥ १३ ॥

पैदल चलनेवाले वीरोंने नृपश्रेष्ठ दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नचित्तसे शीघ्रही हाथोंमें जलती हुई मशालें ग्रहण कीं। वह सेना उस रात्रिके समय अग्निके प्रकाशसे फिर विभागपूर्वक प्रकाशित होकर शोभने लगी ॥ १३ ॥

महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः शस्त्रैः प्रदीप्तैरभिसंपतद्भिः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा व्यदीपयंश्च ध्वजिनीं तदाशु ॥ १४ ॥
बहुमूल्य दिव्य आभूषण तथा गिरनेवाले प्रकाशमान दिव्य अस्त्रोंसे वह सेना अत्यंत शोभा पा रही थी; इस भांति क्षणभरके बीच उन व्यवस्थापूर्वक जलाये हुए दीपकोंसे तुम्हारी सेना प्रकाशित होने लगी ॥ १४ ॥

सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः पदातिभिः पावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां यथान्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १५ ॥
उस रात्रिके समय सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग हाथमें दीपक और तेल ग्रहण करनेवाले पैदल सेनाके पुरुषोंसे युक्त होकर ऐसे प्रकाशित हुए, जैसे आकाशमें बिजलीसे युक्त बादल शोभित होते हैं ॥ १५ ॥

प्रकाशितायां तु तथा ध्वजिन्यां द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन्समन्तात् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १६ ॥
राजेन्द्र ! सारी सेनामें प्रकाश फैल जानेपर सुवर्ण वर्मधारी अग्निके समान पराक्रमी द्रोणाचार्य प्रचण्ड किरणवाले दोपहरके सूर्य समान रणभूमिमें चारों ओर बिराजमान हुए ॥१६॥

जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव निष्केषु शुद्धेषु शरावरेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ १७ ॥
उस समय सुवर्णके रत्नजटित आभरण, मुहर, सुवर्णभूषित धनुष और शिलापर घिसे हुए अस्त्रशस्त्रोंके ऊपर अग्निकी प्रभा प्रतिबिंबित होने लगी ॥ १७ ॥

गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः ।
प्रतिप्रभा रश्मिभिराजमीढ पुनः पुनः संजनयन्ति दीप्ताः ॥ १८ ॥
हे अजमीढ कुलभूषण ! शिकल करी हुई लोहमयी गदा, शैक्य, परिघ और रथके ऊपर विराजमान शक्तियोंमेंसे परिवर्तित दीपोंके किरणोंसे ऐसा मालूम हुआ, कि उन गदाआदिकोंसे मानो नवीन दीप उत्पन्न हो रहे हैं ॥ १८ ॥

छत्राणि बालव्यजनानुषङ्गा दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ १९ ॥
इस ही प्रकारसे युद्धमें प्रवृत्त हुए क्षत्रियोंके इधर उधर घुमनेसे उनके छत्र, चंवर, मणिजटित माला, प्रकाशमान खड्ग और प्रज्वलित उल्काएं उस समय प्रदीपोंके प्रकाशसे बहुत शोभित हो रही थीं ॥ १९ ॥

शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत् ।
प्रकाशितं चाभरणप्रभाभिर्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २० ॥

उस समय पहले शस्त्रोंकी प्रभासे प्रकाशित, फिर दीपकों और आभूषणोंकी प्रभासे प्रकाशित हुआ वह सैन्य बहुत ही शोभित होने लगा ॥ २० ॥

पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि वीरावधूतानि तनुत्रहाणि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥ २१ ॥

शूरवीरोंके द्वारा कंपाये हुए रत्नजटित कवच और पानीदार तथा रुधिर लिपटे हुए अस्त्र-शस्त्र इस भांतिसे प्रदीपोंके प्रतिबिम्ब ग्रहण करके प्रकाशित होने लगे, जैसे ग्रीष्म ऋतुके समाप्त होनेपर आकाशमें बादलोंके समूहमें बिजली प्रकाशित होती हैं ॥ २१ ॥

प्रकम्पितानामभिघातवेगैरभिघ्नतां चापततां जवेन ।
वक्त्राण्यशोभन्त तदा नराणां वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २२ ॥

आपसमें शस्त्र चलानेमें प्रवृत्त, दूसरी सेनाके ऊपर वेगसे प्रहार करनेसे कंपित शूरवीरोंके मुख इस प्रकार शोभित होने लगे, जैसे वायुसे हिलते हुए कमलोंके वन शोभित होते हैं ॥ २२ ॥

महावने दाव इव प्रदीप्ते यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत् ।
तथा तवासीद्ध्वजिनी प्रदीप्ता महाभये भारत भीमरूपा ॥ २३ ॥

भारत ! उस समय ऐसा बोध होने लगा, जैसे लकडीका महावन प्रचण्ड दावाग्निके लगनेसे ऐसा प्रकाशित होता है, कि जिससे सूर्यकी प्रभा भी छिप जाती है, वैसे ही तुम्हारी सम्पूर्ण भयानक सेना अधिक प्रकाशसे प्रकाशित होती हुई महान् भय निर्माण करनेवाली दीखती थी ॥ २३ ॥

तत्संप्रदीप्तं बलमस्मदीयं निशाम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघानचोदयंस्तेऽथ चक्रुः प्रदीपान् ॥ २४ ॥

तब पाण्डवोंने हम लोगोंकी सेनाको प्रकाशसे प्रकाशित देखकर शीघ्र ही अपनी सेनाके पैदल गमन करनेवाले योद्धाओंको भी हाथमें जलते हुए दीपक ग्रहण करनेके लिये आज्ञा दी; उन लोगोंने उस ही समय जलते हुए लुक्क और मशाल ग्रहण किये ॥ २४ ॥

गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा रथे रथे चैव दश प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २५ ॥

उसी भांति उनके हर एक हाथियोंपर सात सात, रथोंपर दस दस, घोडोंके पृष्ठभागमें दो दो और रथकी ध्वजा सेनाके दहिने बायें और पीछे बहुतसे दीपक जलाये गये ॥२५॥

सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये पश्चात्पुरस्ताच्च समन्ततश्च ।
मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ताः सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः ॥ २६ ॥
इसी भांति सम्पूर्ण सेनाके बीच पार्श्वभागमें, आगे, पीछे, दहिने बायें तथा चारों ओर सम्पूर्ण स्थलोंमें दोनोंही सेनाओंके अन्यान्य पैदल चलनेवाले सैनिक हाथोंमें मशालें धारण करके दोनों सेनाओंमें भ्रमण करने लगे ॥ २६ ॥

सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा व्यामिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ।
मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ता व्यदीपयन्पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २७ ॥
इसी भांति सारी सेनाओंके पैदल चलनेवाले पुरुष हाथी, रथ और अश्वसमूहोंके साथ मिलकर बीचमें तथा चारों ओर भिन्न भिन्न सैनिक जलती हुई मशालें हाथमें लेकर पाण्डुपुत्रकी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ २७ ॥

तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं बलं तदासीद्बलवद्बलेन ।
भाः कुर्वता भानुमता ग्रहेण दिवाकरेणाग्निरिवाभितप्तः ॥ २८ ॥
जैसे प्रचण्ड किरणवाले और अपनी प्रभा बिखेरनेवाले भगवान् सूर्यके तेजसे अग्नि अत्यन्त ही उत्तापित होती है, वैसे ही प्रदीपोंकी प्रभासे प्रकाशित होनेवाले उस सैन्यसे तुम्हारी सेनाका प्रकाश और भी बढ गया ॥ २८ ॥

तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ।
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् ॥ २९ ॥
उस समय आकाश, पृथ्वी तथा सम्पूर्ण दिशाओंको अतिक्रम करके दोनों सेनाओंके दीपज्योतिका प्रकाश शोभित होने लगा; दीपकोंके प्रकाशसे दोनों ओरकी सेनाएं अत्यन्त प्रकाशित होने लगीं ॥ २९ ॥

तेन प्रकाशेन दिवंगमेन संबोधिता देवगणाश्च राजन् ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ॥ ३० ॥
उस समय दीपकोंके प्रकाशसे आकाशमण्डल प्रकाशित होगया, तब आकाशचारी देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर, अप्सरा और सिद्ध लोग युद्ध देखनेके लिये आकाशमें इकठे हुए ॥ ३० ॥

तद्देवगन्धर्वसमाकुलं च यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ।
हतैश्च वीरैर्दिवमारुहद्भिरायोधनं दिव्यकल्पं बभूव ॥ ३१ ॥
देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुरेन्द्र और अप्सराओंसे भरा हुआ वह युद्ध स्थल, वहां मारे जाकर स्वर्गलोकमें जानेवाले वीरोंसे दिव्यलोकके समान लगता था ॥ ३१ ॥

रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं संरब्धयोधाहतविद्रुताश्वम् ।
महद्बलं व्यूढरथाश्वनागं सुरासुरव्यूहसमं बभूव ॥ ३२ ॥

उस रात्रिके समय हाथी, घोडे और रथोंके सहित, दीपकोंके प्रकाशसे युक्त, क्रुद्ध हुए योद्धाओंके अस्त्रोंके प्रहारसे पीडित होकर भागनेवाले घोडोंसे युक्त और व्यूहबद्ध वह बडी सेना इधर उधर दौडती हुई व्यूहबद्ध दानव और देवताओंकी सेनाकी भांति बोध होने लगी ॥ ३२ ॥

तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं महारथाभ्रं रथवाजिघोषम् ।
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं निशि प्रवृत्तं नरदेवयुद्धम् ॥ ३३ ॥

वह रात्रिका संग्राम मनुष्य और देवोंके युद्धके समान मालूम होने लगा । शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्र ही प्रचण्ड वायु, घोडे और रथोंके समूह उसमें भयानक बादलोंके समूह, हाथी और घोडोंके हींसने और चिंघाडनेका शब्द मेघोंका गर्जन, अस्त्र-शस्त्रोंका चलना ही उसमें जलकी वर्षा और रुधिरका झरना ही उसमें जलधारा बहनेके समान मालूम होता था ॥ ३३ ॥

तस्मिन्महाग्निप्रतिमो महात्मा संतापयन्पाण्डवान्विप्रमुख्यः ।
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथार्को वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ ६१२२ ॥

नरेन्द्र ! उस रणभूमिमें महान् अग्निके समान तेजस्वी महात्मा ब्राह्मण-श्रेष्ठ प्रतापी द्रोणाचार्य शरद् ऋतुके प्रचण्ड किरण धारण करनेवाले दोपहरके सूर्यकी भांति प्रकाशित होकर, पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विकल करते हुए रणभूमिके बीच घूमने लगे ॥ ३४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३८ ॥ ६१२२ ॥

: १३९ :

संजय उवाच

प्रकाशिते तथा लोके रजसा च तमोवृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! अन्धकार और धूलि उडनेसे जो सम्पूर्ण दिशाएं छिप गई थीं, वे फिर प्रकाशित हुईं । तब परस्पर वधकी इच्छा करनेवाले वीर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

ते समेत्य रणे राजञ्शस्त्रप्रासासिधारिणः ।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥

राजन् ! वे शूरवीर योद्धा लोग इकट्ठे होकर युद्धमें परस्पर भिडकर प्रास, तलवार आदि नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करनेवाले—जो परस्पर अपराधी थे—आपसमें एक दूसरेकी ओर क्रोधपूर्वक देखने लगे ॥ २ ॥

प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः ।
विरराज तदा भूमिर्द्यौर्ग्रहैरिव भारत ॥ ३ ॥

चारों ओर सेनाके बीच सहस्रों दीपक जल रहे थे; भारत ! उनसे वह रणभूमि नक्षत्रोंसे युक्त आकाशमण्डलकी भांति शोभित होने लगी ॥ ३ ॥

उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
दह्यमानेव लोकानामभावे वै वसुंधरा ॥ ४ ॥

और सैंकडों प्रदीपोंके इधर उधर जलनेसे वह रणभूमि, मानो प्रलयकालमें अग्निसे जलती हुई पृथ्वीकी भांति मालूम होने लगी ॥ ४ ॥

प्रादीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाबभुः ॥ ५ ॥

उसी समय दीपक तथा मशालोंके जलनेसे सम्पूर्ण दिशा इस भांति प्रकाशमय हो गई, जैसे वर्षाऋतुमें खद्योत समूहसे युक्त वृक्ष शोभित होते हैं ॥ ५ ॥

असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक्पृथक् ।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगाः सह वाजिभिः ॥ ६ ॥

उस समय शूरवीर योद्धा लोग शत्रुवीरोंके साथ पृथक् पृथक् सामना करने लगे, हाथी हाथियोंके साथ और घोडे घोडोंसे युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदान्विताः ।
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे पुत्रस्य तव शासनात् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार उस भयंकर रात्रिके समय तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे रथी श्रेष्ठ रथियोंसे आनन्द-पूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ।
व्यधमत्त्वरया युक्तः क्षपयन्सर्वपार्थिवान् ॥ ८ ॥

महाराज ! इस ही समय अत्यंत शीघ्रतासे अर्जुन सम्पूर्ण राजाओंको अपने बाणोंसे पीडित करके कुरुसेनाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे भस्म करने लगे ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ।
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे किं व आसीन्मनस्तदा ॥ ९ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! युद्धमें अत्यन्त पराक्रमी दुर्धर्ष अर्जुनने जब क्रोधपूर्वक मेरे पुत्रकी सेनाके बीच प्रवेश किया, उस समय तुम लोगोंके चित्तमें कैसा विकार उत्पन्न हुआ था ? ॥ ९ ॥

किममन्यन्त सैन्यानि प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ १० ॥

उन शत्रुतापन अर्जुनने जब सेनाके बीच प्रवेश किया, तब हमारे सैनिक पुरुषोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया और दुर्योधनने ही उस समयके अनुसार किस कार्यका विधान किया था ? ॥ १० ॥

के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिंदमम् ।
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ ११ ॥

और युद्धमें मेरी ओरके कौन कौन पराक्रमी योद्धा शत्रुदमन अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए ? कौन कौनसे योद्धाओंने युद्धके समय द्रोणाचार्यके दाहिने और बायें चक्रकी रक्षा की ?॥११॥

के पृष्ठतोऽस्य ह्यभवन्वीरा वीरस्य युध्यतः ।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान्रणे ॥ १२ ॥

तथा कौनसे शूरवीर योद्धा युद्ध करनेमें रत वीर द्रोणाचार्यकी पृष्ठरक्षामें नियुक्त हुए थे ? शत्रुओंका नाश करनेवाले कौन कौन योद्धा आचार्यके आगे चलते थे ? ॥ १२ ॥

यत्प्राविशन्महेष्वासः पाञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १३ ॥

धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, युद्धमें अपराजित, पराक्रमी पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने रथ मार्गों पर नृत्यसा करते हुए वहां पाञ्चालसेनाके बीच प्रवेश किया था ॥ १३ ॥

ददाह च शरैर्द्रोणः पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः स कथं मृत्युमीयिवान् ॥ १४ ॥

जो द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर धूएंसे रहित अग्निकी भांति अपने बाणोंकी ज्वालासे पाञ्चाल महारथियोंको जलाकर भस्म करते थे, वे किस प्रकार युद्धभूमिमें मारे गये ? ॥ १४ ॥

अभ्यग्रानेव हि परान्कथयस्यपराजितान् ।
हतांश्चैव विषण्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥ १५ ॥

जो हो, तुम सभी युद्धोंमें मेरी सेनाके रथी पुरुषोंको हत, घावसे युक्त, विषण्ण पीडित, तथा रथभ्रष्ट और नाना भांतिसे विपदसे युक्त सुना रहे हो ! ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच

द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान्भ्रातॄनभाषत ॥ १६ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! राजा दुर्योधन उस रात्रिके समय युद्धके अभिलाषी द्रोणाचार्यके अभिप्रायको जानकर अपने आज्ञाकारी भ्राताओंसे बोले ॥ १६ ॥

विकर्णं चित्रसेनं च महाबाहुं च कौरवम् ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ १७ ॥

तथा विकर्ण, महाबाहु चित्रसेन, दुर्धर्ष और दीर्घबाहु तथा उनके पुरुषोंसे यह वचन बोले ॥ १७ ॥

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षत पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ १८ ॥

तुम सब कोई यत्नवान् होकर पराक्रमपूर्वक द्रोणाचार्यकी पृष्ठरक्षा करो, हृदीकपुत्र कृतवर्मा और मद्रराज शल्य द्रोणाचार्यके दहिने और बायें चक्रकी रक्षा करें ॥ १८ ॥

त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव सर्वान्पुत्रस्ते समचोदयदग्रतः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने मरनेसे बचे हुए त्रिगर्तदेशीय शूरवीर महारथियोंको आचार्यके आगे चलनेकी आज्ञा देते हुए यह वचन बोले ॥ १९ ॥

आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ॥ २० ॥

इस समय द्रोणाचार्य अत्यन्त ही सावधानताके सहित युद्ध करनेमें तत्पर हुए हैं और पाण्डव लोग भी अत्यंत यत्नवान् होकर रणभूमिमें स्थित हैं; इससे तुम सब कोई मिलकर युद्धमें अत्यन्त ही यत्नवान् होके सावधानीके साथ शत्रुओंको मारते हुए द्रोणाचार्यकी भी रक्षा करो ॥ २० ॥

द्रोणो हि बलवान्युद्धे क्षिप्रहस्तः पराक्रमी ।
निर्जयेत्त्रिदशान्युद्धे किमु पार्थान्ससोमकान् ॥ २१ ॥

महाबली प्रतापी द्रोणाचार्य युद्धमें अत्यन्त ही हस्तलाघवके सहित अस्त्र शस्त्रोंको चला सकते हैं। आचार्य संग्राममें देवताओंको भी जीत सकते हैं, फिर सोमकवंशियोंके सहित पाण्डुपुत्रोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २१ ॥

ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चाल्याद् धृष्टद्युम्नान्महारथात् ॥ २२ ॥

इससे तुम महारथी सब कोई इकट्ठे होकर सब भांतिसे यत्नपूर्वक पाञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो ॥ २२ ॥

पाण्डवेयेषु सैन्येषु योधं पश्याम्यहं न तम् ।
यो जयेत रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपाः ॥ २३ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके बीच मैं धृष्टद्युम्नको छोडके और ऐसे दूसरे किसी राजाको भी नहीं देखता हूं कि जो समरमें द्रोणाचार्यको जीत सकेगा ॥ २३ ॥

तस्य सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
स गुप्तः सोमकान्हन्यात्सृञ्जयांश्च सराजकान् ॥ २४ ॥

इससे सब प्रकार यत्नपूर्वक भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी रक्षा करना, मैं बहुत ही उत्तम कार्य समझता हूं । वे रक्षित होनेसे ही सोमकवंशी क्षत्रियों तथा सृञ्जयोंका राजाओं सहित नाश कर सकेंगे ॥ २४ ॥

सृञ्जयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ २५ ॥

व्यूहके दरवाजेपर सम्पूर्ण सृञ्जय योद्धाओंके मारे जानेपर अश्वत्थामा युद्धमें अवश्य ही धृष्टद्युम्नका वध करेंगे इसमें संशय नहीं है ॥ २५ ॥

तथार्जुनं रणे कर्णो विजेष्यति महारथः ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दंशितः ॥ २६ ॥

महावीर कर्ण अर्जुनको समरमें परास्त करेंगे और मैं स्वयं कवचयुक्त होकर युद्धभूमिमें भीमसेनको पराजित करूंगा ॥ २६ ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति ।
तस्माद्रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथाः ॥ २७ ॥

हे महारथी शूर पुरुषो ! ऐसा होनेसे ही मेरी यह विजय चिरकालीन होगी; इससे युद्धभूमिमें तुम लोग सबसे पहिले द्रोणाचार्यकी ही रक्षा करो ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
व्यादिदेश ततः सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २८ ॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने ऐसा वचन कहके उस महाघोर रात्रिके समय सेनाके पुरुषोंको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दे दी ॥ २८ ॥

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ तद्भरतर्षभ ।
उभयोः सेनयोर्घोरं विजयं प्रति काङ्क्षिणोः ॥ २९ ॥

तब उस भयानक रात्रिके समय विजयकी इच्छासे दोनों सेनाके योद्धाओंका आपसमें महाघोर युद्ध होने लगा ॥ २९ ॥

अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः ।
नानाशस्त्रसमावापैरन्योन्यं पर्यपीडयन् ॥ ३० ॥

अर्जुन कौरवोंकी सेनाको और कुरुसेनाके योद्धा लोग अर्जुनको अपने अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको पीडित करने लगे ॥ ३० ॥

द्रौणिः पाञ्चालराजानं भारद्वाजश्च सृञ्जयान् ।
छादयामासतुः संख्ये शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३१ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाञ्चालराजको और द्रोणाचार्यने सृञ्जयोंको अपने अनगिनत नतपर्व तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धमें छिपा दिया ॥ ३१ ॥

पाण्डुपाञ्चालसेनानां कौरवाणां च मारिष ।
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ॥ ३२ ॥

महाराज ! इसी भांति जब पाण्डव–पाञ्चाल और कुरुसेनाके योद्धा लोग आपसमें एक दूसरे पर आघात करते हुए युद्ध करने लगे, तब उस समय महाघोर कोलाहल होने लगा ॥ ३२ ॥

नैवास्माभिर्न पूर्वैर्नो दृष्टं पूर्वं तथाविधम् ।
युद्धं यादृशमेवासीत्तां रात्रिं सुमहाभयम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ६१५५ ॥

उस रात्रिके समय उन दोनों ओरके योद्धाओंका जैसा भयङ्कर युद्ध हुआ, वैसा संग्राम पूर्वपुरुष लोग और हम लोगोंने न कभी देखा और न सुना ही था ॥ ३३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ उन्तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३९ ॥ ६१५५ ॥

: १४० :

संजय उवाच

वर्तमाने तथा रौद्रे रात्रियुद्धे विशां पते ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले-- ! महाराज ! जब सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले रात्रिके समय महावीर संग्राम होने लगा, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने ॥ १ ॥

अब्रवीत्पाण्डवांश्चैव पाञ्चालांश्च ससोमकान् ।
अभ्यद्रवत गच्छध्वं द्रोणमेव जिघांसया ॥ २ ॥

पाण्डव, पाञ्चाल और सोमकवंशीय योद्धाओंसे कहा-- हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग सावधानीके सहित शीघ्रही द्रोणाचार्यको ही मार डालनेकी इच्छासे उनपर आक्रमण करो ॥ २ ॥

राज्ञस्ते वचनाद्राजन्पाञ्चालाः सोमकास्तथा ।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र ! पाञ्चाल और सोमक योद्धा लोग राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाको सुनके भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करते हुए द्रोणाचार्यकी ही ओर दौडे ॥ ३ ॥

तान्वयं प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥ ४ ॥

उन योद्धाओंको अपनी ओर बढे आते देख, हम लोग भी युद्धमें क्रुद्ध होकर पराक्रम, उत्साह और शक्तिके अनुसार गर्जते हुए उन लोगोंके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ ४ ॥

कृतवर्मा च हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति जिघांसन्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥

महाराज ! उस ही समय राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यको मार डालनेकी इच्छासे उनकी ओर गमन करने लगे । अनन्तर जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीकी ओर दौडता है, वैसे ही हृदीकपुत्र कृतवर्मा राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात्कौरवो राजन्भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥

राजन् ! इसी भांति रणभूमिमें स्थित शिनिपौत्र सात्यकिको चारों ओर बाण वर्षाते देख, कुरुवंशीय पराक्रमी भूरिने उन पर धावा किया ॥ ६ ॥

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥

अनन्तर महारथी पाण्डुपुत्र सहदेवको द्रोणाचार्यको पकडनेके लिये आते देख, विकर्तन पुत्र कर्णने उनका निवारण किया ॥ ७ ॥

भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो युद्धे प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥
तथा मुख बाये हुए यमराज और साक्षात् मृत्युकी भांति संमुख आये हुए भीमसेनको राजा दुर्योधन स्वयं निवारण करने लगे ॥ ८ ॥

नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन्वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥
सम्पूर्ण युद्धविद्या जाननेवाले योद्धाओंमें मुख्य नकुलको सुबलपुत्र शकुनि युद्धभूमिमें सत्वर निवारण करने लगे ॥ ९ ॥

शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपो शारद्वतो राजन्वारयामास संयुगे ॥ १० ॥
राजन् ! रथसे उपस्थित हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने युद्धमें रोका ॥ १० ॥

प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥
मयूरवर्णवाले घोडोंसे आते हुए प्रयत्नशील प्रतिविन्ध्यको दुःशासनने यत्नपूर्वक रोका ॥ ११ ॥

भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा पितुर्मानं कुर्वाणः प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥
सैकडों राक्षसी माया जाननेवाले भीमसेनपुत्र घटोत्कचको अपने पिताका मान रखनेवाले अश्वत्थामा युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ १२ ॥

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३ ॥
युद्धमें द्रोणाचार्यको जीतनेकी इच्छा करनेवाले अनुयायी और सेनाके सहित महारथी द्रुपदको वृषसेनने रोका ॥ १३ ॥

विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १४ ॥
भारत ! द्रोणाचार्यके वधके लिये शीघ्रतापूर्वक आते हुए राजा विराटको अत्यंत क्रुद्ध हुए मद्रराज शल्यने रोक दिया ॥ १४ ॥

शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाशु शरैर्द्रोणवधेप्सया ॥ १५ ॥
नकुलपुत्र शतानीकको द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे समरमें वेगपूर्वक आते हुए देख, चित्रसेनने शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे रोक दिया ॥ १५ ॥

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।
अलम्बुसो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥

महाराज ! शीघ्रताके सहित कौरवसेना पर आक्रमण करते हुए योद्धाओंमें मुख्य महारथी अर्जुनको राक्षसराज अलम्बुष निवारण करने लगे ॥ १६ ॥

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपस्तवारयत् ॥ १७ ॥

उस ही समय धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी, पराक्रमी प्रसन्नचित्त द्रोणाचार्य जब शत्रुओंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुए, तब उन्हें पाञ्चालराजके पुत्र पराक्रमी धृष्टद्युम्न निवारण करने लगे ॥१७॥

तथान्यान्पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान् ।
तावका रथिनो राजन्वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥

महाराज ! इसी भांति आक्रमण करनेवाले पाण्डवोंकी ओरके अन्य महारथी योद्धाओंको तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा पराक्रमके सहित यत्नवान् होकर युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ १८ ॥

गजारोहा गजैस्तूर्णं संनिपत्य महामृधे ।
योधयन्तः स्म दृश्यन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

उस महायुद्धमें सैकडों और सहस्रों गजसवार योद्धालोग शत्रुओंके गजपतियोंसे भिडकर युद्ध करते हुए दीख पडते थे ॥ १९ ॥

निशीथे तुरगा राजन्नाद्रवन्तः परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ २० ॥

राजन् ! रात्रिके समय एक दूसरेपर आक्रमण करते हुए घोडे पंखवाले पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ २० ॥

सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः ।
समागच्छन्महाराज विनदन्तः पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥

हाथमें प्रास, शक्ति और ऋष्टि ग्रहण करनेवाले घुडसवार योद्धालोग पृथक् पृथक् भयंकर सिंहनाद करते हुए विरोधी पक्षके घुडसवारोंके साथ युद्ध करते थे ॥ २१ ॥

नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् ।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संघशः ॥ २२ ॥

उस ही भांति पैदल चलनेवाले अनेक योद्धालोग भी गदा और मुसल आदि नाना भांतिके शस्त्रोंको ग्रहण करके आपसमें एक दूसरेके संमुख उपस्थित होकर युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥

उस समय अत्यंत क्रुद्ध हुए हार्दिकपुत्र कृतवर्माने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार निवारण किया जैसे तट भारी तरंगोंवाले समुद्रके वेगको रोकता है ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरने भी पहले पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके फिर बीस बाणोंसे विद्ध किया । और कहा– खडा रह ! खडा रह ! ॥ २४ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥

मारिष ! तब कृतवर्माने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक भल्लसे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया, और शीघ्रताके सहित उन्हें सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ २५ ॥

अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥

अनन्तर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने दूसरा धनुष ग्रहण करके दस बाणोंसे कृतवर्माके भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ २६ ॥

माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः ॥ २७ ॥

महाराज ! यदुवंशीय कृतवर्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके बाणोंसे समरमें विद्ध होकर कांपने लगे और उन्होंने क्रुद्ध होकर सात तीक्ष्ण बाणोंसे युधिष्ठिरको पीडित किया ॥ २७ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणान्पञ्च राजञ्शिलाशितान् ॥ २८ ॥

राजन् ! पृथापुत्र युधिष्ठिरने अपने तेज बाणोंसे कृतवर्माके धनुष और हस्तत्राणको काट दिया; फिर शिला पर घिसे हुए पांच तीक्ष्ण बाणोंसे कृतवर्माके शरीरमें प्रहार किया ॥ २८ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन्धरणीमुग्रा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥

जैसे क्रुद्ध सर्प बिलके भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे ही युधिष्ठिरके वे चोखे बाण कृतवर्माके सुवर्ण चित्रित महामूल्यवान कवचको काटके पृथ्वीमें घुस गये ॥ २९ ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥

कृतवर्माने निमेष भरमें दूसरा धनुष ग्रहण करके पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरको साठ और उनके सारथिको नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३० ॥

तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब अमेयात्मा युधिष्ठिरने अपना बडा धनुष रथमें रखकर, सर्पके समान रूपवाली एक शक्ति ग्रहण करके कृतवर्माकी ओर चलायी ॥ ३१ ॥

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्धरणीतलम् ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिरके हाथसे छूटी हुई वह सुवर्णभूषित भयंकरी शक्ति कृतवर्माकी दाहिनी भुजाको छेद करके पृथ्वीमें समा गयी ॥ ३२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३३ ॥

उस ही समय धर्मराज युधिष्ठिर फिर अपना धनुष ग्रहण करके तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंसे कृतवर्माको छिपाने लगे ॥ ३३ ॥

ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद्युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥

अनन्तर रथियोंमें मुख्य वृष्णिवंशीय महाबलवान् शूर कृतवर्माने युद्धमें निमेषभरमें राजा युधिष्ठिरको घोडे, सारथी और रथसे हीन कर दिया ॥ ३४ ॥

ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गचर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥

तब ज्येष्ठ पाण्डव धर्मराज युधिष्ठिरने ढाल तलवार ग्रहण किया; परंतु कृतवर्माने उस ही समय युद्धमें उनके खड्गको अपने तेज बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३५ ॥

तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
प्रेषयत्समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

तब युद्धमें राजा युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित एक सुवर्णमय दण्डसे युक्त भयङ्कर तोमर ग्रहण करके कृतवर्माकी ओर चलाया ॥ ३६ ॥

तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव ॥ ३७ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके हाथसे छूटे हुए तोमरको अपनी ओर सहसा आते देख, हृदीकपुत्र कृतवर्माने हस्तलाघवके सहित हंसते हुए अपने बाणोंसे उसे दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३७ ॥

ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चास्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥ ३८ ॥

अनन्तर कृतवर्माने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर रणभूमिमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको सैकडों बाणोंसे छिपाकर, अपने तेज बाणोंसे उनका कवच भी काट दिया ॥ ३८ ॥

हार्दिक्यशरसंछिन्नं कवचं तन्महात्मनः ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाम्बरात् ॥ ३९ ॥

महाराज ! महात्मा राजा युधिष्ठिरका मूल्यवान् कवच हृदीकपुत्र कृतवर्माके अनगिनत बाणोंसे कटके इस प्रकार रणभूमिमें गिरके प्रकाशित होने लगा, जैसे आकाशसे गिरते हुए तारोंके समूह शोभित होते हैं ॥ ३९ ॥

स छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः ।
अपायासीद्रणात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर कृतवर्माके अस्त्रोंसे रथभ्रष्ट, धनुषरहित तथा कवचसे हीन होकर उनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हुए और शीघ्रताके सहित वहांसे भाग गये ॥ ४० ॥

कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महाबलः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥ ६१९६ ॥

महाबलवान् कृतवर्मा इसी भांति धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पराजित करके, फिर महात्मा द्रोणाचार्य की चक्ररक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४० ॥ ६१९६ ॥

: १४१ :

सञ्जय उवाच

भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत्प्रपानादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! कुरुवंशीय भूरिने द्रोणाचार्यकी ओर आक्रमणके लिये आते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको इस प्रकार समरमें रोक दिया, जैसे कोई हाथीको उसके पानी पिनेके स्थानसे ही रोक दे ॥ १ ॥

अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं प्रास्रवत्तस्य शोणितम् ॥ २ ॥

तब शिनिपौत्र सात्यकिने क्रुद्ध होकर पांच तेज बाणोंसे भूरिके हृदयमें प्रहार किया, उससे भूरिके वक्षस्थलसे उसही समय रुधिर बहने लगा ॥ २ ॥

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे ॥ ३ ॥

अनन्तर कुरुवंशी पराक्रमी भूरिने भी दस तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धदुर्मद सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ३ ॥

तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद्विस्फार्य कार्मुके ॥ ४ ॥

महाराज ! इसी भांति वे दोनों पराक्रमी वीर क्रोधसे नेत्र लाल करके धनुष फेरते हुए दूसरेके शरीरको अपने तेज बाणोंके प्रहारसे क्षत–विक्षत करने लगे ॥ ४ ॥

तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ ५ ॥

उस समय उन दोनोंकी अत्यंत भयंकर अस्त्र–शस्त्रोंकी वृष्टि हो रही थी । वे यम और अन्तकके समान क्रुद्ध होकर परस्पर बाणोंकी बर्षा कर रहे थे ॥ ५ ॥

तावन्योन्यं शरै राजन्प्रच्छाद्य समरे स्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद्युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६ ॥

राजन् ! जब युद्धभूमिमें स्थित वे दोनों वीर एक दूसरेको अपने बाणोंसे छिपाने लगे, उस समय मुहूर्त भर तक उन दोनोंका संग्राम समभावसे ही होता रहा ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

अनन्तर शिनिपौत्र सात्यकिने क्रुद्ध होकर हंसके ही महात्मा कुरुवंशीय भूरिके धनुषको काट दिया ॥ ७ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

धनुष कट जानेपर सात्यकिने शीघ्रही नौ तेज बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया और कहा—खडा रह ! खडा रह ! ॥ ८ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत्समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९ ॥

शत्रुतापन भूरि बलवान् शत्रु सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध होकर कटा हुआ धनुष त्याग कर दूसरा धनुष ग्रहण करके फिर सात्यकिको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ९ ॥

स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशां पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! कुरुवंशीय भूरिने अपने तीन बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके हंसकर एक तेज भल्लसे उनका धनुष भी काट दिया ॥ १० ॥

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥

महाराज ! धनुष कटने पर सात्यकिने क्रोधसे मूर्छित होकर एक अत्यंत वेगवान् शक्ति चला कर भूरिके हृदयमें प्रहार किया ॥ ११ ॥

स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥

महाराज ! पराक्रमी भूरि सात्यकिके हाथसे छूटी हुई उस ही शक्तिकी चोटसे सारे अंग विदीर्ण होकर प्राणरहित होकर अपने उत्तम रथसे इस प्रकार पृथ्वी पर गिरके प्रकाशित हुए, मानो आकाशमण्डलसे दैववश प्रकाशमान मङ्गल ग्रह पृथ्वी पर गिरे हुए प्रकाशित हो रहे हैं ॥ १२ ॥

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः । ॥ १३ ॥

महारथी अश्वत्थामा युद्धभूमिमें पराक्रमी भूरिको मारा गया देख शीघ्रताके सहित सात्यकिकी ओर दौडे और सात्यकिके ऊपर इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगे जैसे बादल आकाशसे मेरुपर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं ॥ १३ ॥

×

तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति।
घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १४ ॥
महारथी घटोत्कच अश्वत्थामाको क्रोधपूर्वक सात्यकिके रथपर आक्रमण करते देख ऊंचे स्वरसे उनसे यह वचन कहने लगा— ॥ १४ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि।
एष त्वाद्य हनिष्यामि महिषं स्कन्दराडिव।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ १५ ॥
हे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा! खडा रह, खडा रह! आज तुम जीते हुए मेरे समीपसे गमन नहीं कर सकोगे। जैसे स्कन्दराजने महिषासुरका बध किया था, वैसे ही मैं भी युद्धभूमिमें तुम्हारी युद्धकी अभिलाषाको दूर करके आज ही तुम्हारा वध करूंगा ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा।
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १६ ॥
शत्रु वीर नाशन क्रुद्ध राक्षस घटोत्कच ऐसा वचन कहके, क्रोधसे नेत्र लाल करके इस प्रकार अश्वत्थामाकी ओर दौडा, जैसे क्रुद्ध सिंह मतवाले हाथीकी ओर दौडता है ॥ १६ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ १७ ॥
अनन्तर राक्षस घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाके ऊपर रथके धुरेके समान अपने मोटे मोटे तेज बाणोंको इस प्रकार चलाने लगा, जैसे बादल आकाशसे पृथ्वीके ऊपर जलकी वर्षा करता है ॥ १७ ॥

शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः।
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ॥ १८ ॥
परंतु द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने हंसकर युद्धमें अपने ऊपर आयी हुई उस बाण वर्षाको बिषधर सर्पोंके समान अपने भयंकर तेज बाणोंसे वेगपूर्वक निवारित किया ॥ १८ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः।
समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिंदम ॥ १९ ॥
हे शत्रुदमन! अनन्तर अश्वत्थामाने राक्षसराज घटोत्कचको मर्मभेदी सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित किया ॥ १९ ॥

स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि।
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललितो यथा ॥ २० ॥
महाराज! अश्वत्थामाके बाणोंसे परिपूरित हुआ वह राक्षस कांटोंसे युक्त साहीके समान शोभित होने लगा ॥ २० ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ।
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिस्वनैः ॥ २१ ॥

अनन्तर भीमसेनपुत्र प्रतापी घटोत्कचने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर वज्र और बिजलीके समान आवाज करनेवाले भयंकर बाणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको क्षतविक्षत कर दिया ॥ २१ ॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ।
वराहकर्णैर्नालीकैस्तीक्ष्णैश्चापि विकर्णिभिः ॥ २२ ॥

फिर अश्वत्थामाके ऊपर क्षुरप्र, अर्द्धचन्द्र, नाराच, शिलीमुख, वराहकर्ण, नालिक, सुतीक्ष्ण और विकर्ण इत्यादि तीक्ष्ण अस्त्रोंको चलाया ॥ २२ ॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ।
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ॥ २३ ॥
सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ।
व्यधमत्स महातेजा महाभ्राणीव मारुतः ॥ २४ ॥

अन्नतर जैसे प्रचण्ड वायु बडे बडे बादलोंके समूहको छिन्नभिन्न कर देती है, वैसे ही व्यथा रहित इंद्रियोंवाले महातेजस्वी पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर दिव्यास्त्रोंसे अभिमंत्रित अपने अनेक भयङ्कर बाणोंको चलाकर अपने ऊपर पडती हुई उस अत्यन्त दुःसह, अनुपम और वज्रपातके समान शब्द करनेवाली अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ २३-२४ ॥

ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ।
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ॥ २५ ॥

उससे ऐसा मालूम हुआ, कि मानो आकाशमण्डलमें शूरवीर योद्धाओंके हर्षको बढानेवाला बाणोंका दूसरा युद्ध ही हो रहा है ॥ २५ ॥

ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ।
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ॥ २६ ॥

उन अस्त्रोंके आपसमें रगड खानेसे चारों ओर उनसे अग्निकी चिनगारीयां प्रकट होके इधर उधर गिरती हुई इस प्रकार दिखाई देने लगीं; जैसे रात्रिके समय उडते हुए खद्योतोंके समूहोंसे आकाश शोभित होता है ॥ २६ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ।
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ॥ २७ ॥

उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्रोंके प्रियकार्यको पूर्ण करनेकी इच्छा करके अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित करके उस राक्षस घटोत्कचको भी तेज बाणोंसे आच्छादित करने लगे ॥ २७ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ २८ ॥

इसी प्रकार गाढ अन्धकारसे भरी हुई आधीरातके समरमें इन्द्र और प्रह्लादकी भांति अश्वत्थामा और घटोत्कचका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ २८ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ।
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसंनिभैः ॥ २९ ॥

अनन्तर घटोत्कचने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कालाग्निके समान भयङ्कर दस बाणोंसे युद्धमें अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ २९ ॥

स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ।
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।
स मोहमनुसंप्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३० ॥

द्रोणपुत्र महाबलवान् अश्वत्थामा घटोत्कचके चलाये हुए उन अत्यन्त चोखे बाणोंसे विद्ध होकर युद्धमें वायुके वेगसे हिलाये हुए वृक्षकी भांति कांपने लगे । उस समय अश्वत्थामा मोहित होके रथदण्ड पकडके रथपर स्थित हुए ॥ ३० ॥

ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप ।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशां पते ॥ ३१ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय तुम्हारी ओरके योद्धा लोग हाहाकार शब्दके सहित महाघोर कोलाहल करने लगे और तुम्हारे सब योद्धाओंने समझा कि अश्वत्थामा मारे गये ॥ ३१ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे ।
पाञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३२ ॥

उस ही समय पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग युद्धभूमिमें अश्वत्थामाकी वैसी अवस्था देख, हर्षित होके सिंहनाद करने लगे ॥ ३२ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः ।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ॥ ३३ ॥

इतने ही समयमें महाबली शत्रुनाशन अश्वत्थामाने सावधान होकर बायें हाथसे अपने धनुषको दबाया ॥ ३३ ॥

मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३४ ॥

और शीघ्र ही यमदण्डके समान भयङ्कर और उत्तम एक बाण धनुषपर रखके कान पर्यन्त धनुष खींचके घटोत्कचकी ओर चलाया ॥ ३४ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रः सुपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३५ ॥

पृथ्वीपते ! वह भयङ्कर उत्तम बाण राक्षस घटोत्कचके हृदयको भेदकर पंख सहित पृथ्वीमें घुस गया ॥ ३५ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान्द्रौणिना रणमानिना ॥ ३६ ॥

महाबली राक्षसेन्द्र घटोत्कच युद्धके अभिलाषी अश्वत्थामाके बाणकी चोटसे अत्यन्त विकल होके रथमें बैठ गया ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तं रणाजिरात् ।
द्रौणेः सकाशात्संभ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३७ ॥

हिडिम्बाकुमारके सारथीने उसे मूर्च्छित देख भयभीत होकर शीघ्रताके सहित उसे युद्धभूमिसे विशेष करके अश्वत्थामाके समीपसे रथसे दूर हटा दिया ॥ ३७ ॥

तथा तु समरे विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महाबलः ॥ ३८ ॥

महाबली द्रोणपुत्र अश्वत्थामा राक्षसेन्द्र घटोत्कचको इसी भांति घायल करके ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषा प्रतिजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ३९ ॥

भारत ! उस समय अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्र और सम्पूर्ण योद्धाओंसे प्रशंसित होकर अपने शरीरसे इस प्रकार अत्यन्त प्रकाशित होने लगे, जैसे दोपहरके सूर्य अपने तेजसे प्रकाशित होते हैं ॥ ३९ ॥

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रात्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४० ॥

इधर द्रोणाचार्यके रथके समीप भीमसेनको युद्धमें प्रवृत्त देखकर, राजा दुर्योधन स्वयं उन्हें अपने चोखे बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

तं भीमसेनो नवभिः शरैर्विव्याध मारिष ।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४१ ॥

मारिष ! भीमसेनने भी उन्हें दस बाणोंसे विद्ध किया, तब दुर्योधनने फिर बीस बाणोंसे भीमसेनके शरीरमें प्रहार किया ॥ ४१ ॥

तौ सायकैरवच्छन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४२ ॥

रणभूमिमें वे दोनों वीर एक दूसरेके बाणजालमें इस प्रकार छिप गये, जैसे बादलोंके समूहमें घिरे हुए सूर्य और चन्द्रमा दीख पडते हैं ॥ ४२ ॥

अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पञ्चभिः ।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर राजा दुर्योधनने भीमसेनको पांच बाणोंसे विद्ध किया और कहा– खडा रह ! खडा रह ! ॥ ४३ ॥

तस्य भीमो धनुश्छित्वा ध्वजं च दशभिः शरैः ।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४४ ॥

तब भीमसेनने दस बाणोंसे उनका धनुष और ध्वज काटके, नतपर्व नब्बे बाणोंसे कौरवश्रेष्ठ दुर्योधनको विद्ध किया ॥ ४४ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ।
चिक्षेप स शरान्राजन्पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥

मारिष ! अनन्तर राजा दुर्योधनने भीमसेनपर क्रुद्ध होकर एक दृढ-धनुष ग्रहण किया और सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके संमुखमें ही भीमसेनको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ४५ ॥

तान्निहत्य शरान्भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ।
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४६ ॥

भीमसेनने दुर्योधनके धनुषसे छूटे हुए उन सभी बाणोंको नष्ट करके उन कौरव राजको पचीस बाणोंसे पीडित किया ॥ ४६ ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ॥ ४७ ॥

महाराज ! इससे दुर्योधनने अत्यन्त क्रुद्ध होके एक क्षुरप्रसे भीमसेनका धनुष काटकर, उन्हें दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४७ ॥

अथान्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ।
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥ ४८ ॥

महाबली भीमसेनने शीघ्रही दूसरे धनुष पर रोदा चढाया और शीघ्रताके सहित सात चोखे बाणोंसे कुरुराज दुर्योधनको विद्ध किया ॥ ४८ ॥

तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ।
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा　　॥ ४९ ॥
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् ।
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः　　॥ ५० ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्र विजयी श्रेष्ठ पराक्रमी दुर्योधनने उस ही समय हस्तलाघवके सहित बाण चलाकर भीमसेनके उस धनुषको भी काटके गिरा दिया; इसी भांति दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें धनुषको भी विजयसे उल्लसित मदोन्मत्त तुम्हारे पुत्रने काट काटके पृथ्वीमें गिराया ॥ ४९–५० ॥

स तदा छिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम्　　॥ ५१ ॥

उस समय बार बार दुर्योधनके बाणोंसे अपने धनुषोंको कटते देख, भीमसेनने युद्धमें संपूर्ण लोहमयी सुंदर एक दृढ शक्ति ग्रहण करके दुर्योधनकी ओर चलायी ॥ ५१ ॥

अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः ।
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः　　॥ ५२ ॥

उस महाभयङ्करी शक्तिको समीप न पहुंचते ही पहुंचते कौरवराज दुर्योधनने महात्मा भीमसेन और सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुखमें ही उसे अपने बाणोंसे तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ५२ ॥

ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम् ।
चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति　　॥ ५३ ॥

महाराज ! उसे देखकर भीमसेनने अपनी अत्यंत तेजस्वी लोहमयी भारी गदाको अत्यंत वेगसे घुमाके दुर्योधनके रथ पर फेंक दिया ॥ ५३ ॥

ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्द भरतर्षभ　　॥ ५४ ॥

भरतर्षभ ! युद्धमें उस अत्यन्त ही भारी गदाने तुम्हारे पुत्रके सारथी और रथके घोडोंको भी मर्दन कर दिया ॥ ५४ ॥

पुत्रस्तु तव राजेन्द्र रथाद्धेमपरिष्कृतात् ।
आप्लुतः सहसा यानं नन्दकस्य महात्मनः　　॥ ५५ ॥

राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन उस सुवर्णभूषित रथसे कूदकर महात्मा नन्दकके रथ पर सहसा चढ गये ॥ ५५ ॥

ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ।
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन्निव कौरवान् ॥ ५६ ॥

उस समय भीमसेन तुम्हारे पुत्र महारथी दुर्योधनको मारा गया समझके रातके समय कौरवोंके बीच बार बार गर्जते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ५६ ॥

तावकाः सैनिकाश्चापि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततो विचुक्रुशुः सर्वे हा हेति च समन्ततः ॥ ५७ ॥

तुम्हारी ओरके वीरोंने भी समझा, कि कुरुराज दुर्योधन मारे गये; ऐसा समझके वे हाहाकार शब्दके सहित चारों ओरसे महाघोर कोलाहल मचाने लगे ॥ ५७ ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन्महात्मनः ॥ ५८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ५९ ॥

राजन् ! राजा युधिष्ठिरने भयसे व्याकुल कौरवी सेनाके योद्धाओंके हाहाकार शब्द और महात्मा भीमसेनके सिंहनादको सुन कर, दुर्योधनको मरा हुआ जाना और जिस स्थलपर कुन्तीपुत्र भीमसेन रणभूमिमें स्थित थे, राजा युधिष्ठिर शीघ्रताके सहित उस ही स्थान पर उपस्थित हुए ॥ ५८-५९ ॥

पाञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्च विशां पते ।
सर्वोद्योगेनाभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६० ॥

पृथ्वीपते ! अनन्तर पाञ्चाल, केकय, सृञ्जय और मत्स्यदेशीय योद्धालोग सब भांतिसे यत्नवान् होकर युद्धकी इच्छासे द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण करने लगे ॥ ६० ॥

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं द्रोणस्याथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥ ६२५७ ॥

अनन्तर उस भयङ्करी रात्रिके समय जब दोनों सेनाके पुरुष आपसमें युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब शत्रुओंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ६१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४१ ॥ ६२५७ ॥

: १४२ :

सञ्जय उवाच

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशां पते।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! युद्धभूमिमें स्थित विकर्त्तनपुत्र कर्ण सहदेवको द्रोणाचार्यकी ओर गमन करते देख उन्हें निवारण करने लगे ॥ १ ॥

सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः।
पुनर्विव्याध दशभिर्निशितैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

सहदेवने राधानन्दन कर्णको नौ बाणोंसे विद्ध करके फिर शीघ्रताके सहित नतपर्व दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ २ ॥

तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम्।
सज्यं चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥

कर्णने भी नतपर्व सौ बाणोंसे सहदेवको विद्ध करके, अपना हस्तलाघव दिखाते हुए शीघ्रता-पूर्वक रोदेके सहित उनका धनुष काट दिया ॥ ३ ॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

अनन्तर प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेवने दूसरा धनुष ग्रहण करके बीस बाणोंसे कर्णको विद्ध किया; उस समय सहदेवका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पड़ा ॥ ४ ॥

तस्य कर्णो हयान्हत्वा शरैः संनतपर्वभिः।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥

तब कर्णने अपने तेज नतपर्व बाणोंसे सहदेवके रथके घोड़ोंको प्राणरहित करके, उनके सारथीको भी एक भल्लसे मारकर शीघ्र ही यमपुरीमें भेज दिया ॥ ५ ॥

विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत्प्रहसन्निव ॥ ६ ॥

रथसे रहित होनेपर सहदेवने ढाल और तलवार ग्रहण किया; परन्तु कर्णने हंसकर उनके तलवारको भी अपने तेज बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ ६ ॥

ततो गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम्।
प्रेषयामास समरे वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥

अनन्तर सहदेवने सोनेके तारोंसे खचित एक भयङ्करी और भारी गदाको सूर्यपुत्र कर्णके रथकी ओर चलाया ॥ ७ ॥

तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रवेरिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥
सहदेवकी भुजासे छूटी हुई उस गदाको सहसा अपनी ओर आती देख कर्णने बाणोंको चलाकर उसे मार्गहीमें रोकके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ८ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥ ९ ॥
गदाको निष्फल होती देख सहदेवने शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर एक शक्ति चलाई । कर्णने उस शक्तिको भी अपने बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ९ ॥

ससंभ्रमस्ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ।
रथचक्रं ततो गृह्य मुमोचाधिरथं प्रति ॥ १० ॥
महाराज ! इसी भांति सम्पूर्ण शस्त्रोंके निष्फल होनेपर सहदेव अपने उत्तम रथसे शीघ्र ही कूद पडे और युद्धमें अधिरथपुत्र कर्णको सामने खडा देख एक रथचक्र उठाकर कर्णकी ओर चलाया ॥ १० ॥

तमापतन्तं सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ।
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत्सूतनन्दनः ॥ ११ ॥
साक्षात् कालचक्रकी भांति उस रथचक्रको सहसा सम्मुख आते देख, सूतपुत्र कर्णने कई हजार बाणोंसे उसे काटके पृथ्वीमें गिराया ॥ ११ ॥

तस्मिंस्तु वितथे चक्रे कृते तेन महात्मना ।
वार्यमाणश्च विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ॥ १२ ॥
महात्मा कर्णके बाणोंसे रथचक्रको कटते देख सहदेवने कर्णके बाणोंसे निवारित होकर रणभूमिको त्याग दिया ॥ १२ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद्भरतर्षभ ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सहदेवं विशां पते ॥ १३ ॥
भरतश्रेष्ठ पृथ्वीपते ! तब राधापुत्र कर्ण दो घडीतक सहदेवका पीछा करके, उनसे हंसते हंसते यह बचन कहने लगे ॥ १३ ॥

मा युध्यस्व रणे वीर विशिष्टै रथिभिः सह ।
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः ॥ १४ ॥
हे वीर माद्रीपुत्र ! तुम मेरी बातोंको मत टालो, जो मैं कहता हूं उसे सुनो । तुम अपने समान पुरुषके सङ्ग युद्ध करो; कभी अपनेसे अधिक बलवान् रथीके सङ्ग युद्ध मत करना ॥ १४ ॥

अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन्भूयोऽब्रवीद्वचः ।
एषोऽर्जुनो रणे यत्तो युध्यते कुरुभिः सह ।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १५ ॥

अनन्तर कर्ण सहदेवको धनुषके अग्रभागसे पीडित करके यह वचन बोले– रे माद्रीपुत्र ! यह देख ! ये अर्जुन यत्नवान् होकर कौरवोंके सङ्ग समरमें युद्ध कर रहे हैं, तुम उसी स्थानपर चले जाओ अथवा यदि इच्छा होवे तो घर भी जा सकते हो ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात्पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रहसन्निव ॥ १६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने हंसते हंसते सहदेवसे ऐसा वचन कहकर, उन्हें छोडके रथके द्वारा पाण्डव और पाञ्चालसेनाके बीच प्रवेश किया ॥ १६ ॥

वधप्राप्तं तु माद्रेयं नावधीत्समरेऽरिहा ।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन्सत्यसंधो महारथः ॥ १७ ॥

महाराज ! शत्रुनाशन महारथी सत्यपराक्रमी कर्णने युद्धभूमिके बीच सहदेवको अपने वशमें करके भी कुन्तीको जो वरदान दिया था, उसे स्मरण करके सहदेवका वध नहीं किया ॥ १७ ॥

सहदेवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्शल्यतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥ १८ ॥

परन्तु सहदेव कर्णके बाणोंसे पीडित और उनके वचनरूपी शलाकासे विद्ध होकर ऐसे दुःखित हुए कि उस समय उन्हें जीवन धारण करना भी भारी मालूम होने लगा ॥१८॥

आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ १९ ॥

अनन्तर वे महारथी सहदेव बडी शीघ्रताके साथ महात्मा पाञ्चालराजपुत्र जनमेजयके रथ पर जा चढे ॥ १९ ॥

विराटं सहसेनं तु द्रोणार्थे द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण छादयामास धन्विनम् ॥ २० ॥

इस ही समय मद्रराज शल्य सेनाके सहित धनुर्धर राजा विराटको द्रोणाचार्यकी ओर वेग-पूर्वक आक्रमण करनेके लिये गमन करते देख अपने बाणोंसे उन्हें छिपाने लगे ॥ २० ॥

तयोः समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद्राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥ २१ ॥

राजन् ! जैसे पहिले समयमें इन्द्र और जम्भासुरका संग्राम हुआ था, वैसे ही रणभूमिके बीच स्थित दृढ धनुर्धारी दोनों वीरोंका युद्ध होने लगा ॥ २१ ॥

मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितं तीक्ष्णैः शतेन नतपर्वणाम् ॥ २२ ॥

महाराज ! मद्रराज शल्यने शीघ्रताके सहित अपने चोखे नतपर्व सौ बाणोंसे सेनापति विराटको विद्ध किया ॥ २२ ॥

प्रतिविव्याध तं राजा नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैव त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन ह ॥ २३ ॥

तब मत्स्यराज विराटने पहले नौ चोखे बाणोंसे शल्यको विद्ध करके, फिर तिहत्तर और उसके अनन्तर सौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २३ ॥

तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे रथोपस्थादपातयत् ॥ २४ ॥

अनन्तर मद्रराज शल्यने राजा विराटके रथमें जुते हुए चारों घोडोंको मारकर, फिर उनके सारथी और रथकी ध्वजाको युद्धमें रथपरसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २४ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ्शरान् ॥ २५ ॥

महारथी मत्स्यराज विराट घोडे और सारथीसे रहित रथसे तुरंत ही कूदकर पृथ्वीपर स्थित हुए और अपना धनुष फेरते हुए शल्यके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २६ ॥

राजा विराटको रथरहित देखकर उनके भाई शतानीक संपूर्ण पुरुषोंके संमुखमें ही अपने रथको बढाकर शीघ्र ही वहां पर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥

शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ २७ ॥

उस महायुद्धमें मद्रराज शल्यने शतानीकको अपने सन्मुख आते देख, उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध करके उसी समय यमपुरीमें भेज दिया ॥ २७ ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ २८ ॥

महावीर शतानीकके मारे जानेपर रथियोंमें मुख्य राजा विराट ध्वजा–पताकाओंसे शोभित अपने भाईके रथपर शीघ्रताके सहित चढ गये ॥ २८ ॥

ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ २९ ॥

अनन्तर राजा विराट क्रोधसे नेत्र लाल करके दूना पराक्रम प्रकाशित करते हुए, मद्रराज शल्यके रथको अपने बाणोंके समूहसे छिपाने लगे ॥ २९ ॥

ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शतेन नतपर्वणाम् ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३० ॥

तब मद्रराज शल्यने क्रुद्ध होकर सौ नतपर्व चोखे बाणोंसे सेनापति विराटके वक्षस्थलमें दृढ प्रहार किया ॥ ३० ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाविशत्तीव्रं विराटो भरतर्षभ ।
सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ॥ ३१ ॥

हे राजेन्द्र ! राजा विराट शल्यके बाणोंकी चोटसे अत्यन्त विद्ध होकर तीव्रतासे मूर्च्छित होके रथमें बैठ गये । सारथीने युद्धमें राजा विराटको क्षत विक्षत और मूर्च्छित देखकर वहांसे वह उन्हें दूर हटा ले गया ॥ ३१ ॥

ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ।
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना ॥ ३२ ॥

भारत ! अनन्तर उस रात्रिके समय यह बडी सेना युद्धमें शोभा पानेवाले शल्यके सैकडों बाणोंसे पीडित होकर चारों ओर भागने लगी ॥ ३२ ॥

तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनंजयौ ।
प्रायातां तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ॥ ३३ ॥

महाराज ! श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस सेनाको भागती देख, जिस स्थानमें मद्रराज शल्य स्थित थे उस ही स्थलमें गमन किया ॥ ३३ ॥

तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन्राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुसः ।
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ॥ ३४ ॥

राजन् ! उसी समय राक्षसराज अलम्बुस आठ पहियोंसे युक्त उत्तम रथपर आरूढ हो उन दोनोंका सामना करनेके लिये आगे बढा ॥ ३४ ॥

तुरंगममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ।
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मावृतं महत् ॥ ३५ ॥

उसके उस रथमें घोडोंके समान मुखवाले भयंकर पिशाच जूते हुए थे; वह रथ रक्तवर्णकी पताकासे युक्त, लाल रंगके फूलोंकी मालासे भूषित, ऋक्षके चमडेसे मढा हुआ वह भयंकर बडा रथ काले लोहेका बना हुआ था ॥ ३५ ॥

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितुण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ३६ ॥

उसके रथकी ऊंची ध्वजा पर बैठा हुआ विचित्र पंखोंसे शोभित और फैले हुए आंखोवाला एक भयङ्कर गिद्ध डरावनी बोली बोल रहा था ॥ ३६ ॥

स बभौ राक्षसो राजन्भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ।
किरन्बाणगणान्राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि ॥ ३७ ॥

महाराज ! कटे कज्जलगिरिके समान वह राक्षस शोभित होता था; उस राक्षसने अपने रथपर चढके अर्जुनके मस्तकपर सैकडों बाणोंको चलाते हुए अपनी ओर आते हुए अर्जुनको इस भांति रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय वायुकी गतिको रोक देता है ॥ ३७ ॥

अतितीव्रमभूद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

भरतर्षभ ! उस समय मनुष्य और राक्षसका बडे जोरसे महान् युद्ध होने लगा, कि सब देखनेवाले अत्यन्त ही आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥

तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणामभ्यताडयत् ।
नवभिश्च शितैर्बाणैश्चिच्छेद ध्वजमुच्छ्रितम् ॥ ३९ ॥

अनन्तर अर्जुनने सौ बाणोंसे उसे पीडित करके, फिर नौ चोखे बाणोंसे उसके रथकी ऊंची ध्वजा काट डाली ॥ ३९ ॥

सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणास्य द्विधाच्छिनत् ॥ ४० ॥

फिर तीन बाणोंसे सारथी, तीनसे ही त्रिवेणु, एक बाणसे धनुष और चार बाणोंसे उसके रथके चारों घोडोंको काट डाला । उस राक्षसने रथरहित होकर तलवारको ग्रहण किया, अर्जुनने उस तलवारको भी एक तेज बाणसे दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४० ॥

अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ ।
पार्थोऽर्दयद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद्भयात् ॥ ४१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर कुन्तीपुत्र अर्जुनने चार चोखे बाणोंसे उस राक्षसराजको पीडित किया । वह राक्षस अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर भयभीत होकर भाग गया ॥ ४१ ॥

तं विजित्यार्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ ।
किरञ्शरगणान्राजन्नरवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥

राजन् ! उस समय अर्जुन उस राक्षसको पराजित करके हाथी, घोडे और मनुष्योंके ऊपर अनगिनत बाण चलाते हुए शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके समीप चले गये ॥ ४२ ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४३ ॥

महाराज ! तुम्हारी सेनाके योद्धा पाण्डुपुत्र यशस्वी अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके इस प्रकार पृथ्वीमें गिरने लगे जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बहुतेरे वृक्ष टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं ॥ ४३ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु फल्गुनेन महात्मना ।
संप्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणां ते विशां पते ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥ ६३०१ ॥

पृथ्वीपते ! इसी भांति जब बहुतसे शूरवीर योद्धाओंका महात्मा अर्जुनके बाणोंसे नाश होने लगा, तब उस समय तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पूर्ण सेना चारों ओर भागने लगी ॥ ४४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४२ ॥ ६३०१ ॥

: १४३ :

सञ्जय उवाच

शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव ।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! नकुलपुत्र शतानीक वेगपूर्वक अपने बाणरूपी अग्निसे तुम्हारी सेनाको भस्म करने लगे; तब तुम्हारे पुत्र चित्रसेन शतानीकको निवारण करने लगे ॥१॥

नाकुलिश्चित्रसेनं तु नाराचेनार्दयद्भृशम् ।
स च तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः ॥ २ ॥

तब शतानीकने नाराच बाणोंसे चित्रसेनको अत्यंत पीडित किया; चित्रसेनने भी अपने दस चोखे बाणोंसे शतानीकको विद्ध किया ॥ २ ॥

चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ३ ॥

महाराज ! फिर चित्रसेनने युद्धमें उत्तम पानी चढे हुए नौ बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ ३ ॥

नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म संनतपर्वभिः ।
गात्रात्संच्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

अनन्तर शतानीकने अनेक नतपर्व बाणोंको चलाकर चित्रसेनके शरीरसे उसके कवचको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया, वह अद्भुतसा कार्य हुआ ॥ ४ ॥

सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ५ ॥

नरेंद्र ! तुम्हारे पुत्र चित्रसेन कवचसे हीन होकर समयपर केंचुल छोडनेवाले सर्पके समान अत्यंत शोभित हुए ॥ ५ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः ।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६ ॥

अनन्तर नकुलपुत्र शतानीकने युद्धभूमिमें यत्नवान् चित्रसेनकी ध्वजा और धनुषको अपने चोखे बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिराया ॥ ६ ॥

स छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम् ॥ ७ ॥

महाराज ! महारथी चित्रसेनने युद्धभूमिमें वर्मसे रहित हो तथा धनुष कटने पर शत्रुको विदीर्ण करनेमें समर्थ ऐसा दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ ७ ॥

ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ॥ ८ ॥

फिर भरतकुलके महारथी चित्रसेनने युद्धमें क्रुद्ध होकर नौ बाणोंसे शतानीकको विद्ध किया ॥ ८ ॥

शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष ।
जघान चतुरो वाहान्सारथिं च नरोत्तमः ॥ ९ ॥

मारिष ! उससे पुरुषश्रेष्ठ शतानीकने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर चित्रसेनके रथके चारों घोडे और उनके सारथीका वध किया ॥ ९ ॥

अवप्लुत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः ।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद्बली ॥ १० ॥

तब बलवान् महारथी चित्रसेनने उस रथसे कूदकर पचीस बाणोंसे शतानीकको पीडित किया ॥ १० ॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥

तब युद्धमें नकुलपुत्र शतानीकने शीघ्रताके सहित यह कर्म करनेवाले चित्रसेनके रत्नभूषित धनुषको अर्द्धचन्द्र बाणसे काट दिया ॥ ११ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

चित्रसेन घोडे, रथ, सारथी और धनुषरहित होकर शीघ्रताके सहित महात्मा हृदीकपुत्र कृतवर्माके रथपर चढ गये ॥ १२ ॥

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा ॥ १३ ॥

कर्णपुत्र वृषसेन महारथी राजा द्रुपदको द्रोणाचार्यकी ओर सेनाके सहित युद्धके निमित्त गमन करते देख सैकडों बाणोंकी वर्षा करते हुए वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे ॥ १३ ॥

यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ ॥ १४ ॥

महाराज ! युद्धमें पाञ्चालराज यज्ञसेनने साठ बाणोंसे महारथी कर्णपुत्र वृषसेनकी भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ १४ ॥

वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे ॥ १५ ॥

उससे कर्णपुत्र वृषसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे रथपर बैठे हुए राजा द्रुपदके हृदयमें प्रहार किया ॥ १५ ॥

तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकिनौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ १६ ॥

महाराज ! युद्धमें उस समय उन दोनों वीरोंके शरीर एक दूसरेके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे; वे दोनोंही बाणरूपी कंटकोंसे युक्त हो कांटोंसे भरे हुए साहीके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥

×

रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७ ॥

सुवर्णमय पंख और सीधे तीक्ष्ण बाणोंसे महायुद्धमें उन दोनोंके कवच कट गये थे और दोनोंही रुधिरपूरित होकर शोभित हो रहे थे ॥ १७ ॥

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥ १८ ॥

वे दोनों तपाये हुए सोनेके समान विचित्र, कल्पवृक्षके समान अद्भुत और फूले हुए पलाश वृक्षोंके समान अपूर्व शोभासे युक्त हो युद्धभूमिमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

वृषसेनस्ततो राजन्नवभिर्द्रुपदं शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चान्यैस्त्रिभिः शरैः ॥ १९ ॥

राजन् ! अनन्तर वृषसेनने राजा द्रुपदको नौ बाणोंसे विद्ध करके फिर सत्तर बाणोंसे विद्ध किया । इसके बाद उन्हें और तीन बाण मारे ॥ १९ ॥

ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन्विबभौ तदा ।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ २० ॥

महाराज ! इसी भांति सहस्रों बाणोंको एक ही बार चलाते हुए कर्णपुत्र वृषसेन जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भांति युद्धभूमिमें शोभित हुए ॥ २० ॥

ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
संप्राद्रवद्रणे राजन्निशीथे भैरवे सति ॥ २१ ॥

राजन् ! उस भयंकर रात्रिके समय राजा द्रुपदकी सम्पूर्ण सेना वृषसेनके बाणोंसे कवचरहित होके युद्धभूमिसे भागने लगी ॥ २१ ॥

प्रदीपैर्हि परित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः ।
व्यराजत मही राजन्वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २२ ॥

भागनेके समय सैनिकोंने जो मशालें फेंक दी थीं, वे सब ओर जल रही थीं; उनसे वह रणभूमि इस प्रकार शोभित होने लगी जैसे बादलसे रहित होनेपर ग्रह-तारोंसे युक्त आकाश शोभित होता है ॥ २२ ॥

तथाङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुंधरा ।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २३ ॥

वीरोंके शरीरोंसे गिरे हुए अंगदोंसे वहांकी भूमि ऐसी शोभित होती थी, जैसे वर्षाकालमें बिजलियोंसे बादल प्रकाशित होता है ॥ २३ ॥

ततः कर्णसुतत्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः ।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २४ ॥

जैसे तारकामय युद्धमें दानव लोग भयभीत होकर इन्द्रके सम्मुखसे भाग गये थे, वैसे ही सोमकवंशीय योद्धा लोग कर्णपुत्र वृषसेनके भयसे त्रस्त होकर चारों ओर भागने लगे ॥ २४ ॥

तेनार्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः ।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ २५ ॥

महाराज ! समरमें वृषसेनसे पीडित होकर चारों ओर भागनेवाले सोमक योद्धा दीपकोंके प्रकाशसे प्रकाशित हो, बहुत शोभायमान दीखते थे ॥ २५ ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रो व्यरोचत ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ २६ ॥

भारत ! युद्धमें कर्णपुत्र वृषसेन सोमकवंशी योद्धाओंको पराजित करके दोपहरके प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यकी भांति शोभित हुए ॥ २६ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ २७ ॥

उस समय तुम्हारी सेना और शत्रुओंकी ओरके सहस्रों राजाओंकी मण्डलीके बीच अकेले प्रतापी वृषसेन ही जलती हुई अग्निकी भांति अपने तेजसे प्रकाशित होकर रणभूमिमें स्थित रहे ॥ २७ ॥

स विजित्य रणे शूरान्सोमकानां महारथान् ।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥

इसी भांति कर्णपुत्र वृषसेनने महारथी शूरवीर सोमक योद्धाओंको पराजित करके, जिस स्थान पर राजा युधिष्ठिर युद्धभूमिमें स्थित थे उस ही स्थल पर शीघ्रताके सहित गमन किया ॥ २८ ॥

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् ।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्युद्गच्छन्महारथः ॥ २९ ॥

उसी समय युद्धभूमिमें युधिष्ठिर पुत्र प्रतिविन्ध्य क्रुद्ध होकर कुरुसेनाके पुरुषोंको अपने बाणोंसे भस्म करने लगे, तब तुम्हारेपुत्र महारथी दुःशासन प्रतिविन्ध्यका निवारण करनेके लिये वहां आ पहुंचे ॥ २९ ॥

तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह ।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभार्गवयोरिव ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे बादलसे रहित आकाशमण्डलमें बुध और सूर्यका समागम होता है, वैसे ही उन दोनों वीरोंका अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ ३० ॥

प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३१ ॥

अनन्तर दुःशासनने युद्धभूमिमें कठिन कर्म करनेवाले प्रतिविन्ध्यके ललाटमें तीन बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३१ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता पुत्रेण तव धन्विना ।
विरराज महाबाहुः सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३२ ॥

महाबाहु प्रतिविन्ध्य तुम्हारे बलवान् धनुर्धरपुत्र दुःशासनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर, शृङ्गयुक्त पर्वतकी भांति शोभित हुए ॥ ३२ ॥

दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः ।
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३३ ॥

अनन्तर महारथी प्रतिविन्ध्यने युद्धमें दुःशासनको नौ बाणोंसे विद्ध करके फिर सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३३ ॥

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान्कर्म दुष्करम् ।
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास पत्त्रिभिः ॥ ३४ ॥

भारत ! उसी समय तुम्हारे पुत्र दुःशासनने युद्धभूमिके बीच अत्यन्त कठिन कर्म किया; उन्होंने अपने तेज बाणोंसे प्रतिविन्ध्यके घोडोंके मार डाला ॥ ३४ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत् ।
रथं च शतशो राजन्व्यधमत्तस्य धन्विनः ॥ ३५ ॥

राजन् ! फिर एक भल्लसे धनुर्धर वीर प्रतिविन्ध्यने सारथी और ध्वजको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया और रथके भी सैकडों टुकडे कर दिये ॥ ३५ ॥

पताकाश्च स तूणीरान्रश्मीन्योक्त्राणि चाभिभो ।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३६ ॥

फिर क्रुद्ध दुःशासनने अपने चोखे नतपर्व बाणोंसे प्रतिविन्ध्यके घोडोंकी बागडोर, रथकी धुरी, पताका और तूणीरके भी टुकडे टुकडे कर दिये ॥ ३६ ॥

विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः ।
अयोधयत्तव सुतं किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ३७ ॥

तब धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथसे रहित होकर हाथमें धनुष लेकर पृथ्वीपर स्थित हुए और सैकडों बाणोंको चलाते हुए तुम्हारे पुत्र दुःशासनके संग युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥

क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद कृतहस्तवत् ।
अथैनं दशभिर्भल्लैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥ ३८ ॥

तब तुम्हारे पुत्र दुःशासनने अपना हस्तलाघव दिखाकर एक क्षुरप्रसे प्रतिविन्ध्यका धनुष काटा और फिर धनुष कट जानेपर भल्लोंसे उन्हें पीडित किया ॥ ३८ ॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः ।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥ ३९ ॥

प्रतिविन्ध्यके दूसरे महारथी भ्राता लोग उन्हें रथसे रहित देख बडी सेनाके सहित अत्यंत वेगपूर्वक उनके समीप उपस्थित हुए ॥ ३९ ॥

आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम् ।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४० ॥

महाराज ! तब प्रतिविन्ध्य अपने भाई सुतसोमके तेजस्वी रथपर चढके, धनुष फेरते हुए दुःशासनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव ।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥ ४१ ॥

अनन्तर तुम्हारी ओरके सब योद्धा लोग भी बडी सेनाके सहित दुःशासनको सब ओरसे घेरकर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ ४१ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥ ६३४३ ॥

भारत ! अनन्तर उस महाघोर रात्रिके समय दोनों ओरके शूरवीरोंका यमपुरीकी वृद्धि करनेवाला महाघोर दारुण संग्राम होने लगा ॥ ४२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥ ६३४३ ॥

: १४४ :

संजय उवाच

नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात्सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! वेगवान् पाण्डुपुत्र नकुल युद्धमें तुम्हारी सेनाका नाश करते थे; उसे देख सुबलपुत्र शकुनि खडा रह ! खडा रह ! कहके नकुलकी ओर आक्रमण करनेके लिये दौडे ॥ १ ॥

कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

पहलेसे ही वे दोनों वीर परस्पर वैर करते थे और एक दूसरेके वधकी इच्छा करते थे; इसलिये वे कान पर्यन्त धनुष खींचकर छोडे हुए बाणोंसे एक दूसरेके शरीरमें प्रहार करने लगे ॥ २ ॥

यथैव सौबलः क्षिप्रं शरवर्षाणि मुञ्चति ।
तथैव नकुलो राजञ्शिक्षां संदर्शयन्युधि ॥ ३ ॥

महाराज ! युद्धभूमिके बीच शकुनि जिस भांतिसे शीघ्रतापूर्वक अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे, वैसे ही युद्धविद्या जाननेवाले नकुल भी लगातार अपने बाणोंको वर्षाने लगे ॥ ३ ॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ॥ ४ ॥

उस समय उन दोनों वीरोंका शरीर एक दूसरेके बाणरूपी कण्टकोंसे इस प्रकार पूरित होकर शोभित होने लगा, जैसे कांटोंसे युक्त सेमरका वृक्ष शोभित होता है ॥ ४ ॥

सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन्विवृतलोचनौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम् ॥ ५ ॥

महाराज ! वे दोनों वीर क्रोधसे नेत्र लाल करके इस प्रकार एक दूसरेकी ओर आंखें फाडकर टेढी दृष्टिसे देखने लगे, मानो दृष्टिसे देखकर ही एक दूसरेको भस्म किये डालते हैं ॥ ५ ॥

स्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव ।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह ॥ ६ ॥

अनन्तर तुम्हारे साले शकुनिने अत्यन्त क्रुद्ध होके हंसते हुए एक तीक्ष्ण कर्णिक बाणसे माद्रीपुत्र नकुलके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ६ ॥

नकुलस्तु भृशं विद्धः स्यालेन तव धन्विना ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चैनमाविशत् ॥ ७ ॥

पाण्डुपुत्र नकुल तुम्हारे साले धनुर्द्धारी शकुनिके अस्त्रसे अत्यन्त विद्ध होकर रथमें बैठ गये और भारी मूर्च्छामें पड गये ॥ ७ ॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम् ।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ८ ॥

राजन् ! अपने अत्यन्त वैरी और तेजस्वी शत्रु नकुलको मूर्च्छित पडा देख, शकुनि वर्षा-कालके बादलकी भांति गंभीर स्वरसे गर्जते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ८ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः ।
अभ्ययात्सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः ॥ ९ ॥

थोडी देरके बाद पाण्डुपुत्र नकुल सावधान होकर मुख बाये हुए यमराजकी भांति फिर सामना करनेके लिये शकुनिकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
पुनश्चैव शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे ॥ १० ॥

भरतर्षभ ! उन्होंने क्रोधपूर्वक शकुनिको साठ बाणोंसे विद्ध करके, फिर सौ नाराच बाणोंसे उनके छातीमें प्रहार किया ॥ १० ॥

ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे स चिच्छिदे ।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥ ११ ॥

अनन्तर नकुलने शकुनिके बाणके सहित धनुषकी मुट्ठीको काट दिया और शीघ्रही उनके रथकी ध्वजाको काटके रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा स्यालं तवानघ ।
अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ॥ १२ ॥

महाराज ! तुम्हारे साले नकुलके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होके रथमें बैठ गये । हे पापरहित राजेन्द्र ! तुम्हारे साले शकुनिको मूर्च्छित होकर पडे हुए देख, उनका सारथि शीघ्रताके सहित रथ हांकके उनको सेनाके आगेसे दूर हटा ले गया ॥ १२ ॥

ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः ।
निर्जित्य च रणे शत्रून्नकुलः शत्रुतापनः ।
अब्रवीत्सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥ १३ ॥

फिर सेनाके सहित पाण्डव लोग ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे । शत्रुतापन नकुल इसी भांति युद्धभूमिमें शत्रुओंको पराजित करके क्रोधपूर्वक अपने सारथीसे यह वचन बोले, मेरे रथको द्रोणाचार्यकी सेनाके पास ले चलो ॥ १३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य धीमतः ।
प्रायात्तेन रणे राजन्येन द्रोणोऽन्वयुध्यत ॥ १४ ॥

राजन् ! सारथी बुद्धिमान माद्रीपुत्र नकुलके वचनको सुनकर जहां पर द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे थे, उस ही स्थल पर नकुलके रथको लेकर उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥

शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशां पते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्युद्गच्छत्सुवेगितः ॥ १५ ॥

इस ही समय शरद्वतपुत्र कृपाचार्य शिखण्डीको युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर युद्धकी इच्छासे आते देख सामना करनेके लिये यत्नवान् होकर वेगपूर्वक उसकी ओर दौडे ॥ १५ ॥

गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणान्तिकमरिंदमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ १६ ॥

शिखण्डीने द्रोणाचार्यकी सहायताके लिये शत्रुनाशन कृपाचार्यको शीघ्रता पूर्वक सम्मुख आये देखकर हंसकर नौ भल्लोंसे उन्हें बिद्ध किया ॥ १६ ॥

तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥ १७ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्रोंके प्रियकार्य करनेवाले कृपाचार्यने पहिले शिखण्डीको पांच बाणोंसे विद्ध करके, फिर बीस बाणोंसे बिद्ध किया ॥ १७ ॥

महद्युद्धं तयोरासीद्घोररूपं विशां पते ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ १८ ॥

देवासुर–संग्राममें जैसे इन्द्रके सङ्ग शम्बरासुरका युद्ध हुआ था, वैसे ही कृपाचार्यके सङ्ग शिखण्डीका महाघोर महान् संग्राम होने लगा ॥ १८

शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
प्रकृत्या घोररूपं तदासीद्घोरतरं पुनः ॥ १९ ॥

महाराज ! अन्धकारमय रात्रिके समय आकाशमण्डल स्वभाविक ही घोररूपसे दिखाई देरहा था, उस पर भी उन दोनों महारथियोंके बाणोंसे परिपूरित होकर अत्यन्त ही भयानक दिखाई देने लगा ॥ १९ ॥

रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ।
कालरात्रिनिभा ह्यासीद्घोररूपा भयावहा ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ वह घोर भयङ्करी रात्रि युद्ध करने वाले शूरवीर योद्धाओंके निमित्त कालरात्रिके स्वरूप होगई ॥ २० ॥

शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा ॥ २१ ॥

अनन्तर शिखण्डीने गौतम पुत्र कृपाचार्यके बडे धनुषको रोदे और बाणसमेत अपने अर्धचन्द्र बाणसे काटके गिरा दिया ॥ २१ ॥

तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम् ।
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम् ॥ २२ ॥

राजन् ! धनुष काटनेपर कृपाचार्यने क्रुद्ध होकर सुवर्णदण्डयुक्त अत्यन्त ही तेजधारवाली और कारीगरके द्वारा साफ की हुई एक भयानक शक्ति ग्रहण करके शिखण्डीकी ओर चलायी ! ॥ २२ ॥

तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ।
सापतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा ॥ २३ ॥

शिखण्डीने अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको अनेक बाणोंसे काट डाला, तब वह दीप्तिमान् और प्रकाशमान शक्ति कटकर पृथ्वीमें गिरके प्रकाशित होने लगी ॥ २३ ॥

अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ।
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम् ॥ २४ ॥

महाराज ! इतने ही समयमें रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य दूसरा धनुष ग्रहण करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शिखण्डीको छिपाने लगे ॥ २४ ॥

स छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ।
व्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः ॥ २५ ॥

रथियोंमें मुख्य शिखण्डी समरमें यशस्वी कृपाचार्यके बाणोंसे आच्छादित होकर मूर्च्छित हो गये; और चेतरहितके समान रथमें बैठ गये ॥ २५ ॥

सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ॥ २६ ॥

भारत ! शरद्वतपुत्र कृपाचार्य युद्धमें शिखण्डीको मूर्च्छित देख, अनेक बाणोंको चलाकर उसके शरीरमें प्रहार करने लगे मानो वे उनको मार डालना चाहते हों ॥ २६ ॥

×

विमुखं तं रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ।
पाञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥ २७ ॥

पांचाल और सोमकवंशी वीर योद्धा लोग राजा द्रुपदके महारथी पुत्र शिखण्डीको मूर्च्छित और युद्धसे विमुख हुए देखकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ २७ ॥

तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ।
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमभूत्पुनः ॥ २८ ॥

वैसे ही तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग और तुम्हारे पुत्र बडी सेनाको संग लेकर द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्यको घेर कर रणभूमिके बीच स्थित हुए फिर दोनों ओरके शूरवीरोंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ २८ ॥

रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां नदतामिव ॥ २९ ॥

राजन् ! इस ही समय रथी योद्धा लोग एक दूसरेकी ओर दौडे । उस समय रणभूमिमें गर्जते हुए बादलकी भांति परस्पर धावा करनेवाले रथोंकी घर्घराहटका महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ २९ ॥

द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशां पते ।
अन्योन्यमभितो राजन्क्रूरमायोधनं बभौ ॥ ३० ॥

पृथ्वीपते ! अनन्तर परस्पर आक्रमण करनेवाले घुडसवार और हाथीसवारोंका युद्ध शुरू हुआ; उस समय वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥ ३० ॥

पत्तीनां द्रवतां चैव पदशब्देन मेदिनी ।
अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाङ्गना ॥ ३१ ॥

महाराज ! इस भांति एक दूसरेकी ओर दौडते हुए पैदल सेनाके वीरोंके पांवकी ठोकरसे पृथ्वी भयभीत हुई स्त्रीकी भांति कांपने लगी ॥ ३१ ॥

रथा रथान्समासाद्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ।
न्यगृह्णन्बहवो राजञ्शलभान्वायसा इव ॥ ३२ ॥

महाराज ! अनगिनत रथी योद्धा लोग भी वेगपूर्वक शत्रुसेनाके रथियोंकी ओर गमन करके, जैसे कौवें शलभोंको पकडते हैं, उसी भांति एक दूसरेको पकडने लगे ॥ ३२ ॥

तथा गजान्प्रभिन्नांश्च सुप्रभिन्ना महागजाः ।
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत ॥ ३३ ॥

इसी समय मदचूते हाथी शत्रुसेनाके मतवाले हाथियोंके समीप सहसा गमन करके एक दूसरेको यत्नपूर्वक वश कर लेते थे ॥ ३३ ॥

सादी सादिनमासाद्य पदाती च पदातिनम्।
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः ॥ ३४॥
इसी भांति घुडसवार घुडसवारोंसे और पैदल सेनाके योद्धालोग पैदलसे क्रोधपूर्वक आपसमें भिडकर भी कोई दूसरी सेनाके वीरोंको पीछे न हटा सके ॥ ३४॥

धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि।
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुतुमुलो निशि ॥ ३५॥
उस रात्रिके समय दोनों सेनाके वीरोंके बार बार दौडने, भागने और फिर युद्धके निमित्त लौटनेसे रणभूमिके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा ॥ ३५॥

दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु।
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ॥ ३६॥
महाराज! हाथी, घोडे और रथोंपर जलते हुए दीपक आकाशसे गिरी हुई बडी उल्काओंकी भांति दिखाई देने लगे ॥ ३६॥

सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता।
दिवसप्रतिमा राजन्बभूव रणमूर्धनि ॥ ३७॥
भरतश्रेष्ठ! वह रात्रि चारों ओर दीपकके प्रकाशसे युक्त होकर दिनकी भांति शोभित होने लगी ॥ ३७॥

आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति।
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरलंकृतम् ॥ ३८॥
जैसे सूर्य उदय होनेपर जगत्का सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही जलते हुए दीपकोंके प्रकाशसे उस रणभूमिमें भयंकर अन्धकार नष्ट हो गया ॥ ३८॥

शस्त्राणां कवचानां च मणीनां च महात्मनाम्।
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ॥ ३९॥
परन्तु जब चारों ओर दीपकके प्रकाश फैल गये तब शूरवीर पुरुषोंके अस्त्र-शस्त्र, कवच और मणिजटित आभूषणोंका प्रकाश इकबारगी छिप गया ॥ ३९॥

तस्मिन्कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे।
अवधीत्समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४०॥
पुत्रश्च पितरं मोहात्सखायं च सखा तथा।
संबन्धिनं च संबन्धी स्वस्रीयं चापि मातुलः ॥ ४१॥
हे भरतश्रेष्ठ! महाघोर रात्रिके समय जब भयङ्कर कोलाहलके सहित शूरवीरोंका युद्ध होने लगा, तब उस युद्धमें मोहके वशमें होकर पिता पुत्रका, पुत्र पिताका, मित्र मित्रका, सम्बन्धी सम्बन्धिका, मामा भानजेका और भानजे मामाका वध करने लगे ॥ ४०-४१॥

स्वे स्वान्परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम् ।
निर्मर्यादमभूद्युद्धं रात्रौ घोरं भयावहम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥ ६३८५ ॥

इसी भांति आत्मीय पुरुष अपने आत्मीय लोगोंके ऊपर और शत्रु शत्रुओंके ऊपर अपने अस्त्र शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे । उस भयङ्करी रात्रिके समय कायरोंके भयको बढानेवाला मर्यादारहित युद्ध होने लगा ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४४ ॥ ६३८५ ॥

: १४५ :

सञ्जय उवाच

तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्तत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! जब वह महा भयंकर तुमुल युद्ध होने लगा, तब धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥ १ ॥

संमृजानो धनुः श्रेष्ठं ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
अभ्यवर्तत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपने बडे धनुषको ग्रहण करके, बार बार धनुषकी टङ्कार करते हुए द्रोणाचार्यके सुवर्णभूषित रथपर धावा किया ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नं तदायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ।
परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥

महाराज ! तब द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे आते हुए धृष्टद्युम्नको पाण्डवों सहित पाञ्चाल योद्धाओंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३ ॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नको इस प्रकार रक्षकोंसे घिरा हुआ देख, तुम्हारे पुत्र भी आचार्यश्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी युद्धमें सब भांतिसे यत्नपूर्वक रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥

बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे ।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥ ५ ॥

प्रचण्ड वायुके वेगसे उथलते और विक्षुब्ध जल जंतुओंसे भरे हुए जैसे दो भयंकर समुद्र बढके आपसमें मिलकर दीख पडते हैं, वैसे ही रात्रिके समय समुद्र समान दोनों ओरकी महासेनाएं एक दूसरेसे भिड गई ॥ ५ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥ ६ ॥

महाराज ! अनन्तर पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने शीघ्रताके सहित पांच बाणोंसे द्रोणाचार्यके हृदयमें प्रहार करके सिंहनाद किया ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे ।
चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महाप्रभम् ॥ ७ ॥

भारत ! तब द्रोणाचार्यने युद्धमें पचीस बाणोंसे धृष्टद्युम्नको विद्ध करके एक दूसरे भल्लसे उनका तेजस्वी धनुष काट दिया ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं संदश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होके क्रोधपूर्वक ओंठ काटते और दांत कटकटाते हुए कटे धनुषको तुरंत ही फेंक दिया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
आददेऽन्यद्धनुः श्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥

महाराज ! अनन्तर अत्यंत क्रुद्ध हुए प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करके दूसरा श्रेष्ठ दृढ धनुष ग्रहण किया ॥ ९ ॥

विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात्परवीरहा ।
द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजत्सायकं ततः ॥ १० ॥

अनन्तर शत्रुवीरनाशन धृष्टद्युम्न अपने विचित्र धनुषको कानपर्यन्त खींचकर द्रोणाचार्यके नाश करनेमें समर्थ एक महाभयङ्कर बाण उनकी ओर चलाया ॥ १० ॥

स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे ।
भासयामास तत्सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥

उस महान् संग्राममें बलवान् धृष्टद्युम्नके धनुषसे छोडा हुआ वह भयंकर बाण उदित हुए सूर्यके समान उस सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा तु शरं घोरं देवगन्धर्वमानवाः ।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन्द्रोणायेत्यब्रुवन्वचः ॥ १२ ॥

राजन् ! समरमें उस भयङ्कर बाणको देखकर देवता, गन्धर्व और मनुष्य द्रोणाचार्यके मङ्गलकामनाकी इच्छासे द्रोणाचार्यका कल्याण हो ऐसा कहने लगे ॥ १२ ॥

तं तु सायकमप्राप्तमाचार्यस्य रथं प्रति ।
कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥
परन्तु कर्णने उस भयंकर बाणको द्रोणाचार्यके रथकी ओर आते देख अपना हस्तलाघव प्रकाशित करते हुए अपने बाणोंसे बारह टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥

स छिन्नो बहुधा राजन्सूतपुत्रेण मारिष ।
निपपात शरस्तूर्णं निकृत्तः कर्णसायकैः ॥ १४ ॥
मारिष ! वह बाण सूतपुत्र कर्णके बाणोंसे टुकडे टुकडे होकर शीघ्र ही पृथ्वीमें गिर पडा ॥ १४ ॥

छित्त्वा तु समरे बाणं शरैः संनतपर्वभिः ।
धृष्टद्युम्नं रणे कर्णो विव्याध दशभिः शरैः ॥ १५ ॥
युद्धमें उस बाणको अपने नतपर्व बाणोंसे काटकर, कर्णने दस बाणोंसे धृष्टद्युम्नको विद्ध किया ॥ १५ ॥

पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणश्च सप्तभिः ।
शल्यश्च नवभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ॥ १६ ॥
अनन्तर अश्वत्थामाने पांच, स्वयं द्रोणाचार्यने सात, शल्यने दस, दुःशासनने तीन ॥१६॥

दुर्योधनश्च विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ।
पाञ्चाल्यं त्वरिताविध्यन्सर्व एव महारथाः ॥ १७ ॥
दुर्योधनने बीस और शकुनिने पांच बाणोंसे पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नको विद्ध किया । इसी भांति सब महारथियोंने उनको त्वरा करके विद्ध किया ॥ १७ ॥

स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणत्राणार्थमाहवे ।
सर्वानसंभ्रमाद्राजन्प्रत्यविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध तव चात्मजम् ॥ १८ ॥
धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सात महारथियोंके बाणोंसे विद्ध होकर भी निर्भयताके सहित उन सबको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया; फिर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और तुम्हारे पुत्रको भी विद्ध किया ॥ १८ ॥

ते विद्ध्वा धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे ।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥
उन सम्पूर्ण वीरोंने युद्धभूमिके बीच रथियोंमें मुख्य धनुर्द्धर धृष्टद्युम्नके बाणोंसे विद्ध होकर, फिर वेगपूर्वक धृष्टद्युम्नको अपने पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ १९ ॥

द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

महाराज ! उस ही समय द्रुमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्नको एक बाणसे बिद्ध किया; फिर शीघ्रही दूसरे तीन बाणोंसे उन्हें घायल करके कहा—खडा रह ! खडा रह ! ॥ २० ॥

स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥

तब युद्धमें धृष्टद्युम्नने शिलापर घिसे हुए, अत्यन्त चोखे, स्वर्णपुंखवाले प्राणघातक तीन बाणोंसे द्रुमसेनको विद्ध किया ॥ २१ ॥

भल्लेनान्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् ।
उन्ममाथ शिरः कायाद्द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥

अनन्तर पराक्रमी धृष्टद्युम्नने एक दूसरे भल्लसे सुवर्णमय उज्ज्वल कुण्डल भूषित द्रुमसेनके सिरको धडसे काट गिराया ॥ २२ ॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ संदष्टौष्ठपुटं रणे ।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३ ॥

युद्धमें उस मस्तकने अपने ओठको दांतोंसे दबाया था; वह प्रचण्ड वायुके वेगसे गिराये हुए पके ताल फलके समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ २३ ॥

तांश्च विद्ध्वा पुनर्वीरान्वीरः सुनिशितैः शरैः ।
राधेयस्याच्छिनद्भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥ २४ ॥

अनन्तर महावीर धृष्टद्युम्नने अपने तेज बाणोंसे फिर उन सब महारथियोंको विद्ध करके, विचित्र युद्ध करनेवाले राधापुत्र कर्णके धनुषको भल्ल बाणोंसे काट दिया ॥ २४ ॥

न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा ।
निकर्तनमिवात्युग्रो लाङ्गूलस्य यथा हरिः ॥ २५ ॥

जैसे अपनी पूंछको कटती देख अत्यंत क्रुद्ध सिंह नहीं सह सकता; वैसे ही कर्णने भी अपने धनुषका काटा जाना सहन नहीं किया ॥ २५ ॥

सोऽन्यद्धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ।
अभ्यवर्षच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥ २६ ॥

वह क्रोधसे लाल नेत्र करके दूसरा धनुप ग्रहण कर लम्बी सांस खींचकर महाबलवान् धृष्टद्युम्न पर बाणोंकी वर्षाने लगे ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा तु कर्णं संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः ।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥

कर्णको क्रोधित हुआ देख उन छहों श्रेष्ठ रथी वीरोंने पांचाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नके वधकी अभिलाषा करके शीघ्रताके सहित उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २७ ॥

षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥ २८ ॥

उस समय हम लोग धृष्टद्युम्नको तुम्हारी सेनाके छः वीर महारथियोंके संमुखमें स्थित देखकर उनको मृत्युके मुखमें पडा हुआ ही समझने लगे ॥ २८ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्शरान् ।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥ २९ ॥

उस ही समय यदुवंशीय सात्यकि अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए वहांपर पराक्रमी धृष्टद्युम्नके पास उपस्थित हुए ॥ २९ ॥

तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥ ३० ॥

इसी भांति जब महाधनुर्द्धर युद्धदुर्मद सात्यकि आके वहांपर उपस्थित हुए तब राधापुत्र कर्णने दस तेज बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ३० ॥

तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः ।
पश्यतां सर्ववीराणां मागास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३१ ॥

महाराज ! अनन्तर सात्यकिने सम्पूर्ण वीर योद्धाओंके संमुखमें ही कर्णको बाणोंसे विद्ध किया और कहा— भागना मत, खडे रहो ॥ ३१ ॥

स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।
आसीत्समागमो घोरो बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥

तब महात्मा कर्ण और बलवान् सात्यकिका इन्द्र और बलिकी भांति वह घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥

त्रासयंस्तलघोषेण क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥

क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने अपने तलघोषके शब्दसे सम्पूर्ण क्षत्रियोंको भयभीत करके राजीवलोचन कर्णको अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३३ ॥

कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली ।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥ ३४ ॥

महाराज ! वैसे ही महाबलवान् सूतपुत्र कर्ण भी धनुष टंकारके शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए सात्यकिके संग युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि ।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविध्यत ॥ ३५ ॥

कर्णने विपाठ, कर्णि, नाराच, वत्सदन्त, क्षुर आदि सैकडों बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिको विद्ध किया ॥ ३५ ॥

तथैव युयुधानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो रथः ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद्युद्धमभवत्समम् ॥ ३६ ॥

रथियोंमें मुख्य वृष्णिवंशीय वीर सात्यकि भी उसी भांति बाणोंको चलाकर कर्णको विद्ध करने लगे । उन दोनों वीरोंका वह युद्ध समभावसे ही होता रहा ॥ ३६ ॥

तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

महाराज ! अनन्तर तुम्हारी ओरके योद्धा और कर्णका कवचधारी पुत्र ये सब इकट्ठे होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर चारों ओरसे सात्यकिको विद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य चाभिभो ।
अविध्यत्सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥

इससे यदुवंशी सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर्ण और उन सब योद्धाओंके चलाये हुए अस्त्रोंका अस्त्रोंसे निवारण करके वृषसेनके हृदयमें अपने बाणसे प्रहार किया ॥ ३८ ॥

तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशां पते ।
न्यपतत्स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

पृथ्वीपते ! पराक्रमी वृषसेन सात्यकिके बाणकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर धनुष त्यागके मूर्च्छित होकर रथमें गिर पडे ॥ ३९ ॥

ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥

उससे महारथी कर्ण अपने पुत्र वृषसेनको मरा हुआ समझ कर, पुत्रशोकसे अत्यन्त ही संतप्त हुए और अपने बाणोंसे सात्यकिको पीडित करने लगे ॥ ४० ॥

×

पीडयमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
महारथी सात्यकि कर्णके बाणोंसे पीडित हो शीघ्रताके सहित अनेक बाणोंको चला कर कर्णको बार बार विद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः ।
सहस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥
अनन्तर सात्वतवंशी सात्यकिने कर्णको दस और वृषसेनको सात बाणोंसे विद्ध करके, फिर उन दोनोंके अंगुलित्राण और धनुषको काट दिया ॥ ४२ ॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयंकरे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥
तब उन दोनों कर्ण और वृषसेनने दूसरे शत्रुभयंकर धनुषोंपर रोंदा चढाकर सात्यकिको सब ओरसे तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करना शुरू किया ॥ ४३ ॥

वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन्गाण्डीवस्य महास्वनः ॥ ४४ ॥
महाराज ! श्रेष्ठ वीरोंके नाश करनेवाले उस महाघोर संग्रामके समय हम लोगोंको गाण्डीव धनुषका महाभयङ्कर शब्द जोरसे सुनाई देने लगा ॥ ४४ ॥

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निस्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥
सूतपुत्र कर्ण अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार और रथका शब्द सुन कर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे यह वचन बोले ॥ ४५ ॥

एष सर्वाञ्शिबीन्हत्वा मुख्यशश्च नरर्षभान् ।
पौरवांश्च महेष्वासान्गाण्डीवनिनदो महान् ॥ ४६ ॥
महाराज ! ये महा धनुर्द्धारी पृथापुत्र अर्जुन हमारी सम्पूर्ण शिबि सेनाका और मुख्य मुख्य महाधनुर्धर पुरुष श्रेष्ठ पौरवोंका वध करके अपने गाण्डीव धनुषका महान् टङ्कार कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ।
करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः ॥ ४७ ॥
और देवराज इन्द्रके समान अर्जुनके रथकी घर्घराहट सुनाई दे रही है; इससे मुझे यह स्पष्ट ही मालूम हो रहा है कि अर्जुन अपने पराक्रमके अनुसार ही कर्म कर रहे हैं ॥ ४७ ॥

एषा विदीर्यते राजन्बहुधा भारती चमूः।
विप्रकीर्णान्यनीकानि नावतिष्ठन्ति कर्हिचित् ॥ ४८ ॥

राजन्! यह देखो, यह व्यूहबद्ध भारती सेना इधर उधर भाग रही है; उनसे विदीर्ण की गयी हुई हमारी सेनाएं कहीं भी ठहर नहीं सकती हैं॥ ४८ ॥

वातेनेव समुद्धूतमभ्रजालं विदीर्यते।
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४९ ॥

जैसे प्रबल वायुके वेगसे बादलोंके समूह छिन्न भिन्न होजाते हैं, वैसे ही अर्जुनके सामने आकर सारी सेनाके पुरुष अनेकशः विभिन्न होकर भाग रहे हैं। उसकी स्थिति समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान हो गयी है॥ ४९ ॥

द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
विद्धानां शतशो राजञ्श्रूयते निनदो महान्।
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥ ५० ॥

हे राजेन्द्र! यह देखो, गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे पीडित होके भागते हुए सैकडों मुख्य मुख्य योद्धाओंका महाघोर आर्तनाद सुनाई देरहा है। रात्रिके समय आकाशमें स्थित बादल गर्जनेकी भांति यह शब्द सुनाई देरहा है॥ ५० ॥

हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान्।
शृणु शब्दान्बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥

अर्जुनके रथके समीपमें जो भांति भांतिके हाहाकार, सिंहनाद और अनेक प्रकारके शब्द हो रहे हैं, उनको भी सुनो॥ ५१ ॥

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वताधमः।
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान्। ॥ ५२ ॥

परन्तु इस स्थानमें हम सब लोगोंके बीचमें स्थित यदुवंशियोंमें अधम सात्यकिको यदि लक्ष्य रूपसे प्राप्त कर सकें, तो अवश्य ही सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित कर सकेंगे॥ ५२ ॥

एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन संगतः।
सर्वतः संवृतो योधै राजन्पुरुषसत्तमैः ॥ ५३ ॥

यह देखिये, द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए पाञ्चालराज द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न हमारे शूरवीर पुरुषश्रेष्ठ योद्धाओंके बीच चारों ओरसे घिर गये हैं॥ ५३ ॥

सात्यकिं यदि हन्यामो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्।
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत् ॥ ५४ ॥

इस समय यदि हम लोग सात्यकि और पृषत् कुलभूषण धृष्टद्युम्नका नाश कर सकें, तो अवश्य ही हम लोगोंकी जीत होगी इसमें संशय नहीं है॥ ५४ ॥

सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ।
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ ॥ ५५ ॥

सुभद्रापुत्र अभिमन्युकी भांति हम लोग वृष्णि और पृषतवंशीय इन दोनों महारथी वीरोंको चारों ओरसे घेर कर उनके नाश करनेका यत्न करें ॥ ५५ ॥

सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ।
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुंगवैः ॥ ५६ ॥

भारत ! यह देखिये, संमुखमें सव्यसाची अर्जुन सात्यकिको अनेक कुरुसेनाके प्रमुख वीरोंके सङ्ग युद्ध करते हुए देखकर द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर आ रहे हैं ॥ ५६ ॥

तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ।
यावत्पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम् ॥ ५७ ॥

इससे जब तक अर्जुन विशेषरूपसे यह नहीं जानते कि सात्यकि अनेक योद्धाओंके बीचमें घिर गये हैं, उससे पहिले ही हम लोगोंकी ओरसे बहुतसे मुख्य मुख्य रथी लोग उनका सामना करनेके लिये जांय ॥ ५७ ॥

ते त्वरध्वं यथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ।
यथा तूर्णं व्रजत्येष परलोकाय माधवः ॥ ५८ ॥

तुम सब शूरवीर योद्धा लोग बाणोंका प्रहार करनेमें अत्यंत शीघ्रता करो; जिससे यहां यदुवंशीय सात्यकि शीघ्र ही यमलोकमें गमन करे ॥ ५८ ॥

कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् ।
यथेन्द्रः समरे राजन्प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ५९ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने कर्णके अभिप्रायको मानकर जैसे देवराज इन्द्र युद्धमें यशस्वी विष्णुसे कुछ कहते हैं, वैसे ही राजा दुर्योधन कर्णकी सलाह सुनके शकुनिसे बोले ॥ ५९ ॥

वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम् ।
रथैश्च दशसाहस्रैर्वृतो याहि धनंजयम् ॥ ६० ॥

हे मामा ! आप युद्धमें पीछे न हटनेवाले दस हजार हाथी और दस सहस्र रथोंके सहित शीघ्रही अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये गमन करो ॥ ६० ॥

दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६१ ॥

और दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु और दुष्प्रधर्षण– ये मेरे सहोदर भ्राता भी अनेक पैदल चलनेवाले शूरवीरोंके सहित तुम्हारे अनुगामी होंगे ॥ ६१ ॥

जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च भारत ॥ ६२ ॥

हे महाभुज मातुल! तुम युद्धभूमिमें जाकर श्रीकृष्ण, अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीमसेनका वध करो ॥ ६२ ॥

देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा मे त्वयि स्थिता।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ ६३ ॥

मामा! देखिये, जैसे देवताओंकी विजयकी आशा देवराज इन्द्र पर निर्भर रहती है, वैसे ही मेरी भी विजयकी आशा तुम्हारे ऊपर अवलंबित है। जैसे अग्निपुत्र स्कन्दने असुरोंकी सेनाका नाश किया था; वैसे आप भी कुन्तीपुत्रोंका नाश कीजिये ॥ ६३ ॥

एवमुक्तो ययौ पार्थान्पुत्रेण तव सौबलः।
महत्या सेनया सार्धं तव पुत्रैस्तथा विभो ॥ ६४ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि तुम्हारे अन्य पुत्र और बडी सेनाके सहित कुन्तीपुत्रोंका सामना करनेके लिये गया ॥ ६४ ॥

प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान्।
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६५ ॥

वो तुम्हारे पुत्रोंका प्रिय कार्यको करनेके लिये कुन्तीपुत्रोंको भस्म करनेकी इच्छा करता था। फिर शत्रुओंके सङ्ग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ६५ ॥

प्रयाते सौबले राजन्पाण्डवानामनीकिनीम्।
बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥ ६६ ॥
अभ्ययात्त्वरितं युद्धे किरञ्शरशतान्बहून्।
तथैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ६७ ॥

राजन्! जब शकुनि पाण्डवोंकी सेनाकी ओर चला गया, तब इधर सूतपुत्र कर्णने बडी सेनाके साथ युद्धमें असंख्य बाणोंकी वर्षा करते हुए शीघ्रताके सहित सात्यकि पर आक्रमण किया; इसी प्रकार सम्पूर्ण पाण्डवोंने चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया ॥ ६६–६७ ॥

महायुद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य निशि भारत।
धृष्टद्युम्नेन शूरेण पाञ्चालैश्च महात्मनः ॥ ६८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ ६४५३ ॥

भारत! उस रात्रिके समय महावीर धृष्टद्युम्न और पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग महात्मा द्रोणाचार्यका अत्यन्त ही महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ६८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥ ६४५३ ॥

१४६

सञ्जय उवाच

ततस्ते प्राद्रवन्सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः ।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! अनन्तर कुरुसेनाके वे सब युद्धदुर्मद शूरवीर योद्धा लोग निर्भय चित्तसे क्रोधपूर्वक शीघ्रताके सहित सात्यकिके रथकी ओर दौडे ॥ १ ॥

ते रथैः कल्पितै राजन्हेमरूप्यविभूषितैः ।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः स्म सात्वतम् ॥ २ ॥

उन लोगोंने सोने और चांदीसे भूषित सुसज्जित रथोंपर चढके, घुडसवार और गजपतियोंके समूहसे चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया ॥ २ ॥

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः ।
सिंहनादांस्तदा चक्रुस्तर्जयन्तः स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥

इसी भांति तुम्हारी सेनाके महारथी योद्धा लोग चारों ओरसे सात्यकिको घेर कर सिंहनाद शब्दके सहित बार बार गर्जने लगे और सात्यकिको निन्दने लगे ॥ ३ ॥

तेऽभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
त्वरमाणा महावीर्या माधवस्य वधैषिणः ॥ ४ ॥

महावीर्यवान् कौरव लोग यदुवंशीय मुख्य सत्य पराक्रमी सात्यकिके वधकी अभिलाष करके शीघ्रताके सहित लगातार उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन्विशिखान्बहून् ॥ ५ ॥

तब शत्रुवीर नाशन महाबाहु शिनिपौत्र सात्यकि उन योद्धाओंको वेगपूर्वक अपनी ओर आक्रमणके लिये आये हुए देखकर शीघ्रही असंख्य बाणोंसे उनको निवारण करने लगे ॥ ५ ॥

तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६ ॥

उस ही समय धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी युद्धदुर्मद वीर सात्यकिने अपने नतपर्व भयंकर तेज बाणोंसे बहुतेरे शत्रु योद्धाओंके सिर काट डाले ॥ ६ ॥

हस्तिहस्तान्हयग्रीवान्बाहूनपि च सायुधान् ।
क्षुरप्रैः पातयामास तावकानां स माधवः ॥ ७ ॥

उन वीरने तुम्हारे सेनाके हाथियोंके सूण्ड, घोडोंकी गर्दनों और योद्धाओंकी आयुधों सहित भुजाओंको क्षुरप्रोंसे काट डाला ॥ ७ ॥

पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्त्रैश्च भारत ।
बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८ ॥

भारत ! उस समय वह रणभूमि इधर उधर पडे हुए चंवर, सफेद छत्र आदि वस्तुओंसे युक्त होकर नक्षत्रोंसे युक्त आकाशमण्डलके समान शोभित होने लगी ॥ ८ ॥

तेषां तु युयुधानेन युध्यतां युधि भारत ।
बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानामिव क्रन्दताम् ॥ ९ ॥

सात्यकिके सङ्ग युद्ध करते हुए योद्धाओंके ऐसे महाघोर तुमुल शब्द सुनाई देने लगे, मानो प्रेत रुदन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

तेन शब्देन महता पूरितासीद्वसुंधरा ।
रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा ॥ १० ॥

उस महाघोर शब्दसे पृथ्वी परिपूरित होगई और रात्रि भी अत्यन्त ही भयङ्कर होकर प्राणियोंको डरावनी बोध होने लगी ॥ १० ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम् ।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥

युयुधानके बाणोंसे पीडित हुई अपनी सेनाके पुरुषोंको भागते देख, तथा उस रोमांचकारी रात्रिके समय उन लोगोंके महाघोर आर्त्तशब्दको सुनकर ॥ ११ ॥

सुतस्तवाब्रवीद्राजन्सारथिं रथिनां वरः ।
यत्रैष शब्दस्तत्राश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः ॥ १२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन बार बार अपने सारथीसे बोले, कि जिधर यह महाघोर शब्द सुन पडता है, उसी ओर घोडोंको ले चलो ॥ १२ ॥

तेन संचोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान् ।
सूतः संचोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३ ॥

सारथी राजा दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर उन उत्तम घोडोंको सात्यकिके रथकी ओर चलाने लगा ॥ १३ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत् ॥ १४ ॥

अनन्तर युद्धमें श्रमविजयी, शीघ्र अस्त्र चलानेवाले, दृढ धनुर्द्धारी और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले कुरुराज दुर्योधनने सात्यकि पर क्रुद्ध होकर आक्रमण किया ॥ १४ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैर्मांसशोणितभोजनैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५ ॥

तब सात्यकिने कानपर्यन्त धनुषको खींचके मांस और रुधिर पीनेवाले बारह बाणोंको चलाकर दुर्योधनको विद्ध किया ॥ १५ ॥

दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः ।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः ॥ १६ ॥

शिनिपौत्र सात्यकिके बाणोंसे पहिले ही पीडित हुए दुर्योधनने फिर क्रोधपूर्वक दस बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ १६ ॥

ततः समभवद्युद्धमाकुलं भरतर्षभ ।
पाञ्चालानां च सर्वेषां भारतानां च दारुणम् ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय भरतवंशी कौरव और संपूर्ण पांचाल योद्धाओंका महाघोर भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम् ।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥ १८ ॥

भारत ! अनन्तर सात्यकिने युद्धमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर अस्सी बाणोंसे तुम्हारे पुत्र महारथी दुर्योधनके हृदयमें प्रहार किया ॥ १८ ॥

ततोऽस्य वाहान्समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च रथात्तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥ १९ ॥

फिर समरमें अनेक बाणोंसे उनके रथके घोडोंका वध करके यमलोक पहुंचा दिया और एक बाणसे सारथिको भी मारकर रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १९ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्पुत्रस्तव विशां पते ।
मुमोच निशितान्बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति ॥ २० ॥

पृथ्वीपते ! तब तुम्हारे पुत्रने घोडोंसे रहित रथ पर ही स्थित होकर सात्यकिके रथकी ओर तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ २० ॥

शरान्पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् ।
चिच्छेद समरे राजन्प्रेषितांस्तनयेन ते ॥ २१ ॥

सात्यकिने युद्धमें हस्तलाघवके सहित तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके चलाये हुए बाणोंको टुकडे टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया ॥ २१ ॥

अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
चिच्छेद रभसो युद्धे तव पुत्रस्य मारिष ॥ २२ ॥

मारिष ! फिर उन्होंने दूसरे एक भल्लसे तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके विशाल धनुषकी मूंठीको वेगपूर्वक काट दिया ॥ २२ ॥

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३ ॥

उस समय सब जगत्के स्वामी राजा दुर्योधन धनुष और रथसे हीन होकर शीघ्रही कृतवर्माके प्रकाशमान रथ पर जा चढे ॥ २३ ॥

दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् ।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशां पते ॥ २४ ॥

हे प्रजानाथ ! उस रात्रिके समय जब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन सात्यकिके संमुखसे पराजित हुए, तब पराक्रमी सात्यकि अपने बाणोंकी वर्षा कर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको छिन्न भिन्न करने लगे ॥ २४ ॥

शकुनिश्चार्जुनं राजन्परिवार्य समन्ततः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चैव सहस्रशः ।
तथा हयसहस्रैश्च तुमुलं सर्वतोऽकरोत् ॥ २५ ॥

राजन् ! इस ही समय शकुनि सहस्रों रथी, हाथी और घुडसवारोंकी सेना लेकर चारों ओरसे अर्जुनको घेरकर उनके ऊपर लगातार अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षा कर सब ओर भयंकर कोलाहल करने लगे ॥ २५ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ।
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ २६ ॥

वे सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा लोग कालके वशमें होकर महान् दिव्य अस्त्रोंको चलाते हुए अर्जुनके संग युद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन्विपुलं क्षयम् ॥ २७ ॥

तब अर्जुन क्रोधपूर्वक तुम्हारी महासेनाके योद्धाओंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुए और सहस्रों गजसवार, घुडसवार और रथियोंको युद्धभूमिसे निवारण करने लगे ॥ २७ ॥

ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा ।
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ॥ २८ ॥

तब समरमें सुबलपुत्र शूर शकुनिने हंसकर तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया ॥ २८ ॥

पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम् ।
तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ॥ २९ ॥

अनन्तर शकुनिने सौ बाणोंको चलाकर अर्जुनके महान् रथको रोक दिया; अनन्तर अर्जुनने वीस बाणोंसे युद्धमें शकुनिको विद्ध किया ॥ २९ ॥

अथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ।
संवार्य तान्बाणगणैर्युधि राजन्धनंजयः ।
अवधीत्तावकान्योधान्वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३० ॥

और अन्य धनुर्धरोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया । महाराज ! युद्धमें अर्जुनने अपने बाणोंसे उन योद्धाओंका निवारण करके, फिर असुरोंको मारनेवाले वज्रपाणि इन्द्रके समान तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका प्राण नाश कर उन लोगोंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३० ॥

भुजैश्छिन्नैर्महाराज शरीरैश्च सहस्रशः ।
समास्तीर्णा धरा तत्र बभौ पुष्पैरिवाचिता ॥ ३१ ॥

महाराज ! कटी हुई भुजा और सहस्रों शरीरोंसे आच्छादित हुई वह पृथ्वी, बिखरे हुए फूलोंसे शोभित भूमिके समान जान पडती थी ॥ ३१ ॥

स विद्ध्वा शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
उलूकं त्रिभिराजघ्ने त्रिभिरेव महायसैः ॥ ३२ ॥

महापराक्रमी अर्जुनने युद्धभूमिके बीच ऐसा भयङ्कर कर्म करके फिर पांच तीक्ष्ण नतपर्व बाणोंसे शकुनिको घायल किया; फिर तीन तीन महान् बाणोंसे उनके पुत्र उलूकको पीडित किया ॥ ३२ ॥

तमुलूकस्तथा विद्ध्वा वासुदेवमताडयत् ।
ननाद च महानादं पूरयन्वसुधातलम् ॥ ३३ ॥

तब उलूकने अर्जुनको बाणोंसे विद्ध करके श्रीकृष्णपर प्रहार किया और पृथ्वीको गुंजाते हुए जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३३ ॥

अर्जुनस्तु द्रुतं गत्वा शकुनेर्धनुराच्छिनत् ।
निन्ये च चतुरो वाहान्यमस्य सदनं प्रति ॥ ३४ ॥

अनन्तर अर्जुनने शीघ्रता करके शकुनिका धनुष काट दिया और उनके चारों घोडोंका वध करके यमलोक भेज दिया ॥ ३४ ॥

ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ।
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशां पते ॥ ३५ ॥

पृथ्वीपते ! सुबलपुत्र शकुनि अपने घोडोंसे रहित रथसे कूदके शीघ्रही उलूकके रथपर जा चढे ॥ ३५ ॥

तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ।
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवोत्थितौ ॥ ३६ ॥

जैसे दो बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं वैसे ही एक रथपर चढे हुए पिता और पुत्र दोनों महारथियोंने अर्जुनके ऊपर लगातार अपने बाणोंकी वर्षा आरंभ की ॥ ३६ ॥

तौ तु विद्ध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ।
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ॥ ३७ ॥

महाराज ! अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्जुन अपने तेज बाणोंसे उन दोनोंको विद्ध करके, फिर तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाको भगाते हुए उसे सैकडों बाणोंसे छिन्नभिन्न करने लगे ॥ ३७ ॥

अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
विच्छिन्नानि तथा राजन्बलान्यासन्विशां पते ॥ ३८ ॥

राजन् ! जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहोंको चारों ओर बिखेरती है, वैसे ही तुम्हारी सेनाको अर्जुनने छिन्नभिन्न कर दिया ॥ ३८ ॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ।
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् ॥ ३९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस महाघोर रात्रिके समय अर्जुनसे तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग मारे जाते हुए भयसे पीडित होकर चारों दिशाओंकी ओर देखते हुए वेगपूर्वक भागने लगे ॥ ३९ ॥

उत्सृज्य वाहान्समरे चोदयन्तस्तथापरे ।
संभ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ४० ॥

समरमें कितने ही लोग अपने वाहनोंको छोडकर भाग गये; दूसरे कितने उन्हें रोकते हुए भागे और कितने ही योद्धा लोग संभ्रान्त होकर उस महाघोर अंधकारमें चारों ओर भागने लगे ॥ ४० ॥

विजित्य समरे योधांस्तावकान्भरतर्षभ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४१ ॥

हे भारत ! श्रीकृष्ण और अर्जुन इसी भांति युद्धमें तुम्हारे योद्धाओंको जीतकर हर्षपूर्वक अपने शङ्ख बजाने लगे ॥ ४१ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ॥ ४२ ॥

महाराज ! उस ही समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको तीन बाणोंसे विद्ध करके शीघ्रताके सहित एक तेज बाणसे उनके धनुषका रोदा काट दिया ॥ ४२ ॥

तन्निधाय धनुर्नीडे द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
आददेऽन्यद्धनुः शूरो वेगवत्सारवत्तरम् ॥ ४३ ॥

तब क्षत्रियोंके नाश करनेवाले महावीर द्रोणाचार्यने रोदेसे रहित धनुषको रथमें रखकर महावेगशील दूसरा उत्तम धनुष ग्रहण किया ॥ ४३ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन्विव्याध संयुगे ॥ ४४ ॥

राजन् ! अनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धमें धृष्टद्युम्नको सात बाणोंसे विद्ध करके पांच बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥ ४४ ॥

तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यधमत्कौरवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४५ ॥

महारथी धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी वर्षासे मुहूर्त्तभरके बीच द्रोणाचार्यको निवारण किया; और सैकडों सहस्रों कौरवी सेनाका नाश करने लगे ॥ ४५ ॥

वध्यमाने बले तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ॥ ४६ ॥

मारिष ! इसही भांति जब तुम्हारे पुत्रकी सेनाके पुरुष मरने लगे, तब वहां रुधिरका प्रवाह और रुधिरके तरंगवाली एक भयंकर नदी वह निकली ॥ ४६ ॥

उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ।
यथा वैतरणी राजन्यमराष्ट्रपुरं प्रति ॥ ४७ ॥

राजन् ! दोनों सेनाओंके बीच बहनेवाली वह नदी, मानो यमराष्ट्रपुरीकी ओर जानेवाली वैतरणी नदीके समान मनुष्य, घोडे और हाथियोंको भी बहाये लिये जाती थी ॥ ४७ ॥

द्रावयित्वा तु तत्सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
अत्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ॥ ४८ ॥

उस समय प्रतापी धृष्टद्युम्न कुरुसेनाको भगाकर अपनी सेनाके बीचमें घिरकर इस प्रकार रणभूमिमें शोभित हुए, जैसे देवताओंके बीचमें तेजस्वी इन्द्र विराजमान होते हैं ॥ ४८ ॥

अथ दध्मुर्महाशङ्खान्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ॥ ४९ ॥

अनन्तर पाण्डुपुत्र भीमसेन, नकुल, सहदेव, सात्यकि भी शिखण्डी और धृष्टद्युम्नके सङ्ग मिलकर अपने अपने शङ्ख बजाने लगे ॥ ४९ ॥

जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ५० ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च मदोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशां पते ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ ६५०४ ॥

पृथ्वीपते ! इसी भांति युद्धमें विजयसे प्रबल, मदोन्मत्त पराक्रमी महारथी पाण्डव लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधन, राधापुत्र कर्ण, महावीर द्रोणाचार्य और अश्वत्थामाके सम्मुखमें ही कुरुसेनाके सहस्रों रथियोंको पराजित करके सिंहकी भांति भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करने लगे ॥ ५०–५१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४६ ॥ ६५०४ ॥

: १४७ :

सञ्जय उवाच

विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।
क्रोधेन महताविष्टः पुत्रस्तव विशां पते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन पाण्डवोंकी ओरके कई एक महारथियोंके अस्त्रोंसे अपनी सेनाके पुरुषोंको पीडित होकर भागते देख अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए ॥ १ ॥

अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

और बोलनेकी कला जाननेवाले दुर्योधन विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्णके समीप सहसा जाकर क्रोधित होकर यह वचन बोले ॥ २ ॥

भवद्भ्यामिह संग्रामो क्रुद्धाभ्यां संप्रवर्तितः ।
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ३ ॥

रणभूमिमें सव्यसाची अर्जुनके द्वारा सिन्धुराज जयद्रथको मारा गया देख कर क्रुद्ध हुए आप दोनोंने ही यह संग्राम आरम्भ किया है ॥ ३ ॥

निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम् ।
भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ ४ ॥

इस समय आप लोग पाण्डवोंको जीतनेमें समर्थ होकर भी असमर्थकी भांति उनसे हमारी सेनाको नष्ट होती हुई देख रहे हैं ॥ ४ ॥

यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि ।
आवां पाण्डुसुतान्संख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥ ५ ॥

यदि आप लोगोंको मुझे त्याग करनेकी ही इच्छा थी, तो पहिले आपको "हम युद्धभूमिमें पाण्डुपुत्रोंको पराजित करेंगे" ऐसा वचन मुझसे बोलना उचित नहीं था ॥ ५ ॥

तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसंमतम् ।
कृतवान्पाण्डवैः सार्धं वैरं योधविनाशनम् ॥ ६ ॥

आप लोगोंकी सम्मति सुनकर ही मैंने पाण्डुपुत्रोंके साथ यह वैर किया, जो अपनी सेनाके योद्धाओंका नाश कर रहा है ॥ ६ ॥

यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ ।
युध्येतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ७ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! यदि मैं आप दोनोंके त्याग किये जानेके योग्य न होऊं, तो आप दोनों लोग जैसे बल पराक्रमसे युक्त हैं, उसके अनुसार ही युद्ध करनेमें प्रवृत्त होइये ॥ ७ ॥

वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।
प्रावर्तयेतां तौ युद्धं घट्टिताविव पन्नगौ ॥ ८ ॥

महावीर द्रोणाचार्य और कर्ण तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके वचनरूपी कोडेसे विद्ध होकर कुचल हुए सर्पोंकी भांति क्रुद्ध होकर फिर घोर युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
शैनेयप्रमुखान्पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ॥ ९ ॥

इसी भांति सम्पूर्ण लोकोंके बीच प्रख्यात धनुर्द्धर रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्ण समरमें सात्यकि आदि पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

तथैव सहिताः पार्थाः स्वेन सैन्येन संवृताः ।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥

पाण्डव लोग भी उसी भांति अपनी सेनाके बीच घिरकर बार बार सिंहनाद करनेवाले उन दोनों वीरोंकी ओर दौडे ॥ १० ॥

अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुंगवम् ।
अविध्यत्त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ११ ॥

अनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर शीघ्र ही दस बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिको विद्ध किया ॥ ११ ॥

कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः ।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः ।
एते कौरव संक्रन्दे शैनेयं पर्यवारयन् ॥ १२ ॥

फिर कर्णने दस, तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सात, वृषसेनने दस और सुबलपुत्र शकुनिने सात बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया । हे कौरव ! उस समय उन सम्पूर्ण योद्धाओंने युद्धमें शिनिपौत्र सात्यकिको अपने बाणजालसे छिपा दिया ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ।
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ १३ ॥

सोमकवंशी योद्धा लोग युद्धमें द्रोणाचार्यको इस भांति पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका नाश करते देखकर शीघ्रताके सहित उनके ऊपर चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे और उन्हें घायल कर दिया ॥ १३ ॥

ततो द्रोणोऽहरत्प्राणान्क्षत्रियाणां विशां पते ।
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमसामिव भारत ॥ १४ ॥

भारत ! उस ही समय द्रोणाचार्य चारों ओर अपने बाणोंको चलाकर इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करने लगे जैसे सूर्य चारों ओर अपनी किरणोंके प्रकाशसे अन्धकारको नष्ट कर देते हैं ॥ १४ ॥

द्रोणेन वध्यमानानां पाञ्चालानां विशां पते ।
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम् ॥ १५ ॥

उस समय द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित हुए और परस्पर चिल्लाते हुए पांचाल योद्धाओंका महाघोर तुमुल शब्द सुनाई देने लगा ॥ १५ ॥

पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ।
भागिनेयान्वयस्यांश्च तथा संबन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः ॥ १६ ॥

उस समय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग कोई पुत्र, कोई पिता, कोई भ्राता, कोई मामा और कोई भानजे, कोई मित्र और कोई अपने संबंधी तथा बन्धु बान्धवोंको रणभूमिमें त्यागके अपनी जान बचानेके लिये वेगपूर्वक भागने लगे ॥ १६ ॥

अपरे मोहिता मोहात्तमेवाभिमुखा ययुः ।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं तथापरे ॥ १७ ॥

कोई कोई पाण्डव योद्धा समरमें मोहित होकर मोहवश फिर द्रोणाचार्यहीकी ओर दौडे और मारे गये; अनेक सैनिक परलोक पहुंच गये ॥ १७ ॥

सा तथा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मभिः ।
निशि संप्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १८ ॥

उस रात्रिके समय उन महात्माओंके बाणोंसे मारी जाती हुई वह पाण्डव सेना सहस्रों मशालें फेंक कर ॥ १८ ॥

पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ १९ ॥

भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्नके संमुखमें ही उनके देखते देखते युद्धभूमिसे भागने लगी ॥ १९ ॥

तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते तु द्रुताः परे ॥ २० ॥

उस समय पाण्डव सैनिक अन्धकारसे आवृत्त हो गये थे; किसीको कुछ भी जान नहीं पडता था । परन्तु कौरव सेनाके बीच जो दीपकोंका प्रकाश होरहा था, उससे भागते हुए शत्रु सेनाके योद्धा लोग स्पष्टरूपसे दिखाई देने लगे ॥ २० ॥

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन्किरन्तौ सायकान्बहून् ॥ २१ ॥

महाराज ! महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण उन भागते हुए सेनाके पुरुषोंके पीछे अनगिनत बाणोंको चला कर उनको मार रहे थे ॥ २१ ॥

पाञ्चालेषु प्रभग्नेषु दीर्यमाणेषु सर्वशः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फल्गुनम् ॥ २२ ॥

इसी भांति जब पाञ्चाल योद्धा चारों ओर नष्ट होने और भागने लगे, तब जनार्दन श्रीकृष्ण दुःखित होकर अर्जुनसे यह बचन बोले ॥ २२ ॥

द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पाञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! यह देखो, धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी द्रोणाचार्य और कर्णने पाञ्चाल योद्धाओंके सहित धृष्टद्युम्न और सात्यकिको अपने बाणोंसे अत्यन्त ही क्षत विक्षत कर दिया है ॥२३॥

एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणापि कौन्तेय पृतना नावतिष्ठते ॥ २४ ॥

हे पार्थ ! इन दोनोंकी बाणवर्षासे हम लोगोंकी सेनाके महारथी योद्धा लोग बार बार युद्धभूमिसे विमुख होरहे हैं; उससे सेनाके पुरुष बार बार निवारित किये जाने पर भी युद्धभूमिमें स्थित नहीं हो सकते हैं ॥ २४ ॥

एतावावां सर्वसैन्यैर्व्यूढैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ २५ ॥

हम लोग अस्त्र--शस्त्र ग्रहण किये हुए सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंके सङ्ग मिल कर व्यूह बनाकर सूतपुत्र कर्ण और द्रोणाचार्यको रोकनेके लिये विशेषरूपसे यत्न कर रहे हैं ॥ २५ ॥

एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ बलं क्रुद्धौ नाशयेतां निशामिमाम् ।
एष भीमोऽभियात्युग्रः पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥ २६ ॥

ये दोनों कृतास्त्र, बलवान्, शूर और जय प्रभावसे युक्त हैं; यदि इन दोनों क्रुद्ध वीरोंकी उपेक्षा की गयी तो इसी रात्रिके बीच ये लोग तुम्हारी सेनाका नाश कर देंगे। ये महा बलवान् उग्र पराक्रमी भीमसेन फिर अपनी भागती हुई सेनाको लौटा कर रणभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर गमन कर रहे हैं ॥ २६ ॥

वृकोदरं तथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद्राजन्हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ २७ ॥

राजन् ! भीमसेनको रणभूमिमें आते देख श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रसन्न करते हुए फिर इस प्रकार बोले ॥ २७ ॥

एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
रुषितोऽभ्येति वेगेन द्रोणकर्णौ महाबलौ ॥ २८ ॥

युद्धमें प्रशंसित भीमसेन क्रुद्ध होकर सोमक और पाण्डवोंकी सेनाके बहुतेरे योद्धाओंसे घिरकर बेगपूर्वक महाबली द्रोणाचार्य और कर्णकी ओर सामना करनेके लिये गमन कर रहे हैं ॥ २८ ॥

एतेन सहितो युध्य पाञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सर्वेषां सैन्यानां पाण्डुनन्दन ॥ २९ ॥

हे पाण्डुनन्दन ! तुम अपनी सारी सेनाके पुरुषोंको धीरज देते हुए महारथी पाञ्चाल योद्धाओं और भीमसेनके सङ्ग मिलकर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करो ॥ २९ ॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥ ३० ॥

अनन्तर वे दोनों पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन इसी भांति आपसमें बातचीत करके युद्धके अग्रभागमें द्रोणाचार्य और कर्णके सामने जाकर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ ३० ॥

×

ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान्ममृदतुर्युधि ॥ ३१ ॥

इधर युधिष्ठिरकी वह महासेना फिर लौटके उपस्थित हुई, फिर द्रोणाचार्य और कर्ण युद्धमें शत्रुओंको मथित करने लगे ॥ ३१ ॥

स संप्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥ ३२ ॥

राजन् ! उस रात्रिके समय पूर्णमासीके दिन चंद्रोदयके समय उछालित हुए दो समुद्रोंके समान कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका आपसमें महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ३२ ॥

तत उत्सृज्य पाणिभ्यः प्रदीपांस्तव वाहिनी ।
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदहःक्षये ॥ ३३ ॥

अनन्तर तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग उन्मत्तकी भांति हाथमें स्थित दीपकोंको फेंक कर निर्भय चित्तसे पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥

रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे ।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥ ३४ ॥

परन्तु उस समय अन्धकार और धूलि उडनेसे कुछ भी नहीं सूझ पडता था, तब विजयकी इच्छासे वीर लोग उस अत्यंत दारुण युद्धमें केवल अपना नाम और गोत्र सुनाकर युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः ।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाहवे ॥ ३५ ॥

महाराज ! जैसे स्वयंवरके बीच राजाओंके नाम सुन पडते हैं, वैसे ही युद्धभूमिके बीच युद्ध करते हुए राजाओंके नाम सुनाई देने लगे ॥ ३५ ॥

निःशब्दमासीत्सहसा पुनः शब्दो महानभूत् ।
क्रुद्धानां युध्यमानानां जयतां जीयतामपि ॥ ३६ ॥

उस समय रणभूमिके बीच थोडे समय तक सहसा सन्नाटा छा गया, पर फिर जब सेनाके पुरुष क्रुद्ध होकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब युद्धमें पराजित और जययुक्त दोनों ओरकी सेनाके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा ॥ ३६ ॥

यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम ।
तत्र तत्र स्म ते शूरा निपतन्ति पतंगवत् ॥ ३७ ॥

हे कुरुसत्तम ! उस समय जिस स्थान पर दीपकका प्रकाश दिखाई देता था, शूरवीर पुरुष पतङ्गकी भांति उसी ओर दौडके युद्ध करने लगते थे ॥ ३७ ॥

तथा संयुध्यमानानां विगाढाभून्महानिशा ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥ ६५४२ ॥

राजेन्द्र ! इसी भांति जब कौरव और पाण्डव लोग रणभूमिके बीच युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब क्रमसे वह महाघोर रात्रि अत्यन्त ही भयङ्कर मालूम होने लगी ॥ ३८ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४७ ॥ ६५४२ ॥

: १४८ :

सञ्जय उवाच

ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा ।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अनन्तर शत्रुवीरनाशन कर्णने समरमें पृषतकुलभूषण धृष्टद्युम्नको देखकर उनके वक्षस्थलमें दस मर्मभेदी बाणोंसे प्रहार किया ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष ।
पञ्चभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥

मारिष ! तब धृष्टद्युम्नने भी हर्षित होकर शीघ्रही दस बाणोंसे कर्णको बिद्ध किया और 'खडा रह, खडा रह' कहा ॥ २ ॥

तावन्योन्यं शरैः संख्ये संछाद्य सुमहारथौ ।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥ ३ ॥

इसी भांति वे दोनों महारथी योद्धा युद्धमें परस्पर बाणोंसे आच्छादित करके, फिर कान पर्यन्त पूर्णरूपसे धनुष खींचके अपने बाणोंको छोड कर एक दूसरेको बिद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
सारथिं चतुरश्चाश्वान्कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ४ ॥

अनन्तर सूतपुत्र कर्णने रणभूमिके बीच पाञ्चाल योद्धाओंमें मुख्य धृष्टद्युम्नके चारों घोडोंको और उनके सारथिको अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४ ॥

कार्मुकप्रवरं चास्य प्रचिच्छेद शितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥

और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे धृष्टद्युम्नका श्रेष्ठ धनुष काट दिया; अनन्तर कर्णने एक भल्लसे धृष्टद्युम्नके सारथीका वध करके उसे रथसे पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥

तब घोडे और सारथीके मारे जाने पर रथहीन हुए धृष्टद्युम्नने एक घोर परिघ लेकर कर्णके रथके चारों घोडोंको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६ ॥

विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्ववर्तत
आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ॥ ७ ॥

परन्तु धृष्टद्युम्न कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान अनेक बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध हुए थे, इससे वे पैदल ही युधिष्ठिरकी सेनाके बीच चले गये और वहां सहदेवके रथपर जा चढे ॥ ७ ॥

कर्णस्यापि रथे वाहानन्यान्सूतो न्ययोजयत् ।
शङ्खवर्णान्महावेगान्सैन्धवान्साधुवाहिनः ॥ ८ ॥

इधर कर्णके सारथीने भी अत्यन्त वेगवान्, सिन्धुदेशीय, अच्छी तरह सवारीका काम देनेवाले, शंखके समान सफेद रङ्गके दूसरे उत्तम घोडोंको लेकर कर्णके रथमें जोत दिया ॥ ८ ॥

लब्धलक्ष्यस्तु राधेयः पाञ्चालानां महारथान्
अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलान् ॥ ९ ॥

जैसे जलसे युक्त बादल पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही लक्ष्य वेधनेवालोंमें श्रेष्ठ महावीर कर्ण पाञ्चाल सेनाके महारथियोंको प्रयत्नपूर्वक अपने बाणोंकी वर्षासे पीडित करने लगे ॥ ९ ॥

सा पीड्यमाना कर्णेन पाञ्चालानां महाचमूः ।
संप्राद्रवत्सुसंत्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी ॥ १० ॥

कर्णके बाणोंसे पीडित होकर वह पाञ्चालोंकी बडी सेना इस प्रकार रणभूमिसे भयभीत होकर भागने लगी, जैसे सिंहसे भयभीत होके हारिणी चारों ओर भागने लगती है ॥१०॥

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ ११ ॥

कितने ही मनुष्य हाथी, घोडे और रथोंके ऊपरसे शीघ्रही गिरकर पृथ्वीमें पडे हुए दिखायी देने लगे ॥ ११ ॥

धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १२ ॥

उस महाघोर संग्रामके समय जो योद्धा लोग युद्धभूमिसे भाग रहे थे, कर्णने क्षुरप्रोंसे उन योद्धाओंके कुण्डल भूषित सिर और भुजाओंको काट डाला ॥ १२ ॥

ऊरू चिच्छेद चान्यस्य गजस्थस्य विशां पते।
वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १३ ॥

पृथ्वीपते! उस समय कर्णने कितनेही गजसवारोंकी, घुडसवारोंकी तथा पृथ्वीपर चलनेवाले योद्धाओंकी जंघाएं काट डालीं ॥ १३ ॥

नाज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः।
संछिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १४ ॥

परन्तु भागते हुए अनेक महारथी युद्धमें अपने कटे हुए अंगों और वाहनोंको जान भी नहीं पाते थे ॥ १४ ॥

ते वध्यमानाः समरे पाञ्चालाः सृञ्जयैः सह।
तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १५ ॥

युद्धमें कर्णके बाणोंसे मारे जाते हुए पांचाल और सृंजय योद्धालोग इस भांति मोहित होगये थे, कि तृण हिलने पर भी सुतपुत्र कर्णको ही आया हुआ समझने लगे ॥ १५ ॥

अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसः।
कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ १६ ॥

और समरमें अपनी ओरके चेत रहित योद्धाको भी भागते देख कर्ण आता है ऐसा जानके, भयभीत होकर वेगपूर्वक भागने लगे ॥ १६ ॥

तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत।
अभ्यद्रवद्द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्शरान् ॥ १७ ॥

भारत! परन्तु कर्ण भयभीत होकर भागते हुए उन योद्धाओंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उनके पीछे बडे वेगसे दौडे ॥ १७ ॥

अवेक्षमाणास्तेऽन्योन्यं सुसंमूढा विचेतसः।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ १८ ॥

महात्मा कर्णके द्वारा मारे जाते हुए पीडित और मोहित होकर शत्रुसेनाके योद्धा लोग अपने कर्त्तव्यकर्मके विषयमें कुछ भी निश्चय न कर सके, बल्कि आपसमें एक दूसरेकी ओर देखने लगे और युद्धभूमिमें किसी भांति भी खडे होनेमें समर्थ न हुए ॥ १८ ॥

कर्णेनाभ्याहता राजन्पाञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्षमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥ १९ ॥
इसी प्रकार पांचाल योद्धालोग कर्ण और द्रोणाचार्यके चलाये हुए उत्तम बाणोंसे पीडित होकर सब दिशाओंमें चारों ओर देखते हुए वेगपूर्वक भागने लगे ॥ १९ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम् ।
अपयाने मतिं कृत्वा फल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥
अनन्तर राजा युधिष्ठिर अपनी सेनाके योद्धाओंको भागते देख स्वयं भी रणभूमिसे हट जानेकी इच्छा करके इस प्रकार अर्जुनसे बोले ॥ २० ॥

पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥ २१ ॥
हे अर्जुन ! यह देखो, धनुर्धारियोंमें अग्रणी पराक्रमी कर्ण हाथमें धनुष ग्रहण करके खडे हैं और इस महाघोर रात्रिके समय दूसरे सूर्यकी भांति तप रहे हैं ॥ २१ ॥

कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥ २२ ॥
पार्थ ! तुम्हारे आत्मीय बन्धुबान्धव कर्णके बाणोंसे क्षतविक्षत होकर अनाथकी भांति चिल्लाते हैं और उनका यह आर्त्तनाद निरन्तर सुनायी दे रहा है ॥ २२ ॥

यथा विसृजतश्चास्य संदधानस्य चाशुगान् ।
पश्यामि जयविक्रान्तं क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥ २३ ॥
यह सूतपुत्र कर्ण जिस प्रकार बाण साधता धनुषपर रखता और चलाता है, उससे उसका तनिक भी छिद्र नहीं दीख पडता है; यह विजयके लिये पराक्रम मैं देख रहा हूं; इससे कर्ण अवश्य ही हम लोगोंका नाश कर देगा ॥ २३ ॥

यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं प्रपश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत्कुरुष्व धनंजय ॥ २४ ॥
धनंजय ! इस उपस्थित समयमें कर्णके वधके विषयमें जिस कर्तव्य कर्मको करना उचित तुम्हें दिखायी देता है, उसे विचार करके शीघ्र ही करो ॥ २४ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् ।
भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्यातिविक्रमात् ॥ २५ ॥
महाबाहु अर्जुन राजा युधिष्ठिरके वचनको सुनकर श्रीकृष्णसे बोले, हे श्रीकृष्ण ! आज कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर राधापुत्र कर्णके पराक्रमका प्रभाव देखकर भयभीत हुए हैं ॥२५॥

एवं गते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान्व्यवस्यतां क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ २६ ॥

विशेष करके जब कर्णकी सेनाके पुरुष धीरे धीरे महाप्रचण्ड होके पराक्रम प्रकाशित कर रहे हैं, तब उन लोगोंके विषयमें जो कुछ कार्य करना उचित है, शीघ्र ही आप उसका अनुष्ठान करें । क्योंकि हमारी सेनाके योद्धा लोग रणभूमिमें पीठ दिखाके भाग रहे हैं ॥ २६ ॥

द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥ २७ ॥

मधुसूदन ! यह देखो, सेनाके पुरुष द्रोणाचार्यके बाणोंसे ही क्षतविक्षत होकर और कर्णसे भयभीत होकर भागते हुए किसी प्रकार भी रणभूमिके बीच नहीं ठहर सकते हैं ॥ २७ ॥

पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान्रथोदारान्किरन्तं विशिखैः शितैः ॥ २८ ॥

कर्ण निर्भय चित्तसे विचर रहा है और भागते हुए श्रेष्ठ रथियों पर पीछेसे तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा कर रहा है, यह मैं देखता हूं ॥ २८ ॥

नैतदस्योत्सहे सोढुं चरितं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ २९ ॥

हे वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण ! जैसे सर्प किसीके पांवकी चोटको नहीं सह सकता, वैसे ही हम लोगोंके संमुखमें ही युद्धमें कर्णके ऐसे व्यवहारको मैं नहीं सह सकता हूं ॥ २९ ॥

स भवानत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं वधिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३० ॥

हे श्रीकृष्ण ! इसलिये अब तुम मेरे रथको जहां महारथी कर्ण हैं, उस स्थानपर शीघ्रही ले चलो । आज मैं उसको मारूंगा अथवा वह मुझे मारेंगे ॥ ३० ॥

वासुदेव उवाच

पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे ।
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे कुन्तीपुत्र ! आज मैं युद्धभूमिमें पुरुषसिंह कर्णको देवराज इन्द्रकी भांति अतिमानुष पराक्रम प्रकट करते और घूमते हुए देख रहा हूं ॥ ३१ ॥

नैतस्यान्योऽस्ति समरे प्रत्युद्याता धनंजय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ॥ ३२ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ धनंजय ! तुम और राक्षस घटोत्कच इन दो पुरुषोंको छोडके और कोई भी ऐसा पुरुष वर्त्तमान नहीं है, जो इस समय युद्ध करनेके लिये रणभूमिके बीच सूतपुत्र कर्णके विरुद्ध गमन कर सके ॥ ३२ ॥

न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३३ ॥

हे निष्पाप महाबाहु अर्जुन ! इस समय समरमें सूतपुत्र कर्णके संग तुम्हारा युद्ध करना मैं योग्य नहीं समझता ॥ ३३ ॥

दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो रौद्ररूपं बिभर्त्ति च ॥ ३४ ॥

क्योंकि कर्णके पास इन्द्रकी दी हुई प्रज्वलित उल्काके समान प्रकाशमान अमोघ शक्ति है; हे महाबाहो ! कर्णने उस अमोघ शक्तिको तुम्हारे लिये ही रक्खा है और वह अत्यन्त ही भयङ्कर रूप धारण करती है ॥ ३४ ॥

घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ।
स हि भीमसेन बलिना जातः सुरपराक्रमः ॥ ३५ ॥

इससे महाबलवान् राक्षस घटोत्कच ही इस समय राधापुत्र कर्णके सङ्ग युद्ध करनेके लिये उसके समीप गमन करे, घटोत्कच महाबली भीमसेनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है और स्वयं भी देवताओंके समान महापराक्रमी है ॥ ३५ ॥

तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यसुराणि च ।
सततं चानुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

और उसके पास आसुरी तथा राक्षसी नाना प्रकारके दिव्य अस्त्रशस्त्र हैं । विशेष करके घटोत्कच तुम लोगोंके ऊपर अनुरक्त है, और तुम्हारे हितकी इच्छा भी करता है; इससे वह युद्धभूमिमें कर्णको पराजित करेगा, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं मालूम होता है ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा महाबाहुः पार्थं पुष्करलोचनः ।
आजुहावाथ तद्रक्षः तचासीत्प्रादुरग्रतः ॥ ३७ ॥

सञ्जय बोले— कमलनेत्रवाले महाबाहु अर्जुनने श्रीकृष्णके ऐसे वचनको सुनके राक्षस घटोत्कचको आवाहन किया और वह तत्काल उनके सामने प्रकट हुआ ॥ ३७ ॥

कवची स शरी खड्गी सधन्वा च विशां पते ।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनंजयम् ।
अब्रवीत्तं तदा हृष्टस्त्वयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! उसने कवच, बाण, खड्ग और धनुष धारण किये थे; वह श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र अर्जुनके समीप जाके उन दोनों महात्माओंको प्रणाम करके प्रसन्न चित्तसे उनको बोला, यही मैं उपस्थित हूं, कहिये, क्या आज्ञा है ? ॥ ३८ ॥

ततस्तं मेघसंकाशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
अभ्यभाषत हैडिम्बं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ३९ ॥

अनन्तर दाशार्ह श्रीकृष्ण प्रज्वलित मुख और उज्ज्वल कुण्डलोंवाले मेघवर्ण शरीरवाले हिडिम्बा-कुमार राक्षस घटोत्कचसे हंसके यह वचन बोले ॥ ३९ ॥

घटोत्कच विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नान्यस्य कस्यचित् ॥ ४० ॥

हे पुत्र घटोत्कच ! मैं जो कुछ वचन तुमसे कहता हूं, उसे तुम भली भांतिसे सुनो । इस समय तुम्हारे पराक्रमको प्रकाशित करनेका समय उपस्थित हुआ है, दूसरे किसीके लिये नहीं ॥ ४० ॥

स भवान्मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो यथा ।
विविधानि तवास्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी ॥ ४१ ॥

तुममें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र और नाना भांतिकी राक्षसी माया प्रतिष्ठित हैं; इससे तुम संकटके समुद्रमें डूबते हुए तुम्हारे बन्धु बान्धवोंके निमित्त नौकारूपी होकर सबका उद्धार करो ॥ ४१ ॥

पश्य कर्णेन हैडिम्ब पाण्डवानामनीकिनी ।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ॥ ४२ ॥

हे हिडिम्बापुत्र ! यह देखो, युद्धभूमिके बीच कर्ण पाण्डवोंकी विशाल सेनाको इस प्रकार भगा रहा हैं, जैसे गोपालक गौवोंके समूहको हांकता है ॥ ४२ ॥

एष कर्णो महेष्वासो मतिमान्दृढविक्रमः ।
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४३ ॥

यह महाधनुर्द्धारी, दृढ पराक्रमी, बुद्धिमान् कर्ण पाण्डवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धाओंका वध कर रहा है ॥ ४३ ॥

×

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः ।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥ ४४ ॥

दृढ धनुर्द्धारी क्षत्रिय योद्धा लोग लगातार बाणोंको वर्षा रहे हैं, तो भी कर्णके बाणरूपी अग्निसे पीडित होकर किसी प्रकारसे भी युद्धभूमिमें नहीं ठहर सकते हैं ॥ ४४ ॥

निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः ।
एते द्रवन्ति पाञ्चालाः सिंहस्येव भयान्मृगाः ॥ ४५ ॥

यह देखो, इस मध्यरात्रिके समय पाञ्चाल सेनाके सम्पूर्ण पुरुष सूतपुत्र कर्णकी बाण वर्षासे पीडित होकर इस प्रकार युद्धभूमिसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहके भयसे हरिनोंके समूह चारों ओर भाग जाते हैं ॥ ४५ ॥

एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे ।
निषेद्धा विद्यते नान्यस्त्वदृते भीमविक्रम ॥ ४६ ॥

हे भयङ्कर पराक्रम प्रकाशित करनेवाले वीर ! इस समय युद्धभूमिमें तुम्हें छोडके और कोई योद्धा ऐसा विद्यमान नहीं है, जो इस प्रकार आगे बढनेवाले सूतपुत्र कर्णको निवारण कर सके ॥ ४६ ॥

स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः ।
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ४७ ॥

महाबाहो ! इससे तुम अपने पिता, मामा और अपने तेज, अस्त्र बल तथा पराक्रमके अनुसार कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जाओ ॥ ४७ ॥

एतदर्थं हि हैडिम्ब पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
कथं नस्तारयेद्दुःखात्स त्वं तारय बान्धवान् ॥ ४८ ॥

हे हिडम्बापुत्र घटोत्कच ! जिस प्रकार हो सके तुम हम लोगोंकी इस बिपदसे रक्षा करो, इसी समयके लिये ही मनुष्य लोग पुत्रकी इच्छा करते हैं; इससे तुम अपने बन्धु–बान्धवोंको इस विपदसे उबारो ॥ ४८ ॥

तव ह्यस्त्रबलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः ।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥ ४९ ॥

हे भीमपुत्र ! समरमें युद्ध करते समय नित्य तुम्हारा भयंकर बल बढता है और तुम्हारी मायाएं दुस्तर होती हैं ॥ ४९ ॥

पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन शितसायकैः ।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परंतप ॥ ५० ॥
हे शत्रुनाशन ! तुम इस रात्रिके समय कौरव सेनारूपी समुद्रमें डूबते हुए, और कर्णके तीक्ष्ण बाणोंसे क्षतविक्षत होकर भग्न हुए पाण्डवी सेनाके लिये तटस्वरूप होके अपने आत्मीय पुरुषोंकी रक्षा करो ॥ ५० ॥

रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः ।
बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ॥ ५१ ॥
क्योंकि रात्रिके समय राक्षस अत्यंत पराक्रमी होकर बढते रहते हैं; वे बलवान्, अत्यंत दुर्धर्ष, शूर और प्रतापी होकर विचरते हैं ॥ ५१ ॥

जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५२ ॥
इससे तुम इस रात्रिके समय अपनी मायाके प्रभावसे युद्धभूमिमें महाधनुर्धर राधापुत्र कर्णको मार डालो और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव लोग द्रोणाचार्यका वध करेंगे ॥ ५२ ॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् ।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिंदमम् ॥ ५३ ॥
कुरुराज ! श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर अर्जुन भी उस समय शत्रुदमन राक्षस घटोत्कचसे बोले ॥ ५३ ॥

घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५४ ॥
हे घटोत्कच ! हम लोगोंकी इस सेनाके बीच पाण्डुपुत्र भीमसेन, महाबाहु सात्यकि और तुम— ये ही तीन वीर श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ ५४ ॥

स भवान्यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥ ५५ ॥
इससे तुम इस रात्रिके समय कर्णके सङ्ग द्वैरथयुद्धमें प्रवृत्त हो जाओ; इस युद्धमें महारथी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक बनेंगे ॥ ५५ ॥

जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान् ।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥ ५६ ॥
पहिले जैसे देवराज इन्द्रने स्वामीकार्तिककी सहायतासे तारकासुरका वध किया था, वैसे ही तुम भी सात्यकिकी सहायतासे युद्धमें शूर कर्णका वध करो ॥ ५६ ॥

घटोत्कच उवाच

अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालं च सत्तम।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ५७ ॥

घटोत्कचने कहा– हे पुरुषश्रेष्ठ! युद्धभूमिके बीच द्रोणाचार्य, कर्ण अथवा चाहे और कोई कृतास्त्र महात्मा क्षत्रिय पुरुष ही क्यों न होवें, मैं इन सम्पूर्ण योद्धाओंके संग युद्ध करनेमें समर्थ हूं ॥ ५७ ॥

अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि।
यं जनाः संप्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ५८ ॥

आज इस रात्रिके समय मैं सूतपुत्र कर्णके सङ्ग ऐसा युद्ध करूंगा, कि मनुष्य लोग जब तक यह पृथ्वी रहेगी, तब तक उसकी चर्चा करेंगे ॥ ५८ ॥

न चात्र शूरान्मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन्।
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ५९ ॥

इस युद्धमें मैं शूरवीरोंको, न डरनेवालोंको और न हाथ जोडनेवालोंको जीवित नहीं छोडूंगा; वरन राक्षसधर्मके अनुसार उन सम्पूर्ण पुरुषोंका वध करूंगा ॥ ५९ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बः परवीरहा।
अभ्ययात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥ ६० ॥

सञ्जय बोले– महाराज! श्रेष्ठ शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला महाबाहु हिडम्बापुत्र घटोत्कच ऐसा बचन कहके तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करके कर्णकी ओर दौडा ॥ ६० ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यमिव पन्नगम्।
अभ्यस्यन्परमेष्वासः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ६१ ॥

धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी सूतपुत्र कर्णने प्रकाशमान क्रोधी सर्पकी भांति प्रज्वलित मुखवाले घटोत्कचको क्रोधपूर्वक अपनी ओर आते देख, उसे अपने शत्रुके रूपमें ग्रहण किया ॥ ६१ ॥

तयोः समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्निशि।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ६६०४ ॥

हे राजेन्द्र! अनन्तर सिंहनाद शब्दके सहित गर्जते हुए कर्ण और राक्षस घटोत्कचका इन्द्र और प्रह्लादकी भांति महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ६२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥ ६६०४ ॥

: १४९ :

संजय उवाच

दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन्सूतपुत्ररथं प्रति ।
प्रयान्तं त्वरया युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! युद्धभूमिके बीच इस प्रकार कर्णका वध करनेकी इच्छासे युक्त घटोत्कचको सूतपुत्र कर्णके रथकी ओर आते देख ॥ १ ॥

अब्रवीत्तव पुत्रस्तु दुःशासनमिदं वचः ।
एतद्रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अपने भाई दुःशासनसे इस प्रकार बोले— हे भ्राता ! यह राक्षस समरमें कर्णके वेग और पराक्रमको देखकर ॥ २ ॥

अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम् ।
वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥ ३ ॥

शीघ्रताके सहित उनकी ओर दौड रहा है; इससे तुम इस महारथी घटोत्कचको रोको। तुम अपनी बडी सेनाके सहित जहां महाबलवान् कर्ण हैं वहीं गमन करो ॥ ३ ॥

कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।
रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥

वैकर्तन कर्ण युद्धमें उस राक्षसके साथ जहां युद्ध करना चाहता है, वहीं जाओ । हे वीर ! तुम सेनाके सहित यत्नवान् होकर समरमें कर्णकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ।
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ॥ ५ ॥

महाराज ! इस ही समय जटासुरका बलवान् प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ पुत्र दुर्योधनके निकट आके यह वचन बोला ॥ ५ ॥

दुर्योधन तवामित्रान्प्रख्यातान्युद्धदुर्मदान् ।
पाण्डवान्हन्तुमिच्छामि त्वयाज्ञप्तः सहानुगान् ॥ ६ ॥

महाराज दुर्योधन ! मैं तुम्हारी आज्ञासे तुम्हारे प्रख्यात शत्रु युद्धदुर्मद पाण्डवोंको अनुयायियोंके सहित नाश करनेकी इच्छा करता हूं ॥ ६ ॥

जटासुरो मम पिता रक्षसामग्रणीः पुरा ।
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।
तस्यापचितिमिच्छामि त्वद्दिष्टो गन्तुमीश्वर ॥ ७ ॥

इन नीच स्वभाववाले पाण्डवोंने पहिले मेरे पिता जटासुरका जो राक्षसोंके अग्रणी थे, उनका वध किया है; इससे मैं भी तुम्हारी आज्ञासे उन लोगोंका नाश करके पिताके ऋणसे मुक्त होनेकी इच्छा करता हूं; तुम मुझे आज्ञा दो ॥ ७ ॥

तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ।
त्वं तु गच्छ मयाज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम् ॥ ८ ॥

कुरुराज दुर्योधनने प्रसन्न होकर बार बार उस राक्षससे यह बचन बोले, मैं स्वयं द्रोणाचार्य और कर्णके सङ्ग मिलकर अपने शत्रुओंको नाश करनेमें समर्थ हूं; परन्तु तुम मेरी आज्ञासे घटोत्कचके पास जाओ और युद्धमें उसका वध करो ॥ ८ ॥

तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम् ।
जटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥ ९ ॥

कुरुराज दुर्योधनके ऐसे वचनको सुनकर विशाल शरीरवाला जटासुरपुत्र अलंबलने कहा– ' ऐसा ही होगा ' ऐसा कहके, वह राक्षस भीमसेन–पुत्र घटोत्कचको आवाहन करके उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ९ ॥

अलंबलं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥ १० ॥

जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहोंको छिन्न भिन्न कर देती है, वैसे ही हिडिम्बापुत्र घटोत्कच राक्षसने अकेले ही अलम्बल, कर्ण और दुस्तर कुरुसेनाको मथ डाला ॥ १० ॥

ततो मायामयं दृष्ट्वा रथं तूर्णमलंबलः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्दयत् ॥ ११ ॥

अनन्तर महाबलवान् अलम्बलने घटोत्कचके मायाबलसे युक्त रथको देख नाना प्रकारके बाणवर्षासे उसे पीडित किया ॥ ११ ॥

विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिमलंबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १२ ॥

इसी प्रकार भीमसेनपुत्र घटोत्कचको अलंबलने अनेक बाणोंसे विद्ध करके, फिर अनेक बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंको तितर बितर कर दिया ॥ १२ ॥

तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि मारिष ।
निशीथे विप्रकीर्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥ १३ ॥

मारिष ! उस रात्रिके समय पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष उसके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार चारों ओर तितर बितर होने लगे, जैसे वायुके वेगसे बादल छिन्न भिन्न होजाते हैं ॥ १३ ॥

घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव कुरुवाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १४ ॥

राजन् ! इसी प्रकार कुरुसेना भी घटोत्कचके बाणोंसे पीडित और छिन्न भिन्न होकर हाथमें स्थित सहस्रों मशालें इधर उधर फेंक कर रात्रिके समय रणभूमिसे भागने लगी ॥ १४ ॥

अलंबलस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने निशितैर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ १५ ॥

उस महाघोर संग्रामके समय क्रुद्ध अलम्बलने दस तीक्ष्ण बाणोंसे भीमसेनपुत्र घटोत्कचके शरीरमें इस प्रकारसे प्रहार किया, जैसे अंकुशसे महान् हाथीको पीडित करते हैं ॥ १५ ॥

तिलशस्तस्य तद्यानं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्राणदच्चातिदारुणम् ॥ १६ ॥

अनन्तर यह देखकर घटोत्कच राक्षस अलम्बलके रथ, सारथी और अस्त्रोंको तिलके परिमाणके अनुसार काटके भयानक शब्दसे सिंहनाद करने लगा ॥ १६ ॥

ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूनन्यान्सहस्रशः ।
अलंबलं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाचलम् ॥ १७ ॥

अनन्तर घटोत्कच राक्षसने अलम्बल, कर्ण और दूसरे कुरुसेनाके सहस्रों योद्धाओंके ऊपर इस प्रकार अपने अस्त्र-शस्त्रोंको वर्षाया, जैसे बादल सुमेरु पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करता है ॥ १७ ॥

ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चान्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ १८ ॥

उस समय तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेना उस राक्षसके बाणोंसे ऐसी पीडित होकर विक्षुब्ध हुई कि बहुतेरे पुरुष अपनी सेनाके पुरुषोंका ही मर्दन करने लगे ॥ १८ ॥

जटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाभ्यहनद्दृढम् ॥ १९ ॥

महाराज ! उस समय सारथीके मारे जानेपर रथ रहित हुए जटासुरपुत्र अलम्बलने युद्धमें क्रुद्ध होकर घटोत्कचके शरीरमें मुष्टिकासे जोरसे प्रहार किया ॥ १९ ॥

मुष्टिनाभिहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षगणगुल्मवान् ॥ २० ॥

भूकम्प होनेसे जैसे वृक्ष, तृण और लताके सहित पर्वत हिलने लगता है, वैसे ही घटोत्कच अलम्बलके मुक्केसे विचलित हुआ ॥ २० ॥

ततः स परिघाभेन द्विट्संघघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥ २१ ॥

अनन्तर भीमसेनपुत्र घटोत्कचने शत्रुओंका नाश करनेवाली परिघके समान अपनी विशाल भुजाके मुक्केसे जटासुरके पुत्रको बहुत मारा ॥ २१ ॥

तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष महीतले ॥ २२ ॥

और फिर क्रुद्ध हुए हिडिम्बापुत्रने उसे पीडित करके शीघ्रही पृथ्वीपर दे मारा और इन्द्र-ध्वजाकी भांति अपनी लम्बी भुजाओंसे उसे पृथ्वी पर रगडना शुरू किया ॥ २२ ॥

अलंबलोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष महीतले ॥ २३ ॥

अनन्तर अलम्बलने भी झटका देकर युद्धमें राक्षस घटोत्कचको उठाके पृथ्वीपर पटक दिया; फिर रोषपूर्वक वह उसके शरीरमें प्रहार करने लगा ॥ २३ ॥

तयोः समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालंबलयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४ ॥

इसी भांति गर्जना करते हुए उन दोनों बडे शरीरवाले राक्षस घटोत्कच और अलम्बलका रोएंको खडा करनेवाला महाभयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ २४ ॥

विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ २५ ॥

इन्द्र और बलिके समान महाबलवान्, राक्षसी मायामें निपुण वे दोनों वीर क्षण क्षणके बीच अपनी मायाओंसे एक दूसरेसे अधिक पराक्रम प्रकाशित करते हुए महाघोर युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥

पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ।
पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ॥ २६ ॥

उस समय वे दोनों माया उत्पन्न करके कभी अग्नि, कभी समुद्र, गरुड—तक्षक सर्प, बादल—प्रचंड वायु, वज्र— महान् पर्वत, हाथी— शार्दूल और कभी राहु और सूर्यकी मूर्ति धारण करके परस्पर सामना करने लगे ॥ २६ ॥

एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ।
भृशं चित्रमयुध्येतामलंबलघटोत्कचौ ॥ २७ ॥

इस प्रकार वे अलम्बल और घटोत्कच एक दूसरेके वधकी इच्छा करते हुए सैकडों भांतिकी मायाओंको उत्पन्न करके परस्पर अत्यन्त विचित्र युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥

परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ।
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं निजघ्नतुः ॥ २८ ॥

वे दोनों गदा, परिघ, प्रास, मुद्गर, पट्टिश, पर्वतके शिखर और मुसल आदि अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्रोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २८ ॥

हयाभ्यां च गजाभ्यां च पदातिरथिनौ पुनः ।
युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ॥ २९ ॥

इसी भांति युद्धमें वे दोनों राक्षसोंमें मुख्य मायावी घटोत्कच और अलम्बल कभी हाथी, कभी घोडे और कभी रथोंपर चढके लडते और कभी पैदल ही युद्धभूमिमें स्थित होके युद्ध करने लगते थे ॥ २९ ॥

ततो घटोत्कचो राजन्नलंबलवधेप्सया ।
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात ह ॥ ३० ॥

राजन् ! अनन्तर घटोत्कच अत्यन्त क्रुद्ध होकर अलम्बलके वधकी इच्छा करके बाजपक्षीकी भांति कूदके वेगपूर्वक उसके ऊपर टूट पडा ॥ ३० ॥

गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलंबलम् ।
उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे ॥ ३१ ॥

फिर विशाल शरीरवाले राक्षसराज अलंबलको पकड कर घटोत्कचने युद्धमें उसे उठाकर पृथ्वीमें फेंक दिया, जैसे विष्णुने मयदानवको पृथ्वीमें गिराया था ॥ ३१ ॥

ततो घटोत्कचः खड्गमुद्गृह्याद्भुतदर्शनम् ।
चकर्त कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् ॥ ३२ ॥

तब उस समय घटोत्कचने अद्भुत रूपवाली अपनी तलवारको मियानसे खींचकर उसके भयङ्कर और विकृत सिरको शरीरसे काट कर अलग कर दिया ॥ ३२ ॥

तच्छिरो रुधिराभ्यक्तं गृह्य केशेषु राक्षसः ।
घटोत्कचो ययावाशु दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३३ ॥

फिर रुधिर बहते हुए उस सिरके केशको पकडके राक्षस घटोत्कच शीघ्रतासे दुर्योधनके रथकी ओर दौडा ॥ ३३ ॥

×

अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ।
रथेऽस्य निक्षिप्य शिरो विकृताननमूर्धजम् ।
प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ३४ ॥

अनन्तर उसके पास जाकर महाबाहु राक्षस घटोत्कचने हंसकर अलम्बलके उस कटे हुए भयङ्कर मुख और केशवाले सिरको दुर्योधनके रथपर फेंककर वर्षाकालके बादलकी भांति भयानक शब्दके सहित गर्जना की ॥ ३४ ॥

अब्रवीच ततो राजन्दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ।
पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथात्मनः ॥ ३५ ॥

राजन् ! और वह दुर्योधनसे इस प्रकार कहने लगा—तुमने इतने समयतक जिसके पराक्रमको देखा था, यह वही तुम्हारा बन्धु अलम्बल मारा गया; अब उसी भांति पराक्रमसे युक्त कर्णकी और अपनी भी तुम ऐसी ही दशा देखोगे ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायात्कर्णं प्रति जनेश्वर ।
किरञ्शरशतांस्तीक्ष्णान्विमुञ्चन्कर्णमूर्धनि ॥ ३६ ॥

महाराज ! घटोत्कच ऐसा वचन कहके कर्णके ऊपर सैकडों तीक्ष्ण बाणोंको बर्षाता हुआ उनकी ओर दौडा ॥ ३६ ॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥ ६६४१ ॥

महाराज ! अनन्तर समरमें मनुष्य और राक्षसका सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेवाला अत्यन्त महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ १४९ ॥ ६६४१ ॥

: १५० :

धृतराष्ट्र उवाच

यत्र वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत्कथम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! सूर्यपुत्र कर्ण और राक्षस घटोत्कच जब उस रात्रिके समय रणभूमिमें एक दूसरेसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; तब उन दोनों वीरोंका किस प्रकार संग्राम हुआ था ? ॥ १ ॥

कीदृशं चाभवद्युद्धं तस्य घोरस्य रक्षसः ।
रथश्च कीदृशस्तस्य मायाः सर्वायुधानि च ॥ २ ॥

युद्धके समय उस भयङ्कर रूपवाले राक्षसने कैसा स्वरूप धारण किया और उसके घोडे, रथ तथा संपूर्ण अस्त्र शस्त्र किस भांतिके थे ? ॥ २ ॥

किंप्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा ।
कीदृशं वर्म चैवास्य कण्ठत्राणं च कीदृशम् ।
पृष्ठस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ३ ॥

और उसके धनुष, रथकी ध्वजा, रथ और घोडोंके लम्बाई चौडाईका कितना परिमाण था ? और उसका वर्म तथा कण्ठत्राण कैसा था ? हे सञ्जय ! तुम वचन बोलनेमें अत्यन्त निपुण हो, इससे मैं जो कुछ पूंछता हूं वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नितोदरः ।
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शङ्कुकर्णो महाहनुः ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! उस बडे शरीरवाले राक्षसका उदर निम्न, नेत्र लाल और मुख तांबेके वर्णका तथा रोएं खडे थे; दाढी–मूंछ काली, और ठोडी बहुत बडी थी ॥ ४ ॥

आकर्णादारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ।
सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः ॥ ५ ॥

उसका मुंह कानोंतक फटा हुआ था, दाढें तीखी और वह विकराल दीखता था । उसकी जीभ और ओंठ तांबेके समान लालवर्णके और लम्बे थे, भौंहे बडी और नाक मोटी थी ॥ ५ ॥

नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयंकरः ।
महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण अङ्ग काले थे। इसके अतिरिक्त उसकी गर्दन लाल और शरीर पर्वतके समान भयङ्कर दीख पडता था; उस बडे शरीरवाले, महाबली, महाबाहु भयंकर राक्षसका सिर बहुत बडा था ॥ ६ ॥

विकचः परुषस्पर्शो विकटोद्बद्धपिण्डिकः ।
स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान् ॥ ७ ॥

उसके शरीरका चमडा अत्यन्त कडा था, उसका स्पर्श कठोर था, जानुके ऊपरका हिस्सा मांससे अत्यन्त पुष्ट था और विकट रूपसे दीख पडता था, कटिके पीछेका भाग अत्यन्त ही स्थूल और नाभिस्थान गभीर (गहिरा) था। उसके शरीरकी बढती रुक गयी थी, वह लंबे कदका था ॥ ७ ॥

तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ।
उरसा धारयन्निष्कमग्निमालां यथाचलः ॥ ८ ॥

उसने हाथोंमें आभूषण पहने थे; भुजाओंमें बाजूबन्द धारण किये थे; वह अनेक राक्षसी माया जाननेवाला था; जैसे पर्वत अग्निकी लपटरूपी मालासे शोभित होता है, वैसे ही वह राक्षस अपनी छातीपर सुवर्णके कवच मुहर पहरके शोभित हो रहा था ॥ ८ ॥

तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ।
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत ॥ ९ ॥

उसके सिरके ऊपर अनेक भांतिके रत्नोंसे जटित सुवर्णमय विचित्र प्रकाशमान एक किरीट तोरणके समान सब अंगोंसे शोभित होता था ॥ ९ ॥

कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ।
धारयन्विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम् ॥ १० ॥

उस राक्षसने बालसूर्यकी प्रभाके समान प्रकाशमान दो कुण्डल और सुवर्णमयी मालासे अलंकृत होके प्रकाशमान कांसेके महान् कवचको धारण किया था ॥ १० ॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम् ॥ ११ ॥

और सैकडों किङ्किणि शब्दसे युक्त, लालवर्णकी ध्वजापताकासे शोभित, ऋक्षके चमडेसे घिरा हुआ उसका विशाल रथ चार सौ हाथ लंबा था ॥ ११ ॥

सर्वायुधवरोपेतमास्थितो ध्वजमालिनम् ।
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिस्वनम् ॥ १२ ॥

उस रथमें सब प्रकारके उत्तम अस्त्र शस्त्र रखे गये थे; अनेक पताकाओंके सहित आठ चक्रसे युक्त, बादलकी भांति गम्भीर शब्दसे परिपूर्ण, एक बडे रथ पर घटोत्कच चढा था ॥१२॥

तत्र मातङ्गसंकाशा लोहिताक्षा विभीषणाः ।
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तोऽवहन्हयाः ॥ १३ ॥

उस रथमें मतवाले हाथीके समान रूपवाले, लाल नेत्रसे युक्त, इच्छानुसार वर्ण और वेग धारण करनेवाले, महाबली भयङ्कर मूर्तिवाले घोडे जुते हुए थे ॥ १३ ॥

राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः ।
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः संजग्राह हयान्रणे ।
स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥ १४ ॥

प्रकाशमान मुख और कुण्डलोंसे शोभित विरूपाक्ष नामक राक्षस उसका सारथि था, वह सूर्य किरणोंके समान प्रकाशमान घोडोंकी रासको ग्रहण करके उन घोडोंको समरमें हांकता था । राक्षस घटोत्कच उसके साथ बैठा हुआ ऐसा शोभित होता था जैसे सूर्य उनके अरुण नायक सारथिके साथ ॥ १४ ॥

संसक्त इव चाभ्रेण यथाद्रिर्महता महान् ।
दिवस्पृक्सुमहान्केतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः ।
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ॥ १५ ॥

जैसे बडा पर्वत महान् बादलसे युक्त हो जाय, वैसे ही अपने सारथिके साथ बैठे घटोत्कचकी शोभा दीखती थी; उसके रथकी बहुत ऊंची ध्वजा आकाशमें लहरा रही थी; उसके ऊपर लाल शिरसे युक्त मांसभक्षी एक अत्यन्त भयङ्कर गिद्ध विराजमान था ॥ १५ ॥

वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमभिविक्षिपन् ।
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्नि कार्मुकम् ॥ १६ ॥

घटोत्कच इस प्रकार रथ पर चढके इन्द्रके वज्रके समान टंकार करनेवाले और दृढ रोदावाले एक हाथ चौडे, बारह अरत्नि लंबे धनुषको खींचकर ॥ १६ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन्दिशः ।
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् ॥ १७ ॥

रथके धुरेके समान अपने मोटे मोटे बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाको परिपूरित करके वीरोंका संहार करनेवाली उस भयङ्करी रात्रिके समय कर्णकी ओर दौडा ॥ १७ ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ।
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ १८ ॥

महाराज ! जब वह राक्षस अपने रथ पर स्थित होके धनुषटंकार करने लगा, उस समय सम्पूर्ण शब्दोंको अतिक्रम करके बज्रकी गडगडाहट समान उसके धनुष टंकारका शब्द सुनाई देने लगा ॥ १८ ॥

तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत ।
समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः ॥ १९ ॥

भारत ! उस घोर शब्दसे तुम्हारी सेनाएं भयभीत होके इस प्रकार कांपने लगीं, जैसे वायुके वेगसे समुद्रकी बडी बडी तरङ्गें कम्पित होतीं हैं ॥ १९ ॥

तथापतन्तं संप्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ।
उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत् ॥ २० ॥

उस भयंकर नेत्रवाले राक्षसको इस भांतिसे अपनी ओर आते देख राधापुत्र कर्णने शीघ्रताके सहित हंसकर उसे निवारण किया ॥ २० ॥

ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ।
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् ॥ २१ ॥

जैसे एक यूथपति गजराज सामना करनेके लिये दूसरे यूथपति गजराज पर दौडता है, वैसे ही कर्णने अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए, बाणोंकी वर्षा करते हुए राक्षस घटोत्कचके ऊपर निकटसे धावा किया ॥ २१ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तयोरासीद्विशां पते ।
कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय कर्ण और राक्षस घटोत्कचका वह भयंकर संग्राम पहलेके इन्द्र और शम्बरासुरकी भांति होने लगा ॥ २२ ॥

तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिस्वने ।
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः ॥ २३ ॥

वे दोनों वीर महावेगशील भयङ्कर टंकार शब्दसे परिपूरित प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके अपने महान् बाणोंसे क्षतविक्षत शरीरसे युक्त होकर अपने बाण जालसे एक दूसरेको छिपाने लगे ॥ २३ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः संनतपर्वभिः ।
न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी ॥ २४ ॥

अनन्तर कानपर्यन्त धनुष खींच कर छोडे हुए अपने नतपर्व बाणोंके समूहसे वे दोनों वीर एक दूसरेके कांस्यनिर्मित कवचको भेद करके फिर अपने बाणोंसे एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २४ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ।
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः ॥ २५ ॥

जैसे दो शार्दूल नखोंसे और दो महान् हाथी अपने दांतोंसे युद्ध करते हैं, वैसे ही वे दोनों रथ शक्ति आदि अस्त्र और अनेक बाणोंको वर्षा कर परस्पर घायल करने लगे ॥ २५ ॥

संछिन्दन्तौ हि गात्राणि संदधानौ च सायकान् ।
धक्ष्यमाणौ शरव्रातैर्नोदीक्षितुमशक्नुताम् ॥ २६ ॥

इसी भांति वे दोनों कभी बाण साधते, कभी अस्त्रोंको चलाके एक दूसरेके शरीरमें प्रहार करते और कभी अपने बाणरूपी अग्निसे एक दूसरेको भस्म करनेकी इच्छासे अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए इस प्रकार युद्ध करते थे कि सेनाके बहुतेरे पुरुष उन दोनोंके युद्धको देखनेमें भी समर्थ न हुए ॥ २६ ॥

तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ।
व्यभ्राजेतां यथा वारिप्रस्रुतौ गैरिकाचलौ ॥ २७ ॥

उस समय उन दोनों वीरोंके सम्पूर्ण शरीर घावोंसे पूरिपूरित होगये, और उनके शरीरोंसे इस प्रकार रुधिर बहने लगा, जैसे गेरूके दो पर्वतोंके ऊपरसे जलकी धारा बहती है, इसी प्रकार वे शोभित हो रहे थे ॥ २७ ॥

तौ शराग्रविभिन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ।
नाकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ॥ २८ ॥

आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे पीडित होके उन दोनों वीरोंने एक दूसरेके शरीरको अपने बाणोंसे क्षतविक्षत कर दिया, परन्तु वे महातेजस्वी वीर यत्नवान् होकर भी कोई किसीको युद्धभूमिसे विचलित न कर सके ॥ २८ ॥

तत्प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ।
प्राणयोर्दीव्यतो राजन्कर्णराक्षसयोर्मृधे ॥ २९ ॥

महाराज ! प्राणपणसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए कर्ण और राक्षस घटोत्कचका वह रात्रिका संग्राम बहुत समय तक समभावसे ही होता रहा ॥ २९ ॥

तस्य संदधतस्तीक्ष्णाञ्शरांश्चासक्तमस्यतः ।
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाभवन् ।
घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥ ३० ॥

परन्तु घटोत्कचको निर्भय चित्तसे लगातार बाण साधते और चलाते देख, तुम्हारी सेनाके और पर सेनाके सम्पूर्ण पुरुष उसके धनुष टङ्कारके शब्दसे भयभीत हो गये। महाराज ! जब कर्ण किसी प्रकारसे घटोत्कचसे अधिक न हो सके ॥ ३० ॥

ततः प्रादुष्करोद्दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
कर्णेन विहितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ।
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसः पाण्डुनन्दनः ॥ ३१ ॥

तब सब अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महावीर कर्णने दिव्य अस्त्रको प्रकट किया, भीमसेन पुत्र घटोत्कचने कर्णको दिव्य अस्त्र प्रकट करते देख अपनी राक्षसी महामायाको उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ।
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः ॥ ३२ ॥

उससे वह क्षणभरके बीच शूल, मुद्गर, वृक्ष और पत्थर ग्रहण करनेवाली और भयङ्कर रूपवाली बडी राक्षसी सेनासे युक्त हो गया ॥ ३२ ॥

तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ।
भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् ॥ ३३ ॥

राजा लोग सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले उग्र कालदण्डधारी यमराजके समान हाथमें विशाल धनुष ग्रहण किये घटोत्कचको संमुख आते देख अत्यन्त ही शोकित हुए ॥ ३३ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ३४ ॥

उस समय घटोत्कचके सिंहनाद शब्दसे भयभीत होकर हाथी मलमूत्र त्याग करने लगे और सेनाके पुरुष अत्यन्त ही कातर हुए ॥ ३४ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत्समन्ततः ।
अर्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता रक्षसां बलैः ॥ ३५ ॥

अनन्तर उस समय रात्रिके प्रभावसे स्वाभाविक ही अधिक बलवान् राक्षसोंकी सेनाके पुरुषोंके हाथसे रणभूमिमें चारों ओर शिलाकी भयंकर और भारी वर्षा होने लगी ॥ ३५ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्डयः शक्तितोमराः ।
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ३६ ॥

लोहमय चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अनेक भांतिके अस्त्र-शस्त्र तुम्हारी सेनाके ऊपर अविरल पडने लगे ॥ ३६ ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ॥ ३७ ॥

तुम्हारे पुत्र, नरेश और तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उस भयंकर, उग्र युद्धको देखकर भयभीत होकर चारों ओर भागने लगे ॥ ३७ ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ३८ ॥

उस समय केवल अस्त्रबलमें प्रशंसित अकेले अभिमानी कर्ण ही युद्धसे कातर नहीं हुए, वरन उन्होंने अपने बाणोंके प्रभावसे घटोत्कचकी संपूर्ण मायाको नष्ट कर दिया ॥ ३८ ॥

मायायां तु प्रहीणायाममर्षात्स घटोत्कचः।
विससर्ज शरान्घोरान्सूतपुत्रं त आविशन् ॥ ३९ ॥

माया नष्ट होने पर घटोत्कच क्रुद्ध होके सूतपुत्र कर्णके ऊपर महाघोर बाणोंकी वर्षा करने लगा; वे सम्पूर्ण बाण कर्णके शरीरमें घुस गये ॥ ३९ ॥

ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे।
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः ॥ ४० ॥

रुधिरसे लिपटे हुए वे सम्पूर्ण बाण महायुद्धमें कर्णके शरीरको छेदकर क्रोधी सर्पोंके समान पृथ्वीमें समा गये ॥ ४० ॥

सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान्।
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः ॥ ४१ ॥

तब प्रतापी कर्णने क्रुद्ध होकर हस्तलाघवके सहित घटोत्कचका उल्लंघन करके दस बाणोंसे उसे विद्ध किया ॥ ४१ ॥

घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु।
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ॥ ४२ ॥

सूतपुत्र कर्णके बाणोंसे घटोत्कचके मर्मस्थल अत्यन्त ही पीडित हुए, तब उसने दिव्य सहस्रार चक्र हाथमें लिया ॥ ४२ ॥

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम्।
चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ॥ ४३ ॥

क्षुर धारसे युक्त, मणि–रत्नोंसे विभूषित वह चक्र बालसूर्यके समान दीखता था; क्रुद्ध भीमपुत्र घटोत्कचने अधिरथपुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उस चक्रको चलाया ॥ ४३ ॥

प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः।
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ॥ ४४ ॥

जैसे भाग्यहीन पुरुषके मनोरथ निष्फल हो जाते हैं, वैसे ही अत्यन्त वेगसे घुमाके चलाया हुआ वह चक्र कर्णके बाणोंके प्रभावसे व्यर्थ होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ४४ ॥

घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ।
कर्णं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ४५ ॥

चक्रको गिराया हुआ देख, क्रुद्ध हुए घटोत्कचने अपने बाणजालसे इस प्रकार कर्णको छिपा दिया, जैसे राहु सूर्यको छिपा देता है ॥ ४५ ॥

सूतपुत्रस्त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ।
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ४६ ॥

वैसे ही रुद्र, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी सूतपुत्र कर्णने भी निर्भयचित्तसे अपने बाणजालसे घटोत्कचके रथको शीघ्रताके सहित छिपा दिया ॥ ४६ ॥

घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ।
क्षिप्ता भ्राम्य शरैः सापि कर्णेनाभ्याहतापतत् ॥ ४७ ॥

तब घटोत्कचने क्रुद्ध होकर सुवर्णतारसे खचित एक भारी गदाको घुमाकर कर्णकी ओर फेंक दिया; वह गदा भी कर्णके बाणोंसे निवारित होकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ ४७ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ।
प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् ॥ ४८ ॥

अनन्तर बडे शरीरवाला वह राक्षस घटोत्कच आकाशमें चला गया और प्रलयकालके बादलोंके समान गर्जना करके आकाशसे कर्णके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४८ ॥

ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ।
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ॥ ४९ ॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे बादलोंको विद्ध कर देता है, वैसेही कर्णने भीमसेनके मायावी पुत्रको आकाशमें बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४९ ॥

तस्य सर्वान्हयान्हत्वा संछिद्य शतधा रथम् ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ५० ॥

उसके रथके घोडोंको मारकर और रथके सैकडों टुकडे करके कर्णने जलकी वर्षा करनेवाले बादलके समान बाणोंकी वृष्टि शुरू कर दी ॥ ५० ॥

न चास्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ।
सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललितो यथा ॥ ५१ ॥

तब उस समय घटोत्कचके शरीरमें ऐसा दो अंगुल स्थान भी बाकी न रहा जो कर्णके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो । उस समय घटोत्कचका शरीर मुहूर्त भरके बीच कर्णके बाणोंसे इस प्रकार परिपूरित होगया, जैसे कांटोंसे युक्त साहीका ॥ ५१ ॥

न ह्यपश्यन्रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ।
दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् ॥ ५२ ॥

उस समय युद्धमें राक्षस घटोत्कच कर्णके बाणोंके समूहसे इस प्रकार छिप गया, कि कोई पुरुष उसका रथ, घोडे, ध्वज और उसे देख भी न सके ॥ ५२ ॥

स तु कर्णस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ।
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् ॥ ५३ ॥

परन्तु मायाविद्या जाननेवाला घटोत्कच कर्णके चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको अपने दिव्य अस्त्रोंसे निवारण करता हुआ सूतपुत्रके साथ मायामय युद्ध करने लगा ॥ ५३ ॥

सोऽयोधयत्तदा कर्णं मायया लाघवेन च ।
अलक्ष्यमाणोऽथ दिवि शरजालेषु संपतन् ॥ ५४ ॥

जब वह मायासे शीघ्रताके सहित कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगा, उस समय आकाशमण्डलसे कर्णपर अनगिनत बाणोंकी वर्षा होती हुई दिखाई देने लगी ॥ ५४ ॥

भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ।
प्रचकार महामायां मोहयन्निव भारत ॥ ५५ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ राजेन्द्र ! मायाविद्यामें निपुण बडे शरीरवाला वह भीमपुत्र राक्षस इसी भांति अपनी मायासे तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको मोहित कर रणभूमिमें घूमने लगा ॥ ५५ ॥

स स्म कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभाननः ।
अग्रसत्सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ॥ ५६ ॥

उसका मुख स्वाभाविक ही भयङ्कर था, उसपर भी उसने मायाबलसे विरूप और अशुभ अनेक मुख बनाकर सूतपुत्र कर्णके चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको ग्रास किया ॥ ५६ ॥

पुनश्चापि महाकायः संछिन्नः शतधा रणे ।
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद्व्यदृश्यत ।
हतं तं मन्यमानाः स्म प्राणदन्कुरुपुंगवाः ॥ ५७ ॥

अनन्तर वह बडे शरीरवाला राक्षस युद्धसे उत्साहहीन और प्राण रहितके समान होकर कटके सैंकडों टुकडे होके आकाशसे समरमें गिरते हुए दीख पडा । तब उसके शरीरको कटके गिरते देख कुरुसेनाके योद्धाओंने समझा, कि घटोत्कच मारा गया, ऐसा समझके तुम्हारी सेनाके प्रमुख योद्धा लोग सिंहनाद करने लगे ॥ ५७ ॥

अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ।
पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥ ५८ ॥

वह उस ही समय मायाके प्रभावसे दूसरा अनेक नये नये शरीर धारण करके एकही समय चारों ओर दिखाई देने लगा । वह मायाके प्रभावसे कभी एकसौ सिर एक सौ उदरवाला बडा शरीर धारण करके दीखने लगा ॥ ५८ ॥

व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ।
अङ्गुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ।
सागरोर्मिरिवोद्धूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत ॥ ५९ ॥

फिर वह मैनाक पर्वतकी भांति बडी बडी बाहोंवाला दिखाई देने लगा । वह राक्षस कभी अंगुष्ठ मात्र होकर फिर उठती हुई समुद्रकी तरङ्गकी भांति वक्र गतिसे ऊपरको बढने लगा ॥ ५९ ॥

वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ।
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः ॥ ६० ॥

फिर पृथ्वीको विदारण करके वह जलके बीच डूब जाता था और क्षणभरके बीच दूसरे स्थानपर जलसे प्रकट होके फिर दीख पडता था ॥ ६० ॥

सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ।
क्षितिं द्यां च दिशश्चैव माययावृत्य दंशितः ॥ ६१ ॥
गत्वा कर्णरथाभ्याशं विचलत्कुण्डलाननः ।
प्राह वाक्यमसंभ्रान्तः सूतपुत्रं विशां पते ॥ ६२ ॥

इसी भांति आकाशसे उतरकर वह राक्षस फिर अपने सुवर्णमय रथपर स्थित हुआ और मायाके प्रभावसे पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण दिशाओंमें घूमकर फिर कवच धारण करके और कुण्डलोंसे सुशोभित मुखसे सूतपुत्र कर्णके रथके समीप उपस्थित होकर विचरने लगा; और हे पृथ्वीपते ! निर्भयताके सहित उनसे कहने लगा ॥ ६१-६२ ॥

तिष्ठेदानीं न मे जीवन्सूतपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ६३ ॥

हे सूतपुत्र ! खडा रह ! अब तू जीते हुए मेरे संमुखसे कहां जा सकता है ? आज रणभूमिके बीच मैं तुम्हारी युद्धकी अभिलाषा पूर्ण कर दूंगा ॥ ६३ ॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ।
उत्पपातान्तरिक्षं च जहास च सुविस्वरम् ।
कर्णमभ्याहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६४ ॥

क्रूर पराक्रमी राक्षस घटोत्कच ऐसा वचन कहके क्रोधपूर्वक आंखें लाल करके आकाशमें गया और भयानक स्वरसे हंसता हुआ कर्णपर इस प्रकार प्रहार करने लगा; जैसे सिंह गजराजके ऊपर प्रहार करता है ॥ ६४ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ।
शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरप्राप्तामशातयत् ॥ ६५ ॥

उस समय घटोत्कच रथियोंमें मुख्य कर्णके ऊपर अपने रथके धुरेके समान मोटे मोटे बाणोंको आकाशसे इस प्रकार वर्षाने लगा, जैसे बादल पृथ्वीके ऊपर जलकी वर्षा करता है; पर कर्ण उसके चलाये हुए बाणवर्षाको समीप न पहुंचते ही मार्गहीमें काट काटके गिराने लगे ॥ ६५ ॥

दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥ ६६ ॥

महाराज ! कर्णके द्वारा अपनी मायाको निष्फल होती देख, घटोत्कचने फिर अन्तर्द्धान होके दूसरी राक्षसी माया उपजायी ॥ ६६ ॥

सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥ ६७ ॥

उस समय उसने मायाके प्रभावसे अनेक शिखरोंसे शोभित वृक्षलताओंसे परिपूर्ण एक बहुत ऊंचे बडे पर्वतका रूप धारण किया और उससे जलके झरनेके समान शूल, प्रास, खड्ग और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रवाह बहने लगा ॥ ६७ ॥

तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे ॥ ६८ ॥

घटोत्कचको अञ्जनगिरिके समान जल झरनेके स्थलमें अनेक भयंकर अस्त्र शस्त्रोंको निकालते हुए उस पर्वतको देखकर कर्ण तनिक भी क्षोभित और भयभीत नहीं हुए ॥ ६८ ॥

स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदीरयत् ।
ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत ॥ ६९ ॥

वरन उत्साहपूर्वक स्मित करके उन्होंने अपना दिव्य अस्त्र प्रकाशित किया । कर्णके दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे वह पर्वतराज क्षणभरमें दूर फेंका गया और नष्ट हो गया ॥ ६९ ॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत् ॥ ७० ॥

उसे देखकर अत्यंत उग्र घटोत्कच आकाशमें इन्द्रधनुषसे शोभित काले बादलका रूप धारण करके वहांसे ही सूतपुत्र कर्णके ऊपर शिला वर्षाने लगा ॥ ७० ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमत्कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषा ॥ ७१ ॥

तब अस्त्रधारियोंमें मुख्य वैकर्तन कर्णने वायव्य अस्त्र चलाकर उस काले मेघमण्डलको आकाशमें छिन्न भिन्न करके नष्ट कर दिया ॥ ७१ ॥

स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
जघानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् ॥ ७२ ॥

महाराज ! कर्णने अपने बाण समूहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके घटोत्कचके चलाये हुए अस्त्रोंको काट दिया ॥ ७२ ॥

ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ।
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम् ॥ ७३ ॥

अनन्तर महाबलवान् भीमसेनपुत्र घटोत्कच ऊंचे स्वरसे हंसके समरमें महारथी कर्णके समीप महाघोर माया प्रकाशित करने लगा ॥ ७३ ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
घटोत्कचमसंभ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ७४ ॥

उस समय कर्णने रथियोंमें श्रेष्ठ निर्भयचित्तसे युक्त घटोत्कचको अनेक राक्षसोंसे घिरकर फिर रथपर बैठकर आते देखा ॥ ७४ ॥

सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा ॥ ७५ ॥

वे राक्षस सिंह, शार्दूल और मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी थे; उनमेंसे कुछ हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ घोडोंपर सवार हुए थे ॥ ७५ ॥

नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ।
वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥ ७६ ॥

वे भयंकर राक्षस नाना भांतिके अस्त्र–शस्त्र, कवच और आभूषण धारण किये हुए थे; मरुत् गणोंसे घिरे हुए इन्द्रके समान क्रूर राक्षसोंसे घिरकर आते हुए घटोत्कचको सामने देखकर, महा धनुर्धर कर्ण यत्नवान् होकर उस राक्षसके संग युद्ध करने लगे ॥ ७६ ॥

घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
ननाद भैरवं नादं भीषयन्सर्वपार्थिवान् ॥ ७७ ॥

अनन्तर घटोत्कचने पहिले कर्णको पांच बाणोंसे विद्ध किया, फिर सम्पूर्ण राजाओंको भयभीत करते हुए भयानक शब्दसे सिंहनाद करने लगा ॥ ७७ ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ समार्गणगणं महत् ।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥ ७८ ॥

अनन्तर घटोत्कचने अञ्जलिक अस्त्रसे कर्णके हाथमें स्थित उनके विशाल दृढ धनुषको बाण और रोदेके सहित शीघ्रही काटके गिरा दिया ॥ ७८ ॥

अथान्यद्धनुरादाय दृढं भारसहं महत् ।
व्यकर्षत बलात्कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ७९ ॥

तब कर्णने इन्द्रधनुषके समान ऊंचा, एक भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा प्रचण्ड और सुदृढ धनुष ग्रहण करके उसे बलपूर्वक खींचा ॥ ७९ ॥

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ्शत्रुघ्नान्खचरान्राक्षसान्प्रति ॥ ८० ॥

महाराज ! फिर कर्ण उन आकाशचारी राक्षसोंके ऊपर स्वर्ण पंखवाले, तीक्ष्ण, शत्रुनाशक बाणोंको चलाने लगे ॥ ८० ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवार्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८१ ॥

चौडी छातीवाले वे सम्पूर्ण राक्षस कर्णके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार विकल होगये, जैसे सिंहसे पीडित होकर जंगली हाथियोंका समूह व्याकुल हो जाता है ॥ ८१ ॥

विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतगजान्विभुः ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ ८२ ॥

जैसे प्रलयकालके समय भगवान् अग्निदेव सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म कर देते हैं, वैसे ही बलवान् सूतपुत्र कर्ण हाथी, घोडे, रथ और सारथियोंके सहित उन सम्पूर्ण राक्षसोंको बलपूर्वक अपने बाणरूपी अग्निसे भस्म करने लगे ॥ ८२ ॥

स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८३ ॥

जैसे पहिले समयमें देवोंके देव महादेव आकाशमें त्रिपुरको जलाकर शोभित हुए थे, वैसे ही सूतपुत्र कर्ण भी सम्पूर्ण राक्षसी सेनाका नाश करके युद्धभूमिके बीच शोभित हुए ॥ ८३ ॥

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिव ॥ ८४ ॥

मारिष ! उस समय पाण्डवोंकी ओरके सहस्रों राजाओंके बीच कोई भी कर्णकी ओर आंख उठाकर देख भी नहीं सका ॥ ८४ ॥

ऋते घटोत्कचाद्राजन्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
भीमवीर्यबलोपेतात्क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव ॥ ८५ ॥

राजन् ! भयानक बल और पराक्रमसे युक्त, महाबलवान्, क्रुद्ध हुए यमराजके समान दीखनेवाले राक्षसराज घटोत्कचको छोडके और दूसरा कोई पुरुष कर्णका सामना न कर सका ॥ ८५ ॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन्सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ ८६ ॥

राजन् ! जैसे मशालोंसे जलती हुई तेलकी बूंदें गिरती हैं, उसी प्रकार क्रोधित घटोत्कचके दोनों नेत्रोंसे अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं ॥ ८६ ॥

तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं पुनः ॥ ८७ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ।
स सूतमब्रवीत्क्रुद्धः सूतपुत्राय मा वह ॥ ८८ ॥

अनन्तर घटोत्कच हाथसे हाथ मलकर, दांतोंसे ओठ काटता हुआ, फिर हाथी जैसे बलवान् और पिशाच बदनके समान रूप और विशाल शरीरवाले खर जूते और मायासे बने हुए रथपर चढके अपने सारथीसे बोला, हे सारथी ! तुम मुझे सूतपुत्र कर्णके समीप ले चलो ॥ ८७–८८ ॥

स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशां पते ॥ ८९ ॥

हे राजेन्द्र ! ऐसा कहकर वह रथियोंमें मुख्य राक्षस घटोत्कच फिर इस भयङ्कर रथसे सूतपुत्र कर्णसे द्वैरथ युद्ध करनेकी इच्छासे उनकी ओर गया ॥ ८९ ॥

स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ९० ॥

उस राक्षसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर फिर आठ चक्रोंसे युक्त एक महाभयंकरी रुद्रकी बनाई हुई अशनि सूतपुत्र कर्णकी ओर चलायी ॥ ९० ॥

तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥ ९१ ॥

उसे देखकर कर्णने अपने धनुषको रथमें रखके, उस समय उछल कर उस अशनिको हाथसे ग्रहण करके, फिर उसे घटोत्कचहीकी ओर चलाई । घटोत्कच उसी समय रथसे कूदकर पृथ्वी पर स्थित हुआ ॥ ९१ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥ ९२ ॥

वह अतिशय प्रकाशमान अशनि घटोत्कचके घोडे, सारथी, ध्वज और रथको भस्म करके पृथ्वीमें प्रविष्ट हुई । यह देखकर देवता लोग अत्यन्त ही विस्मित हुए ॥ ९२ ॥

कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥ ९३ ॥

उस समय कर्णने जो सहसा कूदके महादेवकी बनाई उस प्रचण्ड अशनिको ग्रहण किया, उसे देख सम्पूर्ण प्राणियोंने सूतपुत्र कर्णकी अत्यन्त ही प्रशंसा की ॥ ९३ ॥

एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान्सूतपुत्रः परंतप ॥ ९४ ॥

हे शत्रुतापन राजन् ! कर्ण रणभूमिके बीच ऐसा कठिन कर्म करके फिर अपने रथपर चढके घटोत्कचकी ओर अनेक तेज नाराच बाण चलाने लगे ॥ ९४ ॥

अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत्तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥ ९५ ॥

हे मानद ! उस भयङ्कर संग्रामके समय कर्णने जैसा कर्म किया, वैसे कर्मको करनेमें सम्पूर्ण प्राणियोंके बीच दूसरा कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है ॥ ९५ ॥

स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ ९६ ॥

जैसे पर्वतके ऊपर लगातार जलकी धाराएं गिरती हैं, वैसेही घटोत्कच लगातार कर्णके नाराचोंसे पीडित होकर गन्धर्वनगरकी भांति फिर अन्तर्द्धान हुआ ॥ ९६ ॥

एवं स वै महामायो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥ ९७ ॥

महाघोर राक्षसी मायासे युक्त शत्रुओंको नाश करनेवाले उस बडे शरीरवाले राक्षसने मायाबल और हस्तलाघवके सहित अपने अस्त्रोंसे कर्णके चलाये हुए सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको निवारण किया ॥ ९७ ॥

निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असंभ्रान्तस्ततः कर्णस्तद्रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥ ९८ ॥

परन्तु मायाके प्रभावसे बार बार सम्पूर्ण अस्त्रोंके निष्फल होने पर भी कर्ण निर्भयचित्तसे उस राक्षसके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ९८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधात्मानं भीषयाणो नराधिपान् ॥ ९९ ॥

महाराज ! तब क्रुद्ध हुए महाबलवान् भीमसेन पुत्र घटोत्कचने राजाओंको भयभीत करके हुए अपने अनेक रूप धारण किये ॥ ९९ ॥

ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः ॥ १०० ॥

उससे सिंह, बाघ, तेंदुए, अग्निजिह्व सर्प और लोहमुखवाले पक्षी चारों ओरसे आक्रमण करने लगे ॥ १०० ॥

स कीर्यमाणो निशितैः कर्णचापच्युतैः शरैः ।
नगराड्विवप्रख्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०१ ॥

महाराज ! वह इस प्रकार युद्धभूमिमें उपस्थित होने पर भी कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे छिप जानेसे पर्वतराजके समान दुष्प्रेक्ष्य होकर वहाँ ही अन्तर्धान होगया ॥ १०१ ॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानाः शालावृकाः ।
ते कर्णं भक्षयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् ।
अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयांचक्रिरे तदा ॥ १०२ ॥

अनन्तर राक्षस, पिशाच, भेडिये और शियार कर्णको भक्षण करनेके लिये चारों ओरसे उसपर टूट पडे; और वे सब अपनी भयंकर बाणियोंसे उसे भयभीत करने लगे ॥ १०२ ॥

उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः ।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध चाशुगैः ॥ १०३ ॥

कर्णने रुधिरसे लिपटे हुए अपने अनेक आयुधों और बाणोंसे उनमेंसे हरएकको विद्ध किया ॥ १०३ ॥

प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण राक्षसीम् ।
आजघान हयानस्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ १०४ ॥

अनन्तर अपने दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे कर्णने उस राक्षसी मायाका नाश किया । फिर अनेक चोखे नतपर्व बाणोंसे घटोत्कचके घोडोंको मार डाला ॥ १०४ ॥

ते भग्ना विकृताङ्गाश्च छिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥ १०५ ॥

उन घोडोंके सम्पूर्ण शरीर क्षतविक्षत हो गये, बाणोंके प्रहारसे उनके पृष्ठभाग फट गये और वे घटोत्कचके सम्मुखहीमें प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १०५ ॥

स भग्नमायो हैडिम्बः कर्णं वैकर्तनं ततः ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ १०६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ ६७४७ ॥

इस प्रकार जब सम्पूर्ण माया नष्ट हुई तब हिडिम्बापुत्र घटोत्कचने वैकर्तन कर्णसे कहा 'अब मैं तुम्हारी मृत्युका उपाय करता हूं' ऐसा कहके फिर वह वहीं अन्तर्द्धान हुआ ॥ १०६ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥ ६७४७ ॥

: १५१ :

सञ्जय उवाच

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! इस प्रकार जब कर्ण और घटोत्कचका वह युद्ध चल रहा था, उसी समय पराक्रमी राक्षसराज अलायुध वहां उपस्थित हुआ ॥ १ ॥

महत्या सेनया युक्तः सुयोधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ।
नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २ ॥

वह सहस्रों भयङ्कर रूपवाले राक्षसोंसे घिरकर विशाल सेनाके सहित दुर्योधनके पास आया ॥ २ ॥

तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ।
किर्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च सखा तथा ॥ ३ ॥

वह पहलेके वैरका स्मरण करके नाना प्रकारके रूप धारण करनेवाले वीर राक्षसोंके साथ आया था । पहले भीमसेनने उसकी जातिके पराक्रमी विप्रभक्षी बक, महातेजस्वी किर्मीर और उसके मित्र हिडिम्बका वध किया था ॥ ३ ॥

स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ॥ ४ ॥

इस समय रात्रिमें होनेवाले युद्धके विषयको जानके, अपने जाति-वधरूपी बहुत दिनोंकी शत्रुताको स्मरण करके, रणभूमिमें भीमसेनके वधकी अभिलाषा करके वह आया था ॥४॥

स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धलालसः ॥ ५ ॥

मतवाले हाथी और क्रुद्ध सर्पकी भांति युद्धकी इच्छा रखकर वह राक्षस दुर्योधनके निकट उपस्थित होके उन्हें इस प्रकार बोला ॥ ५ ॥

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ।
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! पहिले भीमसेनने मेरे जातिबन्धु बक, किर्मीर और हिडिम्बको जिस प्रकारसे मारा था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम्हें विदित है ॥ ६ ॥

परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ।
किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह ॥ ७ ॥

विशेष करके उन्होंने दूसरे राक्षस और मेरी अवमानना करके पहले राक्षस कन्या हिडम्बाका कन्या धर्म नष्ट किया था । इससे अधिक क्या अपराध हो सकता है ? ॥ ७ ॥

तमहं सगणं राजन्सवाजिरथकुञ्जरम् ।
हैडिम्बं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम् ॥ ८ ॥

राजन् ! इससे आज मैं हाथी, घोडे, रथ और सेनाके सहित भीमसेनको और अनुयाइयोंके सहित हिडम्बापुत्र घटोत्कचको मार डालनेकी इच्छा करके स्वयं तुम्हारे समीप आके उपस्थित हुआ हूं ॥ ८ ॥

अद्य कुन्तीसुतान्सर्वान्वासुदेवपुरोगमान् ।
हत्वा संभक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह ।
निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥ ९ ॥

आज मैं श्रीकृष्णके सहित सभी कुन्तीपुत्रोंको मारके अपने अनुयायी राक्षसोंके सहित उन्हें भक्षण करूंगा । इससे तुम अपनी सेनाके पुरुषोंको युद्धभूमिसे निवृत्त करो; हम लोग पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करेंगे ॥ ९ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा ।
प्रतिपूज्याब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १० ॥

भाइयोंके बीचमें घिरे हुए महाराज दुर्योधन उसके वचनको सुनकर प्रसन्नताके सहित सत्कार करके यह वचन बोले ॥ १० ॥

त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान् ।
न हि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ ११ ॥

हे वीर ! मेरी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा शत्रुनाको शेष करनेके लिये उत्सुक होकर पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं, इससे वे लोग किसी प्रकारसे भी युद्धसे निवृत्त न होंगे; पर हम लोग सैनिकों सहित तुम्हें अगाडी करके शत्रुओंके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होंगे ॥ ११ ॥

एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुंगवः ।
अभ्ययात्त्वरितो भीमं सहितः पुरुषाशनैः ॥ १२ ॥

राक्षसराज अलायुध दुर्योधनके वचनको सुनकर ऐसा ही होवे कहके शीघ्रतासे राक्षसोंके साथ भीमसेनपुत्र घटोत्कचके साथ युद्ध करनेके लिये गया ॥ १२ ॥

दीप्यमानेन वपुषा रथेनादित्यवर्चसा ।
तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥ १३ ॥

राजेन्द्र ! प्रकाशमान शरीर धारण करके, सूर्यके समान तेजस्वी रथपर चढकर वह गया, जैसे रथसे घटोत्कच आया था ॥ १३ ॥

तस्याप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥ १४ ॥

अलायुधका बडा रथ भी बहुत बडा सुन्दर, अतुलनीय घरघराहट शब्दसे युक्त, भालूके चमडेसे घिरा हुआ और तोरण पताकाओंसे शोभित था । उसकी लंबाई चौडाई भी चार सौ हाथ थी ॥ १४ ॥

तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः ।
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १५ ॥

उसके रथके घोडे भी शीघ्रगामी, हाथीके समान मोटे शरीरवाले और गधेकी भांति उच्च शब्द करनेवाले थे; वे मांस और रुधिर भोजी थे, उनकी संख्या सौ थी ॥ १५ ॥

तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः ।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं बलवत्तरम् ॥ १६ ॥

उसके रथका शब्द भी महामेघकी गर्जनाके समान था; उसका धनुष भी विशाल, दृढ रोदेसे युक्त और अत्यन्त बलवान् था ॥ १६ ॥

तस्याप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥ १७ ॥

शिलापर घिसकर तेज किये हुए, सोनेके पंखवाले और धुरेके समान मोटे उसके बाण भी शोभित हो रहे थे, अलायुध भी घटोत्कचके समान महाबाहु वीर था ॥ १७ ॥

तस्यापि गोमायुबडाभिगुप्तो बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ॥ १८ ॥
इसी भांति उसके रथके ऊपर ऊंची ध्वजा अग्नि और सूर्यकी भांति प्रकाशित हो रही थी; वह ध्वजा गीदडोंके समूहसे रक्षित थी। वह स्वयं भी घटोत्कचकी भांति अत्यन्त कान्तिमान रूपवाला था; उसका मुख भयंकर और प्रज्वलित दीखता था ॥ १८ ॥

दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ १९ ॥
उस समय वह हाथीके समान शरीरवाला, भुजाओंमें बाजूबंद, मस्तक पर प्रकाशमान मुकुट, माला पहना हुआ और पगडीमें तलवार बंधा हुआ शोभित हुआ और धनुष, गदा, भुशुण्डी, मुसल और हल आदि अनेक भांतिके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न था ॥ १९ ॥

रथेन तेनानलवर्चसा च विद्रावयन्पाण्डववाहिनीं ताम् ।
रराज संख्ये परिवर्तमानो विद्युन्माली मेघ इवान्तरिक्षे ॥ २० ॥
अग्निके समान अपने प्रकाशमान रथपर चढके चारों ओर पाण्डवोंकी सेनाको भगाता युद्ध-भूमिके बीच घूमकर वह आकाशमें बिजलीसे युक्त जलकी वर्षा करनेवाले बादलके समान शोभित हो रथा था ॥ २० ॥

ते चापि सर्वे प्रवरा नरेन्द्रा महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च ।
हर्षान्विता युयुधुस्तत्र राजन्समन्ततः पाण्डवयोधवीराः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥ ६७६८ ॥

राजन् ! पाण्डवोंकी सेनाके महाबलवान् मुख्य मुख्य वीर सब राजालोग भी कवच, ढाल धारण किये हुए तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित होकर प्रसन्न चित्तसे उसके चारों ओर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५१ ॥ ६७६८ ॥

: १५२ :

सञ्जय उवाच

तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।
हर्षमाहारयांचक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– महाराज ! उस समय कौरव लोग उस भयङ्कर कर्म करनेवाले राक्षसराजको युद्धमें आया हुआ देख कर अत्यन्त ही हर्षित हुए ॥ १ ॥

तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः ।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवार्णवम् ॥ २ ॥

उसी प्रकार तुम्हारे दुर्योधन आदि पुत्रोंको भी अत्यंत आनन्द हुआ, जैसे समुद्रसे पार होनेकी इच्छावाले पुरुष नौका रहित होकर फिर नौकाको पाकर प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्जातमिवात्मानं मन्वानाः पार्थिवास्तदा ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाभ्यपूजयन् ॥ ३ ॥

वे राजा लोग अपना फिर नया जन्म हुआ है ऐसा मानने लगे, और उन्होंने राक्षस राज अलायुद्धका स्वागत पूर्वक आदर किया ॥ ३ ॥

तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रातिदर्शने ॥ ४ ॥
उपप्रेक्षन्त पाञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः ।
तथैव तावका राजन्घूर्णमानास्ततस्ततः ॥ ५ ॥

कर्ण और घटोत्कचका उस रात्रिके समय जब महाघोर भयङ्कर अमानुषिक संग्राम होने लगा; राजन् ! उस समय पाञ्चाल सेनाके योद्धा लोग शत्रुसेनाके सम्पूर्ण राजाओंके साथ विस्मित होकर उन दोनों वीरोंका युद्ध देखने लगे और तुम्हारे सैनिक भी इधर उधरसे घूमकर वह युद्ध देखने लगे ॥ ४–५ ॥

चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः ।
तत्कर्म दृष्ट्वा संभ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ ६ ॥

द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि महारथी योद्धा लोग युद्धमें हिडिम्बापुत्र घटोत्कचका पराक्रम देखकर भयभीत होकर ऊंचे स्वरसे पुकारके कहने लगे, कि अब हमारी सेना नहीं बचेगी ॥ ६ ॥

सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।
तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥ ७ ॥

महाराज ! विशेष करके तुम्हारी सारी सेना कर्णके जीवनसे निराश होकर उद्विग्न हो गयी और हाहाकार शब्दके सहित कोलाहल मचाने लगी। वह अचेतसी हो गयी ॥ ७ ॥

दुर्योधनस्तु संप्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रमाहूयेदमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥

उस ही समय कुरुराज दुर्योधन कर्णको बडे भारी संकटमें पडा देख राक्षसराज अलायुधको आवाहन करके उससे यह वचन बोले ॥ ८ ॥

एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः ।
कुरुते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९ ॥

हे वीर ! यह देखो, वैकर्तन कर्ण रणभूमिके बीच घटोत्कचके सङ्ग अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम प्रकट करके युद्ध कर रहे हैं ॥ ९ ॥

पश्यैतान्पार्थिवाञ्शूरान्निहतान्भैमसेनिना ।
नानाशस्त्रैरभिहतान्पादपानिव दन्तिना ॥ १० ॥

मेरी सेनाके बहुतेरे शूरवीर योद्धा और राजा लोगोंको भीमसेनपुत्र घटोत्कचने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल करके मार डाला है, जैसे हाथीके गिराये हुए वृक्षोंके समान वे पृथ्वी पर गिर पडे हैं, इन्हें देखो ॥ १० ॥

तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवानुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ११ ॥

हे वीर ! इससे तुम पराक्रम प्रकाशित करके घटोत्कचका वध करो; क्योंकि तुम्हारी अनुमतिसे ही समरमें संपूर्ण राजाओंके बीच इस राक्षसको मैंने तुम्हारा भाग निश्चित किया है ॥ ११ ॥

पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलमुपाश्रित्य कर्शयत्यरिकर्शनः ॥ १२ ॥

यह पापी शत्रुसूदन राक्षस मायाबलके आसरेसे वैकर्तन कर्णका पहले ही बध नहीं कर दे ऐसा न हो, यह देखो ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसस्तीव्रविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥

जब राजा दुर्योधनने ऐसा वचन कहा, तब महा पराक्रमी महाबाहु अलायुध राक्षस ऐसा ही होगा कहकर घटोत्चककी ओर दौडा ॥ १३ ॥

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तं मर्दयामास मार्गणैः ॥ १४ ॥

प्रभो ! भीमपुत्र घटोत्कच भी युद्धभूमियें कर्णको त्यागके संमुख आये हुए निज शत्रु अलायुधको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगा ॥ १४ ॥

तयोः समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ।
मत्तयोर्वाशिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥ १५ ॥

उस समय उन दोनों क्रोधित राक्षसराज घटोत्कच और अलायुधका इस प्रकार महाघोर युद्ध होने लगा, जैसे वनके बीच हाथिनीके लिये दो मतवाले हाथियोंका युद्ध होता है ॥ १५ ॥

रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥

इधर महारथियोंमें मुख्य कर्ण राक्षस घटोत्कचसे मुक्त होकर उस समय सूर्यके समान अपने प्रकाशमान रथ पर चढके भीमसेनकी ओर दौडे ॥ १६ ॥

तमायान्तमनाहत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम् ।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥ १७ ॥
रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः ।
किरञ्शरौघान्प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८ ॥

परन्तु आते हुए कर्णकी उपेक्षा करके समरमें सिंहसे पकडे गये वृषभकी भांति अपने पुत्र घटोत्कचको अलायुध राक्षससे पीडित देखकर, योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन सूर्यके समान प्रकाशमान रथपर चढके अपने बाणोंको चलाते हुए अलायुधके रथकी ओर गमन करने लगे ॥ १७–१८ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदालायुधः प्रभो ।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥ १९ ॥

प्रभो ! तब अलायुधने भीमसेनको अपनी ओर आते देख घटोत्कचको त्यागके युद्धभूमिमें भीमसेन ही को आवाहन किया ॥ १९ ॥

तं भीमः सहसाभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो ।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २० ॥

राक्षसोंके नाश करनेवाले भीमसेनने सहसा समीप जाकर राक्षसी सेनाके सहित राक्षसराज अलायुधको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित किया ॥ २० ॥

तथैवालायुधो राजञ्शिलाधौतैरजिह्मगैः ।
अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिंदमः ॥ २१ ॥

उसी भांति शत्रुदमन अलायुध भी कुन्तीपुत्र भीमसेनके ऊपर शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंको बार बार चलाने लगा ॥ २१ ॥

तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन् ।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥ २२ ॥

उसकी सेनाके भयङ्कर रूपवाले राक्षस लोग भी नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके तुम्हारे पुत्रोंके विजयकी इच्छा करते हुए भीमसेनकी ओर दौडे ॥ २२ ॥

×

स ताड्यमानो बलिभिर्भीमसेनो महाबलः ।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥ २३ ॥

महाबलवान् भीमसेनने इसी भांति राक्षसोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर उन हर एक राक्षसोंको पांच पांच बाणोंसे बिद्ध किया ॥ २३ ॥

ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः खरयोनयः ।
विनेदुस्तुमुलान्नादान्दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २४ ॥

खरयोनिवाले राक्षस लोग भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर महाघोर कोलाहल मचाते हुए चारों ओर भागने लगे ॥ २४ ॥

तांस्त्रास्यमानान्भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम् ।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५ ॥

महाबलवान् अलायुध राक्षस अपनी सेनाके राक्षसोंको भीमसे भयभीत होते देख, वेगपूर्वक भीमसेनकी ओर दौडके, उन्हें अपने बाणोंसे छिपाने लगा ॥ २५ ॥

तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः ।
अलायुधस्तु तानस्तान्भीमेन विशिखान्रणे ।
चिच्छेद कांश्चित्समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत् ॥ २६ ॥

तब भीमसेनने भी समरमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अलायुधको क्षतविक्षत किया । अलायुधने भीमसेनके चलाये हुए कितने ही बाणोंको युद्धमें काटके गिराया और कितनेही बाणोंको शीघ्रताके सहित ग्रहण किया ॥ २६ ॥

स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ।
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा ॥ २७ ॥

राक्षसराजको ऐसा पराक्रम करते देखकर भयंकर पराक्रमी भीमसेनने वज्रपातके समान अपनी गदा उठाके वेगपूर्वक अलायुधकी ओर चलायी ॥ २७ ॥

तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ।
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् ॥ २८ ॥

ज्वालासे व्याप्त हुई उस गदाको वेगसे सम्मुख आती देख अलायुधने अपनी गदाको चलाकर भीमसेनकी गदापर प्रहार किया । फिर वह गदा भीमसेनके पास ही लौट आयी ॥ २८ ॥

स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ।
तानप्यस्याकरोन्मोघान्राक्षसो निशितैः शरैः ॥ २९ ॥

अनन्तर कुन्तीपुत्र भीमसेन राक्षसराज अलायुधपर अनगिनत बाणोंकी वर्षा करने लगे, परन्तु उस राक्षसने अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रभावसे भीमसेनके सम्पूर्ण बाणोंकी निष्फल किया ॥ २९ ॥

ते चापि राक्षसाः सर्वे सैनिका भीमरूपिणः ।
शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान् ॥ ३० ॥

उस रात्रिके समय राक्षसराज अलायुधकी आज्ञासे भयंकर रूपवाले संपूर्ण राक्षस लोग पाण्डवोंके रथ और गजसेनाका नाश करने लगे ॥ ३० ॥

पाञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ।
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः ॥ ३१ ॥

उस समय बडे बडे हाथी, घोडे और पाञ्चाल, सृञ्जय आदि योद्धा लोग राक्षसोंके अस्त्रोंसे अत्यंत पीडित होकर युद्धभूमिमें शान्ति न पा सके ॥ ३१ ॥

तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवे ।
अब्रवीत्पुरुषश्रेष्ठो धनंजयमिदं वचः ॥ ३२ ॥

पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण उस महाभयंकर संग्रामके उपस्थित होनेपर अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ ३२ ॥

पश्य भीमं महाबाहो राक्षसेन्द्रवशं गतम् ।
पदवीमस्य गच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! वह देखो, महाबाहु भीमसेन अलायुधके वशमें हो गये हैं, इससे कुछ भी दूसरा विचार न करके तुम भीमसेनकी सहायताके लिये गमन करो ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सहितो द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ॥ ३४ ॥

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु, उत्तमौजा और द्रौपदीके पांच पुत्र– ये सभी महारथी मिलकर कर्ण पर आक्रमण करें ॥ ३४ ॥

नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ।
इतरान्राक्षसान्घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव ॥ ३५ ॥

पाण्डुनन्दन ! पराक्रमी सात्यकि, नकुल और सहदेव ये तुम्हारी आज्ञाके अनुसार अन्य राक्षसोंका नाश करें ॥ ३५ ॥

त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ।
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ॥ ३६ ॥

हे महाबाहु नरश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्यसे रक्षित इस व्यूहबद्ध सेनाके योद्धाओंका तुम स्वयं निवारण करो; क्योंकि इस समय पाण्डवसेना पर महाभय उपस्थित हुआ है ॥ ३६ ॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ।
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चेतरान्रणे ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर वे सब महारथी योद्धा लोग उनकी आज्ञाके अनुसार समरमें वैकर्तन कर्ण और दूसरे राक्षसोंके साथ सामना करनेके लिये गये ॥ ३७ ॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

इतने ही समयके बीच प्रतापी राक्षसराज अलायुधने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड गये विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंसे भीमसेनके धनुषको काट डाला ॥ ३८ ॥

हयांश्चास्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः ।
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य भारत ॥ ३९ ॥

भारत ! उस महा बलवान् अलायुधने युद्धमें भीमसेनके संमुख ही तीक्ष्ण बाणोंसे उनके सारथि और घोडोंको भी मार डाला ॥ ३९ ॥

सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ।
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां स विनद्योत्ससर्ज ह ॥ ४० ॥

घोडे और सारथीके मारे जाने पर भीमसेनने रथसे नीचे उतरकर गर्जते हुए अपनी भारी और भयंकर गदा अलायुध राक्षसकी ओर चलायी ॥ ४० ॥

ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ।
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ॥ ४१ ॥

उस महान् गदाको भयङ्कर शब्दके सहित अपनी ओर आती देख भयङ्कर रूपवाला अलायुध राक्षस अपनी गदाको चलाकर भीमसेनकी गदाको निवारण करके सिंहनाद करने लगा ॥ ४१ ॥

तद्दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ।
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत् ॥ ४२ ॥

उस राक्षसश्रेष्ठ अलायुधके ऐसे महाघोर भयदायक कर्मको देख भीमसेनका हृदय हर्षित हो गया, और उन्होंने तुरंत ही गदा हाथमें ले ली ॥ ४२ ॥

तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं नरराक्षसोः ।
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम् ॥ ४३ ॥

जब इसी भांति उन दोनों मनुष्य और राक्षसोंका तुमुल युद्ध होने लगा, तब गदाओंके टकरानेके खटखट शब्दसे पृथ्वी अत्यंत कांपने लगी ॥ ४३ ॥

गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ।
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः । ॥ ४४ ॥

अनन्तर वे दोनों बीर गदा फेंक एक दूसरेको ग्रहण करके, अपने वज्रपात कीसी आवाज करनेवाले मुक्कोंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ४४ ॥

रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ।
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ॥ ४५ ॥

फिर अत्यंत क्रुद्ध होकर रथके चक्के, जूएं, धुरी, काष्ठ तथा और जो कुछ वस्तु उन दोनोंने अपने समीपमें पाया, वह सब वस्तु उठा उठाके एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥४५॥

तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ।
मत्ताविव महानागावकृष्येतां पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

अनन्तर एक दूसरेको ग्रहण करके मल्लयुद्ध करते हुए मतवाले हाथीकी भांति वारंवार एक एक दूसरेको अपनी ओर आकर्षण करने लगे। उस समय उन दोनों वीरोंके शरीरोंसे लगातर रुधिरकी धारा बहने लगी ॥ ४६ ॥

तमपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ।
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बं प्रत्यचोदयत् ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥ ६८१५ ॥

पाण्डवोंके हितैषी श्रीकृष्णने उन दोनों वीरोंका ऐसा युद्ध देखकर, भीमसेनकी रक्षाके लिये हिडिम्बापुत्र घटोत्कचको भेजा ॥ ४७ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥ ६८१५ ॥

: १५३ :

सञ्जय उवाच

संप्रेक्ष्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं घटोत्कचमिदं तदा ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र युद्धभूमिके बीच भीमसेनको राक्षसके वशमें होते निकटसे देख घटोत्कचसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २ ॥

हे तेजस्वी श्रेष्ठ महाबाहु घटोत्कच ! यह देखो, यह भीमसेन तुम्हारे और सम्पूर्ण सेनाके संमुखमें ही राक्षसके वशमें होगये हैं; ॥ २ ॥

स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात्कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥

इससे तुम इस समय कर्णको त्यागके राक्षसराज अलायुधका शीघ्रतापूर्वक वध करो, पीछे कर्णका नाश करना ॥ ३ ॥

स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ।
तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ॥ ४ ॥

पराक्रमी वीर घटोत्कच वृष्णिनन्दन श्रीकृष्णके ऐसे वचनको सुनकर कर्णको छोडकर बकके भाई राक्षसराज अलायुधके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ; अनन्तर उस रात्रिके समय उन दोनों राक्षसोंका महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥

अलायुधस्य योधांस्तु राक्षसान्भीमदर्शनान् ।
वेगेनापततः शूरान्प्रगृहीतशरासनान् ॥ ५ ॥

इसी समय जब अलायुधकी सेनाके भयानक रूपवाले वीर राक्षस लोग हाथमें धनुष लेकर अत्यंत वेगसे पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

तब अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्ज अत्यंत क्रुद्ध हुए महारथी सात्यकि, नकुल और सहदेवने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण राक्षसोंको काट डाला ॥ ६ ॥

सर्वांश्च समरे राजन्किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रक्षिपञ्शरान् ॥ ७ ॥

राजन् ! इधर किरीटमाली अर्जुन समरमें सब ओर अपने बाणोंको चलाकर कौरवोंके मुख्य मुख्य क्षत्रिय श्रेष्ठोंको मार भगाने लगे ॥ ७ ॥

कर्णश्च समरे राजन्व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन्पाञ्चालानां महारथान् ॥ ८ ॥

वैसे ही सूतपुत्र कर्ण भी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि पाञ्चाल सेनाके महारथी राजाओंको युद्धभूमिमें दूर भगाने लगे ॥ ८ ॥

तान्वध्यमानान्दृष्ट्वा तु भीमो भीमपराक्रमः ।
अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विशिखान्विकिरन्रणे ॥ ९ ॥

महापराक्रमी भीमसेनने उन महारथी वीरोंको युद्धमें कर्णके बाणोंसे पीडित देखकर अपने बाणोंको वर्षाते हुए शीघ्रताके सहित कर्ण पर धावा किया ॥ ९ ॥

ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान्यत्र सूतजः ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
ते कर्णं योधयामासुः पाञ्चाला द्रोणमेव च ॥ १० ॥

इस ही समय सात्यकि, नकुल और सहदेव क्षणभरके बीच राक्षसोंका वध करके जिस स्थान-पर सूतपुत्र कर्ण युद्ध कर रहे थे, उस ही स्थलपर आके उपस्थित हुए। वे तीनों योद्धा कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगे और पाञ्चाल सेनाके योद्धाओंने द्रोणाचार्यका सामना किया ॥ १० ॥

अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिंदमम् ।
परिघेणातिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥

इधर क्रोधित अलायुधने एक बडा परिघ उठाके शत्रुदमन घटोत्कचके मस्तकपर प्रहार किया ॥ ११ ॥

स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः ।
ईषन्मूर्छान्वितोऽऽत्मानं संस्तम्भयत वीर्यवान् ॥ १२ ॥

भीमसेनपुत्र घटोत्कच उस प्रहारसे कुछ मूर्च्छितप्रायसा हो गया, परंतु उस महाबलवान् पराक्रमी वीरने फिर स्वयंको संभाल लिया ॥ १२ ॥

ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम् ।
चिक्षेप समरे तस्मै गदां काञ्चनभूषणाम् ॥ १३ ॥

अनन्तर घटोत्कचने सावधान होकर समरमें प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, एक सौ घण्टियोंसे युक्त सुवर्णभूषित गदाको ग्रहण करके अलायुधकी ओर चलायी ॥ १३ ॥

सा हयान्सारथिं चैव रथं चास्य महास्वना ।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १४ ॥

भयंकर पराक्रमी घटोत्कचके हाथसे वेगपूर्वक छूटी हुई उस गदाने महाघोर शब्दके सहित अलायुधके रथ, घोडे और सारथिको चूर चूर कर दिया ॥ १४ ॥

स भग्नहयचक्राक्षो विशीर्णध्वजकूबरः ।
उत्पपात रथात्तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥ १५ ॥

तब ध्वजा, धुरी, चक्र, घोडे और कुबर रहित अलायुध शीघ्रतासे रथसे राक्षसी मायाका अवलंब करके ऊपरको उड गया ॥ १५ ॥

स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्विभ्राजितं चासीत्तिमिराभ्राकुलं नभः ॥ १६ ॥

वह मायाका आश्रय लेकर बहुत रुधिरकी वर्षा करने लगा । उस समय आकाशमण्डल बादलोंसे परिपूरित होकर अन्धकारसे युक्त हो गया और बिजली चमकने लगी ॥ १६ ॥

ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः ।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्रासीद्धि महाहवे ॥ १७ ॥

उस समय उस महायुद्धमें वज्रका शब्द, बादलोंके गर्जनके साथ विद्युत्की गडगडाहट और महान् चटचट शब्द होने लगे ॥ १७ ॥

तां प्रेक्ष्य विहितां मायां राक्षसो राक्षसेन तु ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बस्तां मायां माययावधीत् ॥ १८ ॥

तब हिडिम्बापुत्र राक्षस घटोत्कचने अलायुध राक्षसकी ऐसी महाघोर मायाको देखकर ऊपर उडकर मुहूर्तभरके बीच अपनी मायासे उसकी मायाको नष्ट कर दिया ॥ १८ ॥

सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि ।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ १९ ॥

मायावी अलायुध राक्षस अपनी मायाको मायासे ही नष्ट होती देख, घटोत्कचके ऊपर शिलाकी भयंकर वर्षा करने लगा ॥ १९ ॥

अश्मवर्षं स तद्घोरं शरवर्षेण वीर्यवान् ।
दिशो विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २० ॥

पराक्रमी घटोत्कच राक्षस सम्पूर्ण दिशाओंको अपने बाणोंसे परिपूरित करके इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगा, कि उससे क्षणभरके बीच शिलाकी वर्षा नष्ट हो गई, उस समय घटोत्कचका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ २० ॥

ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम् ।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥ २१ ॥

अनन्तर वे दोनों वीर एक दूसरेपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । लोहमय परिघ, शूल, गदा, मुसल, मुद्गर, ॥ २१ ॥

पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः ।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः ॥ २२ ॥

पिनाक, करवाल, तोमर, प्रास, कम्पन, नाराच, तेजधारवाले भाले, बाण, चक्र, फरसे, ॥ २२ ॥

अयोगुडैर्भिण्डिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ।
उत्पाट्य च महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः ॥ २३ ॥

लोहेकी गोली, भिन्डिपाल, गोशीर्ष, उलूखल, बडे बडे शाखाओंसे युक्त उखाडे हुए नाना प्रकारके वृक्ष– ॥ २३ ॥

शमीपीलुकरीरैश्च शम्याकैश्चैव भारत ।
इङ्गुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः ॥ २४ ॥

शमी, पीलु, करीर, चम्पा, इंगुद, बदरी, फुले हुए काञ्चन ॥ २४ ॥

पलाशैररिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ।
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २५ ॥

पलाश, अरिमेद, बडे बडे प्लक्ष और पीपल आदि अनेक प्रकारके बडे वृक्षोंसे उस महायुद्धमें वे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २५ ॥

विविधैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ।
तेषां शब्दो महानासीद्वज्राणां भिद्यतामिव ॥ २६ ॥

नाना भांतिकी धातुओंसे युक्त बडे पर्वत शिखरोंसे भी परस्पर प्रहार करते थे; उस समय पर्वत शिखरोंके टकरानेसे वज्रके भेदन होनेके समान महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥२६॥

युद्धं तदभवद्धोरं भैमयलायुधयोर्नृप ।
हरीन्द्रयोर्यथा राजन्वालिसुग्रीवयोः पुरा ॥ २७ ॥

महाराज ! उस समय अलायुध और घटोत्कचका ऐसा वह महाभयंकर संग्राम होने लगा, जैसे पहिले समयमें वानरराज वालि और सुग्रीवका युद्ध हुआ था ॥ २७ ॥

तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा ।
प्रगृह्य निशितौ खड्गावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २८ ॥

इसी भांति वे दोनों नाना भांतिके घोर आयुधों और बाणोंसे युद्ध करके फिर तीक्ष्ण तलवारें ग्रहण करके एक दूसरेसे युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥ २९ ॥

अनन्तर उन दोनों बडे शरीरवाले महाबलवान् राक्षसोंने दौडके एक दूसरेके केशको हाथोंसे ग्रहण किया ॥ २९ ॥

तौ भिन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावभिवृष्टाविवाचलौ ॥ ३० ॥

महाराज ! उस समय उन बडे शरीरवाले राक्षसोंके क्षतविक्षत हुए शरीरोंसे इस प्रकार पसीना और रुधिर बहने लगा, जैसे दो पर्वतोंके ऊपरसे जलकी धारा बहती है ॥ ३० ॥

अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् ।
बलेनाक्षिप्य हैडिम्बश्चकर्तास्य शिरो महत् ॥ ३१ ॥

अनन्तर हिडिम्बापुत्र घटोत्कचने शीघ्रताके सहित अलायुध राक्षसको झपटकर पकड लिया और उसे घुमाकर जोरसे पृथ्वीमें पटक दिया और उसका महान् सिर काट डाला ॥३१॥

×

सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥
उस समय महाबलवान् घटोत्कच उसके कुण्डल शोभित सिरको काटके गंभीर स्वरसे गर्जने लगा ॥ ३२ ॥

हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिंदमम् ।
पाञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३३ ॥
पाञ्चाल और पाण्डव लोग बक राक्षसके विशालकाय शत्रुदमन भाई अलायुध राक्षसको मारा गया देख आनन्दित होके महाघोर सिंहनाद करने लगे ॥ ३३ ॥

ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
अवादयन्पाण्डवेयास्तस्मिन्रक्षसि पातिते ॥ ३४ ॥
उस राक्षसके मारे जानेपर पाण्डव योद्धाओंने सहस्रों नगाडे और हजारों शंख बजाये ॥ ३४ ॥

अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा ।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद्दीपमालिनी ॥ ३५ ॥
चारों ओरसे दीपकोंके प्रकाशसे शोभित वह रात्रि पाण्डवोंके लिये जययुक्त होकर अत्यन्त ही प्रकाशित होने लगी ॥ ३५ ॥

अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः ।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतनम् ॥ ३६ ॥
उसी समय महाबलवान् घटोत्कचने प्राणरहित अलायुध राक्षसके कटे हुए सिरको उठाकर दुर्योधनके संमुख फेंक दिया ॥ ३६ ॥

अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम् ।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥
हे भारत ! राजा दुर्योधन अलायुधको मारा गया देखकर अपनी सेनाके पुरुषोंके सहित अत्यन्त ही व्याकुल हुए ॥ ३७ ॥

तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि ।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
क्योंकि अलायुधने पाण्डवोंकी पुरानी शत्रुताको स्मरण करके सेनाके बीच स्वयं आके दुर्योधनके समीप "मैं युद्धमें भीमसेनका वध करूंगा" ऐसा कहके प्रतिज्ञा कियी थी ॥ ३८ ॥

ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः ।
जीवितं चिरकालाय भ्रातॄणां चाप्यमन्यत ॥ ३९ ॥

उससे राजा दुर्योधनने यह समझा था, कि इसके हाथसे भीमसेन अवश्य ही मारा जावेगा और भीमसेनके मरनेसे भाइयोंके सहित मेरा जीवन बहुत दिनोंतक निर्विघ्नताके सहित बीतेगा ॥ ३९ ॥

स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै ।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥ ६८५५ ॥

परन्तु इस समय भीमसेनपुत्र घटोत्कचके हाथसे अलायुधको ही मरते देखकर दुर्योधनने समझा, कि अब अवश्य ही भीमसेनकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी ॥ ४० ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥ ६८५१ ॥

: १५४ :

सञ्जय उवाच

निहत्यालायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः ।
ननाद विविधान्नादान्वाहिन्याः प्रमुखे स्थितः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! घटोत्कच अलायुध राक्षसका वध करके अत्यंत प्रसन्न हुआ और सेनाके अगाडी स्थित होकर अनेक प्रकारसे सिंहनाद करने लगा ॥ १ ॥

तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत्सुदारुणम् ॥ २ ॥

महाराज ! उस समय हाथियोंको भी कम्पित करनेवाले उसके भयङ्कर शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग अत्यन्त ही भयभीत हुए ॥ २ ॥

अलायुधविषक्तं तु भैमसेनिं महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पाञ्चालानभ्युपाद्रवत् ॥ ३ ॥

इसके पहिले महाबाहु कर्णने भीमसेनपुत्र महाबली घटोत्कचको अलायुधके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त देखकर, पाञ्चाल योद्धाओंपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४ ॥

उस समय कर्णने कानपर्यन्त धनुष खींचके छोडे गये नतपर्व दस दस सुदृढ बाणोंसे धृष्टद्युम्न और शिखण्डीको विद्ध किया ॥ ४ ॥

ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५ ॥

फिर अपने तेज श्रेष्ठ नाराच बाणोंके प्रहारसे युधामन्यु, उत्तमौजा और महारथी सात्यकिको कंपित कर दिया ॥ ५ ॥

तेषामभ्यस्यतां तत्र सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६ ॥

राजन् ! वैसे ही जब वे पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण महारथी योद्धा लगातार कर्णके ऊपर अपने दांयी बायीं ओरसे बाणोंको बर्षाने लगे, तब उस समय केवल मण्डलाकार गतिसे घूमते हुए उन महारथियोंके धनुष ही दीख पडते थे ॥ ६ ॥

तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥ ७ ॥

उस रात्रिके समय उन महारथियोंकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कार और रथके चक्रकी घरघराहटका शब्द वर्षाकालके बादलोंके गर्जनेकी भांति भयंकर लगता था ॥ ७ ॥

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान्वै धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः ।
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च संग्राममेघः स बभूव राजन् ॥ ८ ॥

राजन् ! इसी भांति धनुषटंकार और पहियोंकी घरघराहटका शब्द बादलका गर्जन, ध्वजा-पताकाका अग्रभाग बादलका ऊंचा शिखर और शूरवीरोंके धनुष बिजली, बाणोंका चलना ही जलकी वर्षा और वह युद्ध ही वर्षाकालीन मेघमण्डलरूपी बोध होने लगा ॥ ८ ॥

तदुद्धतं शैल इवाप्रकम्प्यो वर्षं महच्छैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९ ॥

नरेन्द्र ! परन्तु महापर्वतके समान बलवान्, निर्भय स्वभाववाले शत्रुनाशन वैकर्तन कर्णने उन सम्पूर्ण महारथियोंकी बाणवर्षाको समरमें क्षण भरके बीच नष्ट कर दिया ॥ ९ ॥

ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः शितैः शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः ।
शत्रून्व्यपोहत्समरे महात्मा वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १० ॥

अनन्तर महात्मा कर्ण तुम्हारे पुत्रके हितकी अभिलाष करके वज्रपातके समान वेगगामी, सुवर्ण चित्रित पङ्खयुक्त अतुलनीय चोखे बाणोंसे शत्रुओंका नाश करने लगे ॥ १० ॥

संछिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः ।
केचिद्विसूता विहयाश्च केचिद्वैकर्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११ ॥

उस समय मुहूर्त्त भरके बीच कर्णने शीघ्रही किन्हींकी ध्वजाके टुकडे कर दिये, किन्हींके शरीर बाणोंसे पीडित करके क्षत–विक्षत कर दिये, किन्हींके सारथि और घोडे नष्ट कर दिये ॥ ११ ॥

अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये यौधिष्ठिरं ते बलमन्वपद्यन् ।
तान्प्रेक्ष्य भग्नान्विमुखीकृतांश्च घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२ ॥
और कितने ही योद्धा कर्णके सम्मुख युद्धभूमिमें खडे भी न हो सके, वे सब कोई अन्तमें वहांसे भागकर युधिष्ठिरकी सेनामें जा घुसे । घटोत्कच अपनी ओरके सम्पूर्ण योद्धाओंको तितर बितर और युद्धसे विमुख होकर भागते देख अत्यन्त ही क्रुद्ध हुआ ॥ १२ ॥

आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंह इवोन्ननाद ।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३ ॥
और वह सुवर्ण और रत्न–चित्रित अपने उत्तम रथ पर चढके महाघोर सिंहनाद करते हुए कर्णके समीप जाके उन्हें वज्रके समान तीक्ष्ण बाणोंसे बिद्ध करने लगा ॥ १३ ॥

तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च नालीकदण्डैश्च सवत्सदन्तैः ।
वराहकर्णैः सविषाणशृङ्गैः क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥
अनन्तर उन दोनों वीरोंने कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विषाणशृंग, क्षुरप्र आदि की वर्षा करके अपनी गर्जनासे आकाशमण्डलको परिपूरित कर दिया ॥ १४ ॥

तद्बाणधाराचृतमन्तरिक्षं तिर्यग्गताभिः समरे रराज ।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभिर्विचित्रपुष्पाभिरिव स्रजाभिः ॥ १५ ॥
समरमें वे सम्पूर्ण स्वर्ण पङ्खवाले बाण जब तिरछी दिशामें फैलनेवाली उज्ज्वल प्रभाओंसे आकाशमें परिपूरित होगये, उस समय आकाशमण्डल विचित्र पुष्पमालाओंसे युक्त हुएकी भांति शोभित होने लगा ॥ १५ ॥

समं हि तावप्रतिमप्रभावावन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्ददर्श तस्मिन्समरे विशेषम् ॥ १६ ॥
अत्यन्त बल और पराक्रमसे युक्त जब वे दोनों वीर युद्धभूमिमें स्थित होकर अपने उत्तम शस्त्रोंसे युद्ध करके एक दूसरेको विद्ध करने लगे, उस समय उन दोनों वीरोंमेंसे कोई भी युद्धमें अपनी विशेषता न दिखा सका ॥ १६ ॥

अतीव तच्चित्रमतीव रूपं बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं दिवीव राहंशुमतोः प्रतप्तम् ॥ १७ ॥
उस समय आकाशस्थित राहु और सूर्यके मत्त समागमकी भांति सूर्यपुत्र कर्ण और भीमसेन पुत्र घटोत्कच राक्षसके शस्त्रोंकी खटपटाहटसे परिपूरित सम्पूर्ण प्राणियोंको दुःखित करनेवाला अत्यन्त भयङ्कर अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ १७ ॥

घटोत्कचो यदा कर्णं न विशेषयते नृप ।
तदा प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८ ॥

राजन् ! अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ घटोत्कच जब किसी प्रकार भी कर्णसे अधिक न हो सका तब उसने एक भयङ्कर अस्त्र प्रकट किया ॥ १८ ॥

तेनास्त्रेण हयान्पूर्वं हत्वा कर्णस्य राक्षसः ।
सारथिं चैव हैडिम्बः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

उस अस्त्रसे घटोत्कचने पहले कर्णके घोडोंको और सारथिको मार डाला, फिर शीघ्रही हिडिम्बापुत्र अदृश्य होगया ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथा ह्यन्तर्हिते तस्मिन्कूटयोधिनि राक्षसे ।
मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २० ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले- हे सञ्जय ! जब वह मायायुद्ध करनेवाला राक्षस अन्तर्द्धान हुआ, उस समय मेरे पुत्रोंने जिस कार्यका अनुष्ठान किया था, वह वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ २० ॥

संजय उवाच

अन्तर्हितं राक्षसं तं विदित्वा संप्राक्रोशन्कुरवः सर्व एव ।
कथं नायं राक्षसः कूटयोधी हन्यात्कर्णं समरेऽदृश्यमानः ॥ २१ ॥

सञ्जय बोले- महाराज ! सब कौरव लोग राक्षसराज घटोत्कचको अदृश्य हुआ जानकर चिल्लाकर आपसमें कहने लगे, यह कूटयोधी राक्षस रणभूमिमें स्वयं दिखाई नहीं देता है, तब कर्णका वध कैसे नहीं करेगा ? ॥ २१ ॥

ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी सर्वा दिशो ह्यावृणोद्बाणजालैः ।
न वै किञ्चिद्व्यापतत्तत्र भूतं तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२ ॥

अनन्तर अत्यन्त हस्तलाघवके सहित विचित्र युद्ध करनेवाले कर्णने अपने अनगिनत बाणोंको चलाकर सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित करके आकाशको अन्धकारमय कर दिया; आकाशमें बाणोंसे अंधेरा होनेपर भी वहां कोई प्राणी ऊपरसे गिरा नहीं ॥ २२ ॥

न चाददानो न च संदधानो न चेषुधी स्पृशमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद्वै लाघवात्सूतपुत्रः सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३ ॥

इसी प्रकार जब सूर्यपुत्र कर्ण हस्तलाघवके सहित लगातार बाणोंको चारों ओर वर्षा कर संपूर्ण आकाशको आच्छादित कर रहे थे, तब उन्हें बाण ग्रहण करते, साधते, छोडते और अपने हाथकी अंगुलियोंसे तूणीरसे निकालते हुए कोई पुरुष भी न देख सके ॥ २३ ॥

ततो मायां विहितामन्तरिक्षे घोरां भीमां दारुणां राक्षसेन ।
संपश्यामो लोहिताभ्रप्रकाशां देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥
अनन्तर राक्षस घटोत्कचने आकाशमें अत्यन्त भयंकर महाघोर माया उत्पन्न की, उस समय हम लोग अग्निशिखाके समान प्रकाशमान लालवर्णवाले बादलोंके समान दीखनेवाली उस मायाको देखने लगे ॥ २४ ॥

ततस्तस्या विद्युतः प्रादुरासन्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चान्यः प्रादुरासीत्सुघोरः सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥ २५ ॥
कौरवेन्द्र ! उस मायाके बीचसे बार बार सैकडों लुक और बिजली प्रकट होके जलती हुई प्रकाशित होने लगीं; फिर सहस्रों नगाडोंके शब्दके समान उससे महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ २५ ॥

ततः शराः प्रापतन्रुक्मपुङ्खाः शक्त्यः प्रासा मुसलान्यायुधानि ।
परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः प्रदीप्ताग्राः पट्टिशातोमराश्च ॥ २६ ॥
अनन्तर स्वर्णपंखवाले अनगिनत बाण, शक्ति, प्रास, मुषल आदि आयुध, शिकल किये हुए फरशे, प्रकाशमान तलवार, तेज धारवाले तोमर, पट्टिश ॥ २६ ॥

मयूखिनः परिघा लोहबद्धा गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः ।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः शतघ्न्यश्च प्रादुरासन्समन्तात् ॥ २७ ॥
प्रकामान परिघ, लोहेसे बंधी विचित्र गदा, तीक्ष्ण धारवाले शूल, सुवर्णभूषित भारी गदाएं और शतघ्नियां चारों और प्रकट होने लगीं ॥ २७ ॥

महाशिलाश्चापतंस्तत्र तत्र सहस्रशः साशनयः सवज्राः ।
चक्राणि चानेकक्षतक्षुराणि प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥
सब जगह महान् शिलाएं गिरने लगीं; बिजालियों सहित वज्र पडने लगे, अग्निके समान प्रज्वलित अनगिनत चक्र और सैकडों क्षुरोंका प्रादुर्भाव होने लगा ॥ २८ ॥

तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९ ॥
अग्निशिखाकी भांति जब प्रकाशमान भयानक शक्ति, पत्थर, फरशे, प्रास, खड्ग, बिजली, वज्र और मुद्गर आदि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, तब कर्ण उसे अपने बाणोंसे नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ २९ ॥

शराहतानां पततां हयानां वज्रहतानां पततां गजानाम् ।
शिलाहतानां च महारथानां महान्निनादः पततां बभूव ॥ ३१ ॥
उस समय बाणोंसे घोडे, वज्रास्त्रसे हाथी और पत्थरोंकी वर्षासे गिरते हुए शूरवीर महारथी योद्धाओंका महाघोर आर्त्तनाद शब्द सुनाई देने लगा ॥ ३० ॥

सुभीमनानाविधशस्त्रपातैर्घटोत्कचेनाभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं तद्बलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रमन्तम् ॥ ३१ ॥

घटोत्कचके अत्यंत घोर और नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित होकर दुर्योधनकी सेना चारों ओर घूमती और भ्रमण करती दिखायी देने लगी ॥ ३१ ॥

हाहाकृतं संपरिवर्तमानं संलीयमानं च विषण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावात्पुरुषप्रवीराः पराङ्मुखा न बभूवुस्तदानीम् ॥ ३२ ॥

उस समय तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग विषण्ण होकर चारों ओर दौडते और हाहाकार करते हुए छिपने लगे; परन्तु पुरुषसिंह महारथी योद्धा लोग वीर-धर्मको स्मरण करके युद्धभूमिमें किसी प्रकार भी पीछे न हटे ॥ ३२ ॥

तां राक्षसीं घोरतरां सुभीमां वृष्टिं महास्त्रमयीं पतन्तीम् ।
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्महद्भयं तव पुत्रानिवेश ॥ ३३ ॥

तुम्हारे पुत्र लोग राक्षस घटोत्कचके महाघोर भयङ्कर बडे बडे अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षासे अपनी सेनाके पुरुषोंका नाश होते देख अत्यंत ही भयभीत हुए ॥ ३३ ॥

शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः सुभीमनादाः शतशो नदन्त्यः ।
रक्षोगणान्नर्दतश्चाभिवीक्ष्य नरेन्द्रयोधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४ ॥

अनन्तर जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान जीभ निकाले हुए सैकडों सियार भयङ्कर डरावनी बोली बोलने लगे । राक्षस लोग गर्जने लगे; उसे देखके तुम्हारी सेनाके नरश्रेष्ठ योद्धा लोग अत्यन्तही कातर हुए ॥ ३४ ॥

ते दीप्तजिह्वाननतीक्ष्णदंष्ट्रा विभीषणाः शैलनिकाशकायाः ।
नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता मेघा व्यसृजन्निव वृष्टिमार्गम् ॥ ३५ ॥

वे प्रज्वलित जिह्वासे अग्नि निकालनेवाले तीक्ष्ण दाढोंसे युक्त, पर्वतके समान शरीर धारण किये हुए भयंकर राक्षस लोग हाथमें शक्ति ग्रहण करके आकाशमें जाकर जलवर्षा करनेवाले बादलोंकी भांति तुम्हारी सेनाके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे वर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलैर्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैश्चक्रैः शतघ्न्युन्मथिताश्च पेतुः ॥ ३६ ॥

उस समय बाण, शक्ति, शूल, गदा, प्रकाशमान भयंकर परिघ, वज्र, पिनाक, बिजली, चक्र और शतघ्नी आदि अस्त्र शस्त्रोंकी चोटसे मथित होकर कौरव योद्धा लोग मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ३६ ॥

हुडा भुशुण्डयोऽश्मगुडाः शतघ्न्यः स्थूणाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः ।
अवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं तथा रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥

वे राक्षस हुड, भुशुण्डी, पत्थरोंके गोले, शतघ्नी और लोहमय स्थूण आदि अस्त्र शस्त्र तुम्हारे पुत्रकी सेनाके ऊपर गिराने लगे; इस कारण तुम्हारे सैनिक भयंकर मोहित हो गये ॥ ३७ ॥

निष्कीर्णान्त्रा विहतैरुत्तमाङ्गैः संभग्नाङ्गाः शेरते तत्र शूराः ।
भिन्ना हयाः कुञ्जराश्चावभग्नाः संचूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥

उस समय पत्थरोंके प्रहारसे तुम्हारी सेनाके लोगोंके सिर कुचल गये, अंग भंग हो गये, आंतें बाहर आकर बिखर गयी और वे पृथ्वीपर मरे पडे हुए थे । इसी प्रकार हाथी और घोडे भग्न हो गये और रथ चूर चूर हो गये ॥ ३८ ॥

एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्तस्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः ।
मायाः सृष्टास्तत्र घटोत्कचेन नामुञ्चन्वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९ ॥

घटोत्कचकी मायासे भयंकर रूप धारण करके इस पृथ्वीपर प्रकट हुए उन राक्षसोंने बडी भारी अनेक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की; वे प्राणोंकी प्रार्थना करनेवाले और भयभीत आदि किसी पुरुषको भी नहीं छोडते थे ॥ ३९ ॥

तस्मिन्घोरे कुरुवीरावमर्दे कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ।
ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥

यह घोर संग्राम कौरव-वीरोंका नाश करनेवाला था; मानो क्षत्रियोंको नष्ट करनेके लिये प्रत्यक्ष कालनेही किया था; उस समय युद्धभूमिसे सहसा भागते हुए कौरव योद्धा लोग भग्न होकर चिल्लाते हुए यह वचन कहने लगे- ॥ ४० ॥

पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।
तथा तेषां मज्जतां भारतानां न स्म द्वीपस्तत्र कश्चिद्बभूव ॥ ४१ ॥

हे कौरव लोगो ! भागो ! आज पाण्डवोंकी सहायता करनेकी इच्छासे इन्द्र आदिक देवता लोग अवश्य ही हम लोगोंकी सेनाके पुरुषोंका नाश कर रहे हैं, आज कोई भी जीता न बचेगा, इससे तुम लोग युद्धभूमिसे भाग कर पृथक् हो जाओ । ऐसे ही वचन कहके तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग महाघोर शब्दसे कोलाहल मचाते हुए वेगपूर्वक भागने लगे । इस प्रकार विपद सागरमें डूबते हुए कौरवोंके लिये उस समय कोई भी द्वीपके समान आश्रयदाता नहीं बना ॥ ४१ ॥

×

तस्मिन्संक्रन्दे तुमुले वर्तमाने सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकानां प्रविभागेऽप्रकाशे न ज्ञायन्ते कुरवो नेतरे वा ॥ ४२ ॥
उस भयङ्कर तुमुल संग्रामके समय जब कुरुसेना भागकर छिप गयी तथा व्यूह भङ्ग हो गया; तब कौरव और पाण्डव योद्धा वीर पहचाने नहीं जाते थे ॥ ४२ ॥

निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं कर्णं चैकं तत्र राजन्नपश्यम् ॥ ४३ ॥
राजन् ! उस अमर्याद भयङ्कर हलचलके समय हम लोगोंने सब दिशाओंको सूनी देखा तथा अकेले सूर्यपुत्र कर्णको ही उन सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र और बाणोंकी वर्षाको निर्भयचित्तसे अपने वक्षस्थल पर धारण करते देखा ॥ ४३ ॥

ततो बाणैरावृणोदन्तरिक्षं दिव्यां मायां योधयन्राक्षसस्य ।
ह्रीमान्कुर्वन्दुष्करमार्यकर्म नैवामुह्यत्संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४ ॥
ऐसे अवसरमें युद्धमें तेजस्वी सूतपुत्र कर्ण तनिक भी मोहित नहीं हुए; परंतु वीर–धर्मको स्मरण करके कठिन कार्य करनेकी इच्छासे राक्षसी मायाको नष्ट करनेके लिये आकाशको अपने दिव्य बाणोंसे परिपूरित कर दिया ॥ ४४ ॥

ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं राजन्सर्वे सैन्धवा बाह्लिकाश्च ।
असंमोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये संपश्यन्तो विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥
राजन् ! उस समय सिन्धु और बाह्लीक देशीय योद्धा लोग युद्धमें घटोत्कच राक्षसकी विजय देखकर भी कर्णके मोहित न होनेपर उसकी प्रशंसा करते हुए उसकी ओर भयभीत होकर देखने लगे ॥ ४५ ॥

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥
उस ही समय घटोत्कचकी चलायी हुई चक्रयुक्त एक शतघ्नी अकस्मात् सूतपुत्र कर्णके घोडोंके ऊपर गिरी और उसके प्रहारसे कर्णके रथके चारों घोडे प्राणरहित होकर धरतीपर घुटने टेककर दांत, आंख और जीभ बाहर निकालके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ४६ ॥

ततो हताश्वादवरुह्य वाहादन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने नैवामुह्यच्चिन्तयन्प्राप्तकालम् ॥ ४७ ॥
अनन्तर घटोत्कच मायाके प्रभावसे बार बार कर्णके दिव्य अस्त्रोंको निष्फल करने लगा; और उसके अस्त्रोंके प्रभावसे कुरुसेनाके योद्धा लोग भागने लगे ! तब कर्ण शीघ्रताके सहित घोडोंसे रहित रथसे उतरे और एकाग्र मन करके सोचने लगे; पर घटोत्कचकी माया तथा अस्त्रोंसे कर्ण तनिक भी मोहित न होकर उस समयके अनुसार कर्तव्य कार्यके विषयमें विचार करने लगे ॥ ४७ ॥

ततोऽब्रुवन्कुरवः सर्व एव कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ।
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ॥ ४८ ॥

इसी समय सभी कौरव लोग राक्षस घटोत्कचकी भयङ्कर माया देखकर कर्णसे बोले, हे कर्ण ! आज ये धृतराष्ट्रके पुत्र और कौरवोंकी सेनाके सम्पूर्ण लोगोंका नाश होता जा रहा है, इससे अब तुम इन्द्रकी दी हुई उसी अमोघ शक्तिसे इस राक्षसका वध करो ॥ ४८ ॥

करिष्यतः किं च नो भीमपार्थौ तपन्तमेनं जहि रक्षो निशीथे ।
यो नः संग्रामाद्घोररूपाद्विमुच्येत्स नः पार्थान्समरे योधयेत ॥ ४९ ॥

भीमसेन और अर्जुन हम लोगोंका क्या कर सकेंगे ? तुम इस रात्रिके समय सम्पूर्ण सेनाको पीडित करनेवाले इस पापी राक्षसका नाश करो । हम लोगोंके बीचसे जो पुरुष इस भयङ्कर महासंग्रामसे जीवित बचेगा वह अवश्य ही पृथापुत्रोंके सङ्ग युद्ध करनेमें समर्थ होगा ॥ ४९ ॥

तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं जहि शक्त्या दत्तया वासवेन ।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा रात्रीमुखे कर्ण नेशुः सयोधाः ॥ ५० ॥

हे कर्ण ! इन्द्रके समान पराक्रमी कौरव लोगोंका सम्पूर्ण योद्धाओंके सहित रात्रियुद्धमें नाश न हो जायँ, इस लिये तुम इसी समय इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्तिसे इस भयङ्कर मूर्तिवाले राक्षसका वध करो ॥ ५० ॥

स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे दृष्ट्वा राजन्नश्यमानं बलं च ।
महच्च श्रुत्वा निनदं कौरवाणां मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१ ॥

राजन् ! कर्णने उस रात्रिके समय कुरुसेनाके सम्पूर्ण पुरुषोंको भयभीत देख, कौरवोंके आर्त-नादको सुनकर तथा स्वयं भी घटोत्कचके अस्त्रोंसे पीडित होके इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्तिको चलानेकी इच्छा की ॥ ५१ ॥

स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी नामर्षयत्प्रतिघातं रणे तम् ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२ ॥

सिंहकी भांति अत्यंत अमर्षशील क्रोधित सूर्यपुत्र कर्णने घटोत्कचके द्वारा अपने अस्त्रोंका प्रतिघात सहन नहीं किया । उन्होंने घटोत्कच राक्षसके वधकी अभिलाषा करके सम्पूर्ण प्राणियोंसे भी असह्य उस उत्तम वैजयन्ती महा अमोघशक्तिको ग्रहण किया ॥ ५२ ॥

यासौ राजन्निहिता वर्षपूगान्वधायाजौ सत्कृता फल्गुनस्य ।
यां वै प्रादात्सूतपुत्राय शक्रः शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥ ५३ ॥

महाराज ! सूतपुत्र कर्णने जिस शक्तिको कई वर्षपर्यन्त आदरपूर्वक युद्धमें अर्जुनके वधके लिये रक्खा था, जिस श्रेष्ठ अमोघ शक्तिको पहिले देवराज इन्द्रने कर्णको प्रदान किया था और उन्होंने जिस प्रकाशमान अमोघ शक्तिको गर्भसे ही उत्पन्न हुए अपने अभेद कवच कुण्डलोंके पलटेमें इन्द्रसे पाया था ॥ ५३ ॥

तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां पाशैर्युक्तामन्तकस्येव रात्रिम् ।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां वैकर्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ ५४ ॥

मृत्युकी सगी बहिनके समान भयङ्करी तथा जलते हुए लुककी भांति प्रकाशमान, यमराजके पाशसे युक्त कालरात्रि स्वरूपिणी और अग्निके समान तेजस्विनी उस महाघोर अमोघशक्तिको सूर्यपुत्र कर्णने इस समय बलपूर्वक घटोत्कचके वधके निमित्त उसकी ओर चलाया ॥ ५४ ॥

तामुत्तमां परकायापहन्त्रीं दृष्ट्वा सौतेर्बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् ।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्कृत्वात्मानं विन्ध्यपादप्रमाणम् ॥ ५५ ॥

महाराज ! राक्षस घटोत्कच दूसरेके शरीरको विदारण करनेवाली इन्द्रकी दी हुई अग्निकी भांति प्रज्वलित उस उत्तम अमोघ शक्तिको कर्णके हाथमें देखते ही भयभीत होकर विन्ध्य पर्वतके समान शरीर धारण करके भाग चला ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र ।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्सनिर्घाता चाशनिर्गां जगाम ॥ ५६ ॥

नरेन्द्र ! कर्णके हाथमें स्थित उस अमोघ शक्तिको देखते ही आकाशवासी सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होकर हाहाकार शब्दके सहित चिल्लाते हुए कांपने लगे । उस समय प्रचंड वायु अत्यन्त ही वेगपूर्वक बहने लगी और भयंकर गडगडाहटके सहित पृथ्वीपर वज्रपात हुआ ॥ ५६ ॥

सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य ।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविशन्ती ॥ ५७ ॥

इतने ही समयमें कर्णकी चलाई हुई जलती अग्निकी भांति वह अमोघशक्ति संपूर्ण राक्षसी मायाको भस्म करके घटोत्कचके हृदयको विदारण करती हुई रात्रिके समय प्रकाशित होके ऊपरको चली गयी और नक्षत्रमण्डलमें प्रविष्ट होकर विलीन हो गयी ॥ ५७ ॥

युद्ध्वा चित्रैर्विविधैः शस्त्रपूगैर्दिव्यैर्वीरो मानुषै राक्षसैश्च ।
नदन्नादान्विविधान्भैरवांश्च प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या ॥ ५८ ॥

महावीर घटोत्कच राक्षसने अनेक भांतिके विचित्र दिव्य अस्त्रशस्त्र तथा मायासे मनुष्य और राक्षसोंके संग युद्ध करके, विविध प्रकारके घोर आर्तनाद करके अन्तमें वीरनाद शब्दके सहित युद्ध करके इन्द्रकी दी हुई कर्णके भुजासे छूटी हुई अमोघशक्तिसे अपने प्रिय प्राणको परित्याग किया ॥ ५८ ॥

इदं चान्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय ।
तस्मिन्काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा बभौ राजन्मेघशैलप्रकाशः ॥ ५९ ॥

राजन् ! उस समय अमोघशक्तिके प्रहारसे सम्पूर्ण मर्मस्थल विदारित होने पर भी, शत्रुओंका नाश करनेके लिये उसने यह दूसरा अत्यन्त आश्चर्यमय और विचित्र कर्म किया; वह अपना शरीर बढाकर पर्वत और बादलकी भांति प्रकाशित होने लगा ॥ ५९ ॥

ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुः स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः ।
अवाक्शिराः स्तब्धगात्रो विजिह्वो घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार महान् रूप धारण करके विदीर्ण शरीरवाला राक्षसराज घटोत्कच नीचे सिर करके प्राणरहित होकर आकाशसे पृथ्वीपर गिर पडा; उस समय उसका शरीर अकड गया था और जीभ बाहर निकल आयी थी ॥ ६० ॥

स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात ।
हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेशमपोथयत्कौरवान्भीषयाणः ॥ ६१ ॥

महाराज ! भयंकर कर्म करनेवाला भीमसेनपुत्र घटोत्कच अपना वह भयंकर रूप धारण करके नीचे गिरा; इस प्रकार मरकर भी उसने अपने शरीरसे तुम्हारी सेनाको भयभीत करके, उस सेनाके एक भागको कुचलकर मार डाला ॥ ६१ ॥

ततो मिश्राः प्राणदन्सिंहनादैर्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चानकाश्च ।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन्कौरवेयाः ॥ ६२ ॥

अनन्तर कौरव लोग राक्षसी मायाको भस्म हुई और घटोत्कचको मरते देख, आनन्दित होके सिंहनाद करने लगे। अनन्तर तुम्हारी सेनाके पुरुषोंके सिंहनादके सङ्ग मिलकर बहुतसे शंख, भेरी, ढोल, झांझ और नगाडे आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंके शब्द सुनाई देने लगे ॥ ६२ ॥

ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः ।
अन्वारूढस्तव पुत्रं रथस्थं हृष्टश्चापि प्राविशत्स्वं स सैन्यम् ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥ ६९१८ ॥

॥ समाप्तं घटोत्कचवधपर्व ॥

जैसे वृत्रासुरवधके समयमें देवराज इन्द्र देवताओंसे पूजित हुए थे; इस समय कर्ण भी उसी भांति कौरवोंसे पूजित और सत्कृत होकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके रथमें बैठकर बडे हर्षसे अपनी सेनाके बीच जाकर विराजमान हुए ॥ ६१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ घटोत्कचवधपर्व समाप्त ॥ १५४ ॥ ६९१८ ॥

१५५

सञ्जय उवाच

हैडिम्बं निहतं दृष्ट्वा विकीर्णमिव पर्वतम् ।
पाण्डवा दीनमनसः सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! जैसे पर्वत वज्रकी चोटसे टुकडे टुकडे होकर गिर पडता है, वैसे ही हिडिम्बापुत्र घटोत्कचको अमोघशक्तिसे मारा गया देख, सब पाण्डवोंके आंखोंमें शोकके आंसू भर आये ॥ १ ॥

वासुदेवस्तु हर्षेण महताभिपरिप्लुतः ।
ननाद सिंहवन्नादं व्यथयन्निव भारत ।
विनद्य च महानादं पर्यष्वजत फल्गुनम् ॥ २ ॥

भारत ! परन्तु वासुदेवनन्दन श्रीकृष्ण अत्यन्त हर्षके सहित आनन्दित होकर सिंहके समान व्यथित करते हुएसे गर्जने लगे; फिर महान् सिंहनाद करके उन्होंने अर्जुनको आलिङ्गन किया ॥ २ ॥

स विनद्य महानादमभीशून्संनियम्य च ।
ननर्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥

उस समय श्रीकृष्ण घोडोंकी रास खींचके सिंहनाद करते हुए आनन्दित होके इस प्रकार नाचने लगे, जैसे वायुके चलनेसे वृक्षके पत्ते हिलते हुए नृत्य करने लगते हैं ॥ ३ ॥

ततो विनिर्भ्राम्य पुनः पार्थमास्फोट्य चासकृत् ।
रथोपस्थगतो भीम प्राणदत्पुनरच्युतः ॥ ४ ॥

अनन्तर घूमकर फिर अर्जुनकी वारंवार पीठ ठोंककर, रथपर स्थित श्रीकृष्ण फिर वार वार ताली बजाके अत्यन्त गम्भीर स्वरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ४ ॥

प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलम् ।
अब्रवीदर्जुनो राजन्नातिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥

राजन् ! अर्जुन महाबली श्रीकृष्णको अत्यन्त ही आनन्दित जानकर दुःखितचित्तसे यह वचन बोले ॥ ५ ॥

अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन ।
शोकस्थाने परे प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन वै ॥ ६ ॥

हे मधुसूदन श्रीकृष्ण ! हिडिम्बापुत्र घटोत्कचके मरनेसे आज हमारी सेनाके पुरुषोंको अत्यंत शोक हुआ है; परन्तु तुम्हें इस अनुचित समयमें भी अधिक हर्ष उत्पन्न हो रहा है ॥ ६ ॥

विमुखानि च सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् ।
वयं च भृशमाविग्ना हैडिम्बस्य निपातनात् ॥ ७ ॥

देखिये, घटोत्कचको मरा हुआ देखकर हमारी सम्पूर्ण सेनाएं युद्धभूमिसे भाग रही हैं; हिडिम्बापुत्रके मरनेसे हम लोग भी अत्यन्त ही व्याकुल हो रहे हैं ॥ ७ ॥

नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन ।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८ ॥

हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! मुझे मालूम होता है, कि इस विषयमें कोई विशेष कारण होगा। जो हो, तुम सत्यवादियोंमें अग्रगण्य हो, इससे मैं पूंछता हूं– तुम इस विषयको यथार्थरूपसे वर्णन करो ॥ ८ ॥

यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिंदम ।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥

हे शत्रुदमन मधुसूदन ! यदि यह विषय छिपाने योग्य न हो, तो तुम अपने इस कारणको प्रकट करके वर्णन करो। क्योंकि तुम्हारे इस प्रसन्नतासे आज हमारा धीरज च्युत हो रहा है ॥ ९ ॥

समुद्रस्येव संक्षोभो मेरोरिव विसर्पणम् ।
तथैतल्लाघवं मन्ये तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥

जनार्दन ! जैसे समुद्रका सूखना और सुमेरु पर्वतका कांपना आश्चर्यकी बात है, वैसे ही तुम्हारा यह लीलारूपी कर्म मैं आश्चर्यकारक मानता हूं ॥ १० ॥

वासुदेव उवाच

अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनंजय ।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन ! मेरे एकबारगी चित्त अत्यंत प्रसन्न होनेका समय प्राप्त हुआ है, इसका कारण तुम मुझसे सुनो। मुझे अत्यंत आनन्दित करनेवाला उत्तम कारण यह है– ॥ ११ ॥

शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते ।
कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनंजय ॥ १२ ॥

हे महातेजस्वी अर्जुन ! आज घटोत्कचके मरनेसे कर्ण इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिसे रहित हो गया; इससे अब तुम युद्धमें कर्णको शीघ्र ही मरा हुआ ही समझ रक्खो ॥ १२ ॥

शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह ।
य एनमभितस्तिष्ठेत्कार्त्तिकेयमिवाहवे ॥ १३ ॥

दूसरे स्वामी कार्त्तिककी भांति कर्ण यदि युद्धभूमिके बीच हाथमें इन्द्रकी अमोघशक्ति लेकर खडा होवे, तो इस पृथ्वीके बीच ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, जो कर्णके सम्मुख खडे होनेमें समर्थ हो सके ॥ १३ ॥

दिष्ट्यापनीतकवचो दिष्ट्यापहृतकुण्डलः ।
दिष्ट्या च व्यंसिता शक्तिरमोघास्य घटोत्कचे ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे प्रारब्धसे ही कर्णका दिव्य कवच उतर गया और उसके कुण्डल छीने गये; और इस समय भी तुम्हारे प्रारब्धसे ही उसने अपनी अमोघशक्तिको घटोत्कचके ऊपर चलाया है और इस कारण वह उसके हाथसे निकल गयी ॥ १४ ॥

यदि हि स्यात्सकवचस्तथैव च सकुण्डलः ।
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद्बली ॥ १५ ॥

यदि यह बलवान् कर्ण अभेद कवच और कुण्डलोंसे संपन्न होता, तो वह अकेला ही देवताओंके सहित तीनों लोकोंको जीत सकता ॥ १५ ॥

वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः ।
यमो वा नोत्सहेत्कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥

इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमराज ये कोई भी रणभूमिके बीच कर्णके विरुद्ध सामना करनेमें समर्थ न हो सकते ॥ १६ ॥

गाण्डीवमाययस्य भवांश्चक्रं चाहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथायुक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥

तुम गाण्डीव धनुष लेकर और मैं सुदर्शनचक्र ग्रहण करके मिलकर भी युद्धमें कवच–कुण्डलोंसे युक्त इस पुरुष श्रेष्ठ कर्णको नहीं जीत सकते ॥ १७ ॥

त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायया हृतकुण्डलः ।
विहीनकवचश्चायं कृतः परपुरंजयः ॥ १८ ॥

पहिले देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितके लिये शत्रुनगरी पर विजय पानेवाले कर्णके कुण्डलोंको मायासे हर लिये और उसको कवचसे भी रहित किया ॥ १८ ॥

उत्कृत्य कवचं यस्मात्कुण्डले विमले च ते ।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥

कर्णने देवराज इन्द्रको कवच और उन विमल कुण्डलोंको अपने शरीरसे निकाल कर स्वयं प्रदान किया था, इसीसे वह पृथ्वीके बीच वैकर्तन नामसे विख्यात हुआ है ॥ १६ ॥

आशीविष इव क्रुद्धः स्तम्भितो मन्त्रतेजसा ।
तथाद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवानलः ॥ २० ॥

परन्तु इस समय शक्तिसे रहित हुआ कर्ण मन्त्रके तेजके प्रभावसे स्तम्भित क्रोधी विषधर सर्प और शिखारहित अग्निकी भांति आज मुझे प्रतीत हो रहा है ॥ २० ॥

यदा प्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना ।
वासवेन महाबाहो प्राप्ता यासौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥
कुण्डलाभ्यां निमायाथ दिव्येन कवचेन च ।
तां प्राप्यामन्यत वृषा सततं त्वां हतं रणे ॥ २२ ॥

हे महाबाहु अर्जुन ! जबसे महात्मा इन्द्रने सूतपुत्र कर्णको उसके दिव्य कवच और कुण्डलोंके बदलेंमें अपनी अमोघशक्ति प्रदान की थी, आज जो शक्ति घटोत्कचके ऊपर छूटके उसका प्राण नाश करके शान्त हुई है, उस शक्तिको पाकर कर्ण सदा तुम्हें युद्धभूमिमें मारा हुआ ही समझता था ॥ २१–२२ ॥

एवं गतेऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन केनचित् ।
ऋते त्वा पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चानघ ॥ २३ ॥

हे पुरुष शार्दूल ! मैं सत्यके द्वारा शपथ करके कहता हूं कि यद्यपि कर्ण कवच, कुण्डल और अमोघ शक्तिसे रहित हो गया है, तो भी तुम्हारे सिवा कर्ण किसी दूसरे योद्धासे नहीं मारा जा सकता ॥ २३ ॥

×

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषा स्मृतः ॥ २४ ॥

यह सूतपुत्र कर्ण सदा व्रताचरण करनेवाला, सत्यवादि, तपस्वी, ब्राह्मणोंमें निष्ठावान् और शत्रुओंके ऊपर सदा दया करता रहता है; इस ही कारण वह इस लोकके बीच वृष नामसे विख्यात हुआ है ॥ २४ ॥

युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः ।
केसरीव वने मर्दन्मत्तमातङ्गयूथपान् ।
विमदान्रथशार्दूलान्कुरुते रणमूर्धनि । ॥ २५ ॥

यह युद्धदुर्मद, महाबाहु, सदा धनुष उठाकर रखनेवाला कर्ण युद्धभूमिमें विपक्षी सेनाके महारथियोंके अभिमानको इस प्रकार नाश करता रहता है, जैसे वनके बीच पराक्रमी सिंह मतवाले हाथियोंके गर्वको नष्ट किया करता है ॥ २५ ॥

मध्यंगत इवादित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम् ।
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः ।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ! तुम्हारी ओरके मुख्य मुख्य महात्मा क्षत्रिय योद्धा लोग दोपहरके तपते हुए सूर्यकी भांति कर्णकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं, जैसे शरद ऋतुमें सूर्य सहस्रों किरणें विखेरता है, वैसे ही कर्ण युद्धमें अपने बाणोंकी वर्षा करता है ॥ २६ ॥

तपान्ते तोयदो यद्वच्छरधाराः क्षरत्यसौ ।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ २७ ॥

जैसे वर्षाकालमें बादल जलकी वर्षा करता है, वैसे ही दिव्यास्त्ररूपी जल गिरानेवाला यह कर्णरूपी बादल बाणोंकी वर्षा करता है; आज वही कर्ण कवच, कुण्डल और इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्तिसे रहित होके सामान्य मनुष्यके भावको प्राप्त हुआ है ॥ २७ ॥

एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् ।
कृच्छ्रप्राप्तं रथचक्रे निमग्ने हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य ॥ २८ ॥

परन्तु इसके बधके विषयमें एक ही विशेष उपाय है। कोई दोष प्राप्त होनेपर जब वह असावधान हो, तुमसे कर्णका युद्ध होते समय जब उसके रथका चक्र पृथ्वीमें घुस जाय और जब वह दुःखित होके विपद्ग्रस्त होगा, उसी समय तुम सावधानताके सहित मेरे सङ्केतके अनुसार पहले ही उसका नाश करना ॥ २८ ॥

जरासंधश्चेदिराजो महात्मा महाबलश्चैकलव्यो निषादः ।
एकैकशो निहताः सर्व एव योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! पहिले मैंने तुम्हारे हितके निमित्त ही मगधराज जरासन्ध, महात्मा चेदिराज शिशुपाल, निषादराज महाबलवान् एकलव्य, आदि वीरोंका पृथक् पृथक् नाना उपाय रचके उनका नाश किया है ॥ २९ ॥

अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः ।
अलायुधः परसैन्यावमर्दी घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ ६९४८ ॥

इसी प्रकार राक्षसराज हिडिम्ब, किर्मीर, बक, शत्रुसैन्यनाशन अलायुध और कठिन कर्म करनेवाले पराक्रमी घटोत्कच आदि राक्षस और तामसी प्रकृतिवाले बहुतेरे क्षत्रिय योद्धा भी अनेक उपायोंसे मारे गये हैं ॥ ३० ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥ ६९४८ ॥

: १५६ :

अर्जुन उवाच

कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन ।
जरासंधप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥

अर्जुन बोले— हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! आपने किस प्रकार हमलोगोंके हितके लिये किन किन उपायोंसे जरासन्ध आदि राजाओंका नाश किया है ? ॥ १ ॥

वासुदेव उवाच

जरासंधश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयंकराः ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण बोले— हे अर्जुन ! मगधराज जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और महाबलवान् निषादराज एकलव्य आदि लोग यदि पहले न मारे गये होते, तो इस समय वे लोग अत्यन्त ही भयङ्कर हो जाते ॥ २ ॥

सुयोधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान् ।
तेऽस्माभिर्नित्यसंदुष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥

क्योंकि इस युद्धमें दुर्योधन उन रथियोंमें मुख्य राजाओंको अवश्य ही वरन करता और वे लोग भी हम लोगोंके ऊपर पहलेसे ही शत्रुता रखते थे इससे वे लोग कौरवोंके पक्षको अवलम्ब करते, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

ते हि वीरा महात्मानः कृतास्त्रा दृढयोधिनः ।
धार्तराष्ट्रीं चमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४ ॥

ऐसा होने पर वे सब धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी, दृढ पराक्रमी, कृतास्त्र वीर लोग युद्धभूमिमें देवताओंकी भांति दुर्योधनकी सारी सेनाकी रक्षा करते ॥ ४ ॥

सूतपुत्रो जरासंधश्चेदिराजो निषादजः ।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेरन्पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥

सूतपुत्र कर्ण, मगधराज जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और निषादपुत्र एकलव्य चारों मिलकर यदि दुर्योधनके पक्षको अवलम्ब करके युद्धभूमिमें स्थित होते, तो सम्पूर्ण पृथ्वीके योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित कर सकते ॥ ५ ॥

योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनंजय ।
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६ ॥

हे अर्जुन अब वे पराक्रमी राजा लोग जिन जिन उपायोंसे मारे गये उस वृत्तान्तको भी मुझसे सुनो । उपायके विना वे वीर राजा लोग युद्धभूमिमें देवताओंसे भी अपराजित थे ॥ ६ ॥

एकैको हि पृथक्तेषां समस्तां सुरवाहिनीम् ।
योधयेत्समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! उन सब राजाओंकी बात तो दूर रही; उनमेंसे एक एक वीरमें इतना सामर्थ्य था, कि लोकपालोंसे रक्षित सम्पूर्ण देवताओंकी सेनाके सङ्गमें भी वह अकेला ही युद्धभूमिमें युद्ध कर सकता था ॥ ७ ॥

जरासंधो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः ।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै लोहितामुखीम् ॥ ८ ॥

पहिले जरासन्धने रोहिणीपुत्र बलदेवके निकटसे पराजित होके, क्रोधपूर्वक हम लोगोंके वधके लिये एक सर्वघातक लोहेकी गदा उठाकर हमारी ओर चलायी ॥ ८ ॥

सीमन्तमिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् ।
व्यदृश्यतापतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाशनिः ॥ ९ ॥

अग्निके समान प्रकाशमान उस गदाके गिरनेके समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र आकाशमण्डलको सीमन्तयुक्त करता हुआ पृथ्वीपर गिर रहा है ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः ।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥ १० ॥

रोहिणी पुत्र बलदेवने उस गदाको सम्मुख आती देख उसे निवारण करनेके लिये स्थूणाकर्ण नामक अस्त्र चलाया ॥ १० ॥

अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि ।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान् ॥ ११ ॥

उस अस्त्रके वेगसे गदा निवारित होने पर ऐसा हुआ, मानो वह गदा पर्वतोंको कंपाती और पृथ्वी देवीको बिदारण करती हुई आकाशसे पृथ्वीपर गिरी ॥ ११ ॥

तत्र स्म राक्षसी घोरा जरा नामाशुविक्रमा ।
संधयामास तं जातं जरासंधमरिंदमम् ॥ १२ ॥

जिस स्थलपर गदा गिरी, वहां महापराक्रमसे युक्त जरा नामकी भयङ्करी राक्षसी वास करती थी; जिसने पहिले जन्मके समयमें शत्रुनाशन जरासन्धकी दोनों फांकोंको जोडा था ॥ १२ ॥

द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्धदेहः पृथक्पृथक् ।
तया स संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः ॥ १३ ॥

क्योंकि वह राजकुमार जन्मके समयमें दो माताओंके गर्भसे दो फांक होके उत्पन्न हुआ था और जरा राक्षसीने उन दोनों फांकोंको एकमें जोड दिया था, इस ही कारण वह राजकुमार जरासन्ध नामसे विख्यात हुआ था ॥ १३ ॥

सा तु भूमिगता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥

पार्थ ! भूमिमें रहनेवाली वह राक्षसी स्थूणाकर्ण नामक अस्त्र और गदाके आघातसे उसके नीचे दबके पुत्र और बन्धु बान्धवोंके सहित मारी गई; ॥ १४ ॥

विनाभूतः स गदया जरासंधो महामृधे ।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनंजय ॥ १५ ॥

धनंजय ! उस महायुद्धमें जरासन्ध उस गदासे रहित होनेसे ही तुम्हारे सम्मुखमें भीमसेनके हाथसे मारा गया ॥ १५ ॥

यदि हि स्याद्गदापाणिर्जरासंधः प्रतापवान् ।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥

नरोत्तम ! यदि वह प्रतापी जरासन्ध हाथमें उस गदाको लेकर युद्धभूमिमें स्थित होता, तो इन्द्र सहित देवता लोग भी युद्धभूमिके बीच उसका नाश न कर सकते ॥ १६ ॥

त्वद्धितार्थं च नैषादिरङ्गुष्ठेन वियोजितः ।
द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥

देखो, पहिले तुम्हारे हितकी अभिलाषा करके ही द्रोणाचार्यने भी निषादराज एकलव्यका आचार्यत्व करके कपटपूर्वक उसे अंगूठेसे रहित किया था ॥ १७ ॥

स तु बद्धाङ्गुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
अस्यन्नेको वनचरो बभौ राम इवापरः ॥ १८ ॥

क्योंकि जब वह दृढ पराक्रमी निषादराज अंगुलित्राण धारण करके वनके बीच अकेला विचरता, तब दूसरे परशुरामके समान जान पडता था ॥ १८ ॥

एकलव्यं हि साङ्गुष्ठमशक्ता देवदानवाः ।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥ १९ ॥

पार्थ ! यदि एकलव्य अंगूठेसे युक्त होता, तो देवता, दानव, राक्षस और सर्प आदि सब मिलकर भी उसे युद्धभूमिमें पराजित न कर सकते थे ॥ १९ ॥

किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुम् ।
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥

और कोई मनुष्य तो उसकी ओर देख भी कैसे सकता था ? वह मजबूत मुष्टिवाला, अस्त्र-विद्याका ज्ञाता और नित्य रात–दिन बाण चलानेका अभ्यासी था ॥ २० ॥

त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि ।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥ २१ ॥

मैंने उस निषादराज एकलव्यको तुम्हारे हितके निमित्त ही युद्धभूमिमें मारा है । इसके अतिरिक्त पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल तुम्हारे सम्मुखमें ही मारा गया है ॥ २१ ॥

स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वैः सुरासुरैः ।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया ।
हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ।
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ॥ २३ ॥

वह भी युद्धमें संपूर्ण देवता और असुरोंसे जीता नहीं जा सकता था । नरव्याघ्र ! तुम यह निश्चय समझ रक्खो कि मैंने संपूर्ण लोकोंके हितकामनाके लिये तथा शिशुपाल और दूसरे देवद्रोही दुष्ट पुरुषोंके नाश करनेके ही लिये तुम्हारे सहित अवतार लिया है । इससे ब्राह्मण और यज्ञके नाशक, रावणके समान पराक्रमी हिडिम्ब, बक और किर्मीर आदि राक्षसोंको भीमसेन मेरे ही प्रभावसे मारनेमें समर्थ हुए ॥ २२-२३ ॥

हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः ।
हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः ॥ २४ ॥

इसी भांति मायावी अलायुध राक्षसको हिडिम्बापुत्र घटोत्कचके हाथसे नष्ट कराया और घटोत्कचको भी उपाय रचके कर्णकी चलायी हुई शक्तिसे मरवाया है ॥ २४ ॥

यदि ह्येनं नाहनिष्यत्कर्णः शक्त्या महामृधे ।
मया वध्योऽभविष्यत्स भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २५ ॥

परन्तु कर्ण यदि इन्द्रकी अमोघ शक्तिसे भीमसेनपुत्र घटोत्कचको महायुद्धमें न मारता, तो मुझे भविष्यमें अपने हाथसे घटोत्कचका वध करना पडता ॥ २५ ॥

मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ।
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः ॥ २६ ॥
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः ।
ध्वंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयानघ ॥ २७ ॥

पहिले जो मैंने घटोत्कचका वध नहीं किया, वह तुम लोगोंके प्रियकामनाकी इच्छासे ही; क्योंकि यह राक्षस सदा यज्ञ और ब्राह्मणोंका द्वेषी, धर्मनाश करनेवाला और पापी था, इस कारण यह युद्धभूमिमें मारा गया । अनघ ! और कौशलके प्रभावसे इन्द्रकी दी हुई कर्णके हाथमें स्थित अमोघ शक्तिको भी मैंने कर्णके समीपसे पृथक् किया है ॥ २६–२७ ॥

ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ।
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! मैंने धर्मकी स्थापना करनेके लिये पहिले इस प्रकारसे दृढ प्रतिज्ञा की है कि जो धर्मका लोप करेंगे उनका मैं अवश्य ही वध करूंगा ॥ २८ ॥

ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा ।
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे ॥ २९ ॥

मैं तुम्हारे समीप सत्यकी ही शपथ करके कहता हूं कि जिसस्थानपर वेद, सत्य, इन्द्रिय-संयम, पवित्रता, धर्म, लज्जा, सौभाग्य, धृति और क्षमा निवास करती है, मैं सदासर्वदा उस ही स्थानमें वास करता हूं ॥ २९ ॥

न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ।
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि ॥ ३० ॥

इससे वैकर्तन कर्णके वधके लिये तुम दुःखित न होना, उस विषयमें मैं ऐसा उपाय बताऊंगा जिससे तुम कर्णका अनायास ही सामना कर सकोगे ॥ ३० ॥

सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ।
तस्य चापि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव ॥ ३१ ॥

पाण्डव ! इसके अतिरिक्त भीमसेन भी युद्धभूमिके बीच सुयोधनका भी वध करेंगे; मैं उसके वधका भी उत्तम उपाय तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा ॥ ३१ ॥

वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ।
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश ॥ ३२ ॥

शत्रुसेनाके बीच यह महाघोर शब्द नाद बढता जा रहा है । देखो, तुम्हारी सेनाके योद्धा-लोग भयसे दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ ३२ ॥

लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव ।
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥ ६९८१ ॥

तथा लक्ष्यवेधनेवाले कुरुसेनाके योद्धा लोग तुम्हारी सेनाके व्यूहको भङ्ग करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं; और योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी तुम्हारी सेनाको अपने अस्त्रोंसे भस्म कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥ ६९८१ ॥

: १५७ :

धृतराष्ट्र उवाच

एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा ।
कस्मात्सर्वान्समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! यदि इन्द्रकी दी हुई कर्णके हाथमें स्थित शक्ति एक ही वीर पुरुषको मारके निष्फल होकर कर्णके समीपसे पृथक् होजावेगी, ऐसे गुणसे युक्त थी, तो कर्णने किस निमित्त सम्पूर्ण पुरुषोंको त्यागके उसे अर्जुनके ऊपर नहीं चलाया ? ॥ १ ॥

तस्मिन्हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः
एकवीरवधे कस्मान्न युद्धे जयमादधत् ॥ २ ॥

अर्जुनके मारे जानेसे ही पाण्डव और सृञ्जय आदि सम्पूर्ण योद्धा विनष्ट हो जाते । फिर एक ही वीर अर्जुनका वध करके उसने युद्धमें क्यों विजय प्राप्त नहीं की ? ॥ २ ॥

आहूतो न निवर्तेयमिति तस्य महाव्रतम्।
स्वयमाह्वयितव्यः स सूतपुत्रेण फल्गुनः ॥ ३ ॥

विशेष करके जब अर्जुनका मैं युद्धभूमिमें किसीके आवाहन करनेपर कदापि निवृत्त न होऊंगा, ऐसा महान् व्रत है, तब सूतपुत्र कर्णका अर्जुनको युद्धभूमिमें आवाहन करना ही कर्त्तव्य कार्य था ॥ ३ ॥

ततो द्वैरथमानीय फल्गुनं शक्रदत्तया।
न जघान वृषा कस्मात्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥

हे सञ्जय! ऐसी स्थितिके उपस्थित रहते भी धर्मात्मा कर्णने किस कारणसे द्वैरथ युद्धमें अर्जुनको आवाहन करके इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे उसका वध नहीं किया? तुम यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो ॥ ४ ॥

नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः।
शत्रुभिर्व्यंसितोपायः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥

इस समय मेरा पुत्र दुर्योधन निश्चयही सहायकोंसे रहित और बुद्धिहीन हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। जब शत्रुओंने उसे इस प्रकारसे उपाय रहित किया है, तब वह अब किस प्रकारसे अपने शत्रुओंको जीत सकेगा? ॥ ५ ॥

या ह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम्।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसितास्य घटोत्कचे ॥ ६ ॥

ओहो! जो इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्ति मेरे पुत्रके लिये परमशक्ति और बिजय प्राप्त करनेके विषयमें परम आश्रय स्वरूप थी, श्रीकृष्णने उस शक्तिको भी घटोत्कच राक्षसके ऊपर छुडवाके उसे निष्फल कर दिया ॥ ६ ॥

कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेद्बिल्वं बलीयसा।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७ ॥

जैसे बलरहित हाथवाले किसी पुरुषके हाथमें स्थित बिल्व फल कोई बलवान् पुरुष हर लेता है, वैसे ही कर्णके हाथमें स्थित अमोघ शक्ति घटोत्कचके ऊपर छोडी जाने पर कर्णके समीपसे पृथक् हो गई; वह श्रीकृष्णके उपायके बलसे कर्णके समीपसे पृथक् की गयी ही मालूम हो रही है ॥ ७ ॥

यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतोस्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः।
मन्ये विद्वन्वासुदेवस्य तद्वद्युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥

हे बुद्धिमान् सञ्जय! जैसे लडनेमें प्रवृत्त हुए सूकर और कुत्तेके बीचसे एकके नाश होनेसे चाण्डलको अवश्य ही लाभ होता है, मेरे विचारमें कर्ण और घटोत्कचके युद्धमें श्रीकृष्णको भी उसी भांतिसे लाभ हुआ है ॥ ८ ॥

×

घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं परो लाभः स भवेत्पाण्डवानाम् ।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्यात्तथापि कृत्यं शक्तिनाशात्कृतं स्यात् ॥ ९ ॥

युद्धभूमिके बीच यदि घटोत्कच कर्णका वध करेगा तो पाण्डवोंका परम लाभ होगा और यदि वैकर्तन कर्ण घटोत्कचका वध करेगा तो भी अमोघ शक्तिके निष्फल होनेसे उनकाही बहुत बडा कार्य सिद्ध होगा ॥ ९ ॥

इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्विचार्य घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे ।
अयोधयद्वासुदेवो नृसिंहः प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां हितं च ॥ १० ॥

मनुष्यश्रेष्ठ बुद्धिमान् श्रीकृष्णने अपनी बुद्धिसे ऐसा ही सोचकर पाण्डवोंका प्रिय कार्य तथा हित करनेकी अभिलाषासे युद्धमें सूतपुत्र कर्णसे घटोत्कचका युद्ध कराया ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच

एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णे मधुनिहा नृप ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥
घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विघातार्थं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! मधुदैत्यका नाश करनेवाले महाबुद्धिमान् जनार्दन श्रीकृष्णने कर्णके उस शक्तिसे अर्जुनका वध करनेके ऐसे अभिप्रायको जानकर ही, इन्द्रकी दी हुई उस अमोघ शक्तिको नष्ट करनेकी इच्छासे कर्णके सङ्ग महापराक्रमी राक्षसराज घटोत्कचको द्वैरथ युद्धमें प्रवृत्त किया था । राजन् ! परन्तु यह सब घटना तुम्हारी दुष्ट नीतिसे ही होती हुई समझनी उचित है ॥ ११–१२ ॥

तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह ।
न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥ १३ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण यदि रणभूमिके बीच कुन्तीपुत्र अर्जुनको महारथी कर्णके हाथसे न बचाते तो हम लोग उस ही समय कृतकार्य हो सकते थे ॥ १३ ॥

साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि ।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥

राजन् ! सर्वशक्तिमान् परम योगेश्वर जनार्दन श्रीकृष्ण रणभूमिके बीच यदि अर्जुनकी रक्षा न करते होते, तो अवश्य ही घोडे, रथ और ध्वजाके सहित अर्जुन प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पडते इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव ।
जयत्यभिमुखः शत्रून्पार्थः कृष्णेन पालितः ॥ १५ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णसे अनेक उपायोंसे रक्षित रहते हैं, उस ही कारण युद्धभूमिमें संमुख उपस्थित हुए महारथी शत्रुओंको पराजित करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १५ ॥

सविशेषं त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम् ।
हन्यात्क्षिप्ता हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥ १६ ॥

जो हो, श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिसे पाण्डुपुत्र अर्जुनकी विशेष रूपसे रक्षा की है, नहीं तो वह अमोघ शक्ति कुन्तीपुत्र अर्जुनको शीघ्रही इस प्रकार नष्ट कर देती, जैसे बज्रकी चोटसे वृक्ष भस्म हो जाता है ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः ।
यस्यैष समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥ १७ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! मेरा पुत्र दुर्योधन अपनेको बुद्धिमान् माननेवाला, अच्छे लोगोंसे विरोध करनेवाला और दुष्ट विचारोंमें निपुण है, इसीलिये अर्जुनके वध और विजयका यह उत्तम उपाय उसके हाथसे निष्फल हो गया है ॥ १७ ॥

तथापि समतिक्रान्तमेतद्गावल्गणे कथम् ।
एतमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नावबोधितः ॥ १८ ॥

हे महाबुद्धिमान् गवल्गणपुत्र ! उस समय क्या तुम्हारी भी बुद्धि भ्रमयुक्त होगई थी ? तुमने क्यों नहीं उस अमोघ शक्ति चलानेके विषयमें कर्णको समझाया ? ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच

दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च ।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥ १९ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और मैं हम सब कोई प्रति दिन रात्रिके समय अपनी बुद्धि स्थिर करके कर्णसे आग्रहपूर्वक यह वचन कहते थे— ॥ १९ ॥

श्वः सर्वसैन्यानुत्सृज्य जहि कर्ण धनंजयम् ।
प्रेष्यवत्पाण्डुपाञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २० ॥

हे कर्ण ! कल सवेरे तुम सब सेनाओंको छोडके अर्जुनको ही मारो ! फिर हम लोग पाण्डवों और पाञ्चाल योद्धाओंका सेवकोंके समान उपभोग करेंगे ॥ २० ॥

अथ वा निहते पार्थे पाण्डुष्वन्यतमं ततः ।
स्थापयेद्युधि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो निपात्यताम् ॥ २१ ॥
अथवा अर्जुनके मारे जानेपर यदि वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण दूसरे किसी पाण्डव वीरको कार्यमें नियुक्त करें तो श्रीकृष्णहीको मारो ॥ २१ ॥

कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः ।
शाखा इवेतरे पार्थाः पाञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥ २२ ॥
क्योंकि श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंके सब कार्योंके सिद्ध करनेके मूल हैं । अर्जुन श्रीकृष्णरूपी वृक्षकी बडी शाखाके समान हैं; दूसरे पाण्डव लोग छोटी शाखाएं और पाञ्चालयोद्धा लोग उसके पत्रस्वरूप हैं ॥ २२ ॥

कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः ।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥ २३ ॥
श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंके आश्रय, बल और सहायक हैं । जैसे चंद्रमा सम्पूर्ण ज्योतिवाले पदार्थोंके आश्रय हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण भी पाण्डवोंके परम आश्रयस्वरूप हैं ॥ २३ ॥

तस्मात्पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं निकृन्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २४ ॥
कर्ण ! इसलिये तुम शाखा और पत्तों आदि सबको छोडके सदा और सर्वत्र पाण्डववृक्षके मूल स्वरूप श्रीकृष्णहीका सबसे पहिले नाश करो ॥ २४ ॥

हन्याद्यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् ।
कृत्स्ना वसुमती राजन्वशे ते स्यान्न संशयः ॥ २५ ॥
हे राजन् ! सूतनन्दन कर्ण यदि यदुकुलभूषण दाशार्ह श्रीकृष्णका वध कर सकता, तो यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हारे वशमें हो जावेगी; इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २५ ॥

यदि हि स निहतः शयीत भूमौ यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा ।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ॥ २६ ॥
हे राजेन्द्र ! यदि यदुवंशियों और पाण्डवोंके आनन्दको बढानेवाले महात्मा श्रीकृष्ण उस शक्तिसे मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करते, तो निश्चय ही वन, पर्वत और समुद्रके सहित यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें होजाती ॥ २६ ॥

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे ।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकाले व्यमुह्यत ॥ २७ ॥
इसी भांति सदा सर्वान्तर्यामी, देवोंके ईश्वर, अप्रमेय श्रीकृष्णके वधके विषयमें नित्य अपनी बुद्धिसे ऐसा ही निश्चय करके उनके पास जाते, तो युद्धके समय उनकी बुद्धि मोहित होजाती थी ॥ २७ ॥

अर्जुनं चापि कौन्तेयं सदा रक्षति केशवः ।
न ह्येनमैच्छत्प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥ २८ ॥

जबतक कर्णके निकट इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्ति उपस्थित थी, तब तक श्रीकृष्ण नित्य ही कर्णसे अर्जुनकी रक्षा करते थे; युद्धमें श्रीकृष्णने कभी भी सूतपुत्र कर्णके सम्मुख अर्जुनको खडा करनेकी इच्छा नहीं की ॥ २८ ॥

अन्यांश्चास्मै रथोदारानुपस्थापयदच्युतः ।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥ २९ ॥

किस प्रकारसे राधापुत्र कर्णके निकटसे उस अमोघ शक्तिको निष्फल कराऊं, इसी भांति चिन्ता करके श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरके अन्य महारथियोंको कर्णके सम्मुख युद्धके निमित्त भेजते थे ॥ २९ ॥

ततः कृष्णं महाबाहुः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पप्रच्छ रथशार्दूल कर्णं प्रति महारथम् ॥ ३० ॥

हे रथियोंमें श्रेष्ठ ! तब महाबाहु सत्य पराक्रमी सात्यकिने भी महारथी कर्णके विषयमें श्रीकृष्णसे पूंछा था ॥ ३० ॥

अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्त्या चामितविक्रम ।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फल्गुने तु सा ॥ ३१ ॥

हे अमितपराक्रमी श्रीकृष्ण ! इन्द्रकी दी हुई शक्ति अत्यन्त पराक्रमशालिनी और अमोघ है, उस विषयमें कर्णको दृढरूपसे विश्वास था, तब सूतपुत्रने किस कारणसे उस अमोघ शक्तिको अर्जुनके ऊपर नहीं चलाया ? ॥ ३१ ॥

वासुदेव उवाच

दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः ।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे शिनिकुलभूषण सात्यकि ! दुःशासन, कर्ण, शकुनि और सिन्धुराज जयद्रथ ये सब कोई दुर्योधनको आगे रखकर सदा आपसमें यही विचार करके कर्णको सलाह देते थे ॥ ३२ ॥

कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम ।
नान्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३३ ॥
ऋते महारथात्पार्थात्कुन्तीपुत्राद्धनंजयात् ।
स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥ ३४ ॥

हे अत्यन्त पराक्रमी कर्ण ! हे महाधनुर्द्धर विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण ! कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुनके अतिरिक्त और किसी पुरुषके ऊपर तुम इस अमोघ शक्तिको मत चलाना ! क्योंकि जैसे देवताओंके बीचमें इन्द्र है, वैसे ही पाण्डवोंके बीचमें अर्जुन ही मुख्य वीर और अत्यंत यशस्वी है ॥ ३३–३४ ॥

तस्मिन्विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥ ३५ ॥

इससे अर्जुनके मारे जानेसे ही अग्निहीन देवताओंकी भांति सृञ्जयों सहित पाण्डव लोग मृतप्राय हो जायंगे ॥ ३५ ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुंगव ।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३६ ॥

हे सात्यकि ! कर्णने उन लोगोंके वचनको सुनके ऐसाही होगा यह वचन करके प्रतिज्ञा की थी; और उस ही समयसे गाण्डीवधारी अर्जुनके वधका विषय उसके अन्तःकरणमें नित्य ही स्थित रहता था ॥ ३६ ॥

अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर ।
ततो नावसृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ३७ ॥

हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! केवल मैं ही राधापुत्र कर्णको मोहित करता था; इस ही कारणसे उनसे श्वेतवाहन अर्जुनके ऊपर अमोघ शक्ति नहीं चलायी ॥ ३७ ॥

फल्गुनस्य हि तां मृत्युमवगम्य युयुत्सतः ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥ ३८ ॥

हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि ! मैंने उस अमोघ शक्तिको अर्जुनसे निवारित न होनेवाली तथा अर्जुनकी मृत्यु स्वरूप जानके अपने चित्तसे हर्ष, सुख त्याग किया था, मुझे इस ही चिन्तामें रात्रिको नींद नहीं लगती थी ॥ ३८ ॥

घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुंगव ।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनंजयम् ॥ ३९ ॥

शिनिश्रेष्ठ ! आज घटोत्कचके ऊपर वह शक्ति छूटकर कर्णके निकटसे पृथक् हुई है; यह देखकर अब मैं अर्जुनको मृत्युके मुखसे छूटा हुआ ही समझ रहा हूं ॥ ३९ ॥

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा ।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४० ॥

युद्धभूमिमें अर्जुन मुझे जैसे रक्षणीय हैं, वैसे पिता, माता, तुम जैसे भाई बन्धु आदि कोई भी रक्षणीय नहीं है, मुझे अपना प्राण भी वैसा प्रिय नहीं है ॥ ४० ॥

त्रैलोक्यराज्याद्यत्किंचिद्भवेदन्यत्सुदुर्लभम् ।
नेच्छेयं सात्वताहं तद्विना पार्थं धनंजयम् ॥ ४१ ॥

हे सात्यकि ! यदि तीनों लोकोंके राज्यसे भी बढकर अत्यन्त दुर्लभ कोई दूसरी वस्तु होवे तो भी मैं अर्जुनको त्यागके उसे भी ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ४१ ॥

अतः प्रहर्षः सुमहान्युयुधानाद्य मेऽभवत् ।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनंजयम् ॥ ४२ ॥

युयुधान ! इससे जैसे कोई मरकर लौट आया हो, वैसे ही कुन्तीपुत्र अर्जुनको देखकर आज मुझे बडा हर्ष और आनन्द हो रहा है ॥ ४२ ॥

अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः ।
न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥ ४३ ॥

इस ही कारण मैंने आज घटोत्कचको युद्ध करनेके लिये कर्णके सम्मुख भेजा था; उसके विना युद्धमें रात्रिके समय कर्णको दूसरा कोई भी वीर पीडित करनेमें समर्थ नहीं था ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच

इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः ।
धनंजयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥ ७०२५ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अर्जुनके अत्यन्त ही प्रिय करनेवाले और सदा ही उनके हितकार्यमें रत श्रीकृष्णने उस समय सात्यकिसे ऐसे ही बचन कहे थे ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥ ७०२५ ॥

: १५८ :

धृतराष्ट्र उवाच

कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च ।
अपनीतं महत्तात इव चैव विशेषतः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे तात ! हे सञ्जय ! कर्ण, दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि और विशेष करके तुमने इस विषयमें अत्यन्त ही अन्याय कार्य किया है ॥ १ ॥

यदाजानीत तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ २ ॥

क्योंकि जब तुम लोग जानते थे कि यह शक्ति इन्द्र सहित संपूर्ण देवताओंसे भी अनिवार्य और असह्य है और रणभूमिके बीच सदा एक ही महावीरका नाश करनेवाली है ॥ २ ॥

सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फल्गुने वापि संजय ॥ ३ ॥

तब कर्णने पहिले ही युद्ध शुरू होने पर अर्जुन अथवा देवकीपुत्र श्रीकृष्णके ऊपर उस अमोघ शक्तिको क्यों नहीं चलाया ? ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

संग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशां पते ।
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ॥ ४ ॥

संजय बोले– हे कुरुकुलश्रेष्ठ महाराज ! हम लोग प्रतिदिन युद्धसे निवृत्त होने पर शिबिरमें आके रात्रिके समय इसी प्रकार मन्त्रणा करके कर्णसे कहते थे ॥ ४ ॥

प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायार्जुनाय वा ।
शक्तिरेषा विमोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥

हे कर्ण ! तुम कल सबेरा होते ही श्रीकृष्ण वा अर्जुनके ऊपर अवश्य इस अमोघशक्तिको छोडना ॥ ५ ॥

ततः प्रभातसमये राजन्कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नश्यते पुनः ॥ ६ ॥

परन्तु राजन् ! भोर होते ही देवताओंके प्रभावसे कर्ण तथा दूसरे योद्धाओंकी वह बुद्धि फिर भ्रष्ट हो जाती थी ॥ ६ ॥

दैवमेव परं मन्ये यत्कर्णो हस्तसंस्थया ।
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

जब कर्णके हाथमें वैसी अमोघशक्तिके रहते हुए भी देवकीपुत्र श्रीकृष्ण वा कुन्तीपुत्र अर्जुन नहीं मारे गये; तब मेरे विचारमें प्रारब्ध ही सबसे बलवान् मालूम होता है ॥ ७ ॥

तस्य हस्तस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता ।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥ ८ ॥
कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो देवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ९ ॥

हे राजेन्द्र ! कर्णने निश्चय ही दैवके द्वारा बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण और देवमायाके प्रभावसे मोहित होके देवकीपुत्र श्रीकृष्ण और इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनके ऊपर अपने हाथमें स्थित, कालरात्रिके समान शत्रुवधके लिये उद्यत उस इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्तिको वधके लिये नहीं चलाया ॥ ८–९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवेनैव हता यूयं स्वबुद्ध्या केशवस्य च ।
गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥ १० ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! तुम लोग अवश्य ही देवमाया, श्रीकृष्णकी युक्ति और अपनी बुद्धिके दोषसे पराजित होके नष्ट हुए, क्योंकि इन्द्रकी दी हुई वैसी अमोघ शक्ति कर्णके हाथसे छूटकर तृणके समान घटोत्कचको नाश करके निष्फल हो गई ॥ १० ॥

कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः ।
अनेन दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥

इस ही दुर्नीतिके दोषसे मैं अपने सभी पुत्रोंको कर्ण तथा अन्य राजाओंको मृत्युके मुखमें पडे ही समझ रहा हूं ॥ ११ ॥

भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बे निहते तदा ॥ १२ ॥

जो हो, हिडिम्बापुत्र घटोत्कचके मारे जानेपर कौरव और पाण्डवोंका कैसा संग्राम हुआ, वह सब वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १२ ॥

ये च तेऽभ्यद्रवन्द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृञ्जयाः सह पाञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन्कथं रणम् ॥ १३ ॥

प्रहार कुशल सृञ्जय तथा पाञ्चाल योद्धाओंने भी अपनी व्यूहबद्ध सेनाके सहित द्रोणाचार्य पर धावा करके उनके सङ्ग किस भांतिसे युद्ध किया ? ॥ १३ ॥

सौमदत्तेर्वधाद्द्रोणमायस्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥ १४ ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्य सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा और सिन्धुराज जयद्रथके मारे जानेसे अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए थे; उन्होंने अपने प्राणोंकी आशाको छोडके, जंभाई लेते हुए क्रोधी सिंह तथा मुह फैलाये हुए दण्डधारी यमराजकी भांति जब पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश करके अपने प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए लगातार बाणोंकी वर्षा सुरू की, उस समय पाण्डव और सृञ्जय लोग किस प्रकार द्रोणाचार्यके सम्मुख स्थित हुए ? ॥ १४–१५ ॥

आचार्यं ये च तेऽरक्षन्दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते ऽप्यकुर्वन्किमाहवे ॥ १६ ॥

हे तात सञ्जय ! कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण तथा दुर्योधन आदि मेरी सेनाके महारथी योद्धा समरमें द्रोणाचार्यकी रक्षा करते थे, उन्होंने उस समय किस कार्यका अनुष्ठान किया ? ॥१६॥

भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समार्छन्मामका युद्धे कथं संजय शंस मे ॥ १७ ॥

संजय ! द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाले भीमसेन और अर्जुनको मेरी सेनाके वीरोंने युद्धमें किस प्रकार निवारण किया ? यह मुझे वर्णन करो ॥ १७ ॥

सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षिताः सुसंक्रुद्धा रणं चक्रुः कथं निशि ॥ १८ ॥

उस समय सिन्धुराज जयद्रथके वधके कारण कौरवों और घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डवोंने अत्यन्त दुःखित और क्रुद्ध होके उस रात्रिके समय किस प्रकार युद्ध किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १८ ॥

संजय उवाच

हते घटोत्कचे राजन्कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः ॥ २० ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! रात्रिके समय जब कर्णके हाथसे घटोत्कच राक्षस मारा गया, तब तुम्हारी ओरके योद्धा लोग युद्धकी अभिलाषासे हर्षित होकर सिंहनाद करते हुए महा वेगपूर्वक पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे । अनन्तर अपनी सेनाके पुरुषोंका नाश होते देख, उस समय प्रगाढ रात्रिमें राजा युधिष्ठिर अत्यन्तही दुःखित और दीन हो गये ॥१९–२०॥

अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनं परंतपः ।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ।
हैडिम्बस्याभिघातेन मोहो मामाविशन्महान् ॥ २१ ॥

वे महाबाहु शत्रुतापन राजा भीमसेनसे बोले, हे महाबाहु भीमसेन ! मैं हिडिम्बापुत्र घटोत्कचके मारे जानेसे दुःखित और मोहित हो रहा हूं, इससे तुम इस समय दुर्योधनकी सेनाको रोको ॥ २१ ॥

एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ।
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद्धोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २२ ॥

राजा युधिष्ठिर भीमसेनको ऐसी आज्ञा देकर रथमें बैठकर आंसू बहाते हुए बार बार लम्बी सांस छोडने लगे; और कर्णके पराक्रमको देखकर घोर चिन्तामें पड गये ॥ २२ ॥

तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार विकल देखकर उनसे यह वचन बोले, हे कौन्तेय ! भरतश्रेष्ठ ! तुम दुःख न करो, क्योंकि साधारण पुरुषोंकी भांति तुम्हें इस प्रकार शोकित होना उचित नहीं है ॥ २३ ॥

उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ।
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ॥ २४ ॥

राजन् ! आप उठके युद्ध कीजिये और इस बहुत भारी युद्धके भारको उठाइये । इस समयमें यदि तुम इस प्रकार विह्वल होके शोक करते हुए रुदन करोगे तो तुम्हारी विजय होनेमें संशय उत्पन्न होगा ॥ २४ ॥

श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनकर हाथोंसे आंसू पोंछकर उनसे यह वचन बोले ॥ २५ ॥

विदिता ते महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ।
ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नावबुध्यते ॥ २६ ॥

हे महाबाहु श्रीकृष्ण ! धर्मकी परम गति मुझे मालूम है, जो पुरुष दूसरेके किये हुए उपकारको स्मरण नहीं करता उसे अवश्य ही ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है ॥ २६ ॥

अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ।
बालेनापि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन ॥ २७ ॥

जनार्दन ! हम लोगोंको वनवासके समय हिडिम्बापुत्र महात्मा घटोत्कचने बालक होनेपर भी बहुत ही सहायता की थी ॥ २७ ॥

अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ।
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ।
उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद्धनंजयः ॥ २८ ॥

श्रीकृष्ण ! श्वेतवाहन अर्जुनको अस्त्रशस्त्रोंकी प्राप्तिके लिये अन्यत्र गये हुए जानकर इस महाधनुर्द्धर घटोत्कचने हम लोगोंके समीप उपस्थित होकर जबतक अर्जुन लौट नहीं आये तब तक हम लोगोंके सङ्ग काम्यक वनमें वास किया था ॥ २८ ॥

गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः ।
पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥ २९ ॥

गन्धमादन पर्वतकी यात्रामें उसने हम लोगोंको बहुतसे दुर्गम तथा कठिन मार्गोंसे पार किया था; विशेष करके थकी हुई पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको अपनी पीठपर उठाके मार्गमें हम लोगोंके सङ्ग गमन करता था ॥ २९ ॥

आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान्प्रभो ।
मदर्थं दुष्करं कर्म कृतं तेन महात्मना ॥ ३० ॥

प्रभो ! इसके अतिरिक्त इस युद्धके आरम्भसे ही इस महात्माने मुझे बहुत मदद की है; इस महासंग्राममें मेरे लिये इसने अत्यंत कठिन कर्मको किया है ॥ ३० ॥

स्वभावाद्या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन ।
सैव मे द्विगुणा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३१ ॥

हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! सहदेवके ऊपर मेरी जैसी स्वाभाविक प्रीति है, वैसी ही राक्षसराज घटोत्कचके ऊपर भी मेरी परम प्रीति थी ॥ ३१ ॥

भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे ।
येन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥ ३२ ॥

वार्ष्णेय ! वह महाबाहु घटोत्कच मेरा अत्यन्त भक्त और परम प्रिय था, तथा हम लोग भी उसके अत्यन्त ही प्रिय पात्र थे । इस ही कारण मैं उसके शोकसे व्याकुल और मोहित हो रहा हूं ॥ ३२ ॥

पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः ।
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥ ३३ ॥

हे वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! यह देखो, मेरी सेनाके पुरुष कौरवोंकी सेनाके योद्धाओंके अस्त्रोंसे पीडित होकर चारों ओर युद्धभूमिमें भाग रहे हैं; महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण अत्यन्त ही यत्नपरायण होकर किस प्रकार युद्ध कर रहे हैं ! ॥ ३३ ॥

निशीथे पाण्डवं सैन्यमाभ्यां पश्य प्रमर्दितम् ।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा वडवनं महत् ॥ ३४ ॥

जैसे दो मतवाले हाथी महान् वेणुवनको मर्दन करते हैं, वैसे ही इस रात्रिके समयमें ये दोनों वीर हमारी सेनाके पुरुषोंका नाश कर रहे हैं ॥ ३४ ॥

अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव ।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ते स्म कौरवाः ॥ ३५ ॥

हे माधव ! यह देखो, अर्जुनके विचित्र अस्त्रकौशल और भीमसेनके बाहुबलका अनादर करके युद्धभूमिमें कौरव योद्धा पराक्रमपूर्क युद्ध कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः ।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥ ३६ ॥

ये द्रोण, कर्ण और राजा दुर्योधन युद्धमें राक्षस घटोत्कचका वध करके आनन्दपूर्वक सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

कथमस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन ।
हैडिम्बः प्राप्तवान्मृत्युं सूतपुत्रेण संगतः ॥ ३७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! तुम तथा हम लोगोंके जीवित रहते सूतपुत्र कर्णके साथ किस प्रकार हिडिम्बापुत्र युद्ध करके घटोत्कच मर गया ? ॥ ३७ ॥

कदर्थीकृत्य नः सर्वान्पश्यतः सव्यसाचिनः ।
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ३८ ॥

हाय ! हम सब लोगोंकी अवहेलना करके सव्यसाची अर्जुनके संमुख ही भीमपुत्र महाबलवान् राक्षस घटोत्कच मारा गया है ॥ ३८ ॥

यदाभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
नासीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ ३९ ॥

हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! जिस समय दुष्टात्मा धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अभिमन्युका वध किया था, उस समय महारथी अर्जुन युद्धभूमिके बीच वहां पर उपस्थित नहीं थे ॥ ३९ ॥

निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना ।
निमित्तमभवद्द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४० ॥

और हम सब लोग दुष्टात्मा जयद्रथसे निवारित होकर चक्रव्यूहके भीतर न जा सके; उस समय अश्वत्थामाके सहित द्रोणाचार्य ही अभिमन्युकी मृत्युके कारण हुए थे ॥ ४० ॥

उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् ।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥ ४१ ॥

क्योंकि गुरु द्रोणाचार्यने स्वयं अभिमन्युके वधके उपायको कर्णके समीप वर्णन किया था, विशेष करके जब वह केवल एकमात्र तलवारको ग्रहण करके ही युद्ध करता था, उस समय आचार्यने ही अपने बाणोंसे उसकी तलवारके दो टुकडे कर दिये थे ॥ ४१ ॥

व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् ।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन् ॥ ४२ ॥

कृतवर्माने नीच पुरुषकी भांति कार्य करके विपदमें पडे हुए उस बालकके रथके घोडे और दोनों पृष्ठरक्षक वीरोंका सहसा वध किया। फिर अन्तमें दूसरे महाधनुर्द्धर योद्धाओंने सुभद्रापुत्रको युद्धमें मार डाला था ॥ ४२ ॥

अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना ।
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नातिप्रियं मम ॥ ४३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुनने बहुत थोडे अपराधसे सिन्धुराज जयद्रथका वध किया है। हे यादवश्रेष्ठ ! इससे जयद्रथके वधसे मेरा विशेष प्रिय कार्य नहीं हुआ है ॥४३॥

यदि शत्रुवधे न्याय्यो भवेत्कर्तुं च पाण्डवैः ।
द्रोणकर्णौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः ॥ ४४ ॥

पाण्डवोंको यदि शत्रुओंका नाश करना ही कर्तव्य कार्य होवे, तो मेरे विचारमें सबसे पहिले युद्धमें द्रोणाचार्य और कर्णका नाश करना ही उचित है ॥ ४४ ॥

एतौ मूलं हि दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ।
एतौ रणे समासाद्य पराश्वस्तः सुयोधनः ॥ ४५ ॥

पुरुषोत्तम ! ये दोनों वीर ही हमारे समस्त दुःखोंके मूल कारण हैं। समरमें इन्हीं दोनों वीरोंके आसरेसे दुर्योधन अपनेको बलवान् समझता है ॥ ४५ ॥

यत्र वध्यो भवेद्द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ।
तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् ॥ ४६ ॥

जहां द्रोणाचार्य और अनुयायियोंके सहित सूतपुत्र कर्णका वध होना चाहिये था, वहां महाबाहु अर्जुनने दूर निवासी सिन्धुराज जयद्रथका वध किया ॥ ४६ ॥

अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ।
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ।
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन संगतः ॥ ४७ ॥

मुझे अवश्य ही सूतपुत्र कर्णको पराजित करना पडेगा। हे वीर ! इस समय महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्यकी सेनाके संग युद्ध कर रहे हैं इसलिये मैं स्वयं ही कर्णके वधके निमित्त उसके समीप गमन करूंगा ॥ ४७ ॥

एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः ।
स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्राध्माप्य भैरवम् ॥ ४८ ॥

राजा युधिष्ठिर ऐसा वचन कहके अपने बडे धनुषको फेरते और भयङ्कर शंख बजाते हुए अत्यन्त वेगपूर्वक शीघ्रतासे वहांसे चल दिये ॥ ४८ ॥

ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैस्त्रिसाहस्रैः प्रभद्रकैः ।
वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ ४९ ॥

अनन्तर पाञ्चाल राजपुत्र शिखण्डी एक हजार रथ, तीनसौ हाथी, पांच हजार घोडे और तीन हजार प्रभद्रक सेनाके योद्धाओंको संग ले उनसे घिरकर शीघ्रताके सहित युधिष्ठिरके अनुगामी हुए ॥ ४९ ॥

ततो भेरीः समाजघ्नुः शङ्खान्दध्मुश्च दंशिताः ।
पाञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ५० ॥

उसी समय राजा युधिष्ठिरके सहित पाण्डव और पांचालसेनाके योद्धा लोग कवच आदिसे सज्ज हो सैकडों शंख और भेरी आदि बाजोंको बजाते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ५० ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनंजयम् ।
एष प्रयाति त्वरितो क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः ।
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५१ ॥

उस समय महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरको स्वयं कर्णकी ओर गमन करते देखकर अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! यह देखो, धर्मराज युधिष्ठिर क्रोधाविष्ट होकर सूतपुत्र कर्णका वध करनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक स्वयं उनकी ओर गमन कर रहे हैं, इससे अब उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ॥ ५१ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् ।
दूरं च यातं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र ऐसा वचन कहके शीघ्र ही घोडोंको दौडाकर, दूर गये हुए राजा युधिष्ठिरके पीछे पीछे गमन करने लगे ॥ ५२ ॥

तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघांसया ।
शोकोपहतसंकल्पं दह्यमानमिवाग्निना ।
अभिगम्याब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५३ ॥

उस ही समय भगवान् वेदव्यास क्रोधकी अग्निमें जलते हुए राजा युधिष्ठिरको दुःखित और शोकित चित्तसे सहसा सूतपुत्र कर्णके वधकी अभिलाषासे उसकी ओर गमन करते देख, उनके संमुख उपस्थित होकर यह वचन बोले ॥ ५३ ॥

कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ।
सव्यसाचिवधाकाङ्क्षी शक्तिं रक्षितवान्हि सः ॥ ५४ ॥

हे तात युधिष्ठिर ! भाग्यसे ही अर्जुन कई बार कर्णके संमुख उपस्थित होकर भी अभी जीवित है, क्योंकि कर्णने अर्जुनके वधके ही लिये इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्ति अपने पास सुरक्षित रखी थी ॥ ५४ ॥

न चागाद्द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तं भरतर्षभ ।
सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ॥ ५५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भाग्यसे ही अर्जुन आजतक कर्णके सङ्ग द्वैरथ युद्धमें प्रवृत्त नहीं हुए; यदि परस्पर स्पर्धा रखनेवाले इन दोनोंका द्वैरथ युद्ध होता, तो दोनों ही सब प्रकारसे दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरम्भ करते इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥

वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ।
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिर ! अनन्तर अर्जुनके अस्त्रोंके प्रभावसे जब बार बार सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र निष्फल होते और वह स्वयं भी अर्जुनके अस्त्रोंसे पीडित होता तो सूतपुत्र कर्ण इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको अवश्य ही अर्जुनके ऊपर चलाता ॥ ५६ ॥

ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ।
दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद ॥ ५७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तो तुम्हें महाघोर विपदमें फंसना पडता । हे युधिष्ठिर ! तुम्हारे प्रारब्धसे ही सूतपुत्र कर्णने युद्धमें अमोघशक्तिसे घटोत्कच राक्षसका नाश किया है ॥ ५७ ॥

वासवीं कारणं कृत्वा कालेनापहतो ह्यसौ ।
तवैव कारणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे ॥ ५८ ॥

इन्द्रकी शक्ति घटोत्कचकी मृत्युके विषयमें केवल निमित्तमात्र है, यथार्थमें कालने ही उसका संहार किया है । हे तात ! तुम्हारे कल्याणके लिये ही युद्धमें वह राक्षस मारा गया

है ॥ ५८ ॥

मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर ॥ ५९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! युधिष्ठिर ! इससे तुम अपने मानसिक शोक और क्रोधको दूर करो; क्योंकि जगत्के सम्पूर्ण प्राणिमात्रकी अन्तमें यही गति है, अर्थात् मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश करती है ॥ ५९ ॥

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ।
कौरवान्समरे राजन्नभियुध्यस्व भारत ।
पञ्चमे दिवसे चैव पृथिवी ते भविष्यति ॥ ६० ॥

भारत ! इस समय तुम अपने समस्त भ्राताओंके और महात्मा राजाओंके सहित एकत्रित होके समरमें कौरवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो जाओ । हे तात ! आजसे पांचवें दिन अवश्य ही यह पृथ्वी तुम्हारे हाथमें हो जायगी ॥ ६० ॥

नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेव विचिन्तय ।
आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ॥ ६१ ॥

हे पुरुषव्याघ्र पाण्डुपुत्र ! तुम सदा धर्मके कार्योंका ही चिन्तन करते रहो और दया, तपस्या, दान, क्षमा और सत्य आदि गुणोंका ॥ ६१ ॥

सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः ।
इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ ७०८७ ॥

अत्यंत, प्रसन्न मनसे सेवन करो; क्योंकि जहां धर्म है, वहीं विजय होती है । भगवान् व्यासदेव पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरसे ऐसा बचन कहके उसी समय वहां ही अन्तर्द्धान हो गये ॥ ६२ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५८ ॥ ७०८७ ॥

: १५९ :

संजय उवाच

घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम् ।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उस रात्रिके समय सूतपुत्रके हाथसे घटोत्कचके मारे जानेसे धर्मराज युधिष्ठिर दुःख और क्रोधसे भर गये ॥ १ ॥

दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव ।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ २ ॥

उस समय वह भीमसेनको अकेले ही तुम्हारी महान् कुरुसेनाका निवारण करते देख धृष्टद्युम्नसे बोले, हे वीर ! तुम द्रोणाचार्यका निवारण करो ॥ २ ॥

त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ।
अभिद्रव रणे हृष्टो न च ते भीः कथंचन ॥ ३ ॥

तुम शत्रुओंको त्रस्त करनेवाले हो और द्रोणाचार्यका वध करनेके निमित्त ही धनुष, बाण, तलवार और कवचके सहित अग्निसे उत्पन्न हुए हो; इससे द्रोणाचार्यसे तुम्हें कुछ भी भय नहीं है; तुम प्रसन्नताके सहित उत्साहपूर्वक समरमें द्रोणाचार्यकी ओर दौडो ॥ ३ ॥

जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधनः ।
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः ॥ ४ ॥

और जनमेजय, शिखण्डी तथा दौर्मुखपुत्र यशोधन– ये शूरवीर योद्धा लोग हर्षमें भरकर द्रोणाचार्यके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये चारों ओरसे उन पर धावा करें ॥ ४ ॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ । ॥ ५ ॥

अनन्तर नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पांचों पुत्र, प्रभद्रक योद्धा लोग और भाई तथा पुत्रोंके सहित राजा विराट और द्रुपद ॥ ५ ॥

सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनंजयः ।
अभिद्रवन्तु वेगेन भारद्वाजवधेप्सया ॥ ६ ॥

सात्यकि, केकय और पाण्डुपुत्र अर्जुन– ये द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे वेगपूर्वक उनपर आक्रमण करें ॥ ६ ॥

तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किंचन ।
पादाताश्च रणे द्रोणं प्रापयन्तु महारथम् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार मेरी सेनाके जितने रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल सेनाके योद्धा हैं, वे सब कोई इकट्ठे होकर युद्धभूमिमें महारथी द्रोणाचार्यका वध करें ॥ ७ ॥

तथाज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिं युयुत्सया ॥ ८ ॥

जब पाण्डुपुत्र महात्मा राजा युधिष्ठिरने ऐसी आज्ञा दी, तब सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोगोंने अत्यन्त वेगपूर्वक द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे उनपर धावा किया ॥ ८ ॥

आगच्छतस्तान्सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान्।
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ ९ ॥

पाण्डवोंकी ओरके उन सम्पूर्ण योद्धा लोगोंको यत्नपूर्वक सहसा आक्रमण करते देख, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने उस ही समय युद्धमें उन लोगोंको आगे बढनेसे रोक दिया ॥ ९ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान्।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्ध इच्छन्द्रोणस्य जीवितम् ॥ १० ॥

राजा दुर्योधन भी सब भांतिके उद्योगके सहित द्रोणाचार्यके जीवनकी रक्षा करनेकी अभिलाषासे क्रुद्ध होकर पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥ १० ॥

ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम्।
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ॥ ११ ॥

अनन्तर थके हुए वाहन और थके हुए पाण्डव और कौरव दोनों सेनाके पुरुषोंका आपसमें गर्जते हुए सिंहनाद शब्दके सहित महाघोर युद्ध आरंभ हुआ ॥ ११ ॥

निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे।
नाभ्यपद्यन्त समरे कांचिच्चेष्टां महारथाः ॥ १२ ॥

महाराज ! दोनों सेनाके महारथी योद्धा लोग युद्धमें पहिले तो अत्यंत थके हुए थे; उस पर अब रात्रिके समय निद्राके वशमें होके चेतरहितके समान नींदसे युक्त हो गये थे; अतः युद्धमें कोई कार्य नहीं कर सकते थे ॥ १२ ॥

त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका।
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १३ ॥

उस समय वह महाभयङ्करी शूरवीरोंके प्राणको हरण करनेवाली त्रियामा रात्रि उन योद्धाओंके लिये सहस्र प्रहरोंकी रात्रिके समान बोध होने लगी। वे बाणोंकी चोट सहते थे और विशेष करके क्षत–विक्षत होते थे ॥ १३ ॥

अहो रात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः।
सर्वे ह्यासन्निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः।
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ॥ १४ ॥

जो हो, इसी प्रकार निद्रासे झुमते हुए योद्धाओंको युद्ध करते करते आधी रात बीत गई। उस समय तुम्हारी और शत्रुओंकी सेनाके संपूर्ण क्षत्रिय उत्साहरहित और दीन चित्त हो गये थे; उन लोगोंके हाथसे अस्त्र शस्त्र और बाण छूट छूटकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १४ ॥

ते तथा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ।
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ॥ १५ ॥

वे उस समय अच्छी तरह युद्ध नहीं कर सकते थे, तो भी विशेष करके लज्जाशील होनेके कारण अपने वीर धर्मको स्मरण करके अपनी सेनाके व्यूहको परित्याग नहीं कर सके ॥ १५ ॥

शस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ।
गजेष्वन्ये रथेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत ॥ १६ ॥

भारत ! दूसरे अनेक सैनिक अपने अस्त्र शस्त्रोंको त्यागकर निद्राके वशमें होकर सो रहे थे; कोई रथ, कोई हाथी और कोई घोडोंके ऊपर ही शयन करने लगे ॥ १६ ॥

निद्रान्धा नो बुबुधिरे कांचिच्चेष्टां नराधिपाः ।
तेऽन्योन्यं समरे योधाः प्रेषयन्त यमक्षयम् ॥ १७ ॥

उस समय बहुतसे राजा लोग भी नींदसे अन्ध होनेके कारण कुछ भी जान नहीं सकते थे; वे योद्धा लोग समरमें परस्पर मारके यमलोक भेज देते थे ॥ १७ ॥

स्वप्नायमानास्त्वपरे परानिति विचेतसः ।
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि ॥ १८ ॥

उस महासंग्राममें और कितने ही योद्धा नींदमें पडे हुए स्वप्न देखकर शत्रुओंको अत्यन्त बेसुध हुए देख उन्हें मार डालते थे; कुछ लोग कभी अपने आपपर प्रहार करते थे, कभी अपनी ओरके ही पुरुषोंको और कभी शत्रुसेनाके योद्धाओंका वध करते थे ॥ १८ ॥

नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंसक्तलोचनाः ॥ १९ ॥

और उस महायुद्धमें नींदसे अंध होकर अनेक प्रकारके वचनोंको कहने लगे । उस समय अनगिनत योद्धा लोग नींदसे आंखें लाल होकर भी युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिके बीच स्थिर थे ॥ १९ ॥

संमर्द्यान्ये रणे केचिन्निद्रान्धाश्च परस्परम् ।
जघ्नुः शूरा रणे राजंस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २० ॥

राजन् ! उस महाघोर रात्रिके समय नींदमें पडे हुए बहुतेरे शूरवीर योद्धा रणभूमिमें परस्पर मर्दन करते हुए शत्रुओंके अनेक शूरवीरोंको मारने लगे ॥ २० ॥

हन्यमानं तथात्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥ २१ ॥

बहुतेरे योद्धा ऐसे नींदमें पडके चेत रहितके समान हो गये थे, कि समरमें शत्रुओंके हाथसे स्वयं मारे जाने पर भी कुछ न मालूम कर सके ॥ २१ ॥

तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन्दिशः ॥ २२ ॥
उस ही समय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन दोनों सेनाके योद्धाओंका इस प्रकार नाश होते देख, ऊंचे स्वरसे सम्पूर्ण दिशाओंको अनुनादित करते हुए यह वचन बोले ॥ २२ ॥

श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्वे एव सवाहनाः ।
तमसा चावृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २३ ॥
हे शूरवीर पुरुषो ! तुम सब लोग अपने वाहनोंके सहित बहुत ही थके तथा निद्रासे युक्त हो गये हो और सम्पूर्ण सेना धूलिके उडने और अन्धकारसे छिप गयी है ॥ २३ ॥

ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २४ ॥
इससे यदि इच्छा होवे तो थोडी देरके लिये युद्धसे निवृत्त होके इसी रणभूमिके बीच दो घडीतक सो सकते हो ॥ २४ ॥

ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः ।
संसाधयिष्यथान्योन्यं स्वर्गाय कुरुपाण्डवाः ॥ २५ ॥
फिर चन्द्रमाके उदय होने पर विश्रांति लेनेपर निद्रासे सावधान होकर तुम सब कौरव और पाण्डव वीर स्वर्ग प्राप्त होनेकी अभिलाषासे फिर परस्पर युद्ध करना ॥ २५ ॥

तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य निशम्य ते ।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चान्योन्यमब्रुवन् ॥ २६ ॥
संपूर्ण धर्मज्ञ लोगोंको यह धर्मात्मा अर्जुनका वचन अच्छा लगा; सारी सेनाएं इस विषयमें संमत हुई और परस्पर यही कहने लगे ॥ २६ ॥

चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति राजन्दुर्योधनेति च ।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥ २७ ॥
सब कौरव सैनिक ऊंचे स्वरसे पुकारके कहने लगे, हे कर्ण ! हे महाराज दुर्योधन ! यह देखो, पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना युद्धसे निवृत्त हो रही है, इससे आप लोग भी युद्ध बंद कर दें ॥ २७ ॥

तथा विक्रोशमानस्य फल्गुनस्य ततस्ततः ।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ २८ ॥
भारत ! इसी भांति अर्जुनने जब सब ओर उच्चस्वरसे यह वचन कहा, तब कौरव और पाण्डवोंकी सेना युद्धभूमिसे निवृत्त हुई ॥ २८ ॥

तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाक्षुद्राः प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥ २९ ॥

उस समय देवता, महात्मा ऋषि लोग और सेनाके सम्पूर्ण पुरुष आनन्दित होके महात्मा अर्जुनके वचनकी अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे ॥ २९ ॥

तत्सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत ।
मुहूर्तमस्वपन्राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३० ॥

भारत ! विशेष करके थकी हुई सारी सेनाओंने अर्जुनके उस दयायुक्त वचनोंकी अत्यन्त ही प्रशंसा की और वे दो घडीतक सो गयीं ॥ ३० ॥

सा तु संप्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत ।
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३१ ॥

महाराज ! तुम्हारी सेना विश्राम करके सुखका अनुभव करने लगी; उसने वीर अर्जुनकी अत्यंत प्रशंसा और मङ्गलकामना की ॥ ३१ ॥

त्वयि वेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघ ॥ ३२ ॥

हे महाबाहु अर्जुन ! हे वीर ! तुममें ही सम्पूर्ण वेद, बुद्धि, पराक्रम, धर्म और समस्त अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान भलीभांतिसे विराजमान हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर तुममें दया है ॥ ३२ ॥

यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
मनसश्च प्रियानर्थान्वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥ ३३ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! हम लोग विश्राम करके सुखी होकर जिस भांति तुम्हारे मङ्गल कामनाकी अभिलाषा करते हैं, वह अवश्य ही सिद्ध होगी; तुम्हारी शीघ्रही अभीष्ट–कामना पूर्ण होगी ॥ ३३ ॥

इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन्विशां पते ॥ ३४ ॥

पृथ्वीपते ! इसी भांति तुम्हारे महारथी योद्धा लोग पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनकी अत्यंत प्रशंसा करते हुए निद्रित होकर चूप हो गये ॥ ३४ ॥

अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे ।
गजस्कन्धगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ ॥ ३५ ॥

अनन्तर कोई हाथियोंपर, कोई घोडोंकी पीठपर, कोई रथोंमें और कितने ही योद्धा पृथ्वीपर ही शयन कर रहे थे ॥ ३५ ॥

सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक्पृथक् ॥ ३६ ॥

उस समय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग आयुध, गदा, खड्ग, फरसे, प्रास, कवच, आभूषण और अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये हुए ही पृथक् पृथक् रणभूमिके बीच शयन कर रहे थे ॥ ३६ ॥

गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुरूषितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम् ॥ ३७ ॥

निद्रासे मतवाले होकर कितने ही हाथी सर्पोंके समान धूलसे परिपूरित हुई अपनी सूण्डोंसे सांस लेते तथा सांस छोडते हुए पृथ्वीको शीतल करने लगे ॥ ३७ ॥

गजाः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले ।
विशीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥ ३८ ॥

जब वे सम्पूर्ण हाथी धरतीपर निद्रित होकर रणभूमिके बीच बार बार सांस छोडने लगे उस समय वे ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो पर्वत बिखरे पडे हों और उनमें रहनेवाले मोटे मोटे सर्प सांस छोड रहे हों ॥ ३८ ॥

समां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विक्षतां महीम् ।
हयाः काञ्चनयोक्त्राश्च केसरालम्बिभिर्युगैः ।
सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः ॥ ३९ ॥

राजेन्द्र ! सुवर्णभूषित बागडोरसे युक्त घोडे अपने गर्दनके बालोंपर रथके जूए लिये पांवोंसे पृथ्वीको खोदते और समतलभूमिको विषम बनाते हुए रथोंमें जुते हुए ही चारों ओर निद्रित होगये ॥ ३९ ॥

तत्तथा निद्रया भग्नमवाचमस्वपद्बलम् ।
कुशलैरिव विन्यस्तं पटे चित्रमिवाद्भुतम् ॥ ४० ॥

उस समय जब वे सम्पूर्ण योद्धा वाहनोंके सहित इस प्रकार शयन करने लगे, उस समय ऐसा बोध होता था, मानो उत्तम शिल्पी पुरुषोंने हाथी, घोडे और मनुष्योंके सहित चित्रपटमें अद्भुत चित्र खींच रक्खा है ॥ ४० ॥

ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ ४१ ॥

आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे क्षत–विक्षत शरीरोंसे युक्त और सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित तरुण क्षत्रिय योद्धा लोग हाथियोंके कुम्भस्थलोंसे सटकर शयन करते हुए इस प्रकार दीख पडते थे, मानो कामिनियोंके कुचोंका आलिंगन करके शयन कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ ४२ ॥

अनन्तर नेत्रोंको आनन्द देनेवाले कामिनियोंके कपोलोंके समान पाण्डुर वर्ण कुमुदनाथ चन्द्रमा पूर्वदिशाकी ओरसे उदय होते दीख पडे ॥ ४२ ॥

ततो मुहूर्ताद्भगवान्पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसञ्ज्योतिःप्रभं प्रभुः ॥ ४३ ॥

उस समय मुहूर्तभरके बीच शशचिह्नसे शोभित तेजस्वी भगवान् चन्द्रमाने अपने प्रकाशसे नक्षत्रोंकी प्रभाको हरण करके अरुणका दर्शन कराया ॥ ४३ ॥

अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ ४४ ॥

अरुण कान्तिके अनन्तर चन्द्रमा सुवर्णवर्णके समान अपनी विशाल किरणोंको धीरे धीरे चारों ओर फैलाने लगे ॥ ४४ ॥

उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्शनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ ४५ ॥

इसी भांति चन्द्रमाकी किरणें अपने तेजसे अन्धकारको नष्ट करती हुई धीरे धीरे सम्पूर्ण दिशा आकाश और पृथ्वीमें फैलने लगीं ॥ ४५ ॥

ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥ ४६ ॥

अनन्तर एक ही मुहूर्तमें चन्द्रमाके उदय होनेसे सम्पूर्ण जगत् प्रकाशमय हो गया और अन्धकार उस समय एकबारगी दूर हो गया ॥ ४६ ॥

प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन्नक्तंचरास्ततः ॥ ४७ ॥

इसी भांति चन्द्रमाके पूर्णतः प्रकाशित होनेपर जगत् दिन जैसा प्रकाशमय हो गया; राजन् ! तब रात्रिचारी जीवजन्तुओंमेंसे कितने ही इधर उधर भ्रमण करने लगे और कितने ही रणभूमिमें वहीं पडे रहे ॥ ४७ ॥

बोध्यमानं तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं महदिवाम्भसि ॥ ४८ ॥

जैसे सूर्यकी किरणोंके पडनेसे कमलोंका महान् वन प्रफुल्लित होता है, वैसे ही निद्रित हुए सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग चन्द्रमाके प्रकाशसे निद्रासे जागके सावधान हो गये ॥ ४८ ॥

यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरो भवेत् ।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ४९ ॥

जैसे पूर्णमासीके दिन चन्द्रमाके उदय होनेसे समुद्रकी तरंग बहुत ऊंची उठती हुई, दीख पडती है, वैसे ही उस सेनारूपी समुद्रमें चन्द्रमाके उदयसे हलचल होने लगी ॥ ४९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशां पते ।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ ७१३७ ॥

पृथ्वीपते ! अनन्तर इस जगत्में महान् जनसंहारके लिये स्वर्ग लोककी इच्छा करनेवाले योद्धाओंका आपसमें फिर महाघोर युद्ध आरंभ हुआ ॥ ५० ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ १५९ ॥ ७१३७ ॥

: १६० :

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्येदमब्रवीत् ।
अमर्षवशमापन्नो जनयन्हर्षतेजसी ॥ १ ॥

सञ्जय बोले-- महाराज ! राजा दुर्योधन इस ही समय क्रोधपूर्वक द्रोणाचार्यके समीप जाकर उनके तेज और हर्षको बढाते हुए यह वचन बोले ॥ १ ॥

न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः ।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्ष्या विशेषतः ॥ २ ॥

हे आचार्य ! युद्धभूमिके बीच यदि लब्धलक्ष्य शत्रुलोग मन मलिन होकर तथा आन्तरिक थकके विश्राम ले रहे हों, तो लब्धलक्ष्य उस समय उनके प्रति क्षमा दिखानी उचित नहीं है ॥२॥

तत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया ।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥
सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च ।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः ॥ ४ ॥

इस समय जो हमने क्षमा की है, वह आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ही किया है, परन्तु इस कारण ये पाण्डव सैनिक पूर्णतः विश्राम लेकर अत्यन्त देखिये, तुमसे रक्षित होकर वे पाण्डव लोग पराक्रमसे बार बार बढते जा रहे हैं और हम लोग क्रमसे तेज तथा बलसे सब भांति हीन हुए जाते हैं ॥ ३-४ ॥

×

दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्रह्मास्त्रादीनि यान्यपि ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥

इस जगत्के बीच ब्रह्मास्त्र आदि जितने भी दिव्यास्त्र हैं, वे सम्पूर्ण विशेष रूपसे तुममें ही विराजमान हैं ॥ ५ ॥

न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्धराः ।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥

इससे मैं तुम्हारे समीप शपथ करके यह सत्य वचन कहता हूं कि आप यदि दृढरूपसे युद्धमें प्रवृत्त होवें, तो पाण्डव, हम लोग तथा पृथ्वीके अन्य जो धनुर्द्धारी अग्रणी वीर हैं, वे कोई भी तुम्हारे समान नहीं हो सकते ॥ ६ ॥

ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान्द्विजोत्तम ।
सर्वास्त्रविद्भवान्हन्याद्दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७ ॥

हे द्विजसत्तम ! आप जिस भांति सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको जानते हैं; उससे आप निश्चय ही देवता, असुर और गन्धर्वोंके सहित इन सम्पूर्ण लोकोंको अपने दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे नष्ट करनेमें समर्थ हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

स भवान्मर्षयत्येनांस्त्वत्तो भीतान्विशेषतः ।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८ ॥

पाण्डव लोग आपसे विशेष रूपसे भयभीत रहते हैं, तो भी उन्हें अपना शिष्य समझके वा मेरे अभाग्यके कारणसे ही आप सदा सर्वदा पाण्डवोंके विषयमें क्षमा किया करते हैं ॥ ८ ॥

एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्चात्मजेन ते ।
समन्युरब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके इसी प्रकार बहुतसे वचनोंको सुनके कोपित और उत्तेजित होकर क्रोधपूर्वक उनसे ऐसे वचन बोले ॥ ९ ॥

स्थविरः सन्परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे ।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ।
अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः ॥ १० ॥

हे दुर्योधन ! मैं वृद्ध होकर भी परम शक्तिके अनुसार युद्धभूमिमें प्रयत्न करता हूं, तो भी तुम मेरे विषयमें शङ्का कर रहे हो। जो हो, इसके अनन्तर अब मैं तुम्हारे विजयकी अभिलाषासे नीच कर्म करनेमें प्रवृत्त होऊंगा । ये सब लोग विशेष रूपसे अस्त्र शस्त्रोंकी विद्याको नहीं जानते, मैं अस्त्रज्ञ होकर भी इन लोगोंका नाश करूंगा ॥ १० ॥

यद्भवान्मन्यते चापि शुभं वा यदि वाशुभम् ।
तद्वै कर्तास्मि कौरव्य वचनात्तव नान्यथा ॥ ११ ॥

हे कौरव ! जब तुम मुझे आज्ञा देते हो तो चाहे शुभ हो अथवा अशुभ ही होवे, मैं अवश्य ही उस कार्यको करनेमें तत्पर होऊंगा उसके विपरीत कुछ नहीं करूंगा ॥ ११ ॥

निहत्य सर्वपाञ्चालान्युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ।
विमोक्ष्ये कवचं राजन्सत्येनायुधमालभे ॥ १२ ॥

हे राजन् ! मैं इन अस्त्रोंको स्पर्श करके सत्यकी शपथ करता हूं कि आज मैं पराक्रम प्रकाशित करके युद्धभूमिके बीच समस्त पाञ्चाल योद्धाओंका नाश करके ही अपना कवच उतारूंगा ॥ १२ ॥

मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ।
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव ॥ १३ ॥

हे महाबाहु कुरुराज दुर्योधन ! तुम जो कुन्तीपुत्र अर्जुनको युद्धमें थका हुआ समझ रहे हो, वह तुम्हारा केवल भ्रम मात्र है; मैं यथार्थ रूपसे उनके बल और पराक्रमके विषयको वर्णन करता हूं, चित्त लगाकर सुनो ॥ १३ ॥

तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ।
उत्सहन्ते रणे सोढुं कुपितं सव्यसाचिनम् ॥ १४ ॥

उन सव्यसाची अर्जुनके युद्धमें क्रुद्ध होने पर देवता, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस कोई भी उन्हें पराजित करनेका उत्साह नहीं कर सकते ॥ १४ ॥

खाण्डवे येन भगवान्प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः ।
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना ॥ १५ ॥

खाण्डव वन जलानेके समय जब भगवान् देवराज इन्द्र जलकी वर्षा करने लगे, उस समय महात्मा अर्जुनने अपने बाणोंके प्रभावसे उन्हें निवारण किया था ॥ १५ ॥

यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चान्ये बलगर्विताः ।
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं तव ॥ १६ ॥

उस समय यक्ष, सर्प, दैत्य और दूसरे जो कोई अपने बलसे मतवारे होकर उसके संमुख उपस्थित हुए, पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उस समय संमुख उपस्थित हुए उन सबका नाश किया था, वह सब वृत्तान्त तुम्हें भी विदित है ॥ १६ ॥

गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ।
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना ॥ १७ ॥

घोषयात्राके समय जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुम लोगोंका हरण करके ले जाते थे, तब दृढ धनुर्द्धारी अर्जुनने ही उनको पराजित करके तुम्हें छुड़ाया था ॥ १७ ॥

निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ।
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ॥ १८ ॥

निवातकवच दैत्य सदासे देवताओंके शत्रु थे, देवता लोग युद्धमें किसी प्रकारसे भी उन दैत्योंका नाश नहीं कर सके, परन्तु वीर अर्जुनने उन निवातकवच दैत्योंको पराजित किया है ॥ १८ ॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम् ॥ १९ ॥

उन्होंने हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंपर विजयपायी थी; ऐसे पराक्रमी पुरुषसिंह अर्जुनको मनुष्य किस भांति पराजित करनेमें समर्थ हो सकेंगे ॥ १९ ॥

प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथा बलमिदं तव ।
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशां पते ॥ २० ॥

हे प्रजानाथ दुर्योधन ! हमलोग विशेषरूपसे यत्नपूर्वक युद्ध कर रहे हैं, तो भी पाण्डुपुत्र अर्जुन जिस प्रकार तुम्हारी इस सेनाका नाश कर रहे हैं, उसे तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो ॥२०॥

तं तथाभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा ।
द्रोणं तव सुतो राजन्पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य जब इसी भांति अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे; तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन क्रुद्ध होकर फिर उनसे यह वचन बोले ॥ २१ ॥

अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ।
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्वैधीकृत्याद्य भारतीम् ॥ २२ ॥

आज मैं, दुःशासन, कर्ण और मेरे मामा शकुनि, हम लोग एकत्रित होकर कौरव सेनाको दो हिस्सेमें बिभक्त करके युद्धभूमिमें अर्जुनका नाश करेंगे ॥ २२ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ।
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् ॥ २३ ॥

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य दुर्योधनके वचनको सुन कर कुछ भी प्रतिवाद न करके हंसते हंसते उनको अनुमोदन किया और ' महाराज ! तुम्हारा मङ्गल हो, ऐसा कहकर वे फिर राजा दुर्योधनसे यह बोले ॥ २३ ॥

को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
अक्षयं क्षपयेत्कश्चित्क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ॥ २४ ॥

परन्तु प्रभावमें जलती हुई अग्निके समान, युद्धमें अक्षय स्वरूप, क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ, गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनका वध कौन क्षत्रिय योद्धा कर सकता है? ॥ २४ ॥

तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ।
नासुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ॥ २५ ॥

यदि अर्जुन अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके युद्धभूमिके बीच स्थित रहे, तो धनोंके स्वामी कुबेर, इन्द्र, यमराज, जलके स्वामी वरुण, असुर, सर्प और राक्षस आदि कोई भी अर्जुनका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २५ ॥

मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत ।
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान्को व्रजेद्गृहान् ॥ २६ ॥

हे भारत ! तुम जो कुछ कह रहे हो, मूढ पुरुष ही ऐसे वचनोंको कहा करते हैं । कौन पुरुष अर्जुनके संग युद्धमें प्रवृत्त होकर कुशलपूर्वक लौट कर घर जा सकता है ? ॥ २६ ॥

त्वं तु सर्वातिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ।
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि ॥ २७ ॥

परन्तु तुम अत्यन्त ही पापबुद्धिसे युक्त, क्रूर और सबके ऊपर शङ्का करते रहते हो; इस ही कारण जो पुरुष तुम्हारे हितके कार्योंमें रत हैं; उनके विषयमें इसी प्रकार कटूक्ति किया करते हो ॥ २७ ॥

गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थेभ्यो हि माचिरम् ।
त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम भी तो श्रेष्ठ क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए हो; और उस कुन्तीपुत्र अर्जुनके सङ्ग सदा युद्ध करनेकी इच्छा करते रहते हो; इससे तुम रणभूमिमें उनके सम्मुख जाकर शीघ्रही अपने हितके लिये उनका नाश करो ॥ २८ ॥

इमान्किं पार्थिवान्सर्वान्घातयिष्यस्यनागसः ।
त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् ॥ २९ ॥

विशेष करके तुम ही इस शत्रुताके मूल स्वरूप हो; तब इन संपूर्ण निरपराधी राजाओंके नाशकी क्या आवश्यकता है ? तुम स्वयं युद्धभूमिके बीच अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो जाओ ॥ २९ ॥

एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारिः प्रयात्वर्जुनमाहवे ॥ ३० ॥

हे गान्धारी पुत्र ! सम्पूर्ण अनिष्टके मूल स्वरूप जुआडी बुद्धिमान् और क्षत्रियधर्ममें रत तुम्हारे मामा शकुनि अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेको गमन करें ॥ ३० ॥

एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत्कितवः शठः ।
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान् ॥ ३१ ॥

वे द्यूत खेलनेमें कुशल, कुटिल, कपटी, शठ, और दुष्टोंमें अग्रणी हैं; छल विद्याके भी जानकार हैं; इस समय युद्धमें पाण्डवोंको जीतेंगे ही, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥

त्वया कथितमत्यन्तं कर्णेन सह हृष्टवत् ।
असकृच्छून्यवन्मोहाद् धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ॥ ३२ ॥

और तुमने हर्षपूर्वक कर्णके सङ्ग अज्ञानताके कारण मोहवश होकर बार बार राजा धृतराष्ट्रके सुनते हुए व्यर्थ बडाई की थी ॥ ३२ ॥

अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ।
पाण्डुपुत्रान्हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः ॥ ३३ ॥

हे पिता ! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, हम तीन ही एक साथ मिलकर युद्धभूमिमें पाण्डुपुत्रोंका नाश करेंगे ' ॥ ३३ ॥

इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ।
अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह ॥ ३४ ॥

पहिले प्रायः प्रति सभामें ही तुम इसी भांति अपनी बडाई किया करते थे, वह तुम्हारी बात मैंने सुनी है; इस समय कर्ण आदि वीरोंके सङ्ग मिलके उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करके अपना वचन सत्य करो ॥ ३४ ॥

एष ते पाण्डवः शत्रुरविषह्योऽग्रतः स्थितः ।
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ॥ ३५ ॥

यह देखो ये तुम्हारे अजेय शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन निर्भय होकर तुम्हारे अगाडी स्थित हैं तुम क्षत्रियधर्मकी रक्षा करो इस युद्धमें विजयलाभकी अपेक्षा अर्जुनसे तुम्हारी मृत्यु भी तुम्हारे लिये प्रशंसनीय गिनी जावेगी ॥ ३५ ॥

दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ।
कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ॥ ३६ ॥

हे दुर्योधन ! इस पृथ्वी पर तुमने दान, अध्ययन, और भोग आदि बहुत कुछ किया है; तुमने इच्छानुसार सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी पा लिया है, तुम देवता, ऋषि और पितरोंके ऋणसे मुक्त होकर एक प्रकार कृतकार्य भी होगये हो इससे अब भय मत करो, स्वयं पाण्डुपुत्र अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो जाओ ॥ ३६ ॥

इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ७१७४ ॥

द्रोणाचार्य ऐसा वचन कहके युद्धभूमिमें जिस स्थान पर शत्रु लोग युद्धके लिये तैयार थे, वहां पर उपस्थित हुए; अनन्तर सेनाके दो भाग बनाकर युद्ध शुरू हुआ ॥ ३७ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ साठवां अध्याय समाप्त ॥ १६० ॥ ७१७४ ॥

: १६१ :

सञ्जय उवाच

त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशां पते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! रात्रिके तीन भाग व्यतीत हुए और एक भाग बाकी था; उस समयमें फिर हर्षित होके कौरव और पाण्डवलोग महाघोर संग्राम करने लगे ॥ १ ॥

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः ।
अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् ॥ २ ॥

अनन्तर सूर्यके अगाडी स्थित अरुण चन्द्रमाका सम्पूर्ण प्रकाश हरण करते हुए सूर्यको लाल वर्ण करके उदय हुए, उस समय आकाशमें अरुणाई छागई ॥ २ ॥

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् ।
अभ्यद्रवत्सपाञ्चालान्दुर्योधनपुरोगमः ॥ ३ ॥

जब कौरवोंकी सेना दो हिस्सोंमें विभक्त हुई, तब द्रोणाचार्य दुर्योधनको अगाडी करके सोमक, पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंकी ओर दौडे ॥ ३ ॥

द्वैधीभूतान्कुरून्दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान्सव्यतः कुर्मि सव्यसाचिन्निमान्कुरून् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र कौरवोंकी सेनाको दो हिस्सोंमें विभक्त हुई देखकर अर्जुनसे बोले, हे सव्यसाची अर्जुन ! तुम अन्य शत्रुओंको बांयी ओर कर दो और इन द्रोणाचार्यको दायें करो ॥ ४ ॥

स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनंजयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ५ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णसे " ऐसा ही होवे " यह वचन कहके धनुर्द्धारियोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्य और कर्णको बायीं ओरकी सेनामें किया ॥ ५ ॥

अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरंजयः ।
आजिशीर्षगतं दृष्ट्वा भीमसेनं समासदत् ॥ ६ ॥

शत्रु नगरीपर विजय पानेवाले अर्जुन श्रीकृष्णके अभिप्रायको समझकर युद्धभूमिके बीच स्थित भीमसेनको देखकर उनके पास गये ॥ ६ ॥

भीम उवाच

अर्जुनार्जुन बीभत्सो शृणु मे तत्त्वतो वचः ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ७ ॥

भीमसेन बोले– हे अर्जुन ! बीभत्सो ! मैं जो कुछ सत्य बात कहता हूं, उसे सुनो। क्षत्रियोंकी माता जिस कार्यके लिये पुत्र उत्पन्न करती है, उसका समय अब उपस्थित हुआ है ॥ ७ ॥

अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे ।
असंभावितरूपः सन्नानृशंस्यं करिष्यसि ॥ ८ ॥

ऐसा समय प्राप्त होने पर भी यदि तुम अपने पक्षके कल्याणके लिये उपाय नहीं करोगे; तो अत्यन्त क्रुरताका कार्य कहा जावेगा; और पृथ्वीके बीच तुम्हारी अकीर्ति होवेगी ॥८॥

सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणानृण्यमाप्नुहि ।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ सव्यसाचिन्निमान्कुरु ॥ ९ ॥

हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! इससे वामभागमें स्थित कौरवोंकी सेनाको भेद करके, अपने पराक्रमके अनुसार सत्य, धर्म, यश और लक्ष्मीके समीप अऋणी हो जाओ ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच

स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च ।
कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात्पर्यवारयत् ॥ १० ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! श्रीकृष्ण और भीमसेनसे इस प्रकार प्रेरित होकर सव्यसाची अर्जुनने द्रोणाचार्य और कर्णको अतिक्रम करके शत्रुसेनापर चारों ओरसे आक्रमण किया ॥ १० ॥

तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य यतन्तः क्षत्रियर्षभाः ।
नाशक्नुवन्वारयितुं वर्धमानमिवानलम् ॥ ११ ॥

जब वह पराक्रमी वीर अपने अस्त्ररूपी अग्निसे तुम्हारी सेनाके शूरवीर क्षत्रिय योद्धाओंको भस्म करते हुए तुम्हारी सेनाके बीच प्रविष्ट हुए, उस समय तुम्हारी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रमको प्रकाशित करके भी बढे हुए अग्निके समान उनको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ११ ॥

अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ १२ ॥

तब दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि एक साथ मिलकर कुन्तीपुत्र अर्जुनके ऊपर अनगिनत बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥

तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः
कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १३ ॥

राजेन्द्र ! उत्तम अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उन लोगोंके चलाये हुए अस्त्रोंको नष्ट करके उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित किया ॥ १३ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो धनंजयः ।
सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार हस्तलाघवके सहित अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे उन लोगोंके चलाये हुए अस्त्रशस्त्रोंको निवारण करके उन सबको दस दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १४ ॥

उद्धूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ।
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् ॥ १५ ॥

उस समय धूलिके उडने और बाणोंके चलनेसे वह रणभूमि घोर अन्धकारसे युक्त होगयी और वहां महान् कोलाहल होने लगा ॥ १५ ॥

न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथा गते ।
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाभवत् ॥ १६ ॥

उस समय सम्पूर्ण दिशाओंका आकाशका तथा पृथ्वीका कुछ भी पता नहीं लगता था। विशेष करके सैनिकोंके पांवके धक्केसे जो धूलि उडी, उससे आच्छादित होकर वहां सब कुछ अन्धकारमय हो गया ॥ १६ ॥

नैव ते न वयं राजन्प्रज्ञासिष्म परस्परम् ।
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः ॥ १७ ॥

राजन् ! उस समय क्या शत्रुसेनाके पुरुष और क्या अपनी सेनाके पुरुष कोई भी किसीको पहचान नहीं सकते थे; उस समय राजा लोग केवल नाम बताकर ही परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥

विरथा रथिनो राजन्समासाद्य परस्परम् ।
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च ॥ १८ ॥

राजन् ! रथी योद्धा रथ-रहित होके आपसमें बाहु, वर्म और केशोंको आकर्षण करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥

हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनस्तदा ।
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः ॥ १९ ॥

कितने ही रथी घोडे और सारथीके मारे जाने पर भयभीत होकर ऐसे निश्चेष्ट हो गये थे कि जीवित होते हुए भी मरे हुएके समान दीखते थे ॥ १९ ॥

हतान्गजान्समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ।
गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ॥ २० ॥

इसी भांति घुडसवार योद्धा लोग भी घोडोंके सहित पर्वतके समान मरे हुए हाथियोंके समूहमें छिपकर मरे हुएकी भांति दिखाई देते थे ॥ २० ॥

ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूम इव पावकः ॥ २१ ॥

इस ही समय द्रोणाचार्य संग्रामभूमिमें उत्तर दिशाकी ओर गमन करके धूएंसे रहित जलती अग्निकी भांति प्रज्वलित होते हुए खडे हो गये ॥ २१ ॥

तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशाम्य तु ।
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशां पते ॥ २२ ॥

पृथ्वीपते ! पाण्डवोंकी सेनाएं द्रोणाचार्यको युद्धभूमिमें हटकर पृथक् आया देखकर उनसे भयभीत होकर कांपने लगीं ॥ २२ ॥

भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
द्रोणं दृष्ट्वारयस्त्रेसुश्चेलुर्मम्लुश्च मारिष ॥ २३ ॥

मारिष ! उस समय शत्रु लोग द्रोणाचार्यको दिव्यश्रीसे युक्त जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी देखकर भयभीत, उत्साह रहित होकर युद्धभूमिसे विचलित होने लगे ॥ २३ ॥

आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ।
नैनं शशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा ॥ २४ ॥

जैसे दानव लोग देवराज इन्द्रको जीतनेमें उत्साह रहित होगये थे, वैसे ही शत्रुसैनिक शत्रुसेनाको आवाहन करनेवाले मदचूते हाथीकी भांति द्रोणाचार्यको जीतनेका साहस नहीं कर सके ॥ २४ ॥

केचिदासन्निरुत्साहाः केचित्क्रुद्धा मनस्विनः ।
विस्मिताश्चाभवन्केचित्केचिदासन्नमर्षिनाः ॥ २५ ॥

कितने ही योद्धा उत्साह रहित और भयभीत होगये थे; कुछ निर्भय चित्तवाले शूरवीर अत्यन्त ही क्रुद्ध हो गये, कितने ही आश्चर्यचकित हो गये और कुछ अमर्षमें भर गये ॥ २५ ॥

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नराधिपाः ।
अपरे दशनैरोष्ठानदशन्क्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥

कितने ही राजा लोग हाथसे हाथ मलने लगे; कुछ क्रोधित होकर दांतोंसे ओठ काटने लगे ॥ २६ ॥

व्याक्षिपन्नायुधानन्ये ममृदुश्चापरे भुजान् ।
अन्ये चान्वपतन्द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः ॥ २७ ॥

कुछ लोग अपने आयुधोंको चलाने लगे; कुछ दूसरे योद्धा अपनी भुजाओंको मसलने लगे; कितने ही महाबलवान् तेजस्वी शूरवीर योद्धा लोग अपने प्राणोंकी आशा त्यागके वेगपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ २७ ॥

पाञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ।
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ॥ २८ ॥

राजेन्द्र ! विशेष करके पाञ्चालयोद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित तथा भयभीत हो अधिक वेदना सहते हुए भी महाघोर संग्राम करने लगे ॥ २८ ॥

ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रतिययू रणे ।
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ॥ २९ ॥

इसी समय युद्धदुर्जय द्रोणाचार्य जब इस प्रकार प्रबल वेगके सहित युद्धभूमिमें घूमने लगे, तब पाञ्चालराज द्रुपद और मत्स्यराज बिराटने मिलकर उनपर आक्रमण किया ॥ २९ ॥

द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशां पते ।
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ॥ ३० ॥

महाराज ! अनन्तर राजा द्रुपदके तीन पौत्र और महाधनुर्द्धर चेदिदेशीय योद्धा लोगोंने भी युद्धमें द्रोणाचार्य पर ही धावा किया ॥ ३० ॥

तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ।
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणांस्ते हता न्यपतन्भुवि ॥ ३१ ॥

उन लोगोंको संमुख आते देख द्रोणाचार्यने अपने तेज बाणोंसे राजा द्रुपदके तीनों पौत्रोंको प्राणरहित करके, पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३१ ॥

ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकेकयसृञ्जयान् ।
मत्स्यांश्चैवाजयत्सर्वान्भारद्वाजो महारथः ॥ ३२ ॥

अनन्तर भरद्वाजपुत्र महारथी द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें स्थित चेदी, केकय, सृञ्जय और सम्पूर्ण मत्स्यदेशीय योद्धाओंको पराजित किया ॥ ३२ ॥

ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवाकिरत् ।
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ॥ ३३ ॥

महाराज ! तब युद्धमें राजा द्रुपद और विराट क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥

ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ।
द्रुपदं च विराटं च प्रैषीद्वैवस्वतक्षयम् ॥ ३४ ॥

अनन्तर शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने तेज धारवाले दो भल्लोंसे राजा विराट और द्रुपदका वध करके उन दोनों वीरोंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३४ ॥

हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ।
तथैव चेदिमत्स्येषु पाञ्चालेषु तथैव च ।
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ३५ ॥

जब राजा द्रुपद और विराट, केकय, चेदी, मत्स्य, पाञ्चालदेशीय बहुतेरे शूरवीर योद्धा तथा राजा द्रुपदके तीन वीर पौत्र मारे गये ॥ ३५ ॥

द्रोणस्य कर्म तद्दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३६ ॥

तब महाबली धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके इस भयङ्कर कर्मको देखकर दुःख और क्रोधसे परिपूर्ण होके सम्पूर्ण महारथियोंके बीच इस प्रकार प्रतिज्ञा की ॥ ३६ ॥

इष्टापूर्त्तात्तथा क्षात्राद्ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
द्रोणो यस्याद्य मुच्येत यो वा द्रोणात्पराङ्मुखः ॥ ३७ ॥

" आज यदि मैं युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके निकटसे पराङ्मुख होऊं, अथवा यदि आज द्रोणाचार्य मेरे हाथसे जीवित मुक्त हो सकें; तो मैं इष्ट आपूर्त तथा ब्राह्मण्य और क्षात्र धर्मसे भ्रष्ट होऊंगा " ॥ ३७ ॥

इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद्द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ।
पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्पाण्डवान्यतः ॥ ३८ ॥

शत्रुवीरनाशन पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने उन सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके सम्मुख ऐसी प्रतिज्ञा करके अपनी सेनाके सहित द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया । उस ही समय एक ओरसे पाञ्चाल सैनिक और दूसरी ओरसे पाण्डव द्रोणाचार्यके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ३८ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
सोदर्याश्च यथा मुख्यास्तेऽरक्षन्द्रोणमाहवे ॥ ३९ ॥

उसे देखकर अपने मुख्य मुख्य बलवान् भाइयोंके सहित राजा दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३९ ॥

रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं समरे तैर्महात्मभिः ।
यतमानापि पाञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४० ॥

जब द्रोणाचार्य रणभूमिमें तुम्हारी ओरके महात्मा योद्धाओंसे रक्षित हुए, उस समय पाञ्चाल योद्धा लोग यत्नवान् होकर भी द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें समर्थ न हुए ॥ ४० ॥

तत्राक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ।
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभ ॥ ४१ ॥

मारिष ! पुरुषश्रेष्ठ ! तब भीमसेन अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वचनोंसे मानो धृष्टद्युम्नको उत्तेजित करते हुए कहने लगे ॥ ४१ ॥

द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ।
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम् ॥ ४२ ॥

द्रुपदके कुलमें उत्पन्न होकर और सम्पूर्ण अस्त्रशास्त्रोंकी विद्या जानके तथा क्षत्रिय धर्म अवलम्बन करनेवाला कौन पुरुष सम्मुख स्थित शत्रुके विषयमें उपेक्षा कर सकता है ॥ ४२ ॥

पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान्कः परिहापयेत् ।
विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि ॥ ४३ ॥

विशेष करके पिता और पुत्रोंके वधको देखकर राजाओंकी मण्डलीमें प्रतिज्ञा करके भी कौन पुरुष शत्रुको युद्धभूमिके बीच परित्याग कर सकता है ? ॥ ४३ ॥

एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ।
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ॥ ४४ ॥

इस समय द्रोणाचार्य धनुष–बाणरूपी काष्ठोंसे युक्त अग्निके समान प्रज्वलित होकर जलती हुई अग्निकी भांति अपने प्रभावसे क्षत्रियोंको भस्म कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ।
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् ॥ ४५ ॥

इससे तुम लोग इस ही स्थानपर स्थित होके मेरा पराक्रम देखो । पाण्डवोंकी सेनाको निःशेषित करनेके पहिले ही मैं स्वयं द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेके लिये उनपर आक्रमण करता हूं ॥ ४५ ॥

इत्युक्त्वा प्राविशत्क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् ॥ ४६ ॥

ऐसा वचन कहके भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर धनुषको पूर्णतः खींचकर छोडे गये अपने दृढ बाणोंसे तुम्हारी सेनाको तितर बितर करके द्रोणाचार्यकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ।
आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ४७ ॥

इस ही समय पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने भी तुम्हारी महान् सेनामें प्रवेश करके समरमें द्रोणाचार्यपर धावा किया; उस समय दोनों ओरके वीरोंका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ ४७ ॥

नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
यथा सूर्योदये राजन्समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ॥ ४८ ॥

महाराज ! उस दिन सूर्य उदय होनेके समय जैसा महान् युद्ध आरम्भ हुआ, मैंने पहिले वैसा युद्ध न कभी देखा और न सुना ही था ॥ ४८ ॥

संसक्तानि व्यदृश्यन्त रथवृन्दानि मारिष ।
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ४९ ॥

मारिष ! उस समय युद्धमें रथोंके समूह परस्पर भिडे हुए दिखाई देते थे; और कितने ही मनुष्योंके शरीर मरकर बिखरे हुए थे ॥ ४९ ॥

केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चान्यैरुपद्रुताः ।
विमुखाः पृष्ठतश्चान्ये ताडयन्ते पार्श्वतोऽपरे ॥ ५० ॥

कितने ही योद्धा अन्यत्र जाते हुए मार्गमें दूसरे वीरोंके अस्त्रोंकी चोटसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे। कितने ही योद्धा युद्धसे विमुख होकर भागते समय पीठ और पार्श्वभागोंमें शत्रुसेनाके योद्धाओंके अस्त्रोंसे पीडित होने लगे ॥ ५० ॥

तथा संसक्तयुद्धं तदभवद्भृशदारुणम् ।
अथ संध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ७२२५ ॥

इसी भांति उस समय वह महाघोर संग्राम होही रहा था, तब क्षणभरके बीच प्रातःकालमें सूर्यदेव प्रकाशित हुए ॥ ५१ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥ ७२२५ ॥

: १६२ :

सञ्जय उवाच

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।
संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! प्रातःकालके समय सहस्र किरणधारी भगवान सूर्यको उदय होते देख, युद्धभूमिमें स्थित कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा कवच बांधे हुए ही सूर्य देवकी उपासना करने लगे ॥ १ ॥

उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे ।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

उस समय तपाये हुए सुवर्णके समान प्रकाशसे युक्त सूर्यके उदय होने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हुआ; और दोनों सेनाके वीरोंका आपसमें फिर युद्ध होने लगा ॥ २ ॥

द्वंद्वानि यानि तत्रासन्संसक्तानि पुरोदयात् ।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥ ३ ॥

भारत ! सूर्यके उदय होनेके पहिले जो पुरुष जिसके सङ्ग द्वैरथ युद्धमें प्रवृत्त थे, फिर वे लोग सूर्योदयके बाद उस ही पुरुषके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥

रथैर्हया हयैर्नागाः पादाताश्चापि कुञ्जरैः ।
हया हयैः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन्रणे ॥ ४ ॥

घुडसवार रथियोंके सङ्ग, गजसवार घुडसवारोंके सङ्ग, कितने ही पैदल सेनाके योद्धा लोग गजसवारोंके सङ्ग घोडोंसे घोडे, और कितने ही पैदल सेनाके पुरुष पैदल सेनाके योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए इस प्रकार कभी परस्पर भिडकर और कभी विलग होकर वे योद्धा युद्धमें गिरने लगे ॥ ४ ॥

ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा ।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण योद्धा लोग रातके समय अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करके थक गये थे; उस समय सूर्यकी धूपसे अत्यन्त ही उत्तापित होके भूख प्यासमे सर्वांगोंमें बिकल होकर बहुतसे सैनिक चेतना रहित हो गये ॥ ५ ॥

शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम् ।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम् ॥ ६ ॥

उस समय लगातार शङ्ख, मृदङ्ग, भेरी आदि बाजे बजने लगे, हाथी चिंग्घाडने लगे, शूरवीरोंके सिंहनाद और फैलाये और खींचे गये धनुषोंकी टङ्कार सुनाई देने लगी ॥६॥

शब्दः समभवद्राजन्दिविस्पृग्भरतर्षभ ।
द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां विनिपात्यताम् ॥ ७ ॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! इन सबका एकत्रशब्द आकाशमें गूंज उठा । पैदल चलनेवाले योद्धा अस्त्र चलाते हुए शत्रुओंकी ओ दौडने लगे; ॥ ७ ॥

हयानां हेषतां चैव रथानां च निवर्तताम् ।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ८ ॥

हिनहिनाते हुए, घोडे लौटते हुए रथोंकी घरघराहट, और चिल्लाते, गरजते हुए वीरोंका मिला हुआ तुमुल शब्द वहां सुनाई दे रहा था ॥ ८ ॥

विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महास्वनः ।
नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥ ९ ॥
भूमावश्रूयत महांस्तदासीत्कृपणं महत् ।
पततां पतितानां च पत्त्यश्वरथहस्तिनाम् ॥ १० ॥

वह बढा हुआ अत्यंत भयंकर शब्द आकाश मण्डल और सम्पूर्ण दिशाओंमें परिपूरित हो गया। उस समय अनेक भांतिके अस्त्रोंकी चोटसे क्षतविक्षत होनेसे व्याकुल हुए योद्धाओंका महान् आर्तनाद पृथ्वीपर सुनाई दे रहा था । तथा पैदल, घुडसवार, रथी और गजसवार घायल होके गिरते थे और दूसरेसे गिराये जाते थे तब उनकी अत्यंत करुण अवस्था होती थी ॥ ९–१० ॥

तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः ।
स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे स्वांश्च स्वे परांश्च परान्परे ॥ ११ ॥

इसी भांति जब दोनों सेनाके सम्पूर्ण योद्धा युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब दोनों ओरके शूरवीर पुरुष इस भांति मोहित होगये, कि उस समय अपने ही पक्षके लोग अपने ही लोगोंके मार डालते थे; शत्रु पक्षके लोग भी अपने ही पक्षके लोगोंका मारते थे; शत्रु पक्षके जो अपने थे उनको और शत्रुओंको भी शत्रुपक्षके योद्धा मार डालते थे ॥ ११ ॥

वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च ।
असयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥ १२ ॥

हाथियोंके और योद्धाओंके शरीर पर शूरवीर योद्धाओंकी भुजाओंसे छोडे गये, खड्ग कपडे धोनेके स्थान पर जैसे वस्त्रोंके ढेर दिखायी देते हैं, वैसे ही दीखने लगे ॥ १२ ॥

उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव ॥ १३ ॥

जब दोनों सेनाके शूरवीर हाथसे तलवार आदि अस्त्र चलाने लगे, तब उन परस्पर टकराये हुए खड्गोंका, वस्त्रोंके धोनेके समय जैसा शब्द सुनाई देता है, वैसा ही खटपटाहट शब्द सुनाई देने लगा; ॥ १३ ॥

अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः ।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत्सुदारुणम् ॥ १४ ॥

क्रमसे दोनों सेनाके वीर लडते लडते एक धारवाली और दुधारी तलवार, तोमर परशु आदि अस्त्रोंको चलाते हुए अत्यन्त निकटसे महाघोर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् ।
शस्त्रमत्स्यसुसंपूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ १५ ॥

अनन्तर हाथी, घोडे और मनुष्योंके रुधिरसे प्रकट होकर उनके शरीरोंके बहानेवाले, अस्त्र शस्त्ररूपी मछलियोंसे युक्त, मांस मज्जारूपी कीचडसे परिपूरित एक रुधिरकी नदी उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥

आर्तनादस्वनवतीं पताकावस्त्रफेनिलाम् ।
नदीं प्रावर्तयन्वीराः परलोकप्रवाहिनीम् ॥ १६ ॥

पीडित शूरवीरोंका आर्त्तनाद ही नदीके प्रवाहका शब्दरूपी बोध होता था, वस्त्र और पताका उसमें फेनरूपी दीख पडते थे, यमलोकरूपी समुद्रपर्यन्त इस नदीकी सीमा थी; यह रुधिरकी नदी योद्धाओंने बहा दी ॥ १६ ॥

शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः ।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन्गजवाजिनः ।
संशुष्कवदना वीराः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ॥ १७ ॥

हाथी, घोडे आदि सम्पूर्ण वाहन रात्रिके युद्धमें बाण, शक्ति आदि अस्त्रोंसे पीडित होकर विकल हो गये थे; इससे सवेरेके समय वे सम्पूर्ण बाहन थकावटके कारण चलने फिरनेसे रहित होकर अपने सारे अंगोंको स्तब्ध करके जहां तहां खडे थे। सुंदर कुण्डलमण्डित मस्तकोंसे युक्त म्लानवदन वीर भी ॥ १७ ॥

युद्धोपकरणैश्चान्यैस्तत्र तत्र प्रकाशितैः ।
क्रव्यादसंघैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि ।
नासीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ १८ ॥

इधर उधर बिखरी हुई विविध युद्ध सामग्रियोंसे वह रणभूमि प्रकाशित हो रही थी। मांसभक्षी जीवजंतुओंका समूह वहां भरा हुआ था; कहीं मरे और अधमरे शरीर पडे थे; इस कारण उस युद्धभूमिमें रथ जानेके लिये रास्ता भी नहीं मिलता था ॥ १८ ॥

मज्जत्सु चक्रेषु रथान्सत्त्वमास्थाय वाजिनः ।
कथंचिदवहञ्श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः ।
कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः ॥ १९ ॥

और उस समय रुधिर तथा मांसमय कीचडोंमें रथके चक्र इधर ऊधर फंसने लगे, तब कुल, सत्त्वसे सम्पन्न महाबलवान् हाथीके समान पराक्रमी उत्तम घोडे बाणोंसे पीडित हो कांपते हुए तथा थके हुए यथाशक्ति अपने पराक्रमके अनुसार अत्यन्त कष्टके सहित उन रथोंको खींचते हुए गमन करने लगे ॥ १९ ॥

विह्वलं तत्समुद्भ्रान्तं सभयं भारतातुरम् ।
बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ ॥ २० ॥

भारत ! उस समय केवल द्रोणाचार्य और अर्जुनको छोडके दोनों ओरकी सेनाएं शीघ्रही विह्वल, उद्भ्रान्त, भयभीत और आतुर हो गयी ॥ २० ॥

तावेवास्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ।
तावेवान्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ॥ २१ ॥

उस समय वे दोनों वीर अपने लोगोंके लिये छिपनेके स्थान थे और वे ही पीडित तथा भयभीत पुरुषोंके आश्रय स्वरूप हुए; और उन दोनों वीरोंके समीप जाकर विपक्षी योद्धा यमपुरीमें गमन करने लगे ॥ २१ ॥

आविग्नमभवत्सर्वं कौरवाणां महद्बलम् ।
पाञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किंचन ॥ २२ ॥

कौरवों और पाञ्चालोंकी सब बडी सेनाएं परस्पर मिलकर व्याकुल हो गयीं; उस समय उन्हें अलग अलग नहीं पहचाना जाता था ॥ २२ ॥

अन्तकाक्रीडसदृशे भीरूणां भयवर्धने ।
पृथिव्यां राजवंशानामुत्थिते महति क्षये ॥ २३ ॥

पृथ्वीके राजवंशमें उत्पन्न हुए क्षत्रियोंका वह महान् नाश उपस्थित होनेपर वह समर यमराजके क्रीडास्थलके समान तथा कायरोंके भयको बढानेवाला हो गया ॥ २३ ॥

न तत्र कर्णं न द्रोणं नार्जुनं न युधिष्ठिरम् ।
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम् ॥ २४ ॥

उस समय कर्ण, द्रोणाचार्य, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, पांचालराजपुत्र धृष्टद्युम्न और सात्यकिको हम नहीं देख सकते थे ॥ २४ ॥

न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ।
न कृपं मद्रराजं वा कृतवर्माणमेव च ॥ २५ ॥

दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य और कृतवर्माको भी नहीं देख सकते थे ॥ २५ ॥

न चान्यांश्चैव चात्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा ।
पश्याम राजन्संसक्तान्सैन्येन रजसावृतान् ॥ २६ ॥

तथा अन्य योद्धाओंको भी हम देख नहीं पाते थे; हम सम्पूर्ण दिशाएं, पृथ्वी और अपने शरीर नहीं देख सकते थे; कारण दोनों सेनाके शूरवीरोंके भयङ्कर संग्रामके समय वीर पुरुषोंके पांवके धक्केसे जो धूलि उडी उससे वह रणभूमि परिपूरित हो गई थी ॥ २६ ॥

संभ्रान्ते तुमुले घोर रजोमेघे समुत्थिते ।
द्वितीयामिव संप्राप्तामन्यन्त निशां तदा ॥ २७ ॥

उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर घोर धूलिके बादल प्रकट हुए, तब फिर सब कोई दूसरी रात्रि आ गयी है, ऐसा ही बोध करने लगे ॥ २७ ॥

न ज्ञायन्ते कौरवेया न पाञ्चाला न पाण्डवाः ।
न दिशो न दिवं नोर्वीं न समं विषमं तथा ॥ २८ ॥

उससे वहां कौरव, पाण्डव, पाञ्चाल, सम्पूर्ण दिशाएं, आकाश, पृथ्वी, समानभूमि तथा ऊंची नीची भूमि इत्यादि उस समय कुछ भी नहीं मालूम होते थे ॥ २८ ॥

हस्तसंस्पर्शमापन्नान्परान्वाप्यथ वा स्वकान् ।
न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः ॥ २९ ॥

उस समय विजयकी इच्छा करनेवाले योद्धा लोग अपनी ओरके पुरुषों तथा शत्रुसेनाके योद्धाओंको अपने हाथसे टटोलके जिसको पाया युद्धमें उसहीका प्राणनाश करते थे ॥ २९ ॥

उद्धूतत्वात्तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ।
प्रशशाम रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च ॥ ३० ॥

अनन्तर वायु वेगपूर्वक बहने लगी, और कुछ धूलि आकाशमण्डलमें ऊपर चली गयी और कुछ शूरवीरोंके रुधिरसे सींचकर नीचे बैठ गयी; इस कारण पृथ्वीकी वह धूलि शान्त हो गयी ॥ ३० ॥

तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ।
पारिजातवनानीव व्यरोचन्रुधिरोक्षिताः ॥ ३१ ॥

उस समय हाथी, घोडे, रथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग रुधिर पूरित शरीरोंसे युक्त होकर फूले हुए पारिजात वृक्षोंके वनकी भांति शोभित होने लगे ॥ ३१ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ।
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ॥ ३२ ॥

अनन्तर दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य, दुःशासन और तुम्हारी सेनाके ये चारों महारथी योद्धा चार पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३२ ॥

दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत ।
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ॥ ३३ ॥

अपने भाई दुःशासनके सहित राजा दुर्योधन नकुलसहदेवके सङ्ग, राधापुत्र कर्ण भीमसेनके साथ और अर्जुन द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३३ ॥

तद्घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्समन्ततः ।
रथर्षभाणामुग्राणां संनिपातममानुषम् ॥ ३४ ॥

उस समय सब शूरवीर योद्धा लोग उन प्रबल महारथियोंका वह महाभयङ्कर, अत्यन्त आश्चर्यजनक और अलौकिक युद्ध सब ओरसे देखने लगे ॥ ३४ ॥

रथमार्गैर्विचित्रैश्च विचित्ररथसंकुलम् ।
अपश्यन्रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ॥ ३५ ॥

सम्पूर्ण रथी लोग विस्मित होकर महापराक्रमी महारथी योद्धाओंके अस्त्र कौशल और रथ चलानेकी विचित्र गतिके सहित विचित्र रथोंसे युक्त महाघोर विचित्र युद्धको देखने लगे ॥ ३५ ॥

यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ।
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३६ ॥

एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले वे वीर योद्धा लोग यत्नवान् होकर पराक्रमपूर्वक वर्षाकालके बादलोंकी भांति अपने बाणरूपी जलकी वर्षा करने लगे ॥ ३६ ॥

ते रथान्सूर्यसंकाशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ।
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाः समुपस्थिताः ॥ ३७ ॥

वे सब पुरुषश्रेष्ठ महाबलवान् महात्मा योद्धा लोग सूर्यकिरणके समान प्रकाशमान रथोंपर चढके बिजलीसे युक्त शरत्कालके मेघोंकी भांति शोभित होने लगे ॥ ३७ ॥

स्पर्धिनस्ते महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथान्योन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ३८ ॥

परस्पर स्पर्धा रखनेवाली, प्रयत्नशील और दृढ धनुष धारण करनेवाले वे महाधनुर्धर योद्धा मतवाले हाथियोंकी भांति एक दूसरेसे लड रहे थे ॥ ३८ ॥

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले तस्मिन्समागते ।
यत्र सर्वे न युगपद्व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ३९ ॥

परन्तु निश्चय ही विना समयके पहुंचे किसी पुरुषके शरीरका नाश नहीं होता, इस कारण क्षतविक्षत हुए वे सब महारथी एकबारगी नष्ट नहीं हुए ॥ ३९ ॥

बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४० ॥

उस समय वीरोंकी कटी हुई भुजाएं, पैर, सुंदर कुण्डलभूषित सिर, धनुष, बाण, प्रास, तलवार, फरसे, पट्टिश ॥ ४० ॥

नालीकक्षुरनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४१ ॥

नालीक, क्षुर, नाराच, नखर, शक्ति, तोमर तथा और भी बहुतसे भांति भांतिके स्वच्छ किये हुए उत्तम अस्त्र शस्त्र ॥ ४१ ॥

चित्रैश्च विविधाकारैः शरीरावरणैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४२ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र कवच, टूटे हुए विचित्र रथ और मारे गये हाथी, घोडे इधर उधर पडे थे ॥ ४२ ॥

शून्यैश्च नगराकारैर्हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४३ ॥

कहींपर शूरवीर रथी योद्धा और सारथीके मारे जानेसे उनके रथके भयभीत घोडे वायुतुल्य वेगसे नगराकार शून्य, ध्वजारहित छूटे रथको लेकर रणभूमिके बीच इधर उधर दौडते हुए दीख पडते थे ॥ ४३ ॥

वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलंकृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ४४ ॥

नाना भांतिके आभूषणोंसे भूषित वीरोंके मृतशरीर इधर उधर गिरे हुए थे, कटकर गिराये हुए चंवर, कवच, ध्वजा, ॥ ४४ ॥

छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च सुसुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥ ४५ ॥

छत्र, अनेक भांतिके आभूषण, वस्त्र, सुगन्धित मालाएं, रत्नोंके हार, किरीट, मुकुट, पगडी, किङ्किणि, समूह, ॥ ४५ ॥

उरस्यैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४६ ॥

छातीपर धारण करनेकी मणि, सोनेके निष्क और चूडामणि आदि नाना भांतिकी वस्तुओंके पडे रहनेसे, वह रणभूमि तारासमूहोंसे व्याप्त आकाशमण्डलकी भांति शोभित होने लगी ॥ ४६ ॥

ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः ।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च ॥ ४७ ॥

अनन्तर अभिमानी राजा दुर्योधन क्रुद्ध होकर क्रोधी और अमर्षी नकुलके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ४७ ॥

अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम् ।
किरञ्शरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥ ४८ ॥

माद्रीपुत्र नकुलने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको दाहिने ओर करके आनन्दित होकर उन्हें सैकडों बाणोंसे विद्ध किया; उस समय वहांपर महाघोर तुमुल कोलाहल होने लगा ॥ ४८ ॥

अपसव्यं कृतः संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा ।
सोऽमर्षितस्तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः ॥ ४९ ॥

अनन्तर युद्धमें दुर्योधनने अमर्षशील शत्रु नकुलके बाई ओर होकर उनके पराक्रमको सहन नहीं किया; परंतु उन्होंने शीघ्र ही नकुलको युद्धमें अपने दाहिने ओर करनेकी चेष्टा की ॥ ४९ ॥

ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम् ।
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित् ॥ ५० ॥

उस समय विचित्र युद्धविद्या जाननेवाले तेजस्वी पराक्रमी नकुलने तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उनको दाहिने ओर लानेका प्रयत्न कर रहे हैं यह देखकर दुर्योधनको सहसा रोक दिया ॥ ५० ॥

सर्वतो विनिवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ।
विमुखं नकुलश्चक्रे तत्सैन्याः समपूजयन् ॥ ५१ ॥

अनन्तर नकुलने कुरुराज दुर्योधनको सब ओरसे निवारित और अपने बाणजालसे पीडित करके उन्हें युद्धभूमिसे विमुख किया; उनके इस पराक्रमकी सब सैनिक प्रशंसा करने लगे ॥ ५१ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव ।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ७२७७ ॥

और तुम्हारी दुष्ट नीतिके कारण उन्होंने पहिले जो कुछ क्लेश सहन किये थे, उन्हें स्मरण करके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको खडा रह ! खडा रह ! करके आवाहन करने लगे ॥ ५२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ बासठवां अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥ ७२७७ ॥

: १६३ :

सञ्जय उवाच

ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! अनन्तर दुःशासन क्रुद्ध होकर अपने रथके तीव्र वेगसे पृथ्वीको कंपाते हुए सहदेवकी ओर दौडे ॥ १ ॥

तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्शनः ।
माद्रीसूनुः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥ २ ॥

दुःशासनको वेगपूर्वक अपनी ओर आते देख, शत्रुनाशन माद्रीपुत्र सहदेवने शीघ्रताके सहित एक भल्लसे शिरस्त्राण सहित उनके सारथीका सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २ ॥

नैनं दुःशासनः सूतं नापि कश्चन सैनिकः ।
हृतोत्तमाङ्गमाशुत्वात्सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥

इस कार्यमें सहदेवने ऐसा अपना हस्तलाघव दिखाया कि दुःशासन और दूसरा कोई भी सैनिक उन्होंने सारथिका सिर काट डाला है, यह जान नहीं सके ॥ ३ ॥

यदा त्वसंगृहीतत्वात्प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् ।
ततो दुःशासनः सूतं बुद्धवान्गतचेतसम् ॥ ४ ॥

जब सारथीसे रहित होकर घोडोंकी लगाम छूट जानेके कारण घोडे इधर उधर दौडने लगे, तब दुःशासनने समझा, कि मेरा सारथी मारा गया ॥ ४ ॥

स हयान्संनिगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठश्चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ५ ॥

उस समय घोडोंकी विद्या जाननेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ दुःशासन हस्तलाघवके सहित स्वयं घोडोंको चलाते हुए समरमें विचित्र रीतिसे उत्तम युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

तदस्यापूजयन्कर्म स्वे परे चैव संयुगे ।
हतसूतरथेनाजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥ ६ ॥

उस समय जब दुःशासन सारथीके मारे जाने पर भी स्वयं घोडोंको चलाते हुए उस रथसे रणभूमिमें निर्भयचित्तसे भ्रमण करते हुए युद्ध करने लगे, तो तुम्हारी सेना तथा शत्रुसेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग उनके इस कठिन कर्मकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥

सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ।
पीडयमानाः शरैश्चाशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७ ॥

उस समय सहदेवने शीघ्रताके सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंकी उन घोडोंपर वर्षा की; तब उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर वे घोडे वेगपूर्वक चारों ओर दौडने लगे ॥ ७ ॥

स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम् ।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मीन्स पुनरुत्सृजत् ॥ ८ ॥

उस समय दुःशासनको घोडोंकी रास ग्रहण करनेके समय धनुष त्यागना पडा और धनुष ग्रहण करनेके समय घोडोंकी बागडोर छोडनी पडी ॥ ८ ॥

छिद्रेषु तेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवापतत् ॥ ९ ॥

इन्हीं कमजोरीके समयके बीच माद्रीपुत्र सहदेवने दुःशासनके ऊपर अनेक बाण चलाये; तब कर्ण तुम्हारे पुत्र दुःशासनकी रक्षाके लिये सहदेवके समीप स्थित हुए ॥ ९ ॥

वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितैः ।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्बाह्वोरुरसि चानदत् ॥ १० ॥

तब भीमसेनने भी तत्पर होकर धनुषको पूर्णतया खींचकर छोडे तीन भल्लोंसे कर्णके बाहु और वक्षस्थलमें प्रहार करके सिंहनाद किया ॥ १० ॥

संन्यवर्तत तं कर्णः संघट्टित इवोरगः ।
तदभूत्तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा ॥ ११ ॥

अनन्तर कर्ण विद्ध सर्पके समान अत्यन्त क्रुद्ध होकर लौट पडे उस समय भीमसेन और राधापुत्र कर्णमें महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ११ ॥

तौ वृषाविव संक्रुद्धौ विवृत्तनयनावुभौ ।
वेगेन महतान्योन्यं संरब्धावभिपेततुः ॥ १२ ॥

वे दोनों विकृत दृष्टिसे परस्पर देखते हुए सांडोंके क्रोधित होकर एक दूसरेपर अत्यंत वेगपूर्वक आक्रमण करने लगे ॥ १२ ॥

अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ।
अभिन्नशरपातत्वाद्गदायुद्धमवर्तत ॥ १३ ॥

उस समय वे युद्धकुशल दोनों वीर परस्पर इतने अत्यन्त निकट आ गये कि उन लोगोंको बाण चलानेका बीचमें स्थान भी न रहा। इसलिये उन दोनोंमें गदायुद्ध शुरू हो गया ॥ १३ ॥

गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम् ।
बिभेदाशु तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥

राजन् ! अनन्तर भीमसेनने अपनी गदासे कर्णके रथका कूबर शीघ्रही तोड दिया, वह भीमसेनका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ १४ ॥

ततो भीमस्य राधेयो गदामादाय वीर्यवान् ।
अवासृजद्रथे तां तु बिभेद गदया गदाम् ॥ १५ ॥

तब महापराक्रमी राधापुत्र कर्णने भीमकी ही गदाको उठाकर उन्हींके रथकी ओर चलायी परंतु भीमने दूसरी गदासे उस गदाको नष्ट किया ॥ १५ ॥

ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाधिरथेर्गदाम् ।
तां शरैर्दशभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुसमाहितैः ।
प्रत्यविध्यत्पुनश्चान्यैः सा भीमं पुनराव्रजत् ॥ १६ ॥

फिर भीमसेनने अधिरथपुत्र कर्णपर एक भारी गदा चलाई, उसे देखकर कर्णने मनोहर पंखयुक्त महावेगशील उत्तम दस बाणोंसे और उसके अनन्तर दूसरे अनेक बाणोंसे उस गदाको विद्ध किया, इससे वह फिर भीमकी ओर ही लौट आयी ॥ १६ ॥

तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ।
पपात सारथिश्चास्य मुमोह गदया हतः ॥ १७ ॥

जब वह गदा भीमसेनके रथपर गिरी; तब उस गदाकी चोटसे भीमसेनका सारथी मूर्च्छित हुआ और उनके रथकी बडी ध्वजा टूटकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ १७ ॥

×

स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजत्क्रोधमूर्छितः ।
ध्वजे शरासने चैव शरावापे च भारत ॥ १८ ॥

भारत ! तब भीमसेनने अत्यंत क्रुद्ध होकर कर्णको आठ बाण मारे; और उन बाणोंसे सूतपुत्र कर्णके ध्वज, धनुष और तरकसको काटके गिरा दिया ॥ १८ ॥

ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः ।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ १९ ॥

अनन्तर राधापुत्र कर्णने दूसरा धनुष ग्रहण करके रथपर रक्खे हुए बाणोंसे भीमसेनके भालू वर्णवाले चारों घोडों और दोनों पृष्ठरक्षक योद्धाओंका शीघ्रही वध किया ॥ १९ ॥

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याप्लुतो रथम् ।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिंदमः ॥ २० ॥

इस प्रकार रथसे रहित होने पर शत्रुनाशन भीमसेन इस प्रकार अपने रथसे कूदके नकुलके रथपर चढ गये, जैसे सिंह पर्वतके शिखरपर चढ जाता है ॥ २० ॥

तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि ॥ २१ ॥

महाराज ! इधर युद्धमें महारथी गुरु और शिष्य द्रोणाचार्य और अर्जुन शीघ्रताके सहित परस्पर आघात करते हुए विचित्र युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥

लघुसंधानयोगाभ्यां रथयोश्च रणेन च ।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २२ ॥

वे दोनों वीर शीघ्रतापूर्वक बाण साधते, धनुषपर रखते, एक दूसरेकी ओर चलाते और रथकी विचित्र गतिसे युद्धभूमिके बीच घूमते तथा इन्द्रजालकी भांति अपने युद्ध कौशलसे सबके नेत्रों और मनको मोहित करते थे ॥ २२ ॥

उपारमन्त ते सर्वे योधास्माकं परे तथा ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २३ ॥

उस समय हमारे और शत्रुओंके सम्पूर्ण योद्धा लोग गुरु और शिष्यके उस अद्भुत तथा आश्चर्यमय संग्रामको देखते हुए संग्रामसे विरत हो गये ॥ २३ ॥

विचित्रान्पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्यतः ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदैषतुः ।
पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्तं सुविस्मिताः ॥ २४ ॥

वे दोनों वीर सेनाके बीचमें अपने रथकी विचित्र गतिसे भ्रमण करते हुए एक दूसरेको बाईं ओर करनेकी इच्छा करने लगे । उस समय दोनों सेनाके योद्धा लोग विस्मित होकर उन दोनों वीरोंके पराक्रमको देखने लगे ॥ २४ ॥

तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ।
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ॥ २५ ॥

महाराज ! मांसकी इच्छा करनेवाले आकाशमें लड़नेवाले दो बाज पक्षियोंकी भांति द्रोणाचार्य और अर्जुनका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ २५ ॥

यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ।
तत्तत्प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने कुन्तीपुत्र अर्जुनकी जीतनेकी इच्छासे जिन जिन अस्त्रोंको प्रकट किया, पाण्डुपुत्र अर्जुनने हंसते हुए शीघ्र ही अपने अस्त्रोंके प्रभावसे उनके सम्पूर्ण अस्त्रोंको निवारण किया ॥ २६ ॥

यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवस्य विशेषणे ।
ततः प्रादुष्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः ॥ २७ ॥

जब द्रोणाचार्य किसी भांति भी पाण्डुपुत्र अर्जुनसे अधिक न हो सके, तब अस्त्रमार्गोंके विद्वान्‌ने दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरंभ किया ॥ २७ ॥

ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ।
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात्तज्जघान धनंजयः ॥ २८ ॥

उस समय ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य और वारुणास्त्र आदि जितने अस्त्र द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर अर्जुनकी ओर चले, पराक्रमी अर्जुनने उन सम्पूर्ण अस्त्रोंको अपने दिव्य अस्त्रोंसे निवारण किया ॥ २८ ॥

अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ।
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत् ॥ २९ ॥

इसी भांति पाण्डुपुत्र अर्जुनने जब अपने अस्त्रोंके प्रभावसे द्रोणाचार्यके दिव्य अस्त्रोंको विधिपूर्वक निवारण किया, तब द्रोणाचार्यने परम दिव्यास्त्रोंको चला कर अर्जुनको छिपा दिया ॥ २९ ॥

यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ।
तस्यास्त्रस्य विघातार्थं तत्तत्स कुरुतेऽर्जुनः ॥ ३० ॥

उस समय द्रोणाचार्यने विजयकी इच्छासे जिन जिन अस्त्रोंको अर्जुनकी ओर चलाया, अर्जुनने उन अस्त्रोंके निवारण करने योग्य अपने दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करके आचार्यके चलाये हुए सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको निष्फल कर दिया ॥ ३० ॥

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ।
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत् ॥ ३१ ॥

अर्जुनके अस्त्रोंसे अपने विधिपूर्वक चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको भी निष्फल होते देख, द्रोणाचार्यने मनही मन अपने शिष्य अर्जुनकी प्रशंसा की ॥ ३१ ॥

मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामपि भारत ।
तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः समन्ततः ॥ ३२ ॥

भारत ! अपने शिष्य अर्जुनको युद्धविद्यामें अत्यन्त ही निपुण देखकर पृथ्वीके सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रज्ञ पुरुषोंसे अपनेको अधिक श्रेष्ठ समझने लगे ॥ ३२ ॥

वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ।
यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें स्थित थे, तो भी महात्मा वीरोंके बीच अर्जुनसे निवारित होकर प्रसन्न हुए और विस्मित होकर प्रेमसे उसे स्वयं निवारण करनेका यत्न करने लगे ॥ ३३ ॥

ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।
ऋषयः सिद्धसंघाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ॥ ३४ ॥

अनन्तर देवता, सहस्रों गन्धर्व ऋषि और सिद्ध लोग युद्ध देखनेकी अभिलाषासे आकाशमें स्थित हो गये ॥ ३४ ॥

तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षराक्षससंकुलम् ।
श्रीमदाकाशमभवद्भूयो मेघाकुलं यथा ॥ ३५ ॥

उस समय आकाशमण्डल अप्सरा, यक्ष और राक्षसोंसे परिपूर्ण होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगा; मानो उसमें बादलोंके समूह प्रकाशित हुए हैं ॥ ३५ ॥

तत्र स्मान्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः ।
द्रोणस्य स्तवसंयुक्ताः पार्थस्य च महात्मनः ।
विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ३६ ॥

उस समय आकाशमण्डलसे बार बार महात्मा द्रोणाचार्य और अर्जुनके स्तुतिसूचक आकाश-वाणी सुनाई देने लगी । उन दोनों महात्माओंके धनुषसे छूटे दिव्य अस्त्र सम्पूर्ण दशों दिशाओंको प्रकाशित करने लगे ॥ ३६ ॥

नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम्।
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम्।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥ ३७ ॥

"इस युद्धको न मानुष, न आसुर, न राक्षस, न देवी और न गान्धर्व युद्ध ही कहा जा सकता है, यह निश्चय ही परमश्रेष्ठ ब्राह्म युद्ध है। ऐसा विचित्र और विस्मय उत्पन्न करनेवाला संग्राम न कभी देखा गया और न सुना ही गया था ॥ ३७ ॥

अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाप्यति पाण्डवः।
नानयोरन्तरं द्रष्टुं शक्यमस्त्रेण केनचित् ॥ ३८ ॥

द्रोणाचार्य पाण्डुपुत्र अर्जुनसे और पाण्डुपुत्र अर्जुन भी द्रोणाचार्यसे बढकर हैं। उस समय रणभूमिमें उन दोनों महाबलवान् महात्मा पुरुषोंके अस्त्रके छिद्रको देखनेमें कोई समर्थ नहीं हुए ॥ ३८ ॥

यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येतात्मानमात्मना।
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥ ३९ ॥

यदि भगवान् रुद्र अपने दो रूप बना करके अपने सङ्ग आप ही युद्ध करें, तो उस युद्धसे इनकी उपमा हो सकती है; इसके अतिरिक्त और किसीके युद्धकी उपमा नहीं हो सकती ॥ ३९ ॥

ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥ ४० ॥

जिस भांति सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंका ज्ञान अकेले द्रोणाचार्यमें विद्यमान है, उसी भांति ज्ञान और योग दोनों ही अर्जुनमें प्रतिष्ठित हैं, द्रोणाचार्यमें सब शौर्य एक स्थानपर अधिष्ठित है, अर्जुनमें शौर्यके साथ बल भी है ॥ ४० ॥

नेमौ शक्यौ महेष्वासौ रणे क्षेपयितुं परैः।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥ ४१ ॥

इससे ये दोनों महाधनुर्द्धारी पुरुष रणभूमिके बीच दूसरे किन्हीं योद्धाओंसे नहीं मारे जा सकते; परन्तु ये दोनों यदि इच्छा करें तो देवताओंके सहित इस संपूर्ण जगत्का नाश कर सकते हैं ॥ ४१ ॥

इत्यब्रुवन्महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च संघशः ॥ ४२ ॥

महाराज! उन दोनों पुरुषश्रेष्ठ महाधनुर्धर पराक्रमी वीरोंको देखकर आकाशवासी तथा पृथ्वी पर स्थित संपूर्ण प्राणी मिलकर इसी भांतिके वचन आपसमें कहते हुए उन दोनोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४२ ॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः ।
संतापयन्रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४३ ॥

अनन्तर महाबुद्धिमान् द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें अर्जुन तथा आकाशवासी सम्पूर्ण प्राणियोंको संतप्त करते हुए ब्राह्म अस्त्र चलाया; ॥ ४३ ॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चापि चुक्षुभुः ॥ ४४ ॥

उससे पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी डोलने लगी, वायु प्रबल वेगसे बहने लगी और समुद्रका जल उथलित होने लगा ॥ ४४ ॥

ततस्त्रासो महानासीत्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ४५ ॥

उस समय जब महात्मा द्रोणाचार्यने ब्रह्म अस्त्र चलाया, तब कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धा तथा सम्पूर्ण प्राणी अत्यंत भयभीत हो गये ॥ ४५ ॥

ततः पार्थोऽप्यसंभ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! परन्तु अर्जुन युद्धभूमिमें तनिक भी विचलित नहीं हुए, बल्कि द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको अपने ब्रह्मास्त्रसे ही निवारण किया । फिर सब उत्पात शांत हो गया ॥ ४६ ॥

यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा ।
ततः संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥ ४७ ॥

इसी भांति वे दोनों पराक्रमी वीर जब एक दूसरेसे अधिक न हो सके, तब फिर संकुल युद्ध शूरू हुआ और वह युद्ध व्यापक बन गया ॥ ४७ ॥

नाज्ञायत ततः किंचित्पुनरेव विशां पते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥ ४८ ॥

महाराज ! उस समय जब समरमें द्रोणाचार्य और अर्जुनका तुमुल संग्राम होने लगा, तब वहां पर किसीको कुछ भी मालूम नहीं होता था ॥ ४८ ॥

शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाम्बरे ।
न स्म संपतते कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ७३२६ ॥

उस समय आकाशमण्डल बादलोंके समूहकी भांति द्रोणाचार्य और अर्जुनके बाणोंसे परिपूरित होगया; उस समय आकाशचारी प्राणी भी आकाशमण्डलमें गमन करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ४९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६३ ॥ ७३२६ ॥

: १६४ :

सञ्जय उवाच

तस्मिंस्तथा वर्तमाने नराश्वगजसंक्षये ।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! हाथी, घोडे और मनुष्योंके नाश करनेवाले उस वर्तमान संग्रामके समय दुःशासन धृष्टद्युम्नके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥

स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः ।
अमर्षात्तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २ ॥

उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध कर रहे थे, परन्तु तुम्हारे पुत्र दुःशासनके बाणोंसे पीडित होकर उन्होंने उनके घोडोंको क्रुद्ध होकर अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ २ ॥

क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः ।
नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३ ॥

महाराज ! क्षण भरके बीच ही धृष्टद्युम्नके बाणजालसे ध्वजा, सारथी और घोडोंके सहित दुःशासनका रथ ऐसा परिपूरित हो गया, कि उस समय तनिक भी न दीख पडा ॥ ३ ॥

दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
नाशक्नत्प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! उस समय दुःशासन महात्मा धृष्टद्युम्नके बाणजालसे अत्यंत पीडित होकर उनके सम्मुख खडे होनेमें भी समर्थ नहीं हुए ॥ ४ ॥

स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः ।
किरञ्शरसहस्राणि द्रोणमेवाभ्ययाद्रणे ॥ ५ ॥

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंसे दुःशासनको इस प्रकार विमुख करके, सहस्रों बाण चलाते हुए द्रोणाचार्य पर ही आक्रमण किया ॥ ५ ॥

प्रत्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा तदन्तरम् ।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन् ॥ ६ ॥

उसे देख हृदिकपुत्र कृतवर्मा और दुःशासनके तीन भाई इकठे होकर धृष्टद्युम्नको रोकने लगे ॥ ६ ॥

तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ७ ॥

उस समय जलती हुई अग्निकी भांति तेजस्वी धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यकी ओर गमन करते देख, पुरुषश्रेष्ठ नकुल और सहदेव धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके लिये उनके अनुगामी हुए ॥ ७ ॥

संप्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे सप्त महारथाः ।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥ ८ ॥

इसी भांति वे सब सात सत्त्वशाली महारथी योद्धा लोग क्रोधपूर्वक मृत्युको सामने रखकर आपसमें महाघोर संग्राम करने लगे ॥ ८ ॥

शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन्स्वर्गपुरस्कृताः ।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥ ९ ॥

राजन् ! एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले वे महाबलवान् महात्मा सदाचारसे युक्त, पराक्रमी योद्धा लोग स्वर्ग प्राप्तिकी अभिलाषा करके न्यायपूर्वक आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥

शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिपाः
धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेक्षन्तो गतिमुत्तमाम् ॥ १० ॥

वे सब उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए, धर्मात्मा, बुद्धिमान् और मनुष्योंके राजा थे, इससे उत्तम गति पानेकी अभिलाषासे सब कोई आपसमें धर्मयुद्ध करने लगे ॥ १० ॥

न तत्रासीदधर्मिष्ठमशस्त्रं युद्धमेव च ।
नात्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च बस्तकः ॥ ११ ॥

उस स्थलमें अधर्म पूर्ण और शस्त्ररहित युद्ध नहीं हुआ ! उस समय वहांपर कर्णी, नालीक, विषमें बुझाये हुए बाण और वस्तक नामक अस्त्रका प्रयोग नहीं होता था ॥ ११ ॥

न सूची कपिशो नात्र न गवास्थिर्गजास्थिकः ।
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥ १२ ॥

अनेक कांटोंसे युक्त सूची अस्त्र, बन्दरकी हड्डीसे बने हुए कपिश नामक अस्त्र, गोशृङ्ग तथा हाथीकी हड्डीके बने हुए किसी भांतिके भी दूषित अस्त्र नहीं थे; दो फलों या कांटों-वाला, दुर्गंधयुक्त और टेढाजानेवाला बाण भी वहां नहीं था ॥ १२ ॥

ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् ।
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥ १३ ॥

बल्कि उन सम्पूर्ण वीरोंने धर्मयुद्धमें कीर्ति और परलोक प्राप्त होनेकी अभिलाषासे शुद्ध और सरल अस्त्र शस्त्रोंको धारण किया था ॥ १३ ॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥

उस समय पाण्डवोंकी ओरके तीन महारथियोंके सङ्ग तुम्हारी सेनाके चार महारथियोंका जो तुमुल युद्ध चल रहा था, वह सब दोषोंसे रहित धर्मयुद्ध ही था ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु तान्हित्वा तव राजन्रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान्दृष्ट्वा शीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥

राजन् ! अनन्तर धृष्टद्युम्नने देखा, कि केवल नकुल सहदेव ही कुरुसेनाके चार महारथियोंको निवारण कर रहे हैं; उसे देख महापराक्रमी धृष्टद्युम्न हस्तलाघवके सहित अपने बाणोंको चलाते हुए द्रोणाचार्यकी ओर गमन किया ॥ १५ ॥

निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥ १६ ॥

वहां रोके गये वे तुम्हारी ओरके चारों महारथी योद्धा उन दोनों पुरुषसिंह पाण्डवोंकी ओर इस भांति वेगपूर्वक दौडे, जैसे प्रचण्ड वायु प्रबल वेगसे दो पर्वतोंसे टकरा रही हो ॥ १६ ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुंगवौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल और सहदेव दोनों भाई दो दो कौरव महारथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे; तब तक धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने पहुंच गये ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम् ।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज किरञ्शोणितभोजनान् ।
तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥ १९ ॥

उस ही समय राजा दुर्योधन अपने चारों महारथियोंको नकुल सहदेवके सङ्ग युद्ध करते देख और युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यकी ओर जाते देख, अपने रक्त पीनेवाले तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाते हुए वहांपर उपस्थित हुए। यह देख सात्यकि फिर शीघ्रताके सहित दुर्योधनकी ओर दौडे ॥ १८–१९ ॥

तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समगच्छताम् ॥ २० ॥

वे दोनों नरशार्दूल वृष्णि वंशी सात्यकि और कुरुवंशी राजा दुर्योधन आपसमें एक दूसरेके समीपमें संग्रामभूमिमें संमुख उपस्थित होके हंसते हुए निर्भयचित्तसे युद्ध करने लगे ॥ २० ॥

बाल्ये वृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च हसमानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥

वे दोनों वीर बालक अवस्थाके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको स्मरण करके अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और आपसमें एक दूसरेको देखकर बार बार हंसने लगे ॥ २१ ॥

×

अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं प्रत्यभाषत ।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन्वृत्तमात्मनः ॥ २२ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन अपने वर्तावकी सदा निन्दा करके अपने प्रिय सखा सात्यकिसे बोले ॥ २२ ॥

धिक्क्रोधं धिक्सखे लोभं धिङ्मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥ २३ ॥

हे मित्र ! क्रोध, लोभ, मोह और ईर्षाको धिक्कार है; और हम लोगोंके क्षत्रिय आचार तथा औरस बल पुरुषार्थको भी धिक्कार है ॥ २३ ॥

यत्त्वं मामभिसंधत्से त्वां चाहं शिनिपुंगव ।
त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाहं च सदा तव ॥ २४ ॥

शिनिश्रेष्ठ ! क्योंकि इस समय हम दोनों ही एक दूसरेके ऊपर बाण चलानेके लिये उद्यत हुए हैं। हम दोनों ही एक दूसरेको सदा प्राणोंसे भी बढके प्रिय रहे हैं ॥ २४ ॥

स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्ये वृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि सांप्रतं नौ रणाजिरे ।
किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युध्यामि त्वाद्य सात्वत ॥ २५ ॥

हम दोनोंके बचपनके वर्तावको अब मैं इस समय स्मरण कर रहा हूं; परन्तु इस रणभूमिमें उपस्थित होनेसे हम लोगोंके बाल्य अवस्थाकी मित्रता एकबारगी नष्ट होगई है; हे सात्वत ! क्योंकि इस समय हम लोग आपसमें युद्ध कर रहे हैं; इसमें क्रोध और लोभसे बढके हानिकारक वस्तु और कौनसी है ? ॥ २५ ॥

तं तथावादिनं राजन्सात्यकिः प्रत्यभाषत ।
प्रहसन्विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् ॥ २६ ॥

पूर्वोक्त बातें करनेवाले राजा दुर्योधनको परम अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले सात्यकिने तीक्ष्ण बाणोंको ऊपर उठाकर हंसते हंसते यह उत्तर दिया ॥ २६ ॥

नेयं सभा राजपुत्र न चाचार्यनिवेशनम् ।
यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन्समागतैः ॥ २७ ॥

हे राजपुत्र ! राजन् ! पहिले हम लोग जिस स्थानमें इकठे होकर खेलते थे, यह वह सभास्थान तथा आचार्यालय नहीं है ॥ २७ ॥

दुर्योधन उवाच

क्व सा क्रीडा गतास्माकं बाल्ये वै शिनिपुंगव ।
क्व च युद्धमिदं भूयः कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २८ ॥

दुर्योधन बोले— हे शिनिश्रेष्ठ सात्यकि ! हम लोगोंके बाल्य अवस्थाके खेल कहां चले गये ? इस समय सम्पूर्ण शूरवीरोंका नाश करनेवाला महाघोर युद्ध कहांसे उत्पन्न हुआ ? हाय ! इससे कालको अतिक्रम करना बहुत असाध्य कार्य है ॥ २८ ॥

किं नु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ।
यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात्समागताः ॥ २९ ॥

देखो, धनसे या धनलाभकी इच्छासे हम लोगोंको क्या कार्य है ? धनके लोभसे ही हम सब कोई रणभूमिके बीच इकट्ठे होकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ २९ ॥

सञ्जय उवाच

तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ।
एवंवृत्तं सदा क्षत्रं युद्धन्तीह गुरूनपि ॥ ३० ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! राजा दुर्योधनने जब ऐसा कहा, तब यदुवंशीय सात्यकि उनसे यह वचन बोले, हे राजेन्द्र ! क्षत्रियोंका सदा यही आचार है कि क्षत्रिय पुरुष रणभूमिके बीच गुरूके साथ भी अस्त्रशस्त्रोंसे युद्ध करते हैं ॥ ३० ॥

यदि तेऽहं प्रियो राजञ्जहि मां मा चिरं कृथाः ।
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान्गच्छेयं भरतर्षभ ॥ ३१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! यदि मैं तुम्हारा प्रिय मित्र हूं, तो तुम शीघ्र ही मेरा वध करो, बिलम्ब न करो ! ऐसा होनेसे मैं तुम्हारे हाथसे मरकर स्वर्गलोकमें गमन करूंगा ॥ ३१ ॥

या ते शक्तिर्बलं चैव तत्क्षिप्रं मयि दर्शय ।
नेच्छाम्येतदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ॥ ३२ ॥

तुम्हारी जितनी शक्ति और बल है, तुम शीघ्रही मुझपर वह दिखाओ; मैं अब मित्रोंके इस बहुत बडे व्यसनको नहीं देख सकता हूं ॥ ३२ ॥

इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ।
अभ्ययात्तूर्णमव्यग्रो निरपेक्षो विशां पते ॥ ३३ ॥

पृथ्वीपते ! सात्यकि राजा दुर्योधनसे ऐसा स्पष्ट वचन कहके निरपेक्ष और निर्भयचित्तसे शीघ्रही दुर्योधनकी ओर दौडे ॥ ३३ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य प्रत्यगृह्णात्तवात्मजः ।
शरैश्चावाकिरद्राजञ्शैनेयं तनयस्तव ॥ ३४ ॥

राजन् ! शिनिपौत्र सात्यकिको अपनी ओर वेगपूर्वक आते देख तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने रोका और उन्हें अनगिनत बाणोंसे आच्छादित किया ॥ ३४ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ।
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ॥ ३५ ॥

कौरव और यदुवंशकी कीर्त्तिको बढानेवाले वे दोनों पुरुषसिंह क्रोधी सिंह तथा मतवारे हाथीकी भांति परस्पर महाघोर संग्राम करने लगे ॥ ३५ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
दुर्योधनः प्रत्यविध्यद्दशभिर्निशितैः शरैः ॥ ३६ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधनने क्रुद्ध होकर कानपर्यन्त धनुष खींचकर दस चोखे बाणोंसे युद्धदुर्मद सात्यकिको विद्ध किया ॥ ३६ ॥

तं सात्यकिः प्रत्यविद्धत्तथैव दशभिः शरैः ।
पञ्चाशता पुनश्चाजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ॥ ३७ ॥

इसी भांति सात्यकिने भी युद्धमें पहिले दस, फिर पचास, उसके अनन्तर तीस और पीछे दस बाणोंसे कुरुराज दुर्योधनको विद्ध किया ॥ ३७ ॥

तस्य संदधतश्चेषुन्संहितेषुं च कार्मुकम् ।
अच्छिनत्सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाभ्यवीवृषत् ॥ ३८ ॥

उस समय बाण साधनेके समयमें ही सात्यकिने शीघ्रतापूर्वक बाणोंके सहित दुर्योधनके धनुषको काटके, फिर उन्हें अनेक बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ ३८ ॥

स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥ ३९ ॥

महाराज ! कुरुराज दुर्योधन सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर व्यथित हो गया और रथके भीतर चला गया ॥ ३९ ॥

समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥ ४० ॥

अनन्तर थोडी देरके बाद आराम लेकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने फिर सात्यकि पर धावा किया और उनके रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४० ॥

तथैव सात्यकिर्बाणान्दुर्योधनरथं प्रति ।
प्रततं व्यसृजद्राजंस्तत्संकुलमवर्तत ॥ ४१ ॥

राजन् ! इसी प्रकार सात्यकि भी लगातार उनके रथके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे; तब घोर युद्ध होने लगा ॥ ४१ ॥

तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च समन्ततः ।
अग्नेरिव महाकक्षे शब्दः समभवन्महान् ॥ ४२ ॥

जब उन दोनों पुरुषसिंहोंके धनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण सब ओरसे सेनाके पुरुषोंके ऊपर पडने लगे, उस समय सूखे काष्टके ढेरमें लगी हुई अग्निके भांति बडे जोरसे शब्द सुनाई देने लगा ॥ ४२ ॥

तत्राभ्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४३ ॥

अनन्तर रथियोंमें मुख्य यदुवंशीय सात्यकिको अधिक पराक्रम प्रकाशित करते देखकर कर्ण तुम्हारे पुत्रके जीवनरक्षाकी अभिलाषासे वहां पर शीघ्रताके सहित उपस्थित हुए ॥ ४३ ॥

न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन्सायकान्बहून् ॥ ४४ ॥

परन्तु महाबलवान् भीमसेन उसका यह कार्य सहन नहीं कर सके, इसलिये अनेक बाणोंको चलाते हुए शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर दौडे ॥ ४४ ॥

तस्य कर्णः शितान्बाणान्प्रतिहन्य हसन्निव ।
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाभ्यहनच्छरैः ॥ ४५ ॥

कर्णने हंसते हंसते उनके तीक्ष्ण बाणोंको नष्ट करके, बाणोंके सहित उनका धनुष काट दिया; फिर अनेक बाणोंसे उनके सारथीको भी मार डाला ॥ ४५ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः ।
ध्वजं धनुश्च सूतं च संममर्दाहवे रिपोः ॥ ४६ ॥

तब पाण्डुपुत्र भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गदा ग्रहण करके अपने शत्रु राधापुत्र कर्णके ध्वजा, धनुष और सारथीको भी विनष्ट किया ॥ ४६ ॥

अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत ।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ४७ ॥

कर्ण भीमसेनका यह पराक्रम सहन नहीं कर सके; वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक भांतिके बाणसमूह और नाना प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंको चलाते हुए युद्धभूमिमें भीमसेनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ४७ ॥

संकुले वर्तमाने तु राजा धर्मसुतोऽब्रवीत् ।
पाञ्चालानां नरव्याघ्रान्मत्स्यानां च नरर्षभान् ॥ ४८ ॥

जब इस भांतिसे वह युद्ध चल रहा था, तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर नरश्रेष्ठ मत्स्य और नरव्याघ्र पाञ्चाल देशीय योद्धाओंसे यह वचन बोले ॥ ४८ ॥

ये नः प्राणाः शिरो ये नो ये नो योधा महाबलाः ।
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः ॥ ४९ ॥

हे शूरवीर पुरुषो ! जो पुरुष श्रेष्ठ महाबलवान् योद्धा हम लोगोंके प्राण और मस्तक स्वरूप हैं, वे सब कोई कौरवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ ४९ ॥

किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ।
तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ॥ ५० ॥

अब तुम लोग मोहित होकर किस लिये युद्धभूमिमें मूढ और अचेत मनुष्योंकी भांति यहां स्थित हो ? जिस स्थान पर मेरी ओरके महारथी योद्धा लोग कौरवोंके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हैं तुम लोग शीघ्रताके सहित उस ही स्थान पर गमन करो ॥ ५० ॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ।
जयन्तो बध्यमाना वा गतिमिष्टां गमिष्यथ ॥ ५१ ॥

तुम लोग क्षत्रिय धर्मके अनुसार निर्भयचित्तसे युद्ध करके युद्धभूमिके बीच विजयी होओ अथवा मारे जाओ, तो अपनी इच्छाके अनुसार श्रेष्ठ गति पाओगे ॥ ५१ ॥

जित्वा च बहुभिर्यज्ञैर्यक्ष्यध्वं भूरिदक्षिणैः
हता वा देवसाद्भूत्वा लोकान्प्राप्स्यथ पुष्कलान् ॥ ५२ ॥

इससे तुम लोग युद्धभूमिमें शत्रुओंको जीत कर बहुतसी दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञोंको पूर्ण करते हुए जीवनका समय व्यतीत करो; अथवा शत्रुओंके हाथसे मारे जानेपर दिव्य शरीर धारण कर बहुतसे पवित्र लोक प्राप्त करो ॥ ५२ ॥

ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ।
चतुर्धा वाहिनीं कृत्वा त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ॥ ५३ ॥

उन सम्पूर्ण महारथी योद्धाओंने राआ युधिष्ठिरसे इस प्रकार उत्तेजित हो सेनाको चार हिस्सोंमें विभाजित करके युद्ध करनेके लिये शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥ ५३ ॥

पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्बहुभिः शरैः ।
भीमसेनपुरोगाश्च एकतः पर्यवारयन् ॥ ५४ ॥

एक ओरसे पाञ्चाल योद्धा अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यको मारने लगे और दूसरी ओरसे भीमसेन आदि योद्धाओंने उन्हें घेर लिया ॥ ५४ ॥

आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयोऽजिह्मा महारथाः ।
यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशन्त धनंजयम् ॥ ५५ ॥

अनन्तर पाण्डवोंकी ओरसे नकुल, सहदेव और भीमसेन, ये तीनों महारथी कौटिल्य व्यवहारका अवलम्बन करके ऊंचे स्वरसे अर्जुनको आवाहन करने लगे ॥ ५५ ॥

अभिद्रवार्जुन क्षिप्रं कुरुन्द्रोणादपानुद ।
तत एनं हनिष्यन्ति पाञ्चाला हतरक्षिणम् ॥ ५६ ॥

हे अर्जुन ! दौडो और शीघ्र ही यहांपर आके द्रोणाचार्यके समीपसे कौरवोंको भगाओ; क्योंकि जब द्रोणाचार्यके रक्षक मारे जायेंगे, तो पाञ्चाल योद्धा लोग अनायास ही उनका वध कर सकेंगे ॥ ५६ ॥

कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ।
पाञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ॥ ५७ ॥

तब अर्जुनने सहसा कौरव वीरोंपर आक्रमण किया; और द्रोणाचार्यने भी धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेके लिये उनकी ओर गमन किया ॥ ५७ ॥

पाञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत्कदनं महत् ।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ ५८ ॥

जैसे पहिले समयमें देवराज इन्द्रने क्रुद्ध होकर दानवोंका नाश किया था, वैसे ही द्रोणाचार्यने रणभूमिमें लगातार पाञ्चाल योद्धाओंका नाश किया ॥ ५८ ॥

द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
नात्रसन्त रणे द्रोणात्सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ ५९ ॥

महाराज ! परन्तु पराक्रमी महारथी पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे मारे जाते हुए भी युद्धमें उनसे भयभीत नहीं हुए ॥ ५९ ॥

वध्यमाना महाराज पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाभ्ययुर्युद्धे मोहयन्तो महारथम् ॥ ६० ॥

अनन्तर मारे जानेवाले पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग इकट्ठे होकर महारथी द्रोणाचार्यको युद्धमें मोहित करके उनकी ओर ही दौडे ॥ ६० ॥

तेषां तूत्साद्यमानानां पाञ्चालानां समन्ततः ।
अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरशक्तिभिः ॥ ६१ ॥
द्रोणाचार्यकी बाणशक्तिसे सब ओरसे मारे जानेवाले उन पाञ्चाल योद्धाओंका उस समय भयङ्कर आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥ ६१ ॥

वध्यमानेषु संग्रामे पाञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान्भयमाविशत् ॥ ६२ ॥
इसी भांति जब पाञ्चाल योद्धा युद्धमें महात्मा द्रोणाचार्य मारे जाने लगे और आचार्यके अस्त्र प्रकट होने लगे, उस समय पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भयभीत हो गये ॥ ६२ ॥

दृष्ट्वाश्वनरसंघानां विपुलं च क्षयं युधि ।
पाण्डवेया महाराज नाशंसुर्विजयं तदा ॥ ६३ ॥
महाराज ! उस समय युद्धमें घोडे और मनुष्य योद्धाओंके समूहोंका वह महान् संहार देख इकबारगी पाण्डव विजयकी आशासे निराश होगये ॥ ६३ ॥

कच्चिद्द्रोणो न नः सर्वान्क्षपयेत्परमास्त्रवित् ।
समिद्धः शिशिरापाये दहन्कक्षमिवानलः ॥ ६४ ॥
और मन ही मन चिन्ता करने लगे, कि जैसे ग्रीष्म ऋतुमें जलती हुई अग्नि तृण समूहको भस्म कर देती है, वैसे ही परम अस्त्रोंके जाननेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्य कहीं आज हम सब लोगोंका नाश न कर डाले ॥ ६४ ॥

न चैनं संयुगे कश्चित्समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥ ६५ ॥
इस समय युद्धमें दूसरा कोई पुरुष उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं है और धर्मके ज्ञाता अर्जुन कदापि द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध नहीं करेंगे ॥ ६५ ॥

त्रस्तान्कुन्तीसुतान्दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान् ।
मतिमाञ्श्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ६६ ॥
उस समय पाण्डवोंके हितकी अभिलाषा करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्र कुन्तीपुत्रोंको द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित और भयभीत देखकर अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ ६६ ॥

नैष युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः कथंचन ।
अपि वृत्रहणा युद्धे रथयूथपयूथपः ॥ ६७ ॥
हे पाण्डव ! धनुर्द्धारि और रथियोंमें अग्रणी द्रोणाचार्यको युद्धमें वृत्रासुर नाशक देवराज इन्द्र भी किसी प्रकार जीतनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ६७ ॥

आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डव ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ६८ ॥

अर्जुन ! इसलिये इस समय धर्म बुद्धिका त्याग कर जिस भांति सुवर्णमय रथमें स्थित द्रोणाचार्य तुम सब लोगोंका नाश न कर सकें, वैसाही उनपर विजय पानेके लिये उपाय करो ॥ ६८ ॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ।
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ॥ ६९ ॥

मुझे निश्चय होता है, कि अश्वत्थामाके मारे जानेपर द्रोणाचार्य युद्ध करनेमें समर्थ नहीं होंगे; इससे कोई पुरुष उनके समीप जाकर अश्वत्थामाके मारे जानेका वृत्तान्त उन्हें सुनावे ॥ ६९ ॥

एतन्नारोचयद्राजन्कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
अन्ये त्वरोचयन्सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ७० ॥

राजन् ! जब श्रीकृष्णने ऐसा वचन कहा, तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने किसी प्रकार उनके वचनोंको स्वीकार नहीं किया; परन्तु दूसरे सम्पूर्ण लोगोंने इसको पसंद किया; राजा युधिष्ठिरने भी अत्यन्त कष्टसे श्रीकृष्णके वचनको स्वीकार किया ॥ ७० ॥

ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ।
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ॥ ७१ ॥

राजन् ! तब महाबाहु भीमसेनने अपनी ही सेनाके एक अश्वत्थामा नामके महान् हाथीको गदासे मार डाला ॥ ७१ ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ ७२ ॥

उसे मारकर भीमसेन लज्जासे सिर नीचा करके युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके समीप जाकर ' अश्वत्थामा मारे गये; ' ऐसा ऊंचे स्वरसे बोले ॥ ७२ ॥

अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥ ७३ ॥

भीमसेन ऐसा वचन कहनेके समय अश्वत्थामा नामक विख्यात हाथी मारा गया, इस वचनको अपने मनहीमें कहके प्रकट रूपसे उन्होंने उस समय यह मिथ्या वचन कहा ॥ ७३ ॥

भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत्परमप्रियम् ।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद्यथा सैकतमम्भसि । ॥ ७४ ॥

द्रोणाचार्य भीमसेनके उस कठोर तथा अप्रिय वचनको सुनके जलयुक्त बालुकामय भूमि की भांति अपने मनही मन शोकित हो गये, उनका सारा शरीर शिथिल हो गया ॥ ७४ ॥

शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै ।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ ७५ ॥

परन्तु द्रोणाचार्य अपने पुत्रके बल पराक्रमको जानते थे, इस ही कारण अपने मनमें तर्क वितर्क करके और यह बात झूठी हो सकती है ऐसा मानके, अश्वत्थामाके मरनेका संवाद सुनके भी धैर्यरहित नहीं हुए ॥ ७५ ॥

स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत् ।
अनुचिन्त्यात्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥ ७६ ॥

क्षण भरके बीच द्रोणाचार्यने सावधान होकर अपने पुत्रके पराक्रमको शत्रुओंसे असह्य समझकर अपनेको संभाल लिया ॥ ७६ ॥

स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः ।
अवाकिरत्सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥ ७७ ॥

फिर धनुष–बाण ग्रहण करके युद्धभूमिमें स्थित, और अपनी मृत्युस्वरूप पृषतपुत्र धृष्टद्युम्नके संमुख जाकर उनके वधकी अभिलाषासे कङ्कपत्रयुक्त सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंको उनकी ओर चलाकर आच्छादित करने लगे ॥ ७७ ॥

तं वै विंशतिसाहस्राः पाञ्चालानां नरर्षभाः ।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतो व्यकिरञ्शरैः ॥ ७८ ॥

जब द्रोणाचार्य इस प्रकार रणभूमिके बीच भ्रमण करने लगे, तब उस समय बीस हजार नरश्रेष्ठ पाञ्चाल योद्धाओंने सब ओरसे अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया ॥ ७८ ॥

ततः प्रादुष्करोद्द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परंतपः ।
वधाय तेषां शूराणां पाञ्चालानाममर्षितः ॥ ७९ ॥

अनन्तर शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर उन शूरवीर पाञ्चाल योद्धाओंके नाश करनेकी इच्छासे भयङ्कर ब्राह्म अस्त्र प्रकट किया ॥ ७९ ॥

ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन्सर्वसोमकान् ।
शिरांस्यपातयच्चापि पाञ्चालानां महामृधे ।
तथैव परिघाकारान्बाहून्कनकभूषणान् ॥ ८० ॥

उस महाघोर संग्रामके समयमें सब सोमक सैनिकोंको मारते हुए द्रोणाचार्य शोभा युक्त दीखने लगे। उस समय द्रोणाचार्य पाञ्चाल योद्धाओंके सुवर्णवर्म युक्त परिघ समान भुजा और उनके शिर काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ८० ॥

ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः ।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ८१ ॥

समरमें द्रोणाचार्यसे मारे जानेवाले वे क्षत्रिय नरेश जैसे प्रचण्ड वायुके प्रबल वेगसे वृक्ष टूट टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं, वैसे ही धरतीपर गिरने लगे ॥ ८१ ॥

कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ ८२ ॥

भारत ! इसी भांति मरकर गिरते हुए हाथी और घोडोंके शरीरोंसे वह रणभूमि परिपूर्ण होके रुधिर और मांससे कीचडमयी होकर वहां चलना भी अशक्य हो गया ॥ ८२ ॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान्पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ८३ ॥

इसी भांति द्रोणाचार्य क्षणभरके बीच पांचालदेशीय बीस हजार रथी योद्धाओंका वध करके धूएंसे रहित जलती हुई अग्निकी भांति युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ ८३ ॥

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ ८४ ॥

अनन्तर प्रतापी भरद्वाजपुत्रने फिर क्रुद्ध होकर एक भल्लसे वसुदानका सिर धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ८४ ॥

पुनः पञ्चशतान्मत्स्यान्षट्सहस्रांश्च सृञ्जयान् ।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः ॥ ८५ ॥

और पांच सौ मत्स्यदेशीय योद्धा, छः हजार सृञ्जय, दस हजार हाथी और दस हजार घुडसवारोंको प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ८५ ॥

क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागमंस्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ८६ ॥

उस समय द्रोणाचार्यको क्षत्रियोंके नाश करनेमें प्रवृत्त देखकर भगवान् अग्निको आगे करके अनेक महर्षि शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके निकट उपस्थित हुए ॥ ८६ ॥

विश्वामित्रो जमदग्निर्भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥ ८७ ॥

विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि ये उन्हें ब्रह्मलोक ले जानेकी इच्छासे वहां आये ॥ ८७ ॥

सिकताः पृश्नयो गर्गा बालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः ॥ ८८ ॥

इनके साथ सिकत, पृश्नि, गर्ग, बालखिल्य, मरीचिप, भृगु और अङ्गिरा गोत्रीय तथा सूक्ष्म शरीर धारण करनेवाले महर्षि लोग भी वहां आये थे ॥ ८८ ॥

त एनमब्रुवन्सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥ ८९ ॥

उन सबने युद्धमें शोभित होनेवाले द्रोणाचार्यसे यह वचन बोले– हे द्रोण ! तुमने अधर्मसे युद्ध किया है, अब तुम्हारा मरणकाल उपस्थित हुआ है ॥ ८९ ॥

न्यस्यायुधं रणे द्रोण समेत्यास्मानवस्थितान् ।
नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ९० ॥

इस समय अस्त्रशस्त्र परित्याग करके यहां खडे हुए हम लोगोंके साथ चलो इसके अनन्तर इस क्रूरकर्ममें प्रवृत्त न होना ॥ ९० ॥

वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मपरस्य च ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ९१ ॥

तुम वेद–वेदाङ्गोंके जाननेवाले विशेष करके सत्यधर्ममें रत ब्राह्मण हो; इससे यह युद्धका क्रूर कर्म तुम्हारे करने योग्य नहीं है ॥ ९१ ॥

न्यस्यायुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते ।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥ ९२ ॥

हे अमोघबाणवाले ! आज तुम्हारा मनुष्य लोकमें निवास करनेका समय पूर्ण हो गया, इससे अस्त्रशस्त्र त्यागके सत्यपथमें स्थित हो जाओ ॥ ९२ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत् ।
धृष्टद्युम्नं च संप्रेक्ष्य रणे स विमनाभवत् ॥ ९३ ॥

उन ऋषियोंके उपदेश और भीमसेनके पूर्वोक्त वचनोंको सुनके, विशेष करके युद्धभूमिमें धृष्टद्युम्नको संमुख स्थित देख द्रोणाचार्य उदास मन हो गये ॥ ९३ ॥

स दह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ९४ ॥

इस ही समय द्रोणाचार्यने शोकरूपी अग्निसे भस्म तथा कातर होके अपने पुत्रके मारे जाने या नहीं मारे जानेका वृत्तान्त कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे पूछा ॥ ९४ ॥

स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम् ।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथंचन ॥ ९५ ॥

द्रोणाचार्यको यह दृढ विश्वास था, कि पृथापुत्र युधिष्ठिर तीनों लोकोंके ऐश्वर्य मिलनेके लिये भी कदापि मिथ्या वचन नहीं कहेंगे ॥ ९५ ॥

तस्मात्तं परिपप्रच्छ नान्यं कंचिद्विशेषतः ।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात्प्रभृति पाण्डवे ॥ ९६ ॥

क्योंकि द्रोणाचार्य बालक अवस्थासे ही युधिष्ठिरको सत्यवादी समझते थे; इस ही कारण और किसीके वचनका विश्वास न करके उन्होंने विशेष करके राजा युधिष्ठिरसे ही अश्वत्थामाके विषयमें प्रश्न किया ॥ ९६ ॥

ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधां पतिम् ।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥ ९७ ॥

उस ही समय श्रीकृष्ण योद्धाओंमें अग्रणी द्रोणाचार्य इस पृथ्वीको पाण्डवोंसे सूनी कर देनेके लिये उद्यत हैं, यह जानकर कातरताके सहित धर्मराज युधिष्ठिरसे यह वचन बोले ॥ ९७ ॥

यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः ।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥ ९८ ॥

महाराज ! मैं तुमसे सत्य वचन कहता हूं, कि यदि द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर अर्ध दिवस और युद्ध करेंगे; तो तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर देंगे ॥ ९८ ॥

स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं भवेत् ।
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ९९ ॥

इससे द्रोणाचार्यसे अपना परित्राण करनेके लिये तुम्हें सत्यकी अपेक्षा मिथ्या वचन बोलना कल्याणकारी है; प्राण रक्षाके लिये मिथ्या वचन बोलनेवालेको झूठका पाप नहीं लगता ॥ ९९ ॥

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ।
श्रुत्वैव तं महाराज वधोपायं महात्मनः ॥ १०० ॥

महात्मा द्रोणाचार्यके विषयमें श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर इसी भांतिसे वार्त्तालाप कर रहे थे; उस ही समय उनके वचनोंको सुनकर भीमसेन राजा युधिष्ठिरसे बोले, महाराज ! मैंने महात्मा द्रोणाचार्यके वधका ऐसा उपाय सुना ॥ १०० ॥

गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ।
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः ॥ १०१ ॥

और तुम्हारी सेनाके बीच प्रविष्ट हुए मालव देशीय इन्द्रवर्मा राजाके अश्वत्थामा नामक विख्यात ऐरावत हाथीके समान शक्तिशाली था ॥ १०१ ॥

निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ।
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाहवादिति ॥ १०२ ॥

युद्धमें पराक्रम करके बध किया । फिर द्रोणाचार्यके समीप गमन करके उनसे यह वचन कहा था, कि "हे ब्रह्मन् ! अश्वत्थामा मारे गये इससे अब आप युद्धसे निवृत्त होइये" ॥ १०२ ॥

नूनं नाश्रद्दधद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ।
स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः ॥ १०३ ॥

परन्तु पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने निश्चय ही मेरे वचन पर विश्वास नहीं किया । इससे आप हम लोगोंके विजयकी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णके वचनको मान लिजिये ॥ १०३ ॥

द्रोणाय निहतं शंस राजञ्छारद्वतीसुतम् ।
त्वयोक्तो नैष युध्येत जातु राजन्द्विजर्षभः ।
सत्यवान्हि नृलोकेऽस्मिन्भवान्ख्यातो जनाधिप ॥ १०४ ॥

और द्रोणाचार्यसे "अश्वत्थामा मारे गये" ऐसा वचन कहिये । राजन् ! जब आप ऐसा कहेंगे, तब ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य कदापि युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि इस मनुष्य लोकमें आप सत्यवादी कहके विख्यात हैं ॥ १०४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः ।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ १०५ ॥

महाराज ! राजा युधिष्ठिर भीमसेनके वचनको सुनके, विशेष करके श्रीकृष्णकी अनुमति और अवश्यम्भावीके कारणसे मिथ्या बोलनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १०५ ॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत ॥ १०६ ॥

उस समय धर्मराज युधिष्ठिर मिथ्या वचन बोलनेके भयसे व्यग्र और विजयकी आशासे आसक्त होकर, मनमें हाथीका नाम लेकर प्रकटमें "अश्वत्थामा मारे गये" ऐसा वचन बोले ॥ १०६ ॥

तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरङ्गुल उत्तरः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहास्पृशन्महीम् ॥ १०७ ॥

इसके पहिले राजा युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊपर उठे रहता था, परन्तु इस समय ऐसा मिथ्या भाषण करनेके कारण उनके रथके घोडे पृथ्वीको स्पर्श करके भूमिपर चलने लगे ॥ १०७ ॥

युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसंतप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥ १०८ ॥

इधर महारथी द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके मुखसे पुत्रके विषयमें ऐसी विपदवार्ता सुनके पुत्रशोकसे दुःखित हो अपने जीवनसे निराश हो गये ॥ १०८ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्यं च मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥ १०९ ॥

अपने पुत्रके मारे जानेकी बात सुनकर, विशेष करके ऋषियोंके वचनको सुनकर उन्होंने स्वयंको महात्मा पाण्डवोंका अपराधी समझा ॥ १०९ ॥

विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाशक्नुवद्राजन्यथापूर्वमरिंदम ॥ ११० ॥

वे अत्यन्त ही उद्विग्न और चेतरहितके समान हो गये; उस पर भी धृष्टद्युम्नको सम्मुख देखकर शत्रुदमन द्रोणाचार्य पहिलेकी भांति युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ११० ॥

संजय उवाच

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १११ ॥
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥ ११२ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! राजा द्रुपदने देवताओंकी आराधना करके महायज्ञमें जिस पुत्रको पाया था; जो द्रोणाचार्यके वधके लिये जलती हुई यज्ञकी अग्निसे उत्पन्न हुए थे, उन ही पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको पुत्रशोकसे अत्यन्त व्याकुल और चेतरहितके समान देखकर उनपर आक्रमण किया ॥ १११–११२ ॥

स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ११३ ॥

उन्होंने इन्द्रधनुषके समान भयङ्कर टङ्कार शब्दसे युक्त, दिव्य, विजयी, सुदृढ प्रत्यञ्चासे युक्त, अजर धनुष और शत्रुओंका नाश करनेवाले विषधर सर्पके समान भयङ्कर बाणोंको ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ११३ ॥

संदधे कार्मुके तस्मिञ्शरमाशीविषोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो महाज्वालमिवानलम् ॥ ११४ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करके धृष्टद्युम्नने विषधर सर्पके समान भयंकर और प्रचण्ड लपटोंवाले अग्निके समान प्रकाशमान एक बाणको धनुषपर चढाया ॥ ११४ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीद्धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।
द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेशिनः ॥ ११५ ॥

उस समय धृष्टद्युम्नके रोंदे युक्त धनुषके मण्डलाकार घेरेके बीचमें स्थित वह तेजस्वी बाण शरद्कालके परिधिस्थित तीक्ष्ण किरणधारी सूर्यकी भांति शोभित हुआ ॥ ११५ ॥

पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः ।
अन्तकालमिव प्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ११६ ॥

तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण सैनिकोंने धृष्टद्युम्नको उस प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी धनुषको धारण किया हुआ देख समझा, कि अब अन्तिम समय उपस्थित हुआ है ॥ ११६ ॥

तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वामन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥ ११७ ॥

प्रतापी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने भी उस बाणको धृष्टद्युम्नसे धनुषपर रखा गया देखकर मान लिया कि अब इस देहका काल आ गया है ॥ ११७ ॥

ततः स यत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे ।
न चास्यास्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥ ११८ ॥

राजेन्द्र ! अनन्तर महात्मा द्रोणाचार्य उस बाणको निवारण करनेके लिये विशेष यत्न करने लगे; परन्तु उन महात्माके अस्त्र उस समय प्रकट नहीं हुए ॥ ११८ ॥

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता ।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥ ११९ ॥

उन्होंने चार दिन और एक रात्रि लगातार अपने बाणोंको चलाया था, पाचवें दिनके तीन भाग बीतनेपर उनके बाण निःशेषित हुए ॥ ११९ ॥

स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चार्दितः ।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसन्नताम् ॥ १२० ॥

इसी भांति वह बाणरहित, पुत्रशोकसे दुःखित और चित्तकी व्यग्रता तथा अनेक भांतिके दिव्य अस्त्र प्रकट न होनेके कारण ॥ १२० ॥

उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि विप्रवाक्याभिचोदितः ।
तेजसा प्रेर्यमाणश्च युयुधे सोऽतिमानुषम् ॥ १२१ ॥

और ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार शस्त्र परित्याग करनेकी इच्छा करके द्रोणाचार्यने पहिलेकी भांति अपने तेज तथा पराक्रमके अनुसार अतिमानुष युद्ध किया ॥ १२१ ॥

अथान्यत्स समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान्धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२२ ॥

उस समय द्रोणाचार्य फिर आङ्गिरस नामक दिव्य धनुष और ब्रह्मदण्डके समान बाणोंको ग्रहण करके धृष्टद्युम्नके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १२२ ॥

ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणः ॥ १२३ ॥

अमर्षी उन्होंने क्रुद्ध होकर मुहूर्तभरके बीच धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंकी भारी वर्षासे छिपाकर उसे क्षत विक्षत कर दिया ॥ १२३ ॥

तं शरं शतधा चास्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाप्यपातयत् ॥ १२४ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यने अपने चोखे बाणोंके प्रभावसे धृष्टद्युम्नके उस बाण, ध्वज और धनुषके सैकडों खण्ड कर डालें; फिर उनके सारथीको भी मार गिरा दिया ॥ १२४ ॥

धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत्पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ १२५ ॥

तब धृष्टद्युम्नने हंसकर दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके तेज धारवाले बाणोंसे द्रोणाचार्यके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ १२५ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः संभ्रान्त इव संयुगे ।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य महद्धनुः ॥ १२६ ॥

महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य युद्धमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर व्याकुल रहे । परन्तु क्षणभरके बाद उन्होंने तेज धारवाले भल्लसे फिर धृष्टद्युम्नके धनुषको काट दिया ॥ १२६ ॥

यच्चास्य बाणं विकृनं धनूंषि च विशां पते ।
सर्वं संछिद्य दुर्धर्षो गदां खड्गमथापि च ॥ १२७ ॥

उस समय दुर्धर्ष द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नकी गदा और तलवार, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों तथा धनुष, तरकस, बाणको भी काटके गिरा दिये ॥ १२७ ॥

धृष्टद्युम्नं ततोऽविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ।
जीवितान्तकरैः क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ १२८ ॥

फिर शत्रुतापन द्रोणने क्रुद्ध होकर क्रोधित धृष्टद्युम्नको जीवनका अन्त करनेवाले तीक्ष्ण नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ १२८ ॥

धृष्टद्युम्नरथस्याश्वान्स्वरथाश्वैर्महारथः ।
अमिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १२९ ॥

अनन्तर अमेयात्मा महारथी द्रोणने ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने घोडोंको धृष्टद्युम्नके रथके घोडोंके संग मिला दिया ॥ १२९ ॥

ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्च भरतर्षभ ॥ १३० ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय पारावत और लाल वर्णके वायुके समान वेगशाली वे घोडे परस्पर मिलकर अत्यन्त ही शोभित हुए ॥ १३० ॥

यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे ।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ १३१ ॥

महाराज ! शरद् ऋतुके आरम्भमें बिजलीसे युक्त गर्जते हुए बादलोंकी जैसी शोभा होती है, वैसे ही रणभूमिके बीच उन दोनों महात्माओंके घोडोंके एक ही स्थानपर मिलनेसे अत्यन्त ही शोभा हुई ॥ ९३१ ॥

ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ १३२ ॥

इस ही समय अमेयात्मा ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके रथके ईषाबन्ध, चक्रबन्ध और रथबन्धको नष्ट कर दिया ॥ १३२ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ १३३ ॥

तब महावीर पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने धनुष, ध्वजा और सारथीसे रहित होकर उस भयङ्कर विपदके समयमें हाथमें गदा ग्रहण की ॥ १३३ ॥

तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ १३४ ॥

सत्य पराक्रमी महारथी द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर अपने तेज बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी चलायी हुई गदाको भी काटके गिरा दिया ॥ १३४ ॥

तां दृष्ट्वा तु नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ १३५ ॥

उस गदाको द्रोणाचार्यके बाणोंसे नष्ट हुई देख पुरुषसिंह धृष्टद्युम्नने प्रकाशमान तलवार और एक सौ चन्द्र प्रतिमाभूषित ढालको ग्रहण किया ॥ १३५ ॥

असंशयं तथाभूते पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ १३६ ॥

वैसी अवस्थामें पाञ्चाल राजपुत्रने आचार्यश्रेष्ठ महात्मा द्रोणके वधका यही समय आ पहुंचा है, ऐसा निःसंशय उचित मान लिया ॥ १३६ ॥

ततः स्वरथनीडस्थः स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ १३७ ॥

फिर उनके वधकी अभिलाषासे रथपर बैठे हुए धृष्टद्युम्नने उस प्रकाशमान तलवार और सौ चन्द्र चिन्हांकित ढालको ग्रहण करके रथके दण्डके सहारेसे द्रोणाचार्यके समीप गमन किया ॥ १३७ ॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥ १३८ ॥

महारथी धृष्टद्युम्नने अत्यंत कठिन कर्म करनेकी इच्छासे युद्धमें द्रोणाचार्यके वृक्षस्थल भेदनेका विचार किया ॥ १३८ ॥

सोऽतिष्ठद्युगमध्ये वै युगसंनहनेषु च ।
शोणानां जघनार्धेषु तत्सैन्याः समपूजयन् ॥ १३९ ॥

वे रथके जूएके बीचमें, जूएके बन्धनोंपर और द्रोणाचार्यके लाल घोडोंके पिछले भागोंपर खडे हो गये । धृष्टद्युम्नके इस कठिन कर्मको देखकर सब योद्धा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३९ ॥

तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नापश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४० ॥

उस समय धृष्टद्युम्न जूएके मध्यभागमें और द्रोणाचार्यके लाल घोडोंपर खडे थे; उस समय द्रोणाचार्य उनके ऊपर प्रहार करनेके लिये कोई छिद्र नहीं देख सके; यह एक अद्भुत बात हुई ॥ १४० ॥

क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवामिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणं पार्षतो रणे ॥ १४१ ॥

जैसे बाजपक्षी मांसकी इच्छासे इधर उधर भ्रमण करते हुए बडे वेगसे आक्रमण करता है, वैसे ही धृष्टद्युम्न भी द्रोणाचार्यके वधकी अभिलाषासे युद्धमें उनकी ओर वेगपूर्वक झपटते हुए दीख पडे ॥ १४१ ॥

तस्याश्वान्रथशक्त्यासौ तदा क्रुद्धः पराक्रमी ।
सर्वानेकैकशो द्रोणः कपोताभानजीघनत् ॥ १४२ ॥

अनन्तर क्रुद्ध, पराक्रमी द्रोणाचार्यने रणशक्तिके प्रहारसे धृष्टद्युम्नके कबुतरके समान रंगवाले सभी घोडोंको मार डाला ॥ १४२ ॥

ते हता न्यपतन्भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणाश्च पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशां पते ॥ १४३ ॥

पृथ्वीपते ! धृष्टद्युम्नके वे घोडे मारे जाकर पृथ्वीमें गिर पडे, और द्रोणाचार्यके लाल रंगवाले घोडे रथके बन्धनसे मुक्त हो गये ॥ १४३ ॥

तान्हयान्निहतान्दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।
नामृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ १४४ ॥

द्विजसत्तम द्रोणाचार्यसे अपने घोडोंको मारा गया देख योद्धाओंमें मुख्य पार्षतवंशी महारथी द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न सहन नहीं कर सके ॥ १४४ ॥

विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वरः ।
द्रोणमभ्यपतद्राजन्वैनतेय इवोरगम् ॥ १४५ ॥

राजन् ! खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न रथ भ्रष्ट होकर भी केवल तलवारको ही ग्रहण करके इस प्रकार द्रोणाचार्यकी ओर दौडे, जैसे गरुड सर्पकी ओर दौडता है ॥ १४५ ॥

तस्य रूपं बभौ राजन्भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं परं विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥ १४६ ॥

महाराज ! जैसे पहिले समयमें हिरण्यकश्यपुके वधके समय विष्णुका भयंकर स्वरूप दीख पडा था, द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाले धृष्टद्युम्नका भी उस समय वैसा ही भयङ्कर रूप दिखाई देने लगा ॥ १४६ ॥

सोऽचरद्विविधान्मार्गान्प्रकारानेकविंशतिम् ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ॥ १४७ ॥
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ।
संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ॥ १४८ ॥

उस समय धृष्टद्युम्नने विविध गति विशेषसे तलवारके अनेक प्रकारके इक्कीस हाथ करके दिखाये । उन्होंने ढाल-तलवार लेकर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्रसृत, सृत, परिवृत्त, निवृत्त, सम्पात, समुदीर्ण आदि मार्गोंको दिखलाया ॥ १४७-१४८ ॥

ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ।
खड्गं चर्म च संबाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ १४९ ॥

अनन्तर उस संकटके समय द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने एक हजार बाणोंको चलाकर धृष्टद्युम्नके हाथमें स्थित उस प्रकाशमान तलवार और एक सौ चन्द्र प्रतिमाभूषित ढालको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १४९ ॥

ते तु वैतस्तिका नाम शरा ह्यासन्नघातिनः ।
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः ॥ १५० ॥

निकटसे युद्ध करते समय उपयोगमें आनेवाले जो बारह अंगुलके परिमाणवाले होते हैं वे वैतस्तिक नामक रहते हैं; समीपसे युद्ध करनेमें कुशल द्रोणाचार्यके पासही वे थे, किसी दूसरोंके नहीं ॥ १५० ॥

शारद्वतस्य पार्थस्य द्रौणेर्वैकर्तनस्य च ।
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च ते शराः ॥ १५१ ॥

ये वितस्तिक नामक बाण केवल कृपाचार्य, कुन्तीपुत्र अर्जुन, अश्वत्थामा, वैकर्तन कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि और अभिमन्युके पास थे, इन पुरुषोंके अतिरिक्त और दूसरे किसी पुरुषके निकट ये बाण नहीं थे ॥ १५१ ॥

अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसंशितम् ।
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसंमितम् ॥ १५२ ॥

फिर द्रोणाचार्यने अपने पुत्रतुल्य शिष्य पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नके वधकी इच्छा करके धनुषपर अत्यंत उत्तम दृढ बाण रक्खा ॥ १५२ ॥

तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुंगवः ।
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ १५३ ॥

परन्तु शिनिपौत्र सात्यकिने महात्मा कर्ण और तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके सम्मुखमें ही उस बाणको दस बाणोंसे काट करके, आचार्य श्रेष्ठके द्वारा प्राणसंकटमें पडे हुए धृष्टद्युम्नको बचा लिया ॥ १५३ ॥

चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च भारत ।
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनंजयौ ॥ १५४ ॥

भारत ! सत्यपराक्रमी सात्यकि द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्य आदि महारथियोंकी मण्डलीके बीच रथ मार्गोंपर भ्रमण करते थे; उन्हें महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखा ॥ १५४ ॥

अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधु साध्विति ।
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम् ।
अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनंजयौ ॥ १५५ ॥

और धन्य धन्य कहकर सात्यकिकी अत्यंत प्रशंसा करने लगे । सात्यकि युद्धमें निर्भय चित्तसे उन सब शत्रुओंके चलाये हुए दिव्यास्त्रोंका निवारण करते थे; अनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुनने शत्रुसेनापर आक्रमण किया ॥ १५५ ॥

धनंजयस्ततः कृष्णमब्रवीत्पश्य केशव ।
आचार्यवरमुख्यानां मध्ये क्रीडन्मधूद्वहः ॥ १५६ ॥

तब अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, हे केशव ! देखो, यह मधुवंशी श्रेष्ठ सात्यकि आचार्यकी रक्षा करनेवाले मुख्य महारथियोंके बीचमें खेल रहा है ॥ १५६ ॥

आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ १५७ ॥

सत्यपराक्रमी सात्यकि नकुल, सहदेव, भीमसेन, राजा युधिष्ठिर और मुझको भी अत्यन्त ही आनन्दित कर रहा है ॥ १५७ ॥

यच्छिक्षयानुद्धतः सन्रणे चरति सात्यकिः ।
महारथानुपक्रीडन्वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥ १५८ ॥

यह वृष्णिवंशकी कीर्तिको बढानेवाला सात्यकि उत्तम शिक्षासे युक्त अहंकार रहित हो महारथियोंके सङ्ग मानो खेलवाडकी भांति युद्ध करते हुए युद्धभूमिके बीच भ्रमण कर रहा है ॥ १५८ ॥

तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः।
अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधु साध्विति सात्वतम्।
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥ १५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ ७४८५ ॥

यह देखो, सम्पूर्ण सिद्ध और सैनिक लोग सात्यकिको आश्चर्यचकित हो युद्धमें अपराजित समझकर धन्य धन्य कहके उसकी प्रशंसा कर रहे हैं; तथा दोनों सेनाके योद्धा भी सात्यकिके अलौकिक युद्धको देखकर उसकी अत्यन्त ही प्रशंसा कर रहे हैं ॥ १५९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥ ७४८५ ॥

: १६५ :

सञ्जय उवाच

क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन्राजसमागमे।
रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तु पशून्यथा ॥ १ ॥

संजय बोले— राजाओंमें युद्ध शुरू होनेपर वहांकी भूमि, जैसे पहले क्रोधित रुद्रदेव सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश करते समय निर्दयताका दृश्य दीखता था, उसी प्रकार बोध होने लगी ॥ १ ॥

हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत।
छत्राणां चापविद्धानां चामराणां च संयुगे ॥ २ ॥

भारत ! कटे पडे हुए बहुतेरे पुरुषोंके भुजा, सिर, धनुष, छत्र और चंवर, उस समरमें दिखायी दे रहे थे ॥ २ ॥

भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः।
सादिभिश्च हतैः शूरैः संकीर्णा वसुधाभवत् ॥ ३ ॥

टूटे हुए चक्रवाले रथ, गिराये हुए महान् ध्वज और मारे गये शूर घुडसवारोंसे वह रणभूमि परिपूरित हो गयी ॥ ३ ॥

बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम।
चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे ॥ ४ ॥

उस समय बाणोंकी चोटसे घायल होके बहुतेरे योद्धा उस महान् रणभूमिमें पडे हुए विविध प्रकारसे हल चल करते हुए दिखाई देने लगे ॥ ४ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ।
अब्रवीत्क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ ५ ॥

उस देवासुर-संग्रामके समान भयङ्कर युद्धके समय धर्मराज युधिष्ठिर युद्धभूमिमें क्षत्रिय योद्धाओंको आवाहन करके उनसे यह वचन बोले, हे शूरवीर महारथी योद्धा लोगो ! तुम सब कोई यत्नवान् होकर द्रोणाचार्यकी ओर दौडो ॥ ५ ॥

एष वै पार्षतो वीरो भारद्वाजेन संगतः ।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥ ६ ॥

यह देखो, पृषतकुलभूषण वीर धृष्टद्युम्न भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होकर उन्हें नष्ट करनेकी अभिलाषासे शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे हैं ॥ ६ ॥

यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्ते नो महारणे ।
अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धः पातयिष्यति पार्षतः ।
ते यूयं सहिता भूत्वा कुम्भयोनिं परीप्सत ॥ ७ ॥

इस समय युद्धभूमिमें धृष्टद्युम्नके रूप जैसे भयङ्कर दीख पडते हैं, उससे यह मुझे निश्चय बोध होरहा है, कि धृष्टद्युम्न आज रणभूमिके बीच क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यका वध करेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है; इससे तुम सब कोई इकट्ठे होकर द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होजाओ ॥ ७ ॥

युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजं जिघांसवः ॥ ८ ॥

जब राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाके पुरुषोंको ऐसी आज्ञा दी, तब महारथी सृंजय योद्धा लोग अत्यन्त यत्नवान् होकर द्रोणाचार्यको मार डालनेकी अभिलाषासे उनपर टूट पडे ॥ ८ ॥

तान्समापततः सर्वान्भारद्वाजो महारथः ।
अभ्यद्रवत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः ॥ ९ ॥

जब वे सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकार द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने लगे, तब महारथी भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य मरनेका निश्चय करके वेगपूर्वक उन योद्धाओंकी ओर बढे ॥ ९ ॥

प्रयाते सत्यसंधे तु समकम्पत मेदिनी ।
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयन्तो वरूथिनीम् ॥ १० ॥

सत्यपराक्रमी द्रोणाचार्यके पाञ्चाल और सृञ्जयोंकी सेनाकी ओर गमन करनेके समय सम्पूर्ण सेनाको भयभीत करती हुई वायु वज्रपातकी आवाजके साथ प्रचण्ड वेगसे बहने लगी और पृथ्वी कांपने लगी ॥ १० ॥

पपात महती चोल्का आदित्यान्निर्गतेव ह ।
दीपयन्तीव तापेन शंसन्तीव महद्भयम् ॥ ११ ॥

इस ही समय दोनों सेनाओंको सन्तापित करती और प्रकाशित करती हुई अत्यंत बडी उल्का सूर्यमण्डलसे निकलकर, महान् भयकी सूचना देती हुई पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ११ ॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ।
रथाः स्वनन्ति चात्यर्थं हयाश्चाश्रूण्यवासृजन् ॥ १२ ॥

मारिष ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण अस्त्र उस समय प्रज्वलित होने लगे, उनके रथका भयङ्कर शब्द सुनाई देने लगा, और रथके घोडोंकी आंखोंसे आंसुकी धारा बहती हुई दिखाई देती थी ॥ १२ ॥

हतौजा इव चाप्यासीद्भारद्वाजो महारथः ।
ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति ।
सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ १३ ॥

उस समय महारथी द्रोणाचार्य स्वयं भी निस्तेजसे होगये; और ब्रह्मवादी ऋषियोंके स्वर्ग लोकमें गमन करनेके विषयमें कहे हुए वचनोंका स्मरण करके उन्होंने धर्मयुद्धके अनुसार युद्ध करके प्राण त्यागनेका विचार किया ॥ १३ ॥

ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याभिसंवृतः ।
निर्दहन्क्षत्रियव्रातान्द्रोणः पर्यचरद्रणे ॥ १४ ॥

पाञ्चालसेनाके योद्धाओंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया । उस समय द्रोणाचार्य अनगिनत क्षत्रिय योद्धाओंको अपने अस्त्रोंके प्रभावसे भस्म करके रणभूमिके चारों ओर घूमने लगे ॥ १४ ॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान्क्षत्रियानरिमर्दनः ।
दशायुतानि तीक्ष्णाग्रैरवधीद्विशिखैः शितैः ॥ १५ ॥

उस समय शत्रुओंका नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने पहले बीस हजार क्षत्रियोंका नाश करके, फिर अपने तेज धारवाले तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर एक लाख योद्धाओंका वध किया ॥ १५ ॥

सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूम इव पावकः ।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममात्मानमास्थितः ॥ १६ ॥

अनन्तर वे क्षत्रियोंका नाश करनेकी इच्छासे ब्राह्म अस्त्रका आश्रय ले प्रयत्नपूर्वक युद्धभूमिमें खडे होगये और धूएंसे रहित जलती हुई अग्निकी भांति विराजमान हुए ॥ १६ ॥

×

पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं वशी ।
अविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १७ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसंप्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥ १८ ॥

इधर महाबली शत्रुनाशन भीमसेन शीघ्रताके सहित रथ और अस्त्रशस्त्रोंसे रहित विपद्ग्रस्त महात्मा पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्नके समीप अपना रथ बढाकर उपस्थित हुए और उन्हें शीघ्र ही अपने रथपर चढा लिया । अनन्तर भीमसेन उस समय द्रोणाचार्यको लगातार निकटसे बाणोंकी वर्षा करते देख धृष्टद्युम्नसे बोले ॥ १७-१८ ॥

न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग्वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥ १९ ॥

हे वीर ! इस समय तुम्हें छोडके और दूसरा कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेमें समर्थ हो सके। इससे तुम शीघ्र ही द्रोणाचार्यके बधके निमित्त प्रयत्न करो; क्योंकि इसका सम्पूर्ण भार तुम्हारे ही ऊपर अर्पित हुआ है ॥ १९ ॥

स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं नवम् ।
अभिपत्याददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥ २० ॥

भीमसेनके ऐसा कहनेपर महाबाहु पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने उस ही समय सब भार सहन करनेमें समर्थ सुदृढ और श्रेष्ठ आयुध एक नया धनुष उठा लिया ॥ २० ॥

संरब्धश्च शरानस्यन्द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २१ ॥

फिर युद्धमें सहज रोके न जानेवाले द्रोणाचार्यको निवारण करनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक अपने बाणोंको वर्षाकर उन्हें छिपा दिया ॥ २१ ॥

तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ २२ ॥

युद्धविद्याके जाननेवाले वे दोनों श्रेष्ठ वीर क्रुद्ध होकर रणभूमिके बीच अत्यन्त ही शोभित हुए; अनन्तर उन दोनों वीरोंने उस समय अनेक प्रकारके दिव्य और ब्राह्म अस्त्रोंको प्रकट किया और एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २२ ॥

स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥ २३ ॥

महाराज ! अनन्तर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके चलाये हुए सभी अस्त्रोंको निवारण करके उन्हें अपने महान् अस्त्रोंसे युद्धमें छिपा दिया ॥ २३ ॥

स वसातीञ्शिबींश्चैव बाल्हीकान्कौरवानपि ।
रक्षिष्यमाणान्संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥ २४ ॥

अनन्तर दृढ पराक्रमी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये युद्धभूमिमें स्थित वसाति, शिबि, बाह्लिक और कुरुसेनाके योद्धाओंको भस्म करने लगे ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नस्तदा राजन्गभस्तिभिरिवांशुमान् ।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ २५ ॥

राजन् ! इस ही समय पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको सब ओरसे परिपूरित करके किरणधारी प्रचण्ड सूर्यकी भांति रणभूमिके बीच प्रकाशित होने लगे ॥२५॥

तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः ।
मर्माण्यभ्यहनद्भूयः स व्यथां परमामगात् ॥ २६ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके धनुषको काटके उन्हें बाणोंसे विद्ध किया और फिर अपने तेज बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंमें प्रहार किया । उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर अत्यन्त ही कातर हुए ॥ २६ ॥

ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम् ।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! इसी समय भीमसेन अत्यन्त क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके उस रथको पकडके धीरे धीरे उनसे मृदुस्वरसे कहने लगे ॥ ॥ २७ ॥

यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः ।
स्वकर्मभिरसंतुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ २८ ॥

यदि अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले ब्राह्मण लोग अपने जातीय कर्त्तव्य कर्मोंके अनुष्ठानसे विरत होकर युद्ध न करते, तो कदापि क्षत्रियोंके कुलका नाश न होता ॥ २८ ॥

अहिंसा सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥ २९ ॥

देखो, सब शास्त्रोंमें अहिंसा ही को पण्डितोंने श्रेष्ठ धर्म कहके वर्णन किया है, ब्राह्मण ही उस धर्मके आश्रयस्वरूप हैं और आप भी ब्रह्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रगण्य ब्राह्मण हैं ॥ २९ ॥

श्वपाकवन्म्लेच्छगणान्हत्वा चान्यान्पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद्ब्रह्मन्पुत्रदारधनेप्सया ॥ ३० ॥

ब्रह्मन् ! तब पुत्र, स्त्री और धनकी अभिलाषामें रत होकर आप अज्ञानताके कारण मूर्ख चाण्डालकी भांति कितनेही म्लेच्छ और अनेक प्रकारके क्षत्रियोंका वध कर रहे हैं ॥३०॥

एकस्यार्थे बहून्हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यथा ।
स्वकर्मस्थान्विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ३१ ॥

विशेष करके एक पुत्रके निमित्त अधर्मियोंकी भांति क्षत्रिय धर्ममें रत बहुतेरे क्षत्रियोंका अधर्मपूर्वक वध करके क्यों नहीं लज्जित होते हैं? ॥ ३१ ॥

स चाद्य पतितः शेते पृष्टेनावेदितस्तव ।
धर्मराजेन तद्वाक्यं नातिशङ्कितुमर्हसि ॥ ३२ ॥

आज वही तुम्हारे पुत्र अश्वत्थामा मरकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं । आपके पूछनेपर आपको सूचित किया गया था । धर्मराज युधिष्ठिरके कहे हुए इस वचनमें आपको तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमसेनोत्सृज्य तद्धनुः ।
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।
कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥ ३३ ॥

धर्मात्मा द्रोणाचार्य भीमसेनके ऐसा कहनेपर वह अपना धनुष फेंककर अन्य सब अस्त्र-शस्त्रों को भी परित्याग करनेकी इच्छासे यह वचन बोले– हे कर्ण ! कर्ण ! हे महाधनुषधारी कृपाचार्य ! हे दुर्योधन ! ॥ ३३ ॥

संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥ ३४ ॥

तुम सब कोई रणभूमिमें यत्नवान् होके विजयके लिये युद्ध करो, यही मैं बार बार कहता हूं । पाण्डवोंसे तुम लोगोंका मंगल हो । मैं अब अपने इन अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर रहा हूं ॥ ३४ ॥

इति तत्र महाराज प्राक्रोशद्द्रौणिमेव च ।
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निवेश्य च ।
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगयुक्तवान् ॥ ३५ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय द्रोणाचार्य ऐसा वचन कहके ऊंचे स्वरसे अश्वत्थामाका नाम लेकर पुकारने लगे; और उस रणभूमिमें सब अस्त्रशस्त्र परित्याग करके वे रथमें बैठ गये, फिर उन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान किया और योगयुक्त पुरुषकी भांति परमेश्वरके ध्यानमें रत हो गये ॥ ३५ ॥

तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः समुत्थितः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ३६ ॥

प्रतापी धृष्टद्युम्नने यह अच्छा अवसर जान उद्यत होकर तलवार हाथमें ग्रहण करके रथसे कूदकर सहसा द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥

हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशं गतम् ॥ ३७ ॥

द्रोणाचार्यको इस प्रकार धृष्टद्युम्नके वशमें होते देखकर मनुष्य तथा अन्य संपूर्ण प्राणी हाहाकार करने लगे ॥ ३७ ॥

हाहाकारं भृशं चक्रुरहो धिगिति चाब्रुवन् ।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं साम्यमास्थितः ॥ ३८ ॥

वहां सब लोग अत्यंत हाहाकार मचाने लगे और सभी कहने लगे– ' अहो ! धिक्कार है ! धिक्कार है ! ' इधर द्रोणाचार्य भी शस्त्र परित्याग कर परम समत्वभावमें स्थित हो गये ॥ ३८ ॥

तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
दिवमाक्रामदाचार्यः सद्भिः सह दुराक्रमम् ॥ ३९ ॥

महातपस्वी द्रोणाचार्यने पूर्वोक्त बात कहकर योगबलसे तेजोमय रूप धारण किया, और जहां पहुंचना अत्यंत कठिन है, ऐसे उस स्वर्ग लोकको ऋषियोंके संग चले गये ॥ ३९ ॥

द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्तस्मिंस्तथा गते ।
एकाग्रमिव चासीद्धि ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ।
समपद्यत चार्काभे भारद्वाजनिशाकरे ॥ ४० ॥

जब उन्होंने इस भांति स्वर्गलोकमें गमन किया, उस समय हम लोगोंने समझा, कि आकाशमें दो सूर्य उदय हुए हैं । सूर्यके समान तेजस्वी द्रोणाचार्य रूपी चन्द्रमाके उदित होनेपर आकाश ज्योतिसे परिपूर्ण हो उस प्रकाश–ज्योतिसे एकाग्र सा हो गया ॥ ४० ॥

निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत ।
आसीत्किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ।
ब्रह्मलोकं गते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ॥ ४१ ॥

परन्तु निमेषभरके बीच वह ज्योति अन्तर्द्धान हो गई । इसी भांति द्रोणाचार्य जब ब्रह्मलोकको गये और धृष्टद्युम्न मोहित हुए, तब उस समय देवता लोग प्रसन्नचित्तसे युक्त तथा आनन्दित हुए और उनका कोलाहल शब्द सुनायी देने लगा ॥ ४१ ॥

वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ।
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ॥ ४२ ॥
अहं धनंजयः पार्थः कृपः शारद्वतो द्विजः ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ ४३ ॥

जिस समय योगयुक्त महात्मा द्रोणाचार्य परमगतिको प्राप्त हुए; उस समय मनुष्योंके बीचमें केवल मैं, पृथापुत्र अर्जुन, शरद्वानके पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्य, वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर इन पांच पुरुषोंने उनका दर्शन किया था ॥ ४२–४३ ॥

अन्ये तु सर्वे नापश्यन्भारद्वाजस्य धीमतः ।
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ॥ ४४ ॥

महाराज ! अन्य सब लोग योगयुक्त हो ऊपर जाते हुए बुद्धिमान भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी उस महिमाका दर्शन करनेके लिये समर्थ नहीं हुए ॥ ४४ ॥

गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।
नापश्यन्गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुंगवैः ।
आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिंदमम् ॥ ४५ ॥

शत्रुनाशन द्रोणाचार्य योगका आश्रय लेकर श्रेष्ठ ऋषियोंके साथ उसी परम गतिको प्राप्त हुए हैं; अज्ञानी मनुष्य लोग उन्हें वहां जाते समय नहीं देख सके ॥ ४५ ॥

वितुन्नाङ्गं शरशतैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ।
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ॥ ४६ ॥

अनन्तर धृष्टद्युम्नने जब अस्त्ररहित, बाणोंसे क्षतविक्षत और उनके रुधिरपूरित शरीरको आक्रमण किया, उस समय सम्पूर्ण प्राणी उसे धिक्कार प्रदान करने लगे ॥ ४६ ॥

तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ।
किंचिदब्रुवतः कायाद्विचकर्तासिना शिरः ॥ ४७ ॥

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने मौनावलम्बी, प्राणरहित शरीरवाले द्रोणाचार्यके मस्तकके केशको ग्रहण करके तलवारसे उनका सिर धडसे काट डाला ॥ ४७ ॥

हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ।
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन्खड्गमाहवे ॥ ४८ ॥

इसी भांति जब द्रोणाचार्य मारे गये, तब धृष्टद्युम्न अत्यंत हर्षपूर्वक अपने तलवारको युद्धभूमिमें घुमाते हुए भयङ्कर सिंहनाद करने लगे ॥ ४८ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
त्वत्कृते व्यचरत्संख्ये स तु षोडशवर्षवत् ॥ ४९ ॥

महाराज ! उन श्यामवर्ण रूपवाले आचार्यके केश पक गये थे और उनकी अवस्था भी पचासी वर्षकी थी; तोभी वे तुम्हारे हितकी अभिलाषासे सोलह वर्षवाले युवा पुरुषकी भांति युद्धभूमिमें भ्रमण करते थे ॥ ४९ ॥

उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मजः ॥ ५० ॥

उनके वधके समय महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुनने बार बार धृष्टद्युम्नसे कहा था कि, हे द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ! आचार्यका वध मत करो; तुम उनको जीते जी ही ले आओ ॥ ५० ॥

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ।
उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाद्रवत् ॥ ५१ ॥

और उस समय तुम्हारे सैनिक भी आचार्यका वध मत करो, ऐसे ही वचनोंको कहते थे। अर्जुन तो दयावश हो आक्रोश करते हुए धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे ॥ ५१ ॥

क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नोऽवधीद्द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ॥ ५२ ॥

अर्जुन और सम्पूर्ण राजा लोग इसी भांति धृष्टद्युम्नको पुकारके उन्हें द्रोणाचार्यके वध करनेसे निवारण कर रहे थे, तोभी पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने रथमें बैठे हुए मनुष्य श्रेष्ठ द्रोणाचार्यका वध किया ॥ ५२ ॥

शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमरिंदमः ।
लोहिताङ्ग इवादित्यो दुर्दर्शः समपद्यत ।
एवं तं निहतं संख्ये ददृशे सैनिको जनः ॥ ५३ ॥

हे राजेन्द्र ! जब शत्रुदमन द्रोणाचार्य रुधिरपूरित शरीरसे युक्त दुर्दर्श होकर रथसे पृथ्वी पर गिरे, उस समय ऐसा मालूम हुआ मानो अरुणकान्तिवाले महातेजस्वी सूर्य डूब गये हों। इसी प्रकार सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंने द्रोणाचार्यको रणभूमिके बीच मरते हुए देखा ॥ ५३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन्भारद्वाजशिरो महत् ।
तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥ ५४ ॥

राजन् ! इधर महाधनुर्द्धर धृष्टद्युम्नने भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके उस महान् सिरको काटके तुम्हारे पुत्रोंके सामने उसे फेंक दिया ॥ ५४ ॥

ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन्भारद्वाजस्य तावकाः ।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ ५५ ॥

तुम्हारे सैनिक द्रोणाचार्यके कटे हुए सिरको देख कर भागनेमें ही उत्साह दिखाते हुए रणभूमिसे चारों ओर भाग गये ॥ ५५ ॥

द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ।
अहमेव तदाद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥ ५६ ॥
ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च ।
विधूमामिव संयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ।
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम् ॥ ५७ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्य आकाश मार्ग अतिक्रम करके धीरे धीरे नक्षत्रमण्डलमें प्रविष्ट हुए। उनके मृत्युके इस अद्भुत व्यापारको सत्यवतीपुत्र महर्षि भगवान् वेदव्यासकी कृपासे मैंने भी प्रत्यक्ष अवलोकन किया था। जब महातेजस्वी द्रोणाचार्य आकाशको स्तब्ध करके ऊपरको जा रहे थे, उस समय धूंएंसे रहित प्रज्वलित लुकककी भांति प्रकाशित होते हुए आकाशमार्गसे जाते, हम लोगोंने उन्हें देखा था ॥ ५६–५७ ॥

हते द्रोणे निरुत्साहान्कुरून्पाण्डवसृञ्जयाः ।
अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत ॥ ५८ ॥

द्रोणाचार्यके मारे जाने पर कौरव सैनिक उत्साह रहित होगये; फिर पांडव और सृंजयोंने उनपर बडे जोरसे आक्रमण किया, इस कारण कौरव सेना छिन्न भिन्न होकर चारों ओर भागने लगी ॥ ५८ ॥

निहता हयभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ।
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाभवन् ॥ ५९ ॥

युद्धमें तुम्हारी सेनाके कितने ही योद्धा शत्रुओंके तेज बाणोंसे मारे गये और कितनेही घायल होके पृथ्वी पर गिरने लगे। द्रोणाचार्यके मरनेसे तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उत्साहरहित होकर चेतरहितकी भांति दिखाई देने लगे ॥ ५९ ॥

पराजयमथावाप्य परत्र च महद्भयम् ।
उभयेनैव ते हीना नाविन्दन्धृतिमात्मनः ॥ ६० ॥

इस लोकमें पराजय और परलोकमें महान् भय प्राप्त कर दोनोंही लोकोंसे विमुख हो वे अपनेमें धैर्य धारण नहीं कर सके ॥ ६० ॥

अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः ।
नाध्यगच्छंस्तदा राजन्कबन्धायुतसंकुले ॥ ६१ ॥

राजन् ! उस समय हमारे ओरके राजा लोग हजारों कबन्धोंसे युक्त रणभूमिके बीच द्रोणाचार्यके मृत शरीरको चारों ओर बहुत खोजके भी उसे न पा सके ॥ ६१ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ।
बाणशब्दरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ ६२ ॥

इधर पाण्डव लोग उस समय इस लोकमें विजय लाभ और परलोकमें बहुत बडा यश पाकर वे धनुष टङ्कार करते हुए, शंख बजा कर, बारंबार महाघोर सिंहनाद करने लगे ॥ ६२ ॥

भीमसेनस्ततो राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् ॥ ६३ ॥

राजन् ! अनन्तर पृषत् पुत्र धृष्टद्युम्न और भीमसेन एक दूसरेको आलिङ्गन करके सेनाके बीचमें आनन्दसे नृत्य करने लगे ॥ ६३ ॥

अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ।
भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वक्ष्यामि पार्षत ।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ६४ ॥

अनन्तर भीमसेन शत्रुतापन धृष्टद्युम्नसे बोले, हे पाञ्चालराजपुत्र ! जब पापी सूतपुत्र और दुर्योधन मारे जायंगे और तुम विजय लाभ करोगे; तब मैं फिर विजयी हुए तुम्हें आलिङ्गन करूंगा ॥ ६४ ॥

एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः ।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ६५ ॥

ऐसा वचन कहके भीमसेनने अत्यन्त हर्षके सहित अपनी भुजाओंपर ताल ठोंका, उस समय भीमसेनके बाहुशब्दसे पृथ्वी कांपने लगी ॥ ६५ ॥

तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि ।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ६६ ॥

तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भीमसेनकी भुजाके उस शब्दसे भयभीत होकर क्षत्रिय धर्मको त्याग कर युद्धभूमिमें चारों ओर भागने लगे ॥ ६६ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन्विशां पते ।
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ६७ ॥

पृथ्वीपते ! इसी भांति पाण्डव लोग विजय लाभ करके तथा उन लोगोंके प्रबलशत्रु द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें मारे गये, इस कारण अत्यन्तही हर्षित होकर अपार सुख अनुभव करने लगे ॥ ६७ ॥

ततो द्रोणे हते राजन्कुरवः शस्त्रपीडिताः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥ ६८ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य तथा मुख्य मुख्य शूरवीरोंके मारे जाने पर, शत्रुओंके अस्त्रोंसे पीडित कुरुसेनाके पुरुषोंका नाश होने लगा, और वे लोग महाघोर शोक रूपी समुद्रमें डूबने लगे ॥ ६८ ॥

विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः ।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग द्रोणाचार्यके मरनेसे चेतनारहित, मोहवश, तेज और बलरहित और उत्साहशून्य होकर अत्यंत आर्तनाद करते हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको घेरकर स्थित हुए ॥ ६९ ॥

रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश ।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥ ७० ॥

जैसे पहिले समयमें हिरण्याक्ष नामक दैत्यके मारे जानेपर असुर लोग मलिन, उत्साहरहित और दुःखित होकर आखोंसे आंसू बहाते और दशों दिशाको अवलोकन करते हुए, हिरण्यकश्यपको घेरकर स्थित हुए थे, वैसे ही उनकी भी अवस्था हुई थी ॥ ७० ॥

स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात्तनयस्तव ॥ ७१ ॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन त्रस्त हुए क्षुद्र मृगोंके समान उन योद्धाओंके बीचमें घिरकर द्रोणाचार्यके मरनेसे त्रस्त हो कर युद्धभूमिमें स्थित न हो सके; और शीघ्रताके सहित अन्यत्र चले गये ॥ ७१ ॥

क्षुत्पिपासापरिश्रान्तास्ते योधास्तव भारत ।
आदित्येन च संतप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥ ७२ ॥

भारत ! उस समय तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग भूख प्याससे कातर और श्रमसे क्लान्त हो रहे थे, उसपर भी सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे उत्तप्त होकर अत्यन्त ही व्याकुल हुए वे अत्यन्त उदास हो गये थे ॥ ७२ ॥

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् ।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम् ॥ ७३ ॥

जैसे सूर्यका पृथ्वीपर गिर जाना, समुद्रका सूखना, सुमेरुपर्वतका धरतीसे मिल जाना तथा देवराज इन्द्रका पराजित हो जाना असम्भव है ॥ ७३ ॥

अमर्षणीयं तद्दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् ।
त्रस्तरूपनरा राजन्कौरवाः प्राद्रवन्भयात् ॥ ७४ ॥
वैसे ही भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यका मारा जाना असम्भव माना जाता था, परंतु द्रोणाचार्यके उस अमर्षणीय वधको सिद्ध हुआ देखकर कुरुसेनाके सारे सैनिक त्रस्त और भयभीत होकर युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ ७४ ॥

गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह ।
हतं रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवत्सहितो रथैः ॥ ७५ ॥
गान्धाराज शकुनि सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्यके मरनेका वृत्तान्त सुनके अत्यन्त भयभीत होके, अपनी भयातुर रथियोंकी सेनाके सहित भागे ॥ ७५ ॥

वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।
परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥ ७६ ॥
सूतपुत्र कर्ण भी ध्वजापताकाओंसे युक्त अत्यंत वेगसे भागती हुई अपनी महासेनाको साथ ले भयसे युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ ७६ ॥

रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्षमाणोऽपयाद्भयात् ॥ ७७ ॥
मद्रराज शल्य हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त अपनी सेनाको आगे करके चारों ओर देखते हुए भयभीत होके भागने लगे ॥ ७७ ॥

हतप्रवीरैर्भूयिष्ठं द्विपैर्बहुपदातिभिः ।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत्कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥ ७८ ॥
शरद्वतपुत्र कृपाचार्य अनेक हाथियोंसे और पैदल सैनिकोंसे शोभित, जिसके प्रमुख शूरवीर मारे गये हैं ऐसी सेनामें घिरकर, हा कष्ट ! हा कष्ट ! ऐसे ही वचनको कहते हुए युद्ध-भूमिसे चले गये ॥ ७८ ॥

भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टबाह्लिकैः ।
कृतवर्मा वृतो राजन्प्रायात्सुजवनैर्हयैः ॥ ७९ ॥
राजन् ! कृतवर्मा भोजवंशियोंकी शेष सेना, और कलिंग, अरट्ट और बाह्लिकदेशीय सेनाके सहित महावेगगामी घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्धभूमिसे भागे ॥ ७९ ॥

पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन्भयार्दितः ।
उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ ८० ॥
शकुनिपुत्र उलूक द्रोणाचार्यको वहां मारा गया देख, पैदल सेनाके योद्धाओंके सहित अत्यंत भयभीत होके युद्धभूमिसे भागे ॥ ८० ॥

दर्शनीयो युवा चैव शौर्ये च कृतलक्षणः ।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥ ८१ ॥

दर्शनीय युवक पराक्रमी राजपुत्र वीर दुःशासन भयसे अत्यन्त ही व्याकुल हुए और गज-सेनाके सहित वेगपूर्वक भागने लगे ॥ ८१ ॥

गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः ।
दुर्योधनो महाराज प्रायात्तत्र महारथः ॥ ८२ ॥

महाराज ! महारथी राजा दुर्योधन हाथी, घोडे और रथोंकी सेनासे युक्त तथा पैदल सैनिकोंसे घिरकर युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ ८२ ॥

गजान्रथान्समारुह्य परस्यापि हयाञ्जनाः ।
प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः ॥ ८३ ॥

इसी भांति द्रोणाचार्यको मरते देख, कुरुसेनाके बहुतेरे सैनिक युद्धभूमिके बीच अपने तथा दूसरे पुरुषोंके हाथी, घोडे और रथ आदि जो वाहन सम्मुख पाये, उस ही पर चढके शीघ्रतापूर्वक रणभूमिसे भागने लगे । भागनेके समय सबके केशबंध मुक्त हुए थे और वे गिरते पडते थे; तथा दो इकट्ठे होकर भी गमन न कर सके; ॥ ८३ ॥

नेदमस्तीति पुरुषा हतोत्साहा हतौजसः ।
उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो ॥ ८४ ॥

केवल अब इस सेनाकी रक्षा नहीं हो सकेगी, ऐसा मानके वे तेज और उत्साहसे हीन होगये थे तथा तुम्हारे कितने ही सैनिक कवच उतार कर भाग रहे थे ॥ ८४ ॥

अन्योन्यं ते समाक्रोशन्सैनिका भरतर्षभ ।
तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे ॥ ८५ ॥

हे भरतर्षभ ! वे ऊंचे स्वरसे एक दूसरेको आवाहन करते हुए वेगपूर्वक भागने लगे । वे लोग दूसरे पुरुषोंसे ' ठहरो ठहरो ! ' ऐसे कहते, परंतु स्वयं वहां नहीं ठहरते थे ॥८५॥

धुर्यान्प्रमुच्य तु रथाद्धतसूतान्स्वलंकृतान् ।
अधिरुह्य हयान्योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ ८६ ॥

उस समय सेनाके शूरवीर योद्धा लोग ऐसे व्याकुल हो गये थे, कि सारथि रहित अपने रथोंके सुन्दर अलङ्कारोंसे भूषित घोडोंको ही रथसे खोलके उसीपर चढकर पांवोंसे दौडाते हुए वेगपूर्वक भागने लगे ॥ ८६ ॥

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि ।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥ ८७ ॥

इस प्रकार जब तेजरहित तथा भयभीत होकर तुम्हारी सेना भाग रही थी, उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओंकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे महाबलवान् ग्राह समुद्रकी लहरके वेगमें निर्भर चित्तसे सीधा चढता है ॥ ८७ ॥

हत्वा बहुविधां सेनां पाण्डूनां युद्धदुर्मदः ।
कथंचित्संकटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ ८८ ॥

अनन्तर मतवाले हाथीकी भांति पराक्रमी युद्धदुर्मद अश्वत्थामा पाण्डवोंकी बहुतसी सेनाका नाश करके फिर अत्यन्त कष्टके सहित उस महाघोर युद्ध सङ्कटसे मुक्त हुए थे ॥ ८८ ॥

द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् ।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ८९ ॥

अनन्तर अश्वत्थामा कौरवोंकी सेनाको भागनेमें तत्पर तथा भयभीत होके चारों ओर भागती देख, दुर्योधनके समीप जाकर उनसे बोले ॥ ८९ ॥

किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत ।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥ ९० ॥

हे भारत ! तुम्हारी यह सेना इस प्रकारसे भयभीत होकर क्यों भागी जा रही है ? और आप इस सेनाको भागती देखकर क्यों नहीं युद्धमें ठहरानेका प्रयत्न करते हैं ? ॥ ९० ॥

त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप ।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिवाः ॥ ९१ ॥

राजन् ! मैं तुम्हें भी पहिलेकी भांति सावधान नहीं देखता हूं ! विशेष करके कर्ण आदि वीर नरेश भी युद्धभूमिमें स्थित नहीं होते हैं; ऐसा क्यों हो रहा है ? ॥ ९१ ॥

अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाद्रवत्तदा ।
कच्चित्क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥ ९२ ॥

कभी तो किसी अन्य युद्धोंमें तुम्हारी सेना इस प्रकार नहीं भागी थी । हे महाबाहु महाराज दुर्योधन ! तुम्हारी सेनामें कुशल मङ्गल तो है ? ॥ ९२ ॥

कस्मिन्निदं हते राजन्रथसिंहे बलं तव ।
एतामवस्थां संप्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव ॥ ९३ ॥

राजन् ! किस रथिश्रेष्ठके मारे जानेसे तुम्हारी सेनाके योद्धाओंकी ऐसी दशा हुई है; वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे निकट प्रकाशरूपसे वर्णन करो ॥ ९३ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् ।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाशकत्पार्थिवर्षभः ॥ ९४ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ कुरुराज दुर्योधन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके वचनोंको सुनकर द्रोणवध रूपी भयङ्कर अप्रिय वचन बोलनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ९४ ॥

भिन्ना नौरिव ते पुत्रो निमग्नः शोकसागरे ।
बाष्पेण पिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ९५ ॥

तुम्हारे पुत्रकी नाव नदीके प्रवाहमें टूट गयी थी और वे शोकसागरमें डूब रहे थे; रथपर बैठे हुए द्रोणपुत्रको देखकर उनकी आंखोंमें आंसू भर आये ॥ ९५ ॥

ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् ।
शंसेह सर्वं भद्रं ते यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ९६ ॥

उस समय राजा दुर्योधन लज्जित होकर कृपाचार्यसे यह वचन बोले, आचार्य ! आपका कल्याण हो ! सेनाके सम्पूर्ण पुरुष किस कारणसे भाग रहे हैं; आप उस वृत्तान्तको गुरुपुत्र अश्वत्थामाके समीप वर्णन कीजिये ॥ ९६ ॥

अथ शारद्वतो राजन्नार्तिं गच्छन्पुनः पुनः ।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ९७ ॥

राजन् ! तब शरद्वतपुत्र कृपाचार्य बार बार शोक प्रकाश करके जिस प्रकार द्रोणाचार्य मारे गये, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त उनके पुत्र अश्वत्थामाके समीप वर्णन करने लगे ॥ ९७ ॥

कृप उवाच

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् ।
प्रावर्तयाम संग्रामं पाञ्चालैरेव केवलैः ॥ ९८ ॥

कृपाचार्य बोले— हे अश्वत्थामन् ! हम लोग पृथ्वीके सम्पूर्ण रथियोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्यको आगे कर पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे ॥ ९८ ॥

ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ९९ ॥

अनन्तर युद्ध शुरू होनेपर कौरव और सोमक योद्धा परस्पर मिल गये और गर्जते हुए आपसमें युद्ध करके शस्त्रोंसे एक दूसरेका वध कर रहे थे ॥ ९९ ॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः ।
अहनच्छात्रवान्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०० ॥

तब पुरुषश्रेष्ठ पराक्रमी द्रोण ब्रह्मास्त्रको प्रकट कर सैकडों और सहस्रों भल्लोंसे शत्रुओंकी ओरके योद्धाओंका वध करने लगे ॥ १०० ॥

पाण्डवाः केकया मत्स्याः पाञ्चालाश्च विशेषतः ।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन्कालचोदिताः ॥ १०१ ॥

पाण्डव, केकय, मत्स्य और विशेष करके पाञ्चाल देशीय सेनाके योद्धालोग काल प्रेरित होकर युद्धमें द्रोणाचार्यके रथके समीप पहुंचते ही प्राण रहित होके पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ १०१ ॥

सहस्रं रथसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रनिर्दग्धं प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १०२ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे पाण्डवोंकी सेनाके एक हजार मुख्य मुख्य रथि योद्धाओं और दो हजार हाथियोंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ १०२ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ १०३ ॥

वे श्यामस्वरूपवाले बूढे द्रोणाचार्य केश पकने तथा पचासी वर्षकी अवस्था होनेपर भी रणभूमिमें सोलह वर्षवाले युवापुरुषकी भांति चारों ओर घूमने लगे ॥ १०३ ॥

क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु ।
अमर्षवशमापन्नाः पाञ्चाला विमुखाभवन् ॥ १०४ ॥

इसी भांति जब पाण्डवोंकी सेना पीडित होने लगी और शूरवीर राजा लोग मरने लगे, तब अमर्षमें भरे हुए पाञ्चाल योद्धा युद्धसे विमुख हो गये ॥ १०४ ॥

तेषु किंचित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ॥ १०५ ॥

वे कुछ उत्साहरहित होकर जब युद्धसे विमुख हो गये, उस समय दिव्यास्त्र प्रकट करनेवाले शत्रुविजयी द्रोणाचार्य उदित हुए सूर्यकी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ १०५ ॥

स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान् ।
मध्यंगत इवादित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताभवत् ॥ १०६ ॥

उस समय बाणरूपी रश्मियोंसे प्रकाशित तुम्हारे प्रतापी पिता द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश करके सहस्र किरणधारी दोपहरके सूर्यकी भांति तपने लगे; उस समय उनकी ओर देखना कठिन था ॥ १०६ ॥

ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता ।
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ १०७ ॥

रणभूमिमें स्थित पाञ्चालोंकी सेना सूर्यके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यके अस्त्ररूपी अग्निसे दग्ध होती हुई बल और तेज रहित, उत्साह शून्य और चेतरहितके समान होगयी ॥ १०७ ॥

तान्दृष्ट्वा पीडितान्बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः ।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ १०८ ॥

पाण्डवोंकी विजय चाहनेवाले हितैषी मधुसूदन श्रीकृष्ण सम्पूर्ण योद्धाओंको द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होते देख कर उन लोगोंसे बोले ॥ १०८ ॥

नैष जातु परैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः ।
अपि वृत्रहणा संख्ये रथयूथपयूथपः ॥ १०९ ॥

रथयूथपतियोंके भी यूथपति, शस्त्रधारी पुरुषोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्यको मनुष्य लोग युद्धमें कदापि जीत नहीं सकेंगे; औरकी तो कुछ बात ही नहीं है, स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी द्रोणाचार्यको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १०९ ॥

ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ११० ॥

हे पाण्डवगण ! सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य जिससे तुम लोगोंका युद्धमें नाश नहीं कर सकें, इसलिये तुम लोगोंको इस समय धर्मका विचार त्यागके विजयकी प्राप्ति करनेमें यत्नवान् होना उचित है ॥ ११० ॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ १११ ॥

अश्वत्थामाके मारे जानेपर द्रोणाचार्य युद्ध करनेमें समर्थ नहीं होंगे ऐसा मेरा विश्वास है । इससे कोई पुरुष " अश्वत्थामा युद्धमें मारे गये " यह मिथ्या वचन उनके समीपमें जाकर सुनावे ॥ १११ ॥

एतन्नारोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ११२ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुन श्रीकृष्णके इस वचनमें सहमत नहीं हुए; परन्तु और सब कोई तथा राजा युधिष्ठिरने भी बडी कठिनाईसे श्रीकृष्णके इस वचनको स्वीकार किया ॥ ११२ ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत्पितरं तव ।
अश्वत्थामा हत इति तच्चाबुध्यत ते पिता ॥ ११३ ॥

अनन्तर भीमसेन लज्जापूर्वक तुम्हारे पिताके निकट जाके ' अश्वत्थामा मारे गये ' ऐसा वचन बोले; परन्तु तुम्हारे पिताने भीमसेनके वचनका विश्वास नहीं किया ॥ ११३ ॥

स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत ।
हतं वाप्यहतं वाजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ११४ ॥

परन्तु वह समाचार मिथ्या है, ऐसा उनके मनमें संदेह हुआ; इसलिये तुम्हारे पुत्रवत्सल पिताने युद्धभूमिमें धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा कि अश्वत्थामा मारा गया या नहीं ? ॥ ११४ ॥

तदतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अश्वत्थामानमाहेदं हतं कुञ्जर इत्युत ।
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ ११५ ॥

उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमभाषत ।
यस्यार्थे शस्त्रमाधत्से यमवेक्ष्य च जीवसि ।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ११६ ॥

तब मिथ्या बोलनेके भयमें मग्न और विजयकी आशासे आसक्तचित्त होके राजा युधिष्ठिर मालवराज इन्द्रवर्माके बडे शरीरवाले अश्वत्थामा नाम महान् हाथीको भीमसेनके हाथसे युद्धमें मारा गया देखकर द्रोणाचार्यके समीप गमन करके ऊंचे स्वरसे उनसे यह वचन बोले; 'हे आचार्य ! आप जिसके लिये अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये हैं; और जिसका मुंह देखकर जीते हैं, तुम्हारे वही सदाके अत्यन्त प्रिय पुत्र अश्वत्थामा पृथ्वी पर मार गिराया गया है ॥ ११५–११६ ॥

तच्छ्रुत्वा विमनास्तत्र आचार्यो महदप्रियम् ।
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा ॥ ११७ ॥

अनन्तर द्रोणाचार्य संग्रामभूमिमें तुम्हारे मरनेकी अत्यंत अप्रिय बात सुनकर अत्यन्त शोकित और बिमनस्क हुए, उस समय उन्होंने दिव्य अस्त्रोंको परित्याग करके पहिलेकी भांति युद्ध नहीं किया ॥ ११७ ॥

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ११८ ॥

तब उस समय निष्ठुर स्वभावसे युक्त पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न अत्यन्त व्याकुल, शोकसे दुःखित द्रोणाचार्यको चेतरहित प्राय होते देख, उनकी ओर दौडा ॥ ११८ ॥

तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्राय उपाविशत् ॥ ११९ ॥

लोकतत्त्वके जाननेवाले द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नको विधाताकी रची हुई अपनी मृत्यु स्वरूप जान कर सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको त्यागके उस रणभूमिमें अपने रथमें बैठ कर योगयुक्त चित्तसे परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान करने लगे ॥ ११९ ॥

ततोऽस्य केशान्सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः ॥ १२० ॥

अनन्तर शूरवीर पुरुष चारों ओरसे पुकारके उनका वध करनेसे उसे निवारण कर रहे थे, तो भी द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नने बांये हाथसे उनके केश पकडके और दहिने हाथसे तलवार चलाकर उनका सिर काट लिया ॥ १२० ॥

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन्।
तथैव चार्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत् ॥ १२१ ॥

उस समय चारों ओरसे सम्पूर्ण वीरपुरुष "आचार्यका वध मत करो, वध मत करो," ऐसे ही वचनोंको कहते थे; विशेष करके धर्मात्मा अर्जुन यही कहते हुए अपने रथसे उतर कर उसकी ओर दौडे ॥ १२१ ॥

उद्यम्य बाहू त्वरितो ब्रुवाणश्च पुनः पुनः।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीरिति धर्मवित् ॥ १२२ ॥

और धर्मके ज्ञाता अर्जुन अपनी दोनों भुजा उठाके धृष्टद्युम्नको पुकारके "आचार्यका वध मत करो, उन्हें जीते ही ले आओ," इसी प्रकार बडी उतावलीके बार बार वचन कहने लगे ॥ १२२ ॥

तथापि वार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥ १२३ ॥

नरश्रेष्ठ! कौरव लोगोंने तथा अर्जुनने इस भांतिसे निवारण किया था; तो भी उस पापी धृष्टद्युम्नने तुम्हारे पिता द्रोणाचार्यका वध किया ॥ १२३ ॥

सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥ १२४ ॥

हे पापरहित अश्वत्थामन्! इसी प्रकार तुम्हारे पिताके मारे जानेसे सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भयसे पीडित होकर भाग रहे हैं तथा हम लोग उत्साहरहित होकर युद्धभूमिसे लौटे आ रहे हैं ॥ १२४ ॥

सञ्जय उवाच

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहत इवोरगः ॥ १२५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥ समाप्तं द्रोणवधपर्व ॥७६१०॥

संजय बोले— महाराज! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा युद्धभूमिमें इस प्रकार पिताके मारे जानेका वृत्तान्त सुनके पांवसे दबे हुए सर्पके समान अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥ १२५ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६५ ॥ समाप्त द्रोणवधपर्व ॥ ७६१० ॥

: १९९ :

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संजय।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे संजय! अश्वत्थामाने अपने पिता ब्राह्मणश्रेष्ठ बूढे द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नसे अधर्मपूर्वक मारे जानेका वृत्तान्त सुनके क्या कहा? ॥ १ ॥

मानुषं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान्।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥

जिनमें मनुष्य, वारुण, आग्नेय, ब्राह्म, ऐन्द्र और नारायण आदि अस्त्र सदा प्रतिष्ठित रहते थे ॥ २ ॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संजय।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ ३ ॥

उन धर्मात्मा आचार्यका अधर्मसे धृष्टद्युम्नके हाथसे युद्धमें मारा जाना सुनके उनके पुत्र अश्वत्थामाने क्या कहा? ॥ ३ ॥

येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकाङ्क्षिणे ॥ ४ ॥

जिन महात्मा द्रोणाचार्यने इस लोकमें भृगुनन्दन परशुरामके निकटसे सम्पूर्ण धनुर्वेद सीख-कर पुत्रको अपनेसे भी अधिक कृतविद्य करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण धनुर्विद्या तथा दिव्य अस्त्र शस्त्रोंकी विद्याको सिखाया था ॥ ४ ॥

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम्।
इच्छन्ति पुत्रं पुरुषा लोके नान्यं कथंचन ॥ ५ ॥

इस संसारमें ऐसी रीति है, कि सम्पूर्ण पुरुष केवल निज पुत्रको अपनेसे भी अधिक गुणवान् करनेकी इच्छा करते हैं, दूसरेको किसी प्रकार भी नहीं ॥ ५ ॥

आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम्।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय वा ॥ ६ ॥

महात्मा आचार्य पुरुषोंके समीप जो कुछ विद्याके अनेक रहस्य विषय रहते हैं, उसे वे अपने पुत्र या प्रिय शिष्यको ही सिखाते हैं ॥ ६ ॥

स शिल्पं प्राप्य तत्सर्वं सविशेषं च संजय ।
शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥

संजय ! पराक्रमी शारद्वतीकुमार अश्वत्थामा उनके पुत्र और शिष्य हैं, इससे वह द्रोणाचार्यके समीपसे विशेष रहस्यसहित सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या सीखकर युद्धमें अपने पिताके बाद वही उस योग्यताके रह गये हैं ॥ ७ ॥

रामस्यानुमतः शास्त्रे पुरंदरसमो युधि ।
कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥ ८ ॥

अस्त्रशस्त्रोंके चलानेमें परशुरामके समान, युद्धमें इन्द्रके समान, पराक्रममें कार्तवीर्य अर्जुनके समान, बुद्धिमें बृहस्पतिके समान ॥ ८ ॥

महीधरसमो धृत्या तेजसाग्निसमो युवा ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे सर्पविषोपमः ॥ ९ ॥

और धैर्य स्थिरतामें पर्वतके समान, तेजमें अग्निके समान, गम्भीरतामें समुद्रके समान और क्रोधमें विषधर सर्पके समान युवक अश्वत्थामा हैं ॥ ९ ॥

स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाक्रन्दे चरन्क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १० ॥

वह युद्धमें न थकनेवाले, दृढ धनुर्धारी अश्वत्थामा पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण धनुर्धारीयोंमें अग्रगण्य हैं । वह युद्धभूमिके बीच क्रोधी यमराज तथा वेगगामी वायुकी भांति भ्रमण करते हैं ॥ १० ॥

अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता ।
यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥

जब अश्वत्थामा युद्धमें बाणोंकी वर्षा करते हैं, तब पृथ्वी भी अत्यंत पीडित होती है; वे सत्यपराक्रमी वीर संग्राममें भयभीत नहीं होते हैं ॥ ११ ॥

वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः ।
महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥

वे यथा रीतिसे वेद पढके, ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करके स्नातक हो चुके हैं; धनुर्वेदमें पारंगत हैं; दशरथ पुत्र रामचन्द्रके समान और समुद्रकी भांति उन्हें कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १३ ॥

वह पराक्रमी अश्वत्थामा अपने धर्मात्मा पिता द्रोणाचार्यको युद्धमें अधर्मपूर्वक धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे हुए सुनकर क्या बोले ? ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना ।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४ ॥

जैसे पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नका द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये जन्म हुआ था; वैसेही महात्मा द्रोणाचार्यने अश्वत्थामाको भी धृष्टद्युम्नकी मृत्युके लिये जन्म दिया था ॥ १४ ॥

तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणात्यल्पदर्शिना ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इससे उस क्रूर, अदूरदर्शी, पापी, नीच धृष्टद्युम्नके हाथसे द्रोणाचार्यका वध हुआ सुनकर अश्वत्थामा क्या बोले ? ॥ १५ ॥

संजय उवाच

छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
बाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १६ ॥

सञ्जय बोले— पुरुषश्रेष्ठ ! पापी धृष्टद्युम्नके हाथसे छलसे अपने पिताका मरना सुनकर अश्वत्थामाके नेत्र आंसूसे भर आये और वे क्रोधसे परिपूरित हो गये ॥ १६ ॥

तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दिव्यमदृश्यत ।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! उस समय क्रोधी अश्वत्थामाकी मूर्ति सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले प्रलयकालके समय क्रुद्ध हुए महाकाल अन्तककी भांति तेजस्वी दिखाई देने लगी ॥ १७ ॥

अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे अपमृज्य पुनः पुनः ।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ १८ ॥

अनन्तर वह आंसू भरे आंखोंको बार बार पोंछ कर क्रोधसे सांस छोडते हुए दुर्योधनसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः ।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं मम ।
अनार्यं सुनृशंसस्य धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् ॥ १९ ॥

महाराज ! नीच स्वभाववाले पुरुषोंने जिस रीतिसे मेरे पिताको अस्त्र त्याग कराकर उनका वध किया है, और धर्मध्वजी युधिष्ठिरने जैसा पापाचरण किया है, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे विदित हुए; तथा मैंने उस क्रूर धर्मपुत्र युधिष्ठिरका नीच कर्म श्रवण किया ॥ १९ ॥

युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवौ जयपराजयौ ।
द्वयमेतद्भवेद्राजन्वधस्तत्र प्रशस्यते ॥ २० ॥

राजन् ! युद्धमें प्रवृत्त हुए पुरुषोंकी जीत वा हार अवश्यम्भावी तथा होतव्यताके अनुसार स्वयं हुआ करती है; परन्तु युद्धमें होनेवाले वधकी अधिक प्रशंसा की गयी है ॥ २० ॥

न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत्।
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजः ॥ २१ ॥

युद्धभूमिके बीच युद्ध करनेवाले पुरुषकी यदि न्यायके अनुसार मृत्यु हो जाय, तो वह मृत्यु दुःखकी कारण नहीं होती; क्योंकि उन द्विजने युद्धके इस परिणामको देखा है ॥ २१ ॥

गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः।
न शोच्यः पुरुषव्याघ्रस्तथा स निधनं गतः ॥ २२ ॥

इससे मेरे पिताने भी निश्चय वीरलोकमें गमन किया है, इसमें संशय नहीं है। हे पुरुष शार्दूल! जब पिताने इस प्रकारसे वीरलोक प्राप्त किया है, तब उनके लिये शोक करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥

यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन्केशग्रहणमाप्तवान्।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ २३ ॥

परंतु धर्मतत्पर रहनेपर भी जो सम्पूर्ण सेनाके संमुखमें उनका केश ग्रहण किया गया है, उस ही को स्मरण करके मेरे मर्मस्थानोंमें पीडा हो रही है ॥ २३ ॥

कामात्क्रोधादवज्ञानाद्दर्पाद्बाल्येन वा पुनः।
वैधर्मिकानि कुर्वन्ति तथा परिभवेन च ॥ २४ ॥

मनुष्य लोग काम, क्रोध, अभिमान, लोभ, हर्ष, अज्ञानता और बालक भावसे युक्त होकर अधर्मके कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं और दूसरोंको पराभूत करते हैं ॥ २४ ॥

तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम्।
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ॥ २५ ॥

क्रूर और दुष्टात्मा धृष्टद्युम्नने मेरी अवज्ञा करके इस महान् अधर्मके कार्यको किया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २५ ॥

तस्यानुबन्धं स द्रष्टा धृष्टद्युम्नः सुदारुणम्।
अनार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः ॥ २६ ॥

इससे उस धृष्टद्युम्नको थोडे ही समयके बीच इस अधर्मका अत्यन्त दारुण फल भोगना पडेगा। इसके अतिरिक्त मिथ्यावादी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको भी यह अत्यन्त ही असत्कार्य करनेके कारण इसका दारुण परिणाम सहना पडेगा ॥ २६ ॥

यो ह्यसौ छद्मनाचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा।
तस्याद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २७ ॥

उसने कपटतासे अपने गुरु द्रोणाचार्यसे उस समय अस्त्र त्याग कराया था, तब आज पृथ्वी अवश्य ही उस धर्मराजके रुधिरको पान करेगी ॥ २७ ॥

सर्वोपायैर्यतिष्यामि पाञ्चालानामहं वधे।
धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताहं पापकारिणम् ॥ २८ ॥

पाञ्चाल योद्धाओंके वधके लिये मैं शक्तिके अनुसार सभी उपायोंसे यत्न करूंगा; विशेष करके पापी धृष्टद्युम्नका मैं अवश्य ही युद्धमें प्राणनाश करूंगा ॥ २८ ॥

कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन वा।
पाञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव ॥ २९ ॥

हे कुरुराज! चाहे मृदु हो अथवा कठोरतासे ही होवे अर्थात् चाहे किसी कर्मसे क्यों न होवे, मैं पांचाल योद्धाओंका नाश करके ही शान्त होऊंगा ॥ २९ ॥

यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रमिच्छन्ति मानवाः।
प्रेत्य चेह च संप्राप्तं त्राणाय महतो भयात् ॥ ३० ॥

हे पुरुषसिंह! मनुष्य इसीलिये पुत्रकी कामना करते हैं कि प्राप्त होनेपर वह इस लोक और परलोकमें महाभयसे परित्राण करे ॥ ३० ॥

पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा।
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ॥ ३१ ॥

परन्तु मैं पर्वतके समान पुत्र तथा शिष्य रूपसे वर्त्तमान था; तो भी मेरे पिता अनाथकी भांति ऐसी दशाको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

धिङ्ममास्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक्पराक्रमम्।
यन्मां द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ३२ ॥

मेरे समान पुत्रको पाकर भी जब मेरे पिता आचार्य द्रोणने केश ग्रहणका अपमान उठाया, तब मेरे दिव्य अस्त्र, बाहुबल और पराक्रमको धिक्कार है ॥ ३२ ॥

स तथाहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम।
परलोकगतस्यापि गमिष्याम्यनृणः पितुः ॥ ३३ ॥

हे भरतसत्तम! इस समय मैं ऐसा प्रतिकार करूंगा, जिससे परलोक प्राप्त हुए पिताके ऋणसे मुक्त हो सकूं ॥ ३३ ॥

आर्येण तु न वक्तव्या कदाचित्स्तुतिरात्मनः।
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ॥ ३४ ॥

आर्य पुरुषको कभी अपने पराक्रमकी प्रशंसा करनी उचित नहीं है, परन्तु पिताके वधसे दुःखित होके आज मैं अपने पुरुषार्थका वर्णन कर रहा हूं ॥ ३४ ॥

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ।
सृजतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ॥ ३५ ॥

आज मैं प्रलय कालके रुद्रकी भांति जब शत्रुसेनाका नाश करने लगूंगा, तब श्रीकृष्णके सहित पाण्डव लोग मेरे पराक्रमको देखेंगे ॥ ३५ ॥

न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ।
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभ ॥ ३६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! आज मैं रथपर चढके जब युद्धभूमिमें स्थित होऊंगा, तो उस समय देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस वा आदि कोई प्राणी भी मुझे पराजित करनेमें समर्थ न होंगे ॥ ३६ ॥

मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद्वास्त्रवित्तमः ।
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान् ।
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ ३७ ॥

इस पृथ्वीके बीच कोई पुरुष भी मेरे और अर्जुनके समान अस्त्रवेत्ता नहीं है । आज मैं शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करके प्रकाशमान किरणधारियोंके बीच प्रचण्ड किरण धारण करनेवाले सूर्यकी भांति अपने दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करूंगा ॥ ३७ ॥

कृशाश्वतनया ह्यद्य मत्प्रयुक्ता महामृधे ।
दर्शयन्तोऽऽत्मनो वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ ३८ ॥

आज मेरे धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाण मेरा महान् पराक्रम दिखाते हुए महायुद्धमें पाण्डव सेनाका नाश करेंगे ॥ ३८ ॥

अद्य सर्वा दिशो राजन्धाराभिरिव संकुलाः ।
आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥ ३९ ॥

महाराज ! आज सम्पूर्ण प्राणी सम्पूर्ण दिशाओंको मेरे बाणोंसे इस प्रकार छिपी हुई देखेंगे, जैसे जलकी वर्षा होनेपर सम्पूर्ण दिशाएं परिपूरित हो जाती हैं ॥ ३९ ॥

किरन्हि शरजालानि सर्वतो भैरवस्वरम् ।
शत्रून्निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥ ४० ॥

आज मैं लगातार चारों ओर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगूंगा, तो शत्रुसेनाके शूरवीर योद्धा लोग भयानक शब्दसे चिल्लाते हुए मरके इस प्रकार पृथ्वीमें गिरने लगेंगे, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे भयङ्कर शब्दके सहित वृक्ष टूट टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं ॥ ४० ॥

न च जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः ।
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ ४१ ॥
न पार्षतो दुरात्मासौ न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम् ॥ ४२ ॥

हे कौरवगण ! प्रयोग और प्रतिसंहारसे युक्त जो अस्त्र केवल मुझमें प्रतिष्ठित है; उसे अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन, नकुल, सहदेव, राजा युधिष्ठिर, सात्यकि, शिखण्डी और पापी धृष्टद्युम्न आदि कोई भी नहीं जानते ॥ ४१–४२ ॥

नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थिते ॥ ४३ ॥

पहिले किसी समयमें भगवान् नारायण ब्राह्मण रूपसे मेरे पिताके निकट उपस्थित हुए थे, पिताने यथारीतिसे उन्हें प्रणाम करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की थी ॥ ४३ ॥

तं स्वयं प्रतिगृह्याथ भगवान्स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परमस्त्रं नारायणं ततः ॥ ४४ ॥

नारायण भगवान्ने मेरे पिताकी स्वयं पूजा ग्रहण करके वे उनको वर देनेके लिये उद्यत हुए; तब मेरे पिताने उनके निकटसे नारायण नामक परमास्त्र ग्रहण करनेकी प्रार्थना की ॥४४॥

अथैनमब्रवीद्राजन्भगवान्देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नान्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित् ॥ ४५ ॥

राजन् ! तब देवश्रेष्ठ भगवान् नारायण उनको वह अस्त्र देकर उनसे बोले– हे द्रोण ! इस अस्त्रके प्रभावसे युद्धमें दूसरा कोई भी पुरुष तुम्हारे समान योद्धा कहीं नहीं होगा ॥४५॥

न त्विदं सहसा ब्रह्मन्प्रयोक्तव्यं कथंचन ।
न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्तते ॥ ४६ ॥

हे ब्रह्मन् ! यह अस्त्र सहसा किसीके ऊपर प्रयुक्त नहीं करना, क्योंकि यह अस्त्र जिसके ऊपर प्रयुक्त किया जाता है, उस शत्रुका वध करनेके विना निवृत्त नहीं होता है ॥ ४६ ॥

न चैतच्छक्यते ज्ञातुं को न वध्येदिति प्रभो ।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत्प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥

हे विप्र ! तुम ऐसा कभी मत समझना, कि यह अस्त्र किसी प्राणी विशेषका नाश नहीं कर सकेगा; यह अस्त्र अवध्य प्राणीका भी नाश करेगा; इससे विना संकट समयके उपस्थित हुए सहसा इस अस्त्रको चलाना उचित नहीं है ॥ ४७ ॥

वधः संख्ये द्रवश्चैव शस्त्राणां च विसर्जनम् ।
प्रयाचनं च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ४८ ॥

युद्धभूमिमें बध, रणभूमिसे भाग जाना, अपने अस्त्रशस्त्र त्याग देना, अभयकी याचना करना और शत्रुकी शरण लेना ॥ ४८ ॥

एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परंतप ।
सर्वथा पीडितो हि स्यादवध्यान्पीडयन्रणे ॥ ४९ ॥

हे परन्तप ! ये इस महास्त्रको शान्त करनेके उपाय हैं; युद्धभूमिमें इस अस्त्रसे जो अवध्य पुरुषोंको पीडा देता है, वह स्वयं ही सब प्रकारसे पीडित होता है ॥ ४९ ॥

तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः ।
त्वं वर्षिष्यसि दिव्यानि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ।
अनेनास्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि ॥ ५० ॥

अनन्तर मेरे पिताने इसी भांति वह नारायण अस्त्र ग्रहण किया; कुछ दिनके अनन्तर मुझे भी उस अस्त्रके चलाने और निवृत्त करनेकी रीतिको यथा उचितसे उपदेश किया था। उस समय पिताको भगवान्‌ने कहा था– इस अस्त्रके प्रभावसे तुम रणभूमिके बीच स्वयं दिव्य तेजसे प्रकाशित होकर अनेक दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ ५० ॥

एवमुक्त्वा स भगवान्दिवमाचक्रमे प्रभुः ।
एतन्नारायणादस्त्रं तत्प्राप्तं मम बन्धुना ॥ ५१ ॥

सर्व शक्तिमान् भगवान् नारायण इसी प्रकार उपदेश देकर अपने दिव्य धामको चले गये। इस प्रकार पिताने भगवान् नारायणसे यह अस्त्र प्राप्त किया और उनसे मुझे इसकी प्राप्ति हुई है ॥ ५१ ॥

तेनाहं पाण्डवांश्चैव पाञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ।
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान् ॥ ५२ ॥

महाराज ! शचीपति इन्द्रने जिस प्रकार दानवोंको मार भगाया था, वैसे ही आज मैं भी उस नारायण अस्त्रके प्रभावसे पाण्डव, पांचाल, मत्स्य और केकय देशीय सेनाके शूरवीरोंको युद्धभूमिमें चारों ओर छिन्नभिन्न कर दूंगा ॥ ५२ ॥

यथा यथाहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ।
निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत ॥ ५३ ॥

भारत ! आज मैं जैसी जैसी इच्छा करूंगा, उस ही प्रकार बनकर शत्रुओंके पराक्रम करनेपर भी उनके ऊपर मेरे समूहके समूह बाणजाल गिरते हुए दीख पडेंगे ॥ ५३ ॥

यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ।
अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान् ।
परश्वधांश्च विविधान्प्रसक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ५४ ॥

और मैं युद्धमें स्थित होकर स्वयंकी इच्छानुसार पत्थरोंकी वर्षा करूंगा, लोहेकी चोंचवाले पक्षियोंसे महारथियोंको भगाऊंगा और अनेक प्रकारके परशु आदि अस्त्रोंको बरसाऊंगा, इसमें बिलकुल संशय नहीं है ॥ ५४ ॥

सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापन ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ ५५ ॥

हे शत्रुतापन ! मैं महान् नारायण अस्त्रके प्रभावसे पाण्डवोंको दुःखित करता हुआ शत्रुओंका संहार कर दूंगा ॥ ५५ ॥

मित्रब्रह्मगुरुद्वेषी जाल्मकः सुविगर्हितः ।
पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ ५६ ॥

मित्र, गुरु और ब्राह्मण द्रोही, सर्व लोकनिन्दित कुटिलस्वभावसे युक्त पाञ्चालराज कुलकलङ्क पापी धृष्टद्युम्न आज मेरे संमुखसे जीते जी मुक्त न हो सकेगा ॥ ५६ ॥

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी ।
ततः सर्वे महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ ५७ ॥

भागती हुई कुरुसेना द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके ऐसे वचनोंको सुनकर फिर लौटकर युद्ध करनेके लिये उद्यत हुई । और पुरुष श्रेष्ठ वीर हर्षित होकर बडे बडे शंख बजाने लगे ॥ ५७ ॥

भेरीश्चाभ्यहनन्हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः ।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ।
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत् ॥ ५८ ॥

अनन्तर वहां प्रसन्नचित्तसे सहस्रों भेरी, ढोल, मृदङ्ग और नगाडे आदि युद्धके जुझाऊ बाजे बजने लगे, और घोडोंके टाप और रथकी घरघराहटसे पीडित पृथ्वी मानो आर्तनाद करने लगी; उस महाभयङ्कर तुमुल शब्दसे आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी प्रतिध्वनित हो गये ॥ ५८ ॥

तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ।
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताः संन्यमन्त्रयन् ॥ ५९ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य रथी योद्धा बादलकी गर्जनाकी भांति उस तुमुल शब्दको सुनकर सब कोई इकट्ठे होकर आपसमें विचार करने लगे ॥ ५९ ॥

तथोक्त्वा द्रोणपुत्रोऽपि तदोपस्पृश्य भारत ।
प्रादुश्चकार तद्दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥ ७६७० ॥

भारत ! इधर अश्वत्थामाने भी ऐसा कहकर पवित्र होके जल स्पर्श करके तब नारायण नामक दिव्यास्त्रको प्रकट किया ॥ ६० ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ छाछठवां अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥ ७६७० ॥

: १६७ :

सञ्जय उवाच

प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे तदा ।
प्रावात्सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अनन्तर उस नारायण अस्त्र प्रकट होनेपर जलबिन्दुयुक्त वायु प्रबल वेगसे बहने लगी, आकाशमण्डल बादलोंसे रहित था, तो भी मेघ गर्जना होने लगी ॥ १ ॥

चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः ॥ २ ॥

पृथ्वी कांपने लगी, समुद्रका जल उथलित होने लगा और समुद्रमें जानेवाली नदियाँ उल्टी गतिसे बहने लगीं ॥ २ ॥

शिखराणि व्यदीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत ।
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुपुत्रान्प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥

भारत ! पहाडोंके शिखर टूट टूटके गिरने लगे, मृगोंके समूह पाण्डव पुत्रोंको अपने दायें करके चले गये ॥ ३ ॥

तमसा चावकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत् ।
संपतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत् ॥ ४ ॥

धीरे धीरे सूर्यका प्रकाश मन्द होगया और सम्पूर्ण दिशाएं अन्धकारसे छिप गईं । उस ही समय मांसभक्षी प्राणी प्रसन्न होकर महाभयङ्कर बोली बोलते हुए दौडे ॥ ४ ॥

देवदानवगन्धर्वास्त्रस्ता आसन्विशां पते ।
कथं कथाभवत्तीव्रा दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥ ५ ॥

पृथ्वीपते ! उस भयङ्कर उत्पातको देखकर देवता, दानव और गन्धर्व आदि भयभीत होगये और मनुष्य लोग आपसमें वार्तालाप करने लगे कि अब क्या करना चाहिये ॥ ५ ॥

व्यथिताः सर्वराजानस्तदा ह्यासन्विचेतसः ।
तद्दृष्ट्वा घोररूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण राजा लोग द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके उग्र महाघोर और भयङ्कर अस्त्रको देखकर अत्यन्त कातर और चेतनारहित हुए ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे ।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥ ७ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! पितृवधके शोकसे अत्यंत दुःखित और क्रुद्ध होकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा जब मेरी भागती हुई सेनाको फिर लौटाकर युद्ध करनेके लिये पाण्डवोंकी ओर वेगपूर्व गमन करने लगे ॥ ७ ॥

कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे ।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८ ॥

तब उस समय कौरवोंको युद्ध करनेके लिये अपनी ओर आते देख, पाण्डवोंने धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके विषयमें जिस प्रकार आपसमें विचार किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ८ ॥

संजय उवाच

प्रागेव विद्रुतान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्युधिष्ठिरः ।
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वार्जुनमभाषत ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! राजा युधिष्ठिरने पहिले कुरु-सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको भागते हुए देखा था; अब फिर उन लोगोंके तुमुल शब्दको सुनके अर्जुनसे वे बोले ॥ ९ ॥

आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! पहिले जैसे देवराज वज्रधारी इन्द्रने महान् वृत्रासुरका नाश किया था, वैसेही युद्धमें धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्यके मारे जानेपर ॥ १० ॥

नाशंसन्त जयं युद्धे दीनात्मानो धनंजय ।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन्कुरवो यथा ॥ ११ ॥

कौरव लोग अपनी विजयसे निराश होकर कातर और दीनाचित्त होके अपने प्राणोंको बचाके युद्धभूमिसे भागे थे ॥ ११ ॥

केचिद्भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतपार्ष्णियन्तृभिः ।
विपताकध्वजच्छत्त्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः ॥ १२ ॥

भग्ननीडैराकुलाश्वैरारुह्यान्ये विचेतसः ।
भीताः पादैर्हयान्केचित्त्वरयन्तः स्वयं रथैः ।
युगचक्राक्षभग्नैश्च द्रुताः केचिद्भयातुराः ॥ १३ ॥

जिनके पार्श्वरक्षक और सारथि मारे गये थे, पताका, ध्वजा और छत्र कट गये थे, कूबर टूट गये थे, बैठनेके स्थान नष्ट हो गये थे, वैसे व्याकुल घोडोंसे युक्त रथोंपर आरूढ होकर अचेतसे होकर इधर उधर घुमकर शीघ्रही युद्धभूमिसे पृथक् हुए थे। कुछ लोग भयभीत हो घोडोंको पैरोंसे मारकर स्वयं रथ हांककर भाग गये; तथा धुरे, जुए और चक्र टूटे फूटे रथोंसे भयसे व्याकुल होकर भाग गये ॥ १२–१३ ॥

गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः ।
शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद्दिशो दश ॥ १४ ॥

कुछ योद्धा नाराचोंसे ताडित हो अपने आसनसे भ्रष्ट हो हाथियोंके कंधोंसे चिपक गये थे और उस ही अवस्थामें बाणोंसे पीडित हुए हाथी उन्हें दसों दिशाओंमें लेजाते थे ॥ १४ ॥

विशस्त्रकवचाश्चान्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ।
संछिन्ना नेमिषु गता मृदिताश्च हयद्विपैः ॥ १५ ॥

शस्त्र और कवचसे हीन बहुतेरे योद्धा लोग अपने वाहनोंसे भूमिपर गिरके हाथी, घोडे और रथके पहियेके नीचे दबके मर गये ॥ १५ ॥

क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्तोऽपरे भयात् ।
नाभिजानन्ति चान्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ॥ १६ ॥

कितने ही मोहित होकर बल और उत्साहरहित होकर आपसमें एक दूसरेको जानभी न सके; उस समय हे पिता ! हे पुत्र ! कहके चिल्लाते हुए दूसरे बहुतेरे योद्धा भयभीत होकर युद्धभूमिसे भागे थे ॥ १६ ॥

पुत्रान्पितॄन्सखीन्भ्रातॄन्समारोप्य दृढक्षतान् ।
जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ॥ १७ ॥

कितने ही अत्यन्त क्षत विक्षत शरीरसे युक्त अपने पिता, पुत्र, मित्र और बन्धुओंको रथपर चढाकर तथा उनके कवच उतारकर उनको जल सेवन करते थे ॥ १७ ॥

अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम् ।
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर वैसी हीन दशामें पडकर वह सेना भाग गयी थी, परन्तु अब फिर किसने उसे लौटाया है ? यदि तुम इस वृत्तान्तको जानते हो, तो मेरे समीप वर्णन करो ॥ १८ ॥

हयानां हेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनश्चात्र विमिश्रः श्रूयते महान् ॥ १९ ॥

यह देखो, घोडोंकी हिनहिनाहट और हाथियोंके चिङ्घाड, रथोंके पहियोंकी घरघराहटके सङ्ग मिलकर महान् शब्द होकर सुनाई दे रहा है ॥ १९ ॥

एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ।
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्तः कम्पयन्ति हि मामकान् ॥ २० ॥

कुरुसेनारूपी समुद्रमें बार बार यह महाभयङ्कर शब्द तीव्र वेगसे प्रकट होके, मेरी सेनाके योद्धाओंको कम्पित कर रहा है ॥ २०

य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ।
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन्भञ्ज्यादिति मतिर्मम ॥ २१ ॥

यह जो महाघोर तुमुल रोएंको खडा करनेवाला भयङ्कर शब्द हो रहा है, उससे मुझे बोध होता है, इन्द्र सहित तीनों लोकोंको यह नष्ट करेगा ॥ २१ ॥

मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ।
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ॥ २२ ॥

यह भयङ्कर शब्द वज्रधारी इन्द्रकी गर्जना भी हो सकती है, ऐसा मैं मानता हूं । द्रोणाचार्यके मारे जानेसे मुझे निश्चय होता है, कि कौरवोंकी ओरसे युद्ध करनेके लिये स्वयं देवराज इन्द्र आगमन कर रहे हैं ॥ २२ ॥

प्रहृष्टलोमकूपाः स्म संविग्नरथकुञ्जराः ।
धनंजय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! हमारी सेनाके मुख्य मुख्य रथी और महारथी योद्धा लोग भी इस अत्यन्त भयङ्कर शब्दको सुनके व्याकुल हो गये हैं, तथा मेरी सेनाके सब लोग भयभीत हुए हैं और उनके शरीरके रोएं खडे हो गये हैं ॥ २३ ॥

क एष कौरवान्दीर्णानवस्थाप्य महारथः ।
निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ॥ २४ ॥

देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी यह कौन महारथी भागती हुई कुरुसेनाके योद्धाओंको लौटाकर हम लोगोंके संग युद्ध करनेके लिये रणभूमिकी ओर आ रहा है ? ॥ २४ ॥

अर्जुन उवाच

उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे धैर्यमास्थिताः ।
धमन्ति कौरवाः शङ्खान्यस्य वीर्यमुपाश्रिताः ॥ २५ ॥
यत्र ते संशयो राजन्न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ।
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति ह ॥ २६ ॥
ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ।
व्याख्यास्याम्युग्रकर्माणं कुरूणामभयंकरम् ॥ २७ ॥

अर्जुन बोले— महाराज ! जिसके विषयमें आपको यह संशय होता है कि जब शस्त्रोंका परित्याग करनेके अनन्तर गुरु द्रोणाचार्य मारे गये और उस समय कौरवोंकी सेना छिन्न भिन्न होकर युद्धभूमिसे भाग गई थी; अब फिर कौन महारथी उन योद्धाओंको भागनेसे निवृत्त करके दृढतापूर्वक स्थापित करके सिंहनाद कर रहा है, और जिसके बल और पराक्रमके आसरेसे पराक्रमी कौरव लोग इस कठिन कार्यके करनेमें उद्यत होकर शंखध्वनि कर रहे हैं; मैं उस मतवाले हाथीके समान गमन करनेवाले, लज्जाशील, कौरवोंके अभयप्रद, कठिन कर्म करनेवाले श्रीमान् महाबाहु वीरके विषयको वर्णन करता हूं, सुनिये ॥ २५–२७ ॥

यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् ।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति ॥ २८ ॥

जिसके उत्पन्न होनेपर द्रोणाचार्यने अत्यंत योग्य ब्राह्मणोंको एक सहस्र गौएं दान की थीं, वही अश्वत्थामा यह गर्जना कर रहे हैं ॥ २८ ॥

जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा इव ।
हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः ॥ २९ ॥

जिस वीरने उत्पन्न होते ही उच्चैःश्रवा घोडेकी भांति शब्द किया था, और उस शब्दसे पृथ्वी और तीनों लोकोंको कम्पित किया था ॥ २९ ॥

तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतं नाम चास्याकरोत्तदा ।
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव ॥ ३० ॥

पाण्डुपुत्र ! उस शब्दको सुनके किसी अदृश्य प्राणीने उस समय उनका अश्वत्थामा नाम रक्खा था । इस समय वही पराक्रमी अश्वत्थामा सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ३० ॥

योऽयानाथ इवाक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा ।
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥

पृषतपुत्र धृष्टद्युम्नने जिन्हें अनाथकी भांति आक्रमण करके अत्यन्त नीचताके सहित वध किया था; इस समय उनके सहाय स्वरूप उनका पुत्र अश्वत्थामा युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुआ है ॥ ३१ ॥

गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ।
तन्न जातु क्षमेद्द्रौणिर्जानन्पौरुषमात्मनः ॥ ३२ ॥

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने मेरे गुरुको अस्त्रत्याग करने पर भी केश पकड कर खींचा है, उसे आत्मपुरुषार्थके जाननेवाले अश्वत्थामा कदापि क्षमा नहीं करेंगे ॥ ३२ ॥

उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ।
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान्कृतः ॥ ३३ ॥

चाहे जो हो, आपने धर्मात्मा होकर भी राज्यके लिये गुरुके समीप झूठ बोलकर जो मिथ्या व्यवहार किया है; वह महाघोर अधर्म किया है ॥ ३३ ॥

सर्वधर्मोपपन्नोऽयं मम शिष्यश्च पाण्डवः ।
नायं वक्ष्यति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि ॥ ३४ ॥

आचार्यने समझा था, कि युधिष्ठिर सब धर्मोंके ज्ञाता और मेरे शिष्य हैं; कभी मेरे समीपमें मिथ्या वचन नहीं कहेंगे, ऐसा ही विचारके तुम्हारा विश्वास किया था ॥ ३४ ॥

स सत्यकञ्चुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ।
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ३५ ॥

परन्तु " हाथी मारा गया है, " इस सत्यकंचुकताके अवलम्बसे आपने गुरुके समीप मिथ्या वचन कहा है ॥ ३५ ॥

ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ।
आसीत्स विह्वलो राजन्यथा दृष्टस्त्वया विभुः ॥ ३६ ॥

महाराज ! आचार्य सम्पूर्ण शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ थे, तो भी तुम्हारे वचनको सुनते ही अत्यंत व्याकुल होकर अस्त्र परित्याग करके संयतेन्द्रिय होकर योगयुक्त चित्तसे ईश्वरके ध्यानमें रत हुए थे, आपने यह सब प्रत्यक्ष देखा है ॥ ३६ ॥

स तु शोकेन चाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ।
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शिष्येण घातितः ॥ ३७ ॥

आपने शिष्य होकर भी सनातन-धर्मका परित्याग करके पुत्रवत्सल शोकातुर और रणभूमिमें अस्त्रशस्त्र त्याग करके युद्धसे विमुख हुए हुए भी गुरुका वध कराया है ॥ ३७ ॥

+

न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ।
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्नोषि पार्षतम् ॥ ३८ ॥

आपने अधर्मसे अस्त्रशस्त्ररहित गुरुका वध कराया है, इस समय यदि सामर्थ्य होवे, तो मंत्रियों सहित इकट्ठे होकर धृष्टद्युम्नकी रक्षा करो ॥ ३८ ॥

ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ।
सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ॥ ३९ ॥

पिताके वधसे क्रुद्ध हुए आचार्यपुत्र अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नको कालका ग्रास बनाना चाहते हैं; आज हम सब कोई इकट्ठे होकरभी उनकी रक्षा करनेमें समर्थ न होंगे ॥ ३९ ॥

सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ।
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४० ॥

जो सब प्राणियोंके ऊपर दया प्रकाशित करते हैं, वह अलौकिक पराक्रमी अश्वत्थामा अपने पिताके केश ग्रहण करनेके विषयको सुनकर युद्धभूमिमें हम सब लोगोंको ही जलाकर भस्म कर देंगे ॥ ४० ॥

विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अवकीर्य स्वधर्मं हि शिष्येण निहतो गुरुः ॥ ४१ ॥

मैं आचार्यके जीवन रक्षाकी इच्छासे बार बार चिल्ला रहा था, तो भी धृष्टद्युम्नने धर्म त्यागके स्वयं शिष्य होकर भी गुरुका वध किया ॥ ४१ ॥

यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मो यत्कृतो महान् ॥ ४२ ॥

हम लोगोंकी बहुतसी अवस्था बीत गई है अब थोडीसी और बाकी है; इस समय अन्तिम अवस्थामें धर्म विकार उत्पन्न हुआ है और महाघोर अधर्मकार्य किया गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥

पितेव नित्यं सौहार्दात्पितेव स हि धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणान्निहतो गुरुः ॥ ४३ ॥

जो सदा हमलोगोंपर पिताकी भांति स्नेह-प्रेम रखते थे और धर्मानुसार हम लोगोंके पिता के ही समान थे, इन गुरुका अस्थाई राज्यके लिये आपने वध कराया ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशां पते ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४४ ॥

पृथ्वीपते ! देखिये, राजा धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणाचार्यको निज तत्पर पुत्रोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य समर्पण किया था ॥ ४४ ॥

स प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः ।
अवृणीत सदा पुत्रान्मामेवाभ्यधिकं गुरुः ॥ ४५ ॥

आचार्य ऐसी श्रेष्ठ वृत्ति प्राप्त करके तथा हमारे शत्रु कौरवोंसे सदा सम्मानित होकर भी, मेरे ऊपर अपने पुत्रसे भी अधिक प्रीति करते थे ॥ ४५ ॥

अक्षीयमाणो न्यस्तास्त्रस्त्वद्वाक्येनाहवे हतः ।
न त्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४६ ॥

आचार्यने केवल तुम्हारे विश्वासपर ही युद्धमें अस्त्र त्याग किया और मारे गये। यदि आचार्य युद्ध करते, तो देवराज इन्द्र भी उनका वध न कर सकते ॥ ४६ ॥

तस्याचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः ।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लघुबुद्धिभिः ॥ ४७ ॥

जो हो, हम लोग अत्यन्त ही मूर्ख हैं, हम नीचोंने राज्यके लोभसे सदा उपकारमें रत वृद्ध आचार्यका अन्यायपूर्वक वध कराके महाघोर पाप कार्य किया है ॥ ४७ ॥

पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्दाराञ्जीवितं चैव वासविः ।
त्यजेत्सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येतद्धि मे गुरुः ॥ ४८ ॥

मेरे गुरु आचार्य द्रोणका यह निश्चय था, कि अर्जुन मेरे प्रेमके लिये अपने पिता, पुत्र, भ्राता, स्त्री और प्राण पर्यन्त भी त्याग कर सकेगा ॥ ४८ ॥

स मया राज्यकामेन हन्यमानोऽप्युपेक्षितः ।
तस्मादवाक्शिरा राजन्प्राप्तोऽस्मि नरकं विभो ॥ ४९ ॥

ऐसे आचार्य मेरे संमुख ही मारे गये और मैंने राज्यके लोभसे ही उस कर्मकी उपेक्षा की। हे राजन् ! मैंने इस पाप कर्मसे अधोमुख होकर नरकमें जानेकी गति ही प्राप्त की है ॥ ४९ ॥

ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं यथा मुनिम् ।
घातयित्वाद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ७७२० ॥

मेरे आचार्य ब्राह्मण, बूढे, महामुनि थे, उन्होंने शस्त्र त्याग किया था और मुनिवृत्तिका आश्रय लिया था; ऐसे ही आचार्यका मैंने राज्यके लिये घात कराया है, तो ऐसी अवस्थामें जीवित रहनेकी अपेक्षा मृत्यु ही मुझे श्रेयस्कर लगती है ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सरसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥ ७७२० ॥

: १६८ :

सञ्जय उवाच

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः ।
अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनंजयम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अर्जुनके वचनको सुनके वहां सब महारथी योद्धा लोग उनसे प्रिय वा अप्रिय कुछ भी वचन न बोले ॥ १ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत ।
उत्स्मयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ ! परन्तु महाबाहु भीमसेन क्रुद्ध होकर कुन्तीपुत्र अर्जुनका उपहास करते हुएसे यह वचन बोले ॥ २ ॥

मुनिर्यथारण्यगतो भाषसे धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! वनवासी मुनि और दण्डरहित ब्रह्मचारी परमहंस जिस प्रकार धर्म उपदेश करते रहते हैं, वैसे ही तुम भी आज धर्मका उपदेश कर रहे हो ॥ ३ ॥

क्षतात्त्राता क्षताज्जीवन्क्षान्तस्त्रिष्वपि साधुषु ।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियम् ॥ ४ ॥

जो अपना तथा दूसरेका परित्राण करनेमें समर्थ होता है, युद्धमें शत्रुओंको पीडित करनाही जिसका जीवन है और जो स्त्री और साधुओंके विषयमें क्षमा करता है, वही क्षत्रिय है और उसे ही शीघ्र ही पृथ्वीके बीच राज्य, धर्म, यश और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

स भवान्क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः ।
अविपश्चिद्यथा वाक्यं व्याहरन्नाद्य शोभसे ॥ ५ ॥

तुम भी इन सम्पूर्ण क्षत्रिय गुणोंसे युक्त और इस कुलका भार वहन करनेमें समर्थ वीर पुरुष हो; परन्तु आज मूर्खकी भांति बातें कर रहे हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता है ॥ ५ ॥

पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः ।
न चातिवर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारा पराक्रम शचीपति इन्द्रके समान है, और जैसे समुद्र अपनी तट मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, वैसे ही तुम भी कभी धर्म-मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते हो ॥ ६ ॥

न पूजयेत्त्वा कोऽन्योऽद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम्।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकाङ्क्षसे ॥ ७ ॥

तुम जो तेरह वर्ष वनवासके क्लेशसे उत्पन्न हुए क्रोधको त्यागके इस समय धर्मकी अभिलाषा कर रहे हो; इसके लिये कौन पुरुष तुम्हारी प्रशंसा नहीं करेगा ? ॥ ७ ॥

दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥

हे तात ! प्रारब्धसे ही तुम्हारा मन इस समय स्वधर्ममें रत हुआ है; प्रारब्धसे ही तुम्हारी बुद्धि सदा अनृशंसतासे विचलित नहीं होती है ॥ ८ ॥

यत्तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥ ९ ॥

परंतु सदा धर्मके कार्योंमें रत रहते हुए भी शत्रुओंने अधर्मसे हम लोगोंके राज्यको हरण किया और द्रौपदीको सभाके बीच लाके अवमानित किया था ॥ ९ ॥

वनं प्रव्राजिताश्चास्म वल्कलाजिनवाससः।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥ १० ॥

हम लोग राज्यके यथार्थ अधिकारी थे, तो भी शत्रुओंने वल्कल- मृगचर्म वसन पहना कर तेरह वर्ष पर्यन्त हम लोगोंको वनवासी बनाया था ! हम वैसे बर्तावके योग्य नहीं थे ॥ १० ॥

एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि त्वयानघ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥

अनघ ! ये सारे अन्याय रोषके स्थान थे, असहनीय थे, परंतु तुमने सब सह लिये; क्षत्रिय धर्ममें रत होनेसे ही यह सब सहन किया गया है ॥ ११ ॥

तमधर्ममपाकृष्टुमारब्धः सहितस्त्वया।
सानुबन्धान्हनिष्यामि क्षुद्रान्राज्यहरानहम् ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! इस समय उस अधर्मके विरुद्ध मैं तुम्हारे साथ रहकर राज्य हरण करनेवाले उस क्षुद्र शत्रुओंको बन्धुबान्धवोंके सहित युद्धभूमिमें मार डालूंगा ॥ १२ ॥

त्वया तु कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम्।
घटामश्च यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १३ ॥

विशेष करके तुमने पहिले हम लोगोंको धीरज धारण कराके युद्ध करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी, इसीसे हम सब कोई रणभूमिके बीच उपस्थित हुए हैं; और यथा शक्तिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक युद्ध भी कर रहे हैं; परन्तु तुम इस समय हम लोगोंकी निन्दा कर रहे हो ॥ १३ ॥

स्वधर्मं नेच्छसे ज्ञातुं मिथ्या वचनमेव ते ।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १४ ॥

इससे अब मैंने समझा, कि तुम क्षत्रिय धर्म जाननेके अभिलाषी नहीं हो, इसही कारण वृथा जल्पना कर रहे हो। इस समयमें एक तो हम सब भयसे पीडित हो रहे हैं; और तुम अपने वाग्बाणोंसे हमारे मर्मस्थानोंको छेद डालते हो ॥ १४ ॥

वपन्व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन ।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥

शत्रुनाशन! जैसे कोई कटे हुए घावोंपर निमक बिखर दे, उसी प्रकार तुम अपने वचनरूपी बाणोंसे मेरे हृदयको विदीर्ण कर रहे हो ॥ १५ ॥

अधर्ममेतद्विपुलं धार्मिकः सन्न बुध्यसे ।
यत्त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान्न प्रशंससि ।
यः कलां षोडशीं त्वत्तो नार्हते तं प्रशंससि ॥ १६ ॥

यद्यपि तुम तथा हम सब लोगोंके प्रशंसा करनेके पात्र होकर भी, जो तुम अपनी और हमारी प्रशंसा नहीं करते हो, इससे यह अत्यन्त अधर्मका कार्य हो रहा है। तुम धार्मिक हो और तुम इस अधर्मको नहीं समझते हो। हे अर्जुन! जो अश्वत्थामा तुम्हारे सोलहवी कलाका एक अंश भी नहीं है, तुम वैसे द्रोणपुत्रकी प्रशंसा कर रहे हो ॥ १६ ॥

स्वयमेवात्मनो वक्तुं न युक्तं गुणसंस्तवम् ।
दारयेयं महीं क्रोधाद्विकिरेयं च पर्वतान् ॥ १७ ॥

स्वयं ही अपने गुणोंका वर्णन करना उचित नहीं है; मैं क्रुद्ध होनेपर सम्पूर्ण पर्वतोंको चूर्ण और पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूं ॥ १७ ॥

आविध्य च गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम् ।
गिरिप्रकाशान्क्षितिजान्भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १८ ॥

और इस सुवर्णभूषित प्रचण्ड गदाको ग्रहण करके आंधीकी तरह ऊंचे पर्वतपर प्रकाशित वृक्ष लताओंको तोडके पृथ्वीमें मिला सकता हूं ॥ १८ ॥

स त्वमेवंविधं जानन्भ्रातरं मां नरर्षभ ।
द्रोणपुत्राद्भयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम ॥ १९ ॥

अमित पराक्रमी नरश्रेष्ठ अर्जुन! मैं तुम्हारा ऐसा बलवान् सहोदर भ्राता वर्तमान हूं; मुझे भली भांतिसे जान कर तुम्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे भय करना नहीं चाहिये ॥ १९ ॥

अथ वा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैर्नरर्षभैः ।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे ॥ २० ॥

अर्जुन ! अथवा यदि इच्छा हो तो तुम समस्त नरश्रेष्ठ वीरोंके सहित इस ही स्थल पर स्थित रहो, मैं अकेले ही हाथमें गदा ग्रहण करके इस महायुद्धमें अश्वत्थामाको पराजित करूंगा ॥ २० ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाब्रवीत् ।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुं हरिः ॥ २१ ॥

अनन्तर जैसे पहिले समयमें नरसिंहरूपधारी विष्णु भगवानने अत्यन्त क्रुद्ध हुए गर्जना करते दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे समयानुसार वचन कहा था, वैसे ही पाञ्चालवीरपुत्र धृष्टद्युम्न भी अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ २१ ॥

बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम् ।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २२ ॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन्प्रतिष्ठितः ।
हतो द्रोणो मया यत्तत्किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! "अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह," ये छः कर्म ब्राह्मणोंके अनुष्ठान करनेके लिये मनीषि पुरुषोंमें प्रसिद्ध हैं, परन्तु बताओ तो सही, इन छः कर्मोंमें कौनसा कर्म द्रोणाचार्यमें प्रतिष्ठित था ? तब जो मैंने ऐसे धर्मरहित ब्राह्मणका वध किया है, उसके लिये तुम क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो ? ॥ २२–२३ ॥

अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षत्रधर्ममुपाश्रितः ।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २४ ॥

उन्होंने अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर क्षत्रियधर्मका अवलम्बन किया था, वह नीच कर्म करनेवाला ब्राह्मण दिव्य अलौकिक अस्त्रोंसे हम लोगोंका नाश करता था ॥ २४ ॥

तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम् ।
माययैव निहन्याद्यो न युक्तं पार्थ तत्र किम् ॥ २५ ॥

पार्थ ! असह्य, कपट आचार करनेवाले अधम ब्राह्मणका जो पुरुष कपटताका अवलम्बन करके वध करे, तो इसमें अयोग्य क्या है ? ॥ २५ ॥

तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा ।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २६ ॥

जो हो, मैंने उस दुःशील ब्राह्मणका इस अवस्थामें वध किया है, उस ही कारण द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर भयङ्कर गर्जन कर रहा है, तो इसमें मेरी क्या हानि है ? ॥ २६ ॥

न चाद्भुतमिदं मन्ये यद्द्रौणिः शुद्धगर्जया ।
घातयिष्यति कौरव्यान्परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २७ ॥

इसे मैं कुछ आश्चर्य विषय नहीं समझता हूं । वह केवल गर्जके कौरवोंको युद्ध करनेके लिये लौटाकर फिर युद्धभूमिमें उपस्थित करेगा; परन्तु अन्तमें उन योद्धाओंके परित्राण करनेमें असमर्थ होकर सम्पूर्ण शूरवीरोंका नाश करावेगा ॥ २७ ॥

यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् ।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चालस्य सुतोऽनलात् ॥ २८ ॥

तुम जो धर्मात्मा होकर मुझे गुरुघाती कहके मेरी निन्दा कर रहे हो; यह योग्य नहीं है; क्योंकि मैं द्रोणबधके ही लिये पाञ्चालराजके पुत्ररूपसे अग्निसे उत्पन्न हुआ हूं ॥ २८ ॥

यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात्समं रणे ।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनंजय ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! युद्धके समयमें जिसे कार्याकार्यका ज्ञान सममावसे था; वैसे पुरुषको तुम ब्राह्मण वा क्षत्रिय किस प्रकारसे निश्चय करोगे ? ॥ २९ ॥

यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद्ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्छितः ।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥ ३० ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! विशेष करके जिन्होंने क्रोधसे मोहित होकर अस्त्रविद्या न जाननेवाले साधारण योद्धाओंका ब्रह्मास्त्रसे संहार किया; उसका सब उपायोंसे वध करना कैसे उचित नहीं है ? ॥ ३० ॥

विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम् ।
जानन्धर्मार्थतत्त्वज्ञः किमर्जुन विगर्हसे ॥ ३१ ॥

अर्जुन ! धर्म जाननेवाले पुरुषोंने विधर्मीको विषके समान परित्याग करने योग्य कहके वर्णन किया है; तुम इन सम्पूर्ण धर्म-अर्थ तत्त्वके विषयोंको जानके भी क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो ॥ ३१ ॥

नृशंसः स मयाक्रम्य रथ एव निपातितः ।
तन्माभिनन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे ॥ ३२ ॥

उस दुष्ट ब्राह्मणको मैंने रथमें ही आक्रमण करके उसका वध किया है, इससे मैं प्रशंसाके योग्य हूं; तब तुम क्यों नहीं मेरी प्रशंसा करते हो ? ॥ ३२ ॥

कृते रणे कथं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम् ।
भीमं द्रोणशिरश्छेदे प्रशस्यं न प्रशंससि ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! साक्षात् प्रलयकालकी अग्नि, सूर्य और विषके समान भयंकर द्रोणका सिर था, इसलिये मैंने उसे काटा है; मैं प्रशंसनीय होने पर भी तुम किस कारणसे मेरी प्रशंसा नहीं करते हो ? ॥ ३३ ॥

योऽसौ ममैव नान्यस्य बान्धवान्युधि जघ्निवान् ।
छित्त्वापि तस्य मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्यने युद्धमें केवल मेरी ही बन्धु-बान्धवोंका नाश किया है, दूसरे किसीके नहीं; इससे मैं उनका सिर काटके भी अभीतक क्रोध और शोक रहित नहीं हुआ हूं ॥ ३४ ॥

तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया ।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३५ ॥

जैसे तुमने जयद्रथके सिरको दूर फेंका था, वैसे मैंने द्रोणाचार्यके सिरको जो निषादोंके स्थानमें नहीं फेंक दिया, इससे मेरे मर्मस्थल विदीर्ण हो रहे हैं ॥ ३५ ॥

अवधश्चापि शत्रूणामधर्मः शिष्यतेऽर्जुन ।
क्षत्रियस्य ह्ययं धर्मो हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३६ ॥

हे अर्जुन ! यह वचन प्रसिद्ध है, कि शत्रुओंका वध न करनेमें अधर्म ही होता है; क्षत्रिय पुरुषोंका यह धर्म निश्चित हुआ है कि वह युद्धमें शत्रुको मार डाले या फिर स्वयं उसके हाथसे मारा जाय ॥ ३६ ॥

स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव ।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! तुमने जिस धर्मको अवलम्बन करके पितृसखा शूरवीर भगदत्तका वध किया था, मैंने भी उस ही धर्मको अवलम्बन करके अपने शत्रुका युद्धमें वध किया है ॥ ३७ ॥

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः ।
मया शत्रौ हते कस्मात्पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ३८ ॥

इसके अतिरिक्त तुम यदि युद्धमें भीष्मपितामहका वध करके अपने लिये धर्मका कार्य समझ सकते हो, परंतु मैंने अपने एक पापी शत्रुका वध किया, तो भी मेरे इस कार्यको तुम धर्म नहीं समझते, इसका क्या कारण है ? ॥ ३८ ॥

×

नानृतः पाण्डवो ज्येष्ठो नाहं वाधार्मिकोऽर्जुन ।
शिष्यध्रुङ्निहतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ ७७५९ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मिथ्यावादी नहीं हैं । और मैं भी अधार्मिक नहीं हूं; पापी द्रोणाचार्य शिष्यद्रोही थे इस ही कारण मारे गये इससे तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ ७७५९ ॥

: १६९ :

धृतराष्ट्र उवाच

साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाधीता महात्मना ।
यस्मिन्साक्षाद्धनुर्वेदो ह्रीनिषेधे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जिन महात्माने लोकानुरोधके कारण यथा रीतिसे अङ्गोंके सहित सम्पूर्ण वेदोंको पढा था, और जिन लज्जाशील पुरुषके समीप धनुर्वेद मूर्तिमान रूपसे उपस्थित था ॥ १ ॥

तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे महर्षितनये तदा ।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ २ ॥

उन्हीं महर्षि भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी जब वह नीच नृशंस और गुरुघाती धृष्टद्युम्न निंदा कर रहा था ॥ २ ॥

यस्य प्रसादात्कर्माणि कुर्वन्ति पुरुषर्षभाः ।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ ३ ॥

और जिनकी कृपासे पुरुषश्रेष्ठ राजा लोग युद्धभूमिमें देवताओंसे भी न होने योग्य कठिन और अलौकिक कार्योंको कर रहे हैं ॥ ३ ॥

तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मिणः ।
नामर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक्क्षत्रं धिगमर्षितम् ॥ ४ ॥

जब वह पापी सबके सामने द्रोणाचार्यकी निन्दा कर रहा था, उस समय कोई क्षत्रिय योद्धा उस पापी धृष्टद्युम्नके ऊपर क्रुद्ध नहीं हुए, ऐसे क्षत्रियोंको धिक्कार है। और धिक्कार है उनके अमर्षशील स्वभावको ॥ ४ ॥

पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः ।
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५ ॥

हे सञ्जय ! चाहे जो हो, उस समय धृष्टद्युम्नके वचनको सुनके पृथ्वीके महाधनुर्धर जो जो सब राजा वहां थे, उन्होंने और कुन्तीके पुत्रोंने उसे क्या उत्तर दिया; उस वृत्तान्तको इस समय तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच

श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ।
तूष्णींबभूवू राजानः सर्वे एव विशां पते ॥ ६ ॥

संजय बोले-- महाराज ! क्रूर कर्म करनेवाले द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके वचनोंको सुनकर उस समय सभी राजाओंने कुछ भी उत्तर नहीं किया ॥ ६ ॥

अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं प्रेक्ष्य च पार्षतम् ।
सबाष्पमभिनिःश्वस्य धिग्धिग्धिगिति चाब्रवीत् ॥ ७ ॥

अर्जुन तिरछी दृष्टिसे उनकी ओर देखकर 'धिक्कार है, धिक्कार है' ऐसा वचन कहके लम्बी सांस छोडते हुए आंखोंसे आंसू बहाने लगे ॥ ७ ॥

युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथापरे ।
आसन्सुव्रीडिता राजन्सात्यकिरिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

राजन् ! युधिष्ठिर भीमसेन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्णचन्द्र और अन्य लोग भी अत्यन्त लज्जित हुए । उस समय केवल सात्यकिने इस प्रकार उत्तर किया ॥ ८ ॥

नेहास्ति पुरुषः कश्चिद्य इमं पापपूरुषम् ।
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ॥ ९ ॥

ओहो ! इस स्थानमें क्या ऐसा कोई भी पुरुष वर्तमान नहीं है, जो इस प्रकार अमंगल वचन बोलनेवाले अधम तथा पापी पुरुषका शीघ्रही नाश कर सके ? ॥ ९ ॥

कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते ।
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे ॥ १० ॥

रे क्षुद्र ! इस समय भी तुम्हारी जिह्वाके सैंकडों टुकडे क्यों नहीं हो जाते और तुम्हारा सिर भी क्यों नहीं फट जाता ? गुरुकी निन्दा करते हुए तुम्हारा इस अधर्मसे तेरा पतन क्यों नहीं हो जाता ? ॥ १० ॥

याप्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः ।
यत्कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि ॥ ११ ॥

तुम जिस पापकर्मको करके जनसमाजके बीच अपनी बडाई कर रहे हो; उससे तुम सभी पाण्डव, वृष्णि और अन्धकवंशीयोंके समीप पतितके समान मालूम हो रहे हो ॥ ११ ॥

अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ।
वध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता ॥ १२ ॥

तुम जब ऐसे नीच कर्मको करके भी आचार्यकी निन्दा कर रहे हो, तो इस समय अब तुम्हारा वध करना ही उचित है, क्षणभर भी तुम्हें जीवित रखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२ ॥

कस्त्वेतद्व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधमः ।
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः ॥ १३ ॥

तेरे जैसे पुरुषाधमके सिवा दूसरा कौन आर्यपुरुष धर्मात्मा सत्पुरुष गुरुके केश आकर्षण करके उनका वध कर सकता है ? ॥ १३ ॥

सप्तावरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निपातिताः ।
यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम् ॥ १४ ॥

तुम द्रुपदके वंशमें ऐसे कुलकलङ्क उत्पन्न हुए, कि तुम्हारे ही कारणसे तुम्हारे वंशके सात पीढी आगे होनेवाले बन्धुबान्धव और सात पीढी तुमसे पहिलेके पुरुष यशसे भ्रष्ट होकर नरकमें पतित हुए हैं ॥ १४ ॥

उक्तवांश्चापि यत्पार्थं भीष्मं प्रति नरर्षभम् ।
तथान्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना ॥ १५ ॥

तू जो कुन्तीपुत्र अर्जुनके हाथसे पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके मृत्युका विषय कह रहा था और उनपर दोष लगा रहा है, वह व्यर्थ है; क्योंकि वैसी मृत्युका महात्मा भीष्मने स्वयं ही विधान किया था ॥ १५ ॥

तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ।
नान्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत् ॥ १६ ॥

परन्तु भीष्मका वध करनेवाला भी तेरा सहोदर भ्राता महान् पापी शिखण्डी ही है । इस पृथ्वीके बीच पाञ्चालराजपुत्रोंके अतिरिक्त और दूसरा कोई ऐसा पाप करनेवाला नहीं है ॥ १६ ॥

स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्यान्तकरः किल ।
शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः ॥ १७ ॥

तेरे पिताने भीष्मवधके ही निमित्त शिखण्डीको उत्पन्न किया था । उन्होंने महात्मा भीष्मकी मृत्युके कारणरूपमें ही शिखण्डीको सुरक्षित रक्खा था ॥ १७ ॥

पाञ्चालाश्चलिता धर्मात्क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः ।
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः ॥ १८ ॥

तुझे और तेरा भाई शिखण्डीको जो संपूर्ण साधुपुरुषोंके धिक्कारके योग्य हैं– पुत्ररूपसे पाकर ही सारे पाञ्चाल धर्मभ्रष्ट, नीच, मित्र और गुरुद्रोही बन गये हैं ॥ १८ ॥

पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ।
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ॥ १९ ॥

तू यदि फिर मेरे सम्मुख ऐसे अन्याययुक्त वचनोंको कहेगा, तो मैं अपनी इस वज्रके समान भयंकर गदासे तेरा सिर तोड दूंगा ॥ १९ ॥

सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ।
संरब्धः सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ॥ २० ॥

सात्यकिने जब धृष्टद्युम्नसे ऐसे कठोर वचन कहके उनका तिरस्कार किया; तब धृष्टद्युम्न भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस समय क्रोधित सात्यकिसे हंसकर यह वचन बोले ॥ २० ॥

श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ।
न चानार्य शुभं साधुं पुरुषं क्षेप्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

हे सात्यकि ! मैंने तुम्हारे वचनोंको सुना और तुम्हें क्षमा भी करता हूं, तुम्हें अनार्य पुरुषकी भांति साधुपुरुषोंपर ऐसे आक्षेप करना उचित नहीं है ॥ २१ ॥

क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ।
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ॥ २२ ॥

इस लोकमें क्षमा ही प्रशंसनीय है, परंतु पापी मनुष्य कभी क्षमाके योग्य नहीं है; क्षमा कर देनेपर वह पापी तथा दुष्ट मनुष्य क्षमावान् पुरुषको यह मुझसे हार गया ऐसा समझने लगता है ॥ २२ ॥

स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ।
आ केशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि ॥ २३ ॥

तू भी स्वयं दुराचारी, पापी और नीच व्यवहार करनेवाला है; पांवके नखसे लेकर शिखा-पर्यन्त तू पापमें डूबा होनेके कारण निन्दनीय है, उसपर भी तू दूसरेकी निन्दा करनेकी इच्छा करता है ॥ २३ ॥

यः स भूरिश्रवाश्छिन्ने भुजे प्रायगतस्त्वया ।
वार्यमाणेन निहतस्ततः पापतरं नु किम् ॥ २४ ॥

कैसे आश्चर्यका विषय है, कि तुझे बारंवार सब योद्धाओंने मना किया था, तो भी अर्जुनके बाणसे भुजा कटनेपर, रणभूमिके बीच योगयुक्त चित्तसे बैठे हुए, अस्त्ररहित भूरिश्रवाका तूने वध किया था, इससे बढके और दूसरा महान पाप कर्म कौनसा होगा ? ॥ २४ ॥

व्यूहमानो मया द्रोणो दिव्येनास्त्रेण संयुगे ।
विसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ॥ २५ ॥

रे क्रूरस्वभाववाले ! मैंने तो युद्धमें दिव्यास्त्रोंसे द्रोणाचार्यको घेर लिया था, फिर वे शस्त्र त्यागनेपर मारे गये, तो उसमें मैंने कौनसा अधर्मका कर्म किया ॥ २५ ॥

अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ।
छिन्नबाहुं परैर्हन्यात्सात्यके स कथं भवेत् ॥ २६ ॥

हे सात्यकि ! शत्रुओंके अस्त्रसे भुजा कटनेपर युद्धसे विरत, समरमें योगयुक्त चित्तसे मौनावलम्बन करके बैठे हुए अस्त्ररहित पुरुषका जिसने वध किया है, वह दूसरेको किस प्रकार अधर्मी कह सकता है ? ॥ २६ ॥

निहत्य त्वां यदा भूमौ स विक्रामति वीर्यवान् ।
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ॥ २७ ॥

पराक्रमी भूरिश्रवाने जिस समय तुझे पृथ्वीपर गिराके तेरी छातीमें लातसे प्रहार किया था; उस समय तेरा बल–पुरुषार्थ कहां गया था ? क्यों नहीं तू पुरुषश्रेष्ठ होकर भी उस समय पुरुषार्थ प्रकाशित करके भूरिश्रवाका वध कर सका ? ॥ २७ ॥

त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ।
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ॥ २८ ॥

प्रतापवान् शूरवीर सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाको जब पहिले अर्जुनने पराजित किया, उस समय तूने नीचता प्रकाशित करके उनका वध किया है ॥ २८ ॥

यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ।
किरन्शरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ॥ २९ ॥

परन्तु जिस जिस स्थलपर द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको छिन्नभिन्न करके भगाते थे, मैं उन स्थानोंमें सहस्रों बाणोंको चलाते हुए उनके सम्मुख उपस्थित हुआ हूं ॥ २९ ॥

स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत्स्वयम् ।
वक्तुमिच्छसि वक्तव्यः कस्मान्मां परुषाण्यथ ॥ ३० ॥

जो हो, स्वयं चाण्डालके समान ऐसा पापमय कार्य करके जनसमाजके बीच निन्दनीय होकर, तू मुझे किस कारण कठोर वचन कहनेकी इच्छा करता है ? ॥ ३० ॥

कर्ता त्वं कर्मणोऽग्रस्य नाहं वृष्णिकुलाधम ।
पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद ॥ ३१ ॥

रे वृष्णिकुलकलङ्क ! तू स्वयं पाप कर्म करनेवाला तथा कुकर्मके मार्गोंमें गमन करनेवाला है, मैं अधर्मी नहीं हूं, इससे अब मेरे विषयमें कटूक्ति न करना ॥ ३१ ॥

जोषमास्स्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ।
अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमिच्छसि ॥ ३२ ॥

मेरे विषयमें जो कुछ वचन बोलनेकी इच्छा कर रहा है, वह तेरी भारी नीचता है; उसे फिर कभी न कहना; मौनावलम्बन कर ॥ ३२ ॥

अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद्भूयः परुषमीदृशम् ।
गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥

इसके अनन्तर यदि मूर्खताके कारण तू फिर मुझसे ऐसे कठोर वचनोंका प्रयोग करेगा, तो युद्धमें मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तेरा वध करके तुझे यमपुरीमें भेज दूंगा ॥ ३३ ॥

न चैव मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ।
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ॥ ३४ ॥

अरे मूर्ख ! केवल धर्मसेही युद्धमें विजय लाभ नहीं हो सकता। उन कौरवोंने जो सम्पूर्ण अधर्मपूर्वक आचरण किये हैं, उसे सुन ॥ ३४ ॥

वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ।
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाधर्मेण सात्यके ॥ ३५ ॥

सात्यके ! पहिले ही उन लोगोंकी कपटतासे पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर ठगे गये और द्रौपदीको अधर्मसेही अपमानित किया गया ॥ ३५ ॥

प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ।
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाधर्मेण बालिश ॥ ३६ ॥

हे मूर्ख ! सभी पाण्डवोंको द्रौपदीके सहित वनमें भेजा गया और उनका सर्वस्व छीन लिया गया, वह तो अधर्मकाही कर्म है ॥ ३६ ॥

अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परैरितः ।
इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः कुरुपितामहः ।
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ॥ ३७ ॥

उन शत्रुलोगोंने छलसे तथा अधर्मका अवलम्बन करके ही मद्रराज शल्यको अपनी ओर किया; वैसेही पाण्डवोंने भी अधर्मसे कुरु पितामह भीष्मका वध किया है; और तूने भी स्वयंको धर्मज्ञ मानते हुए अधर्मका अवलम्बन करके भूरिश्रवाका वध किया है ॥ ३७ ॥

एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ।
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत ॥ ३८ ॥

सात्वत ! धर्मज्ञ इसी प्रकार वीर पाण्डव और कौरव लोगोंने युद्धमें अपनी विजयको सुरक्षित रखनेके लिये अधर्मपूर्वक आचरण किये हैं ॥ ३८ ॥

दुर्ज्ञेयः परमो धर्मस्तथाधर्मः सुदुर्विदः ।
युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गाः पितृनिवेशनम् ॥ ३९ ॥

हे सात्यकि ! परम धर्म और अधर्मके विषयोंको जानना बहुतही कठिन है; इससे इस समय तूं पितृ लोकमें गमन करनेकी इच्छा न कर, कौरवोंके सङ्ग युद्ध कर ॥ ३९ ॥

एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ।
श्रावितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाभवत् ॥ ४० ॥

श्रीमान् सात्यकि धृष्टद्युम्नके ऐसे क्रूर और कटूक्तियुक्त कितने ही वचनोंको सुनकर क्रोधसे कांपने लगे ॥ ४० ॥

तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ।
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः ॥ ४१ ॥

उस समय क्रोधसे उनके दोनों नेत्र लाल हो गये और धनुष बाणको रथमें रखके सर्पकी भांति लंबी सांस लेते हुए उन्होंने अपनी गदाको ग्रहण कर ली ॥ ४१ ॥

ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ।
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ॥ ४२ ॥

फिर वे धृष्टद्युम्नके पास जाकर क्रुद्ध होकर यह वचन बोले, अब मैं तुझसे कठोर वचन नहीं कहूंगा । तू वधके ही योग्य है, इससे तेरा वध ही करूंगा ॥ ४२ ॥

तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ।
पाञ्चाल्यायाभिसंक्रुद्धमन्तकायान्तकोपमम् ॥ ४३ ॥

महाबलवान् अमर्षी, और कोधित यमराजके समान सात्यकि जब अन्तक स्वरूप धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे ॥ ४३ ॥

चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ॥ ४४ ॥

तब महाबली भीमसेनने श्रीकृष्णकी आज्ञासे शीघ्रताके सहित रथसे कूदके अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें रोक दिया ॥ ४४ ॥

द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ।
प्रस्कन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ॥ ४५ ॥

क्रोधित होकर आगे दौडते हुए बलवान् सात्यकिको महाबलवान् पाण्डुपुत्र भीमने पकडकर ही आगे गमन करना शुरू किया ॥ ४५ ॥

स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुंगवः ।
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ॥ ४६ ॥

अनन्तर भीमसेनने बलपूर्वक अपने दोनों पांवोंके सहारे पृथ्वीपर बलपूर्वक स्थित होके छठें चरणमें बलवान् शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको आगे बढनेसे रोक रक्खा ॥ ४६ ॥

अवरुह्य रथात्तं तु ह्रियमाणं बलीयसा ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशां पते ॥ ४७ ॥

पृथ्वीपते ! इतनेहीमें सहदेव शीघ्रताके सहित रथसे उतर पडे और महाबली भीमसेनसे पकडे गये लज्जाशील सात्यकिसे मधुर वचनोंसे बोले ॥ ४७ ॥

अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ।
परमन्धकवृष्णिभ्यः पाञ्चालेभ्यश्च माधव ॥ ४८ ॥

हे पुरुषसिंह सात्यकि ! वृष्णि, अन्धक तथा पाञ्चाल योद्धाओंके अतिरिक्त और कोई भी हम लोगोंको इस पृथ्वीके बीच अधिक प्रिय मित्र नहीं है ॥ ४८ ॥

तथैवान्धकवृष्णीनां तव चैव विशेषतः ।
कृष्णस्य च तथास्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते ॥ ४९ ॥

उसी भांति वृष्णि तथा अन्धक वंशियोंको विशेष करके कृष्णको हम लोगोंके अतिरिक्त और कोई भी अधिक प्रिय मित्र नहीं है ॥ ४९ ॥

पाञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम् ।
नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ॥ ५० ॥

वार्ष्णेय ! पाञ्चाल योद्धा लोग भी समुद्रतककी सम्पूर्ण पृथ्वी खोजकर भी पाण्डव और वृष्णि वंशियोंके समान दूसरा कोई मित्र नहीं पावेंगे ॥ ५० ॥

स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान् ।
भवन्तश्च यथास्माकं भवतां च तथा वयम् ॥ ५१ ॥

आप हमारे ऐसे ही मित्र हैं; जैसा कि आप स्वयं मानते हैं; इससे जैसे आप लोग हम लोगोंके मित्र हैं, वैसे ही हम लोग भी तुम्हारे मित्र हैं ॥ ५१ ॥

स एवं सर्वधर्मज्ञो मित्रधर्ममनुस्मरन् ।
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्प्रशाम्य शिनिपुंगव ॥ ५२ ॥

हे सर्वधर्मज्ञ शिनिश्रेष्ठ सात्यकि ! इस प्रकार मित्रधर्मका विचार करके आप धृष्टद्युम्नके ऊपरके क्रोधको निवारण करके, शांत हो जाइये ॥ ५२ ॥

+

पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां तव पार्षतः ।
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत् ॥ ५३ ॥

इस समय आप धृष्टद्युम्नके और धृष्टद्युम्न आपके अपराधको क्षमा करें; देखिये, शान्तिसे अधिक श्रेष्ठ और दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है; हम लोग क्षमा याचना करनेवाले हैं ॥५३॥

प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ।
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

महाराज ! जब सहदेवने इस प्रकार सात्यकिको शान्त किया, तब पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न हंसते हुए यह वचन बोले ॥ ५४ ॥

मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ।
आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः ॥ ५५ ॥

हे भीमसेन ! तुम इस युद्धदुर्मद शिनिपौत्र सात्यकिको छोड दो और शीघ्र छोड दो जैसे वायु पर्वतमें जाके लीन हो जाती है, वैसे ही वह मुझसे भिडने तो दो ॥ ५५ ॥

यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ।
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितस्य च संयुगे ॥ ५६ ॥

कौन्तेय ! मैं इसी समय अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रभावसे इसका क्रोध शान्त करूंगा और इसकी युद्धकी अभिलाषा पूरी करके इसका प्राण नाश करूंगा ॥ ५६ ॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ।
सुमहत्पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः ॥ ५७ ॥

अब मैं इस समय क्या कर सकूंगा ? क्योंकि पाण्डुपुत्रोंका यह दूसरा बहुत बडा कार्य उपस्थित हुआ है । देखो, कौरव लोग वेगपूर्वक मेरी सेनाकी ओर आ रहे हैं ॥ ५७ ॥

अथ वा फल्गुनः सर्वान्वारयिष्यति संयुगे ।
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ॥ ५८ ॥

अथवा अर्जुन अकेले ही युद्धमें इन संपूर्ण कौरवोंका निवारण करेंगे; मैं भी पहिले अपने तेज बाणोंसे सात्यकिका सिर काटूंगा ॥ ५८ ॥

मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ।
उत्सृजैनमहं वैनमेष मां वा हनिष्यति ॥ ५९ ॥

सात्यकि मुझे समरमें कटी हुई भुजावाला भूरिश्रवा समझता है । हे भीमसेन ! तुम उसे छोड दो, या तो मैं ही उसका प्राण नाश करूंगा, अथवा वही मेरा वध करेगा ॥ ५९ ॥

शृण्वन्पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन् ।
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ॥ ६० ॥

भीमसेनकी दोनों भुजाओंके बीचमें स्थित बलवान् सात्यकि धृष्टद्युम्नके ऐसे अभिमान युक्त वचनोंको सुनकर सर्पके समान लम्बी सांस खींचते हुए सदा छूटनेका प्रयत्न कर रहे थे ॥ ६० ॥

त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥ ६१ ॥

मारिष ! तब श्रीकृष्णचन्द्र और धर्मराज युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित वहांपर उपस्थित होकर अत्यन्त यत्नपूर्वक उन दोनोंको शान्त किया ॥ ६१ ॥

निवार्य परमेष्वासौ क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
युयुत्सवः परान्संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥ ॥७८२१॥

अनन्तर मुख्य मुख्य पराक्रमी क्षत्रिय वीर लोग क्रोधसे लाल नेत्र किये हुए उन दोनों महाधनुर्द्धारियोंको निवारण करके कुरुसेनाके योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेके लिये उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ ६२ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १६९ ॥ ७८२१ ॥

: १७० :

सञ्जय उवाच

ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवान्तकः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! इधर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उस समय प्रलयकालमें काल प्रेरित सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेवाले यमराजकी भांति शत्रुसेनाका नाश करने लगे ॥ १ ॥

ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम् ।
अश्वकिंपुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥ २ ॥

शूलक्रव्यादसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् ।
निहत्य शात्रवान्भल्लैः सोऽचिनोद्देहपर्वतम् ॥ ३ ॥

उस समय उन्होंने भल्लोंसे शत्रुओंका नाश करके उनके मृत शरीरोंका पर्वत–जैसा ढेर कर दिया; ध्वजा पताका उस पर्वतके वृक्षस्वरूप, शस्त्र उसके शृङ्ग मारे हुए हाथियोंके शरीर ही उसमें महान् शिलाखण्डोंके समान बोध होते थे; घोडे उसपर निवास करनेवाले किं पुरुष थे; धनुष लताओंके समान फैलकर पडे हुए थे; शूल मांसभक्षी जीव और भूतोंके समुदाय यक्ष जान पडते थे ॥ २–३ ॥

ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४ ॥

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ अश्वत्थामाने बडे वेगसे सिंहनाद करके फिर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे अपनी प्रतिज्ञा सुनाई ॥ ४ ॥

यस्माद्युध्यन्तमाचार्यं धर्मकञ्चुकमास्थितः ।
मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

धर्मध्वजी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने जब 'शस्त्र त्याग दीजिये' यह मिथ्या वचन कहके युद्धमें रत गुरुसे अस्त्रत्याग कराया है ॥ ५ ॥

तस्मात्संपश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सत्यं हन्तास्मि पापं पाञ्चाल्यमेव तु ॥ ६ ॥

तब मैं उनके सम्मुखही में उनकी सम्पूर्ण सेनाको युद्धभूमिसे छिन्न भिन्न करके भगा दूंगा, और सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको भगाकर उस पापी धृष्टद्युम्नका वध करूंगा इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

सर्वानेतान्हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परावर्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥

जो ये युद्धभूमिमें मेरे साथ युद्ध करेंगे तो मैं उन सबका ही वध करूंगा यह मैं तुम्हारे समीप सत्यप्रतिज्ञा करता हूं इसलिये आप अपनी सेनाको लौटाओ ॥ ७ ॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८ ॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने गुरुपुत्र अश्वत्थामाके ऐसे वचनको सुनकर हर्षपूर्वक महान् सिंहनाद करते हुए अपनी सेनाका भारी भय दूर करके फिर उसे लौटाया ॥ ८ ॥

ततः समागमो राजन्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९ ॥

अनन्तर उठती हुई लहरोंसे युक्त दो महान् समुद्रोंकी भांति कौरव और पाण्डवोंकी महासेनाका आपसमें अत्यन्तही भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥

संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः ।
उदग्राः पाण्डुपाञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥

उस समयमें कौरव लोग अश्वत्थामा स्थिर हो क्षुब्ध हो गये थे और पाण्डव तथा पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके मारेजानेसे उत्साहयुक्त हुए थे ॥ १० ॥

तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्रणाजिरे ॥ ११ ॥
इससे उन दोनों सेनाके योद्धा लोग अत्यंत हर्षित होकर अपनी विजयके लक्षणको विचारके, क्रोध और अभिमानके सहित बड़े वेगसे महाघोर संग्राम करने लगे ॥ ११ ॥

यथा शिलोच्चये शैलः सागरे सागरो यथा ।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथासन्कुरुपाण्डवाः ॥ १२ ॥
महाराज ! जैसे एक पर्वतसे दूसरा पर्वत और एक समुद्रसे दूसरा समुद्र टक्कर ले, वैसे ही कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंकी अवस्था थी ॥ १२ ॥

ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥
अनन्तर हर्षित हुए कौरव और पाण्डव सैनिक सहस्रों तथा लक्षों शंख, भेरी, ढोल और नगाडे आदि जुझाऊ बाजे बजाने लगे ॥ १३ ॥

ततो निर्मथ्यमानस्य सागरस्येव निस्वनः ।
अभवत्तस्य सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४ ॥
जैसे मथे जाते हुए समुद्रका महान् शब्द होता है, वैसे ही तुम्हारी सेनाका महान् कोलाहल अद्भुत और अपूर्व था ॥ १४ ॥

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसंधाय पाण्डूनां पाञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ १५ ॥
उस ही समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाण्डव और पाञ्चालसेनाको लक्ष्य करके नारायण अस्त्र चलाया; ॥ १५ ॥

प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः ।
पाण्डवान्भक्षयिष्यन्तो दीप्तास्या इव पन्नगाः ॥ १६ ॥
तब उस नारायण अस्त्रसे आकाशमें प्रकाशमान अग्रभागवाले, प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान बाण प्रकट होने लगे, वे सब पाण्डव सैनिकोंका नाश करनेके लिये उद्यत थे ॥ १६ ॥

ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन्महाहवे ।
मुहूर्ताद्भास्करस्येव राजँल्लोकं गभस्तयः ॥ १७ ॥
राजन् ! और जैसे मुहूर्त भरके बीच सूर्यकी किरणों सारे जगत्में फैल जाती हैं, वैसे ही महासमरमें वे बाण सम्पूर्ण दिशा और आकाशमण्डलमें परिपूरित हो गये, और उस समय उन बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाके सम्पूर्ण पुरुष छिप गये ॥ १७ ॥

तथापरे द्योतमाना ज्योतींषीवाम्बरेऽमले ।
प्रादुरासन्महीपाल कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १८ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय निर्मल आकाशमण्डलमें प्रकाशित होनेवाले ज्योतिवाले पदार्थोंकी भाँति प्रकाशमान लोहमय जलते हुए गोले भी प्रकट होने लगे ॥ १८ ॥

चतुर्दिशं विचित्राश्च शतघ्न्योऽथ हुताशदाः ।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः ॥ १९ ॥

फिर चारों दिशाओंमें शतघ्नियाँ, अग्निके गोले और सूर्यमण्डलके समान प्रकाशित क्षुरधार-वाले बहुतसे चक्र चलते हुए दिखाई देने लगे ॥ १९ ॥

शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव भरतर्षभ ।
दृष्ट्वान्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग सम्पूर्ण आकाशमण्डलको नाना भाँतिके अस्त्रशस्त्रोंके आकारवाले पदार्थोंसे परिपूरित देखकर अत्यन्त ही व्याकुल हुए ॥ २० ॥

यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१ ॥

महाराज ! उस समय पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धा लोग जैसे जैसे युद्ध करते वैसे वैसे उस अस्त्रका वेग बढ़ता था ॥ २१ ॥

वध्यमानास्तथास्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२ ॥

उस नारायण अस्त्रसे समरमें घायल हुए शत्रुसेनाके योद्धा इस प्रकार पीड़ित होने लगे, जैसे सब ओरसे अग्निमें झुलस रहे हैं ॥ २२ ॥

यथा हि शिशिरापाये दहेत्कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥

प्रभो ! जैसे ग्रीष्मऋतुमें वनके बीच अग्नि प्रकट होकर सूखे काष्ठ या जङ्गलको भस्म कर देती है, वैसे ही नारायण अस्त्र पाण्डवसेनाको भस्म करने लगा ॥ २३ ॥

आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति चाभिभो ।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

महाराज ! जब इस प्रकार नारायण अस्त्र सब ओर परिपूरित हो गया और उसके प्रभावसे पाण्डव सेना क्षीण होने लगी, तब उस समय धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त ही भयभीत हुए ॥ २४ ॥

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिर अपनी उस सेनाको अचेत हो चारों ओर भागती और अर्जुनको मध्यस्थ पुरुषकी भांति युद्धभूमिमें स्थित देखकर यह वचन बोले ॥ २५ ॥

धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया ।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो गृहान् ॥ २६ ॥

हे धृष्टद्युम्न ! तुम सम्पूर्ण पाञ्चाल सेनाके सहित युद्धभूमिसे भाग जाओ; हे सात्यकि ! तुम भी वृष्णि और अन्धकवंशियोंकी सेनाके सहित घर चले जाओ ॥ २६ ॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम् ।
उपदेष्टुं समर्थोऽयं लोकस्य किमुतात्मनः ॥ २७ ॥

धर्मात्मा श्रीकृष्ण स्वयं ही अपनी रक्षाका उपाय कर लेंगे; वे जब तीनों लोकोंके कल्याणमें दत्तचित्त रहते तथा सबकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, तब अपनी रक्षा क्यों नहीं कर सकेंगे ? ॥ २७ ॥

संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान्ब्रवीमि वः ।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ २८ ॥

हे शूरवीर पुरुषो ! मैं तुम सब सैनिक लोगोंको कहता हूं कि अब कोई भी युद्ध न करे; मैं अपने सहोदर भाइयोंके सहित अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ २८ ॥

भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामं भीरुदुस्तरम् ।
अवसत्स्याम्यसलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥

हाय ! मैंने कायरोंके लिये दुस्तर युद्धमें भीष्म, द्रोण रूपी महा समुद्रसे पार होकर अब इस समय बन्धुबान्धवोंके सहित अश्वत्थामारूपी गोपद जलमें डूब रहा हूं ॥ २९ ॥

कामः संपद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति ।
कल्याणवृत्त आचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३० ॥

मैंने सदा अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले द्रोणाचार्यका वध कराया है, उससे अर्जुन मेरे ऊपर अत्यन्त ही बिरक्त हुए हैं, इससे अब उन्हींकी इच्छा शीघ्र पूरी होवे ॥ ३० ॥

येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः ।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः ॥ ३१ ॥

जिन्होंने युद्धभूमिमें युद्धकौशलसे रहित बालक सुभद्रापुत्र अभिमान्युकी रक्षा न करके, कई एक युद्धदुर्मद क्रूर योद्धाओंके द्वारा उसका प्राणनाश कराया था ॥ ३१ ॥

येनाविब्रुवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता ।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥ ३२ ॥

कौरवसभाके बीच दासीकी भाँतिसे लायी गयी जब द्रौपदीने प्रश्न किया था, उस समय उपेक्षा करके जिन्होंने पुत्रके सहित कुछ भी उत्तर नहीं दिया; तब द्रौपदी हमारे दासभावके निवारणका प्रयत्नकर रही थी ॥ ३२ ॥

जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फल्गुनम् ।
कवचेन तथा युक्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥

जिन्होंने जयद्रथवधके दिन युद्धमें प्रवृत्त और थके हुए घोड़ोंसे युक्त अर्जुनके वधके लिये जब धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन उनपर आक्रमण कर रहा था, तब जिन्होंने उनकी तथा सिन्धु-राज जयद्रथकी रक्षाके लिये दिव्य कवचसे युक्त कर दिया था ॥ ३३ ॥

येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पाञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः ।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३४ ॥

मेरे विजयकी अभिलाषा करनेवाले सत्यजित् आदि पाञ्चाल वीरोंको ब्रह्मास्त्रको जाननेवाले जिन आचार्यने पुत्रपौत्र अनुयाइयोंके सहित समूलसे नष्ट कर दिया है ॥ ३४ ॥

येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः ।
निवार्यमाणेनास्माभिरनुगन्तुं तदेषिताः ॥ ३५ ॥

कौरवोंने जब हमको अधर्मपूर्वक राज्यसे पृथक् करके वनवासी बनाया था, उस समयमें जिन्होंने हमें रोकनेका प्रयत्न किया था; परंतु उनका हित इच्छिनेवाले हमलोगोंका साथ नहीं दिया ॥ ३५ ॥

योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम् ।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ३६ ॥

जिन्होंने नानाप्रकारसे हम लोगोंके विषयमें सुहृद् भाव प्रदर्शित किया था, हम लोगोंके ऐसे परम सुहृद द्रोणाचार्य मारे गये हैं; इसही कारण अब बन्धु—बान्धवोंके सहित मैं मर जाऊंगा ॥ ३६ ॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः ।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर जब इस प्रकार कह रहे थे, तब यदुकुल भूषण श्रीकृष्ण उस ही समय अपनी भुजाओंके सङ्केतसे सारी सेनाको रोक करके उन लोगोंसे बोले ॥ ३७ ॥

शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत ।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिघातो महात्मना ॥ ३८ ॥

हे शूरवीर योद्धा लोगो ! तुम लोग शीघ्रही अस्त्रशस्त्रोंको परित्याग करके अपने अपने वाहनोंसे उतरके युद्धसे निवृत्त होजाओ । परमात्मा भगवान् नारायणने इस अस्त्रके प्रतिकारका यही उपाय स्थिर किया है ॥ ३८ ॥

द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत ।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३९ ॥

तुम सब कोई शीघ्रही अस्त्र त्याग करके हाथी, घोडे और रथीसे उतरके पृथ्वी पर स्थित हो जाओ; तब यह अस्त्र भूमिपर आयुधोंसे रहित खडे हुए तुम लोगोंका वध नहीं करेगा ॥ ३९ ॥

यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रबलं प्रति ।
तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४० ॥

जैसे जैसे हमारे योद्धा लोग इस अस्त्रके बलके विरुद्ध युद्ध करते हैं, वैसे वैसे कौरव अत्यन्त प्रबल हो रहे हैं ॥ ४० ॥

निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये ।
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥

जो लोग अपने वाहनोंसे उतरके अस्त्र परित्याग करेंगे, उन लोगोंका यह अस्त्र युद्धमें वध नहीं करेगा ॥ ४१ ॥

ये त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसापीह केचन ।
निहनिष्यति तान्सर्वान्रसातलगतानपि ॥ ४२ ॥

यदि कोई मनसे भी इस अस्त्रके प्रतिकारकी इच्छा करेंगे, तो पाताल लोकमें गमन करने पर भी उन सब लोगोंको यह अस्त्र वहां मार डालेगा ॥ ४२ ॥

ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत ।
ईषुः सर्वेऽस्त्रमुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥

भारत ! श्रीकृष्णके इन वचनोंको सुनकर सम्पूर्ण योद्धाओंने अपने सब इंद्रियों और अन्तःकरणसे भी अस्त्रशस्त्र त्यागनेकी इच्छा की ॥ ४३ ॥

तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः ।
भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन्वचः ॥ ४४ ॥

राजन् ! उस समय पाण्डुपुत्र भीमसेन उन सब योद्धाओंको अस्त्र त्यागनेके लिये उद्युत हुए देख, सम्पूर्ण शूरवीरोंके हर्षको बढाते हुए यह वचन बोले ॥ ४४ ॥

न कथंचन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित् ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥

किसीको भी किसी तरह भी अपने अस्त्र शस्त्रोंका त्याग नहीं करना चाहिये; मैं अपने वेगवान् बाणोंसे द्रोणपुत्रके अस्त्रका निवारण करूंगा ॥ ४५ ॥

अथ वाप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे ।
कालवद्विचरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥ ४६ ॥

अथवा सुवर्णभूषित अपनी इस भयङ्करी गदासे समरमें अश्वत्थामाके अस्त्रोंको नष्ट करके कालके समान होकर विचरूंगा ॥ ४६ ॥

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह ।
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ४७ ॥

जैसे कोई प्रकाशमान वस्तुओंमें सूर्यके समान ज्योति नहीं है, वैसे ही कोई पुरुष भी इस जगत्में मेरे समान पराक्रम शाली नहीं है ॥ ४७ ॥

पश्यध्वं मे दृढौ बाहू नागराजकरोपमौ ।
समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥

गजराजके शूण्डोंके समान मेरी इन दोनों भुजाओंको अवलोकन करो, इन भुजाओंसे मैं हिमालय पर्वतको भी तोडके पृथ्वीमें मिला सकता हूं ॥ ४८ ॥

नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह ।
शक्रो यथाप्रतिद्वंद्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥

जैसे स्वर्ग लोकमें और देवताओंमें देवराज इन्द्र सबसे अधिक पराक्रमी है, वैसे ही मनुष्योंके बीच केवल मैं ही अकेला दस हजार हाथियोंके समान बलवान् हूं ॥ ४९ ॥

अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि ।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वारणे ॥ ५० ॥

आज युद्धमें सब कोई अश्वत्थामाके जलते हुए और दीप्तमान् अस्त्रको निवारण करनेके विषयमें मोटे कंधेवाली मेरी दोनों भुजाओंका पराक्रम देखेंगे ॥ ५० ॥

यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते ।
अथैनं प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥

यद्यपि इस नारायण अस्त्रका सामना करनेवाला दूसरा कोई योद्धा अबतक नहीं हुआ है; तो भी मैं आज सम्पूर्ण कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंके सम्मुखमें ही इसका सामना करूंगा ॥ ५१ ॥

एवमुक्त्वा ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिंदमः ।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ॥ ५२ ॥

ऐसा कहनेपर शत्रुदमन भीमसेन सूर्यके समान प्रकाशमान और बादलके समान शब्दवाले अपने रथपर चढके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ओर सामना करनेके लिये दौडे । ५२ ॥

स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः ।
निमेषमात्रेणासाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥ ५३ ॥

उस समय महापराक्रमी भीमसेनने निमेष भरके बीच अश्वत्थामाके पास पहुंचकर हस्त-लाघवके सहित अपने बाणजालसे अश्वत्थामाको छिपा दिया ॥ ५३ ॥

ततो द्रौणिः प्रहस्यैनमुदात्तमभिभाष्य च ।
अवाकिरत्प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥ ५४ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भीमसेनको अपनी ओर आते देख, हंसकर बात की और अग्निपुञ्जसे पूरित नारायण अस्त्रसे अभिमन्त्रित प्रकाशमान बाणोंकी वर्षाके उन्हें छिपा दिया ॥ ५४ ॥

पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्वमद्भिरनलं रणे ।
अवकीर्णोऽभवत्पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः ॥ ५५ ॥

युद्धमें वे बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान अग्नि उगल रहे थे, उस समय भीमसेन उनसे आच्छादित हुए, मानो सुवर्णके समान अग्निपुंजसे वे परिपूरित हो गये ॥ ५५ ॥

तस्य रूपमभूद्राजन्भीमसेनस्य संयुगे ।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥ ५६ ॥

राजन् ! जैसे सन्ध्याके समय खद्योत समूहसे युक्त होकर पर्वत शोभित होता है; वैसे ही युद्धमें भीमसेनका रूप दीखता था ॥ ५६ ॥

तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन्प्रतिसमस्यति ।
अवर्धत महाराज यथाग्निरनिलोद्धतः ॥ ५७ ॥

जब भीमसेन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके उस अस्त्रके सामने बाण मारने लगे, तब वह अस्त्र वायुसे प्रभावित जलती हुई शिखावाली अग्निकी भांति क्रमसे बढने लगा ॥ ५७ ॥

विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम् ।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत् ॥ ५८ ॥

उस अस्त्रको बढते हुए देख उग्र पराक्रमी भीमसेनको छोडकर सम्पूर्ण पाण्डव सेना भयभीत हो गयी ॥ ५८ ॥

ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले।
अवारोहन्रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥ ५९ ॥

तब पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अपने अस्त्रशस्त्रोंको पृथ्वीपर नीचे रखकर हाथी, घोडे और रथ आदि वाहनोंसे नीचे उतरे ॥ ५९ ॥

तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च।
तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथापतत् ॥ ६० ॥

इसी प्रकार जब सम्पूर्ण योद्धा लोग अस्त्रशस्त्रोंको त्यागके वाहनोंसे नीचे उतरे, तब वह अस्त्र प्रबलवेगके और प्रचंड शक्तिके सहित केवल भीमसेनके ही सिरपर गिरने लगा ॥ ६० ॥

हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः।
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तदा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ७८८२ ॥

उस समय भीमसेनको नारायण अस्त्रके तेजसे आच्छादित हुए देखकर, सम्पूर्ण प्राणी विशेष करके पाण्डव लोग हाहाकार करने लगे ॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥ ७८८२ ॥

: १७१ :

सञ्जय उवाच

भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वास्त्रेण धनंजयः।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! अर्जुनने भीमसेनको नारायण अस्त्रसे छिपे हुए देखकर उस अस्त्रके तेजको किञ्चित् शान्त करनेके लिए उन्हें वारुणास्त्रसे छिपाया; ॥ १ ॥

नालक्षयत तं कश्चिद्वारुणास्त्रेण संवृतम्।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः ॥ २ ॥

उन्होंने जो उस अग्निपुंजके बीचमें वारुणास्त्रको चलाके भीमसेनको छिपाया; उसे अर्जुनके हस्तलाघव तथा विशेष करके नारायण अस्त्रके तेजसे भीमसेनके छिपे रहनेसे कोई भी उनके वारुणास्त्रको न देख सके ॥ २ ॥

साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३ ॥

इधर घोडे, सारथी और रथके सहित भीमसेन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके नारायण अस्त्रसे छिपकर अग्निमें रक्खी हुई अग्निकी भांति भयङ्कर दीख पडते थे ज्वालाओंसे घिरनेके कारण उनकी ओर देखना असंभव था ॥ ३ ॥

यथा रात्रिक्षये राजञ्ज्योतींष्यस्तगिरिं प्रति।
समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥

रात्रि समाप्त होनेके समय जैसे सम्पूर्ण ज्योतिवाले पदार्थ अस्ताचल पर्वत पर गमन करते हैं, वैसे ही प्रकाशमान बाणोंके समूहके समूह भीमसेनके रथ पर पडने लगे ॥ ४ ॥

स हि भीमो रथश्चास्य हयाः सूतश्च मारिष।
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताभवन् ॥ ५ ॥

मारिष! उस समय भीमसेन रथ, घोडों और सारथीके सहित द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके अस्त्रसे छिपके अग्निपुञ्जमें निवास करने लगे ॥ ५ ॥

यथा दग्ध्वा जगत्कृत्स्नं समये सचराचरम्।
गच्छेदग्निर्विभोरास्यं तथास्त्रं भीममावृणोत् ॥ ६ ॥

जैसे प्रलयकालकी अग्नि चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण जगत्को भस्म करके भगवान् रुद्रके मुखमें प्रविष्ट होती है वैसेही उस अस्त्रने भीमसेनको आच्छादित किया ॥ ६ ॥

सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद्यथा चाग्निं दिवाकरः।
तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत किंचन ॥ ७ ॥

जैसे सूर्यमण्डलमें अग्नि और अग्निमें सूर्य प्रविष्ट हुए हों नारायण अस्त्रका तेज तेजस्वी भीमसेनपर छा गया; उस समय कुछ भी जान नहीं पडता था ॥ ७ ॥

विकीर्णमस्त्रं तद्दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वंद्वमाहवे ॥ ८ ॥

वैसे ही उस समय वह अस्त्र भीमसेनके रथपर छा गया था; द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अद्वितीय रूपसे युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करते अधिक प्रबल हो रहे थे ॥ ८ ॥

सर्वसैन्यानि पाण्डूनां न्यस्तशस्त्राण्यचेतसः।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान्महारथान् ॥ ९ ॥

पाण्डवोंकी संपूर्णसेना अस्त्र त्यागकर चेतरहितके समान होगई थी युधिष्ठिर आदि महारथी युद्धभूमिसे विमुख हो गये थे ॥ ९ ॥

अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती।
अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतां ततः ॥ १० ॥

यह सब देख, महातेजस्वी श्रीकृष्ण और अर्जुन शीघ्रतासे रथसे कूदके वेगपूर्वक भीमसेनकी ओर दौडे ॥ १० ॥

ततस्तद्द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसंभवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ माययाविशतां तदा ॥ ११ ॥

उस समय महाबलवान् उन दोनों वीरोंने माया बलसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके अस्त्र प्रभावसे उत्पन्न हुई अग्निके बीच प्रवेश किया ॥ ११ ॥

न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहदस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥ १२ ॥

वे दोनों ही महात्मा अस्त्र–शस्त्रोंसे रहित थे, और उनमें असाधारण प्रभाव तथा पराक्रम था और इसके अतिरिक्त वारुणास्त्रका भी प्रयोग हुआ था, इस ही कारणसे उस अस्त्रसे उत्पन्न हुई अग्नि उन दोनों महात्मा पुरुषोंको भस्म न कर सकी ॥ १२ ॥

ततश्चकृषतुर्भीमं तस्य सर्वायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥

अनन्तर वे नर नारायण रूपी श्रीकृष्ण और अर्जुन नारायण अस्त्रको शान्त करनेके लिये भीमसेनके निकटसे सब अस्त्र शस्त्रोंको बलपूर्वक फेंक कर उन्हें भी खींचकर रथसे नीचे उतारने लगे ॥ १३ ॥

अपकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारथः ।
वर्धते चैव तद्घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनने जब भीमसेनको बलपूर्वक ग्रहण करके रथसे नीचे उतारने लगे तब भीमसेन भयङ्कर शब्दके सहित चिल्लाने लगे, उससे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका वह अत्यंत दुर्जय घोर नारायण अस्त्र औरभी अधिक प्रबल वेगसे बढने लगा ॥ १४ ॥

तमब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्तसे ॥ १५ ॥

तब श्रीकृष्णचन्द्र उनसे बोले, हे पाण्डुपुत्र भीमसेन ! तुम निवारण करनेपर भी युद्धसे निवृत्त नहीं होते हो, यह क्या बात है ॥ १५ ॥

यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६ ॥

इस समय यदि कौरवोंकी युद्ध करनेसेही पराजय होसकती, तो इन सम्पूर्ण पुरुष श्रेष्ठ राजाओंके सङ्ग मिलकर हम लोग अवश्यही युद्ध करते ॥ १६ ॥

रथेभ्यस्त्ववतीर्णास्तु सर्व एव स्म तावकाः ।
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय रथात्तूर्णमपाक्रम ॥ १७ ॥

यह देखो, तुम्हारे सभी सैनिक रथसे नीचे उतरके पृथ्वी पर स्थित हुए हैं; कौन्तेय ! इससे तुम भी शीघ्रही रथसे उतरो और युद्धसे निवृत्त हो जाओ ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा ततः कृष्णो रथाद्भूमिमपातयत् ।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ १८ ॥

ऐसा वचन कहके श्रीकृष्णने सर्पके समान लम्बी सांस छोडनेवाले क्रोधित होकर लालनेत्रसे युक्त भीमसेनको रथसे उतारके पृथ्वीपर स्थित किया ॥ १८ ॥

यदापकृष्टः स रथान्न्यासितश्चायुधं भुवि ।
ततो नारायणास्त्रं तत्प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥ १९ ॥

जब श्रीकृष्ण और अर्जुनने बलपूर्वक भीमसेनको रथसे उतारके उनसे अस्त्रशस्त्रोंको पृथ्वीपर रखवा लिया गया, उसही समय शत्रुओंको संताप देनेवाला वह नारायण अस्त्र शान्त होगया ॥ १९ ॥

तस्मिन्प्रशान्ते विधिना तदा तेजसि दुःसहे ।
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च ॥ २० ॥

इसी प्रकार उस उपायसे अत्यन्त दुःसह नारायण अस्त्रका तेज शान्त हुआ; तब सम्पूर्ण दिशाएं और विदिशाएं निर्मल हो गयी ॥ २० ॥

प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः ।
वाहनानि च हृष्टानि योधाश्च मनुजेश्वर ॥ २१ ॥

पहिलेकी भांति सुखजनक वायु बहने लगी। पशुपक्षी और शूरवीर योद्धा, हाथी, घोडे आदि वाहन फिर पहिलेकी भांति प्रसन्न होकर सुखी हो गये ॥ २१ ॥

व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत ।
बभौ भीमो निशापाये धीमान्सूर्य इवोदितः ॥ २२ ॥

भारत ! विशेष करके जब उस नारायण अस्त्रका घोर तेज शान्त हो गया, उस समय बुद्धिमान् भीमसेन रात्रिके बीतनेपर भोरके समय उदित हुए सूर्यके समान शोभित होने लगे ॥ २२ ॥

हतशेषं बलं तत्र पाण्डवानामतिष्ठत ।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥ २३ ॥

इसी प्रकार नारायण अस्त्र निवर्तित होने पर मरनेसे बचे हुए पाण्डव और पाञ्चाल सेनाके योद्धा लोग फिर तुम्हारे पुत्रोंका नाश करनेके लिये हर्षित होकर रणभूमिमें स्थित हुए ॥ २३ ॥

व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा ।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

महाराज ! जब नारायण अस्त्रका प्रभाव शान्त हो गया और पाण्डवसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग कौरवोंके सङ्ग युद्ध करनेके लिये फिर रणभूमिके बीच स्थित हुए, तब राजा दुर्योधन द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे बोले ॥ २४ ॥

अश्वत्थामन्पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत्प्रयोजय ।
व्यवस्थिता हि पाञ्चालाः पुनरेव जयैषिणः ॥ २५ ॥

हे अश्वत्थामन् ! यह देखो, विजयकी अभिलाषा करनेवाले ये पाञ्चाल योद्धालोग फिर युद्ध करनेके निमित्त युद्धभूमिमें स्थित हुए हैं; तुम इस समय शीघ्रताके सहित फिर उस नारायण अस्त्रको चलाओ ॥ २५ ॥

अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष ।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

मारिष ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामा अत्यन्त शोकके सहित लम्बी सांस छोडते हुए उनसे यह वचन बोले ॥ २६ ॥

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते ।
आवर्तयन्निहन्त्येतत्प्रयोक्तारं न संशयः ॥ २७ ॥

हे राजेन्द्र ! यह नारायण अस्त्र फिर लौटता नहीं और इसका दुबारा प्रयोग भी नहीं हो सकता है । दूसरी बार प्रयोग करनेसे यह नारायण अस्त्र चलानेवालेका ही निसन्देह प्राण नाश करता है ॥ २७ ॥

एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् ।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! श्रीकृष्णने स्वयं इस अस्त्रके निवारण होनेका उपाय किया है; नहीं तो अवश्य ही सम्पूर्ण शत्रुओंका युद्धभूमिके बीच प्राण नाश हो जाता ॥ २८ ॥

पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयो मृत्युर्न निर्जयः ।
निर्जिताश्चारयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः ॥ २९ ॥

युद्धभूमिके बीच या तो पराजय होती है, अथवा मृत्यु; इनमें मृत्यु ही उत्तम है, पराजय नहीं । ये सारे शत्रु पराजित हो गये थे; इन्होंने अस्त्रशस्त्रोंको परित्याग किया था, तो ये मरे हुएके समान हो गये थे ॥ २९ ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते ।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥ ३० ॥

दुर्योधन बोले— हे अस्त्रवेत्ताओंमें अग्रगण्य आचार्यपुत्र अश्वत्थामन् ! यदि इस अस्त्रको दो बार चलानेका उपाय नहीं है, तो अन्यान्य अस्त्रोंसे गुरुघाती शत्रुओंका आप नाश कीजिये ॥ ३० ॥

त्वयि ह्यस्त्राणि दिव्यानि यथा स्युस्त्र्यम्बके तथा ।
इच्छतो न हि ते मुच्येत्क्रुद्धस्यापि पुरंदरः ॥ ३१ ॥

अत्यन्त तेजस्वी देवोंके देव महादेव और तुममें सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र विद्यमान हैं; आप यदि इच्छा करें, तो क्रुद्ध हुए तुमसे देवराज इन्द्र भी मुक्त नहीं हो सकते ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते ।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत्पुनः ॥ ३२ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! कपटतासे द्रोणाचार्यके मारे गये और नारायण अस्त्र भी निवृत्त हो गया, तब दुर्योधनके वैसा कहनेपर अश्वत्थामाने फिर क्या किया ? ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समवस्थितान् ।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३ ॥

क्योंकि नारायण अस्त्रसे मुक्त हुए पाण्डव रणभूमिके बीच युद्धके लिये स्थित और युद्धके अग्रभागपर घूम रहे हैं, यह उन्होंने देखा था ॥ ३३ ॥

संजय उवाच

जानन्पितुः स निधनं सिंहलाङ्गूलकेतनः ।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य अभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३४ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! सिंहलांगूल वाली ध्वजासे शोभित रथ पर चढे हुए अश्वत्थामा पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नको पिताकी मृत्युका कारण समझके अत्यन्त क्रुद्ध होकर निर्भय चित्तसे उनकी ओर दौडे ॥ ३४ ॥

अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभः ।
पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभम् । ॥ ३५ ॥

समीप जाकर नरश्रेष्ठ अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको पहिले बीस क्षुद्रबाण मारे और फिर अत्यंत वेगसे पांच बाणोंसे पुरुषश्रेष्ठ धृष्टद्युम्नको विद्ध किया ॥ ३५ ॥

×

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्ज्वलन्तमिव पावकम् ।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन्विव्याध पत्रिणाम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! अनन्तर धृष्टद्युम्नने भी जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान अश्वत्थामाको तिरसठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३६ ॥

सारथिं चास्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

और शिलापर घिस कर तेज किये हुए सुवर्ण पंखवाले बीस बाणोंसे उनके सारथी और चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ ३७ ॥

विद्ध्वा विद्ध्वानदद्द्रौणिः कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
आददत्सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥ ३८ ॥

इसी भांति अश्वत्थामा बार बार विद्ध करके पृथ्वीको कंपाते हुए सिंहनाद करने लगे; मानो उस महाघोर संग्रामभूमिमें वे सम्पूर्ण जगत्के प्राण ले रहे हों ॥ ३८ ॥

पार्षतस्तु बली राजन्कृतास्त्रः कृतनिश्रमः ।
द्रौणिमेवाभिदुद्राव कृत्वा मृत्युं निवर्तनम् ॥ ३९ ॥

राजन् ! इस प्रकार बलवान् कृतास्त्र और दृढ परिश्रम करनेवाले धृष्टद्युम्नने भी अपने प्राणकी आशाको त्यागके द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पर आक्रमण किया ॥ ३९ ॥

ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥ ४० ॥

अनन्तर अमेयात्मा, रथियोंमें मुख्य पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न लगातार अश्वत्थामाके मस्तक पर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४० ॥

तं द्रौणिः समरे क्रुद्धश्छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४१ ॥

अनन्तर अश्वत्थामाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने पिताके वधको स्मरण करके अनगिनत बाणोंसे युद्धमें धृष्टद्युम्नको छिपा दिया; और दस चोखे बाणोंसे उनके शरीरमें प्रहार किया ॥ ४१ ॥

द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥

अनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए दो क्षुर बाणोंसे अश्वत्थामाने पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नके धनुष और ध्वजाको काट दिया; फिर अनेक बाणोंको चलाकर उन्हें पीडित किया ॥४२॥

व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चानुचरान्सर्वान्क्रुद्धः प्राच्छादयच्छरैः ॥ ४३ ॥

इसी भांति द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नको घोडे, सारथी और रथसे रहित करके, क्रोधपूर्वक उनके अनुयाई योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित और आच्छादित किया ॥ ४३ ॥

प्रदुद्राव ततः सैन्यं पाञ्चालानां विशां पते ।
संभ्रान्तरूपमार्तं च शरवर्षपरिक्षतम् ॥ ४४ ॥

पृथ्वीपते ! उससे पाञ्चालसेना भ्रान्त, आर्त्त और भयभीत होके भाग चली; उस समय वे लोग बाणोंकी वर्षासे क्षतविक्षत हो गये थे ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा च विमुखान्योधान्धृष्टद्युम्नं च पीडितम् ।
शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥

उस समय शिनिपौत्र सात्यकिने पाञ्चालसेनाके योद्धाओंको युद्धभूमिसे विमुख और धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित देख, शीघ्रताके सहित अपना रथ अश्वत्थामाके रथकी ओर बढाया ॥ ४५ ॥

अष्टभिर्निशितैश्चैव सोऽश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणम् ।
विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४६ ॥

उन्होंने अश्वत्थामाको पहिले आठ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके, फिर अमर्षमें भरे हुए उनको अनेक प्रकारके बीस बाणोंसे विद्ध किया। अनन्तर उनके सारथीको भी विद्ध करके, फिर चार बाणोंसे उनके चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ ४६ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

महाधनुर्धारी अश्वत्थामा सात्यकिके नानाप्रकारके चिन्होंवाले बाणोंसे अत्यंत विद्ध होकर, अत्यन्त क्रुद्ध हुए और हंसके सात्यकिसे यह वचन बोले ॥ ४७ ॥

शैनेयाभ्यवपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनः ।
न त्वेनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ४८ ॥

हे शिनिपौत्र सात्यकि ! गुरुघाती धृष्टद्युम्नके ऊपर तुम्हारा जैसा प्रेम है, उसे मैं जानता हूं; परन्तु मेरे वशमें हुए हुए इनकी और अपनेकी भी तुम रक्षा नहीं कर सकोगे ॥ ४८ ॥

एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुपर्वाणं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत्सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ ४९ ॥

ऐसा वचन कहके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सूर्यकिरणोंके समान प्रकाशमान एक सुपर्वाण उत्तम बाण ग्रहण करके सात्यकि पर छोडा; मानो इन्द्रने वृत्रासुरके ऊपर वज्र चलाया हो ॥ ४९ ॥

स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन्बिलमिवोरगः ॥ ५० ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके हाथसे छुटा हुआ वह बाण कवचके सहित सात्यकिके शरीरको भेदकर इस प्रकार पृथ्वीको विदीर्ण करके उसमें प्रविष्ट हुआ, जैसे फुफकारता हुआ सर्प बिलके बीच प्रवेश करता है ॥ ५० ॥

स भिन्नकवचः शूरस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ॥ ५१ ॥

पराक्रमी सात्यकि कवच छिन्नभिन्न हो जानेपर घावोंसे रुधिरपूरित तथा क्षत विक्षत शरीरसे युक्त होकर, अंकुशोंकी मार खाये हुए मतवाले हाथीकी भांति व्यथित हो गये और उन्होंने धनुषबाण त्याग दिया ॥ ५१ ॥

सीदन्रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ॥ ५२ ॥

वे म्लान होकर, खूनसे लथपथ हो रथमें बैठ गये। उनके सारथीने उस ही समय उन्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके समीपसे पृथक् किया ॥ ५२ ॥

अथान्येन सुपुङ्खेन शरेण नतपर्वणा ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परंतपः ॥ ५३ ॥

अनन्तर शत्रुतापन अश्वत्थामाने अच्छे पंखवाले दूसरे एक नतपर्व बाणसे धृष्टद्युम्नको दोनों भौहोंके बीचमें विद्ध किया ॥ ५३ ॥

स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससाद युधि पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥ ५४ ॥

पाञ्चालराजपुत्र पहिलेसे ही अत्यन्त विद्ध हुए थे, फिर पीछे भी युद्धमें अत्यन्त पीडित होकर मूर्च्छितसे हुए और रथ दण्ड ग्रहण करके रथमें बैठ गये ॥ ५४ ॥

तं मत्तमिव सिंहेन राजन्कुञ्जरमर्दितम् ।
जवेनाभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः ॥ ५५ ॥

महाराज ! जैसे सिंहसे मदमत्त हाथी पीडित होता है, वैसे ही अश्वत्थामाके बाणोंसे धृष्टद्युम्नको पीडित तथा मूर्च्छित देखकर, पाण्डवोंके पांच शूरवीर महारथी बडे वेगसे वहां उपस्थित हुए ॥ ५५ ॥

किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन्सर्वतः समम् ॥ ५६ ॥

किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन, पुरुवंशीय वृद्धक्षत्र, चेदीदेशीय युवराज और मालवराज सुदर्शन, ये पांचों वहां आ पहुंचे। उन वीरोंने पांच पांच बाणोंसे सब ओरसे एक साथही द्रोणपुत्र अश्वत्थामापर प्रहार किया ॥ ५६ ॥

आशीविषाभैर्विंशद्भिः पञ्चभिश्चापि ताञ्शरैः ।
चिच्छेद युगपद्द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥ ५७ ॥

अश्वत्थामाने विषधारी सर्पोंके समान पच्चीस तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर एक साथही उन पचीस बाणोंको काट दिया ॥ ५७ ॥

सप्तभिश्च शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ५८ ॥

अनन्तर अश्वत्थामाने सात तेज बाणोंसे पौरवको, तीन बाणोंसे मालवराजको, एक बाणसे अर्जुनको और छः बाणोंसे भीमसेनको पीडित किया ॥ ५८ ॥

ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः ।
युगपच्च पृथक्चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ५९ ॥

राजन् ! अनन्तर पाण्डवोंकी ओरके वे पांचों महारथी योद्धालोग कभी एक ही बार और कभी पृथक् रूपसे शिलापर घिसे हुए सुवर्णमय पंखवाले अपने तेज बाणोंको धनुष पर चढाकर अश्वत्थामाको विद्ध करने लगे ॥ ५९ ॥

युवराजस्तु विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिणाम् ।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ६० ॥

फिर चेदिदेशीय युवराजने बीस, अर्जुनने आठ और अन्य महारथियोंने तीन तीन बाणोंसे अश्वत्थामाके शरीरमें प्रहार किया ॥ ६० ॥

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भिर्द्वाभ्यां छित्त्वा कार्मुकं च ध्वजं च ।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ६१ ॥

तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अर्जुनको छः श्रीकृष्णको दस, भीमसेनको पांच बाणोंसे विद्ध करके, चेदीदेशीय युवराजको चार बाणोंसे पीडित किया । फिर दो बाणोंसे उसका धनुष और ध्वजाको काट दिया । अनन्तर असंख्य बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करके अश्वत्थामाने घोर सिंहनाद किया ॥ ६१ ॥

तस्यास्यतः सुनिशितान्पीतधारान्द्रौणेः शरान्पृष्ठतश्चाग्रतश्च ।
धरा वियद्द्यौः प्रदिशो दिशश्च छन्ना बाणैरभवन्घोररूपैः ॥ ६२ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा इसी भांति लगातार अपने पानीदार तेज बाणोंको आगे और पीछे भी चला रहे थे; उनके उन भयंकर बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएं और विदिशाएं तथा पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष आदि भी आच्छादित हो गयी थीं ॥ ६२ ॥

आसीनस्य स्वरथं तूग्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत्संचकर्त ॥ ६३ ॥

अनन्तर इन्द्रके महापराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी अश्वत्थामाने अपने रथके समीप मालवराज सुदर्शनको स्थित देखकर, इन्द्रध्वजाकी भांति उनकी दोनों भुजाओं और सिरको तीन बाणोंसे एक साथही काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६३ ॥

स पौरवं रथशक्त्या निहत्य छित्त्वा रथं तिलशश्चापि बाणैः ।
छित्त्वास्य बाहू वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ६४ ॥

फिर अश्वत्थामाने पौरव वृद्धक्षत्रको रथ शक्तिसे घायल करके अपने तेज बाणोंसे उनके रथको तिल तिलके परिणामसे काट डाला और उनकी उत्तम चन्द्रनचर्चित दोनों भुजाओंको काटकर एक भल्लसे उनके सिरको धडसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६४ ॥

युवानमिन्दीवरदामवर्णं चेदिप्रियं युवराजं प्रहस्य ।
बाणैस्त्वरावाञ्ज्वलिताग्निकल्पैर्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥ ६५ ॥

अनन्तर शीघ्रगामी अश्वत्थामाने नीलकमलकी मालाके समान वर्णवाले युवा चेदिवंशियोंके प्रिय युवराजको आक्रमण करके जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान बाणोंसे विद्ध कर, घोडे और सारथीके सहित प्राणनाश करके उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ ६५ ॥

तान्निहत्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो युधां पतिः ।
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः ॥ ६६ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ शूरवीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उन महारथियोंका रणभूमिमें वध किया; और शत्रुओंसे अजेय अश्वत्थामा अत्यन्त हर्ष पूर्वक अपने बडे शङ्खको बजाने लगे ॥ ६६ ॥

ततः सर्वे च पाञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ।
धृष्टद्युम्नरथं भीतास्त्यक्त्वा संप्राद्रवन्दिशः ॥ ६७ ॥

तब पाण्डुपुत्र भीमसेन और सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धा लोग भयभीत होकर धृष्टद्युम्नका रथ छोडके वेगपूर्वक चारों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ६७ ॥

तान्प्रभग्नांस्तथा द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरैः ।
अभ्यवर्तत वेगेन कालवत्पाण्डुवाहिनीम् ॥ ६८ ॥

उस समय पराक्रमी अश्वत्थामा उन भागते हुए सैनिकोंपर पीछेसे सहस्रों बाणोंको वर्षाते हुए, उन्हें आक्रमण करके कालके समान उनके पीछे पीछे बडे वेगसे दौडे ॥ ६८ ॥

ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण क्षत्रियाः ।
द्रोणपुत्रं भयाद्राजन्दिक्षु सर्वासु मेनिरे ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ७९५१ ॥

महाराज ! उस समय वे सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा लोग समरमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित तथा विकल और भयभीत होके चारों ओर भागने लगे ॥ ६९ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ७९५१ ॥

: १७२ :

संजय उवाच

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! अमेयात्मा कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी सेनाको भागती देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको जीतनेकी इच्छा करके उसे निवृत्त करने लगे ॥ १ ॥

ततस्ते सैनिका राजन्नैव तत्रावतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन च ॥ २ ॥

राजन् ! परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनके द्वारा अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक स्थित करनेपर भी वे सेनाके योद्धा लोग किसी प्रकारसे भी युद्धभूमिमें खडे न होसके ॥ २ ॥

एक एव तु बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च संधाय कौरवैः संन्यवर्तत ॥ ३ ॥

उस समय अर्जुन अकेलेही सोमक मत्स्यसेनाके योद्धाओं और अन्य लोगोंको सङ्ग लेकर कौरवोंसे युद्ध करनेके लिये लौटे ॥ ३ ॥

ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।
सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अनन्तर सव्यसाची अर्जुन सिंहलांगूलवाली ध्वजासे शोभित महाधनुर्धारी अश्वत्थामाके पास शीघ्रताके सहित पहुंच करके उनसे यह वचन बोले ॥ ४ ॥

या शक्तिर्यच्च ते वीर्यं यज्ज्ञानं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिः प्रद्वेषोऽस्मासु यश्च ते ।
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्तत्परमं मम दर्शय ॥ ५ ॥

हे अश्वत्थामन् ! तुम्हारी धृतराष्ट्रपुत्रोंके ऊपर जैसी प्रीति और हम लोगोंके ऊपर तुम्हारा जैसा द्वेषभाव तथा तुम्हारा जहांतक अस्त्रविज्ञान, शक्ति, बल पराक्रम, वा पुरुषार्थ है, तुम्हारा जो कुछ तेज और प्रभाव है, वह सब तुम आज मुझे दिखाओ ॥ ५ ॥

स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं भेत्स्यति पार्षतः ।
कालानलसमप्रख्यो द्विषतामन्तको युधि ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ॥ ६ ॥

यह द्रोणाचार्यका वध करनेवाला धृष्टद्युम्नही तुम्हारे अभिमानको दूर कर देगा। युद्धमें शत्रुओंके लिये यमराज और कालाग्निके समान भयंकर धृष्टद्युम्न और श्रीकृष्णके सहित मेरे सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो जाओ ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि संजय ।
प्रीतिर्धनंजये चास्य प्रियश्चापि स वासवेः ॥ ७ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! द्रोणपुत्र बलवान् अश्वत्थामा सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुषोंमें माना है; विशेष करके अर्जुनके ऊपर उनकी अधिक प्रीति है, और वह भी इन्द्रपुत्र अर्जुनको प्रिय हैं ॥ ७ ॥

न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं पुरुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात्स कौन्तेयः सखायं रूक्षमब्रवीत् ॥ ८ ॥

ऐसी अवस्थामें कुन्तीपुत्र अर्जुनने अपने मित्र तथा सखा अश्वत्थामाको ऐसे कडवे वचन क्यों सुनाये ? इसके पहिले तो अर्जुनने कभी भी अश्वत्थामाके विषयमें ऐसे कडवे वचनोंका प्रयोग नहीं किया था ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच

युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे ।
इष्वस्त्रविधिसंपन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! चेदी देशीय युवराज, पुरुवंशीय वृद्धक्षत्र और अस्त्रशस्त्रोंकी विद्यामें निपुण मालवराज सुदर्शनके मारे जानेपर ॥ ९ ॥

धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते ।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ॥ १० ॥

धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा भीमसेनके पराजित होनेसे और राजा युधिष्ठिरके आक्षेप युक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनका चित्त विचलित हुआ था ॥ १० ॥

अन्तर्भेदे च संजाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो ।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥ ११ ॥

विशेष करके पहिलेके दुःखोंका स्मरण करके उनका अंतःकरण विदीर्ण हुआ था; इस कारण उस समय अर्जुन अभूतपूर्व दुःख और क्रोधके वशवर्त्ती हुए ॥ ११ ॥

तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान् ।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषो यथा ॥ १२ ॥

इस ही कारण उन्होंने कायर पुरुषकी भांति माननीय आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके विषयमें इस प्रकारके मानहानि करनेवाले, अप्रिय और अश्लील वचनोंका प्रयोग किया ॥ १२ ॥

एवमुक्तः श्वसन्क्रोधान्महेष्वासतमो नृप ।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मघ्नया गिरा ।
द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः ॥ १३ ॥

महाराज ! अर्जुनके क्रोधपूरित मर्मभेदी वाणीसे कहे हुए वचनोंको सुनकर धनुर्धारियोंमें अग्रणी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अत्यन्त क्रुद्ध होकर लंबी सांस लेने लगे उस समय अश्वत्थामाको अर्जुन और श्रीकृष्णपर विशेष क्रोध हुआ ॥ १३ ॥

स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ।
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे ॥ १४ ॥

अनन्तर वीर पराक्रमी अश्वत्थामाने यत्नपूर्वक रथमें स्थित होकर जलस्पर्श करके देवताओंसे भी असह्य आग्नेयास्त्रको ग्रहण किया ॥ १४ ॥

+

इत्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याचार्यनन्दनः ।
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम् ।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १५ ॥

और धूएंसे रहित अग्निकी भांति प्रकाशमान एक बाणको अभिमन्त्रित करके शत्रुवीरनाशन अश्वत्थामाने क्रोधपूर्वक दृश्य और अदृश्य शत्रुओंके वधके उद्देश्यसे उसे चलाया ॥ १५ ॥

ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत ।
ववुश्च शिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥ १६ ॥

अनन्तर आकाशमण्डलमें असंख्य बाणोंकी घोर वर्षा होने लगी । गरम वायु अत्यन्तही प्रबल वेगसे बहने लगी, सूर्यका ताप मन्द हुआ ॥ १६ ॥

चुक्रुशुर्दानवाश्चापि दिक्षु सर्वासु भैरवम् ।
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदाम्बरे ॥ १७ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें दानव भयङ्कर कोलाहल करने लगे; आकाशसे बादलोंके समूह गर्जते हुए रुधिरकी वर्षा करने लगे ॥ १७ ॥

पक्षिणः पशवो गावो मुनयश्चापि सुव्रताः ।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥ १८ ॥

उस समय पक्षी, गाय आदि पशु तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, स्थिर चित्तवाले मुनि भी शान्त न रह सके ॥ १८ ॥

भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्जितदिवाकरम् ।
त्रैलोक्यमभिसंतप्तं ज्वराविष्टमिवातुरम् ॥ १९ ॥

सहस्र किरण धारण करनेवाले भगवान् सूर्य तेजरहित हुए और उस समय सम्पूर्ण महाभूत मानो भ्रमित हो गये; इसी प्रकार तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया और सब ज्वरग्रस्तके समान भयभीत हो गये ॥ १९ ॥

शरतेजोऽभिसंतप्ता नागा भूमिशयास्तथा ।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २० ॥

उस समय पृथ्वीपर पडे रहनेवाले नाग भी उस बाणके तेजसे विकल होकर भयङ्कर तेजसे मुक्त होनेके लिये लम्बी सांस छोडते हुए ऊपर उछलने लगे ॥ २० ॥

जलजानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत ।
न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २१ ॥

भारत ! उस समय जलाशय तप गये और उसमें वास करनेवाले जीवजन्तु भी भस्म होने लगे; जलचारी जीव भी अग्निकी ज्वालासे ऐसे विकल हो गये, कि उन्हें किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न हो सकी ॥ २१ ॥

दिशः खं प्रदिशश्चैव भुवं च शरवृष्टयः।
उच्चावचा निपेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥ २२ ॥

उस ही समय दिशा, विदिशा, पृथ्वी तथा आकाश सब ओरसे गरुड और वायुके समान वेगगामी अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षा होने लगी ॥ २२ ॥

तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगसमाहितैः।
प्रदग्धाः शत्रवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥ २३ ॥

शत्रुसेनाके शूरवीर योद्धा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके चलाये हुए वज्रके समान वेगशाली तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित तथा दग्ध होके इस प्रकार पृथ्वीमें गिरने लगे, जैसे अग्निके वेगसे वनके वृक्ष भस्म होके गिर पडते हैं ॥ २३ ॥

दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः।
नदन्तो भैरवान्नादाञ्जलदोपमनिस्वनान् ॥ २४ ॥

बडे बडे मतवाले बहुतेरे हाथी दग्ध होके मेघकी गर्जनाकी भांति भयङ्कर शब्द करते हुए सब ओर मरके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २४ ॥

अपरे प्रद्रुतास्तत्र दह्यमाना महागजाः।
त्रेसुस्तथापरे घोरे वने दावाग्निसंवृताः ॥ २५ ॥

कितने ही हाथी जैसे पहिले वनमें दावाग्नि लगनेसे घिर जानेपर वे चारों ओर भयभीत होके भ्रमण करते थे, वैसे ही इस समय आग्नेयशास्त्रकी अग्निसे दग्ध होकर युद्धभूमिमें इधर उधर चारों ओर वेगपूर्वक भयभीत होके भागने लगे ॥ २५ ॥

द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि चाभिभो।
अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः ॥ २६ ॥

मारिष! प्रभो! जैसे वनके बीच दावाग्नि प्रकट होनेसे वृक्षोंकी डाल शाखा तथा चोटी भस्म होनेसे ठूठे वृक्ष दीख पडते हैं, वैसे ही घोडों और रथोंके समूह दिखाई देने लगे, और सब ओर सहस्रों रथ समूह गिरे पडे थे ॥ २६ ॥

तत्सैन्यं भगवानग्निर्ददाह युधि भारत।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥ २७ ॥

भारत! इसी प्रकार उस आग्नेयास्त्रकी अग्नि सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करनेवाली प्रलयाग्निकी भांति भयभीत हुए पाण्डवोंकी सेनाको युद्धमें भस्म करने लगी ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ।
प्रहृष्टास्तावका राजन्सिंहनादान्विनेदिरे ॥ २८ ॥

राजन् ! उस महायुद्धमें पाण्डवोंकी सेनाको भस्म होती देख तुम्हारे सैनिक अत्यंत हर्षित और आनन्दित होके सिंहनाद करने लगे ॥ २८ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ।
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः ॥ २९ ॥

अनन्तर अपनी विजयका लक्षण देख प्रसन्न चित्तसे तुम्हारे सैनिक सहस्रों ढोल, भेरी, शंख और नगाडे आदि युद्धके जुझाऊ बाजे बजाने लगे ॥ २९ ॥

कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन्सव्यसाची च पाण्डवः ।
तमसा संवृते लोके नादृश्यत महाहवे ॥ ३० ॥

महाराज ! उस महायुद्धमें सम्पूर्ण लोग अन्धकारसे परिपूरित हो गये थे; उस समय सव्यसाची पूरी एक अक्षौहिणी सेनाके सहित अर्जुन तनिक भी दीख न पडे ॥ ३० ॥

नैव नस्तादृशं राजन्दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ॥ ३१ ॥

राजन् ! जब क्रुद्ध होकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने आग्नेयास्त्र प्रकट किया, उस समय जैसी घटना हुई, हम लोगोंने इसके पहिले, ऐसा कभी न देखा और न सुना ही था ॥ ३१ ॥

अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ।
सर्वास्त्रप्रतिघाताय विहितं पद्मयोनिना ॥ ३२ ॥

महाराज ! अनन्तर अर्जुनने समस्त अस्त्रोंके निवारण करनेमें समर्थ प्रजापति ब्रह्माके बनाये हुए ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ॥ ३२ ॥

ततो मुहूर्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह ।
प्रववौ चानिलः शीतो दिशश्च विमलाभवन् ॥ ३३ ॥

उससे क्षणभरके बीच वह अन्धकार दूर हो गया; शीतल वायु बहने लगी और सम्पूर्ण दिशाएं निर्मल हो गईं ॥ ३३ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ।
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रमायया ॥ ३४ ॥

परन्तु उस स्थलमें हमने एक अद्भुत और आश्चर्यमय दृश्यको अवलोकन किया कि, पाण्डवोंकी वह अक्षौहिणी सेना उस अस्त्रकी मायासे इस प्रकार भस्म हो गई, कि उसे पहचानना अशक्य हो गया ॥ ३४ ॥

ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ।
सहितौ संप्रहृष्येतां नभसीव तमोनुदौ　॥ ३५ ॥

अनन्तर एक रथ पर स्थित महाधनुर्द्धारी वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन उस अस्त्रसे मुक्त होकर वहां इस प्रकार शोभित हुए, जैसे बादलोंके समूहसे मुक्त होके आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा दीख पडते हैं ॥ ३५ ॥

सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ स रथो मुक्तस्तावकानां भयंकरः　॥ ३६ ॥

और ध्वजा, पताका, घोडे तथा उत्तम अस्त्रशस्त्रोंसे परिपूरित कौरवोंकी सेनाको भयभीत करनेवाला, कपि ध्वजासे युक्त अर्जुनका दिव्य रथ भी रणभूमिके बीच प्रकाशित होने लगा ॥ ३६ ॥

ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीरवैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत　॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणरहित शरीरसे मुक्त हुए देख, क्षणभरमें पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष प्रसन्न और हर्षित होके, शंख, भेरी आदि बाजोंको बजाते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ३७ ॥

हताविति तयोरासीत्सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाभ्यागतौ दृष्ट्वा विमुक्तौ केशवार्जुनौ　॥ ३८ ॥

पहिले कौरव और पाण्डव सेनाके शूरवीरोंने श्रीकृष्ण और अर्जुनको वे मारे गये, ऐसे ही मान लिया था; परन्तु इस समय उन दोनों ही महात्मा पुरुषोंको सकुशल मुक्त होकर वेगपूर्वक समीप आते देखा तब सब अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥

तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान्पार्थांस्त्वदीया व्यथिताभवन्　॥ ३९ ॥

वे दोनों वीर अक्षत थे; और वे दोनों आनन्दित होकर अपने उत्तम शंख बजाने लगे। कुन्तीके पुत्रोंको आनन्दित प्रसन्न देखकर तुम्हारे पुत्र अत्यन्तही दुःखित हुए ॥ ३९ ॥

विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास किं त्वेतदिति मारिष　॥ ४० ॥

मारिष ! विशेष करके द्रोणपुत्र अश्वत्थामा महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आग्नेयास्त्रसे मुक्त देखकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे मुहूर्तभर तक "यह क्या हुआ !" इसी भांति चिन्ता करने लगे ॥ ४० ॥

चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाभवत्तदा ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! अनन्तर वह शोक और चिन्तासे युक्त होके कुछ देरतक विचार करके लम्बी तथा गर्म सांस छोडते हुए अत्यन्त ही उदास हुए ॥ ४१ ॥

ततो द्रौणिर्धनुर्न्यस्य रथात्प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग्धिक्सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा संप्राद्रवद्रणात् ॥ ४२ ॥

फिर द्रोणपुत्रने धनुष फेंककर वेगपूर्वक रथसे कूदके "धिक्कार है, यह सब मिथ्या है !" ऐसा वचन कहके रणभूमिसे प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥

ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदव्यासमकल्मषम् ।
आवासं च सरस्वत्याः स वै व्यासं ददर्श ह ॥ ४३ ॥

उस ही समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपने सम्मुखमें स्थित सजल मेघके समान कांतिमान, चारों वेदोंके विभाजक, उपवेद वेदांग, स्मृति आदिओंके और सरस्तीके निवासस्थान, पापरहित श्री वेदव्यास ऋषिका दर्शन किया ॥ ४३ ॥

तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वह ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥ ४४ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ अश्वत्थामाने श्रीवेदव्यास महर्षिको अपने अगाडी स्थित देख, रुद्धकण्ठसे अत्यन्त दीनताके सहित प्रणाम करके यह प्रश्न किया ॥ ४४ ॥

भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत् ।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ४५ ॥

हे भगवन् ! यह क्या दैवी माया है ? वा और कोई घटना है ? मैं इसे कुछ भी मालूम न कर सका । इस अस्त्रके निष्फल होनेका क्या कारण है ? क्या मेरी बुद्धि विपरीत हुई थी ? ॥ ४५ ॥

अधरोत्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः ।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ४६ ॥

इस अस्त्रके प्रभावमें कुछ उलट फेर तो नहीं हुआ है ? यह क्या सम्पूर्ण लोकोंके नाश होनेका समय उपस्थित हुआ है ? क्योंकि वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन जीते ही मेरे अस्त्रसे मुक्त हुए हैं । जो हो, कालका उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४६ ॥

नासुरामरगन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न सर्पयक्षपतगा न मनुष्याः कथंचन ॥ ४७ ॥
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम् ।
तदिदं केवलं हत्वा युक्तामक्षौहिणीं ज्वलत् ॥ ४८ ॥

नहीं तो मेरे चलाये हुए इस आग्नेयास्त्रको देव, असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष, पक्षी, मनुष्य आदि कोई प्राणी भी निवारण तथा निष्फल करनेमें उत्साही नहीं हो सकते । ऐसी अवस्थामें भी यह प्रज्वलित आग्नेयास्त्र केवल एक ही अक्षौहिणी सेना भस्म करके शान्त हो गया ॥ ४७-४८ ॥

केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नावधीत्केशवार्जुनौ ।
एतत्प्रब्रूहि भगवन्मया पृष्टो यथातथम् ॥ ४९ ॥

हे भगवन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही मर्त्यधर्मावलम्बी हैं; तब मेरे हाथसे छूटे हुए आग्नेयास्त्रने किस कारणसे उनका वध नहीं किया ? मैंने जो आपसे यह पूछा है, इस विषयके यथार्थ वृत्तान्तको सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४९ ॥

व्यास उवाच

महान्तमेतमर्थं मां यं त्वं पृच्छसि विस्मयात् ।
तत्प्रवक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥ ५० ॥

श्री वेदव्यास मुनि बोले-- हे द्रोणपुत्र अश्वत्थामन् ! इस विषयमें जो तुम विस्मित होके मुझसे प्रश्न कर रहे हो; मैं वह महत्त्वपूर्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाकर सुनो ॥ ५० ॥

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥ ५१ ॥

जो हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज विश्वाधार भगवान् नारायण हैं, उन्होंने किसी प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त धर्मके पुत्र होकर अवतार लिया ॥ ५१ ॥

स तपस्तीव्रमातस्थे मैनाकं गिरिमास्थितः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसंनिभः ॥ ५२ ॥

अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी उन महापुरुषने मैनाक पर्वतपर गमन करके अपनी दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर अत्यन्त कठिन तपस्या की ॥ ५२ ॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
अशोषयत्तदात्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः ॥ ५३ ॥

उन कमलनयन नारायणने छाछठ हजार वर्ष पर्यंत केवल वायु भक्षण करके उन दिनों अपने शरीरको सुखाया ॥ ५३ ॥

अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत्पुनर्महत् ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥ ५४ ॥

फिर उससे द्विगुण समयतक महान् तपस्या करके उन्होंने अपने तेजसे पृथ्वी आकाशको परिपूरित किया ॥ ५४ ॥

स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाभवत् ।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ५५ ॥
ददर्श भृशदुर्दर्शं सर्वदेवैरपीश्वरम् ।
अणीयसामणीयांसं बृहद्भ्यश्च बृहत्तरम् ॥ ५६ ॥

तात ! जब वे उस तपस्याके प्रभावसे साक्षात् ब्रह्मरूप हुए; तब उन्होंने जगन्नियन्ता, विश्वके कारण, जगत्के पालक, अत्यन्त कठिनतासे बोध होने योग्य, सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित, बृहत् वस्तुओंसे भी बृहत् और सूक्ष्मसे सूक्ष्म जगत्स्रष्टा विश्वेश्वरका दर्शन किया ॥५५-५६॥

रुद्रमीशानमृषभं चेकितानमजं परम् ।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥ ५७ ॥

वह विश्वेश्वर रुद्र, ईशान, ऋषभ, चेतनस्वरूप अज परम और स्थावर जङ्गम आदि सम्पूर्ण भूतोंके परम कारण है और सर्व भूतोंके अंतःकरणमें स्थित हैं ॥ ५७ ॥

दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् ।
दिव्यं चापमिषुधी चाददानं हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ५८ ॥

वह निवारण करनेके अयोग्य, नेत्रसे अगोचर दुष्टोंके ऊपर क्रोध करनेवाले, महात्मा, सर्वहर, साधुओंके विषयमें उदार चित्तवाले, दिव्य शरासन और तूणीरधारी, हिरण्यवर्मा, अत्यन्त पराक्रम तथा बलसे युक्त हैं ॥ ५८ ॥

पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं परश्वधिं गदिनं स्वायतासिम् ।
सुभ्रुं जटामण्डलचन्द्रमौलिं व्याघ्राजिनं परिघं दण्डपाणिम् ॥ ५९ ॥

वह पिनाक, वज्र, प्रकाशमान शूल, परश्वध, गदा और दीर्घ खड्ग धारण करनेवाले हैं, सुंदर भौंहेवाले, उनके ललाटपर चन्द्रमा और सिर पर जटा शोभित हैं । उनका वर्ण श्वेत है, वह व्याघ्राम्बर पहरनेवाले महादेव परिघ और दण्डधारी हैं ॥ ५९ ॥

शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतिं विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसंघैः ।
एकीभूतं तपसां संनिधानं वयोतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६० ॥

उनके गलेमें नागमय यज्ञोपवीत शोभित है और भुजाएं मनोहर अङ्गदोंसे भूषित हैं। वह सम्पूर्ण प्राणी तथा भूतोंके स्वामी हैं। वह सदा एक रूप, तपस्याके निधिस्वरूप हैं, प्राचीन ऋषिलोग उनकी इष्ट वचन तथा वेदवाक्योंसे स्तुति करते रहते हैं ॥ ६० ॥

जलं दिवं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ तथा वाय्वग्नी प्रतिमानं जगच्च ।
नालं द्रष्टुं यमजं भिन्नवृत्ता ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६१ ॥

जो पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष, आकाश, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि तथा सम्पूर्ण जगत्के परम कारण हैं, दुष्ट लोग ब्रह्मद्वेषियोंके नाश करनेवाले मोक्षके परम कारण उस अज, अविनाशी, परम पुरुषके दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ६१ ॥

यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः क्षीणे पापे मनसा ये विशोकाः ।
स तन्निष्ठस्तपसा धर्ममीड्यं तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श ।
दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः संहृष्टात्मा मुमुदे देवदेवम् ॥ ६२ ॥

परन्तु मनसे शोक संतापादि रहित साधु शीलवाले पापरहित ब्राह्मणलोग ज्ञान नेत्रसे उनका दर्शन कर सकते हैं। वासुदेव नारायण ऋषि उनके अत्यन्त भक्त हैं; इससे वह अपने उस तपस्या और भक्तिके प्रभावसे दिव्य तेजसे प्रकाशित, साक्षात् धर्मरूप, जगत् वन्दनीय, विश्वव्यापक महादेवके दर्शन करनेमें समर्थ हुए, उन देवदेवका दर्शन करके मन, वाणी, बुद्धि और देहके साथ उनका अंतःकरण प्रसन्न हो गया ॥ ६२ ॥

अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम् ।
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसंभवम् ॥ ६३ ॥

नारायण ऋषिने तेजकी परम निधि स्वरूप, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले, जगत्स्रष्टाका दर्शन करके उनको प्रणाम किया ॥ ६३ ॥

वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।
अजमीशानमव्यग्रं कारणात्मानमच्युतम् ॥ ६४ ॥

वे वर देनेवाले प्रभु पुष्ट तथा अत्यंत मनोहर अङ्गोंवाली पार्वती देवीके साथ आये थे; उन अज, ईशान, अव्यग्र सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके कारणात्मा तथा अच्युत ॥ ६४ ॥

अभिवाद्याथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने ।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ६५ ॥

महात्मा रुद्रका दर्शन करके आनन्दित होकर उनकी वन्दना की । अनन्तर कमलनयनवाले नारायण ऋषि अन्धकासुरके नाश करनेवाले विरूपाक्ष रुद्रदेवको नमस्कार करके भक्तिभावसे युक्त होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ६५ ॥

त्वत्संभूता भूतकृतो वरेण्य गोप्तारोऽस्य भुवनं पूर्वदेवाः ।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्पुरा पुराणां तव देव सृष्टिम् ॥ ६६ ॥

हे वरदान करनेवाले ! हे देवोंके देव ! जो इस जगत्के रक्षक, सम्पूर्ण प्राणियोंके सृष्टिकर्त्ता, देवताओंके पूर्व प्रजापति हैं, वे तुमसे ही प्रकट होके पृथ्वी प्रकृतिके बीच प्रवेश करके तुम्हारी बनाई हुई पुरातनी सृष्टिकी रचना करते हैं ॥ ६६ ॥

सुरासुरान्नागरक्षःपिशाचान्नरान्सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् ।
पृथग्विधान्भूतसंघांश्च विश्वांस्त्वत्संभूतान्विद्म सर्वांस्तथैव ।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं मैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम् ॥ ६७ ॥

देवता, असुर नाग, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, गरुड आदि पक्षी तथा गन्धर्व, यक्ष आदि जो पृथक् अनेक प्राणियोंके संघ हैं, वे सब तुम्हारेही प्रभावसे उत्पन्न होते हैं, यह हमें विदित है । इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, मित्र और चन्द्रमा आदि दिक्पाल तथा त्वष्टा आदि प्रजापति तुम्हारे ही प्रभावसे अपने अधिकारके कार्योंका निर्वाह करते हैं ॥ ६७ ॥

रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी ।
कामो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च त्वत्संभूतं स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥ ६८ ॥

रूप–तेज, शब्द–आकाश, स्पर्श–वायु, रस–जल और गन्ध–पृथ्वीकी उत्पत्ति आपसेही हुई है; काल ब्रह्मा, वेद, ब्राह्मण और सब स्थावर जंगम जगत् ये सब तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ६८ ॥

अद्भ्यः स्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः ।
एवं विद्वान्प्रभवं चाप्ययं च हित्वा भूतानां तत्र सायुज्यमेति ॥ ६९ ॥

जैसे पानीकी बूंदें पानीसेही अलग होकर, क्षीण होनेपर फिर पानीमें मिलकर उसके साथ एकरूप होती हैं; वैसेही यह विश्व संसारके संपूर्ण भूत तुमसेही उत्पन्न होकर फिर तुममें ही लीन हो जाते हैं। तत्त्वज्ञानी पण्डित लोग तुम्हें प्राणियोंकी उत्पत्ति और उनके लयके कारण जानकर ही तुम्हारी कृपासे सायुज्य मुक्ति लाभ करते हैं ॥ ६९ ॥

दिव्यावृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णावेवाक्शाखः पिप्पलः सप्त गोपाः।
दशाप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति त्वया सृष्टास्ते हि तेभ्यः परस्त्वम्।
भूतं भव्यं भविता चाप्यधृष्यं त्वत्संभूता भुवनानीह विश्वा ॥ ७० ॥

हे देवोंके देव ! तुम्हीं मानव वृक्ष पर निवास करनेवाले दिव्य और अमृतरूपी जीव और ईश्वररूपी दो पक्षी हो उनकी रक्षा करनेवाले सात धातुरूप सात पीपल हैं; वेदवाणी उन वृक्षोंकी शाखाएं हैं; सम्पूर्ण शरीररूपी नगरका प्रतिपालन करनेवाली दूसरी भी दस इन्द्रियां हैं; तुम उन्हें उत्पन्न करके स्वयं पृथक् रूपसे निवास करते हो। तुम भूत, वर्त्तमान और भविष्य अजेय काल हो। यहां सम्पूर्ण लोक तुमसेही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७० ॥

भक्तं च मां भजमानं भजस्व मा रीरिषो मामहिताहितेन।
आत्मानं त्वामात्मनोऽनन्यभावो विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम् ॥ ७१ ॥

मैं तुम्हारा गुण संकीर्तन करनेवाला भक्त हूं, तुम मेरे ऊपर कृपा करो। आप मुझे अपनाईये; अहित करनेवालोंको रखकर मेरी हिंसा न कराईये ! तत्त्वज्ञानी पुरुष तुम्हें अपनी आत्मासे अभिन्न जानकर ही उस पवित्र ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥

अस्तौषं त्वां तव संमानमिच्छन्विचिन्वन्वै वृषभं देववर्य।
सुदुर्लभान्देहि वरान्ममेष्टानभिष्टुतः प्रतिकार्षीश्च मा माम् ॥ ७२ ॥

हे सर्वेश्वर ! मैं स्तुतिके सर्वथा योग्य आप परमेश्वरका चिरकालसे चिंतन करके ही तुम्हारे संमानकी इच्छासे तुम्हारी स्तुति कर रहा हूं; तुम मेरी स्तुतिसे प्रसन्न हो, अपनी मायाको दूर करके मेरे अभिलषित दुर्लभ वर प्रदान करो। आप मेरे प्रतिकूल न होइये ॥ ७२ ॥

तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृक्।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ७३ ॥

अचिन्त्यस्वरूप, पिनाकधारी, नीलकण्ठ महादेवने उन ऋषिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उन माननीय महर्षिको अभिलषित वर प्रदान किये ॥ ७३ ॥

नीलकण्ठ उवाच

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ७४ ॥

भगवान् नीलकण्ठ बोले– हे नारायण ऋषि ! तुम मेरे प्रसादसे देव, गन्धर्व और मनुष्ययोनिके बीच अत्यन्त पराक्रमशाली होंगे ॥ ७४ ॥

न च त्वा प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न नरा न च राक्षसाः ॥ ७५ ॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः ।
न कश्चित्त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ॥ ७६ ॥

देवता, असुर, बडे सर्प, पिशाच, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस, सुपर्ण, नाग तथा सम्पूर्ण अयोनिसे उत्पन्न हुए प्राणी भी तुम्हारे वेगको सहन करनेमें समर्थ न होंगे। देवताओंके बीच भी कोई तुम्हें पराजित नहीं कर सकेगा ॥ ७५–७६ ॥

न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना ।
नार्द्रेण न च शुष्केण त्रसेन स्थावरेण वा ॥ ७७ ॥
कश्चित्तव रुजं कर्ता मत्प्रसादात्कथंचन ।
अपि चेत्समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ॥ ७८ ॥

किसी प्रकारके शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, जल आदि द्रव पदार्थ तथा सूखे पत्थर आदि स्थावर वस्तु और जङ्गम प्राणी भी मेरे प्रसादसे तुम्हें पीडित करनेमें समर्थ न होंगे ! ऐसा क्या, युद्धभूमिमें तुम मुझसे भी अधिक पराक्रम प्रकाशित करोगे ॥ ७७–७८ ॥

व्यास उवाच

एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद्विद्धि शौरिणा ।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ७९ ॥

महर्षि व्यास बोले– हे अश्वत्थामन् ! पहिले श्रीकृष्ण इसी प्रकार भगवान् महादेवके निकटसे अनेक वर प्राप्त किये थे, यह तुमको जानना चाहिये; इस समय वही नारायणऋषि श्रीकृष्णके रूपसे अवतार लेके अपनी मायासे इस जगत्‌को मोहित करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं ॥ ७९ ॥

तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८० ॥

और नारायणऋषिके ही तपस्यासे प्रकट हुए उन्हींके समान प्रभावसे युक्त जो नर ऋषि नामक महान् महात्मा हैं, वही अर्जुनके रूपसे उत्पन्न हुए हैं। इस बातको तुम सदा जान लो ॥ ८० ॥

तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी ।
लोकयात्राविधानार्थं संजायेते युगे युगे ॥ ८१ ॥

ये दोनों ही देवताओंके पुरातन परम ऋषि कहके सर्वत्र प्रशंसित हुए हैं। लोकयात्रा विधानके निमित्त ये दोनों महात्मा प्रतियुगमें अवतार लेते हैं ॥ ८१ ॥

तथैव कर्मणः कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च।
तेजोमन्युश्च विद्वंस्त्वं जातो रौद्रो महामते ॥ ८२ ॥

महामते! वैसे ही तुम भी सम्पूर्ण कर्मरूप अपने बृहत् तपस्याके प्रभावसे तेज और क्रोध धारण करके रुद्र अंशसे उत्पन्न हुए हो ॥ ८२ ॥

स भवान्देववत्प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत्।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥ ८३ ॥

पहिले तुम नारायणऋषिके समान महाबुद्धिमान् एक मुनि थे, इस जगत्को शिवमय जानकर महादेवके प्रीतिकी इच्छासे अनेक प्रकारके कठोर नियमोंका पालन करते हुए तपस्यामें रत होकर तुमने अपने शरीरको सुखा दिया ॥ ८३ ॥

शुभमौर्वं नवं कृत्वा महापुरुषविग्रहम्।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥ ८४ ॥

हे मानद! तुमने जप, होम और उपवास आदि व्रतसे अपने शरीरको पापरहित करके देवोंके देव महादेवकी पूजा की थी ॥ ८४ ॥

स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेवोऽप्यतूतुषत्।
पुष्कलांश्च वरान्प्रादात्तव विद्वन्हृदि स्थितान् ॥ ८५ ॥

हे विद्वन्! इसी प्रकार देवोंके देव महादेव तुम्हारे पहिलेसे उत्पन्न हुए अनेक शरीरोंसे पूजित होकर तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुए थे। इस ही कारण भगवान् रुद्रने तुम्हारी अभिलाषाके अनुसार तुम्हें उत्तम वर प्रदान किये थे ॥ ८५ ॥

जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां युगे युगे ॥ ८६ ॥

इससे नर–नारायण ऋषि और तुम्हारा अर्थात् तुम तीनों ही महात्माओंके जन्म, कर्म श्रेष्ठ हैं और तुम तीनोंहीमें तपस्या और योगका प्रभाव है। जैसे उन दोनों महात्माओंने प्रतियुगोंमें महादेवके लिङ्गकी पूजा की है, वैसे ही तुमने भी प्रतिमा बनाकर महादेवकी पूजा की है ॥ ८६ ॥

सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम्।
आत्मयोगाश्च तस्मिन्वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः ॥ ८७ ॥

विशेष करके जो भगवान् शंकर महादेवको सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति और लयके कारण अर्थात् सर्वरूप जानकर रुद्रलिङ्गमें उनकी पूजा करता है; उसमें सनातन आत्मयोग और शास्त्रयोग प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ८७ ॥

एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रार्थयन्ति परं लोके स्थानमेव च शाश्वतम् ॥ ८८ ॥

इसी भांति देवता, सिद्ध और परम ऋषिलोग भी महादेवकी पूजा-आराधना करके उनसे शाश्वत परमपद पानेकी प्रार्थना किया करते हैं ॥ ८८ ॥

स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसंभवः ।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैष सनातनः ॥ ८९ ॥

ये श्रीकृष्ण भगवान् रुद्र-शंकरके भक्त हैं और उन्हींसे प्रकट हुए हैं; इसलिये सनातन पुरुष श्रीकृष्णकी ही यज्ञोंसे उपासना करनी चाहिये ॥ ८९ ॥

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गेऽर्चयति यः प्रभुम् ।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥ ९० ॥

क्योंकि जो सर्व शक्तिमान् महादेवको सम्पूर्ण चराचर भूत प्राणियोंकी आत्मा और उत्पत्तीका स्थान जानकर शिवलिङ्गकी पूजा करता है, उसपर वृषभध्वज महादेव अत्यंत प्रेम करते हैं ॥ ९० ॥

सञ्जय उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः ।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९१ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने वेदव्यासके वचनको सुनकर भगवान् रुद्रको नमस्कार किया और श्रीकृष्णको भी अत्यन्त ही पूजनीय समझा ॥ ९१ ॥

हृष्टलोमा च वश्यात्मा नमस्कृत्य महर्षये ।
वरूथिनीमभिप्रेत्य अवहारमकारयत् ॥ ९२ ॥

अनन्तर पराक्रमी अश्वत्थामाने अपने चित्तको वशमें किया और रोमाञ्चित शरीरसे युक्त होकर अपनी सेनाके बीच जाकर सम्पूर्ण योद्धाओंको युद्ध करनेसे निवृत्त किया ॥ ९२ ॥

ततः प्रत्यवहारोऽभूत्पाण्डवानां विशां पते ।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ९३ ॥

पृथ्वीपते ! कौरवोंकी सेनाको युद्धसे निवृत्त होती देख पाण्डवोंने भी अपनी सेनाके योद्धाओंको युद्धसे निवृत्त किया । युद्धभूमिके बीच द्रोणाचार्यके मारे जानेपर इसी भांति दीनभावसे युक्त कौरव और उत्साहयुक्त पाण्डवोंने उस दिन अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त किया ॥ ९३ ॥

युद्धं कृत्वा दिनान्पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम् ।
ब्रह्मलोकं गतो राजन्ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ९४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥ ॥ ८०४५ ॥

राजन् ! वेदविद्या जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण द्रोणाचार्य पांच दिनोंतक युद्ध करके शत्रुओंकी सेनाके असंख्य योद्धाओंका संहार करके अन्तमें ब्रह्मलोकको गये ॥ ९४ ॥

महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७२ ॥ ८०४५ ॥

: १७३ :

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते तत्र संजय ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! युद्धभूमिमें अतिरथी द्रोणके मारे जानेपर पाण्डुके और मेरे पुत्रोंने आगे क्या किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ २ ॥

दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम् ।
यदृच्छयागतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! जब अतिरथी द्रोणाचार्य पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये और कौरवोंकी सेना युद्धभूमिसे पराजित हुई, उस समय कुन्तीपुत्र अर्जुनने विस्मय उत्पन्न करनेवाली अपनी अद्भुत विजय देख, तथा अकस्मात् वहां व्यासदेवको अपने समीपमें आये हुए देखकर उनसे पूछा ॥ २–३ ॥

संग्रामे निघ्नतः शत्रूञ्शरौघैर्विमलैरहम् ।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥

हे महर्षि ! युद्धभूमिके बीच जब मैं अपने विमल तेज बाणोंसे शत्रुओंको नाश करनेमें प्रवृत्त हुआ था उस समय मैंने देखा कि मेरे अगाडी अग्निके समान तेजस्वी एक पुरुष चल रहे हैं ॥ ४ ॥

ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते ।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥

महामुने ! वे प्रकाशमान त्रिशूल ग्रहण करके जिस ओर जाते, उस ही ओरके मेरे शत्रु छिन्न भिन्न हो जाते थे ॥ ५ ॥

न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति ।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥ ६ ॥

उन महा तेजस्वी पुरुषने अपने पावोंसे पृथ्वीको स्पर्श ही नहीं किया और अपने हाथसे प्रकाशमान त्रिशूलको अलग भी नहीं किया; उनके तेज प्रभावसे उस हाथमें स्थित एक ही त्रिशूलसे सहस्रों शूल निकलकर शत्रुओंपर गिरते थे ॥ ६ ॥

तेन भग्नानरीन्सर्वान्मद्भग्नान्मन्यते जनः ।
तेन दग्धानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुदहाम्यहम् ॥ ७ ॥

उस समय उन्होंने ही मेरे सम्पूर्ण शत्रुओंको छिन्नभिन्न कर दिया हैं, परंतु लोग मानते हैं कि मैंने ही उन्हें मारा है । उन्होंने ही शत्रुओंकी सेनाएं नष्ट की थीं, मैं तो केवल उनके पीछे पीछे गमन करता था ॥ ७ ॥

भगवंस्तन्ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः ।
शूलपाणिर्महान्कृष्ण तेजसा सूर्यसंनिभः ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! सूर्यके समान तेजस्वी अलौकिक प्रभाव युक्त त्रिशूलधारी वह तेजस्वी पुरुषोत्तम कौन हैं ? आप मेरे समीप उनका वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं विभुम् ।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शंकरम् ।
तं गच्छ शरणं देवं सर्वादिं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥

श्रीवेदव्यास मुनि बोले— हे अर्जुन ! जो प्रजापतियोंमें भी पहिले निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ, भूर्लोक, भुवर्लोक आदि लोकोंके आदि कारण, सब लोकोंके सृष्टिकर्त्ता, सर्वव्यापी, तेज-स्वरूप, शङ्कर, ईशान, वरदाता और तैजस पुरुष हैं, तुमने उन्हींका दर्शन किया है; इससे तुम उस वृषभवाहन सम्पूर्ण जगत्के स्वामी देवोंके देव महादेवकी शरणमें जाओ ॥ ९–१० ॥

महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं शिवम् ।
त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान्वरान् ॥ ११ ॥

वे महादेव, महात्मा, ईशान, जटिल शिव, त्रिनेत्र, महाभुज, रुद्र, शिखी, और चीरवासा सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वर हैं वही प्रसन्न होके भक्तोंको अभिलषित वर प्रदान करते हैं ॥ ११ ॥

तस्य ते पार्षदा दिव्या रूपैर्नानाविधैः विभोः ।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥ १२ ॥

भगवान् शंकर–महादेवके दिव्य पार्षद अनेक प्रकारके रूपोंमें दिखायी देते हैं– उनमेंसे वामन, जटिल, मुण्ड ह्रस्वग्रीव, महोदर ॥ १२ ॥

महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथापरे ।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥ १३ ॥

महाकाय, महोत्साह और महाकर्ण, विकृतानन, विकृत चरण और विकृत वेषवाले अनेक रूपधारी दिव्य मूर्तिवाले उनके पार्षद हैं ॥ १३ ॥

ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः ।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ।
तस्मिन्घोरे तदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे ॥ १४ ॥

द्रोणकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ।
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसापि प्रधर्षयेत् ।
ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपान्महेश्वरात् ॥ १५ ॥

वे महादेव महेश्वर अपने ऐसे स्वरूपवाले पार्षदोंसे सदा पूजित हुआ करते हैं । हे तात अर्जुन ! वे तेजस्वी महादेवही प्रसन्नताके सहित कृपा करते उस रोमाञ्चकारी घोर संग्राममें तुम्हारे आगे आगे गमन करते हैं । धनुर्द्धर वीरोंमें अग्रगण्य अनेक रूपधारी देवोंके देव महादेवके अतिरिक्त, इस रणभूमिके बीच अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि युद्धमें प्रशंसित महाधनुर्द्धर वीरोंसे रक्षित कौरवोंको क्या कोई मनसे भी पराजित करनेका उत्साह कर सकता है ? ॥ १४–१५ ॥

स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते ।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १६ ॥

परन्तु महादेवको सम्मुख स्थित देख कोई भी उनके विरुद्ध साहसी नहीं हो सकता; क्योंकि तीनों लोकोंके बीच कोई भी प्राणी भगवान् रुद्रके समान पराक्रमी नहीं है ॥ १६ ॥

×

गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ १७ ॥
संग्रामभूमिमें यदि भगवान् शम्भु क्रुद्ध होकर स्थित होवें, तो उनकी गन्धसे भी शत्रुलोग मूर्च्छित होकर कांपने लगते हैं और कितने ही अधमरे होकर गिर जाते हैं ॥ १७ ॥

तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि ।
ये चान्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥ १८ ॥
उन महादेवको नमस्कार करनेवाले देवता सदा स्वर्गलोकमें वास करते हैं, दूसरे भी जो मनुष्य इस लोकमें उन्हें नमस्कार करते हैं, वे स्वर्गलोकपर विजय प्राप्त करते हैं ॥ १८ ॥

ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १९ ॥
जो भक्त लोग अत्यन्त ही भक्तिपूर्वक वरदाता कल्याणमय रुद्रदेव उमापति शिवको प्रणाम करते हैं, वे इस लोकमें परम सुख पाके अन्त समयमें परम गति प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ।
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ॥ २० ॥
हे अर्जुन! तुम भी उन शान्त स्वरूप भगवान् शंकरको सदा नमस्कार करो। वे रुद्र, शितिकण्ठ, कनिष्ठ, महातेजस्वी ॥ २० ॥

कपर्दिने करालाय हर्यक्षणे वरदाय च ।
याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शंकराय च ॥ २१ ॥
कपर्दी, कराल, हरिनेत्र, वरदाता, याम्य, अव्यक्त केश, सदाचार शंकर ॥ २१ ॥

काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ।
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तरणाय च ॥ २२ ॥
काम्यदेव, पिङ्गल नेत्र, स्थाणु, पुरुष, पिङ्गल भूरे केश, मुण्ड, कृश, उद्धारकर्त्ता ॥ २२ ॥

भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ।
बहुरूपाय शर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ॥ २३ ॥
भास्कर, सुतीर्थ, वेगवान्, बहुरूप, सर्व, प्रिय, प्रियवासा, देवोंके देव महादेव हैं, उनको नमस्कार करो ॥ २३ ॥

उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे ॥ २४ ॥
उस उष्णीषधारी, सुवक्त्र, सहस्राक्ष, पूजनीय, गिरिश, प्रशान्त, पतिस्वरूप, चीरवासा ॥ २४ ॥

हिरण्यबाहवे चैव उग्राय पतये दिशाम् ।
पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ॥ २५ ॥

हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पति, पर्जन्यपति और भूतस्वामीको नमस्कार है ॥ २५ ॥

वृक्षाणां पतये चैव अपां च पतये तथा ।
वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ॥ २६ ॥

वृक्षपति, अपांपति, जिनका शरीर नाना भांतिके वृक्षोंसे शोभित है, उन सेनानायक, मध्यम ॥ २६ ॥

स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ।
बहुरूपाय विश्वस्य पतये चीरवाससे ॥ २७ ॥

स्रुवहस्त, देव, धन्वी, भार्गव, बहुरूप, विश्वपति, चीरवासा ॥ २७ ॥

सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ।
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ॥ २८ ॥

सहस्र सिर, सहस्र नेत्र, सहस्र बाहु, सहस्र चरण महादेवको नमस्कार है ॥ २८ ॥

शरणं प्राप्य कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ।
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम्
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! तुम उन ही वरदाता, त्रिलोकेश्वर उमापति विरूपाक्षके दक्षयज्ञके नाश करनेवाले प्रजापति, अव्यग्र, अव्यय और भूतपतिकी शरणमें जाओ ॥ २९ ॥

कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३० ॥

जो कपर्दी, वृषावर्त, वृषनाभ, वृषध्वज, वृषदर्प, वृषपति, वृषशृङ्ग, वृषश्रेष्ठ ॥ ३० ॥

वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं महेश्वरम् ॥ ३१ ॥

वृषाङ्क, वृषभोदार, वृषभ, वृषभेक्षण, वृषायुध, वृषशर, वृषभूत, महेश्वर ॥ ३१ ॥

महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥ ३२ ॥

महोदर, महाकाय, व्याघाम्बर, धारण करनेवाले लोकेश्वर, वरदाता, मुण्ड, ब्रह्मण्यदेव, ब्राह्मण प्रिय ॥ ३२ ॥

त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ।
पिनाकिनं खण्डपरशुं लोकानां पतिमीश्वरम् ।
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ॥ ३३ ॥

त्रिशूलपाणि, वरप्रद, तलवार ढाल ग्रहण करनेवाले, निग्रहानुग्रहमें समर्थ, पिनाकी परशुधारी, तीनों लोकोंके पति, चीरवासा शरणदेवके शरणापन्नमें हुआ हूं ॥ ३३ ॥

नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ।
सुवाससे नमो नित्यं सुव्रताय सुधन्विने ॥ ३४ ॥

उन वैश्रवणसखा सुरेश्वरको नमस्कार है । सुवासा, सुधन्वी, सुव्रतको सर्वदा नमस्कार है ॥ ३४ ॥

स्रुवहस्ताय देवाय सुखधन्वाय धन्विने ।
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय धन्विने ॥ ३५ ॥

उन स्रुवहस्त, सुखधन्वा, धन्वी, धन्वन्तर, धनुष, धन्वाचार्य और धनुमूर्ति देवको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ।
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमश्च बहुधन्विने । ॥ ३६ ॥

उन उग्रायुध, देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवको नमस्कार है बहुमूर्ति बहुधन्वाको नमस्कार है ॥ ३६ ॥

नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं सुव्रताय सुधन्विने ।
नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः ॥ ३७ ॥

स्थाणु और नित्यसुव्रती सुधन्वी देवको नमस्कार है । उन त्रिपुर और भगहन्ताको नमस्कार है ॥ ३७ ॥

वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ।
अपां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ३८ ॥

उन वनस्पति प्रभु और मनुष्यपतिको नमस्कार है । उन जलोंकेपति और यज्ञोंके पति महादेवको सर्वदा नमस्कार है ॥ ३८ ॥

पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ।
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ॥ ३९ ॥

पूषाके दांतको तोडनेवाले, त्रिनेत्र, वरदाता, नीलकण्ठ, पिंगलवर्ण, सुवर्ण केशवाले, भगवान् शिवको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

कर्माणि चैव दिव्यानि महादेवस्य धीमतः।
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ॥ ४० ॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! उन बुद्धिमान् महादेवके जिन सम्पूर्ण दिव्य कर्मोंको मैंने सुना हैं, उसे मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं; तुम सुनो ॥ ४० ॥

न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः।
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः। ॥ ४१ ॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ४२ ॥

उनके कोपित होनेसे देव, असुर, गन्धर्व और राक्षस आदि प्राणी यदि पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश करें, तो भी सुखी नहीं रह सकते। दक्षके विधिपूर्वक कियेजानेवाले यज्ञको भगवान् शंकरने निर्भय होकर नष्ट कर दिया था; उस समय भगवान् रुद्र अपने प्रचण्ड धनुषको ग्रहण करके भयङ्कर बाणोंको चलाने और महाभयानक शब्दके सहित सिंहनाद करने लगे ॥ ४१–४२ ॥

ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ ४३ ॥

उस समय देवता लोग सम्पूर्ण स्थानोंमें भ्रमण करके भी किसी स्थानमें सुख और शान्ति पूर्वक निवास करनेमें समर्थ नहीं हुए इसी भांति महादेवके क्रुद्ध होनेसे सहसा यज्ञमें विघ्न उत्पन्न हो गया था ॥ ४३ ॥

तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ४४ ॥

उनके धनुषके टङ्कार और तलत्राण शब्दसे सम्पूर्ण लोक अत्यन्त व्याकुल हो उनके वशमें हो गये। हे अर्जुन! उस समय देवता और असुर चेतरहितके समान धरतीपर गिरने लगे ॥ ४४ ॥

आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुंधरा।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ४५ ॥

समुद्रका जल उथलने लगा और पृथ्वी कांपने लगी। पर्वतोंके शिखर टूट टूटके गिरने लगे, चारों दिशाओंके दिग्गज मोहित हुए ॥ ४५ ॥

अन्धाश्च तमसा लोका न प्रकाशन्त संवृताः।
जघ्निवान्सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ४६ ॥

अन्धकारसे छिपजानेके कारण सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाशही नहीं रहा; अनन्तर उन्होंने सूर्य आदि सभी देवताओंके प्रभाव तथा तेजको हीन कर दिया ॥ ४६ ॥

चुक्रुशुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च ।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥ ४७ ॥

उसे देख ऋषि लोग पहिले भयभीत होकर कोलाहल मचाने लगे; फिर अपने और सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये सुख चाहते हुए शान्तिकर्म करने लगे ॥ ४७ ॥

पूषाणमभ्यद्रवत शंकरः प्रहसन्निव ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् ॥ ४८ ॥

उस ही समय पूषाने पुरोडाशका भक्षण किया, इस ही कारण महादेवने उनपर आक्रमण करके उनके दांत तोड दिये ॥ ४८ ॥

ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म तम् ।
पुनश्च संदधे दीप्तं देवानां निशितं शरम् ॥ ४९ ॥

उसे देखकर सम्पूर्ण देवता लोग नतमस्तक हो भयभीत होकर कांपते हुए महादेवके सम्मुखसे बाहर निकल गये। तब भगवान् महादेवने देवताओंको लक्ष्य करके एक तीक्ष्ण और तेजस्वी बाणका संधान किया ॥ ४९ ॥

रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते न्वकल्पयन् ।
भयेन त्रिदशा राजञ्शरणं च प्रपेदिरे ॥ ५० ॥

राजन् ! तब सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् महादेव रुद्रको क्रोधित देख उनको प्रणाम किया और विशेष रूपसे उनके लिये यज्ञका भाग स्थापित किया। राजन् ! सब देवता भयभीत होकर उन्हींके शरणापन्न हुए ॥ ५० ॥

तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः संधितस्तदा ।
यत्ताश्चापि सुरा आसन्यत्ताश्चाद्यापि तं प्रति ॥ ५१ ॥

तब महादेवका क्रोध शांत हुआ और उस समय दक्ष प्रजापतिके नष्टप्राय यज्ञको उन्होंने पूर्ण किया; तब देवता उनसे भयभीत हुए थे, और अब भी महादेवके क्रोधसे भयभीत हैं ॥ ५१ ॥

असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णमपरं महत् ॥ ५२ ॥

पहिले आकाशमें महापराक्रमी तीन असुरोंके एक लोहेका, दूसरा चांदीका और तीसरा अत्यंत बडा सोनेका ऐसे तीन नगर थे ॥ ५२ ॥

आयसं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ।
सौवर्णं परमं ह्यासीद्विद्युन्मालिन एव च ॥ ५३ ॥

उनमेंसे लोहेकी पुरी तारकाक्षकी चांदीकी पुरी कमलाक्षकी और तीसरी बडी सोनेकी नगरी विद्युन्माली की थी ॥ ५३ ॥

न शक्तस्तानि मघवान्भेत्तुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ ५४ ॥

देवराज इन्द्र अपने सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंको चला कर भी असुरोंकी तीनों पुरीको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हुए। अनन्तर असुरोंसे पीडित सम्पूर्ण देवता लोग इकट्ठे होकर भगवान् रुद्रकी शरणमें गये ॥ ५४ ॥

ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः ।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ।
निपातयिष्यसे चैनानसुरान्भुवनेश्वर ॥ ५५ ॥

इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवताओंने महात्मा भगवान् रुद्रसे कहा— हे रुद्र ! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वर ! आप यदि इन असुरोंका नाश करेंगे, तो सभी यज्ञकर्मोंमें जो पशु होंगे, वे रुद्रके ही भाग हो जायंगे ॥ ५५ ॥

स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ।
अतिष्ठत्स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ५६ ॥

महाप्रतापी पिनाकधारी महादेवने देवताओंके ऐसे वचनको सुनकर 'ऐसा ही होगा' कहकर उन लोगोंके वचनको स्वीकार किया। अनन्तर उन लोगोंके हितकी अभिलाषासे माहेश्वर नामक एक दिव्यस्थान निर्माण करके एक हजार वर्षतक वहां ही स्थाणुके समान खडे रहे ॥ ५६ ॥

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि वै ।
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तेन तानि बिभेद सः ॥ ५७ ॥

जिस समय वे तीनों पुर आकाशमें एक ही स्थान पर मिलित हुए; उस समय उन्होंने त्रिपर्व और त्रिशल्य युक्त बाणसे उनका नाश किया ॥ ५७ ॥

पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ।
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ॥ ५८ ॥

दानव लोग विष्णु और सोम संयुक्त प्रलय कालकी अग्निके समान उस बाणको और आकाश स्थित त्रिपुरको देखनेमें भी समर्थ न हुए ॥ ५८ ॥

बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान् ॥ ५९ ॥

त्रिपुर भस्म होनेके समय देवी भगवती पांच शिखासे शोभित एक बालकको गोदमें लेकर वहां पर कौतुक देखने गयी थीं। अनन्तर उमादेवीने देवताओंसे पूछा, कि यह बालक कौन हैं, जानते हो ? ॥ ५९ ॥

बाहुं सवज्रं शक्रस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत्प्रभुः ।
स एष भगवान्देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ६० ॥

तब निग्रहानुग्रहमें समर्थ सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् त्रिलोचन महादेवने हंसके क्रोधी इन्द्रकी वज्रके सहित भुजाको उस ही समय स्तम्भित कर दिया । उस बालकके रूपमें ये सर्वलोकेश्वर प्रभु भगवान् महादेव ही थे ॥ ६० ॥

न संबुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ।
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ६१ ॥

प्रजापतियों सहित सम्पूर्ण देवता उन बाल-सूर्यके समान तेजस्वी जगदीश्वरको पहचान न सके ॥ ६१ ॥

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा च स महेश्वरम् ।
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ॥ ६२ ॥

अनन्तर पितामह ब्रह्माने समीप जाकर भगवान् महादेवका दर्शन करके "येही श्रेष्ठ हैं" ऐसा जानके उनकी वन्दना की ॥ ६२ ॥

ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः ॥ ६३ ॥

उसे देखकर सम्पूर्ण देवताओंने पार्वतीदेवीके सहित भगवान् रुद्रदेवको प्रसन्न किया; तब वज्रधारी इन्द्रकी भुजा पहिलेकी भांति फिर प्रकृतिस्थ हुई ॥ ६३ ॥

तेषां प्रसन्नो भगवान्सपत्नीको वृषध्वजः ।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ६४ ॥

हे अर्जुन ! इसी प्रकार सम्पूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ, दक्ष यज्ञका नाश करनेवाले, अपनी पत्नी पार्वतीदेवीके सहित भगवान् वृषभध्वज देवताओंपर प्रसन्न हो गये ॥ ६४ ॥

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः शर्वः स सर्ववित् ।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ स च विद्युतः ॥ ६५ ॥

वही रुद्र, शिव, अग्नि, शर्व, सर्वज्ञ, इन्द्र, वायु, दोनों अश्विनीकुमार और विद्युतरूप हैं ॥ ६५ ॥

स भवः स च पर्जन्यो महादेवः स चानघः ।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥ ६६ ॥

वही भव, पर्जन्य, महादेव, अनघ, चन्द्र, ईशान, सूर्य और वरुण हैं ॥ ६६ ॥

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो राज्यहानि च ।
मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः ॥ ६७ ॥

वेही काल, अन्तक, मृत्यु, यम, रात्रि और दिन हैं । वेही मास, पक्ष, ऋतु, दोनों सन्ध्या और संवत्सर हैं ॥ ६७ ॥

स च धाता विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥ ६८ ॥

वेही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं। वे शरीर रहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओंके रूपसे स्थित रहते हैं ॥ ६८ ॥

सर्वैर्देवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः ।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ ६९ ॥

इस ही कारण सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं, वे एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपोंमें वेही विराजित होते हैं ॥ ६९ ॥

ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानजः ।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥ ७० ॥

हे अर्जुन! जन्म मृत्यु रहित भगवान् महादेव इसी प्रकार तथा इससे भी परे हैं। मैं तो भगवान् शङ्करके समस्त गुणोंको वर्णन नहीं कर सकता हूं ॥ ७० ॥

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान्वै सर्वपापसमन्वितान् ।
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान् ॥ ७१ ॥

मनुष्य लोग यदि सम्पूर्ण ग्रहोंसे पीडित और अनेक पापोंसे युक्त होकर भी उनके शरणागत होते हैं, तो भी महात्मा भगवान् शिव अपने शरणागत भक्तोंके ऊपर प्रसन्न होके उन्हें सम्पूर्ण विपज्जालसे मुक्त कर देते हैं ॥ ७१ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ।
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाक्षिपते पुनः ॥ ७२ ॥

वेही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, आरोग्यता, ऐश्वर्य, धन और उत्तम उत्तम अभिलषित भोग वस्तु प्रदान करते हैं; और कोपित होकर विपतके भंवरमें डाल देते हैं ॥ ७२ ॥

सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ।
स चैव व्याहृते लोके मनुष्याणां शुभाशुभे ॥ ७३ ॥

इन्द्रादिक देवताओंका जो कुछ ऐश्वर्य दीख पडता है, वह सब भगवान् शम्भुकाही ऐश्वर्य कहा जाता है, वेही लोकमें मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंके परिचालक हैं ॥ ७३ ॥

ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ।
महेश्वरश्च भूतानां महतामीश्वरश्च सः ॥ ७४ ॥

वेही अपने ऐश्वर्यके प्रभावसे मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं; वेही महाभूतोंके नियन्ता हैं; सम्पूर्ण प्राणी उन्हेंही ईश्वर तथा महेश्वर कहके उनके चरित्रोंको गाया करते ह ॥ ७४ ॥

बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ।
अस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे तदतिष्ठत ॥ ७५ ॥
वेही नाना भांतिके असंख्य रूप धारण करके इस जगत्में स्थित हैं; उनही महादेवका मुख समुद्रमें स्थित है ॥ ७५ ॥

एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः ।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥ ७६ ॥
येही महातेजस्वी रुद्र सदा श्मशान भूमिमें निवास करते हैं; मनुष्य लोग वहांपर उन्हें वीर स्थानमें स्थित ईश्वर कहके उनकी पूजा किया करते हैं ॥ ७६ ॥

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च
लोके यान्यस्य कुर्वन्ति मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥ ७७ ॥
इनके अनगिनत प्रकाशमान और भयङ्कर रूप हैं; मनुष्य लोग सदाही उनकी पूजा करके भगवान् रुद्रके गुणोंको गाया करते हैं ॥ ७७ ॥

नामधेयानि लोकेषु बहून्यत्र यथार्थवत् ।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मभिस्तथा ॥ ७८ ॥
कर्म, महत्त्व और ईश्वरत्वसे लोकमें उन्हें अनगिनत सार्थक नामोंसे मनुष्य उनका गुणगान करते हैं ॥ ७८ ॥

वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रीयमुत्तमम् ।
नाम्ना चानन्तरुद्रेति उपस्थानं महात्मनः ॥ ७९ ॥
वेदमें उन महात्मा रुद्रदेवकी शतरुद्रिय नामक उत्तम स्तुति वर्णित है; अनन्तरुद्रि नामसे उत्तम उपस्थान वर्णित है ॥ ७९ ॥

स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नुवते महत् ॥ ८० ॥
वे विश्वव्यापक, जो दिव्य और मानवी अभिलाषाएं हैं, उन सबके स्वामी ये ही रुद्र हैं; महत्, निग्रहानुग्रहमें समर्थ, स्वयंप्रभु और विभु हैं ॥ ८० ॥

ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत् ॥ ८१ ॥
वेही देवताओंके आदि पुरुष हैं; उन्हींके मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई हैं । इसही कारण ब्राह्मण और मुनि लोग उन्हें सबसे श्रेष्ठ, ज्येष्ठ तथा आदि कारण कहके उनके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥ ८१ ॥

सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥ ८२ ॥

येही सब भांतिसे पशु अर्थात् जीवोंका पालन, उनके सङ्ग क्रीडा और उनके ऊपर ऐश्वर्य विस्तार करते हैं, इस ही कारण सब कोई पशुपति नामसे उनका गुणानुवाद करते हैं ॥८२॥

नित्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यदा स्थितम् ।
महयन्ति च लोकाश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ८३ ॥

उनकी एक मूर्ति सदा ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित है, संपूर्ण लोक इनको महिमान्वित करते हैं; इस ही कारण वे महेश्वर नामसे विख्यात हुए हैं ॥ ८३ ॥

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥ ८४ ॥

ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्पसराएं सदा उनके ऊर्ध्व लोकस्थित लिंग मूर्तिकी पूजा अर्चना करती हैं ॥ ८४ ॥

पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शंकरः ॥ ८५ ॥

उनकी लिंगमूर्तिकी पूजा करनेपर कल्याणप्रद भगवान् महेश्वर प्रसन्न होते हैं; भगवान् शंकर सुखी, आनंदित और हर्षित होते हैं ॥ ८५ ॥

यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवत्स्थितम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥ ८६ ॥

भूत, वर्तमान, भविष्य और स्थावर जङ्गमात्मक उनके अनेक रूप स्थित होते हैं; इस ही कारण वे बहुरूप नामसे विख्यात हुए हैं ॥ ८६ ॥

एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
क्रोधाद्यश्चाविशल्लोकांस्तस्माच्छर्व इति स्मृतः ॥ ८७ ॥

वे सर्व चक्षु होकर प्रकाशमान रूपसे विराजमान हैं; तथापि उनका एक अग्निमय नेत्र सदा ज्वलित रहता है; क्रोधसे उन्होंने सब लोकोंके बीच प्रवेश किया है, इसहीसे उनका नाम शर्व हुआ है ॥ ८७ ॥

धूम्रं रूपं च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन उच्यते ।
विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन्विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ ८८ ॥

धूम्रवर्णवाली उनकी मूर्ति है, इस ही कारण वे धूर्जटि नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। विश्वेदेव उन्हींमें प्रतिष्ठित हैं, इसीसे उनका विश्वरूप नाम हुआ है ॥ ८८ ॥

तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः ।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः ॥ ८९ ॥

आकाश, जल और पृथ्वी इन तीन देवियोंको ये भगवान् भुवनेश्वर अपनाते हैं, उनकी रक्षा करते हैं, इसीसे उनका त्र्यम्बक नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ८९ ॥

समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान्सर्वकर्मसु ।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥ ९० ॥

ये मनुष्योंका सदा मङ्गल चाहते हुए उनके सम्पूर्ण कार्योंके अर्थको परिवर्धित करते हैं, इससे उनका शिव नाम प्रसिद्ध है ॥ ९० ॥

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ९१ ॥

वे सहस्राक्ष, अयुताक्ष और सर्वतश्चक्षु नामसे प्रसिद्ध हैं। वे इस महान् जगत्का पालन करते हैं, इसहीसे उनका नाम महादेव हुआ है ॥ ९१ ॥

दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत् ।
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः ॥ ९२ ॥

पहिलेसेही वे महत्रूपमें स्थित होकर अपने तेजसे ऊर्ध्वरूपमें प्रज्वलित हो रहे हैं, वेही प्राणोंकी उत्पत्ति, स्थितिके कारण और उनका लिंगमय शरीर सदा स्थिर रूप हैं; इसही कारणसे वे स्थाणु नामसे विख्यात हैं ॥ ९२ ॥

विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह ।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणापानशरीरिषु ॥ ९३ ॥

वे प्राणियोंके शरीरोंमें विषम संख्यावाले पांच प्राणोंके साथ रहकर सदा समभावसे स्थित हैं; विषम परिस्थितियोंमें पडे हुए देहधारियोंमें वे प्राणवायु और अपान वायुके रूपमें रहते हैं ॥ ९३ ॥

पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिङ्गं वापि समर्चयेत् ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ ९४ ॥

जो कोई भी मनुष्य हो, उसे महादेवके लिङ्गमूर्तिकी पूजा-अर्चना करनी चाहिये । लिङ्ग मूर्तिकी पूजा करनेवाला मनुष्य सदा सर्वदा बडी सम्पत्तिका लाभ करता है ॥ ९४ ॥

ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमार्धं च शिवा तनुः ।
आत्मनोऽर्धं च तस्याग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते ॥ ९५ ॥

उनके दोनों जांघोंसे नीचे अर्द्धभाग आग्नेय और उससे उपरका अर्धभाग सौम्य है; ऐसा भी वर्णन किया गया है, कि उनके सम्पूर्ण शरीरका अर्द्धभाग आग्नेय और अर्द्धभाग सौम्यमूर्त्ति है ॥ ९५ ॥

तैजसी महती दीप्ता देवेष्वस्य शिवा तनुः
शाश्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराग्निरुच्यते ॥ ९६ ॥

उनकी जो महातेजसे युक्त मूर्त्ति देवलोकमें विराजमान है, वही शिवा मूर्ति है; और सूर्यके समान तेजसे युक्त जो मूर्त्ति मनुष्य लोकमें प्रतिष्ठित है, वही अग्निमय मूर्त्ति घोरा नामसे प्रसिद्ध है ॥ ९६ ॥

ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा यास्य तनुस्तया ।
यास्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥ ९७ ॥

वे भगवान् रुद्र अपनी शिवा मूर्त्तिसे सदा ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके जगत्की रक्षा करते हैं, और दूसरी घोरा मूर्त्तिसे सम्पूर्ण लोकका संहार करते हैं ॥ ९७ ॥

यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ ९८ ॥

ये प्रतापी देवता प्रलयकालमें अत्यंत तीक्ष्ण और उग्र रूप धारण करके सबको दग्ध कर देते हैं, और प्राणियोंके मांस, रुधिर तथा मज्जाको भक्षण करते हैं; इस ही कारणसे उनका नाम रुद्र कहके जगत्में विख्यात है ॥ ९८ ॥

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः ।
संग्रामे शात्रवान्निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक् ॥ ९९ ॥

हे अर्जुन ! युद्धभूमिके बीच तुमने जिन देवको अपने अगाडीमें शत्रुओंकी सेनाको संहार करते देखा था वे येही पिनाकधारी भगवान् महादेव हैं ॥ ९९ ॥

एष वै भगवान्देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः ।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥ १०० ॥

ये वे ही भगवान् शंकर युद्धमें तुम्हारे रथके आगे आगे गमन करते रहते हैं, और जिन्होंने तुम्हें पाशुपत आदि दिव्य अस्त्र प्रदान किये थे; जिससे कि तुमने दुर्जय दानवकुलका संहार किया है वे वही भगवान् शिव हैं ॥ १०० ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संज्ञितम् ।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यानं शतरुद्रियम् ॥ १०१ ॥

हे अर्जुन ! इस लोकमें यशको बढानेवाली तथा आयुको बढानेवाली, धन्य और पवित्र, वेद-सम्मत यह देवाधिदेव भगवान् शिवके शतरुद्रिय स्तोत्रकी व्याख्या की गयी है ॥ १०१ ॥

सर्वार्थसाधकं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ १०२ ॥

यह पवित्र स्तोत्र अत्यन्त ही पुण्यदायक, सम्पूर्ण अर्थोंको सिद्ध करनेवाला, सब किल्बिषोंका नाशक, समस्त पापोंका निवारक और अज्ञान, दुःख तथा भयको नाश करनेवाला है ॥ १०२ ॥

चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा ।
विजित्य सर्वाञ्शत्रून्स रुद्रलोके महीयते ॥ १०३ ॥

जो मनुष्य भगवान् शंकरके ब्रह्मा, विष्णु, महेश और निर्गुण निराकार इन चार प्रकारके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले इस स्तोत्रको सदा सुनता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओंको जीत कर अन्त समयमें रुद्रलोकमें गमन करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १०३ ॥

चरितं महात्मनो दिव्यं सांग्रामिकमिदं शुभम् ।
पठन्वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥ १०४ ॥

जो पुरुष महात्मा महादेवके इस दिव्य और मङ्गलजनक संग्राममें विजय देनेवाले चरितको, सदा उद्यत रहकर इस शतरुद्रियको पढता है और सुनता है, उसकी सदा उन्नति होती है ॥ १०४ ॥

भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु तु यः सदा ।
वरान्स कामाँल्लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥ १०५ ॥

मनुष्य लोकमें जो भक्त सदा भगवान् विश्वेश्वर महादेवको भक्तिभावसे भजन करके प्रसन्न कर सकता है, वह उन त्रिलोचनके प्रसन्न होनेपर शीघ्र ही अपनी उत्तम अभिलषित वस्तुओंको पाता है ॥ १०५ ॥

गच्छ युध्यस्व कौन्तेय न तवास्ति पराजयः ।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वतस्ते जनार्दनः ॥ १०६ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! साक्षात् जनार्दन श्रीकृष्ण जब तुम्हारे रक्षक, सहायक और मन्त्री हुए हैं, तब कभी भी तुम्हारी पराजय नहीं होगी; इससे जाओ, और युद्ध करो ॥ १०६ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा ।
जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिंदम ॥ १०७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥
॥ समाप्तं नारायणास्त्रमोक्षपर्व ॥ ८१५२ ॥

सञ्जय बोले— हे शत्रुदमन भरतश्रेष्ठ राजन् ! पराशरनन्दन व्यासदेवने युद्धभूमिमें अर्जुनसे ऐसा कहके जैसे आये थे, वैसे अपने स्थान पर गमन किया ॥ १०७ ॥

॥ महाभारतके द्रोणपर्वमें एकसौ तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥१७३॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्व समाप्त ॥८१५२॥

॥ द्रोणपर्व समाप्त ॥



पारडी [जि. बलसाड]